राजयोगाचार्य श्री १०८ ब्रह्म ऋषि स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वती जी महाराज

ॐ

प्रकाशक की ओर से निवेदन

परब्रह्म परमेश्वर की अपार कृपा से ब्रह्मनिष्ट योगिप्रवर ब्रह्मर्षि श्री १०८ स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वती जी महाराज के रचित योग विषयक ग्रन्थ माला के तीसरे पुष्प 'ब्रह्म-विज्ञान" को जनता की सेवा मे प्रस्तुत करते हुए हम हर्ष है। इस ग्रन्थ माला की पहली दो पुस्तको मे अष्टांग योग के आठों अगों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। यह "ब्रह्म-विज्ञान" पुस्तक उच्चय कोटि के साधको के लिये श्री स्वामी जी महाराज की अपार दन है। इस ग्रन्थ मे सृष्टि की उत्पत्ति, प्रकृति और उसके कार्यों एव ब्रह्म का साक्षातकार जैसे सूक्ष्मतम विषयों की व्याख्या की गई है। श्री स्वामी जी महाराज ने अपने पिछले ४० वर्षो की तपस्या मे किए गए अनुभवो के आधार पर इस पुस्तक की रचना की है।

हिन्दी साहित्य मे यह अद्भुत अमूल्य, अपूर्व और महान पुस्तक रची गई है। भारत के प्राचीन ऋषियों ने "ब्रह्म विज्ञान अथवा ब्रह्मविद्या के सम्बन्ध मे ग्रन्थों को सूत्र रूप मे निर्माण किया था। कई सहस्र वर्षो से इस विद्या का लोप ही होता जा रहा था, परन्तु इस लाप होती जा रही विद्या को श्री स्वामी जी ने अपने अनुभवो के आधार पर पुनर्जीवित किया है और सर्व साधारण जनता के लिये हिन्दी भाषा म यह ग्रन्थ रचकर मानव जाति के ऊपर एक बडा उपकार किया है। हमे पूर्ण आशा है कि इस विज्ञान के युग मे श्री स्वामी जी महाराज की इस रचना से शान्ति और आनन्द की धारा का परवाह अनन्तकाल तक बहता रहेगा।

इस ग्रन्थ से पूर्ण लाभ उठाने के लिये साधक 'बहिरङ्ग योग" और "आत्म-विज्ञान" मे वर्णित साधनो का विधि पूर्वक अनुकरण करें।

योग निकेतन ट्रस्ट

शुभ आशीर्वाद

इस ग्रन्थ के लिये कागज का प्रबन्ध श्रीमान् सेठ जुगल किशोर जी बिरला ने किया है। उनको मैं किन शब्दों मे धन्यवाद या आशीर्वाद दूं ? उनकी धर्म परायणता और दानवीरता इस देश मे ही नहीं, विदेशो मे भी विख्यात है। उनका दृष्टि कोण इतना विशाल है कि वे हिन्दू, सिक्ख, जैन और बौद्ध इन सभी धर्मों को एक ही आर्य धर्म की शाखा प्रशाखा मानते हैं तथा अपनी इस मान्यता के अनुसार ही सारे सेवा कार्य करते हैं। उनके द्वारा बनवाये मन्दिरो, गुरु द्वारो और धर्मशालाओं इत्यादि से आध्यात्मिकता के साथ-साथ पारस्परिक एकता एव सगठन के लिये भी अद्भुत प्रेरणा मिलती है। सच्ची बात यह है कि अपने महत्वपूर्ण सेवा कार्यों के कारण सेठ जुगलकिशोर जी बिरला एक महान सस्था बन गये हैं। उनकी जितनी भी प्रशसा की जाय, थोडी है। मैं अपने अन्त करण से उनके शतायु एव स्वस्थ जीवन की कामना करता हूँ और भगवान् से यह प्रार्थना करता हूँ कि वे अपने परिवार के साथ उत्तरोतर श्री समृद्धि प्राप्त करते रहे।

—स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वती

ॐ

ब्रह्म-विज्ञान

विषय सूची

विषय	पृष्ठ संख्या
भूमिका	ध न
ईश्वर-वन्दना	प
गुरुजन वन्दना	प
विषय निदर्शन	प
—ब्रह्म-विज्ञान	
प्रथम अध्याय	१-१३७
समष्टि महाभूतों की सृष्टि में, ब्रह्म की उपासना और ज्ञान	१
प्रथम खण्ड	१-२४
विषय प्रवेश और विज्ञान प्रक्रिया	१
ब्रह्म—	१
प्रकृति—	१
जीव—	२
सृष्टि की रचना-ब्रह्म के सम्बन्ध से चेतन सी बनी सृष्टि	२
समष्टि पदार्थों का स्वरूप	३
चित्र संख्या १—समष्टि पृथ्वी महाभूत से ब्रह्म पर्यन्त ३४ पदार्थों का	४
स्वरूप	५
तत्व ज्ञान का साधन संयम	४
संयम के लिये स्थान	४
ब्रह्म विज्ञान का क्रम	५
समाधि का स्वरूप और प्रयोग	५
त्रिपुटी का विश्लेषण	६
सम्प्रज्ञात समाधियां	७
१ सवितर्क सम्प्रज्ञात समाधि	७
२. निर्वितर्क सम्प्रज्ञात समाधि	७
३. सविचार सम्प्रज्ञात समाधि	७
४ निर्विचार सम्प्रज्ञात समाधि	८
समष्टि पदार्थ पाचो रूप मे ब्रह्मज्ञान (नवीनतम खोज)	११
ब्रह्म ज्ञान के अधिकारी	१२
वैराग्य का स्वरूप और उसकी साधना	१५
प्रकृति का वध	२४(क)

विषय	पृष्ठ
द्वितीय खण्ड— (३३वाँ आवरण)	२५-६१
समष्टि पृथिवी महाभूत पाँचो रूपो मे ब्रह्म विज्ञान	२५
१ स्थूल रूप २ स्वरूप ३ सूक्ष्म रूप ४. अन्वय रूप ५. अर्थवत्व रूप	२५
१ पृथिवी के स्थूल रूप मे—	२६
चित्र संख्या २—पञ्च तन्मात्राओ से स्थूल पृथिवी महाभूत की उत्पत्ति, पृथिवी महाभूत म व्यष्टि लोक लोकान्तरों की उत्पत्ति	२६-२७
१ आकार २ स्थिरता	२६
३ गुरुत्व	२७
४ कठिनता	२८
५, आच्छादन	२९
६ विदारण	२९
७. रूक्षता	३०
८ कृशता	३१
९ सर्वभूताधारता	३१
१० क्षमा	३२
११ सर्व भोग्यता	३३
पृथिवी का समाधिजन्य ज्ञान—	३५
भूमि की गति का कारण	३५
भूमि के घूमने का कारण	३५
इस पृथिवी का विस्तार	३६
पृथिवी म तैल पैट्रोल	३८
पृथिवी मे पत्थर वा कोयला	३९
पृथिवी के गर्भ मे	४०
सब का नियन्ता	४२
ब्रह्म को प्रत्यक्ष करने का अधिकार	४३
ब्रह्म दर्शन और स्वरूप दर्शन	४३
व्यष्टि समष्टि का भेद मे अन्तर	४४
२ पृथिवी के स्वरूप मे—	४५
युतसिद्ध, अयुत सिद्ध,	४६
३ पृथिवी के सूक्ष्म रूप में—	४७
४. पृथिवी के अन्वय रूप मे—	४९
तीन परिणाम—	५१
१ धर्म परिणाम २ लक्षण परिणाम ३. अवस्था परिणाम	५१
५ पृथिवी के अर्थवत्ता रूप में—	५२
सूर्य की किरणो पर आरोहण (सच्ची घटना)	५३
शरीर मे दो चेतन सत्तायें	५५
१. ऐच्छिक क्रियायें	५५

विषय पृष्ठ

२. अनैच्छिक क्रियायें ५६
पृथिवी के सात्त्विक भाग से— ५७
राजस भाग से ५७
तामस भाग से ५७
मनुष्य देह का प्रयोजन ५७
ब्रह्म-ज्ञान का सर्व प्रथम द्वार ६०
तृतीय खण्ड—(३२वां आवरण) ६२-८०
समष्टि जल महाभूत पाचों रूपों मे ब्रह्म-विज्ञान ६२-८०
१ जल के स्थूल रूप मे— ६२
१. सूक्ष्मता ६३
२. स्नेह ६३
३. मृदुता ६४
४. गुरुत्व ६५
५ प्रभा ६५
६. शुक्लता ६६
७. शीतता ६७
८ सम्मेलन ६७
९. पवित्रता ६९
१०. रक्षा ७०
गुणो के परिणाम मे प्रभु का साक्षात्कार ७१
२. जल के स्वरूप मे— ७२
३. जल के सूक्ष्म रूप मे— ७३
भौतिक सृष्टि की उत्पत्ति ७५
प्रथम क्रम— ७५
द्वितीय क्रम— ७५
तन्मात्राओं की अनन्तता ७७
४. जल के अन्वय रूप मे— ७८
५. जल के अर्थवत्त्व रूप मे— ७८
ईश्वर का मन्दिर ७९
चतुर्थ खण्ड—(३१वाँ आवरण) ८१-१००
समष्टि अग्नि महाभूत के पाँचों रूपो मे ब्रह्मज्ञान ८१-१००
१. अग्नि के स्थूल रूप मे— ८१
१. लघु २ ऊर्ध्व गमन ८२
३. भास्वर ८३
४. पाचक ८४
५. पावक ८५
६. ओजस्वी ८६

विषय	पृष्ठ
७. दाहकता	८६
८. प्रध्वंस	८७
आत्मा और ब्रह्म प्रत्यक्ष है।	८६
२. अग्नि के स्वरूप मे—	६२
३. अग्नि के सूक्ष्म रूप मे—	६३
४. अग्नि के अन्वय रूप मे—	६५
५. अग्नि के अर्थवत्ता रूप मे—	६६
अग्नि मे ब्रह्मोपासना और ज्ञान	६७
ब्रह्म का उपमान	६८
पञ्चम खण्ड—(३०वां आवरण)	१०१-१२१
समष्टि वायु महाभूत के पांचो रूपो में ब्रह्मज्ञान	१०१-१२१
१. वायु के स्थूल रूप मे—	१०१
१. कम्पन	१०२
२ तिर्यग्गमन	१०३
३ चञ्चलता ४ रूक्षता	१०५
५. पवित्रता	१०६
६ आच्छादन	१०८
७. बल	१०६
८. आक्षेप	११०
२. वायु के स्वरूप मे—	११२
३. वायु के सूक्ष्म रूप मे—	११४
४. वायु के अन्वय रूप मे—	११५
५. वायु के अर्थवत्ता रूप मे—	११७
ईश्वर के मानने वालो का एक धर्म	११६
षष्ठ खण्ड—(२६वां आवरण)	१२२-१३६
समष्टि आकाश महाभूत पांचो रूपो मे ब्रह्मज्ञान	१२२-१३६
१. आकाश के स्थूल रूप मे—	१२३
चित्र संख्या ३—स्थूल पचभूतो का स्वरूप और परस्पर मिलकर सघात भाव को प्राप्त होना एव पञ्चतन्मात्राओं द्वारा इनका निर्माण	१२२-१२३
१. सर्वत्रगति	१२३
२. अव्यूह ३. अवकाश प्रदान	१२५
२. आकाश के स्वरूप मे—	१२८
३. आकाश के सूक्ष्म रूप मे—	१२६
चित्र संख्या ४—पञ्चतन्मात्रा संघात को प्राप्त होकर स्थूल भूतो का निर्माण करने जा रही हैं	१३०-१३१
आकाश मे ब्रह्म साक्षात्कार कैसे करें ?	१३१

विषय	पृष्ठ
४. आकाश के अन्वय रूप में—	१३३
५. आकाश के अर्थवत्त्व रूप में—	१३३
निराकार ईश्वर की उपासना और ज्ञान	१३४
प्रकृति के कार्यों में त्रयीकरण-अहङ्कारिक सृष्टि, त्रैगुण्य सृष्टि	१३७
द्वितीय अध्याय	१३८-३३४
तामस अहङ्कारिक सृष्टि	१३८-२१०
समष्टि अहङ्कारिक पञ्च-तन्मात्राओं की सृष्टि में ब्रह्म की उपासना	१३८
चित्र संख्या ५—पञ्च तन्मात्राओं से सूक्ष्म शरीर की उत्पत्ति दिखाई गई है।	१३८-१३९
तन्मात्राओं में तीनों अहङ्कारों का भाग	१३९
चित्र संख्या ६—तन्मात्राओं की सृष्टि	१४०-१४१
ब्रह्म के विराट रूप की उपासना	१४०
प्रथम खण्ड—(२८वां आवरण)	१४१-१६३
समष्टि गन्ध तन्मात्रा मण्डल पाँचों रूपों में ब्रह्म दर्शन—	१४१
१ गन्ध तन्मात्रा के स्थूल रूप में	१४१
चित्र संख्या ७—तन्मात्राओं का रंग, रूप, आकार	१४२-१४३
स्वर्ग लोक में दिव्य सुखों का उपभोग	१४३
जैन धर्म की मुक्ति	१४४
बौद्धों की मुक्ति	१४५
ईसाइयों का स्वर्ग	१४५
मुसलमानों का स्वर्ग	१४६
दिव्य लोक	१४६
कैवल्य	१४७
इस लोक में सर्वोत्कृष्ट आनन्द	१४७
२. गन्ध तन्मात्रा के स्वरूप में—	१४९
३. गन्ध तन्मात्रा के सूक्ष्म रूप में—	१५०
४. गन्ध तन्मात्रा का अन्वय रूप में—	१५२
५. गन्ध तन्मात्रा के अर्थवत्त्व रूप में—	१५३
मोक्ष से पूर्व क्या कर्म नष्ट हो जाते हैं ?	१५६
आत्मा जीवात्मा	१५७
कर्म फल का विभाग	१५९
प्रलय काल में भी प्रकृति में क्रिया	१६१
द्वितीय खण्ड—(२७वां आवरण)	१६४-१७२
समष्टि रस तन्मात्रा मण्डल, के पाँचों रूपों में ब्रह्म दर्शन	१६४
१ रस तन्मात्रा के स्थूल रूप में—	१६४
२. रस तन्मात्रा के स्वरूप में—	१६५
३. रस तन्मात्रा के सूक्ष्म रूप में—	१६७
४. रस तन्मात्रा के अन्वय रूप में—	१६९

विषय,	पृष्ठ
५. रस तन्मात्रा के अर्थवत्त्व रूप मे—	१७०
तृतीय खण्ड—(२६वां आवरण)	१७३-१८६
रूप तन्मात्रा मण्डल, पाँचो रूपो मे ब्रह्मदर्शन ।	१७३-१८६
१ रूप तन्मात्रा के स्थूल रूप मे—	१७३
तन्मात्रा का लोक कहाँ है ?	१७३
योगी का कर्त्तव्य	१७७
ब्रह्म दर्शन	१७८
२. रूप तन्मात्रा के स्वरूप मे	१७८
योगी का सूक्ष्म जगत् मे प्रवेश	१८०
३ रूप तन्मात्रा के सूक्ष्म रूप मे—	१८१
४ रूप तन्मात्रा के अन्वय रूप मे—	१८४
५ रूप तन्मात्रा के अर्थवत्त्व रूप मे—	१८४
ध्यान काल मे मित्रों के दर्शन	१८५
चतुर्थ खण्ड—(२५वां आवरण)	१८७-१९५
स्पर्श तन्मात्रा मण्डल, पाँचो रूपो मे ब्रह्म-विज्ञान	१८७-१९५
१ स्पर्श तन्मात्रा के स्थूल रूप मे—	१८७
स्थूल भूत और सूक्ष्म भूत मे अन्तर	१८८
२. स्पर्श तन्मात्रा के स्वरूप मे—	१८९
३ स्पर्श तन्मात्रा के सूक्ष्म रूप मे—	१९१
४ स्पर्श तन्मात्रा के अन्वय रूप मे—	१९२
५ स्पर्श तन्मात्रा के अर्थवत्त्व रूप मे—	१९३
प्रत्यक्षवादियो की भ्रान्ति	१९४
पञ्चम खण्ड—(२४वां आवरण)	१९६-२१०
समष्टि शब्द तन्मात्रा मण्डल, पाँचो रूपो म ब्रह्मदर्शन	१९६-२१०
१. शब्द तन्मात्रा के स्थूल रूप मे—	१९६
एक योगी का चमत्कार	१९८
आकाश सूक्ष्म भूत की अनित्यता	१९९
वैशेषिक के षट् पदार्थ	२००
शब्द की अनित्यता	२०१
आज के विज्ञान वादी	२०१
योगी की हेय उदासीनता	२०२
२. शब्द तन्मात्रा के स्वरूप मे—	२०३
३. शब्द तन्मात्रा के सूक्ष्म रूप मे—	२०३
४ शब्द तन्मात्रा के अन्वय रूप मे—	२०४
५ शब्द तन्मात्रा के अर्थवत्त्व रूप मे—	२०५
सूक्ष्म जगत् का निर्माण	२०६
सूक्ष्म शरीरो का निर्माण	२०८

विषय	पृष्ठ
स्वर्ग का स्वरूप	२०६
षष्ट खण्ड—(२३वां आवरण)	२११-२२१
राजस-अहंकारिक सृष्टि—	२११-२२१
अन्ववतरणिका	२१०-२११
समष्टि राजस अहंकारिक सृष्टि, पांच कर्मेन्द्रियो मे ब्रह्मोपासना	२११
चित्र संख्या ८ समष्टि रजः अहंकार से व्यष्टि कर्मेन्द्रियों की उत्पन्न होती हुई अवस्था	२११
समष्टि कर्मेन्द्रियो मे तीनो समष्टि अहंकारो का भाग	२१२
मण्डलो का प्रयोजन	२१३
समष्टि अहंकारिक गुदेन्द्रिय मण्डल, पांचो रूपो मे ब्रह्मानुभूति	२१४
१. समष्टि गुदेन्द्रिय मण्डल के स्थूल रूप मे—	२१४
२. समष्टि गुदेन्द्रिय मण्डल के स्वरूप मे—	२१६
३. समष्टि गुदेन्द्रिय मण्डल के सूक्ष्म रूप मे—	२१०
४. समष्टि गुदेन्द्रिय मण्डल के अन्वय रूप मे—	२?८
५. समष्टि गुदेन्द्रिय मण्डल के अर्थवत्त्व रूप मे—	२१६
सप्तम खण्ड—(२२वाँ आवरण)	२२२-२३५
समष्टि अहंकारिक उपस्थेन्द्रिय, पांचो रूपो मे ब्रह्मोपासना	२२२-२३५
१. समष्टि उपस्थेन्द्रिय मण्डल के स्थूल रूप मे—	२२३
२. समष्टि उपस्थेन्द्रिय मण्डल के स्वरूप मे—	२२६
३. समष्टि उपस्थेन्द्रिय मण्डल के सूक्ष्म रूप मे—	२२८
४. समष्टि उपस्थेन्द्रिय मण्डल के अन्वय रूप मे—	२३०
५. समष्टि उपस्थेन्द्रिय मण्डल के अर्थवत्त्व रूप मे—	२३१
उपस्थ का मुख्य धर्म	२३३
अष्टम खण्ड—(२१वाँ आवरण)	२३६-२४६
समष्टि अहंकारिक पादेन्द्रिय मण्डल के पाचो रूपो मे ब्रह्मानुभव	२३६-२६४
१. समष्टि पादेन्द्रिय मण्डल के स्थूल रूप मे—	२३६
२. समष्टि पादेन्द्रिय मण्डल के स्वरूप में—	२३६
३. समष्टि पादेन्द्रिय मण्डल के सूक्ष्म रूप मे—	२४०
४. समष्टि पादेन्द्रिय मण्डल के अन्वय रूप में—	२४१
पादेन्द्रिय विजय की एक घटना	२४२
५. समष्टि पादेन्द्रिय मण्डल के अर्थवत्त्व रूप में—	२४३
नवम-खण्ड (२०वा आवरण)	२४७-२५७
समष्टि राजस अहंकारिक हस्तेन्द्रिय मण्डल के पांचों रूपो मे ब्रह्म-प्रत्यक्ष	२४७-२५७
१. समष्टि हस्तेन्द्रिय मण्डल के स्थूल रूप मे—	२४७
२. समष्टि हस्तेन्द्रिय मण्डल के स्वरूप मे—	२५०
३ समष्टि हस्तेन्द्रिय मण्डल के सूक्ष्म रूप मे—	२५१
४. समष्टि हस्तेन्द्रिय मण्डल के अन्वय रूप मे—	२५३
५. समष्टि हस्तेन्द्रिय मण्डल के अर्थवत्त्व मे—	२५४

विषय	पृष्ठ
दशम खण्ड (१६वा आवरण)	२५८-२७१
समष्टि राजस अहकारिक वाग्इन्द्रिय मण्डल, के पाचो रूपो मे ब्रह्मानुभूति	२५८-२७१
१. समष्टि वाग् इन्द्रिय मण्डल के स्थल रूप मे—	२५८
२. समष्टि वाग् इन्द्रिय मण्डल के स्वरूप मे—	२६२
३ समष्टि वाग इन्द्रिय मण्डल के सूक्ष्म रूप मे—	२६५
४. समष्टि वाग् इन्द्रिय मण्डल के अन्वय रूप मे—	३६६
५. समष्टि वाग् इन्द्रिय मण्डल के अर्थवत्त्व रूप मे		२६७
एकादश-खण्ड (१८वां आवरण)	२७२-२८५
सात्त्वक अहकारिक सृष्टि—	२७२
अन्ववतरणिका	२७२
पाचो ज्ञानेन्द्रियो के पाञ्च मण्डल, (पाचों रूपो मे ब्रह्म-विज्ञान)	२७२
समष्टि अहकारो का भाग (पाचो ज्ञानेन्द्रियो मे—	२७३
समष्टि घ्राणेन्द्रिय मण्डल—पाच रूपो मे ब्रह्मविज्ञान	२७४
चित्र स०६—समष्टि सत्त्व अहकार से ज्ञानेन्त्रियो कि उत्पत्ति	२७४-२७५
१ समष्टि घ्राणेन्द्रिय के स्थल रूप मे—	२७५
२ समष्टि घ्राणेन्द्रिय के स्वरूप मे—	२७८
३. समष्टि घ्राणेन्द्रिय के सूक्ष्म रूप मे—	२७६
४ समष्टि घ्राणेन्द्रिय के अन्वय रूप मे—	२८१
५ समष्टि घ्राणेन्द्रिय के अर्थवत्त्व रूप मे—	२८२
द्वादश-खण्ड (१७वा आवरण)	२८६ २९६
समष्टि रसना इन्द्रिय मण्डल पाँच रूपो मे ब्रह्म-विज्ञान	२८६-२९६
१ समष्टि रसना इन्द्रिय मण्डल के स्थूल रूप मे—	२८७
२. समष्टि रसना इन्द्रिय मण्डल के स्वरूप मे—	२९०
३. समष्टि रसना इन्द्रिय मण्डल के सूक्ष्म रूप मे—	२९२
४. समष्टि रसना इन्द्रिय मण्डल के अन्वय रूप मे—	२९४
५ समष्टि रसना इन्द्रिय मण्डल के अर्थवत्त्व रूप मे—	२९४
रसना पर विजय के लिये घोर पत	२९४
त्रयोदश खण्ड (१६वा आवरण)	२९७-३०७
समष्टि नेत्र इन्द्रिय मण्डल, पांचो रूपो मे ब्रह्म-विज्ञान	२९७-३०७
१. समष्टि नेत्र इन्द्रिय मण्डल के स्थूल रूप मे—	२९८
२. समष्टि नेत्र इन्द्रिय मण्डल के स्वरूप मे—	३०२
३ समष्टि नेत्र इन्द्रिय मण्डल के सूक्ष्म रूप मे—	३०४
४. समष्टि नेत्र इन्द्रिय मण्डल के अन्वय मे—	३०५
५. समष्टि नेत्र इन्द्रिय मण्डल के अर्थवत्त्व रूप मे—	३०६
चतुर्दश. खण्ड. (१५वाँ आवण)	३०८-३१३

विषय	पृष्ठ
१. समष्टि स्पर्श इन्द्रिय मण्डलम् के स्थूल रूप मे—	३०८
२ समष्टि स्पर्श इन्द्रिय मण्डलम् के स्वरूप में—	३१०
३. समष्टि स्पर्श इन्द्रिय मण्डलम् के सूक्ष्म रूप मे—	३१०
४. समष्टि स्पर्श इन्द्रिय मण्डलम् के अन्वय रूप मे—	३११
५. समष्टि स्पर्श इन्द्रिय मण्डलम् के अर्थवत्त्व रूप मे—	३१२
पञ्च दश खण्ड (१४वा आवरण)	३१४-३२०
समष्टि श्रोत्र इन्द्रिय मण्डल—पांचो रूपो में ब्रह्म-विज्ञान	३१४-३२०
१. समष्टि श्रोत्र इन्द्रिय मण्डल के स्थूल रूप मे—	३१५
२. समष्टि श्रोत्र इन्द्रिय मण्डल के स्वरूप मे—	३१६
३. समष्टि श्रोत्र इन्द्रिय मण्डल के सूक्ष्म रूप मे—	३१७
४ समष्टि श्रोत्र इन्द्रिय मण्डल के अन्वय रूप मे—	३१७
५ समष्टि श्रोत्र इन्द्रिय मण्डल के अर्थवत्त्व रूप मे—	३१८
षोडश खण्ड (१३वा आवरण)	३२१-३३४
सात्त्विक राजसाहैकारिक सृष्टि	३२१-३३४
अव्यक्तरणिका	३२१
समष्टि मनोमण्डल—पांचो रूपो मे ब्रह्म-विज्ञान	३२१-३३४
१ समष्टि मनोमण्डल के स्थूल रूप मे—	३२२
मन की आवश्यकता	३२२
चित्र संख्या १० समष्टि सत्त्व रज अहंकार के मनो की उत्पत्ति	३२२-३२३
२. समष्टि मनोमण्डल के स्वरूप मे—	३२४
३. समष्टि मनोमण्डल के सूक्ष्म रूप मे—	३२५
मन की एकाग्रता	३२५
४. समष्टि मनोमण्डल के अन्वय रूप मे—	३२७
५. समष्टि मनोमण्डल के अर्थवत्त्व रूप मे—	३२८
योगियों का प्रभाव	३२६
विपरीत क्रम क्यो ?	३३०
अहंकारिक सृष्टि	३३१-३३४
व्यष्टि अहंकार	३३१-३३४
चित्र संख्या ११ समष्टि महत् तम से तीनो अहंकारो की उत्पत्ति	३३१
तृतीय अध्याय	३३५-३६६
समष्टि महत् त्रिगुणात्मक सृष्टि	३३५-३६६
प्रथम खण्ड (१२वां आवरण)	३३६-३३६
समष्टि तामस अहंकार मण्डल—पांचो रूपों में ब्रह्म-विज्ञान	३३६-३३६
१. समष्टि तामस अहंकार के स्थूल रूप मे—	३३६
तम अहंकार के गुण	३३६
२. समष्टि तामस अहंकार के स्वरूप मे—	३३७
३. समष्टि तामस अहंकार के सूक्ष्म रूप मे—	३३७

विषय	पृष्ठ
४. समष्टि तामस अहकार के अन्वय रूप मे—	३३८
५ समष्टि तामस अहकार के अर्थवत्त्व रूप मे—	३३९
द्वितीय खण्ड—(११वां आवरण)	३४०-३४३
समष्टि राजस अहकार मण्डल—पाँचो रूपो मे ब्रह्म-विज्ञान	३४०-३४३
१. समष्टि राजस अहकार के स्थूल रूप मे—	३४०
रजोगुण अहकार के धर्म	३४०
२. समष्टि राजस अहकार के स्वरूप मे—	३४१
३. समष्टि राजस अहकार के सूक्ष्म रूप मे—	३४१
४. समष्टि राजस अहकार के अन्वय रूप म—	३४२
५. समष्टि राजस अहकार के अर्थवत्त्व रूप मे—	३४२
तृतीय खण्ड—(१०वा आवरण)	३४४-३४६
समष्टि सात्विक अहकार मण्डल—पाँचो रूपो मे ब्रह्म-विज्ञान	३४४-३४६
१. समष्टि सात्विक अहकार मण्डल के स्थूल रूप मे—	३४४
२. समष्टि सात्विक अहकार मण्डल के स्वरूप मे—	३४५
३ समष्टि सात्विक अहकार मण्डल के सूक्ष्म रूप मे—	३४५
४. समष्टि सात्विक अहकार मण्डल के अन्वय रूप मे—	३४५
५. समष्टि सात्विक अहकार मण्डल के अर्थवत्त्व रूप मे—	३४६
चतुर्थ खण्ड—(९वा आवरण)	३४७-३५७
समष्टि बुद्धि मण्डल—पाँचों रूपों मे ब्रह्म-विज्ञान	३४७-३५७
१. समष्टि बुद्धि मण्डल के स्थूल रूप मे—	३४७
चित्र संख्या १२—समष्टि बुद्धि से व्यष्टि बुद्धियो की उत्पत्ति	३४७
सम्प्रज्ञात समाधियो का फल	३४८
ज्ञान गुण विसत्रा	३५१
बुद्धि और चित्त मे भेद	३५२
२. समष्टि बुद्धि मण्डल के स्वरूप मे—	३५४
३. समष्टि बुद्धि मण्डल के सूक्ष्म रूप मे—	३५५
४. समष्टि बुद्धि मण्डल के अन्वय रूप मे—	३५५
५. समष्टि बुद्धि मण्डल के अर्थवत्त्व रूप मे—	३५६
पञ्चम खण्ड—(८वां आवरण)	३५८-३६६
समष्टि चित्त मण्डल—पाँचों रूपो मे ब्रह्म-विज्ञान	३५८-३६६
१ समष्टि चित्त के स्थूल रूप मे—	३५८
चित्र सख्या १३—समष्टि चत्त से व्यष्टि चित्तो की उत्पत्ति	३५८-३५९
आत्मा भी ज्ञान स्वरूप है।	३६०
२ समष्टि चित्त मण्डल के स्वरूप मे—	३६४
३. समष्टि चित्त मण्डल के सूक्ष्म रूप मे—	३६५
४. समष्टि चित्त मण्डल के अन्वय रूप में—	३६६

विषय	पृष्ठ
५ समष्टि चित्त मण्डल के अर्थवत्त्व रूप मे—	३६७
चतुर्थाध्यायः	३७०-४५६
प्रकृति की सृष्टि	३७०-४५६
प्रथमः खण्ड (७वां आवरण)	३७१-३८३
समष्टि महत् तमस् मण्डल—पांचो रूपो मे ब्रह्मज्ञान	३७१-३८२
१ समष्टि महत् तमस् मण्डल के स्थूल रूप मे—	३७१
चित्र नं० १४—प्रकृति से उत्पन्न होते हुए सत्व रजस् तमस् पदार्थ	३७०-३७१
तीनो गुण द्रव्य है।	३७२
२. समष्टि महत् तमस् मण्डल के स्वरूप मे—	३७३
३. समष्टि महत् तमस् मण्डल के सूक्ष्म रूप मे—	३७४
४. समष्टि महत् तमस् मण्डल के अन्वय रूप मे—	३७६
५. समष्टि महत् तमस् मण्डल के अर्थवत्त्व रूप मे—	३७६
सब भोगो का मूलाधार तमस्	३७६
मोह की महिमा	३७८
तमोगुण के अन्धकार मे ब्रह्म	३७९
द्वितीय. खण्ड (६वां आवरण)	३८३-३९३
समष्टि महत् रजोगुण—पांचो रूपो मे ब्रह्म-विज्ञान	३८३-३९३
१. समष्टि महत् रजोगुण के स्थूल रूप मे—	३८३
तीनो गुणो के विशेष धर्म	३८५
२. समष्टि महत् रजोगुण के स्वरूप मे—	३८६
सृष्टि के निर्माण मे ईश्वर निमित्त	३८७
३. समष्टि महत् रजोगुण के सूक्ष्म रूप में—	३८९
ईश्वर और आत्मा मे कर्तृत्व का आरोप—	३९०
४. समष्टि महत् रजोगुण के अन्वय रूप मे—	३९१
५. समष्टि महत् रजोगुण के अर्थवत्त्व रूप मे—	३९१
ब्रह्म की उपासना और ज्ञान	३९२
तृतीयः खण्ड (५वां आवरण)	३९४-४१८
समष्टि महत्तत्त्व मण्डल—पांचो रूपो मे ब्रह्म-विज्ञान	३९४-४१८
१. समष्टि महत्तत्त्व मण्डल के स्थूल रूप मे—	३९४
मोक्ष के चार द्वारपाल	३९६
सुख और आनन्द का भेद	३९८
आनन्द चित्त मे ही है।	३९९
वैराग्य का महत्त्व	४००
२. समष्टि महत्तत्त्व मण्ल के स्वरूप मे—	४०३
भ्रान्ति दर्शन	४०३
योगी का धर्म	४०५

विषय	पृष्ठ
भोगरहित अन्तःकरण में ब्रह्म-दर्शन	४०६
३. समष्टि महत्सत्त्व मण्डल के सूक्ष्म रूप में—	४०६
ब्रह्म प्रकृति का शाश्वत सम्बन्ध	४१०
४. समष्टि महत्सत्त्व मण्डल के अन्वय रूप में—	४१०
५. समष्टि महत्सत्त्व मण्डल के अर्थवत्त्व रूप में—	४१०
कोई भी सर्वथा सुखी नहीं	४१२
भक्त में आठ प्रकार के सात्त्विक भाव	४१३
शुष्क वैराग्य	४१३
चतुर्थ खण्ड (चतुर्थनावरणम्)	४१६-३२७
समष्टि काल मण्डलम्—पाँचों रूपों में ब्रह्म-विज्ञान	४१६-४२७
१. समष्टि काल मण्डल के स्थूल रूप में—	४१६
काल के गुण	४१६
काल के द्वारा आयु का बोध	४२०
श्रेयः मार्ग	४२१
२. समष्टि काल मण्डल के स्वरूप में—	४२२
३ समष्टि काल मण्डल के सूक्ष्म रूप में—	४२३
काल और मृत्यु में भेद	४२३
काल द्वारा सूर्य की गति की माप	४२४
४. समष्टि काल मण्डल के अन्वय रूप में—	४२४
५. समष्टि काल मण्डल के अर्थवत्त्व रूप में—	४२४
पञ्चम. खण्ड (तृतीयमावरणम्)—पाँचों रूपों में ब्रह्म-विज्ञान	४२८-४३३
समष्टि दिङ् मण्डलम् पाँचों रूपों में ब्रह्म-विज्ञान	४२८-४३३
१ समष्टि दिङ् मण्डल के स्थूल रूप में—	४२८
आकाश के दो भेद	४२६
२ समष्टि दिङ् मण्डल के स्वरूप में—	४३०
३. समष्टि दिङ् मण्डल के सूक्ष्म रूप में—	४३१
४ समष्टि दिङ् मण्डल के अन्वय रूप में —	४३२
५. समष्टि दिङ् मण्डल के अर्थवत्त्व रूप में—	४३२
षष्ठ. खण्ड. (द्वितीयावरणम्)	४३४-४४४
समष्टि महाकाश मण्डलम्—पाँचों रूपों में ब्रह्म-विज्ञान	४३४-४४४
१. समष्टि महाकाश मण्डल के स्थूल रूप में—	४३४
महाकाश की उत्पत्ति	४३४
प्रलयकाल में ज्ञान क्रिया जागरूक	४३५
क्रिया का अन्य नाम	४३७
समष्टि महाकाश मण्डल के स्वरूप में—	४३८

विषय	पृष्ठ
३ समष्टि महाकाश मण्डल के सूक्ष्म रूप मे—	४३८
४ समष्टि महाकाश मण्डल के अन्वय रूप मे—	४३८
५ समष्टि महाकाश मण्डल के अर्थवत्व रूप मे	४३८
चित्र सख्या १५—सर्वप्रथम प्रकृति से महाकाश दिशा, काल की उत्पत्ति	४३८-४३९
क्या ईश्वर मे ज्ञान कर्म हैं।	४४०
सप्तम खण्ड (चरमावरणम्)	४४१-४५६
समष्टि कारण प्रकृति और उसके रूपो मे ब्रह्म विज्ञान	४४५-४५.
१ समष्टि कारण प्रकृति के स्थूल रूप मे	४४५
जीवो के कर्मफल की व्यवस्था	४४५
चित्र सख्या १६—समष्टि प्रकृति से ज्ञान और क्रिया की उत्पत्ति	४४४-४४५
ब्रह्म का महत्त्व	४४७
निराकार ब्रह्म का दर्शन	४४८
२. समष्टि कारण प्रकृति के स्वरूप मे	४४९
प्रकृति की साम्यावस्था का प्रत्यक्ष	४५०
चित्र सख्या १७—प्रकृति की साम्यावस्था मे ब्रह्म के सयोग से सूक्ष्म क्रिया	४५०-४५१
५. समष्टि कारण प्रकृति के अर्थवत्त्व रूप मे	४५२
मुक्ति के लिए परमवैराग्य	४५३
चित्र सख्या १८—ब्रह्म से समष्टि पृथिवी महाभूत पर्यन्त ३४ पदार्थों का स्वरूप	४५६ ४५७
पञ्चमाध्यायः	
मोक्ष अथवा कैवल्य	४५७ ५१६
आचार्यों की मान्यतायें	४५८
ब्रह्मलोक मे चार प्रकार की मुक्ति	४५९
सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य, सायुज्य	४५९
कैवल्य का स्वरूप	४६१
हमारी मान्यता	४६२
कैवल्य मे ब्रह्मानन्द का अभाव	४६२
मुक्ति की अनित्यता	४६४
मोक्ष का स्वरूप	४६४
मोक्ष मे आनन्द का अभाव	४६६
मोक्ष से सूक्ष्म शरीर का अभाव	४६७
जीवात्मा मे ब्रह्म व्यापक नही।	४६८
आत्मा और प्रकृति की सूक्ष्मता मे अन्तर	४६९
प्रकृति अनादि नित्य है।	४७३
सर्वव्यापक चेतन तत्व ब्रह्म	४७४
ब्रह्मलोक मे आनन्द की प्राप्ति	४७८
स्वर्ग मे आनन्द का उपभोग	४७९

विषय	पृष्ठ
स्वर्गलोक मे ईश्वर का सिंहासन	४८०
सातवे आसमान पर जन्नत	४८३
सिद्ध शिला पर मुक्त आत्मायें	४८६
ब्रह्म मे विशिष्टाद्वैत का अभाव	४८६
ब्रह्म मे परिणाम अभाव	४८६
ब्रह्म मे अभिन्न निमोत्तोपादान कारण का अभाव	४९२
आत्मा, ब्रह्म, प्रकृति का वास्तविक स्वरूप	४९३
मुक्ति मे सांकल्पिक शरीर का अभाव	४९९
प्रकृति और ब्रह्म की सूक्ष्मता मे अन्तर	४९९
एक आत्मवाद मे अनेक दोष	५०२
आत्मा के नानात्व मे श्रुति प्रमाण।	५०५
मोक्ष मे आत्मा मे गति का अभाव	५०६
मोक्ष से पुनरावृत्ति	५०६
बिना भोग सञ्चित कर्मो का अभाव नही	५११
उपसहार	५१४-५१६
शुद्धि पत्र	५१७

भूमिका

हमने आत्मविज्ञान ग्रन्थ के अन्त में संकेत किया था कि अवसर मिलने पर 'ब्रह्म-विज्ञान' को भी लिपि बद्ध किया जायेगा क्योंकि आत्म-विज्ञान की सार्थकता ब्रह्म-विज्ञान में ही है। बिना ब्रह्म-विज्ञान के आत्मविज्ञान अधूरा सा है।

जब 'आत्म-विज्ञान' प्रकाशित होकर जनता के पास पहुँचा तब अनेक सज्जनों के पत्र प्राप्त हुए, और मौखिक भी अनेक महानुभावों ने आग्रह किया कि योग का विषय अत्यन्त सूक्ष्म और गहन है। उसमें भी ब्रह्म-विज्ञान तो अत्यन्त गुह्य रहा है। उपनिषद् जैसे सर्वश्रेष्ठ अध्यात्म-ग्रन्थ ब्रह्म-ज्ञान की समस्या को सुगम न बना सके। महर्षि पतञ्जलि ने अपनी अनन्त अनुकम्पा से योग जैसा महान् विज्ञान मानव के लिये प्रदान किया, पर परम्परा के लुप्त हो जाने के कारण वह भी आज के मानव की बुद्धि में समाता नहीं था। आप ने कृपा कर उसके क्रियात्मकरूप को 'आत्म-विज्ञान' तथा 'बहिरंगयोग' में सुगमता से खोलकर विषद-रूप में रख दिया। उससे आत्म-जिज्ञासुओं को आज विलुप्त मार्ग हाथ लगा है अब आप कृपा कर 'ब्रह्म विज्ञान' को लिपि बद्ध करने की अनुकम्पा करें, जिससे हम अकिंचन जन भी उस परमकारुणिक परब्रह्म की झलक पा सकें।'

इसी कारण से 'ब्रह्म-विज्ञान' जैसा महान ग्रन्थ, श्री बद्रीनाथ के उत्तुंग हिमाच्छन्न प्रदेश में बैठकर लिखने में प्रवृत होना पड़ा। तीन मास में इस की पाण्डुलिपि लिखकर तैयार हो गयी। सर्वसाधारण भी समझ सकें इस बात को ध्यान में रखकर इस ग्रन्थ की भाषा को बोल चाल की भाषा रखने का प्रयत्न किया गया है।'

व्यष्टि पदार्थों का सम्बन्ध मुख्य रूप से जीवात्मा के साथ है। उनका हमने विस्तार पूर्वक वर्णन 'आत्म-विज्ञान' ग्रन्थ में कर दिया है। समष्टि-पदार्थों का सम्बन्ध विशेष रूप से ब्रह्म के साथ है। इनका उल्लेख इस ब्रह्म-विज्ञान ग्रन्थ में किया है। समष्टि जगत् अनन्त है। मूलत. इस समष्टि जगत् में ३५ पदार्थ मुक्ति का हेतु हैं। इन सबका साक्षात् होने के उपरान्त ही अपवर्ग प्राप्त होता है। वे पदार्थ हैं—

१ ब्रह्म
२. जीवात्मा
३. समष्टि प्रकृति
४. समष्टि महाकाश
५. समष्टि दिशा
६ समष्टि काल
७ समष्टि महत् सत्व
८. समष्टि महत् रज
९. समष्टि महत् तम
१० समष्टि चित्त
११ समष्टि बुद्धि
१२. समष्टि सत्व अहंकार
१३. समष्टि रज अहंकार
१४. समष्टि तम अहंकार
१५ समष्टि मन
१६. समष्टि कर्णेन्द्रिय
१७ समष्टि स्पर्शेन्द्रिय
१८. समष्टि नेत्रेन्द्रिय
१९ समष्टि रसनेन्द्रिय
२०. समष्टि घ्राणेन्द्रिय
२१. समष्टि वागिन्द्रिय
२२. समष्टि हस्तेन्द्रिय
२३. समष्टि पादेन्द्रिय
२४. समष्टि उपस्थेन्द्रिय
२५. समष्टि गुदेन्द्रिय
२६. समष्टि शब्द तन्मात्रा
२७. समष्टि स्पर्श तन्मात्रा
२८. समष्टि रूप तन्मात्रा
२९. समष्टि रस तन्मात्रा
३०. समष्टि गन्ध तन्मात्रा
३१. समष्टि आकाश भूत
३२. समष्टि वायु महाभूत
३३. समष्टि अग्नि महाभूत
३४. समष्टि जल महाभूत
३५. समष्टि पृथिवी महाभूत

ब्रह्म और आत्मा को छोडकर शेष ३२ पदार्थ उपादान कारण प्रकृति से उत्पन्न हो हैं। इनकी उत्पत्ति मे निमित्त कारण ब्रह्म हैं। इन सब के साथ ब्रह्म का कैसे सम्बन्ध है ? ब्र इन पदार्थो का कैसे उत्पन्न करता है ? इन पदार्थों का विज्ञान और इनमे ब्रह्म-विज्ञान किस प्रक से होता है ? यह सब विस्तार पूर्वक वर्णन किया है।

इन सर्व समष्टि पदार्थों और इनकी कारण रूप प्रकृति एव ब्रह्म का साक्षात् कार हो पर जीवात्मा को जो मोक्ष प्राप्त होता है इसका भी उल्लेख किया है। जगत् का कारण प्रकृ और इसके सम्पूर्ण कार्य का स्वरूप, एव आत्मा और ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप को सही रूप समझाया है। जीवात्मा की किस प्रकार और किससे मुक्ति होती है ? मुक्ति मे इसकी कहाँ औ किस प्रकार की स्थिति होती है ? स्वर्ग, मोक्ष और कैवल्य मे इसको क्या प्राप्त होता है ? सब बातो का अत्यन्त सुन्दर और सरल ढग से शका समाधान पूर्वक विस्तार से वर्णन किया ग है।

यह ब्रह्म विज्ञान पाठको और साधको के लिये अत्यन्त लाभदायक और महान् कल्य कारी हो।

बद्रीनाथ हिमालय
अलकनन्दा गगा तट
भाद्र कृष्ण जन्माष्टमी विक्रम स० २०१९ सन् १९६२

स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्व

ओ३म्

ईश्वर-वन्दना

यो भूतञ्च भव्यञ्च सर्वं यश्चाधितिष्ठति ।
स्वर्यस्य च केवलं, तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ १ ॥

अथर्ववेद काण्ड १० । सू० ८ । मं० १

सर्व-व्यापक ब्रह्म तीनों कालों—भूत, वर्तमान तथा भविष्यत् में वर्तमान है। भगवान् के आश्रय सब जड़ चेतन ठहरते हैं। सब का वह ही अधिष्ठान है। वह तीनों कालों में सदा नित्य रूप से विद्यमान रहता है। वह केवल सुख स्वरूप है। दुःख क्लेश कभी उसके पास नहीं आते हैं। उस सबसे महान् ब्रह्म के लिए हम नमस्कार करते हैं।

गुरुजन-वन्दना

उन परम-पूज्य सत् गुरु-देवों को भी शतशः विनम्र प्रणाम करते हैं जिनकी अपार दया से हमें यह दिव्य आलोक प्राप्त हुआ है।

गुरु ज्ञानं ददात्येव ज्ञानं च हरि-भक्तिदम्,
हरि-भक्ति प्रदाताय, को बन्धुस्ततः परम् ।
अज्ञान-तिमिराच्छन्नो ज्ञान दीपं यतोलभेत,
लब्ध्वा च परं निर्मलं पश्येत् को बन्धुस्ततः परः ॥

संसार में प्रत्यक्ष देखने में आता है, कि गुरुजनों द्वारा ही ज्ञान प्राप्त होता है। बिना गुरु-जनों से ज्ञान प्राप्त किए मानव अन्धकार में ठोकरें खाता रहता है। ज्ञानों में भी जो गुरु अध्यात्म विज्ञान प्रदान कर आत्म विज्ञान और ब्रह्म विज्ञान देता है उस महान् आत्मा का विशेष उपकार है, कि जिसके ज्ञान के द्वारा सब पापों को हरण करने वाले हरि की भक्ति प्राप्त होती है। इस प्रकार परमात्मा की भक्ति प्रदान करने वाले गुरु से बढ़कर और कौन संसार में परम-हितकारी बन्धु हो सकता है।

जिस परम पूज्य गुरुदेव के प्रदान किये हुए ज्ञान के द्वारा अन्तःकरण का अन्धकार दूर होकर ज्ञान रूपी दीपक प्राप्त हुआ है, जिस विज्ञान रूपी दीपक को प्राप्त करके आत्मा और ब्रह्म को देखा है, साक्षात्कार किया है, उन गुरुदेव से बढ़कर संसार में और कौन परम हितकारी बन्धु हो सकता है।

विषय-निदर्शन

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं, तं देवतानां परमं च दैवतम् ।
पतिं पतीनां परमं परस्तात्, विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ॥

श्वेताश्वतरो० अ० ६ । मं० ७ ॥

वह भगवान् सब ऐश्वर्यवानों से परम, महान ऐश्वर्यवान् हैं। वह सब देवताओं का भी देवता है। वह सबसे बड़ा महान् परम देव है। वह ईश्वर स्वामियों का स्वामी है, पति है। वह पर से पर है। उससे बड़ा और महान् कोई नहीं है। उस आराध्य देव को हम जानें, और प्राप्त करें। वह देव ही सब जगत् में समस्त ब्रह्माण्ड में स्तुति करने योग्य है। उसकी ही भक्ति उसकी ही उपासना करनी चाहिए।

ब्रह्म के विज्ञान का सृष्टि के साथ विशेष रूप से सम्बन्ध है। अतः पहले सामान्य रूप से सृष्टि की उत्पत्ति और इसके पदार्थों का विज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

इति वन्दन-निदर्शनम्

ॐ

ब्रह्म-विज्ञान

प्रथम अध्याय

समष्टि महाभूतों की सृष्टि में ब्रह्म की उपासना और ज्ञान

प्रथम खण्ड

विषय-प्रवेश और विज्ञान-प्रक्रिया

ब्रह्म—ससार को प्रत्यक्ष रूप मे देखकर इसके कर्ता का अनुमान होता है। इस संसार का बनाने वाला कोई अवश्य है। अनुमान इसलिये कहा जाता है कि इस जगत् का कर्ता साधारणत: प्रत्यक्ष देखने मे नही आता है।

प्रश्न—वह निर्माण करने वाला चेतन है या जड ?

उत्तर—जड पदार्थ स्वय नियमपूर्वक क्रियाशील होकर बुद्धिपूर्वक और क्रम से यथार्थ समय मे कर्म करने मे असमर्थ है। दृष्टान्त के रूप मे भवन-निर्माण, खाद्यपदार्थों का निर्माण, भोक्तव्य पदार्थों—मोटर, रेल, वायुयान (हवाई जहाज), जलयान, राकेट, स्पुतनिक, मशीन इत्यादि—का निर्माण स्वय नही हो जाता है। इन सब पदार्थों का निर्माण करने वाला चेतन पुरुष प्रत्यक्ष रूप से देखने मे आता है। इसी प्रकार इस जगत् का निर्माण करने वाला कोई चेतन पुरुष-विशेष ही होना चाहिये। मनुष्य तो करोडो, और खर्बो मिलकर भी एक बडे से पर्वत का निर्माण नही कर सकते है, इसलिये समस्त लोक-लोकान्तरो और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का निर्माता कोई विशेष पुरुष या महान् चेतन शक्ति अवश्य है। उस विशेष चेतन शक्ति का हम इस ग्रन्थ मे ब्रह्म, ईश्वर, भगवान् या परमात्मा आदि नामो से उल्लेख करेंगे।

प्रकृति—जिस पदार्थ से यह ससार बना है वह (उपादान) कारण भी अवश्य कोई होना चाहिये। वह कारण भी हमारी इन आँखो से देखने मे नही आ रहा है। प्रत्यक्ष का विषय न होने से उसका भी हम अनुमान ही करते हैं। ऐसा कोई सर्वगुण सम्पन्न पदार्थ है और वह सूक्ष्म है, जिससे इस ससार के समस्त पदार्थ बनते हैं। बिना कारण के कोई कार्य नही हो सकता है। प्रत्यक्ष रूप से न दिखने वाला इस जगत् और इसके पदार्थों का मूलभूत कारण जो अत्यन्त सूक्ष्म है उसे ही हम उपादान कारण कहते हैं। इसी उपादान कारण का हम इस ग्रन्थ मे प्रकृति या माया के नाम से उल्लेख करेंगे।

सब पदार्थों के निर्माण-काल मे मुख्य रूप से एक उपादान कारण होता है और शेष इसके सहकारी कारण होते है। ऐसे ही निमित्त कारण भी एक मुख्य होता है, शेष उसके सहकारी कारण होते है।

इसे इस दृष्टान्त से समझिये—एक सुनार कानो के कुण्डल (टेटके, काटे) बनाता है। यहाँ सोना कुण्डलो का उपादान कारण है। अब सुनार उस सोने की डली को पहले अग्नि मे रखकर नरम करके पत्र या तार के रूप मे बनाता है। यहाँ उपादान कारण स्वर्ण का, अग्नि सहकारी कारण है।

सुनार निमित्त कारण है, और हथौडा अयरण आदि जिनसे कूट-कूट कर तार, पत्रे बनाए जाते है, सुनार के सहकारी कारण है।

इसी प्रकार इस ससार के प्रति प्रकृति उपादान कारण है, और ईश्वर निमित्त कारण है। ये दोनो मिलकर जगत् का निर्माण करते है।

जीव

प्रश्न—यह ससार इन दोनो ने किस लिये उत्पन्न किया है ?

उत्तर—जिनके लिये यह ससार बना है, वे सब प्रत्यक्ष रूप से वर्तमान है। वे हैं—देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, जन्तु आदि शरीरधारी। ये सब प्राणी ससार का भोग करते है, इनके लिये ही ससार बना है।

(शका) ये जो शरीर, मनुष्य एव अन्य प्राणियो के है क्या ये ही इस संसार और इसके पदार्थों का भोग करते है ?

(समाधान) जब हम किसी मुर्दे को देखते हैं तब उसमे चेतना दिखाई नही देती। इसीलिये उसे उठाकर अग्नि, जल या भूमि मे डाल देते हैं। वह शरीर कारणो मे लय हो जाता है। जीवित को कोई नही डालता। यदि जीवित के साथ ऐसा करे तो मृत्युदण्ड मिलता है। इससे यह सिद्ध है कि इस शरीर से भिन्न और ही कोई चेतन-शक्ति इस शरीर मे विद्यमान है, जो इस शरीर का सञ्चालन करते हुए भोग, कर्म और ज्ञान का हेतु बनी हुई है। वह चेतन-शक्ति प्रत्यक्ष का विषय न होकर अनुमान का ही विषय बनी है। यह चेतन-शक्ति शरीर से भिन्न शरीर की अभिमानी अत्यन्त सूक्ष्म है।

उस चेतन शक्ति का हम इस ग्रन्थ मे जीव, जीवात्मा, या आत्मा के नाम से उल्लेख करेंगे। यह जीव प्रत्येक शरीर मे भिन्न-भिन्न रूप से वर्त्तमान है, और सख्या की दृष्टि से वे अनन्त हैं।

इन्ही तीनो पदार्थों का इस ग्रन्थ मे साक्षात प्रत्यक्ष कराने का विधि-विधान पूर्ण रूप से लिखा जायेगा।

ब्रह्म के सम्बन्ध से चेतनवत्-सी बनी सृष्टि की स्व-रचना

संक्षेप में—यह दिखाई देने वाला संसार जब उत्पन्न नही हुआ था अपने सूक्ष्म रूप मे वर्त्तमान था, वह इसकी साम्य अवस्था थी। उस अवस्था का नाम ही प्रलय है।

उस सूक्ष्म रूप प्रकृति की अपेक्षा ब्रह्म सूक्ष्म है, अत. सर्वव्यापक है। उस प्रकृति मे भी व्यापक है, ओतप्रोत है। ब्रह्म के नित्य सम्बन्ध के कारण प्रकृति मे सूक्ष्म सामान्य क्रिया सदा वर्तमान रहती है, प्रलय काल मे भी और सृष्टि काल मे भी। यहाँ चेतन ब्रह्म का सम्बन्ध ही क्रिया मे हेतु है। ब्रह्म के ही सम्बन्ध से प्रकृति मे सूक्ष्म रूप से ज्ञान भी सदा रहता है, अर्थात् कब सृष्टि का सृजन होना है ? कितने काल मे होना है?

किस प्रकार होना है ? इन सब का द्योतक ज्ञान भी प्रकृति मे रहता है और स्थिति तो इस प्रकृति मे स्वभाव से जडता के साथ सदा वर्तमान रहती है। अतः यह प्रकृति स्थिति, क्रिया और ज्ञान को साथ में लेकर परिणाम-भाव को प्राप्त होने के लिये विशेष रूप से क्रियाशील हुई। इसने सर्वप्रथम अपने कार्य समष्टि आकाश को उत्पन्न किया, क्योंकि सर्वप्रथम जब इसने पलटा खाया तो इसे अवकाश चाहिये था। अतः सकोच भाव को प्राप्त होकर अपने अन्दर अवकाश या समष्टि महाकाश को उत्पन्न किया।

उस समय जिस ओर को सर्वप्रथम पलटा खाया उस ओर दिशा को उत्पन्न किया। उसी ओर का नाम दिशा हुआ। जितनी देर मे पलटा खाया उसी का नाम समय हुआ।

अब ये तीनों पदार्थ आगे उत्पन्न होने वाले सब कार्यात्मक पदार्थों के सहकारी हुए। महा-आकाश ने सब पदार्थों के निवास के लिये स्थान दिया। दिशा ने जिस ओर को पदार्थ ने गमनागमन करना था उसकी व्यवस्था की। जितनी देर में पदार्थ उत्पन्न हुआ इसकी व्यवस्था काल ने की।

इसके पश्चात् आकाश, दिशा, काल को साथ में लेकर प्रकृति पुनः परिणाम भाव को प्राप्त हुई तब सत्व उत्पन्न हुआ। इसके अनन्तर प्रकृति पुनः अपने इन चारों कार्यों को साथ मे लेकर परिणाम भाव को प्राप्त हुई और रजोगुण उत्पन्न हुआ। पुनः पूर्ववर्णित गुण और कार्यों के साथ मिलकर तमोगुण द्रव्य उत्पन्न हुआ। ये सब पदार्थ समष्टि रूप मे ही उत्पन्न हुए। यह समष्टि संसार की ही उत्पत्ति दिखाई जा रही है। अगले पदार्थ भी समष्टि रूप मे ही उत्पन्न होंगे। इन ६ पदार्थों और अपने गुणों सहित प्रकृति पुन:-पुन परिणाम भाव को प्राप्त हुई। क्रमशः समष्टि चित्त, समष्टि बुद्धि, समष्टि सात्विक अहकार, समष्टि राजस अहंकार, समष्टि तामस अहकार, समष्टि मन, समष्टि ज्ञानेन्द्रियाँ, समष्टि कर्मेन्द्रियाँ, समष्टि पञ्चतन्मात्रायें, और स्थूल भूत उत्पन्न हुए। यह सामान्य रूप से सूत्र रूप मे सृष्टि उत्पत्ति के ३२ पदार्थों का उत्पत्ति-क्रम बताया है।

समष्टि पदार्थों का स्वरूप

व्यष्टि—प्रत्येक प्राणी में जो चित्त, बुद्धि, अहंकार, मन, इन्द्रिय है, यह व्यष्टि कहलाते है, क्योंकि ये एक व्यक्ति से सम्बन्ध रखते हैं, और स्वय भी एक-एक होने से व्यष्टि है।

व्यष्टियों की जिनसे उत्पत्ति होती है, उनको समष्टि कहते हैं। व्यक्तिगत चित्त का उपादान कारण समष्टि चित्त है। समष्टि चित्त से ही व्यष्टि चित्त उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार सब पदार्थों में व्यष्टि समष्टि का भेद समझना चाहिये। जैसे व्यष्टि पञ्चभूतो के कारण समष्टि पञ्चभूत है। व्यष्टि तन्मात्राओं के समष्टि पञ्चतन्मात्रा कारण हैं। पञ्चभूतों के उदाहरण मे हमारी पृथ्वी एक व्यष्टि है, और सब लोक-लोकान्तर मिलकर एक समष्टि पृथ्वी होती है। इसी प्रकार अन्य भूतो को भी समझ ले।

पञ्च तन्मात्राओं के विषय मे भी इसी प्रकार समझना चाहिये। समष्टि तन्मात्रा व्यष्टि तन्मात्राओं का उपादान कारण है।

ये समष्टि पदार्थ उपादान कारण के रूप मे सदा आकाश मे विद्यमान रहते है। व्यष्टि पदार्थ सदा प्राणियों के उपभोग में आते रहते है। व्यष्टि निर्मित हो-होकर आते रहते हैं और कार्य सम्पादन कर समष्टि मे विलीन हो जाते है—व्यष्टियों का सम्बन्ध मुख्य रूप से जीवो के साथ होता है, और समष्टि का सम्बन्ध ब्रह्म के साथ होता है। ब्रह्म के सन्निधान रूप सम्बन्ध से समष्टि पदार्थ सदा व्यष्टियों को उत्पन्न करते रहते हैं। ये व्यष्टिये उत्पन्न होकर सदा जीवात्माओ को भोग और मोक्ष प्रदान करते रहते है। इन व्यष्टियो का सम्बन्ध सर्वदा प्राणियो के साथ ही बना रहता है। यही समष्टि और व्यष्टि पदार्थो मे अन्तर है। परन्तु ब्रह्म का सानिध्य अथवा ब्रह्म की व्यापकता अथवा निमितता ही इन समष्टि व्यष्टि पदार्थो को उत्पन्न करने में मुख्य हेतु होती है परन्तु इन समष्टि और व्यष्टि पदार्थो का उपादान कारण प्रकृति ही होती है।

समष्टि पदार्थों के रग, रूप और आकार चित्र संख्या १ में सामने देखे। चित्र सं० १ का विवरण—न० १ से लेकर न० ३४ तक सर्व पदार्थो का रंग रूप दिया गया है। समष्टि पृथ्वी महाभूत का १ नम्बर है। सर्व पदार्थो के साथ समष्टि शब्द का प्रयोग करे। न० २. जल ३. अग्नि ४. वायु ५ आकाश ६. गन्ध तन्मात्रा ७. रस तन्मात्रा ८. रूप तन्मात्रा ९. स्पर्श तन्मात्रा १० शब्द तन्मात्रा ११ गुदेन्द्रिय १२. उपस्थेन्द्रिय १३. पादेन्द्रिय १४. हस्तेन्द्रिय १५. वागिन्द्रिय १६. घ्राणेन्द्रिय १७. रसनेन्द्रिय १८. नेत्रेन्द्रिय १९. स्पर्शेन्द्रिय २०. कर्णेन्द्रिय २१. मन २२. तमः अहंकार २३. रजः अहंकार २४. सत्व अहंकार २५. बुद्धि २६. चित्त २७. महत् तमः २८. महत् रजः २९. महत सत्व ३०. काल ३१. दिशा ३२. महा आकाश ३३. प्रकृति ३४. ब्रह्म। ये सब ३४ समष्टि पदार्थों के रूप मण्डलाकार मे दिये है।

तत्त्व ज्ञान का साधन 'संयम'

इन चौतीस तत्त्वों का साक्षात् ज्ञान कैसे हो यह बताना आवश्यक है। तत्त्व ज्ञान कैसे उत्पन्न होता है यह बताने के लिए गौतम मुनि ने यह सूत्र लिखा है—

समाधि-विशेषाभ्यासात्।

(न्यायदर्शन अ० ४। आ० २। सू० ३५॥)

तत्त्व ज्ञान समाधि-विशेष के अभ्यास से होता है। इस सूत्र में विशेष शब्द पढा गया है। इससे विशेष असम्प्रज्ञात समाधि और सयम का ग्रहण होता है। अत: स्पष्ट है कि बिना सयममय समाधि के तत्त्व ज्ञान नही हो सकता। सब की अपेक्षा योग में संयम सूक्ष्म है, अन्तरङ्ग है। धारणा ध्यान समाधि की परिपक्व अवस्था को संयम कहते है। जिस पदार्थ पर धारणा की उसी पर ध्यान और उस पर समाधि इसे संयम कहते है। अभ्यासियो को इसी सयम के परिपक्व अभ्यास द्वारा ३५ तत्त्वों का प्रत्यक्ष कराना है।

संयम के लिए उपयोगी स्थान

न्यायदर्शनकार ने समाधि के देश की बड़ी प्रशंसा की है। स्थान का बड़ा
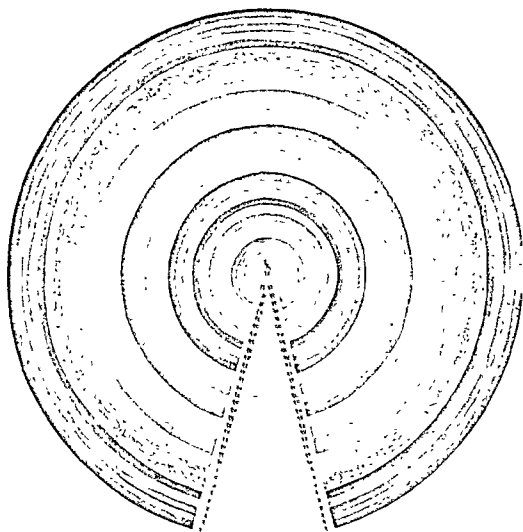
चित्र स० १

समष्टि पृथिवी महाभूत से ब्रह्म प्रयन्त ३४ पदार्थों का स्वरूप

महत्त्व माना है। संयम के लिये कैसा स्थान हो, लिखा है—

अरण्य-गुहा-पुलिनादिषु योगाभ्यासोपदेशात्।

(न्याय० अ० ४। आ० २। सू० ३९॥)

जो योगी समाधि द्वारा तत्त्व ज्ञान प्राप्त करना चाहता है उसको एकान्त, शान्त, वन में निवास करना चाहिये। या किसी एकान्त पर्वत गुफा में। या भूमिस्थ गुफा मे, तीसरा स्थान यहाँ पुलिन (नदियों का किनारा) कहा है। नदियों के तीर या नदियों के सगम पर वाह्य शब्द क्रम प्रतीत होते हैं। वेद मे भी स्थान का बडा महत्त्व दर्शाया है :—

उपह्वरे गिरीणां सङ्गमे च नदीनाम्।

इस श्रुति मे भी गिरि-गुहा और नदियों के सगम पर योगाभ्यास करने का विधान किया है।

ब्रह्म विज्ञान का क्रम

इन सब ३२ पदार्थों के निर्माण और इनके विज्ञान का क्रम लिखते हैं।

ब्रह्म का इनके साथ निर्माण-काल मे कैसे सम्बन्ध रहता है। ब्रह्म का इनके विज्ञान के साथ-साथ किस प्रकार विज्ञान होता है। ब्रह्म का स्वरूप कैसा है। किस प्रकार ब्रह्म का साक्षात्कार होगा, इत्यादि विषयों को हृदयंगम कराना है।

कारण प्रकृति से प्रारंभ कर के ३२ पदार्थों का परिणाम हुआ है, यह विज्ञान अत्यन्त सूक्ष्म है। सर्वसाधारण की समझ मे मूल कारण प्रकृति के क्रम से बताने पर आना कठिन है, और मूल प्रकृति का प्रत्यक्ष तो अत्यन्त दुष्कर है। इससे विपरीत स्थूल के क्रम से वर्णन और अभ्यास सुगम होगा। अन्तिम पाँच स्थूल भूत सब के अन्त में परिणाम को प्राप्त हुए हैं। इनकी उत्पत्ति एव विशेष विज्ञान का पहले साक्षात् कराने से सरल होगा। इस प्रकार पहले स्थूल फिर सूक्ष्म का विज्ञान कराने से साधारण पुरुष की समझ मे क्रमपूर्वक आता चला जायगा। यही स्थूल से सूक्ष्म की ओर गमन करना है। स्थूल शीघ्र समझ मे आता है। इस प्रकार पदार्थों का भी क्रमपूर्वक विज्ञान होता जायेगा और ब्रह्म का भी साक्षात्कार साथ-साथ होता जायेगा। इसीलिये विपरीत क्रम से पदार्थों के विज्ञान का प्रारभ किया है।

जिस धारणा, ध्यान, समाधि, संयम द्वारा इस विशेष विज्ञान को प्राप्त करना है, प्रथम उसको भी समझ लीजिये जिससे आपको पदार्थों का विज्ञान प्राप्त करने मे सरलता हो। यह साधन ही प्रकृति, इसके कार्यों, आत्मा, और परब्रह्म के विज्ञान मे सर्वश्रेष्ठ है। इनके विना अन्य साधनों से तत्त्वज्ञान होना असम्भव है।

समाधि का स्वरूप और प्रयोग

समाधि की परिपक्व अवस्था सयम का अभ्यास करने के लिये समाधि का स्वरूप समझना आवश्यक है।

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।

(योग० पा० ३। सू० १॥)

चित्त का अर्थ यहाँ बुद्धि है। किसी एक देश मे बुद्धि वृत्ति को समाहित करना धारणा है। एक देश इसलिये कथन किया है कि जैसे पृथ्वी तत्त्व का तो कोई अन्त देखने मे नही आता है, क्योकि ये नक्षत्र, सूर्य, चन्द्र सब ही तो पृथ्वी तत्त्व के अन्तर्गत है। इसलिये एक देश कहा। एक देश का अभिप्राय है, इनमे से कोई एक। चाहे आप अपनी भूमि को ही धारणा का विषय बनावें, या चन्द्र आदि को।

एकान्त शान्त पूर्व वर्णित स्थान मे कोमल आसन बिछाकर अभ्यासानुसार दृष्टि को खुले रखकर या बन्द रखकर, जिस आसन से बैठने का अभ्यास हो, बिना हिले-डुले स्थिर भाव से बैठ जाव। इन्द्रियो और मन को रोककर, बुद्धि को समाहित कर के, बुद्धि द्वारा अपने सूक्ष्म नेत्र की दृष्टि को भूमि के अन्दर फेंक, अन्दर ले जायें, उसमे पिरो दें। जहाँ तक तुम्हारी धारणा की दिव्य दृष्टि जावे वहाँ तक ले जावे। किसी देश मे ले जाकर दृष्टि को ठहरा दे। इसके पश्चात्

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्।

(योग० पा० ३। सू० २॥)

इस योग सूत्र के आधार पर उस ध्येय पृथ्वी के एक देश मे इस प्रकार बुद्धि को समाहित कर कि ढाई घण्टे की धारणा के उपरान्त ध्यान की स्थिति मे आ जाये, और उस काल मे भी अन्य किसी विषय, पदार्थ, या विचार का कोई सस्कार ही उदय न हो। पदार्थ का ही निरन्तर ध्यान बना रहे। ध्यान का सदृश प्रवाह निरन्तर बहता रहे। अबाध गति से ध्यान चलता रहे। यह ध्यान की अवस्था होगी।

साख्य दर्शन ने भी ध्यान का ऐसा ही लक्षण किया है —

ध्यान निर्विषय मन।

(साख्य० अ० ६। सू० २५॥)

इसका अर्थ—जब पदार्थ के किसी देश मे ध्यान का निरन्तर अबाध गति से प्रवाह चल रहा है, उस काल मे अन्य विषय का ध्यान एक क्षण को भी नही आना चाहिये। अन्य सब विषयो का अभाव ही रहना चाहिये। केवल एक मात्र ध्येय ही ध्यान का लक्ष्य हो।

रागोपहतिर्ध्यानम्।

(साख्य० अ० ३। सू० ३०॥)

अर्थ—इन्द्रियो के विषयो के अनुराग की उपहति हो जाना ही ध्यान है। सब इन्द्रियो के राग का ध्यानकाल मे सर्वथा अभाव हो जाना।

इस काल मे आप ने ध्येयाकार पृथ्वी को लक्ष्य बनाकर ध्यान का विषय बनाया है। यह भी तो एक प्रकार से दिव्य चक्षु इन्द्रिय का ही विषय है, परन्तु यहाँ यह एकाकार धारा प्रवाह से ध्यान का विषय बना हुआ है। इसको सम्प्रज्ञात का विषय बनाना है तभी इसके वास्तविक स्वरूप का निर्भ्रान्त ज्ञान होगा।

त्रिपुटी का विश्लेषण

लगातार एक ही विषय का अनन्यमनस्क भाव से विषय के एक देश मे देखना

धारणा है। धारणा का काल ढाई घण्टे तक रहता है। जब चित्त अबाध गति से एक देश में ढाई घण्टे के उपरान्त भी टिका रहता है तो ध्यान आरम्भ हो जाता है। जब अनन्य विषयक चित्त ६ घण्टे तक अबाध गति से स्थिर रहे तो उसकी ध्यान संज्ञा बनती है। इसके आगे समाधि आरम्भ होती है, जिसमें अभ्यासी स्वरूपशून्य हो जाता है, और केवल ध्येय अर्थ ही भासित होता है। यह स्थिति १२ घण्टे बनी रहे तब इसकी समाधि संज्ञा होती है।

सम्प्रज्ञात समाधियाँ

सम्प्रज्ञात समाधियाँ मुख्यतः चार प्रकार की है :—

१. सवितर्क, २. निर्वितर्क, ३. सविचार, ४. निर्विचार।

इनमें से किस समाधि द्वारा किस तत्व का साक्षात्कार करना होगा, यह जान लेना भी अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिए इन समाधियो के स्वरूप को समझिये।

१. सवितर्क-सम्प्रज्ञात समाधि—उसे कहते है, जिसमें पृथ्वी आदि पाँच स्थूल भूतो के विषय में यह विज्ञान किया जाये कि परिणाम क्रम में यह कब उत्पन्न हुए, उस भूत के गुण क्या-क्या है। कौन गुण किस गुण के पश्चात् उत्पन्न हुआ। गुण के उत्पन्न होने पर पृथ्वी आदि किस स्वरूप वाले हुए।

इस सम्प्रज्ञात समाधि में शब्द, अर्थ और ज्ञान की संकीर्णता होती है। सम्मिश्रण सा होता है, और वह भी विकल्प पूर्वक ही होता है। इस समाधि में यह निर्णय नही हो पाता है कि पृथ्वी शब्द रूप है या अर्थ रूप या ज्ञान रूप। वास्तव में तो पृथ्वी शब्द भिन्न है, पृथ्वी ज्ञान भिन्न है। इसका वास्तविक विवेक तो निर्वितर्क में होता है। यहाँ तो सकीर्ण सा ज्ञान होता है। वास्तव मे पृथ्वी का स्वरूप क्या है, इसका निर्णय ठीक-ठीक नही हो पाता।

२. निर्वितर्क सम्प्रज्ञात समाधि—इसमे वितर्क या सम्मिश्रण नही होता। केवल पृथ्वी आदि पांच भूतो के स्वरूप मात्र का ही भान होता है। अन्य कुछ भी नही। शब्द और ज्ञान को छोड़कर केवल पृथ्वी आदि पदार्थ के स्वरूप का बोध होता है। इस समाधि मे नाम, देश, काल, गुण आदि अन्य किसी का भी बोध नही होता। केवल *पृथ्वी के स्वरूप की ही अनुभूति होती है।*

३. सविचार सम्प्रज्ञात समाधि—वह है जिसमे सूक्ष्मो का साक्षात्कार किया जाये, और यह विज्ञान प्राप्त किया जाये कि परिणाम क्रम मे यह कब उत्पन्न हुए, उस के क्या-क्या धर्म है। कौन-कौन सा धर्म किसके पीछे व्यक्त हुआ। धर्मो के उपरान्त पदार्थो का क्या स्वरूप रहा।

सूक्ष्मों से यहाँ पाँचों तन्मात्रायें, पाँचों सूक्ष्म कर्मेन्द्रियाँ, पाँचों सूक्ष्म ज्ञानेन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त, तमस्, रजस्, सत्त्व, काल, दिशा, आकाश, और अलिंग प्रकृति लिये गये है। सत्त्व प्रधान चित्त के साक्षात्कार को आनन्दानुगत समाधि कहा है, यह सूक्ष्म विषय होनेसे सविचार के अन्तर्गत ही आ जाता है। अहंकार के साक्षात्कार को अस्मितानुगत समाधि कहा है। यह भी सूक्ष्म विषय होने से सविचार के ही अन्तर्गत आ

जाती है। यह कोई अलग समाधियाँ नही, क्योंकि सूक्ष्म का विषय अलिंग प्रकृति तक है।

यहाँ इतनी बात और समझ लेनी चाहिए कि आत्मा का बोध भी इसी सविचार समाधि मे होता है क्योकि अकेले आत्मा का कभी बोध नही होता। जब भी आत्मा का बोध होता है अह भाव विशिष्ट का होता है और वह भी चित्त के साथ। समाधि मे जब आत्मा अह भाव को छोड देता है और चित्त का सहारा भी नही लेता, केवल अपने ही स्वरूप मे स्थिर होना चाहता है, तो अह वृत्ति से हटते ही शून्यता सी आ जाती है। टीकाकारो ने इस प्रकार लिखा है, कि चित्त मे साक्षात्कार के समय 'अहमस्मि'='मैं हूँ' ऐसा बोध होता है, और अहकार विशिष्ट होने पर केवल 'अस्मि'='हूँ' का बोध होता है। आत्मापर्यन्त यह सब साक्षात्कार होता समाधि मे ही है। इसी प्रकार ब्रह्म का भी साक्षात्कार प्रकृति और उसके कार्यो मे इन सब समाधियो मे सदा होता है। आत्मा और ब्रह्म भी सूक्ष्म पदार्थो मे आते है।

४. **निर्विचार सम्प्रज्ञात समाधि**—जिसमे ऊपर सविचार मे बताये केवल सूक्ष्मो के स्वरूप का साक्षात्कार हो। अन्य उनके कार्य, कारण, देश काल आदि का कोई अनुभव न हो वह निर्विचार समाधि है।

सवितर्क और निर्वितर्क समाधि का ही दूसरा नाम ग्राह्य-समापत्ति है। सविचार और निर्विचार समाधि का ग्रहण-समापत्ति है। इन दोनो का ग्रहीतृ समापत्ति नाम भी है। क्योकि ग्राह्य का अर्थ पञ्चभूत है, ग्रहण का अर्थ इन्द्रियाँ और ग्रहीतृ का अर्थ आत्मा है। इस प्रकार से यह चार प्रकार की १. सवितर्क, २ निर्वितर्क, ३. सविचार, ४. निर्विचार ही समाधियाँ हुई।

दूसरे आचार्यो ने इन चार समाधियो को विषय भेद करके छ और आठ नाम दे दिये है। छ मे चित्त के विषय वाली सानन्दा, अहकार के विषय वाली सास्मिता नाम से भिन्न मान ली हैं, और समाधियो की सख्या छ कर दी है। कई आचार्यो ने इन चार के साथ इन्द्रियो का ग्रहण नाम रख कर १ सविचार ग्रहण सम्प्रज्ञात समाधि, २. निर्विचार ग्रहण सम्प्रज्ञात समाधि, अहकार विशिष्ट पुरुष का नाम ग्रहीतृ रखकर, ३. सविचार ग्रहीतृ सम्प्रज्ञात समाधि, ४. निर्विचार ग्रहीतृ सम्प्रज्ञात समाधि नाम रख समाधियो की गिनती आठ कर दी है।

वास्तव मे पूर्वोक्त समाधियाँ चार ही है। इन चार ही मे अन्य सब का अन्तभवि हो जाता है। ये सब समाधियाँ सबीज समाधियाँ कहलाती है।

'ताः एव सबीजः समाधिः ।'

(योग० पा० १। सू० ४६ ।।)

—ये सब चारो सबीज समाधि है।

इसके आगे—

तस्यापि निरोधे सर्व-निरोधान्निर्बीजः समाधिः।

(योग० पा० १। सू० ५१ ।।)

इस सम्प्रज्ञात समाधि के निरोध हो जाने पर निर्बीज नाम की असम्प्रज्ञात

समाधि होती है जिसमे सब प्रकार के सस्कारों का निरोध करना होता है जिनसे छुटकारा पा आत्मा स्वरूप मे स्थिर हो जाता है।

चारो प्रकार की सम्प्रज्ञात समाधि द्वारा सब पदार्थो का अच्छी तरह से विज्ञानपूर्वक साक्षात्कार होने पर इस असम्प्रज्ञात का अभ्यास करना होता है। इससे इन पदार्थो के विज्ञान के सस्कारो का निरोध करके परम वैराग्य प्राप्त करना होता है। विरामप्रत्ययाभ्यास पूर्व सस्कार शेषोऽन्यः। योग० पा० सू० १८ को असम्प्रज्ञात समाधि कहा है। इस परम वैराग्य के सिद्ध होने पर आत्मा की कैवल्य मे स्थिति हो जाती है। यह समाधि ही अन्त मे मोक्ष मे स्थिति का हेतु बनती है।

शंका—शून्य समाधि के द्वारा सर्ववृत्ति निरोध हो जाता है और इसमे आत्मा की स्वरूप मे भी स्थिति हो जाती है। फिर इतने ज्ञान-विज्ञान के झँझटो मे पड़ने की क्या जरूरत है?

समाधान—इस प्रकार की शून्य समाधि का शास्त्रों मे विशेष रूप से वर्णन तो नही आता है कि जिसके द्वारा आत्मसाक्षात्कार होकर मोक्ष मे स्थिति हो जाय अथवा ब्रह्म का ही साक्षात्कार हो। परन्तु हमने युवाअवस्था मे कई वर्ष तक इस शून्य समाधि का कई-कई दिन का अभ्यास अवश्य किया था अत. अपने अनुभव के आधार पर ही कुछ कथन कर सकते है। हमने १०-१२ वर्ष तक इस शून्य समाधि का अभ्यास किया और निश्चय कर बैठे थे कि बस इसी के द्वारा हम मुक्त हो जायेंगे। परन्तु बहुत वर्ष के कठिन तप और इसके अभ्यास से हमे कोई विशेष सन्तोष नही प्राप्त हुआ कि जिससे इस मानव जीवन की सफलता या कृतकृत्यता हो। अतः फिर हमने इस शून्य समाधि के क्रम को बदला।

शंका—शून्य समाधि किसे कहते हैं? इसमे और गाढ निद्रा मे एव निर्विकल्प तथा निर्विचार समाधि मे क्या अन्तर है? योग दर्शनकार ने भी इस शून्य समाधि का कही उल्लेख नही किया है।

समाधान—हम इस शून्य समाधि के विषय मे अपने अनुभव के आधार पर वर्णन करते हैं। जब अभ्यासी सर्व प्रकार के जाप धारणा ध्यानादि को छोडकर केवल मात्र संकल्प-विकल्प के अभाव का निरन्तर अभ्यास करना प्रारम्भ कर देता है, किसी प्रकार के लक्ष को या ध्येय पदार्थ को भी समाधि या विज्ञान प्राप्ति का विषय या अवलम्बन भी नही बनाता है, दीर्घ काल तक सकल्प विकल्प के अभाव का ही निरन्तर अभ्यास करता है, तब शरीर, इन्द्रियो और अन्त करण मे शून्यता आने लगती है। शरीर इन्द्रियें अन्तःकरण स्तब्ध होकर निश्चेष्ट हो जाते हैं। योगी का इस प्रकार का अभ्यास निरन्तर साधना करने से कई घण्टे और कई दिन तक का भी हो जाता है। योगी जितने घण्टे या दिन का सकल्प करके बैठता है उतने समय के पश्चात् ही व्युत्थान होता है। इस घण्टे या दिनो की शून्यता मे किसी भी प्रकार का भान या ज्ञान नहीं होता है। इस अवसर मे शरीर, इन्द्रियें और अन्त करण बिलकुल जडवत् हो जाते है। करणादि इन्द्रिये अपने सर्व व्यापार को बन्द कर देती है। प्राण अत्यन्त सूक्ष्म और गतिहीन सा हो जाता है। शरीर और मुख पर मुर्दनी छा जाती है और शरीर मुर्दा सा पीला सा हो जाता है। मुख मे दाँतो की जबाड़ी बिलकुल बन्द हो जाती है। आँखें सख्त

बन्द हो जाती है। किसी प्रकार का शब्द भी सुनाई नही देता है। आसन अत्यन्त दृढ हो जाता है। जिस आसन और जिस पोजीशन (स्थिति) मे योगी सर्व प्रथम बैठना है वैसी ही स्थिति अन्त तक व्युत्थान काल तक बनी रहती है।

जब व्युत्थान होने का अवसर आता है, उस वक्त सर्वप्रथम ब्रह्म-रन्ध्र में स्फूर्ति सी, चेतना सी, सज्ञा सी प्रारभ होती है। यदि कोई पास बैठा या खडा होकर बातें करे तो पता नही लगता कि क्या बातें कर रहा है। उस अवसर मे योगी आँखें खोलना चाहता है तो खोलने से भी नही खुलती। आसन खोलना चाहता है तो खुलता नही। टाँगे और शरीर अकडे हुए होते है। यदि इस अवसर मे कोई सेवक हाथ से शरीर पर सूखी मालिश करे तो जल्दी शरीर काम करने योग्य अर्थात् आसन इत्यादि शीघ्र ही खुलने योग्य हो जाते हैं। यदि १०-१२ घण्टे योगी इस शून्य समाधि मे बैठा है तब तो कुछ मिनट सावधान या पूर्ववत् स्वस्थ होने मे लगते हैं। यदि कई दिन समाधि मे बैठा है तब पूर्ववत् स्वस्थ होने या व्युत्थान होने और उठने मे दो घण्टे या अधिक भी लग जाते हैं।

उठने के पश्चात् उस अवस्था के सुख-दु ख ज्ञानादि का कुछ भी अनुमान नही करता है या होता है। इसमे ज्ञात होता है कि उस अवस्था मे बिलकुल ही सुख-दु ख, ज्ञान आदि का प्रत्यक्ष या अनुभव नही हुआ था। यदि होता तो व्युत्थान के पश्चात् अवश्य ही कुछ-न-कुछ सुनाता, कहता, अनुमान करता। यदि कहो कि आत्मा की स्व-स्वरूप मे स्थिति हो गई होगी। इसको योगी नही जानता है क्योंकि शून्य समाधि मे बैठने से पूर्व आत्मा को लक्ष भी नही बनाया था। यदि बिना लक्ष के भी स्वरूप मे स्थिति हो गई है तो इसको हम कह नही सकते है क्योंकि प्रथम उद्देश्य तो बनाया था सकल्प-विकल्प के अभाव का। यदि बिना ध्येय या लक्ष के स्वरूप मे स्थिति हो गई हो तो इसको भी हम नही जानते है।

शंका—सकल्प विकल्प के अभाव को ही क्यो न लक्ष कहा जाय ?

समाधान—यह लक्ष भी तो किसी ज्ञान आदि का हेतु नही बना है। न किसी पदार्थ का बोध ही हुआ, न किसी प्रकार का आनन्द या सन्तुष्टि ही हुई है। केवल सकल्प-विकल्प का अभाव होकर शून्यता आई है। इस शून्यता से न ज्ञान हुआ, न अज्ञान हुआ क्योंकि ज्ञान और अज्ञान पदार्थ की अपेक्षा करते है।

शंका—सकल्प विकल्प भी तो एक प्रकार के सस्कार या वृत्ति हैं, इनका ज्ञानपूर्वक और अधिकार पूर्वक निरोध किया गया है।

समाधान—इनके निरोध होने से जो शून्यता और बिलकुल जडता, स्तब्धता, निश्चेष्टा पैदा होती है और वह भी कई-कई दिन तक की हो जाती है, वैसी गाढ निद्रा या निर्विकल्प अथवा निर्विचार समाधि मे नहीं होती है। इन अवस्थाओ के पश्चात्, व्युत्थान मे इनके सुख-दु ख, आनन्द और ज्ञान का वर्णन तो करता है।

'आज बडे सुख और आनन्द की निद्रा आई है,' 'आज मुझे निद्रा मे कुछ भी आनन्द नही आया है' इत्यादि निद्राकाल मे प्रत्यक्ष किये का अनुमान करता है। इसीलिये योगदर्शनकार इत्यादि ने इसे वृत्ति माना है।

अब रही बात निर्विकल्प और निर्विचार समाधि की, इनके व्युत्थान के पश्चात् योगी कहता है कि सविकल्प और सविचार समाधि में जो पदार्थ सम्बन्धी ऊहा पोह तर्क-वितर्कपूर्वक ध्येय पदार्थ का विज्ञान किया था। अब केवल ध्येयाकार वृत्ति रही। आत्मा के प्रति अस्मि अथवा ईश्वर के प्रति अस्ति अस्ति का साक्षात्कार निरन्तर बना रहा। इस अवसर में कोई तर्क-वितर्क ध्येय वस्तु के प्रति उत्पन्न नहीं हुआ। परन्तु ध्येय पदार्थ का ज्ञान तो निरन्तर बना रहा। इससे सिद्ध होता है कि शून्य समाधि निद्रा या अत्यन्त गाढ निद्रा निर्विकल्प और निर्विचार समाधि में बहुत अन्तर है। यदि योगदर्शनकार या किसी अन्य ने इस शून्य समाधि का उल्लेख नहीं किया तो इसका तात्पर्य यह नहीं है कि शून्य समाधि नाम की कोई अवस्था ही नहीं है। निद्रा के पश्चात् मानव बहुत शीघ्र सावधान हो जाता है भले ही यह तम: रज: सत्व प्रधान ही क्यों न हो। निर्विकल्प और निर्विचार समाधि के पश्चात् व्युत्थान होते ही योगी बहुत शीघ्र सावधान हो जाता है क्योंकि इसमें सत्व की प्रधानता होती है। उस काल में आनन्दादि की भी उपलब्धि होती है निरन्तर ध्येय पदार्थ का ज्ञान बने रहने से। अत: इन समाधियों से शून्य समाधि अलग ही माननी पड़ेगी। भले ही यह अत्यन्त तम: प्रधान क्यों न हो क्योंकि कई-कई दिन तक पाषाणवत् सी अवस्था बनी रहती है। इस शून्य समाधि के कई-कई दिन पश्चात् जब, व्युत्थान होता है तब सर्वप्रथम शौच जाने पर काले रङ्ग का मल निकलता है। इससे सिद्ध होता है कि पाचन शक्ति कुछ न कुछ कार्य करती रही। नया आहार कई दिन न मिलने से वस्ति आदि कर्म करने के पश्चात् भी जो शेष मल अन्तड़ियों में रह गया था, जठराग्नि ने उसे ही दग्ध कर दिया इस शून्य समाधि में भी।

शंका—फिर इतने ज्ञान-विज्ञान अथवा प्रकृति विज्ञान आत्म और ब्रह्म विज्ञान से क्या लाभ, इस शून्य समाधि से ही मोक्ष प्राप्त हो जायगा।

समाधान—इस शून्य समाधि से योगी को यह सन्तोष नहीं होता है कि मैंने प्रकृति, आत्मा और परमात्मा का विज्ञान प्राप्त कर लिया है या इनके स्वरूप को देखकर परम सन्तोष हो गया है। अत: सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात समाधि ही मोक्ष का हेतु बनेगी जिनका ऊपर वर्णन कर चुके हैं। इन समाधियों के द्वारा ही प्रकृति, आत्मज्ञान और ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त होकर सर्वप्रकार से पूर्ण सन्तोष, परम शान्ति, परम वैराग्य और कैवल्य की प्राप्ति होती है।

समष्टि-पदार्थों के पाँच रूपों में ब्रह्मविज्ञान

(नवीनतम खोज)

किसी भी अन्य आचार्य ने इस प्रकार से ब्रह्म विज्ञान का वर्णन नहीं किया है। यह विज्ञान की प्रक्रिया हमारी नवीनतम खोज है। हमने अपने अनुभव के आधार पर पंच-भूतों से लेकर अन्तिम मूल-प्रकृति तक के प्रत्येक पदार्थ के विज्ञान का वर्णन करते हुए, उसकी परिणाम को प्राप्त होती हुई प्रत्येक अवस्था में ब्रह्म-विज्ञान कराया है। जिस प्रकार 'आत्म-विज्ञान' में प्रत्येक पदार्थ की सत्त्व, रज, तम. के आधार पर आत्म-ज्ञान के लिये खोज की है, इसी प्रकार यहाँ ब्रह्म-विज्ञान के लिये प्रत्येक पदार्थ की परिणत होती हुई पाँच अवस्थाओं में ब्रह्म-विज्ञान की खोज की गयी है। यह भी हमारी

नवीन खोज है। इससे पदार्थों की प्रत्येक अवस्था मे ब्रह्म की प्रत्यक्ष रूप मे अनुभूति होती है। साथ ही साथ इसके द्वारा पदार्थों मे होते हुए परिणाम और निर्माण प्रक्रिया की भी प्रतीति होती है।

अब हम समष्टि पृथ्वी महाभूत के पांच रूपो मे सवितर्क और निर्वितर्क समाधि द्वारा प्रवेश करके विज्ञान और ब्रह्म मे इनका साक्षात्कार प्रारम्भ करेंगे।

ब्रह्मज्ञान का अधिकारी

जिस योगी ने आत्मविज्ञान ग्रन्थ के आधार पर अपने स्वरूप का साक्षात्कार कर लिया है उसके लिये तो यह ब्रह्म-विज्ञान कुछ दिनो या मासो अथवा वर्षो का ही विषय होगा, क्योंकि स्व-स्वरूप और व्यष्टि पदार्थों का विवेक उस योगी के पास एक प्रकार की कसौटी, तुलना अथवा परख करने का साधन हो जाता है।

परन्तु जिसने जीवात्मा अथवा अपने स्वरूप का प्रत्यक्ष नही किया है, उसके लिये यह ब्रह्म-विज्ञान प्राप्त करना, समझना, या देखना और यथार्थ रूप मे सर्व पदार्थों, आत्मा, तथा ब्रह्म का साक्षात्कार करना अत्यन्त कठिन है।

जब तक निम्न प्रकार से वैराग्यवान योग का जिज्ञासु नही होगा, तब तक उसे प्रकृति पुरुष विवेक होना और मुक्त होना असभव ही होगा।

ब्रह्म ज्ञान का जिज्ञासु नचिकेता के समान वैराग्यवान् होना चाहिये। जब यह कुमार ब्रह्मचारी आचार्य यमराज के पास आत्म-विज्ञान की जिज्ञासा को लेकर गया, तब आचार्य ने इसके परीक्षण के लिये नाना प्रकार प्रलोभन दिये, यथा—

'शतायुषः पुत्रपौत्रान्वृणीष्व, बहून्पशून्हस्तिहिरण्यमश्वान् ।
भूमेर्महदायतनं वृणीष्व, स्वं च जीव शरदोयावदिच्छसि ॥२३॥
एतत्तुल्यं यदि मन्यसेवरं वृणीष्व, वित्तं चिरजीविकांच ।
महाभूमौ नचिकेतस्त्वमेधि, कामाना त्वाकाम भाजं करोमि ॥२४॥
ये ये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके, सर्वान्कामांश्छन्दतः प्रार्थयस्व ।
इमाः रामाः सरथाः सतूर्याः, न हीदृशाः लम्भनीया मनुष्यैः ।
आभिर्मत्प्रदत्ताभिः परिचारयस्व, नचिकेतो मरणं मानुप्राक्षी ॥२५॥

(कठो० अ० १ । व० १ । मे० २३ । २४ । २५ ॥)

—हे नचिकेता ! आप बहुत भोले हो, क्या करोगे आत्मा को पूछ कर। उसके विषय को जानकर। आप सुखो की विशाल सामग्री को प्राप्त करो। सौ वर्ष जीने वाले पुत्र-पौत्र आदि के परिवार को माँगो। बहुत सी गौओ, पशुओ, हाथी, घोडो, और भूमि के विशाल राज्य को माँग लो। जब तक तुम्हे जीने की इच्छा हो, उतने ही काल तक जीते रहो। हे नचिकेता ! यदि तुम बहुत धन-सम्पत्ति, दीर्घकालीन जीवन, सर्व सुखो की नाना प्रकार की सामग्री और जितने भी मनुष्य के भोग हो सकते है उन सब को यदि आत्मतत्त्व के बराबर समझते हो तो माग लो। इस विशाल वसुन्धरा के सम्राट् बन जाओ, आपको सम्पूर्ण भोगो से भरपूर कर देता हूँ; हे नचिकेता मनुष्य लोक में जो भोग अत्यन्त दुर्लभ है, उन समस्त भोगो को यथेच्छ ले लो ! रथो और नाना प्रकार के बाद्यो सहित इन अप्-

सराम्रों को अपनी सेवा-शुश्रूषा के लिये ले जाओ। इस प्रकार रमणियाँ मनुष्यों को कहाँ मिलेंगी। ये सब तुम्हे देता हूँ। पर आत्मा के विषय में न पूछो।'

यदि कोई साधारण व्यक्ति होता तो इन ऐश्वर्यो के प्रलोभन में फँस जाता। परन्तु ब्रह्मचारी नचिकेता तो बहुत ही ऊँचा वीतराग, वशीकारसंज्ञक वैराग्यवान् मानव था। आचार्य से नम्रतापूर्वक निवेदन किया—

'श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत्, सर्वेद्रियाणां जरयन्ति तेजः।
अपि सर्वं जीवितमल्पमेव, तवैव वहास्तव नृत्य गीते ॥२६॥
न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो, लप्स्यामहे वित्तमद्राक्ष्मचेत्वा।
जीविष्यामो यावदिष्यसित्वं, वरस्तु मे वरणीयः सएव ॥२७॥
अजीर्यताममृतानामुपेत्य, जीवन्मर्त्यः क्वधःस्थः प्रजानन्।
अभिध्यायन्वर्ण रति प्रमोदान्, अतिदीर्घे जीविते को रमेत ॥२८॥
(कठो० अ० १। व० ११। मे २६-२७-२८॥)

—'हे महाराज यमराज। आपने जिन भोगों, ऐश्वर्यो की महिमा बतायी है, वे तो सब नाशवान् हैं, क्षणभंगुर हैं। कल तक रहेंगे या नही इसमे भी सन्देह है। इनके भोग से प्राप्त होने वाला सुख वास्तव मे सुख नही है। वह दुःख ही है। यह तो मनुष्य के अन्तःकरण और सर्व इन्द्रियों को, तेज को, शक्ति को क्षीण कर देता है, और समस्त आयु चाहे कितनी भी बड़ी क्यो न हो, स्वल्प ही है, इसलिये हे पूज्य देव! आपके रथ आदि वाहन, ये रमणियाँ, ये अप्सरायें, ये नाच-गाने, ये ऐश्वर्य आपको ही मुबारक हों। आपके ही पास रहे, मुझे इनकी चाह नही। हे आचार्य देव! मनुष्य कभी धन और ऐश्वर्य से तृप्त नही हुआ। जब आपके दर्शन हो गये हैं, तो वह धन तो स्वय ही आ जायेगा। जब तक आप शासन करते रहेंगे हम जीते ही रहेंगे। अतः इन सब को क्या लेना और क्या माँगना। देव! मैं तो केवल एक आत्मज्ञान ही माँगता हूँ। हे पूज्य देव! आप जैसे अजर-अमर महात्माओं का दुर्लभ सत्सग प्राप्त कर के ऐसा कौन अभागा होगा जो इस लोक के जरा मरणशील भोगों, स्त्रियों, अप्सराओं, आमोद-प्रमोद क्रीड़ा एव क्षणिक सौन्दर्य में आसक्त होकर, चिन्ताग्रस्त हो बहुत काल तक जीवन चाहे। हे देव! आत्मज्ञान के अतिरिक्त मुझे कुछ नही चाहिये।'

इस प्रकार का परम वैराग्य, आत्मज्ञान और ब्रह्मज्ञान के जिज्ञासु मे होना चाहिये। इसी प्रकार निदाघ मुनि ने ससार के विषयभोग से सन्तप्त हो अपने गुरु ऋभु ऋषि मे निवेदन किया था—

'ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च सर्वा वा भूतजातयः।
नाशमेवानुधावन्ति, सलिलानिव वाडवम् ॥ ५२ ॥
आपदः क्षणमायान्ति क्षणमायान्ति सम्पदः।
क्षणं जन्माथ मरणं, सर्वं नश्वर मेवतत् ॥ ५३ ॥
जन्मान्तरघ्ना विषयाः, एकजन्महरं विषम्।
इति मे दोष दावाग्नि-दग्धे सम्प्रति चेतसि ॥ ५५ ॥

स्फुरन्ति हि न भोगशाः मृगतृष्णा सरस्वपि ।
अतो मां बोधयाशु त्वं तत्त्व ज्ञानेन वै गुरो ॥ ५६ ॥

(महो० अ० ३)

—हे पूज्य आचार्य देव ! इस ससार मे ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र प्रभृति जितने भी प्राणी है, सब विनाश को प्राप्त हो मृत्यु के मुख मे गमन करते है। जैसे विनाशोन्मुख जल, अग्नि को प्राप्त होता है। ससार मे थोड़ी ही देर मे आपत्ति आ जाती है, और थोडी देर मे सम्पदा प्राप्त हो जाती है। थोडी देर मे जन्म और थोडी देर मे मरण देखने मे आ रहा है। सब नाशवान् दिखाई दे रहा है। विष खाने से तो एक ही जन्म नष्ट होता है। विषय तो जन्म-जन्मान्तर का नाश कर देते है। विषय रूप दोष दावानल से मेरा चित जला जा रहा है। भोगो की आशा भी मेरे मन मे स्फुरित न होती, ये विषय तो मृग-तृष्णा के तालाब है जिनमे कभी प्यास न बुझी, न बुझेगी। हे पूज्य गुरुदेव ! मुझे तत्त्व ज्ञान दो। शीघ्र ही आत्मसाक्षात्कार करा दो। जिससे मेरी जन्म-जन्मान्तर की भटकना और तृष्णा शान्त हो।"

श्री शुकदेव महामुनि का वैराग्य भी इसी प्रकार बहुत ऊँचे स्तर का था। आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत पालन कर वेद-शास्त्राध्ययन के पश्चात् अपने पिता श्री व्यास जी महाराज से इन्होने ब्रह्म-ज्ञान की जिज्ञासा की।

श्री व्यास जी ने उत्तर दिया—"पुत्र ! मैं ब्रह्मवित् नही हूँ। वर्तमान मे तो महाराजा जनक ब्रह्मज्ञानी हैं। आप उनके पास जाये।"

श्री शुकदेव जी सुमेर पर्वत से उतर कर मिथिला पहुँचे। जब जनक के राजमहल पर पहुँचे तो अन्दर प्रवेश की आज्ञा न मिली। सातदिन तक द्वार पर ही खडे रहे।

महाराजा जनक परीक्षा ले रहे थे। सात दिन के पश्चात् प्रवेश की आज्ञा मिली। सात दिन तक राजद्वार मे पडे रहे। महाराज के दर्शन नही हुए।

अब राज महल का फाटक खुला। सात दिन वहाँ रहना पडा। सब ही सुख सामग्री थी। उत्तमोत्तम भोज्य थे। सेवार्थ युवतियाँ थी। रमणियाँ थी। पर महाराज के दर्शन अब भी न हुए। वहाँ पर—

'तत्रोन्मदाभि' कान्ताभिर्भोजनैर्भोगसञ्चयैः ।
जनको लालयामास शुकं शशिनि भाननम् ॥२५॥
ते भोगास्तानि भोज्यानि, व्यासपुत्रस्यतन्मन. ।
नाजहुर्मन्दपवनो, बद्धपीठमिवाचलम् ॥२६॥
केवलं सुसम. स्वच्छो, मौनी मुदित मानस. ।
सम्पूर्ण इव शीतांशुरतिष्ठदमनः शुकः ॥२७॥
परिज्ञात स्वभावं तं शुक स जनको नृपः ।
आनीय मुदितात्मानमवलोक्य ननामह ॥२८॥

॥महो० अ० २॥

—श्री शुकदेव ब्रह्मचारी की परीक्षा के लिए यौवन से भरपूर मदमत्त प्रमदायें, और नाना प्रकार के स्वादिष्ट वृहण भोजन महाराजा जनक ने प्रस्तुत किये। चन्द्रसम देदीप्यमान-मुखमण्डल श्री शुकदेव जी ने उन भोज्यो और सुन्दरियो की ओर तनिक भी ध्यान नही दिया। जैसे मन्द पवन शृङ्खलाबद्ध पर्वत का कुछ भी नही बिगाड पाती है, इसी प्रकार मुनि शुकदेव के मन को वे राजसी भोग चलायमान न कर सके। वे शारदी शर्वरी के शीतांशु के समान स्वच्छ निर्मल मन मौन धारण कर प्रसन्न चित्त खडे रहे।'

श्री शुकदेव जी के सब प्रकार परीक्षा मे उत्तीर्ण हो जाने पर महाराज जनक ने २१ दिन के पश्चात् दर्शनो की आज्ञा प्रदान की, और उस सयमी बाल ब्रह्मचारी के आगमन पर जनक महाराज ने स्वय प्रणाम किया और बोले—हे महामुने! ससार के सम्पूर्ण कार्य और मनोरथ तो आपको सिद्ध ही हैं। आप किस इच्छा को लेकर यहाँ पधारे हैं। मैं आपका स्वागत करता हूँ।'

श्री शुकदेव जी बोले—

"ससाराडम्बरमिद कथमभ्युत्थित गुरो।
कथ प्रशममायाति यथावत्कथया शुभे॥"

—इत्यादि श्लोको मे प्रश्न किये—'हे पूज्य गुरुदेव! इस ससार-आडम्बर की रचना क्यो और किस लिये होती है? यह कैसे विनाश को प्राप्त होता है? इससे छुटकारा कैसे हो सकता है? कृपया यथार्थ मे मेरे पर कृपा कर कथन करें।'

इस ऐतिहासिक घटना से श्री शुकदेव जी महाराज का परमवैराग्य पराकाष्ठा को पहुँचा हुआ प्रतीत होता है। सर्व प्रकार के भोगो से कितना निरीह और वीतराग था वह ब्रह्म जिज्ञासु!

जब तक इस प्रकार की जिज्ञासा नही होती तब तक ब्रह्मज्ञान का अधिकारी नही बन सकता। इसी प्रकार के ब्रह्मज्ञान के जिज्ञासु उत्तक ब्रह्मचारी, और सत्यकाम जाबाल मुनि हुए हैं। इसी प्रकार का वैराग्य ब्रह्मज्ञान के लिये आवश्यक है।

श्री कृष्णचन्द्र महाराज जी के गुरु श्री औपमन्यु महाराज भी बहुत ऊँचे दर्जे के वीतराग परम वैराग्यवान हुए है जिनके ब्रह्म-विज्ञान प्राप्ति की कथा पुराण मे विस्तार-पूर्वक वर्णन की गयी है।

वैराग्य का स्वरूप और उसकी साधना

'दृष्टानुश्रविक विषय वितृष्णस्य वशीकार सज्ञा वैराग्यम्'

॥योग० पा० १। सू० १५।

दृष्ट—इस लोक मे स्थूल भूतो के जितने भी विषय हैं—गन्ध, रस, रूप, स्पर्श शब्द जिनको स्थूल इन्द्रिय ग्रहण करके तृप्त होती है और चेतन स्त्री, पुत्र, माता पिता, भाई-बन्धु, इष्ट-मित्र आदि सब ही विषय कहलाते है। इन सबके भोग और सुखो से बुद्धि मे विरक्ति हो जाना, इनसे चित्त मे उपरामता हो जाना, अथवा उदासीनता की

भावना उत्पन्न हो जाना, इनमे भोगात्मक आसक्ति का अभाव होना, इष्ट विषयो के प्रति वैराग्य कहाता है।

आनुश्रविक विषय—जो देखने मे नही आये, जिनका प्रत्यक्ष भी नही हुआ, किन्तु गुरुजनो या विद्वानों से सुना है, या वेद, शास्त्र, उपनिषद्, पुराण, स्मृति आदि मे पढा है, कि स्वर्गलोक मे सूक्ष्म विषयो या पदार्थों का उपभोग प्राप्त होता है। वहाँ पुण्यात्मा पुरुष गमन करते हैं। जिन व्यक्तियो या धर्मात्मा पुरुषो को इस लोक मे भोग तृप्ति नही होती और इस लोक मे भोगो की तृप्ति के लिये पुण्य कर्म करते है, उन पुण्य आत्माओं को वह स्वर्गलोक प्राप्त होता है। वहाँ सर्व सूक्ष्म भूतो, या पञ्चतन्मात्राओं का, और इनसे निर्मित पदार्थों का यथेष्ठ भोग करते है। इनको शास्त्रो मे 'दिव्य भोगो' के नाम से प्रतिपादन किया गया है, और इष्टो का अदिव्य नाम से प्रतिपादन किया गया है। दिव्य पदार्थों के भोगो की इच्छा की सर्वथा निवृत्ति हो जाना, इनसे भी चित्त का उदासीन और उपराम हो जाना, इनके प्रति किसी भी प्रकार की अभिलाषा या आसक्ति उत्पन्न न होना, यह आनुश्रविक विषयो से वैराग्य कहाता है। सर्व प्रकार के स्थूल और सूक्ष्म भोगो की तृष्णा का बुद्धि और चित्त मे नितान्त अभाव हो जाना, यह दिव्य और अदिव्य विषयो से वैराग्य कहाता है। इन दोनो स्थूल और सूक्ष्म विषयो के कारण सत्त्व, रज, तम और इनकी कारण मूल प्रकृति के प्रति भी तृष्णा का अभाव हो जाना, या इनसे भी परम वैराग्य हो जाना वशीकार सज्ञा वैराग्य है। वह ही स्वस्वरूप अथवा ब्रह्म के स्वरूप मे स्थिति का हेतु होता है।

इन्द्रियो का स्वाभाविक धर्म या गुण विषयों मे गमन करना है। इस ओर से इनका निरोध करना अत्यन्त कठिन है। नासिका ने गन्धयुक्त पदार्थ को देखकर यह जरूर बता देना है, कि यह अमुक प्रकार की गन्ध है। यह इसका स्वाभाविक धर्म है। इस गन्ध को बताना न अनुराग न आसक्ति और न बन्ध ही कहलाता है।

अमुक प्रकार का गन्ध युक्त पदार्थ मुझे बहुत अच्छा लगता है, वह ही मेरे लिये होना चाहिये। इसकी प्राप्ति के लिये अनेक उपाय किये जाते है जो कष्ट या दु ख के हेतु भी होते है। अनेक प्रकार मुसीबतो और बन्धनो मे डालने वाले होते है। इसका नाम है अनुराग या आसक्ति। इस आसक्ति का अभाव करना ही इन्द्रिय की विजय कहाती है। एक-एक इन्द्रिय को विजय करने मे बड़े तप, सयम, ज्ञान और वैराग्य की आवश्यकता होती है। यदि इन्द्रियों को विजय करने मे ज्ञान-वैराग्य की जीवन मे कमी है, तब हठ और बल से इन्द्रियो को विषय की ओर से रोकना चाहिये, तत्पश्चात् शनैः-शनैः ज्ञान और वैराग्य की भावना को उत्पन्न करना चाहिये। विद्वान, वीतराग, ज्ञानवान्, महापुरुष गुरु के सन्निकट रहकर इन्द्रियो पर विजय पाने के लिये तप, जप, सेवा, स्वाध्याय का अभ्यास करना चाहिये। विद्वानो, गुरुजनो, योगियों के सम्पर्क मे रहकर एक-एक इन्द्रिय पर वशित्व करना चाहिये। इनके नियन्त्रण और सत्संग मे रह कर विषयों की वासनायें कुण्ठित होने लगती है। इनके सत्संग के प्रभाव से ज्ञान और वैराग्य पनपने लगते है। इनके निकट मे रहते हुए भय, शका, लज्जा भी विषय भोग मे उत्पन्न होती रहती है। अत. विषयो के मार्ग मे गमन का अवसर भी कम मिलता है। विषय सामग्री का भी अभाव होता है। नित्यप्रति सत्सग, ज्ञान, वैराग्य की पुट भी मिलती रहती है।

योगी के चित्त मे यदि भक्ति की सच्ची जिज्ञासा उत्पन्न हो चुकी है, तब योगी को सर्व प्रकार के सगो का परित्याग करके एकान्त स्थान मे रहकर इन्द्रिया को विषयो से मन के द्वारा पुन पुन हटा कर आत्मचिन्तन अथवा ब्रह्म चिन्तन मे बुद्धि को प्रवृत्त करना चाहिये। बुद्धि मे ज्ञान और वैराग्य की भावना की पुट देते रहना चाहिये। इन्द्रियो के भोग और ऐश्वर्यो को अनित्य, दु खदायी, क्षणभगुर समझ कर अभ्यास द्वारा वैराग्य की भावना को दृढ करते रहना चाहिये। कभी-कभी इन्द्रियो के विषया का अभाव करके, या विषयो से इन्द्रियो को दूर रखकर तपयुक्त साधना करनी चाहिये। जैसे रसना के विषय षट् रस हैं। कुछ काल तक—दिन या मास या वर्ष तक इन रसा मे से किसी मीठा, नमक आदि को त्याग कर खान पान करना चाहिये। ऐसा करने से रसना की आसक्ति का पता लगता है। इन पर अधिकार करने का अवसर भी मिलता है। रसना को विषयो की ओर दौडने या उनमे प्रवृत्त होने मे भली प्रकार रोका जा सकता है। इस अवसर म रसना की प्रवृत्ति यदि अभिलषित रसो की ओर हो तो यह रसना का राग समझा जायेगा। इस अवसर मे इसे धिक्कारते हुए, ज्ञान और वैराग्य की भावना से समझाते हुए हठपूर्वक रोकना चाहिये। अथवा ज्ञान वैराग्य पूर्वक बुद्धि को समझाना चाहिये। 'अनक जन्मा या इस जन्म मे भी लाखो बार रसा का उपभोग करते-करते तृप्ति नही हुई तो अब क्या तृप्ति की आशा हो सकती है।'

शका—वैद्यक शास्त्र कहता है, कि नित्यप्रति षट् रस सेवन करने मे आरोग्य रहता है, आप कहते है, कई-कई दिन, मास अथवा वर्षो तक कुछ रसो का त्याग कर रसना पर विजय प्राप्त करनी चाहिये।

समाधान—मनुष्य के नित्यप्रति के आहार—अन्न, दूध, फल, सब्जी, जडी, बूटी, कन्द-मूल आदि—म प्राय सब ही रस आ जाते हैं, यदि थोडी देर के लिये प्रौढीवाद स मान भी लिया जाये, कि सब रस नही आते हैं, तो आप भोजन के साथ न मिला कर पृथक् रूप से भोजन क बाद नमक को हथेली पर रखकर फकी मार लिया करें। इसी प्रकार मिर्च, अमचूर, चीनी, गुड, हरड, आमले की फकी लगा लिया करें। इस प्रकार रसा की भी पूर्ति हो सकती हैं। इन रसो को स्वादु व्यञ्जना के रूप मे रसोई आदि मे तैयार करके खाना रस मे आसक्ति का हेतु होता है।

मछली म रसना का विषय बडा जबरदस्त होता है, जो भी इसके सामने जल मे फसा जाये, झट उसी को हडप करने की कोशिश करती है। शिकारी काटे मे मास का टुकडा, या कोई खाद्य वस्तु लगा कर जलाशय मे फेंक देता है। मछली जब इसे खाने आती है, शिकारी झटका देता है, और वह काँटा उसके मुख मे फँस जाता है, वह शिकार बन जाती है। इस रसना के कारण ही वह अपनी मृत्यु का आह्वान करती है।

इसी प्रकार रूप का विषय है। पतङ्गा मे रूप की आसक्ति होती है। जब दीपक जलता है, उसे देख कर दूर दूर से दौडे आते हैं, उस दीपक पर झपट कर दग्ध हो जाते हैं। इस दीपक के रूप मे हो इनकी आसक्ति इनकी मृत्यु का हेतु होती है।

हाथी स्पर्श के विषय मे बहुत फँसी है। शिकारी लोग इसको पकडने के लिये हथनी को लाकर रखा करते है। उसके कारण इसे बन्दी बना लेते हैं।

मृग, भालु आदि मे मधुर वाद्य को सुनने का अत्यन्त व्यसन होता है। एक बार हारवन के दाछी गाँव रख मे महाराज ने शिकार खेलने आना था। उन दिनो मैं वहाँ मुफती बाग मे निवास करता था। शिकारगाह मे नित्य प्रात सैर करने भी जाया करता था। पण्डित नारायण कौल इस रख मे जमादार के रूप मे इन्चार्ज थे। उन्होने कहा—'महरमा जी ! चलो आज आपको जगल मे शिकार का तमाशा दिखायेंगे। मैं भी उनके साथ चला गया। उनके पास एक प्रकार का बाजा शहनाई था। जब हम पन्चगाँव के चश्मे पर पहुँचे, वहाँ बैठ कर जल पिया, विश्राम भी किया। मैंने नारायण कौल को कहा—'यह किसलिये लाये हो ? बजा कर दिखाओ।' यह स्थान बहुत एकान्त शान्त वन मे आबादी से दो मील दूर था। जब पण्डित जी ने शहनाई बजाई तो जङ्गल से एक काला भालु वहाँ आ गया, और खडा होकर नाचने लगा। अत्यन्त प्रसन्न मुद्रा मे वह नृत्य और खेल कूद करने लगा। इसके इस कौतूहल को देखकर हँस हँस कर पेट मे दर्द होने लगा। १५-२० मिनट तक यह तमाशा देखने का अवसर प्राप्त हुआ। बाजा बन्द होते ही वह भालु उछलता कूदता जङ्गल म भाग गया। यदि उस समय चाहते तो वह बन्दूक की गोली का आसानी से शिकार बन सकता था। इस आँखो देखी घटना से यह सिद्ध हो जाता है कि कर्ण रस या शब्द की आसक्ति वनचरो मे भी अत्यधिक होती है, फिर मनुष्य का तो कहना ही क्या !

ये वनचर एक एक इन्द्रिय के विषय मे आसक्त हो जीवन गँवा बैठते है। यह मनुष्य तो वास्तव मे पाँचो इन्द्रियो के भोगो मे इतना आसक्त हो जाता है, कि पशु को भी उल्लघन कर जाता है। मरण-जन्म के चक्र को दृढ करता रहता है। इन भोगो के सग्रह मे अहर्निश लगा रहता है। मानो यह भोग ही धर्म-कर्म है। इसकी कभी भोगो से तृप्ति ही देखने मे नही आती है। मानव की अपेक्षा विषय-भोगो मे अनेक स्थलो मे पशु अधिक सन्तोषी देखने मे आता है। इन्द्रिय के भोगो की तृष्णा ही इसके लिये अनेक क्लेशो और दुखों का हेतु बनी रहती है, अनेक सकटो मे नियोजित करती रहती है। ये सब भोग असार हैं, वैराग्य को विरस करने वाले है। यदि सम्पूर्ण दोषो का मूल समझ कर इन विषय भोगो की कोई बुराई करे तो भी इनकी महिमा अति बलवती है, क्योकि ब्रह्मज्ञान के जिज्ञासु के हृदय में यह अवसर पाकर पनपने लगते है और उसको कुमार्ग-गामी बना देते है।

मोक्ष के जिज्ञासु को चाहिये कि सर्वप्रथम कर्मेन्द्रियो पर विजय प्राप्त करे। ये इन्द्रियाँ बलात् योगी को विषयो मे प्रवृत्त करने न पावें। इनके मुख मे लगाम देकर इनको काबू मे रखे। कर्मेन्द्रियो मे शिश्नि महाबलवान् इन्द्रिय है। इस पर विजय प्राप्त करने के लिये ब्रह्मचर्य व्रत धारण करना होगा और आठ प्रकार के मैथुन का परित्याग करना होगा। इसके त्याग से ही यह इन्द्रियाँ वश मे हो जाती है। वैराग्य की तीव्र भावना से काम भोग आदि के सस्कार भी क्षीण होकर शिथिल हो जाते है। योगी ब्रह्मचर्य व्रत को धारण कर, अष्ट प्रकार के मैथुन से विरक्त हो, एकान्त शान्त स्थान मे रह कर दीर्घ काल तक योग साधन करे, तब ही इन्द्रिय पर पूर्ण अधिकार होता है। इस एक इन्द्रिय का भोग ही अनेक अनर्थों का मूल बन जाता है। इस इन्द्रिय के उपभोग के लिये विवाह करना आवश्यक है। इसके पश्चात सन्तान भी होनी हुई, फिर उनका

पालन, पोषण, शिक्षण, विवाह आदि अनेक झंझट खड़े हो जाते हैं, जो अनेक प्रकार के बन्धनों का हेतु बन जाते हैं। इस प्रकार जन्म-मरण, कर्म और भोग का क्रम बनता ही रहेगा। इसलिये आत्मज्ञान और मोक्ष के जिज्ञासु के लिये जितेन्द्रिय होना अत्यन्त ही आवश्यक है। इन्द्रियों की विजयता के लिये साथ-साथ में वैराग्य की भावना को भी दृढ करते रहना चाहिये। विषयों और भोगों की असारता को विचार-विचार कर अपने आप को समझाते रहना चाहिये, क्योंकि मेघों में चमकती हुई विद्युत् के समान भोग क्षणिक सुख के ही हेतु अज्ञानता से जान पड़ते हैं।

असंख्य जन्म धारण कर यह मानव भोगों से तृप्त नहीं हुआ है। इस थोड़े में शेष जीवन में क्या आशा हो सकती है। फिर भी यह नादान मूढ पुरुष पुनः-पुनः विषयों और भोगों की उपलब्धि में रात-दिन परेशान रहता है। दिन में चैन नहीं, रात में नींद नहीं। हे चित्त ! बड़े कठिन परिश्रम से उपार्जित, और क्लेशदायी विषयों से तू अब उपराम हो जा। सर्व दुःखों का विनाश करने में समर्थ कल्याणकारी योग मार्ग का शीघ्र आश्रय ले, शान्त भाव से ब्रह्म चिन्तन में लग जा। जलतरङ्ग के समान चञ्चल अपनी गति को छोड़ कर, नाशवान् भोगेच्छा का सेवन मत कर। अपने वास्तविक स्वरूप में स्थिर होकर ब्रह्म में लीन हो जा। तथा च—

> 'भक्तिर्भवे न मरण जन्म भयं हृदि—
> स्यस्नेहो न बन्धुषु न मन्मथजा विकाराः।
> संसर्ग-दोष रहिते विजने निवासो,
> वैराग्य मस्ति किमत. परमर्थ नीयम् ॥
> भर्तृ वैराग्यशतक' श्लो० ७१ ॥

—ईश्वर में पूर्ण रूप से भक्ति हो। मरण और जन्म के दुःख का भय हृदय में न हो। भाई-बन्धु, इष्ट मित्र, स्त्री-पुत्र आदि में स्नेह न हो। चित्त में काम विकार न हो। इससे बढ कर और वैराग्य क्या है जो ईश्वर से माँगा जाये।

हे चित्त ! तू अपनी चञ्चलता से कभी कहीं दौड़ता है, कभी कहीं जाता है, सर्व दिशाओं में भटकता फिरता है, कभी आकाश में, कभी पाताल में। परन्तु कभी भूल कर भी अपने अन्दर सर्वव्यापक ब्रह्म का चिन्तन नहीं करता है जिस चिन्तन में तू परमानन्द को प्राप्त हो सकता है। इस प्रकार योगी को अपने चित्त को बार-बार समझाते रहना चाहिये और वैराग्य की भावना को दृढ करते रहना चाहिये।

इस वैराग्य की चार अवस्थाएँ होती हैं : १. यतमान, २. व्यतिरेक, ३. एकेन्द्रिय, ४. वशीकार।

१. यतमान अवस्था—इन्द्रियों को विषयों से दूर रखने या हटाने में, अथवा हटा कर अपने वश में रखने में जो विशेष प्रयत्न किया जाता है, उसको यतमान संज्ञक वैराग्य कहते हैं। इसे इस प्रकार समझें। बुद्धि में विषयों का अनुराग उत्पन्न होता है, उनकी निवृत्ति के लिए विषयों में बुद्धि से दोषों को देखे, उनको निस्सार जान कर उनमें इन्द्रियों को प्रवृत्त न होने दे। इनकी निवृत्ति के लिए अहर्निश प्रयत्नशील रहे। इस प्रकार यत्न करने से विषयानुराग का अभाव होने लगता है। विषयों के राग द्वेषात्मक

संस्कार चित्त में रहा करते हैं, विषयों में दोषात्मक बुद्धि होने से रागात्मक तथा द्वेषात्मक संस्कारों को भोग देने का अवसर नहीं मिलता क्योंकि योगी विषयों में प्रवृत्त होने वाली इन्द्रियों के निरोध करने में रात-दिन प्रयत्नशील रहता है। तब इन्द्रियों के भोग विषयक राग द्वेषात्मक संस्कार कुण्ठित हो कर अपनी प्रकृति समष्टि चित्त में प्रवेश करने के योग्य हो जाते है। इस प्रकार इन्द्रियविजय पाने में जो प्रयत्न विशेष है इसका नाम यतमान संज्ञा वैराग्य है।

२. व्यतिरेक अवस्था—विषयों में निरन्तर अहर्निश दोष देखते-देखते और वैराग्य की भावना को दृढ करते-करते जब यह ज्ञान होने लगे कि चित्त के इतने मल रूप दोष निवृत्त हो गये है, और इतने शेष है, उसे व्यतिरेक संज्ञक वैराग्य कहते हैं। इसका तात्पर्य इस प्रकार की समझें—दश प्रकार इन्द्रियों के दश प्रकार के विषय हैं। इनमें से कुछ इन्द्रियों पर तो वशित्व या अधिकार प्राप्त हो चुका है, और कुछ पर कर रहे है, और कुछ पर अधिकार करना शेष है। इस प्रकार जो प्रत्येक इन्द्रिय का पृथक्-पृथक् विज्ञान करना है, इसका नाम व्यतिरेक संज्ञा वैराग्य है। वास्तव में ये दोनों प्रत्याहार की सिद्धि की अवस्थाएँ हैं। प्रत्याहार में भी इन्द्रियों और विषयों पर वशित्व प्राप्त किया जाता है। वशित्व से इन्द्रियों के भोगों के संस्कार प्रकृति में जाने की तैय्यारी करने लगते है।

३. एकेन्द्रिय अवस्था—जब सब स्थूल और सूक्ष्म इन्द्रियों पर विजय हो जाये, और ये अपने विषयों में प्रवृत्त होने में कुन्ठित हो जाएँ, मन और बुद्धि के मण्डलों में इनके भोग या प्रवृत्ति आत्मक क्षोभ उत्पन्न न हो, मन और बुद्धि की प्रवृत्ति भी इनकी ओर न हो; तब इस वैराग्य की एकेन्द्रिय अवस्था होगी।

मन उभयात्मक इन्द्रिय है। कर्म और ज्ञानेन्द्रियों को व्यापार में प्रवृत्त करने से इसे भी ग्यारहवीं इन्द्रिय कहा है। इन दशों इन्द्रियों की प्रवृत्ति का कारण यह मन ही है। जब योगी का इस मन पर अधिकार हो जाये तब यह एकेन्द्रिय संज्ञक वैराग्य होता है। इस वैराग्य की अवस्था में पहुँच कर जब इन ग्यारह इन्द्रियों पर वशित्व हो जाये, तब ही योग के पञ्चम अंग प्रत्याहार की सिद्धि होती है। यहाँ से ही अन्तरंग योग में प्रवेश होता है। सम्प्रज्ञात समाधि द्वारा प्रकृति के कार्य कारणात्मक पदार्थों का विज्ञान; आत्मविज्ञान, और ब्रह्मविज्ञान प्राप्त करने में समर्थ होता है।

४. वशीकार अवस्था— दृष्ट और अदृष्ट दोनों प्रकार के भोगों की तृष्णा के संस्कारों का चित्त से नितान्त अभाव हो जाना, दोनों प्रकार के विषयों के उपस्थित होने पर भी उपेक्षा बुद्धि हो जाना, सर्वश्रेष्ठ वशीकार संज्ञा वैराग्य है। स्थूल इन्द्रियों के विषय दृष्ट अदिव्य कहलाते हैं। सूक्ष्म इन्द्रियों के विषय अदृष्ट या दिव्य कहलाते है।

पहली तीनों अवस्थाओं के वैराग्य एकाग्रता द्वारा सम्प्रज्ञात समाधि वाले होते हैं। चौथा वशीकार संज्ञा वैराग्य निरोध द्वारा असम्प्रज्ञात समाधि वाला होता है। अपर वैराग्य वालों की सम्प्रज्ञात समाधि होती है। पर-वैराग्य वालों की असम्प्रज्ञात समाधि होती है। इस पर वैराग्य का फल है। यथा—

'तत्पर पुरुषख्याते र्गुण-वैतृष्ण्ययम् ।'

योग० पा १ । सू० १६ ॥

—सबसे अन्तिम वैराग्य 'पर वैराग्य' के उदय होने पर प्रकृति और पुरुष—अर्थात् परमात्मा-जीवात्मा का विवेक—पृथक्-पृथक् ज्ञान हो जाने पर प्रकृति और उसके कार्यों से भी तृष्णा रहित हो कर कैवल्य भाव को प्राप्त कर लेता है।

इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार समझ—अदिव्य और दिव्य विषयों की तृष्णा से रहित हो जाना अपर वैराग्य है। योगी इन दोनों प्रकार के विषयों में दोष देख कर, इनसे विरक्त हो, आसक्ति का परित्याग कर, इनकी तृष्णा मे भी रहित हो, एकाग्र चित्त से सम्प्रज्ञात समाधि में स्थित हो, चित्त और पुरुष के सम्बन्ध का साक्षात्कार कर, इनके वास्तविक स्वरूप को भी प्रत्यक्ष- पूर्वक साक्षात् कर लेता है इसी का नाम विवेक-ख्याति या आत्म साक्षात्कार है। यह सम्प्रज्ञात समाधि की उच्चतम अन्तिम अवस्था है। इस अवस्था से भी वैराग्य होने लगता है, क्योंकि गुणों का परिणामात्मक कार्य ही तो चित्त है। अत इसके कारण गुणों, और उनकी कारण प्रकृति से पुन परम वैराग्य उत्पन्न होता है, क्योंकि अनादि काल से इनके साथ भोग करता आ रहा था। उन रागयुक्त सस्कारो का निरोध परम वैराग्य द्वारा कर के असम्प्रज्ञात समाधि मे सर्ववृत्ति और सर्वसस्कारो का अभाव कर देता है। इस दीर्घ काल के निरोध से ही मोक्ष या कैवल्य भाव मे स्थिति हो जाती है।

बाल्यकाल से ही सन्तो-महात्माओ के सम्पर्क मे रह कर हमे यह देखने मे आया है, जो ज्ञान वैराग्य की भावना लेकर बाल्यकाल से घर से निकलते हैं, अथवा बाल्यकाल मे ही कुछ पढ कर, योग की जिज्ञासा लेकर घर से निकलते हैं, वे महात्माओ, गुरुजनों के सम्पर्क मे रह कर दीर्घ काल तक पठन-पाठन, सत्सग अभ्यास और सेवा मे प्रयत्न-शील रहते हैं। इनमे यदि ज्ञान और वैराग्य की भावना दृढ हो जावे, और ससार के अनेक प्रकार के प्रलोभनो से जीवनपर्यन्त बचते हुए, आत्मज्ञान और ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति मे सम्पूर्ण जीवन की आहुति कर दें, तब इन महात्माओ का कर्त्तव्य पूरा हुआ समझना चाहिये। मानव जीवन की भी सफलता समझनी चाहिये। अनेक युवक घर से लड-झगड कर, या पढने या काम करने मे चित्त न लगने से, या निर्धनता के कारण, या घर मे खान-पान के अभाव से, या चित्तानुकूल विवाह के साधन न होने से घर से भाग निकलते हैं। ये प्राय बेलगाम के घोडे की तरह उच्छृ खल होते हैं। जिन अभावो के कारण घर से भागते है यदि दैव योग से बाहर निकल कर इनकी प्राप्ति हो जाय, तब तो ये इन्ही प्रलोभनो मे पड कर छुपी हुई तृष्णा की पूर्ति मे लग जाते हैं। आत्मज्ञान का श्रेय पथ इनको भी अच्छा नही लगता है। यदि सौभाग्यवशात् कहीं अच्छे महात्माओ के सत्सग मे पड जायें और वर्तमान के पुरुषार्थ से ज्ञान वैराग्य की भावना जाग्रत हो जाये, तब तो ये भी योग पथ पर चल कर आत्मज्ञान प्राप्त करने मे सफल हो जाते है। श्रेय मार्ग पर चलते हुए युवको को अनेक प्रकार का भय बना रहता है और अनेकों का पतन भी हो जाता है। वे इस श्रेय पथ से भटक जाते हैं। कोई विरला ही इस भवपाश से मुक्त हो पाता है। दूसरे वे व्यक्ति हैं जो भुक्त भोगी हैं। इन्हे हम वानप्रस्थी या सन्यासी कहेंगे। ये भी घर से निकलते हैं। परिवार से बाहर हो जाते हैं। कही तीर्थ स्थान पर

वास करने लगते हैं। कुछ परोपकार की भावना को लेकर लोक-सेवा अथवा जीविकार्थ कुछ कार्य करने लगते है। यदि वनस्थ बने है, और पत्नी साथ मे है, तब तो यह एक प्रकार का छोटा सा गृहस्थ ही होता है। जिस पत्नी के साथ रह कर सहवास या अग-सग मे साथ रह कर अनेक प्रकार के भोग भोगे हैं, इनके सम्पर्क मे रह कर अष्ट प्रकार के मैथुनो को त्याग कर, एक-दम अखण्ड ब्रह्मचर्य धारण कर लेना असम्भव नही तो अत्यन्त कठिन अवश्य है। इसी प्रकार स्त्री के लिए भी यह धर्म का पालन अत्यन्त कठिन होगा। हमारे पास कई स्त्री-पुरुष वानप्रस्थ की दीक्षार्थ आये। अथवा समझिये गुरुदीक्षा लेने आये। हमने कहा कि यदि आप दोनो मे बहन और भाई की भावना बन जाये, जैसा सगे बहन-भाई व्यवहार करते हैं, यदि ऐसा व्यवहार हो सके तो हम दीक्षा दे सकते है, क्योंकि यदि पति-पत्नी एक ही गुरु के शिष्य है, तो भाई-बहन का रिश्ता बन जाता है। पर आज तक कोई भी इस प्रकार की भावना बनाने को तय्यार नही हुआ। किसी भी वानप्रस्थ ने दीक्षा न ली। पत्नियो ने तो यह कहा कि हमसे इस प्रकार के कठिन धर्म का पालन नही हो सकता कि अब तक तो पत्नी रही और अब बहन या माता बन जावें। यह हमारे लिए असम्भव है। आप हमारे पति को ही गुरु-दीक्षा दे। लिखने का यही तात्पर्य है कि पत्नी के साथ मे रहते हुए बहन या माता की भावना पैदा कर लेनी कठिनतम साधना या कार्य है। यदि पत्नी मे अनुराग न हो तो साथ मे लेकर ही क्यो चले, और इकट्ठे ही क्यो रहे। साथ मे रहना ही राग और मोह है। जो बाल्य काल से बिना विवाह किये, घर छोड विरक्त हो, आत्मज्ञान और ब्रह्मज्ञान के लिए कठिन तप करते है, वे इस राग और मोह से बच जाते है। इनमे इस प्रकार का राग और मोह पैदा ही नही होता है। ब्रह्मचारी, वनस्थ या सन्यासी जो बडे-बडे आश्रम बना कर बैठते हैं, यह भी आधा गृहस्थ होता है। केवल पत्नी और अपने पैदा किये बच्चे नही होते हैं। अतः आश्रम भी बन्धन के ही हेतु होते है। इनके सञ्चालन करते हुए राग, द्वेष, क्रोध, लोभ का अभाव नही हो पाता है। इन दोषो को पनपने का अवसर मिलता है। वैराग्य की भावना शिथिल रहती है। दृढ नही हो पाती। मोक्ष का जिज्ञासु 'एकाकी विचरेत्'—अकेला ही विचरण करे। 'निराशा सुखी पिंगलवत्'—पिंगला नाम की वेश्या जार पति की प्रतीक्षा मे सारी रात द्वार पर खडी रही जब वह नही आए तो इसको वैराग्य हो गया। इसने वेश्या वृत्ति छोड दी, सर्व आशाओ को छोड कर सर्व प्रकार से सदा सुखी रहने लगी। 'बहुभिर्योगेविरोधे रागादिभिः कंकण कुमारीवत्'—योगी को अकेले ही रहना चाहिए, यदि समुदाय मे रहेगा, तो राग-द्वेष भावना हो सकती है। जैसे कोई कन्या बहुत सी चूडियाँ हाथ मे पहन ले तो हाथ के हिलने-जुलने से झन्कार या खड़का होने लगता है। यदि एक चूडी धारण की हो, तब कुछ भी खटपट नही होती है।

यह सब बुद्धि और चित्त के धर्म है। जहाँ दस प्रकार की इन्द्रियो के विषय से विरक्त होना है, वहाँ इन बुद्धि और चित्त के धर्मों से भी विरक्त होना है क्योंकि राग, द्वेष, मोह, लोभ, क्रोध, अहकार आदि इन्ही के धर्म है। हम वर्णन कर रहे थे भुक्त भोगियो का, जो बहुत वर्षों तक गृहस्थ मे रह कर सन्यासी बनते है। जिन परिवारो को छोड वह कर गये थे, उनके साथ पुन. सम्पर्क बना लेते हैं और कुछ-न-कुछ निमित्त बना

कर अपने घर, ग्राम, शहर से सम्बन्ध रखते है। इनके आले दिवाले घूमते फिरते है। इनकी सहायता भी करते है। इनके दु ख मे दु ख और मुख मे मुख अनुभव करते हैं। इनमे भी राग, मोह, लोभ, अहकार आदि का भी अभाव होने मे नही आता है। सन्यास तो घर से ही लिया था, विरक्त तो इसी से बन कर चले थे। मेल जोल से पुन परिवार के राग और मोह के सस्कार जाग उठते हैं। यह केवल नाममात्र का ही सन्यास कहलायेगा। ये भी वास्तव मे मोक्ष पथ या श्रेय मार्ग के पथिक नही बने हैं। अभी इनको परम वैराग्य पैदा नही हुआ है।

राग द्वेष मोह आदि का कारण पत्नी, पुत्र, सम्बन्धी ही होते हैं। और इनमे भी मुख्य रूप से पत्नी ही होती है। इसका अनुराग जीते हुए बडी कठिनता से दूर होता है। कोई विरला महान् आत्मा ही इस राग से मुक्त हो पाता है। जब तक चेतन और जड से परम-वैराग्य नही होता, तब तक मुक्ति की सम्भावना नही हो सकती। चेतन से तात्पर्य है स्त्री, पुत्र, पुत्रियें, मित्र, बन्धु, या अन्य शिष्य शिष्यायें, अथवा ससार के स्त्री, पुरुष, पशु, पक्षी आदि जीवन धारणकरने वाले प्राणी। जड से अभिप्राय है—धन भूमि, आश्रम, मकान आदि जितने भी भोक्तव्य पदार्थ हैं जिनसे हमे सुख की अभिलाषा है। इनसे सुख की अभिलाषा ही तृष्णा की जनक है। जहाँ सुख है वहाँ दु ख भी अवश्य ही होगा। ये सुख-दु ख ही तृष्णा को पुष्ट करते है। इनसे यह पनपती हैं। फिर इनसे सस्कार बन कर अविद्या की जड को दृढ बनाते हैं। अविद्या जन्म-मरण और बधन का हेतु होती है। अविद्या का वास चित्त मे होता है, जो पञ्च क्लेशो के रूप मे है। ये ही आत्मा को बाँधे रखते हैं। यथा—

'चित्तमेवहि ससारो रागादि क्लेश दूषितम्।
तदेव तैर्विनिर्मुक्त भवान्त इतिकथ्यते ॥

महो०अ० ४। म० ६६॥

केवल मात्र मानव जीवन की आयु का चौथा भाग सन्यास आश्रम ही मोक्ष प्राप्ति का मुख्य हेतु है। यदि आयु के इस चौथे भाग मे भी जड चेतन से परम वैराग्य धारण कर के—विरक्त हो कर मोक्ष को प्राप्त कर लिया तब तो इस मनुष्य जीवन को सार्थक समझना चाहिए, और इसके वास्तविक लक्ष्य की पूर्ति समझनी चाहिए। इस मानव जीवन के उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही मैं ने विक्रम् सवत् २०१६ मे वैशाख मास की सक्रान्ति को हरिद्वार मे चतुर्थ आश्रम सन्यास को धारण किया था। आयु भी चौथी प्रारम्भ हो गई थी। ब्रह्मचर्य आश्रम से एकदम छाल मार कर गृहस्थ और वानप्रस्थ को उल्लघन कर सन्यास आश्रम मे पदार्पण किया। तत्व विज्ञान और मोक्ष की अभिलाषा रखने वालेको इसी प्रकार का आचरण करना सर्वश्रेष्ठ धर्म होगा। यही एक जीवन मे मोक्ष प्रदान कर सकता है। अत बाल्य काल से ब्रह्मचर्य का धारण करके कटिबद्ध होकर लग जाना चाहिए। इस मानव देह की यथार्थसाध पूरी हो जायेगी। यह पूर्ण रूप से कृतकृत्य हो जायेगा। इस प्रकार ही सब नर-नारी जन्म मरण और भोगो की कठिन यातनाओ और वेदनाओ से मुक्त हो सकते है।

हमने आत्मज्ञान और ब्रह्मज्ञान के जिज्ञासुओ के लिए अपर और पर वैराग्य के

स्वरूप का विशद् रूप से वर्णन किया है। और इसकी साधनाओं का भी उल्लेख कर दिया है, इस ग्रन्थ में आगे भी प्रकरणानुसार करेंगे, जो मोक्ष प्राप्त करने में अत्यन्त ही सहायक और उपयोगी सिद्ध होगा और मोक्ष और कैवल्य प्रदान करने वाला होगा। इसके अनन्तर प्रकृति की वंशावली देकर सर्वप्रथम समष्टि पृथिवी महाभूत में ब्रह्मज्ञान का प्रारम्भ करते हैं।

इति विषय प्रवेश विज्ञान प्रक्रिये
इति प्रथमाध्याये प्रथम खण्ड

द्वितीय खण्ड

(३३वाँ आवरण)

समष्टि पृथिवी महाभूत, पाँचों रूपों में ब्रह्म-विज्ञान

हमने सर्वप्रथम ब्रह्मज्ञान और उसकी उपासना का विषय पृथिवी महाभूत को माना है। पृथिवी के पाँच रूप है। उनमे पृथ्वी का विज्ञान और साथ ही साथ ब्रह्म का भी विज्ञान प्राप्त करना है। हमने इसी प्रकार सब पदार्थों के विज्ञान की पाँच-पाँच अवस्थाएँ दर्शायी है। इन पाँचो अवस्थाओ मे क्रमश. पदार्थ का भी ज्ञान होता जाता है, और उसके परिणाम और परिवर्तन के स्वरूप का भी, ईश्वर इन सब अवस्थाओ मे वर्तमान रहता ही है—अपनी चेतन-शक्ति द्वारा परिवर्तन कर रहा है, उससे उसका भी ज्ञान साथ-साथ मे होता जाता है। इस प्रकार प्रत्येक परिवर्तन मे ब्रह्म की अनुभूति का पुन. अभ्यास उसकी व्यापक चेतन सत्ता को साधक के हृदय मे अकित कर देगा।

साधकवृन्द ! आपने अपनी समाधि का विषय पहिले पृथिवी को बनाना है जिस पर आप बैठे है। इसके भी पाँच रूप है—

१. स्थूल रूप—अपना-अपना विशिष्ट आकार स्थूल रूप है। इसमे नाम, रूप, प्रयोजन बता कर परस्पर का भेद बताया जाता है।

२. स्वरूप—अपने-अपने नियत गुण-धर्म जिनसे ये जाने जाते हैं, जो अपने सजातीय मे समानता से पाये जाते है। गुणी के साथ इन गुणो का स्वरूप सम्बन्ध है। गुण और गुणी पृथक्-पृथक् नही हैं। गुण और गुणी मे अभेद है। अभेद का नाम ही स्वरूप है। यह सम्बन्ध अयुत-सिद्ध है—अर्थात् अवयवो का अलग-अलग भान नही होता। सारा का सारा द्रव्य एक ही जान पडता है जैसे वृक्ष या परमाणु। इनके अलग-अलग अवयव नही जिनको जान कर सघात का ज्ञान होता हो। अत. जो कुछ भासता है, वह उसका स्वरूप ही है।

३. सूक्ष्म रूप—जिस अवस्था से परिणाम होकर इस रूप मे आया है उस पहली अवस्था को सूक्ष्म रूप कहते है। पृथिवी महाभूत का सूक्ष्म रूप गन्धतन्मात्रा है।

४. अन्वय रूप—मूल प्रकृति के साथ परम्परागत सम्बन्ध का निर्देश उस पदार्थ का अन्वय रूप है।

५ अर्थ-वत्त्व रूप—प्रयोजन का निर्देश अर्थवत्त्व है। सब ही पदार्थ पुरुष के भोग और अपवर्ग के लिए परिणाम को प्राप्त हुए है, अर्थात् इन पदार्थों मे भोग और मोक्ष प्रदान की सामर्थ्य है। इसको दिखाना पदार्थ के अर्थवत्त्व रूप को दिखाना है।

अब पृथिवी की इन पाँचो अवस्थाओ को सर्वप्रथम आपने अपनी समाधि द्वारा प्रत्यक्ष करना है और इस पृथिवी की प्रत्येक अवस्था मे ईश्वर को भी देखना है, समझना है। इन अवस्थाओ का प्रत्यक्ष ही ब्रह्म का साक्षात् प्रत्यक्ष करायेगा।

समष्टि पृथिवी महाभूत मण्डल ! प्रथम रूप में ब्रह्म-विज्ञान

(पृथिवी का प्रथम रूप)

१ **पृथिवी के स्थूल रूप मे**—सृष्टि रचना मे पृथिवी महाभूत अन्तिम परिणाम रूप कार्य अवस्था है—पृथिवी महाभूत के निर्माण से पूर्व जल महाभूत तक सब भूतो का निर्माण हो चुका होता है । अब तक गन्धतन्मात्रा को छोड कर अन्य सब तन्मात्राये परिणाम भाव को प्राप्त हो कर जलादि महाभूत तक परिणत हो चुकी है । केवल पृथिवी तन्मात्रा बची हुई है । यह गन्धतन्मात्रा का सूक्ष्म से भी सूक्ष्म रूप ही पृथिवी महाभूत मे पलटने जा रहा है । इसमे गति और प्रकाश दोनो का अभाव सा है—इसका ज्ञान रहित जड रूप ही इस अवस्था मे वर्तमान है । यह स्वय अपने आप विना किसी चेतन सत्ता के कैसे परिणाम को प्राप्त हो । विना गति आये किसी अन्य से सयुक्त भी नही हो सकती । विना किसी के सयोग के परिणाम भी कैसे हो । बिना सयोग सृष्टि-क्रम कैसे बढे ।

सर्वप्रथम यह संयोग स्वभावत जल के साथ हुआ । जल ने गन्ध-तन्मात्रा का सन्धान करना प्रारम्भ किया । जल से सयुक्त गन्धतन्मात्रा मे अग्नि तत्त्व भी उपयुक्त मात्रा मे भगवान् के सन्निधान रूप निमित्त कारण से सयुक्त हुआ । अग्नि के मिलते ही रूप पलट जाता है । जो गन्धतन्मात्रा अब तक सूक्ष्म नासिका और केवल रसना विषय बनी थी, अब अग्नि भूत के मिलते ही अग्नि की ही परिणाम भूत आँखो से देखी जाने के योग्य बन गयी—उसमे रूप उत्पन्न हो गया ।

भगवान् के सन्निधान से अग्नि जल से सयुक्त गन्धतन्मात्रा मे वायु तत्त्व भी उपयुक्त मात्रा मे मिलना आरभ हो जाता है । वायु के मिलते ही पृथिवी की इस अवस्था मे स्पर्श की अनुभूति होने लगती है । आकाश तो सर्वत्र व्यापक सा था ही, उसका भी इसके साथ सम्मिश्रण हो गया । सर्वप्रथम परिणत होते हुए इस पृथिवी मे आकार धर्म या गुण उत्पन्न हुआ ।

. १ **आकार**—जब इस प्रकार स्थूल महाभूत पृथिवी की रचना पूर्ण हुई तो सर्व प्रथम इसमे आकार धर्म अभिव्यक्त हुआ । जो अवयव विशेप प्रकार से रखे गये वही सन्निवेश विशेप आकार रूप मे प्रकट हुआ । यह आकार धर्म ही ससार भर की ८४ लाख योनियो, वन-पर्वत, नदी-नदो, वनस्पति, ताल-सरोवरो आदि मे प्रकट हुआ । यदि यह आकार धर्म न होता तो व्यक्तियो को पहचानना कठिन हो जाता या असभव ही हो जाता । सारे व्यवहार ठप हो जाते । आकार को देख कर जो बुरे-भले, गुणी-अवगुणी, अनुकूल प्रतिकूल आदि भावो की पहचान हो जाती है वह कुछ भी न हो पाती । यदि आकार न होता तो कोई किसी से राग या द्वेप कैसे करता । राग-द्वेप ही न होते तो चेतन से बने चित्तो के साथ बन्धे चेतन जीव का वन्ध मोक्ष कैसे होता । यह दृश्यमान जगत् न वन्ध का कारण बन सकता न मोक्ष का । भगवान् के सन्निधान से ही इस चेतन सी बनी पृथिवी मे विभिन्न प्रकार के असख्य आकार बने ।

२ **स्थिरता**—इस ब्राह्मी चेतन सत्ता के सम्बन्ध से इस आकार रूप धर्म से पूर्व जो प्रमाणु प्रतिक्षण गतिशील बने हुए थे, वे स्थिर भाव को प्राप्त हुए । तब इनमे स्थिरता

रूप धर्म आया। परिणामिनी प्रकृति भी पार्थिव रूप मे आकर दीर्घ-कालीन स्थिर भाव को प्राप्त हुई। प्रलय काल पर्यन्त इसकी आयु स्थिर हुई। इसी स्थिरता धर्म के कारण पर्वतमालाओ, हीरे आदि रत्नो, सोना-चान्दी आदि धातुओ मे स्थिरता आयी। पर्वत आदि तो इतने स्थिर हो गये कि हिलाये से भी नही हिलते। हीरा, सोना आदि शताब्दियो तक विकृत नही होते। यह स्थिरता इतनी जमी कि वन, पर्वत, सागर आदि के स्थिर भाव को देख कर मानव को यह परिणामिनी प्रकृति ही स्थिर और स्वतन्त्र किर्त्री दिखाई पडने लगी। जिसके सन्निधान के कारण यह सब कुछ हो रहा है वह तो छुप ही गया। और नास्तिकता का साम्राज्य छा गया। इस अभ्यास के द्वारा परब्रह्म का साक्षात्कार ही इस नास्तिक-भाव का उन्मूलन कर सकता है।

३ गुरुत्व—जिस पदार्थ मे आकार और स्थिरता रूप धर्म पैदा हो जाता है उसमे गुरुत्व धर्म स्वत ही आ जाता है। इस आकार को स्थाई रूप देने के लिए इसमे भारीपन आना आवश्यक है। भारीपन ही तो गुरुत्व है। इस प्रकार यह पृथिवी गुरुत्व धर्म वाली हुई। इन पार्थिव और जलीय परमाणुओ के सघात मे गुरुत्वादि धर्मो को पैदा करने मे अग्नि का पावक रूप धर्म सहकारी हुआ—स्थिरता और गुरुत्व धर्म अग्नि के पावक धर्म के ही कारण आये।

आकार तो गाय, हाथी के बने चित्र मे भी है। पर उस चित्र मे गाय के समान दूध नही, दूहा जा सकता, न ही गोग्रास आदि खिलाया जा सकता है। इसी प्रकार चित्र वाले हाथी पर सवारी नही की जा सकती, न सम्मानित करने के लिये उस पर किसी महामहिम की सवारी निकाली जा सकती है। गाय या हाथी के चित्र को गाय या हाथी समझ कर खरीदा या बेचा नही जा सकता। गाय सैकडो की और हाथी हज़ारो के मूल्य का होता है, यह चित्र तो दो चार आने या अधिक से अधिक दो चार रुपये का होगा। यह मूल्य सब गुरुत्व आदि का, है जो चित्र मे नही हैं, वास्तविक गाय या हाथी मे ही है।

गाय, हाथी, देवता, नेता आदि के बने सुन्दर आकार वाले चित्र को भेंट भले ही लो, बहुमूल्य मे चाहे बिक जायें, पर उस व्यक्ति के समान व्यवहार नही किया जा सकता है जिसका वह चित्र है। क्योकि चित्र मे केवल आकार है। गुरुत्व नही। यदि आकार के साथ गुरुत्व मिल जाये तो वह अधिक व्यवहार योग्य हो जाता है। इसी कारण चित्र की अपेक्षा सुन्दर खिलोनो मे अधिक आकर्षण होता है और मूल्य भी मूर्ति का चित्र की अपेक्षा अधिक होता है। चित्र मे इतनी सजीवता नही आती जितनी मूर्ति मे। इसीलिए चित्र की अपेक्षा भगवान् की मूर्तियो की अधिक कल्पना हुई। वास्तव मे आकार तो अग्नि का पृथिवी पर एक प्रकार का रूप का मुलम्मा ही ता है। भार तो पृथिवी मे ही है। अन चेतन सत्ता की समीपता के कारण पार्थिवाश की प्रचुरता होने मे आकारवान वस्तु ही भार वाली बन जाती है उसमे गुरुत्व धर्म आ जाता है।

यह गुरुत्व धर्म सृष्टि मे बडे-बडे कार्य करता है। जीव के भोग-सम्पादन का साधन बनता है। यह गुरुत्व धर्म ही आंधी और पानी की बाढ का मुकाबला करता है। बडे-बडे गुरुत्व धर्म वाले भारी भारी पत्थरो या सीमेन्ट की दीवारो मे [illegible]

बनाये जाते है, जो बडे-बडे नदो की वर्षा-कालीन बाढ को रोक कर ग्रामों और नगरो को डूबने से बचाते है। यह गुरुत्व धर्म ही बडे-बडे भाखडा और नागल जैसे महासरो (डेमो) को तैयार करने मे समर्थ होता है, जिससे हजारो मीलो के खेतो की सिचाई होती है। महासर से तैयार की हुई बिजली से नगरो मे प्रकाश होता है, और बडे-बडे कल-कारखाने चलते है। गुरुत्व धर्म ही बडे विशाल भवनो और दुर्गो को भूचाल आदि मे एव शत्रु के आक्रमण के समय बचाता है। गुरुत्व धर्म धातुओ एव खनिजो की शुद्धि मे सहायक सिद्ध होता है—*भारी वस्तु नीचे बैठ जाती है, हल्की ऊपर आकर पृथक् कर दी जाती है*। गुरुत्व धर्म के कारण ही बडे-बडे स्तम्भ शताब्दियो पर्यन्त अडिग रहते है, और इतिहास को जीवित रखते है। गुरुत्व के कारण ही मनुष्य और मकान आकाश मे उडने से बचे हैं। यह सोने, चाँदी की मुद्राओ को दीर्घ काल तक सुरक्षित रखता है। फौलाद और इस्पात के हथियार इस गुरुत्व के कारण ही चिरस्थायी है।

४ कठिनता—अग्नि के सहयोग से ही पृथिवी मे कठिनता रूप धर्म आता है। इसकी पाकज रूप क्रिया ही इस धर्म को उत्पन्न करती है। ये सब गति क्रियायें ब्रह्म की चेतन सत्ता से वर्तमान होती हैं। जैसे मोटर मे गमन करने की शक्ति है परन्तु वह ड्राइवर के चालन की अपेक्षा रखती है। इसी प्रकार पृथिवी महाभूत भी मोटर के समान जड ही है, उसमे गमन या क्रिया करने की शक्ति भी है, परन्तु वह चेतन सत्ता की अपेक्षा करती है सचालित होने के लिये।

पृथिवी की यह कठोरता गुरुत्व को बनाये रखती है। गुरुत्व की रक्षा के लिये कठोरता का आना आवश्यक है। अन्य भूतो की न्यूनता होने से पार्थिव पदार्थो मे कठिनता आती है। अन्य भूतो की मात्रा बढ जाये तो वे द्रवीभूत हो जाते है। पानी मे पडकर चूना, मिट्टी, खडिया, खाण्ड, रंग, नमक आदि सब घुल जाते हैं। अग्नि मे पडकर सोना, चान्दी, लोहा भी पानी जैसे बन जाते हैं, और जब इस अग्नि का युक्तिपूर्वक प्रयोग किया जाये तो यह धातु आदि के दोषो एव जलीय अश को नष्ट करके उसे पक्का बना देती है। मिट्टी के बरतन अग्नि मे पडकर पक्के हो जाते हैं। वे कच्चे की अपेक्षा कठोर होते है। खडिया लाख के साथ अग्नि मे पड कर चीनी के पानो का सुन्दर और दृढ रूप धारण कर लेती है। कच्चा लोहा अग्नि मे पडकर पक्का बन जाता है। और पक्का भी तप कर स्टील या फौलाद तक बन जाता है। इस फौलाद के ही शस्त्रास्त्र एव दृढतम कल पुर्जे बनते हैं।

यह कठिनता ही युद्ध मे विजय का हेतु बनती है। जिसके शस्त्रास्त्र एव जवान कठोर होंगे वही विजयी होगा। कठिनता चिरस्थायी है। कठिनता ही रक्षक का काम करती है। बादामो, अखरोट, पिस्ता आदि का कठोर छिलका ही गिरी की रक्षा करता है। कठिन या कठोर हड्डी ही शरीर के ढाचे को सुरक्षित रखे है। एटम बम का बाह्य कठोर आवरण ही तो परमाणु के विकीर्णों को अन्दर सुरक्षित रखे है। कठिन आवरण के टूटते ही हिरोशिमा और नागासाकी सदा के लिये ध्वस्त हो गये। पृथिवी का ऊपर का कठोर आवरण ही तो भूगर्भ मे निहित बहुमूल्य रत्नो की रक्षा किये है। फौलाद के कठिनतम टोप ही तो युद्ध मे सिर की रक्षा करते हैं। इन सब पदार्थो मे कठिनता

पृथिवी का ही धर्म है इस कठिनता के निमित्त भूत परमात्मा की सर्वत्र व्यापकता को ही अभ्यासी को साक्षात्कार करना होता है।

५ आच्छादन—जब उपरोक्त गुणो से पृथिवी सम्पन्न हो जाती है, तब प्रभु के सबमे समीपतम होने के कारण पृथिवी तन्मात्रा का मुख्य तमोगुण आच्छादन रूप धर्म का धारण कर लेता है। इसकी ओट मे या इसके नीचे जो वस्तु आ जाती है, उसे यह आच्छादित कर लेती है, ढक लेती है। दिखने नही देती। जीव-जन्तुओ तक ने अपनी रक्षा के लिये, पृथिवी के आच्छादन धर्म का उपयोग किया। भटो मे, बिलो मे, मान्दो म, गारो मे अपने से बलवान् के प्रति अपनी रक्षा के लिये रहने लगे। साप, बिछू भी बिलो म छुपकर अपनी जान बचाते हैं। भेडिये, सियार भटो मे अपने को आच्छादित कर आत्म-रक्षा करते हैं। चूहे, नेवले आदि बिलो मे छिपते हैं। सिंह, चीते मान्दो म आत्म-रक्षा करते हैं। हाथी, गेण्डे जैसे बली जन्तु भी गारो मे अपनी जान छुपाते हैं। मानव भी इनसे और एक दूसरे से अपने को तथा अपने कार्य-कलाप को छुपाने, एव जन्तु डाकुओ आदि से रक्षा करने के लिये, पृथिवी के आच्छादन धर्म के आधार पर ही अपनी झोपडियाँ, कुटिया, मकान, महल और बडे किले बनाता है। मध्यकाल मे इसी आच्छादन गुण के कारण नगरो के बडे परिकोटे और फसीलें बनाई गयी। इस आच्छादन गुण के आधार पर ही बडे तहखाने, कोठियाँ, अलमारी, सन्दूक, ट्रक और तिजूरियाँ बनी। इस आच्छादन गुण के प्रभाव से सृष्टि के आरम्भ काल से लेकर आज तक अरबो वर्षो से हीरे, पन्ने, मोती, लाल, सोना, चान्दी, लोहा, ताबा आदि अमूल्य रत्न-राशि इस माता वसुन्धरा के गर्भ मे निहित हैं। इस आच्छादन धर्म के कारण ही विशाल कोयले की खानें, तेल और पैट्रोल के तालाब या समुद्र माता विश्वभरा के गर्भ मे छुपे पडे हैं। पृथिवी का यह आच्छादन धर्म ही मानव देह के अन्दर भरे घिनौने मास, हड्डी, मज्जा, रुधिर, मल-मूत्र, नस, नाडी को आच्छादित कर रग रूप के अभिमान और घमण्ड को पनपाता रहता है। यह आच्छादन धर्म ही बडे-बडे नालो, नालियो द्वारा दुर्गन्ध से भरे मल-मूत्र एव गन्दे सडे पानी को नीचे ही नीचे सबको आच्छादित कर दूर ले जाकर डाल देता है, और प्राणी मात्र को भयकर रोगो से बचा लेता है। इस आच्छादन गुण के कारण ही ट्यूबो और सैलो मे सब ओर से ढकी सुरक्षित औषधियाँ चिरकाल तक सुरक्षित रह जाती हैं। इस आच्छादन के कारण ही बन्द टीनो मे फल, मेवे, बिस्कुट, मुरब्बे, आचार, सुदीर्घ काल तक सुरक्षित रहते है। इस आच्छादन गुण के कारण मानव और पशु के मल और गोबर को उपयोगी खाद मे पलटा जाता है। यह आच्छादन ही मानव को कपडों द्वारा शीत और उष्णत्व से बचाता है। इस प्रकार इस आच्छादन का अनन्त विस्तार है, जो अनन्त भगवान् की सर्व व्यापक सत्ता की सदा व्याख्या करता रहता है। भगवान् की सर्वत्र साधना सर्वत्र अनुभूति ही ब्रह्म ज्ञान का परिपाक है।

६ विदारण—तत्पश्चात् इसमे अग्नि के योग से या अपनी कठोरता के कारण विदारण धर्म—तोड फोड खण्ड खण्ड करने की योग्यता भी आ जाती है। पृथिवी की ऊपर की परत शनै शनै कठोर हो चुकी होती है। पृथिवी के भीतर की ऊष्मा या तरल पदार्थ पृथिवी को तोड फोड कर बाहर निकल पडते है। पृथिवी के ही विकार वृक्ष आदि वनस्पति धरातल को विदीर्ण कर बाहर निकल आते हैं। वृक्ष को वृक्ष इसीलिये कहते हैं,

वृश्चिनोति इति वृक्षः । पृथिवी को फाडकर निकलता है इसलिये वृक्ष कहलाता है । बड़े-बडे पर्वत खण्ड जहा टूट कर गिरते है, तोड फोडकर देते हैं । पृथिवी मे विदारण गुण है इसीलिये पृथिवी को विदारण कर बावडी, सरोवर, स्रोत, नहर आदि का निर्माण हो जाता है । इसी विदारण गुण के कारण ससार की सब से बडी स्वेज नहर भूमि का विदारण कर बनाई जा सकी, और दोनो समुद्रो का यातायात जारी हो गया । पृथिवी का विदारण गुण ही युद्ध के समय नगरो मे तथा युद्ध-भूमि मे बडी-बडी खाइया, ट्रेंचे खुदवाने मे समर्थ होता है, जिससे नागरिको की और सैनिको की रक्षा होती है । विदारण गुण के कारण ही भूगर्भ मे गृह, नल, नाले, और तारे दबायी जा सकी है, और भूतल की बचत की जा सकी । दुर्गम पहाडो की चोटियो पर इस विदारण के कारण ही मानव आरोहण कर विजय पा सका है । इस विदारण सामर्थ्य के कारण ही गगोत्तरी से निकल कर गगा पर्वतो का विदारण कर भारत भूमि को पावन कर सकी । इस विदारण सामर्थ्य से ही गगन चुम्बी शिखरो पर पगडण्डिया बन सकी, उनके द्वारा मानव वहा से औषधि और वनस्पति ला सका । इस विदारण सामर्थ्य से ही बञ्जरो और रेगिस्तानो मे ट्यूबवेल बनाये जा सके, और इलाके के इलाके हरे भरे हो गये । ससार भर के मित्र अमित्र देश इसी विदारण के कारण पृथिवी मे आर पार सुरग बनाने की योजना बना सके है, जिसके द्वारा पृथिवी के गर्भ मे छिपी अमूल्य रत्नो की स्तरो का पता लग जायेगा । इस विदारण के कारण ही जब पृथिवी मे भूकम्प होता है तो अग्नि, लावा, जल आदि बाहर निकल आने मे समर्थ हो जाते है, और पृथिवी विनाश से बच जाती है । यह विदारण विनाश भी करता है, और बडे लाभ भी पहुँचाता है, इस प्रकार कर्म भोग के निबटाने मे प्रभु की चेतना के कारण समर्थ होता है । इस विदारण के साथ-साथ विद्यमान प्रभु की सत्ता का साधक को अभ्यास मे अनुभव करना चाहिये ।

७. रूक्षता—पृथिवी के गर्भ मे निहित ऊष्मा और बाह्य सूर्यादि की ऊष्मा के कारण पृथिवी मे पाकज-रूप धर्म वर्तमान रहता है । इससे पृथिवी मे रूक्षता, शुष्कता या सूखापन धर्म आ जाता है । जो प्रत्यक्ष रूप से सब के अनुभव मे आ रहा है । पृथिवी सूखी है । जब जल का अश सर्वथा निकल सा जाता है, तो यह शुष्क बालु के रूप को धारण कर लेती है । पृथिवी की शुष्कता ही, दैनिक व्यवहार मे आने वाले पानी के बडे भारी भाग को सोख लेती है । पृथिवी का शुष्कता धर्म ही कपडे के धोने मे उपयोगी होता है । कपडे पानी को सोख लेते है, अधिक जल पडने पर पानी के द्वारा निकाले मैल को बाहर फेंक देते है । यह शुष्कता धर्म ही रेत और स्याहीचूस द्वार स्याही को सुखा देता है ।

पृथिवी की रूक्षता ही चौमासे की वर्षा और सिंचाई के जल के बडे भारी भाग को खपा जाती है । यह रूक्षता धर्म ही दल-दल वाली भूमि को रूखी-सूखी मिट्टी डालने पर शुष्क समतल भूमि बना डालता है । वर्षा काल मे जब कच्ची भूमि कीचड के कारण पशुओ के लिये कष्ट-प्रद हो जाती है, उस समय यह शुष्कताधर्म वाली मिट्टी ही स्थान को सूखा बना पशुओ को आराम देती है । जब कच्चे मार्ग और रेतीले दगडे कीचड के कारण यातायात के योग्य नही रहते तब सूखी मिट्टी की शुष्कता का योग ही उन्हे चलने फिरने

के योग्य बनाता है। शुष्कता पृथिवी का स्वाभाविक धर्म है। पृथिवी गीली हो जाने पर भी पुन वायु, अग्नि और धूप के संयोग से सूखी हो जाती है, अपने वास्तविक रूप में आ जाती है। पाचों भूतों का पृथिवी में अयुतसिद्ध समुदाय होते हुए भी शुष्कता का बना रहना सर्वत्र विद्यमान रूप ब्राह्मी चेतन सत्ता का बोध साधक को कराता है।

८ कृशता—जहा रूक्षता होती है वहा अनायास ही कृशता धर्म भी आ जाता है। पृथिवी का अपना धर्म कृशता है, पानी और अग्नि के संयोग से इसमें विस्तार आ जाता है। हरी लकड़ी मोटी होती है, पानी के योग से, सूखने पर तनी हो जाती है। हरे फल शाक सुखाये जाये तो कृश हो जाते है। अगूर मोटे मोटे भी सूखकर पतली-पतली किशमिश बन जाती हैं। मोटी मोटी अदरक की गाठें सूख कर छोटी-छोटी सोठ बन जाती हैं। हरा अजीर बहुत मोटा होता है, सूखा हुआ पतला कृश। जल से फूली गीली ईटें सूखने पर पतली हो जाती है। वर्षा काल में फूली लकडी गरमी म स्वाभाविक रूप में आकर पतली हो जाती है। अग्नि के कारण फैला लोहा, आदि धातुए अग्नि निकल जाने पर स्वाभाविक रूप मे कृश हो जाती हैं। रेल के आने पर लोहे की पटरी रगड की गर्मी मे फैल जाती है। इसीलिये पटरियो के बीच मे आधा इन्च के लगभग स्थान पटरी के फैलने और स्वाभाविक रूप मे आने के लिये छोड दिया जाता है। यदि पटरी कृशता धर्म का पालन नही करती तो रेल के आने पर सदा पटरी पर पटरी चढ जाती।

कृशता का दूसरा अर्थ कुरेदा जाना भी है।

कृश—विलेखने धातु से। भूमि मे ही कुरेदे जाने की सामर्थ्य है। पानी अग्नि, वायु आदि कुरेदे नही जा सकते। वे तत्काल अपने रूप मे आ जाते हैं इसीलिये भूमि को जोतकर कुरेदकर हल चलाया जाता है। उन सीमाओं के मध्य बीज बोया जाता है। गोभी, शकरकन्दी आलू आदि के पौधों पर मिट्टी को कुरेद-कुरेद कर चढाया जाता है, यदि मिट्टी मे कुरेदे जाने की सामर्थ्य नही होती तो खेती करना दुष्कर हो जाता। यह कृशता का भाव विदारण के साथ समता रखता हैं। इसलिये पहला अर्थ ही यहा लेना सुसगत है।

९ सर्व भूताधारता—पृथिवी के निर्माण काल मे ये धर्म अनेक वर्षों मे शनै शनै आते हैं। इस अवस्था मे पहुँचने के लिये पाकज-रूप क्रिया अपना काम समाप्त कर शिथिल सी हो जाती है और भगवान् की सर्वव्यापक सत्ता की मौजूदगी मे इसमें सर्व-भूताधारता धर्म आने लगता है। इस पर चेतन सृष्टि ने उत्पन्न होना है। ८४ लाख योनियो मे नाना प्रकार के भिन्न भिन्न भोगो वाले भूतों—प्राणियों—जीवों का इसने आधार बनना है। इसीने सब का पालन पोषण रक्षण करना है। तभी तो सर्व भूताधार बनेगी।

देव मनुष्य, कीट पतग, कीडी कुन्जर, सरीसृप, दश, मशक, वनस्पति औषधि आदि सब ही तो भूत हैं। इन सबके विभिन्न प्रकार के भोग हैं। देवों के सात्विक भोग, मनुष्यो के शबल, कीट, पतग के कृमि अकुर आदि, कीडी के नन्हे-नन्हे कण, कुन्जर के लिये मनों चारा, साप, बिच्छु के लिये नाना प्रकार के छोटे-छोटे जीव, दश मशक के लिये कृमि, इन सब भोगो का आधार एव निर्माण-स्थल यह वसुन्धरा ही है। प्राणियों की इयत्ता तो दूर रही, योनियाँ के प्रकार की सख्या करनी कठिन है। पुराणों मे ८४ लाख योनियाँ बतायी गई हैं। आज कल का जन्तु शास्त्र तो बहुत कम, लगभग ५४ हजार, की ही कल्पना कर पाया है। इन सबके शरीरों और भोगो का आधार यह वसुन्धरा ही है।

एक कुटुम्ब के दस-पाँच प्राणियों के पोषण मे मानव परेशान हो उठता है। माता वसुन्धरा तो कल्पनातीत प्राणियो का भोग सम्पादन कर रही है, भोग का निमित्त बन रही है।

कुटुम्बी केवल कुशल क्षेम की व्यवस्था करता है। माता वसुन्धरा तो लखोंवा योनियो के जीवों को अपनी गोद मे उठाये हुए, पालन-पोषण करते अघाती नही है। वायु मे, आकाश मे उडने वाले पक्षी भी इसकी गोद मे ही आकर विश्राम करते हैं। जल के जलचर भी जल के तल मे इसी पर अपना संसार बनाये है और तो और उनके घर वरुणालय सागर का आधार भी यही वसुन्धरा है। कैसी अनोखी सर्व भूताधारता है माता वसुन्धरा की। इसके सदृष अन्य अगणित लोक-लोकान्तर भी तो इसी की तरह कल्पनातीत भूतो का आधार बने हुए हैं। इन लोक-लोकान्तरो मे भी तो कोई गणना या सीमा आज का विज्ञान भी निर्धारित न कर पाया। ऐसे भी तो अगणित लोक हैं जिनका प्रकाश हजार मील सैकिण्ड की गति से भूमि की ओर आ रहा है। वह सृष्टि के आरम्भ दो अरब से ही चल रहा है पर आज तक इस भू पर नही पहुँच पाया है। इतने लोक-लोकान्तरो के अनन्त भूतो का और उनके भोगो का आधार यह जड पृथिवी भूत है। यह सब महिमा उस अनन्त असीम भगवान्, जिसकी कण-कण मे विद्यमानता पृथिवी सर्व भूताधारता को कृत-कृत्य बनाये हुए है। उसी चेतन सत्य की अनुभूति इस सर्व भूताधारता के साथ-साथ योगी को करनी है।

१०. क्षमा—क्षमा का अर्थ है सहनशीलता। सर्व-भूताधारता के साथ क्षमा का होना अनिवार्य है। जितना अधिक भार उठाने वाला व्यक्ति होगा उतना ही सहनशील होगा। यह पृथ्वी ही तो सर्व भूत मात्र का आधार है। इसकी सहनशीलता की क्या माप तोल ! इसीलिये निरुक्त मे भगवान् यास्काचार्य ने पृथिवी के पर्यायवाची शब्दो मे क्षमा को दूसरे नम्बर पर रखा है।

पृथिवी स्वय भी हल्की नही, असख्यो टन इसका भार है। इस पर आधारित असख्य शरीर धारी, वनस्पति, समुद्र, ताल, सरोवर उन सबके भार की विहगम दृष्टि मे कल्पना कीजिये। *इतने भार को लेकर यह गिर क्यो नही जाती, या उड क्यो नही जाती,* बस असीम प्रभु की अनन्त सत्ता के कारण ही यह लोक-लोकान्तर परस्पर के आकर्षण से टिके हैं।

उक्षा दाधार पृथिवीम् (वेद)

प्रभु की व्यापकता के ही कारण यह लोक-लोकान्तर बिना अन्य किसी आधार, आधारहीन आकाश मे बन्धे हैं।

केवल प्राणियो के भार और भोग के उत्तरदायित्व को उठाने मे ही क्षमा नही है। अग्नि, जल और वायु के आघातो के सहने से भी यह क्षमा है। जापान मे एटम पडा, भयावह अश्रुत पूर्व तबाही मच गयी। हिरोशिमा नगर का, मानव की साभिमान रचना का, सुन्दर उद्यान और रम्य उपवनो का पता भी न चला, कहाँ थे, पर माता वसुन्धरा उस आसुरी आघात को सहन करके भी आज भी पूर्व सी दशा मे है। नया नगर

बस गया है। नयी रगरलियाँ, नया साजो-सामान तैयार है, पर भूतधात्री क्षमा वही है।

बाढ आती है, नगर, प्रान्त तबाह हो जाते हैं। लाखो वेघर हो दर-दर के भिखारी बन जाते हैं। पर माता वसुन्धरा सहनशीलता का मूर्त रूप उसी रूप मे है। उसमे कोई उद्वेग घबराहट नही।

भयंकर आन्धी-तूफान आते है, रेत के टीले के टीले इधर से उधर हो जाते हैं। छत उड जाती है। बडे-बडे वृक्ष उखड जाते हैं। नगर के नगर उजाड हो जाते हैं, पर भूतधात्री क्षमा रूप वह वही की वही है। कैसी अनन्त क्षमाशीलता है माता वसुन्धरा की!

११ सर्वभोग्यता—इन सब गुणो के अनन्तर प्रभु की सन्निधानता से इस पृथिवी मे सर्वभोग्यता गुण का आविर्भाव हो जाता है। अब यह प्राणिमात्र के भोग-सम्पादन के लिए तैयार है। सब प्राणियो के आवास और भोग के लिये अपने को प्रस्तुत करती है। सब धर्मो से सम्पन्न यह धरती माता वसुन्धरा सब प्राणियो को धारण करने की सामर्थ्य वाली बनी है। तदनन्तर उस ब्राह्मी चेतन सत्ता से इस वसुन्धरा पर सब प्राणियो का प्रादुर्भाव होता है—भोग लेने के लिये, या भोग भोगने के लिये। सब प्राणियो का आवास और भोग इस पृथिवी से ही बँधा है। सब प्रकार के ८४ लाख योनिया कल्पनातीत प्राणिया के भोग का निमित्त बनती है। सब प्राणियों को सुख-सामग्री का भोग भी मिलता है, और पापा के परिणाम रूप दु ख-दारिद्रयमयी, दाहक, सन्तापक सामग्री भी इसी के सामर्थ्य से विवश भोगनी पडती है।

एक ही काल मे कही लू चल रही है तो कही बरफ जमी है। कही शीत है तो कही गरमी, कही वर्षा। कही ऊँचे पहाड तो कही रेगिस्तान। कही नदियाँ तो कही रेगिस्तान। यह सब एक ही काल म इस पृथिवी पर इसलिये है कि स्वतन्त्र कर्ता जीवो का भोग उनकी स्वतन्त्रता की रक्षा करते हुए सम्पादन कर सके। सब ही प्राणिया के उच्चावच भोग इस वसुन्धरा पर उपस्थित हैं। यहाँ अमृत भी है और कालकूट विष भी। मानवो का भोग भी यहाँ है, और दानवो का भी। राक्षसो का भी और पिशाचो का भी और देवताओ का भी।

इस प्रकार यह वसुन्धरा माता के समान रक्षिका, पिता के समान पालिका, पोषिका, और पत्नी के समान भोग्या, जेलर के समान नियन्त्रिका और यातना प्रदात्री बन कर सब प्रकार के भोग सम्पादन करती है।

साधकवृन्द! इस प्रकार आपने समाधि की प्रथम स्थिति द्वारा पृथिवी के प्रथम स्थूल रूप के इन ग्यारह धर्मो का प्रत्यक्ष किया, और साथ ही साथ प्रत्येक गुण मे प्रभु की विद्यमानता का भी अनुभव किया। अब उसके और उस पर होने वाले सृष्टि क्रम मे सयम कीजिये। आप को निम्न प्रकार प्रत्यक्ष होगा।

इस पृथिवी पर सर्वप्रथम वनस्पति, ओषधि, वृक्ष, अन्न, फल, मूल आदि उत्पन्न होते है। तदनन्तर पशु-पक्षी, वनचर, नक्तञ्चर आदि का धरती पर प्रादुर्भाव होता है। इसके अनन्तर मुक्ति से लौटने वाली मुक्त आत्मायें, या ऐसी आत्मायें जिन्हे मोक्ष प्राप्त करने मे एक दो जन्म लेने शेष थे, या जीवनमुक्त योगियो की आत्मायें, या अन्य

योगभ्रष्ट आत्माये, या अन्य महान् आत्माये प्रादुर्भूत होती है। ये सब सकल्प से ही उत्पन्न होती है। यह सृष्टि के आरम्भ मे दिव्य शरीर धारण कर लेती है, या सर्व-प्रथम मानव-देह मे अवतीर्ण होती हैं। आगे इनसे ही मैथुनी सृष्टि आरम्भ होती है। इस प्रकार आरम्भ मे ही स्त्री और पुरुषो के शरीर मे आत्माओ का प्रादुर्भाव होता है।

इस पृथिवी महाभूत के प्रादुर्भाव काल मे चारो भूतो के परमाणु सघात को प्राप्त होकर इसको सर्वप्रथम गैसो के रूप मे बनाते है। यह गैसो का महान् चक्र सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मे चलता है। सृष्टि के आरम्भ मे यह अनेक वर्षो तक चलता रहता है। इसमे मुख्य भाग महाभूत वायु और अग्नि का होता है। क्रिया वायु महाभूत से और पाकज धर्म महाभूत अग्नि से आता है। जल और भूमि के भूत सब मिले गैसो के रूप मे होते है। उस ब्राह्मी चेतन सत्ता के योग से यह महान् गैसो का चक्र वर्षो चलता रहता है। तत्पश्चात् ये गैसे शनै-शनै द्रवी भाव को प्राप्त से होकर बिखर सी जाती हैं, और असख्य मण्डलो मे बँट जाती हैं। फिर ये मण्डल प्रचण्ड अग्नि और वायु से द्रवीभूत हुए-हुए लावा या कीचड बन जाते है। इस अवस्था मे भूतो के क्षोभ से आकार, गुरुत्व, स्थिरता, काठिन्य, आदि धर्म यथा-क्रम परिणाम भाव को प्राप्त होते है।

जो आकाशमण्डल मे दृश्यमान नक्षत्र लोको के रूप मे वर्तमान हैं इनकी गणना असभव ही है। प्रत्येक लोक मे दूसरे लोक से लाखो, करोडो, और कही-कही अरबो मील तक की दूरी है। ये सब आकाशमण्डल मे रात-दिन प्रतिक्षण गतिशील रहते हैं। जो लोक काल क्रम से बहुत काल मे शीतल होते जाते है, वे प्राणियो के बसने के योग्य हो जाते हैं। जिन लोको के अन्दर अभी भी अग्नि, और वायु का तेज अधिक है, जो अभी गैसो के रूप मे ही वर्तमान हैं, वे प्राणियो के बसने योग्य नही बने है। उनकी गति आकाश-मण्डल के अन्य बसने योग्य लोको की अपेक्षा बहुत तीव्र है। प्रत्येक लोक प्रकाश वाला है। तेज वाला है—कोई तीव्र प्रकाश वाले है, कोई मन्द प्रकाश वाले। यह एक दूसरे को परस्पर प्रकाश दान करते हैं, जैसे हमारा सूर्य है, इससे भी बडे-बडे सूर्य—लाखो गुना बडे सूर्य—उनमे से लाखो मीलो तक अग्नि के बडे-बडे महान् शोले प्रचण्ड धाराओ के रूप मे निकल रहे हैं। इनका विस्तार लाखो मील चौडा, और लम्बा होता है। इनके सम्मुख जो आये भस्म हो जाये, इन सब लोको की गणना आज तक कोई न कर सका और न भविष्य मे गिन सकेगा।

ये सब लोक समष्टि महाभूत पृथिवी के अन्तर्गत ही आ जाते है। इसी समष्टि पृथिवी महाभूत का एक अश हमारी पृथिवी भी है। इन सब लोको का सम्बन्ध परम्परा से कारण रूप प्रकृति के साथ है। और प्रकृति का साक्षात् रूप से ब्रह्म के साथ सान्निध्य है। इस निमित्त कारण ब्रह्म के द्वारा ही यह दृश्यमान ब्रह्माण्ड गतिशील बन कर जीव के भोग और अपवर्ग का हेतु बना हुआ है। अभ्यासी को इस पृथिवी महाभूत के प्रत्येक परिणाम मे ब्रह्म का साक्षात्कार करना चाहिये।

यह महाभूत पृथिवी के स्थूल रूप मे ब्रह्म विज्ञान और दर्शन का क्रम सम्प्रज्ञात समाधि मे स्थित हो कर करना चाहिये। भूगर्भ मे और आकाशमण्डल मे, लोक लोका-न्तरो मे अर्थात् व्यष्टि और समष्टि रूप मे।

पृथिवी का समाधिजन्य ज्ञान

भूमि की गति का कारण—उत्पत्ति-काल में सर्वप्रथम हमारी भूमि सूर्य से टूटकर गिरी; यह सूर्य का ही एक अंश है सर्वप्रथम यह गैस के रूप में थी। उसके पश्चात् आर्द्रता, तरलता, लावे के रूप में बदली। फिर यह दलदल और कीचड के रूप में पलटी। पुनः पाक पैदा हुआ, और फिर ठोस होकर मिट्टी, पत्थर, रेत के रूप मे हुई। फिर ठण्डी होकर बसने योग्य बनी।

ब्रह्म की चेतना सत्ता से—उसके व्यापक भाव से—भूमि अपने अन्दर भी काय कर रही है। चित्त को समाहित कर, ध्यान की तीव्र दृष्टि द्वारा भूमि में प्रवेश कर के देखा जाय तो दीख पड़ेगा, अब भी इसके गर्भ में अनेक जल, अग्नि, वायु और नाना प्रकार की गैसों के दरिया बह रहे हैं। अनेक पदार्थ द्रवीभूत हुए कीचड और लावे के रूप में वर्तमान है। अनेक स्थानो मे रेत, मिट्टी, पत्थर की बड़ी-बड़ी चट्टाने भी विद्यमान हैं और कही-कही खाली बड़ी-बड़ी दरारें भी मौजूद हैं। अनेक स्थानो पर द्रवीभूत सूक्ष्म पदार्थ के गैसो के रूप में प्रचण्ड अग्नि पैदा कर रहे हैं। इन्ही से यह भूमि कम्पायमान हो रही है, और क्षुभित होकर गतिशील बनी हुई है। अनेक स्थानो पर द्रवीभूत पदार्थ परिणाम भाव को प्राप्त होकर सोना, चाँदी, लोहा, ताम्बा और अन्य अनेक धातुओ का रूप धारण कर रहे है। कही यह लावा परिणाम भाव को प्राप्त होकर अभ्रक, पत्थरके कोयले आदि की तैहें जमाता जा रहा है। कही सीसा तथा अन्य पदार्थ पाक धर्म से तय्यार हो रहे हैं।

जब कभी अग्नि या गैसो के द्वारा भूमि में विशेष क्षोभ उत्पन्न हो जाता है, तो भूकम्प पैदा हो जाता है। उससे कही भूमि के ऊपर के पर्वत अन्दर धँस जाते हैं, और वहाँ जलाशय या समुद्र आदि बन जाते है। और जब कभी भूकम्प से समुद्र के नीचे भूमि मे विशेष क्षोभ होता है तो कही-कही पहाड़ भूमि के ऊपर निकल आते हैं और समुद्र का जल भूमि मे धस जाता है। या इधर-उधर बह कर अन्य समुद्रों में जा कर मिल जाता है। ये सब भूकम्पो से उत्पन्न गति के कारण उथल-पथल होती है।

अग्नि, वायु, जल और गैसों के कारण जो भूमि में प्रचण्ड वेग से क्षोभ होते हैं, यह भी पृथिवी की गति मे कारण बने हुए है। इन्ही से यह पृथिवी कम्पायमान और क्षुभित हो कर गमन करने के योग्य बनी हुई है। इसी को कहते है भूमि अपनी परिधि पर घूमती है। जल, अग्नि, वायु और गैसो के कारण ही पृथिवी मे गमन करने की शक्ति सदा उसके गर्भ में विद्यमान रहती है, उन्ही के आधार पर यह ठहरी हुई है, और इतने बड़े अपने भार को भी उठाये हुए है।

भूमि के घूमने का कारण—सूर्य के इर्द-गिर्द—चारो ओर जो इसकी गति होती है, यह घूमती है, इसमें सूर्य का आकर्षण विशेष कारण है। यह इधर-उधर सूर्य की परिधि से बाहर भी तो जा सकती थी, पर नही जा सकती, सूर्य उसको खींचे हुए है, क्योंकि सूर्य में पृथिवी की अपेक्षा आकर्षण शक्ति अत्यधिक है। जो भूमि के गर्भस्थ पदार्थ भूमि को चला रहे हैं उनसे असंख्य गुना वे पदार्थ सूर्य के गर्भ में भी वर्तमान है। उन्ही से सूर्य मे इतना प्रबल तेज और आकर्षण है। पृथिवी पर जिस प्रकार हवाई जहाज, स्पुतनिक,

राकेट, मोटर, रेल आदि के अजन, जल, वायु, आग, ईंधन, तैल, पैट्रोल आदि साधनो से चलते है, ऐसे ही भूमि के अन्दर भी यही सब विद्यमान रहते है, जो इसको गति देते रहते है, घुमाते रहते है। इसी प्रकार आकाश मे दीखने वाले लोक-लोकान्तर गति कर रहे है। जिनके अन्दर गति के निमित्त पदार्थ अधिक मात्रा मे है, वे अपने से कम आकर्षण शक्ति वाले लोको का आकर्षण कर के रखते है। इसी कारण ये लोक आपस मे बन्धे से रहते हैं, और सदा गति करते रहते हैं।

इस पृथिवी का विस्तार—इस हमारी पृथिवी की परिधि २५ ००० मील की है। और इसकी गहराई (मोटाई) ४,००० चार हजार मील है। इस पृथिवी के एक-चौथाई भाग मे सूखा है और तीन चौथाई भाग मे जल है। इस पृथिवी से चन्द्रलोक २४,००० मील की दूरी पर है, यह इससे ही कभी पृथक् हुआ था। चन्द्रमा पृथिवी का पचासवाँ (१/५०) भाग है। चन्द्रमा पृथिवी को जितनी रोशनी देता है, पृथिवी उसकी अपेक्षा चन्द्रमा को १३ गुना अधिक रोशनी देती है। इस पृथिवी के आठवें (१/८) भाग पर बरफ पडी हुई है। इस पृथिवी का भार जल की अपेक्षा ५१/२ गुना अधिक है। यह पृथिवी सूर्य की परिक्रमा प्रति सैकिण्ड १९ मील की गति से करती है। पृथिवी तक सूर्य का प्रकाश आठ मिनट मे पहुँचता है। यह प्रकाश प्रति सैकण्ड ८९ हजार मील की गति से चलकर पृथिवी पर पहुँचता है। जब कभी इस पृथिवी का प्रलय-काल आयेगा तो १२ सूर्यो की गरमी वाली अग्नि इसे भस्म करने मे समर्थ होगी। यह सूर्य की परिक्रमा ३६५१/४ दिन मे पूरी करती है। और चन्द्रमा इसकी परिक्रमा २९१/२ दिन मे करता है। इस पृथियी से सूर्य ९ करोड ३० लाख मील दूर है। सूर्य अपनी परिधिमे २७ घण्टे मे एक चक्र लगाता है। यह पृथिवी सूर्य का दो करोड १३ लाखवा (१/२१३०००००) भाग है। पृथिवी के ऊपर पच्चीस कोस तक वायु रहती है। उसके ऊपर अति सूक्ष्म हो जाती है। इस हमारी पृथिवी के चारो ओर सात (७) परिधियाँ है। इनको हम आवरण भी कह सकते है। प्रथम—समुद्र, दूसरा—त्रसरेणु सहित वायु तीसरा—मेघमण्डल का वायु, चौथा—वृष्टि का, पाँचवाँ—एक अन्य प्रकार का वायु, छठा—धनञ्जय नाम वायु सातवाँ—अत्यन्त सूक्ष्म सूत्रात्मा नाम का वायु है। ये पृथिवी को गति कराने मे अत्यन्त सहायक होते है। प्रत्येक की सीमा, अन्य के सिरे पर होते है जो एक प्रकार से इसको सुरक्षित रखते है।

ब्राह्मण ग्रन्थो मे पृथिवी के ऊपर वायु की परिधियो या स्तरो का वर्णन बहुत सुन्दर ढग से किया गया है। जो कि पृथिवी को घेरे रखती है अथवा अपने कन्ट्रोल या वश मे रख कर नियम से गति कराती है। यथा—सप्तहिमारूतोगण दूसरा पाठ सप्तगण वैमारुत तीसरा पाठ सप्त सप्तहिमारुत्ता गणा ॥(तैत्तिरीयब्राह्मण १-६ २-३। शतपथ २-५-१-१३॥) भावार्थ ये सात विभाग वाले सात प्रकार की वायु के गण है, अर्थात् सात प्रकार की वायु की परिधियें या स्तर हैं जो आकाशमण्डल म लोक लोकान्तरो को घेरे रखती है। इनमे स्थूल सूक्ष्म का भेद लोको के सम्बन्ध से हो जाता है। जब केवल वायु महाभूत मे इन विभागो का इन लोको के बनने से पूर्व वर्णन करते है तब सर्व सूक्ष्म सातवाँ सूत्रात्मक वायु, वायुभूत के गर्भ मे होता है। इसके पश्चात् धनञ्जयादि वायु के भेद क्रमपूर्वक सूक्ष्म से स्थूल के रूप मे होते है। ये जो वायु की ७ परिधिय है, क्योकि ऊपर तीसरे पाठ मे दो बार सप्तसप्त पाठ पढा गया है। अत ७×७=४९ प्रकार के वायु के भेद हो जाते

है। ये सब ४९ भेदात्मक वायु की परिधियें पृथिवी को वेष्टित करके रखती है। ये ४९ वायु के स्तर हो जाते है। प्रत्येक स्तर लगभग १ योजन का होता है। इनमे पृथिवी के समीप का स्तर मुख्य रूप से प्राणदा, या प्राणियो के जीवन का मुख्य रूप से ग्राहार होता है। मानवादि इसे सेवन करके जीवन धारण करते है। इसके पश्चात् के स्तरो मे जीवनी शक्ति क्रम पूर्वक कम होती चली जाती है। २२९ मील तक इस पृथिवी का विशेप ग्रावर्पण रहता है। इन ४९ प्रकार के स्तरा या परिधियो का सम्वन्ध ग्रपनी पृथिवी से रहता है। इनके ग्रनन्तर दूसरे लोको की परिधियो का सम्बन्ध प्रारम्भ हो जाता है। ये सात-सात प्रकार की वायु महाभूत की परिधियें प्रत्येक लोक के मण्डल को सुरक्षित रखती है। प्रत्येक लोक को गति प्रदान करने या स्तम्भन रखने मे सहाक होती है। ये सब वायु महाभूत के ही कार्यात्मक परिणाम विशेष है।

हमने इस पृथिवी महाभूत की जैसे सात तहो या परतो का उल्लेख किया है। इसी प्रकार सात सात जल महाभूत ग्रौर ग्रग्नि महाभूतो की भी सतह या परत ग्रथवा परिधिये होती है। जब योग की सूक्ष्म दिव्य दृष्टि से देखा जाता है तब ये सब स्तर सूक्ष्म रूप से देखने मे ग्राते हैं। इन सब परिधियो ने ब्रह्म के ऊपर ग्रावरण किया हुग्रा है। इसीलिए प्रत्येक व्यक्ति को ब्रह्म का साक्षात्कार नही होता है।

हमने पृथिवी महाभूत के तीन रगो या रूपो का सात्विक, राजस, तामस भेद से वर्णन किया है परन्तु वेद कई रगो का वर्णन करता है,यथा—वभ्रु कृष्णा रोहिणी विश्व-रूपा ध्रुवा भूमि पृथिविम् इत्यादि। ग्र० १२-१-११॥ वभ्रु का ग्रथ है भूरे रग वाली, काले रग की, लाल रग वाली, विश्वरूपा का ग्रर्थ होता है सब रूपो वाली, क्योकि ग्रग्नि ग्रनेक रूपो वाली हो जाती है। रूप, गुण ग्रग्नि से ही ग्राया है ग्रत जितने भी पार्थिव पदार्थो मे रग-रूप ग्राए है वह पृथिवी के ही हो सकते हैं।

हम वायु महाभूत के भेदो द्वारा पृथिवी की सुरक्षा ग्रौर गति का वर्णन कर रहे थे। जब कभी घूमते-घूमते पृथिवी की छाया चन्द्रमा पर पडती है, तब चन्द्र ग्रहण होता है। जब यह चन्द्रमा पृथिवी ग्रौर सूर्य के बीच मे ग्राता है, तब इसकी छाया से सूर्य-ग्रहण होता है। हमारी पृथिवी पर सूय का प्रकाश ग्रौर तेज इस कारण मन्द होकर पहुँचता है कि इस सूर्य प्रकाश पर भी तीन मण्डल है—१ ग्रालोक मण्डल, २ वरुण मण्डल, ३ घटा मण्डल। कभी-कभी ग्रालोक मण्डल देखने मे ग्राता है। इसका तेज इतना उग्र है कि इसको सूर्य-ग्रहण के समय ही देखा जाता है, क्योकि उस परिस्थिति मे चन्द्रमा की छाया उसे ढक लेती है। तेज हल्का हो जाने से दीखने लग जाता है।

इस पृथिवी मे सकोच विकास धर्म है, जो कि दिन ग्रौर रात मे दो बार होता है। इन दो ग्रवसरो पर यह सिकुडती ग्रौर फैलती है। इसके गर्भ मे पोल है जो गैस से भरा है, सर्वत्र सघन ग्रौर ठोस नही है। इसके सकोच ग्रौर विकास से ही सिद्ध होता है कि इसके ग्रन्दर ब्रह्म की चेतन सत्ता काम कर रही है। इस चेतना के ग्राधार पर ही इसमे सकोच विकास धर्म बना हुग्रा है। वैसे ससार के सब ही पदार्थ सकोच विकास वाले है, परन्तु पृथिवी मे सकोच विकास रूप धर्म ही परिणाम पैदा करता रहता है। मानो एक प्रकार से वह श्वास प्रश्वास की क्रिया करता रहता है। कोई ग्राचार्य तो इस पृथिवी का ग्रभिमानी जीवात्मा भी स्वीकार करते हैं। उनका कथन है कि जैसे जीव चीटी मे

शरीर को भी धारण कर लेता है, और बडे से बडे तिमिंगल (ह्वेल) मछलीके शरीर को भी धारण कर लेता है। इसी प्रकार इस पृथिवी रूपी शरीर को भी धारण कर सकता है। इत्यादि अनेक कल्पनाएँ उनकी हैं।

पृथिवी मे तेल, पैट्रोल—पैट्रोल के विषय मे जो आजकल के वैज्ञानिक कथन करते है उनकी खोज हमे तो बिलकुल निराधार सी प्रतीत होती है। इनका कथन है कि पैट्रोल या तेल की उत्पत्ति भूमि मे जन्तुओ और पौदो से हुई है। ये जैविक पदार्थ है। ये उन युगो के है जब पृथिवी पर जलीय और स्थलीय जीवन के भिन्न-भिन्न जन्तु और पौदे बहुतायत से थे। वे समुद्रो की तलियो और डेल्टाओ मे मुहाने की तलछटी मिट्टी और रेत मे दब गये थे। इनकी इस जमावट ने पैट्रोल को जन्म दिया है। उस युग मे घने *बन और पलाकटन नामक जीव बहुतायत से थे, नदियाँ इनको बहाकर लाती,* और दलदलो तथा समुद्रो मे फेक देती थी। यह तलछट इकट्ठी होती रहती थी और दबती रहती थी। इन पौदो और जीवो के अङ्गो से हाइड्रोकार्बनो का निर्माण हुआ। अत इस पैट्रोल का निर्माण उन जीवो के अशो से हुआ है। इन स्थानो पर पृथिवी की तहो पर ताप या गर्मी के दबाव से ये द्रव और गैसी हाइड्रोकार्बन धीरे-धीरे इधर-उधर सरक चट्टानो दरारो, रन्ध्रो, छिद्रो मे भर गये और तब से बन्द पडे रहे जैसे भूमि मे जल बन्द रहता है।

ये इनके विचार और कल्पनाये नितान्त निराधार सी प्रतीत होती हैं। जो पृथिवी अनेक पदार्थो को अपने गर्भ से उत्पन्न करती है, जिनकी मनुष्य बाह्य बुद्धि से कल्पना भी नही कर सकते है उसको पैट्रोल उत्पन्न करने के लिए जीवो और पौदो की क्या आवश्यकता है। वे जीव और पौदे इसी से खुराक को ग्रहण करके पुष्ट होते हैं, पनपते हैं। जल का स्वाभाविक गुण स्नेह है। अत स्नेह धर्म इस पैट्रोल मे जल से आता है। गन्ध इसमे पृथिवी का ही गुण है। इसमे जितने भी तत्त्व है, पृथिवी, जल और अग्नि, वायु के है। इन्ही के सघात से इस द्रव्य का निर्माण होता है। इस भूमि से करोडो मन पैट्रोल और तेल प्रति वर्ष निकलता है। *क्या यह सब जीवो* और पौदो का जमा पडा है। *बिल्कुल अयथार्थ सिद्धान्त है। जहाँ सैकडो प्रकार के धातु-उपधातु और अनेक पदार्थो का* निर्माण भूमि मे होता है वहाँ इन पैट्रोल आदि का भी होता है। जल और अग्नि, वायु इसके गर्भ मे विद्यमान हैं, हर समय इसमे पाकज धर्म होता रहता है और नाना प्रकार के पदार्थो का निर्माण हर समय होता रहता है। इसी प्रकार पैट्रोल द्रव्य का भी निर्माण होता है।

इसमे स्नेह द्रव्य होने से आप ने अनुमान कर लिया है कि यह जीवो और पौदो का तैल वा चर्बी होगी। लगभग एक सौ वर्ष हो गये होगे, मिट्टी का तेल और पैट्रोल निकलते। यह प्रतिवर्ष सारी भूमि से निकाला जाता रहता है और पता नही कितने सैकडो वर्षो तक यह निकलता रहेगा। इतना तेल या पैट्रोल जीवो और पौदो का नही हो सकता। जैसे अन्य अनेक पदार्थ भूमि मे बनते रहते है और बन रहे है इसी प्रकार इस पैट्रोल का निर्माण भूमि और जल के भाग तथा अग्नि के पाकज धर्म से ही होता है। यह भूमि और जल के तत्त्वो से ही बनता है। यह सब प्रक्रिया समाधि मे दिव्य दृष्टि से प्रत्यक्ष होती है। यह कदापि जीवो और पौदो का तैल नही है।

पृथिवी मे पत्थर का कोयला—इसी प्रकार पत्थर के कोयले के विषय मे भी अयथार्थ सिद्धान्त है। इसके विषय मे भी वर्तमान भौतिक विशेषज्ञो का कथन है कि अनेक वर्षो तक वनो मे अग्नि लग लग कर वे भूमि मे दबते रहे और पत्थर के कोयले के रूप मे बनते रहे। कितनी मिथ्या कल्पना है यह इनकी। इस कोयले मे भी तो काला स्नेहात्मक द्रव्य होता है। यह इसमे कहाँ से आ गया? इस पाषाण मे कौन से जीवो और पौदो की चर्बी मिली होगी और फिर प्रतिवर्ष करोडो मन कोयला निकलता है। इस कोयले की भूमि के अन्दर मीलो तक चट्टाने चली गयी हैं जो पहाडो के रूप मे ही है।

हमारा प्रत्यक्ष अनुभव तो यह है कि भूमि मे जो अग्नि, वायु, जल मे बनी गैस हैं ये पाषाण भेदो मे पाकज धर्म को उत्पन्न करके भूमि के गर्भ मे पत्थर के कोयले का निर्माण करती हैं और कई-कई मीलो तक जमाती या जमती चली जाती हैं। इसी प्रकार अभ्रक के भी पहाड के पहाड बनते चले जाते हैं। और लोहे के भी, एव अन्य धातुओ के भी जब तक पृथिवी के गर्भ मे अग्नि आदि रहगे तब तक बनते रहेगे। इसी प्रकार अन्य लोको मे भी बनते है। ज्यो ज्यो मानव का भौतिक ज्ञान बढता जायेगा त्यो-त्यो भूमि से विशेष भोग-जन्य पदार्थो को उपलब्ध करता रहेगा। अत यह भूमि महान् हित-कर सिद्ध होगी। जो भौतिक विज्ञानवादी इस विषय मे अनुसन्धान कर रहे हैं वास्तव मे वह भी एक प्रकार से योगी ही हैं। कभी न कभी यह भौतिक विज्ञान उस चेतन ब्रह्मसत्ता के पास भी ले जायेगा।

वर्तमान मे भौतिक विज्ञान उन्नति कर रहा है। भूमि के पदार्थो का विज्ञान बढता जा रहा है। इसीलिए भूमि से खनिज पदार्थ सर्वत्र निकाले जा रहे हैं। यदि कोई महा-विनाशकारी युद्ध न हुआ तो ये भौतिक पदार्थ सदियो तक निकलते रहेगे और एक दिन ऐसा आयेगा कि भूमि के गर्भ मे इनका अभाव हो जायगा। तब भूमि इन पदार्थो को देना बन्द सा ही कर देगी। क्योकि जब निर्माण कम हो और निकास अधिक हो तो इसके गर्भ मे पदार्थो का अभाव तो होगा ही।

पुराणो मे इस प्रकार का इतिहास आता है कि भूतकाल मे एक बार भूमि से खनिज पदार्थ बहुत निकाले गये थे। उस काल मे इस समय के समान भौतिक विज्ञान का युग था। इनके निकलने से भूमि मे निर्बलता आ गयी थी। अभिनव पदार्थो का निर्माण बन्द हो गया था। फिर लाखो वर्षो तक यह भूमि बजर, ऊसर होकर पडी रही। इस भूमि पर निवास करने वाले लाखो वर्षो तक खनिज पदार्थों के अभाव मे अपने कार्य चलाते रहे। ये खनिज पदार्थ तो भूमि की शक्ति, बल, पराक्रम होते हैं। इन्ही से इसका विकास होता है। जैसे किसी आदमी को बार-बार विरेचन देने से, शरीर के बहुत से मल इत्यादि के निकल जाने से उसकी शक्ति क्षीण हो जाती है, निर्बलता आ जाती है, इसी प्रकार इस भूमि मे भी अधिक खनिज पदार्थो के निकल जाने से इसकी शक्ति क्षीण अवश्य होगी, निर्बलता भी पैदा होगी, तब खनिज पदार्थो को इसके गर्भ से अधिक मात्रा मे निकाल लेने पर उनकी उपज अवश्य कम हो जायेगी। तब खनिज पदार्थो के अभाव मे लोग कष्ट और दु ख का अनुभव करेंगे।

आजकल के विकास-वादियो मे एक और अशुद्ध धारणा बनी हुई है, कि मनुष्य का विकास बन्दर से हुआ है। पहिले यह सब वानर के रूप मे थे। शनै शनै मनुष्य बन

गये। सभ्य हो गये। पढ-लिख गये। इन बुद्धि के धनियो से पूछा जाये, कि जिस कुदरत ने वानर को बनाया था, क्या वह मनुष्य को नही बना सकती थी। और जब बन्दर से मनुष्य बन गया, तो यह उपलब्ध मनुष्य क्यो नही बने? अब क्यो कोई बन्दर मनुष्य नही बनता ?

इस प्रकार की आजकल अनेक मिथ्या और अयथार्थ कल्पनाये वर्तमान है। आजकल जहाँ भौतिक विज्ञान का विकास हो रहा है वहाँ बुद्धि भी विकसित हो रही है। शनै शनै यथार्थ सिद्धान्त पर आ जायेंगे। इस समय मशीनरी का युग है। इस विषय मे बहुत उन्नति हो रही है। यदि मानव का अभिमान बढ गया तो यह विनाश का ही हेतु होगा। यदि इस बल-बुद्धि का अभिमान न बढा तब शान्ति का हेतु होगा।

पृथिवी के गर्भ मे—जब हम भूमि को खोदकर जल निकालते है, तो प्राय सब ही जगहो पर, कही समीप मे और कही दूर जल निकल आता है। यदि उस जल को अच्छी तरह दिव्य दृष्टि से देखा जाये तो वह भूमि-गर्भस्थ जल कही-कही तो दरियाओ के रूप मे बह रहा है और कही समुद्र और झीलो के रूप मे खडा है। इसके नीचे भी जमीन होती है जो कि अनेक किस्म के पत्थर, मिट्टी, धातु इत्यादि की चट्टानें होती हैं। यह सतह भूमि की ऊपरवाली सतह से दूसरी सतह होती है। इसके नीचे भी एक और सतह वर्तमान रहती है, जो कि लावे के रूप मे होती है, सदा उबलती रहती है, पाक करती रहती है। लावा पक-पक कर चट्टानो के रूप मे बन जाता है या लावा निकल कर ऊपर आ कर पर्वतो, पत्थरो, तथा धातुओ के रूप मे तैयार होता रहता है। यह लावे की सतह भूमि के अन्दर कही तो ऊपर की सतह से कई-कई सौ मील नीचे होती है। और कही-कही कम निचाई पर भी होती है।

यह लावा जब अग्नि के पाकज रूप धर्म से शीतल होकर रेत, मिट्टी, पहाड या धातुओ के रूप मे पलट जाता है, तब यह लावे को आच्छादन कर के यह भूमि का भाग जल को धारण करने के योग्य हो जाता है। इस भाग के ऊपर ही ये समुद्र, नदियाँ झीले, तालाब ठहरते है। यह जल का भाग भूमि मे लगभग १५-२० मील की दूरी के अन्दर तक ही रहता है।

इसके नीचे फिर लावे की सतह का भाग आ जाता है। इसके नीचे एक गैस की सतह होती है। यह गैस लावे को पका-पका कर ऊपर को फैंकती रहती है, या निकालती रहती है। यह गैस रूप अग्नि पका-पका कर भूमि मे सर्व पदार्थों और धातुओ को बनाती रहती है। पहले लावे के रूप मे बनाती है, पीछे इसको कठोर बना कर अनेक प्रकार के धातु, पाषाण अथवा पत्थर के कोयले, रेत, मिट्टी आदि बनाती रहती है जो शनै शनै शीतल होकर प्राणियो के बसने के योग्य हो जाता है। या हो गया है।

यह जो इस भूमि के मध्य मे अन्तिम गैस का स्तर है, इसके आधार पर यह भूमि ठहरी हुई है। यह गैस ही भूमि की गति मे कारण बनती है। यह इसे चलाती है। यही ऊपर उठाये हुए है।

जब सृष्टि निर्माण-काल मे यह सूर्य से टूट कर अलग हुई थी उस समय यह पृथिवी इस मध्य की गैस के रूप मे थी। करोडो वर्षो मे यह शीतल होकर बसने योग्य

बनी थी। जिस रूप मे यह सर्व-प्रथम अपने उपादान कारण 'सूर्यमण्डल' से अलग हुई थी वह इसका असली रूप इस भूमि के गर्भ मे गैस के रूप मे वर्तमान है। और सम्भव है यह सृष्टि के प्रलयकाल तक इस रूप में वर्त्तमान रहे। भूमि के गर्भ की यह गैस इतनी शक्तिशाली है कि इसके अन्दर सख्त से सख्त पदार्थ भी पडकर भस्मीभूत होकर इस गैस के रूप मे ही पलट जायेगा। भूमि के गर्भ मे गैस या अग्नि का गोला-सा कई हज़ार मील लम्बा-चौडा है। जो इस ऊपर की पाषाण इत्यादि से युक्त कठोर, महान् आकार वाली, इस भारी भूमि को उठाये फिरता है। यह हमारा सूर्य तो पूर्ववत् गैस के रूप मे ही वर्त्तमान है। न जाने इसको शीतल होने मे कितने करोड वर्ष लगेंगे। तब यह हमारी भूमि के समान शीतल होकर बसने योग्य हो सकेगा। परन्तु उस समय इसमें इतना दाह, प्रकाश और आकर्षण शक्ति न रहेगी और गति भी मन्द हो जायगी। हमारी पृथिवी पर बसने वाले प्राणियो के लिये एक महान् सकट उपस्थित होगा। अन्न, औषधि, वनस्पति, वृक्षादि कम उत्पन्न होगे क्योकि इनकी वृद्धि मे और फूलने-फलने मे सूर्य की उष्णता ही कारण है उष्णता का अभाव हो जाने से पाकज रूप धर्म इनमे नही होगा। इनके अभाव म प्राणियो का जीवित रहना असभव हो जायगा। उस वक्त हमारी पृथिवी के दिन और रात भी सभव है कई-कई दिन या कई-कई मास के होने लगेंगे। सभव है वर्त्तमान के हमारे चन्द्रलोक के समान ही इसकी भी स्थिति हो जाय। जब तक सूर्य शीतल होकर बसने योग्य होगा, उस समय तक इस हमारी पृथिवी के अन्दर जो गैस है वह भी तो ठण्डी हो जायगी। पृथिवी मे उष्णता या अग्नि के कम हो जाने से इसके गर्भ मे जो पदार्थों का निर्माण हो रहा है वह भी बन्द हो जायगा। इसके ऊपर जो उत्पन्न होने वाले वृक्ष, वनस्पति, औषधि और अन्नादि हैं वे भी उत्पन्न नही होगे। उस अवसर मे प्राणियो का जीवन धारण करना असभव हो जायगा। इन सबके विनाश होने पर यह हमारी पृथिवी सर्व प्राणियो (जीवो) से रहित हो जायगी। हमारी पृथिवी पर विनाश और सूर्य रूपी पृथिवी पर सृष्टि की उत्पत्ति होगी। सम्भव है प्रलय काल तक फिर इस पर शरीरो का या जीवो का वास ही न हो सके। हाँ एक बात की सभावना अवश्य हो सकेगी कि दूसरे लोको के मनुष्य इस पर आकर निवास करने का प्रयत्न कर। जैसे कि आजकल हमारे भूमण्डल के लोग चन्द्रमा और दूसरे लोको मे जाने का प्रयत्न कर रहे हैं और उनमे वास करने की इच्छा प्रकट करते है।

वेद के सिद्धान्त के आधार पर अथर्ववेद भूमि की सतह या परत का इस प्रकार वर्णन करता है। यथा—शिला भूमिरश्मापाशु-सा भूमि-सधृताधृता। अ० १२ १-२६ मन्त्र मे ऊपर के क्रम से रेत, मिट्टी, चूर्ण भाग ऊपर का भाग है, या स्तर अथवा परत है। दूसरा भाग पत्थर, मिट्टी आदि अनेक प्रकार की धातुओ स मिला हुआ है। तीसरा भाग शिला की चट्टानो का होता है। इसके अन्दर या पश्चात् दूसरे पदार्थों की सतह होती है। ऋग्वेद ने भूमि की सात सतह का वर्णन किया है। यथा—अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे। पृथिव्या सप्त धामभि ॥ (ऋ० १-१२ २६)। इस मन्त्र का तात्पर्य यही है, सर्वव्यापक विष्णु भगवान् पृथिवी के गर्भ मे स्थित सातधामा या परता अथवा स्तरो या तहा मे जो विक्रान्ति या क्षोभ अथवा विलक्षण प्रकार की क्रिया विशेष करता है, जिसके द्वारा अनेक प्रकार के परिणाम भूमि मे होते हैं, भूकम्प अथवा

नाना प्रकार के धातुओं का निर्माण या विकृति पैदा होती है, अत उनसे देवता हमारी रक्षा करें। यहाँ देव शब्द से ईश्वर अथवा विद्वानों या भूमि आदि देवताओं का ग्रहण होता है। इन द्वारा ही प्राणियों की रक्षा हो सकती है।

इस मन्त्र में भूमि की ७ सतहों का वर्णन किया गया है। तीन ऊपर की स्थूल रूप में जो अथर्ववेद ने वर्णन की है और ४ सूक्ष्म रूप में जो कि अग्नि, गैसादि भेदों के रूप में होती है जो पृथिवी की गति और क्षोभादि क्रियाओं में सहायक है।

जब इस पृथिवी में भगवान् के सान्निध्य से विशेष क्रिया अथवा वक्रान्ति पैदा होती है, तब इसमें सात प्रकार के विकार, परिणामात्मक विकार उत्पन्न होते हैं। यथा—१ 'तटति'—पृथिवी विकास भाव को प्राप्त होकर ऊपर को उठती है। यह विकास भी दो प्रकार से होता है एक सामान्य रूप से जो २४ घण्टे म दो बार होता है। दूसरा विशेष जो कभी-कभी भूकम्प, लावा, या जल स्रोत अथवा ज्वाला या तैलादि के रूप में उत्पन्न होता है। २ 'स्फुटति,—पृथिवी फट जाती है तब ही लावा, ज्वाला (अग्नि जैसे कागडे के पहाड में ज्वाला निकलती है), अथवा स्रोतों के रूप में फट कर जल बहने लगते हैं अथवा बडे बडे दरार या खड्ड पड जाते है। भूमि फट कर नीचे दब जाती है। ३ 'कूजति —नाना प्रकार के शब्द इसके अन्दर होते हैं। जब भूकम्प आता है या फटती है तब गुंजायमान होकर गडगडाहट का नाद पैदा करती है। ४ 'कम्पति,—जब भूकम्प आता है तो शहरों को, मकानों को, पर्वतों इत्यादि को कम्पायमान कर देती है, कम्पायमान करके मकानादियों को गिरा देती है। ५ 'ज्वलति' अन्दर से अनेक देशों में ज्वालाय निकलती है जैसे भारत में पजाब के कागडा ज़िले में निकलती है। ६ 'रूदति —अन्दर से द्रव्य पदार्थ लावा, मिट्टी का तैलादि पदार्थों को निकालती है अथवा जलस्रोता को निकालती है ७ 'धूमायति —अन्दर से गैस के रूप में धुआँ सा निकलता है अथवा जहाँ गरम जल के स्रोत निकलते हैं वहाँ धुएँ के रूप में भाप निकला करती है। उपरोक्त कथन से भूमि की सात सतहों से नाना प्रकार के परिणामात्मक परिवर्तन होते हुए प्रत्यक्ष देखने में आते हैं। योगी को सम्प्रज्ञात समाधि द्वारा पृथिवी की इन ७ सतहों का और इनमें परिणाम होते हुए ७ विकारों का प्रत्यक्ष करना चाहिये। इनके साथ में ब्रह्म का भी साक्षात्कार करे।

सब का नियन्ता—इन लोकों और इनके अन्तरिक्ष रूप अवकाश में एक और सूक्ष्म से भी सूक्ष्म और महान् से महान चेतन तत्त्व की सत्ता है जो इन सब लोक-लोकान्तरों के नियन्त्रण का निमित्त बनती है, जैसे मैकेनिक स्वचालित यन्त्रों पर केवल दृष्टि रखता है। सब काम मशीन अपने आप करती है। मैकेनिक को कुछ करना नही पडता। जब मशीन का कोई पुरजा यथासमय काम न करे या मशीन का भरत कम पड जाय, तो भी मशीन स्वय चलनी बन्द हो जाती है। मैकेनिक तो बन्द मशीन की न्यूनता को पूरा कर पुन चालू कर देता है। प्रकृति तो स्वय पूर्ण है। उसमें कमी का प्रश्न नही उठता। सर्वसमर्थ भगवान् का तो ईक्षणमात्र चलता रहता है। जीव का भोग और अपवर्ग प्रकृति द्वारा होता रहता है। जैसे स्वचालित मशीन की गडबड का मैकेनिक पर कोई उत्तरदायित्व नही, ऐसे ही प्रकृति के कार्यों, या जीव के पुण्यापुण्य कर्मों का भगवान् पर कोई दायित्व नही।

इसी प्रकार ड्राइवर भी मोटर की मशीन को कण्ट्रोल में रखता है। यथार्थ मार्ग पर चलाता है, इतस्तत स्वेच्छा से गमन कराना, टक्कर न लगने देना, समय पर ही ले

जाना, और लाना, उस ड्राइवर के अधिकार मे हैं। इसी प्रकार यह पृथिवी रूपी यान, पृथिवी के गर्भ मे ठहरे हुए गैस, अग्नि, वायु के योग से अथवा पैट्रोल-गैस आदि उत्पन्न करने वाले तेल के योग से, अथवा प्रचण्ड अग्नि के निमित्त गन्धक के पहाड आदि के योग से गति करता रहता है। भूकम्प आदि भी तो इनके ही कारण से आते हैं। इन्ही के कारण भूमि गति भी करती है। सूर्य का आकर्षण भी इस गति मे सहायक होता है। वह चेतन सत्ता तो इस सबको अपने ईक्षण मे होने देती है। इस नियन्त्रण को समझाने के लिये इसका आरोप ब्रह्म मे कर दिया जाना है।

(शका)—सूर्य को ही क्यो न पृथिवी का नियन्ता मान लें ?

(समाधान)—"फिर शका होगी उस सूर्य को कौन चलाता है' ?"

"कदाचित् आप कहे—'उसको अन्य सूर्य चलाता है।"

"उसको कौन चलाता है ?"

आप कहेगे—"उसको कारण रूप प्रकृति चलाती है।"

"उस प्रकृति को कौन चलाता है।"

अन्त मे उस ब्रह्म की अनन्त महान् चेतना पर ही जाकर परिसमाप्ति होगी। उसके सन्निधान से ही प्रकृति मे गमन रूप क्रिया और परिणाम भाव पैदा होता है। जो इस ब्रह्माण्ड को मैकेनिक या मोटर ड्राइवर के समान अपने कण्ट्रोल मे रखे हुए हैं।

ब्रह्म को प्रत्यक्ष करने का अधिकार—जिस योगी ने अपने स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर मे स्वरूप का साक्षात्कार कर लिया है, अथवा अत्यन्त सूक्ष्म ऋतभरा प्रज्ञा द्वारा इन तीनो शरीरो के नियन्ता सचालक जीवात्मा के स्वरूप को देख लिया है, समझ लिया है, और जान लिया है, इसकी सब गतिविधियो को इन शरीरो मे अनुभव कर लिया है, वह योगी ही इस महाभूत पृथिवी के स्थूल रूप मे उस ब्रह्म की चेतन सत्ता का भी अनुभव कर सकता है। क्योकि अपने आत्मा की चेतन सत्ता के समान ही उस विश्वव्यापी ब्रह्म की भी चेतन सत्ता है। जैसे इस शरीर मे स्व-स्वरूप की चेतन सत्ता की प्रत्यक्ष मे अनुभूति होती है, वैसे ही इस पृथिवी महाभूत के व्यष्टि और समष्टि रूप मे भी ब्रह्म की चेतन सत्ता प्रत्यक्ष रूप मे अनुभव मे आती है। इसलिए ब्रह्म की चेतन सत्ता का विज्ञान कराने के लिये कई एक स्थलो पर वेदो और उपनिषदो मे इस महाभूत पृथिवी को ईश्वर का विराट् शरीर कह दिया है। यथा—

"य पृथिव्या तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरो,
यं पृथिवी न वेद, यस्य पृथिवी शरीरम्,
य: पृथिवीमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्य मृत ॥

बृहदारण्यक० अ० ३। ब्रा० ६। म० ३॥

भावार्थ—जो ब्रह्म पृथिवी मे ठहरा हुआ है। पृथिवी के अन्दर (व्याप्त है), जिसको पृथिवी नही जानती। जिसका पृथिवी शरीर है। जो पृथिवी को अन्दर से चलाता है। वह तेरा ब्रह्म अन्तर्यामी अमृतरूप—मोक्षरूप है।

ब्रह्म-दर्शन और स्व स्वरूप के दर्शनो मे अन्तर—सर्वप्रथम जब यह योगी इस महाभूत पृथिवी मे ब्रह्म का दर्शन करता है तो इसे एक महान् आश्चर्य होता है, क्योकि

यह अपने स्वरूप को ही जान कर अपने को कृतकृत्य समझने लगा था और विचार कर रहा था कि मैंने जो कुछ पाना था, पा लिया। कूप मण्डूक के समान इसको अपने विज्ञान पर एक प्रकार से अभिमान सा ही हो गया था। जब इसने पृथिवी महाभूत मे ब्रह्म की व्यापकता को देखा तो महान् आश्चर्य मे पड़ गया और अपने और ब्रह्म के स्वरूप मे बहुत अन्तर पाया।

व्यष्टि समष्टि में अन्तर—जब योगी आत्मविज्ञान के प्राप्त करने की साधना करता है तब वह इस ५-६ फुट के शरीर मे छोटे-छोटे पदार्थों—जिनको हम व्यष्टि पदार्थ के नाम से प्रतिपादन करते है—को देख कर, अत्यन्त आश्चर्य करता है। इन आश्चर्यजनक पदार्थो को देख-समझ कर महान् आह्लाद और आनन्द का अनुभव करता है। इन व्यष्टि पदार्थो के दर्शन और आत्मसाक्षात्कार को यह एक अत्यन्त महान् कार्य समझता है, और अपने को कृतकृत्य भी समझने लगता है। एक निर्धन मनुष्य—जिसके पास न खाने को है, न पहनने को है, न स्थान रहने को है, यदि उसको सौ, दो सौ रुपये मिल जायें तो वह अपने को अत्यन्त सौभाग्य-शाली, धनी एव कृतकृत्य समझने लगता है। यही दशा इस व्यष्टि विज्ञान के योगी की होती है।

जब ब्रह्म-जिज्ञासु योगी इस अनन्त आकाश मे इस पृथिवी महाभूत के रूपो मे अनन्त ब्रह्माण्ड जिसका कोई ओर छोर देखने मे नही आ रहा है—को अपने ध्यान और समाधि का विषय बनाता है तो इस ब्रह्माण्ड के पदार्थो—जो बडे-बडे विशाल महान् आकार वाले हैं, जिन्हे हम समष्टि पदार्थ कहते हैं—के दर्शन की, और उनमें व्याप्त ब्रह्म की जिज्ञासा हो जाती है। परन्तु इनका अन्त ही देखने में नही आ रहा है और न उस सर्वव्यापक ब्रह्म का ही कही अन्त मिल रहा है। इनको देख कर वह योगी उन व्यष्टि पदार्थो के साथ जब इनकी तुलना करता है तो इसको अपने पूर्व के विज्ञान पर एक महान् लज्जा सी प्रतीत होती है। कहाँ वह व्यष्टि और कहाँ यह समष्टि। जैसे एक जुगनू को सूर्य के प्रकाश को देख कर अपने प्रकाश पर लज्जा आती है, इसी प्रकार की लज्जा उस योगी को भी महसूस होती है। जब योगी अपने स्वरूप के साथ ब्रह्म के स्वरूप को प्रत्यक्ष देख कर तुलना करता है, तब यह अत्यन्त हीनता सी अनुभव करता हुआ, अपूर्व आनन्द का अनुभव करता है। ब्रह्म की महानता और अनन्तता इसे प्रत्यक्ष भासती है, और ब्रह्म रूप विशाल समुद्र जलराशि के सम्मुख एक जल कणिका के समान—हृदय-देशावच्छिन्न इस आत्मा की अत्यन्त लघुता, अणुता, सूक्ष्मता ब्रह्म के मुकाबले मे प्रत्यक्ष अनुभव होती है। साथ ही सर्व ब्रह्माण्ड मे व्याप्त ब्रह्म की व्यापकता, अनन्तता स्पष्ट दिखाई देती है। और साथ ही चेतनत्वेन ब्रह्म के साथ अपनी सजातीयता, निर्विकारता, निष्क्रियता और असगता का साक्षात् बोध होता है।

जीवात्मा का प्रदेश बडे से बडा यह शरीर, इसमे छोटा यह हृदय, और इससे भी अत्यन्त छोटा सूक्ष्म सा चित्त देखने मे आता है। पर ब्रह्म का इस अनन्त असीम ब्रह्माण्ड मे क्या छोर मिलेगा। इस अनन्त मे योगी की बुद्धि दौड लगा-लगा कर थक जाती है, श्रान्त हो जाती है। कोई किनारा या अन्त देखने मे नही आता। तब यह तत्त्व सहसा प्रकाशित होता है भला इस अणु और इस अनन्त की क्या तुलना। अणु अणु ही है। और महान्-महान् ही है।

समष्टि पृथवी महाभूत मण्डल

द्वितीय रूप मे ब्रह्मविज्ञान

(पृथिवी का द्वितीय रूप)

२ पृथिवी के स्वरूप मे—पृथिवी के स्थूल रूप प्रकरण मे जिन ११ (ग्यारह) धर्मो का उल्लेख किया गया है, यह धर्म सब के सब सदा पृथिवी मे वर्तमान रहते हैं। पृथिवी से ये कभी अलग नही होते। पृथिवी के यह स्व-स्व-सामान्य धर्म हैं। जहाँ जहाँ पृथिवी रहेगी वहाँ-वहाँ यह धर्म भी होंगे, पृथिवी मे भी रहेगे और पृथिवी के परिणामा म भी रहग। पृथिवी का प्रथम धर्म आकार है। वह पृथिवी मे भी है और पृथिवी के कार्यो मे भी। आकार कहते हैं सस्थान विशेष को, पृथिवी तत्त्व को नीचे ऊपर रख कर असख्य आकार जीवधारियो और जडो मे है। पृथिवी के कारण आकार उसके कार्य ईंट मे आया। और कार्य रूप ईंटो के आकार से अगणित आकार मकानो, भवना और महलो के वन गये। उन ईंटो मे ही नाना प्रकार के कूप, वापी, सर, महासर, घाट, पुल, बांध आदि मे आकार आया। क्योकि पृथिवी और उसके कार्य पृथिवी के धर्म से कभी अलग नही होते। यह आकार धर्म स्व-स्व-सामान्य है—अपने और अपने विकारो मे है। अन्य जल, अग्नि, वायु, आकाश मे नही है। जल का कोई रूपवान् पदार्थ नही वन सकना। पृथिवी की तरह जल से हाथी, घोडा, ऊँट, आदमी, मछली आदि कुछ भी नही बनाया जा सकता क्योकि जल मे आकार धर्म नही है। न ही अग्नि, वायु, आकाश से कोई आकार वन सकता है क्योकि पृथिवी की नाईं इन तीनो मे भी आकार नही। ये पृथिवी के सजातीय नही। चारो ही विजातीय हैं।

हाँ, पानी के जम जाने पर जब हिम या वरफ वन जाती तो उसमे आकार धर्म आ जाता है। उससे पृथिवी की नाईं जो चाहो आकार वना लो। यह क्या ?

"यह इसीलिए कि वरफ अव 'जल' नही रही। जल मे अग्नि तत्त्व की मात्रा अधिक होती है वरफ की अपेक्षा। वरफ ठण्डी होती है जल की अपेक्षा। जल मे अग्नि तत्त्व कम हो जाये तो उसमे पार्थिव धर्म वढ जाता है। इसलिये पृथिवी का धर्म आकार जल मे आ जाता है। यह भी पृथिवी के समान धर्म वाला हो जाता है। और पृथिवी के समान ही आकार धारण करने की सामर्थ्य इसमे आ जाती है।

आकार आदि पृथिवी और उसके कार्यो मे सामान्य है, पर जल आदि अन्य चारो से विशेष है। उन चारो मे भी अपने सामान्य धर्म और अन्यो से विशेष धर्म हैं। इस प्रकार सामान्य विशेष का अयुतसिद्ध समुदाय ही द्रव्य होता है। विना किसी के मिलाये स्वत मिला हुआ यह सामान्य विशेष का समुदाय द्रव्य है।

यह सामान्य विशेष धर्म पदार्थ मे स्वरूप सम्बन्ध से रहते हैं। इन सब धर्मो का पृथिवी रूपी धर्मो के साथ सदा अभेद ही रहता है। यह धर्म ही इसका स्वरूप है। पृथिवी महाभूत के ११ धर्म हैं, आकार, गुरुत्व, कठिनत्व आदि। यह पृथिवी से अलग नही हैं। पृथिवी को और आकार को पृथक्-पृथक् नही कर सकते। पृथिवी है तो आकार है। और आकार है तो पृथिवी। पृथिवी के आकार आदि स्वरूप ही हैं।

इसी प्रकार के भेदाभेद मे, उस ब्रह्म के चेतनत्व को भी व्यापक रूप मे समझना चाहिये। उस ब्रह्म की सवव्यापकता या चेतनता महाभूत के धर्म-धर्मी मे अनुभव करनी चाहिये कि किस प्रकार, पृथिवी रूप धर्मी मे धर्मो का परिणाम प्रभु के समीप मे होता है। और किस प्रकार धर्मो मे धर्म, लक्षण, अवस्था परिणत होते है।

(शका) क्या आप धर्म-धर्मी का ऐसा भेद मानते है जैसे सहस्रो आमो या सेवो का एक वन अथवा सहस्रो मनुष्यों का एक सघ ?

(समाधान) नही, हम ऐसा नही मानते। यह तो समान जाति वालो का एक सघ है। इस सघ को हम धर्म-धर्मी नही कहते।

देखो ! समुदाय दो प्रकार के होते हैं १—युतसिद्ध। २—अयुत सिद्ध।

१ युतसिद्ध—यु धातु का अर्थ मिलाना है। इस क्त प्रत्ययान्त से युत शब्द निष्पन्न हुआ है। अर्थात् जिसके अवयव पृथक्-पृथक् विरले हो, जुदा-जुदा हो और फिर मिले हो, अर्थात् मिलने पर भी जिनमे अन्तराल रहे, फासला रहे। वे युत सिद्ध कहलाते हैं, जैसे समूह, वन, सघ। मनुष्यो का समूह, देवताओ के सघ, आमो का वन। यहाँ समूह के अवयव मनुष्य अलग-अलग है। सघ के अवयव देवता विरले-विरले हैं। वन के अवयव से आम के वृक्ष अलग-अलग हैं, यदि इस समूह मे से एक-दो मनुष्य हट जायें तो समूह का स्वरूप नही बिगडता। ऐसे ही सघ मे से एक दो देवता चले जाये, तो भी सघ बना रहता है। ऐसे ही वन मे से एक-दो आम के वृक्ष काट लिये जायें तो भी वन वन ही रहता है। इसलिये यह सब युतसिद्ध समुदाय हैं जो मिल कर बने है।

२ अयुतसिद्ध—'अ' निषेधार्थक है। अर्थात् जिसके अवयव अलग-अलग न हो। विरले-विरले, जुदा-जुदा न हो। और जिनके मिले हुए होने पर अन्तराल फासला नही होता, जिसके अवयव अवयवी घुले-मिले से हो। अवयवो का अभेद हो। अर्थात् अवयव अवयवी मे अनुस्यूत हो, पिरोये से हो। जैसे—वृक्ष, शरीर, परमाणु। वृक्ष शरीर और परमाणुओ के अवयवो मे कोई अन्तराल या फासला नही है। वृक्ष मे शाखा, तना, फल, फूल, पत्र, शरीर मे सिर, मुख, हाथ, छाती, पेट, टाँगे, अलग-अलग नही है, अनुगत हैं घुले-मिले से हैं। यदि वृक्ष के पत्ते या तना काट दिया जाये या शरीर का सिर या हाथ काट दिया जाये तो वह विकलाग हो जाता है। उसको सही रूप मे वृक्ष या शरीर नही कह सकते। वृक्ष मे शाखा आदि और शरीर मे हाथ पैर अलग-अलग समर्थ सत्ता नही है। शाखा और हाथ आदि कोई भिन्न पदार्थ नही है। अत इसे धर्म-धर्मी का अभेद कहा जाता है। यही द्रव्य है। और इसी प्रकार अयुत सिद्धावयव परमाणु है।

धर्म धर्मी के जिस इस अभेद को योग व साख्य स्वरूप सम्बन्ध कहते हैं, न्याय वैशेपिक उसे समवाय सम्बन्ध कहते है। वेदान्ती इसे ही तादात्म्य नाम से पुकारते है इस स्वरुप सम्बन्ध मे भी ब्रह्म का साक्षात्कार करना चाहिये।

यह पृथिवी महाभूत का धर्म-धर्मी के अभेद से द्वितीय स्वरूप का वर्णन हुआ। इस स्वरुप सम्बन्ध मे सम्प्रज्ञात समाधि द्वारा ब्रह्म की सर्वव्यापक रूप चेतन सत्ता का साक्षात्कार करे।

समष्टि पृथिवी महाभूत मण्डल
तृतीय रूप मे ब्रह्म-विज्ञान
(पृथिवी का तृतीय रूप)

३. **पृथिवी के सूक्ष्म रूप मे**—पृथिवी का जिस अवस्था से परिणाम हुआ है उसकी उस पहली अवस्था को सूक्ष्म रूप कहते हैं। पृथिवी महाभूत के निर्माण काल मे पृथिवी के परमाणु या पृथिवी की तन्मात्रा ही केवल उसका उपादान कारण नही होती है, किन्तु जल, अग्नि, वायु, आकाश के परमाणु भी सहकारी कारण होते हैं। सामान्यत. सब पाँचो कारण रूप-तन्मात्राये अपने कार्य विशेष महाभूत पृथिवी मे अनुस्यूत होती हैं। इस कार्य कारण का अयुतसिद्ध समुदाय ही पृथिवी महाभूत द्रव्य होता है। यही इसकी सूक्ष्म-अवस्था कहलाती है। गन्धतन्मात्रा और पृथिवी का जो कारण कार्यात्म सम्बन्ध है यही सूक्ष्म रूप है।

इस अवसर मे जो विशेष क्रिया होकर एक विशेष परिणाम इसमे होता है, वह अत्यन्त ही आश्चर्यजनक होता है। साधकवृन्द ! यहाँ ही आपको अपने सयम का विषय इस परिणाम प्रक्रिया को बनाना है। इस अवसर मे जो विशेष क्रिया होकर एक विशेष परिणाम होता है वह अत्यन्त ही आश्चर्यजनक होता है। आप साक्षात् करेंगे कि गन्ध-तन्मात्रा मे कैसे-कैसे परिणाम होते गये और अन्त मे पृथिवी महाभूत मे परिणत हो गयी। इस काल मे ब्राह्मी चेतन सत्ता सघात करने वाली प्रेरिका यानी योजिका होती है क्योकि जड पदार्थ एक अश मे गति को रखते हुए भी बिना चेतन सत्ता के सर्वांश मे नियन्त्रित-गतिशील नहीं हो सकता है।

भगवान् के सन्निधान की माया देखिये, भगवान् के सन्निधान से गति, पृथक्त्व-सख्या वाली गन्धतन्मात्रा का अब तक बने जल आदि महाभूतो के साथ सयोग हो जाता है। यह सयोग किस मात्रा मे हो, कितने काल के लिये हो, कितने भाग मे हो, किस प्रकार किस क्रम मे हो ? यदि सयोग मे यह सारी बाते न हो तो सयोग निष्फल ही रहता है। किसी भी वस्तु के निर्माण के लिये यह बातें आवश्क हैं। ज्ञानपूर्वक मिलाये बिना ईटो, चूना, पानी आदि सामग्री से भवन नही बन सकता। सयोग का विधि-विधान ही वस्तुकला की जान है। सृष्टि रचना क्रम मे तो यह किसी अनन्त चेतन सत्ता के सन्निधान की अपेक्षा रखता है। इस सयोग की सुगढना पर ही भावी समस्त रचना आश्रित है। अनेक विभिन्न लक्ष्यो-स्थानो को जाने वाली सडको मे से यदि सही सडक के साथ सयोग हुआ तो ठीक स्थान पर पहुँच सकेंगे अन्यथा मार्गभ्रष्ट हो न जाने कहाँ भटक जायेंगे। जिस क्रम से जिस महाभूत के साथ पृथिवी तन्मात्रा का जितनी मात्रा मे, जितने काल के लिये, जिस प्रकार सयोग होना है यदि वह सयोग उस प्रकार न हुआ तो पृथिवी महाभूत की रचना न हो सकेगी। यह तन्मात्रायें सब की सब जड हैं, स्वतः कोई किसी प्रकार का निर्णय करने मे सर्वथा असमर्थ है। उस महाचेतन सत्ता के सान्निध्य मे चेतनी से बनी पृथिवी तन्मात्रा सही रूप मे सयोग को प्राप्त होनी आरम्भ होती है।

सर्वप्रथम यह सयोग जल महाभूत के साथ हुआ। जल ने गन्ध-तन्मात्रा का सन्धान करना आरम्भ किया, इससे पृथिवी-तन्मात्रा मे रस का परिणाम हुआ। इसी रसगुण के कारण पृथिवी 'रसा' कहलाई। जल मे घुली यह गन्ध तन्मात्रा भविष्य मे मिट्टी—

का तेल, पैट्रोल, तारकोल, तारपीन आदि रूप में प्रकट हुई। और गन्ध-तन्मात्रा के सन्धान के घनीभूत हो जाने पर केसर, कस्तूरी, कपूर, चन्दन, पीपरमेण्ट, अगर-तगर आदि रूप बने।

इसके पीछे जल के संयुक्त हो जाने पर अग्नि तत्त्व भगवान् के सन्निधान रूप निमित्त कारण से सयुक्त होना आरम्भ होता है। अग्नि तत्व के मिलते ही रूप पलट जाता है। जो गन्ध-तन्मात्रा अब तक नासिका और केवल रसना का विषय रूप बनी थी, अब अग्नि तत्त्व के मिलते ही अग्नि के परिणाम से आँखो से भी देखी जाने योग्य बन गई। पृथिवी तन्मात्रा मे रूप उत्पन्न हो गया और विभिन्न रंग-रूपो मे दिखाई देने योग्य बनी। इसी से भविष्य मे संसार भर के मनुष्यो, गायो, घोड़ो, हाथियो आदि जातियो के विभिन्न रूप बने। इस विभिन्नता का निमित्त भी भगवान् की सर्वत्र विद्यमानता ही है।

गन्ध तन्मात्रा मे जल और अग्नि के मिलने से पृथिवी का अधूरा रूप ही बना, जो सूँघा, चखा और देखा जा सकता था। इतने से तो भोगात्मक सृष्टि की रचना पूर्णरूपेण कार्य-क्षम, फल प्रादात्री नही बन सकी। सूँघने, चखने और देखने के विषय से अतिरिक्त स्पर्श का विषय भोगात्मक जगत् भी तो है। भगवान् की समीपता मे अग्नि जल से सयुक्त गन्ध-तन्मात्रा में वायु तत्त्व भी उपयुक्त मात्रा मे मिलना आरम्भ हो जाता है। वायु के मिलते ही पृथिवी मे स्पर्श की अनुभूति होने लगी। वायु का स्पर्श तो न ठण्डा था न गरम। *पृथिवी तन्मात्रा के साथ मिला तो अनुष्ण शीतपना पलट गया।* पृथिवी तत्त्व ने जहाँ अग्नि की मात्रा अधिक वहाँ 'गरम' और जहाँ जल की अधिकता हुई वहाँ 'शीतल' स्पर्श अनुभव होने लगा। भविष्य मे यह धर्म पृथिवी की उपज मे सहायक रहा। वायु सर्व-गत था। इसी से पृथिवी मे स्पर्श भी सर्वत्र अनुभव होने लगा। कही अधिक कही कम। रुई, मखमल, पुष्प, आदि में कोमल स्पर्श सर्वत्र व्यापक है। प्राणी देह में भी स्पर्श का अनुभव सारे शरीर में होता है। भगवान् के सन्निधान से चेतन सी बनी प्रकृति की माया देखिये। स्पर्श का अनुभव करने वाली त्वचा भी वायु तत्त्व का परिणाम है, और स्पर्शानुभूति का विषय कोमलतामय जगत् भी वायु का परिणाम है।

जहाँ वायु तत्त्व अधिक है, वहाँ पृथिवी के परिणामों मे स्पर्श अधिक है। जहाँ कम है वहाँ पाषाण आदि मे कम। इस स्पर्श की तारतम्यता से संसार में वस्तु का उपयोग और मूल्य का तारतम्य है। पृथिवी परिणाम मे जितना स्पर्श अधिक उतना ही मूल्य अधिक। पृथिवी का स्पर्श ही सभ्य समाज का मान-दण्ड बना। कपड़ा, आसन, भूमि, मकान, घास का मैदान, संगमरमर, हाथी दान्त, लोहा, चान्दी, सोना सब मे स्पर्श अपना आधिपत्य जमाये है।

पृथिवी तन्मात्रा से अयुतसिद्ध बन तीनों भूतों ने भोगात्मक महाभूत पृथिवी की रचना कर तो डाली, पर बिना वाणीविलास के इस अब तक की रचना का भोगात्मक और विलासात्मक मोहक रूप कैसे जीव के बध मोक्ष का कारण बने। अतः इस प्रपंच को पूर्णरूपेण बंधक और मोचक बनाने के लिये भगवान् की सर्वव्यापकता से इन चारो के साथ व्यापक से आकाश तत्त्व का भी सम्मिश्रण सा हो गया, और यह

प्रकृति का विलास मुखरित हो उठा। पृथिवी म नाना प्रकार के मोहक और उद्वेजक निनाद होने लगे। बाजो की झकार, मारु वाद्य का तुमुल, वीणा की तान, वशी का रव, पृथिवी मे आकाश का सम्मिश्रण ही तो है। मानव देह मे यह परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी और दश प्रकार का नाद बना। यही आकाश का पृथिवी मे सम्मिश्रण पशु, पक्षी, कीट पतग, जीव-जन्तु के पार्थिवहार्द की अभिव्यक्ति का कारण बना।

पाँचो तत्वो का अयुत सिद्ध समुदाय पृथिवी का यह सूक्ष्म रूप कहलाया। सक्षेप मे आप इसको इस प्रकार समझे कि सामान्य विशेष के भेद से अनुगत समुदाय अयुत सिद्धद्रव्य ही पृथिवी की सूक्ष्म रूप अवस्था है। इस अवस्था मे सूक्ष्म पृथिवी तन्मात्रा का स्थूल महाभूत के रूप मे परिणाम हुआ है। और वह तन्मात्रा धर्म, लक्षण, अवस्था रूप मे परिणत होकर स्थूल आकार को प्राप्त हो गयी है। यह गन्ध तन्मात्रा का परिणाम ही पृथिवी का सूक्ष्म रूप है।

इस सूक्ष्म अवस्था मे ब्रह्म की चेतन सत्ता से जो-जो क्रिया, जिस जिस क्रम से, जिस जिस रूप मे होती है यही यहाँ समाधि की सयम स्थिति द्वारा ज्ञातव्य विषय है। इस चेतन ब्रह्म के कारण होने वाली गन्ध तन्मात्रा की क्रिया या गति का अनुभव करना चाहिये।

इस प्रसग मे यह ध्यान दिलाना भी उचित ही है कि योग के आचार्य धर्म धर्मी का परस्पर अभेद मानते है। इस अभेद मे ही, साधकवृन्द, ब्रह्म की अनुभूति करनी है। यहाँ ही ब्रह्म का साक्षात्कार करना है। इस साधना का लक्ष्य ही कारण कार्य म एव उनके परिणाम काल मे इनमे अनुस्यूत ब्रह्म का प्रत्यक्ष करना है। योगी मे जब ऋतभरा बुद्धि सम्प्रज्ञात समाधि मे उत्पन्न होती है, तब ही कारण-आत्मक पदार्थ मे परिणाम होकर जब कार्य अवस्था मे आता है, उस अवसर मे इस सूक्ष्म परिणाम का और ब्रह्म की सूक्ष्मता के सम्बन्ध का प्रत्यक्ष रूप से बोधपूर्वक साक्षात्कार होता है।

समष्टि पृथिवी महाभूत मण्डल

चतुर्थ अन्वयरूप मे ब्रह्म विज्ञान

(पृथिवी का चतुर्थ रूप)

४. *पृथिवी के अन्वय रूप मे—पृथिवी महाभूत का मूल-प्रकृति के साथ परम्परागत* सम्बन्ध दर्शाना पृथिवी का अन्वय रूप है।

सहत परार्थत्वात्पुरुषस्य।

साख्य० अ० १। सू० ६६।

के आधार पर यह स्पष्ट है कि यह प्रकृति अपने कार्यो के साथ मिलकर पुरुष के लिये भोग और अपवर्ग का साधन बनती है। इस कारण रूप प्रकृति का स्वभाव जड है। इसकी जडता को हम तम कहते है। इसमे ज्ञान और क्रिया चेतन ब्रह्म के सम्बन्ध स उत्पन्न होती है। ज्ञान और क्रिया इसके गुण हैं, और तम या स्थिति या जडता इसका अपना स्वरूप है। अत यह अपने तम स्वरूप, और ज्ञान और क्रिया गुणो को लेकर अपने सब कार्यो मे अनुपतन को प्राप्त होती है। अत यह अपने गुणो और स्वरूप को साथ साथ लिये अपने अन्तिम कार्यात्मक परिणाम पृथिवी महाभूत मे पहुँची है। यह

मूल-प्रकृति ही अवान्तर परिणामो को अभिव्यक्त करती हुई पृथिवी महाभूत के रूप मे परिणत हुई है। यह प्रकृति कार्य स्वभाव वाली है। परिणाम को प्राप्त होने वाली है। अत प्रत्येक परिणाम मे मूल प्रकृति का ही एक प्रकार से अनुपतन होता है। सक्षेप मे यह मूल प्रकृति का अनुपतन ही पृथिवी का अन्वय रूप है। 'तत्सत्त्वे तत् सत्तान्वय' प्रकृति की सत्ता से ही उसके कार्यो की सत्ता है। यही कार्य मे प्रकृति का अन्वय है। यही पृथिवी महाभूत का अन्वय रूप है। अन्वय कहते है कुल को, खानदान को, पृथिवी महाभूत की वशावली बताना पृथिवी का अन्वय रूप है।

पृथिवी महाभूत गन्ध तन्मात्रा का परिणाम है। गन्ध तन्मात्रा समष्टि तम अहकार का कार्य है। समष्टि तम अहकार समष्टि महत्तम से परिणत हुआ। समष्टि महत्तम मूल प्रकृति से अपने स्वरूप मे आया। मूल-प्रकृति अजा है, सत् है और नित्य है। यह सब परिणाम ब्रह्म के समीपस्थ होने के कारण होते है। ब्रह्म का समीप होना ही परिणामो का निमित्त है। जड प्रकृति स्वत रूप पलटने मे असमर्थ है। जिस चेतन सत्ता के कारण यह अनुपतन हो रहा है, साधक को उस ब्रह्म की चेतन सत्ता का भी विज्ञान-साक्षात्कार साथ-साथ ही करना है।

कारण गुणपूर्वक. कार्यगुणो दृष्ट

वैशेषिक० अ० २। अ० १। सू० २४

जो गुण कारण मे होते है वे कार्य मे अवश्य आते है। प्रकृति का अपना रूप जडता पृथिवी मे पूर्ण रूपेण विकसित हुआ। प्रकृति के परिणाम सत्त्व और रज की मात्रा तम के बढ जाने से बहुत कम रह गई है। इसलिये ज्ञान और क्रिया प्रकृति के गुण भी अज्ञात सी परिस्थिति मे आ गये है।

यह पृथिवी और अन्य लोकान्तर भी पृथिवी महाभूत का ही विस्तार हैं, सब के सब जो दिन रात प्रतिक्षण गति करते रहते हैं, कभी ठहरने का समय ही नही आता, उनका दृश्यमान कार्य जगत् भी सदा गति करता रहता है, सब देहधारी चलते है, वृक्ष-वनस्पति बढते है, वन-पर्वत बढते है, पशु, पक्षी, कीट-पतग बढते है, यह सब गति मूल प्रकृति का ही विकास है।

इस अनुपतन का विज्ञान, जिस चेतन सत्ता के द्वारा यह अनुपतन होता है—उस चेतन सत्ता ब्रह्म का भी विज्ञान अभ्यास मे साथ-साथ साक्षात् रूप से करते जाना चाहिए। इस अनुपतन के विज्ञान से परम्परागत कारण का भी बोध होता है।

(शका) यह जो कारण रूप प्रकृति का अपने गुणो सहित कार्यो मे अनुपतन होता है, क्या वह अपने प्रथम स्वरूप को नष्ट कर के होता है ?

(समाधान) हमारे सिद्धान्त मे कोई भी पदार्थ स्वरूप से नष्ट होकर कार्यान्तर को उत्पन्न नही होता है। किन्तु उस पदार्थ का धर्म, लक्षण, और अवस्थाओ मे परिणाम होता है, अर्थात् उस कारण के धर्म, लक्षण और अवस्था कार्य मे हो जाते है।

यदि कारण के स्वरूप का नष्ट होना मानोगे तो अभाव से भाव की उत्पत्ति माननी पडेगी। तब तो गधे के सीगो की भी उत्पत्ति हो जानी चाहिये। गधे मे सीगो का

अभाव है, इस अभाव से ही गधे के सीग निकल आने चाहिये, क्योंकि अभाव से उत्पत्ति स्वीकार की गयी है। ऐसा होता नही, न कभी होगा ही।

कारण का अभाव होने से कार्य की उत्पत्ति नही हो सकती है। अत कार्य के साथ कारण भी वर्त्तमान रहना चाहिये। इसलिये हमने माना है कि कारण रूप पदार्थ का कार्य मे परिणाम होता है। जैसे सूत का कपडे के रूप मे परिणाम होता है। मिट्टी का कलश के रूप मे परिणाम होता है, और स्वर्ण का आभूषण के रूप मे परिणाम होता है। वस्त्र मे सूत वर्त्तमान है। कलश मे मिट्टी विद्यमान है, और आभूषण मे सोना मौजूद है।

इसको इस प्रकार समझिये। यह परिणाम तीन बातो का होता है १ धर्म २ लक्षण ३ अवस्था का।

१ धर्म परिणाम— ऊपर के तीनो द्रष्टान्त धर्म परिणाम का उदाहरण है। सूत पहले पिण्ड के आकार मे थे। या कहिये धागो के रूप मे थे। उनका धागा ही रूप था। उन्हे धागा ही पुकारते थे। फिर बनने की क्रिया से यह वस्त्र बन गये, अर्थात् उन्होने सूतपन को छोड दिया। अब उमे हम सूत नही कह सकते। और कपडा धर्म पैदा हो गया। अब उसे कपडा कहते हैं, सूत नही कहते। अर्थात् एक धर्म छूट गया, और दूसरा धर्म आ गया। सूत धर्म छूट गया और कपडा धर्म आ गया। इसे धर्म परिणाम कहते है।

२ लक्षण परिणाम—लक्षण परिणाम काल भेद से होता है। लक्ष्यतेऽनेनेति लक्षणम्=काल भेद। जिससे वस्तु लक्षित हो। वस्तु यहाँ काल से बनाई जाती है, अत लक्षण यहा काल है। क्योंकि काल से लक्षित वस्तु दुसरे कालों से युक्त वस्तुओ से भिन्न करके बतायी जाती है। जैसे, सूत का कपडा बुनो। यहा सूत वर्त्तमान काल मे विद्यमान है। कपडे का आकार प्रकट होने से पहले सूत मे छिपा हुआ है। जब तक कपडा सूत मे प्रकट नही होता तब तक वह अनागत-भविष्य मे है। ऐसे भविष्य काल मे है जो अभी प्रकट नही हुआ है। और जब कपडा सूत मे प्रकट हो जायेगा तो वर्त्तमान काल से युक्त हो जायेगा। जब उधड कर सूत ही बन गया तब वस्त्र भूतकाल मे हो गया। भूतकाल मे था, अब नही है। इस प्रकार कपडा तीनो कालो मे सूत मे वर्त्तमान है। भूत भविष्य मे छिपा रहता है। वर्त्तमान काल मे प्रकट होता है। इस प्रकार १ अनागत (भविष्य) लक्षण परिणाम, २ वर्त्तमान लक्षण परिणाम, ३ अतीत (भूत) लक्षण परिणाम। काल भेद से तीन लक्षण परिणाम होते हैं। सक्षेप मे यूँ समझिये—जब हम यह कह रहे है कि—

'अभी वस्त्र बुनकर तैयार होगा।' इस वाक्य मे वस्त्र अनागत भविष्यत् लक्षण-परिणाम अवस्था में है।

'वस्त्र तैयार हो गया'। इस वाक्य मे वस्त्र अनागत भविष्यत् अवस्था को छोड कर वर्त्तमान काल या वर्त्तमान लक्षण परिणाम मे आ गया।

'वस्त्र उधड गया'। इस वाक्य मे वस्त्र अतीत लक्षण परिणाम मे आ गया।

३ अवस्था परिणाम—वस्तु की अवस्था का बदलना ही अवस्था परिणाम है। वस्त्र, घडा, आभूषण सब ही प्रति मिनट या प्रतिक्षण नवीनता को छोड कर पुराना

होता जा रहा है। इस प्रकार दिन-प्रतिदिन जीर्ण होता है। यह इन वस्तुओ का अवस्था-परिणाम है।

इसी प्रकार पृथिवी रूपी धर्मी का भी धर्म-लक्षण-अवस्था तीनो ही रूपो से परिणाम होता है।

इस पृथिवी माहाभूत की अन्वय रूप मे प्रति परिणाम अवस्था मे ब्रह्म का साक्षात्कार करना चाहिये।

समष्टि पृथिवी महाभूत मण्डल

पञ्चम रूप में ब्रह्म-दर्शन

(पृथिवी का पञ्चम रूप)

५. पृथिवी के अर्थवत्ता-रूप में—

पृथिवी महाभूत का प्रयोजन बताना उसकी अर्थवत्ता है। पृथिवी महाभूत भोग और अपवर्ग की साधिका है यही उसकी अर्थवत्ता है।

पृथिवी महाभूत प्राणिमात्र के सब प्रकार के भोगो को प्रदान करता है। भोगो मे इष्ट अनिष्ट दोनों ही भोग सम्मिलित है। जीव को पुण्य के कारण इष्ट और अपुण्य के कारण अनिष्ट इसी एक पृथिवी महाभूत से प्राप्त होता है। यह दोनो ही इष्ट-अनिष्ट भोग प्रकृति मे आसक्ति के कारण उत्पन्न हो दोनो ही जीव के बन्धन का हेतु होते है। इस ससार चक्र मे फसाये रखते है, प्रकृति पुरुष विवेक जो मोक्ष का हेतु है उसे जीव के पास नही आने देता। अनिष्ट तो साक्षात् रूप से दु ख देने वाला ही है।

बिना प्रकृति-विज्ञान के पुरुष प्रकृति-विवेक उत्पन्न नही हो सकता, इस प्रकार विवेक का हेतु होने से प्रकृति मोक्ष-साधिका भी है।

पृथिवी भी इसी प्रकार मानव के भोग और अपवर्ग मे अत्यन्त सहाय होती है। पुण्यात्मा और अपुण्यात्मा सब ही प्राणियो के जीवन का आधार है। अपने अनेक प्रकार के धर्मों और कार्यो से प्राणिमात्र का पालन-पोषण करती है। अपना-अपना भोग पाने के लिये पुण्यात्मा भी और अपुण्यात्मा भी पृथिवी पर आते है। नाना प्रकार के पदार्थों को उत्पन्न करके भोग सम्पादन कराती है। अन्न, औषध, वनस्पति आदि उत्पन्न करके क्षुधा निवारण का हेतु बनती है। अपुण्यात्माओ के लिये विपरीत प्रयोग से दु ख, कष्ट और मृत्यु का भी हेतु बन जाती है। सर्व प्रकार के धातुओ, रत्नो और विभिन्न बहुमूल्य पाषाणो को पैदा कर के पुण्यात्माओ को सुख का भोग कराती है। अपुण्यात्माओं को विपरीत प्रयोग या इनके अभाव से कष्ट और दारुण दु.ख भी देती है। हीरा जहाँ आभूषण है वहाँ मारक विष भी है।

पुण्यशील अपुण्यशील सभी प्राणियो को अपने ऊपर और अन्दर धारण करती है। सब भूतो को भी अपने अन्दर अपने गर्भ मे धारण किये हुए है। जल, अग्नि, वायु, आकाश इसके गर्भ मे रह कर पनपते हैं।

पुण्यात्मा, योगी, ज्ञानी, ससारी इससे नाना प्रकार की कला-कौशल और पदार्थ निर्माण करके भोग और ऐश्वर्य के मालिक बनते हैं। अपुण्यात्मा के लिये भोग और ऐश्वर्य नही के समान या कष्टदायक ही हो जाता है।

इसकी अर्थवत्ता-सार्थकता-प्रयोजनता-सर्वार्थता-उपयोगिता सब जड चेतन के लिये है। प्राणिमात्र का अनेक प्रकार से उपकार-अपकार यह करती है। उन्ही के भोग के लिये इसका निर्माण हुआ है। प्राणिमात्र के भोग और मोक्ष के लिए वसुन्धरा के निर्माण मे भगवान् ने सहयोग किया।

भगवान् की अहेतुक महती उपकारिता का जितना भी धन्यवाद किया जाये वह थोडा ही है। सदा से देव-असुर, ऋषि-मुनि एव ससारी जन उसके उपकारो के गुण गाते आये है, और सदा गाते रहेगे।

जितने भी ये दृश्यमान आकाश मे तारो आदि के रूप मे लोक-लोकान्तर है ये सब उस समष्टि-महाभूत पृथिवी के ही अश है। ये सब भी प्राणियो के भोग और मनुष्य मात्र के मोक्ष और वध के लिये ही उत्पन्न हुए हैं।

स्थाली पुलाक न्याय से इस समष्टि महाभूत पृथिवी के एक अश के विज्ञान से ही समष्टि विज्ञान हो जाता है। योगी की दृष्टि मे इतनी पारदर्शिता है कि वह प्रत्येक लोक के विज्ञान को प्राप्त करने या जानने मे समर्थ हो सकता है। योगी की दृष्टि अव्याहत होती है। उसे कोई रोक नही सकता। कठोर से कठोर ठोस पदार्थ भी उसकी दृष्टि के मार्ग मे बाधक नही हो सकता। सब को भेदन करके वह पार निकल जाती है, जैसे सूर्य की किरणें दर्पण के पार हो जाती है।

योगी की महान् शक्ति
सूर्य की किरणों पर आरोहण

सच्ची घटना—श्री पण्डित आत्माराम जी अमृतसरी मुझसे बहुत स्नेह किया करते थे। इन्होंने बडोदा मे एक कन्या गुरुकुल खोला हुआ था। जब कभी अमृतसर आते थे उनसे मिलना होता था।

एक दिन उन्होंने भरतपुर के योगी का आँखो देखा हाल सुनाया था। भरतपुर से २५-३० मील के अन्तर पर वन मे एक योगी रहा करते थे। भरतपुर आर्यसमाज के प्रधान योग दर्शन के विभूतिपाद पर विश्वास नही करते थे। श्री आत्माराम जी के उनकी समाज मे योग दर्शन पर व्याख्यान हो रहे थे। इनसे प्रधान महोदय ने उस योगी का जिक्र किया। योग दर्शन लेकर दोनो उस योगी के पास पहुँचे। साथ मे योग दर्शन के, दियासलाई भी ले गये।

योगी जी के पास पहुँचे और बोले—"या आप इस विभूतिपाद की कोई सिद्धि हमे दिखा दो, या इस पुस्तक को जला कर भस्म कर दो।"

योगी बोले—"मैं अपने पथ-प्रदर्शक योग शास्त्र का इतना घृणित और निन्दित अपमान नही कर सकता हूँ।"

प्रधान बोले—"यदि अपमान नही कर सकते तो कुछ करामात दिखाओ।"

योगी बोले—"आपको रात्रि को यहाँ रहना पडेगा।"

प्रधान ने कहा—"हम परसो को तय्यारी करके आपके पास आवेंगे, और रात्रि को यही निवास करेंगे।"

गरमी का मौसम था। तय्यार होकर दोनो पहुँच गये।

योगी ने कहा—"प्रातःकाल सूर्य उदय होने से पूर्व आप लोग मेरी कुटि पर आकर बैठ जाना।"

उन्होने ऐसा ही किया।

योगी महात्मा सूर्य के उदय होने की प्रतीक्षा मे इनके पास की कुटि के सामने खडे हो गये। जब सूर्य की टेढी-टेढी किरणे उनके ऊपर पडी, तो उन योगी को उन्होने सूर्य की किरणो पर चढते देखा, जैसे कोई आदमी टेढी बन्धी हुई तारो पर झुककर या सीढी पर झुककर चढा करता है।

वह योगी फिर लौट कर नही आया।

यह आश्चर्यजनक प्रत्यक्ष घटना अपनी आँखो से देखकर इनको महान् आश्चर्य हुआ और यह लज्जित होकर कुछ घण्टे उनकी प्रतीक्षा करके चले आये।

यह घटना चौधरी जयकिशन को सुनाते हुए मुझसे कह रहे थे—'आपकी योग मे विशेष प्रवृत्ति है। आप भरतपुर मे जाकर उस योगी से यदि वे मिल जाय तो यह सिद्धि प्राप्त कर, सीखें। सभव है वे ऐसी और भी कई सिद्धियाँ जानते हो।

जब योगी सूर्य की किरणो पर चढ सकता है तो उसे सूर्यलोक के या अन्य लोक के विज्ञान को प्राप्त करने मे क्या कठिनाई हो सकती है।

योगी को समष्टि महाभूत पृथिवी के कार्य कारण आत्मक विज्ञान को प्राप्त करके इस से उपभोग भी लेना चाहिये, और अन्त मे इसके कार्य-कारण से परम वैराग्य प्राप्त कर के मुक्त होना चाहिए, क्योकि वास्तव मे प्रत्यक्ष रूप से यही बन्ध का हेतु बना हुआ था।

हमने इस महाभूत के सात्विक, राजस, तामस भेद से कार्य-कारण आत्मक रूपो का विस्तारपूर्वक वर्णन अपने पहले ग्रन्थ 'आत्मविज्ञान' मे भी किया है। परन्तु वहाँ जीवात्मा के साथ इसका सम्बन्ध केवल व्यष्टि रूप से ही दिखाया है। जीव किस प्रकार इसके द्वारा भोग और मोक्ष प्राप्त कर सकता है यह दिखाया है। यहाँ तो विशेष रूप से वर्णन करने और लिखने का प्रयोजन केवल ब्रह्म के साथ इसके सम्बन्ध को दिखाने का ही है, क्योकि यहाँ इसका सम्बन्ध केवल ब्राह्मी सृष्टि के साथ ही दिखाना अभीष्ट है।

यह उस समय के विज्ञान का वर्णन है कि जब तक इन जीवात्माओ का सम्बन्ध इन शरीरो के साथ नही हुआ था। या ये जीव देह धारण कर उत्पन्न नही हुए थे। केवल इनके भोग और मोक्ष के पदार्थ ही उत्पन्न हो ,रहे थे। प्रकृति और ब्रह्म मिल कर इनके भोगो का निर्माण कर रहे थे।

इस ब्रह्मी सृष्टि के समष्टि स्थूल भूत प्रत्यक्ष रूप से और यह महाभूत ही समष्टि और व्यष्टि रूप से प्राणीमात्र के भोग और मोक्ष का हेतु बने हैं। क्योकि प्राणीमात्र के शरीरो का मुख्य रूप से यही उपादान कारण हैं, जिसका बनाने वाला निमित्त कारण रूप चेतन ब्रह्म है और उपादान कारण पञ्चतन्मात्रायें और परम्परागत प्रकृति है।

इस महाभूत की विचित्र रचना को देखकर योगियो को तो इसके निर्माता का प्रत्यक्ष रूप से ज्ञान होता ही है। दूसरो को भी अनुमान से समझ लेना चाहिए कि

इस जगत् का कोई एक विशेष निर्माता है। मनुष्य तो असख्य मिलकर भी भारत के एक हिमालय का ही निर्माण सहस्रो, लाखो वर्षो मे भी नही कर सकते हैं, किसी लोक का निर्माण तो क्या करेंगे।

अनीश्वर वादी तो यह कहते हैं कि "ईश्वर की कोई जरूरत नही है। प्रकृति स्वयं ही निर्माण करती रहती है। पचभूत मिलकर स्वय ही जगत् का निर्माण कर लेते है, और करते रहते हैं।"

"यदि पञ्चभूत ही निर्माण करते है विना ईश्वर की चेतन सत्ता के, तब तो तुम्हारी सत्ता के बिना ही मोटर, गाडी, रेल, तार, हवाई जहाज, राकेट, स्पुतनिक, बम, तोपे, मकान स्वय ही बन जाया करे। वे तो तुम्हारे विना बनते नही। इसी प्रकार पंचभूत भी स्वय निर्माण नही कर सकते हैं। इससे सिद्ध है कि इस जगत् को बनाने वाला कोई विशेष चेतन है जो तुम्हे दीखता नही, और जो तुम्हारी समझ मे भी नही आता है। वह सर्वदेशी है, सर्वव्यापक है। इन महाभूतो का सचालन और नियमन निमित्त कारण चेतन के आश्रय से ही हो रहा है।

शरीर में दो चेतन सत्तायें

(शका) यदि इस जगत्, पचभूतो या प्रकृति की क्रिया, गति या संचालन उस ब्रह्म की चेतन सत्ता के सामीप्य से ही हो रही हैं तो प्राणियो के शरीर मे भी उसी की क्रिया क्यो न मान ली जाये, जीवात्मा को पृथक् मानने की कोई आवश्यकता नही ?

(समाधान) प्राणियो के शरीर मे दो प्रकार की क्रियाये होती है . १ ऐच्छिक २ अनैच्छिक।

१ ऐच्छिक क्रियायें—ऐच्छिक क्रियाओ को करने के लिए जीवात्मा का मानना आवश्यक है। यह ऐच्छिक क्रियाएँ जीवात्मा के सान्निध्य से ही होती हैं। जीवात्मा एक देशी है, इसके एकदेशी होने से क्रियाओ के करने के लिए इसे अन्त करण चतुष्टय और इन्द्रियो की भी जरूरत है जिनके द्वारा यह जीवात्मा भोक्ता कर्ता आरोप द्वारा माना-जाना है। यदि ब्रह्म के साथ-साथ शरीर मे जीवात्मा की सत्ता को स्वीकार न करें तो इन ऐच्छिक क्रियाओ का निमित्त कौन होगा ? जैसे –पैरो मे गमन करना, लात मारना; हाथो से ग्रहण करना और त्यागना, मारना, युद्ध करना, अन्य कार्य करना, गुदा और लिंग से मल त्यागना और पेशाब, मैथुन करना, ऐच्छिक क्रियाये हैं। वाणी से वार्तालाप आदि करना यह सब कर्मेन्द्रियो के व्यापार जीव के सम्बन्ध से ही होते हैं। दूसरे ज्ञानेन्द्रियो के कार्य भी जीव के ही सम्बन्ध से होते है। शब्द का सुनना, रूप का देखना, रसो को चखना, स्पर्शो को छूना, गन्धो को सूँघना यह सब ज्ञानेन्द्रियो की क्रियायें जीवात्मा के सम्बन्ध से होती है। अन्त करण के कारण जीव मे यह इच्छा का आरोप जीव की सत्ता को सिद्ध करता है। ब्रह्म तो पूर्ण-काम इच्छा-रहित है, उसमे इच्छा का आरोप नही हो सकता। अनन्त और सर्वव्यापक होने से इन ऐच्छिक क्रियाओ के कारण जीव को मानना आवश्यक हो जाता है, एक देशी होने से जो ब्रह्म की चेतन सत्ता से भिन्न है। इस प्रकार दो चेतन सत्तायें स्वीकार करनी होगी। हैं भी दो ही। इनका साक्षात् प्रत्यक्ष सविचार समाधि मे होता है।

अनच्छिक क्रियायें—यह क्रियायें विना इच्छा के भी शरीर मे होती रहती है। इन्हे स्वाभाविक भी कह देते है। जैसे—अस्थि, मास, स्नायु, चर्म और केश आदि की वृद्धि, रक्त का सचार, जठराग्नि द्वारा पाचन क्रिया, सातो धातुओ का निर्माण, भोजन के रस से सब धातुओ की वृद्धि, प्राण का गमना गमन, श्वसन क्रिया, हृदयस्थ तथा अन्य नाडियो मे गति, धमनिया मे शब्द का होना, गर्भ मे बालक का निर्माण और वृद्धि, शैशव, कौमार, यौवन और वृद्धावस्था का आगमन। यह सब क्रियाये न चाहे तब भी होती रहती है। इन क्रियाओ का निमित्त दोनो चेतन सत्ताय हैं। जीव और ब्रह्म दोनो की विद्यमानता इन क्रियाओ का निमित्त है। केवल शरीर निमित्तक विशेष क्रियाये जीव की समीपता से और परिणामात्क सामान्य-क्रियाये सीधी प्रकृति का परिणाम होने से ब्रह्म की चेतन सत्ता की समीपता से होती है। जैसे ब्रह्म की व्यापक चेतन सत्ता समान रूप से सब प्रकृति के कार्यो मे क्रिया कर रही है, उसी प्रकार प्राणियो के शरीर मे भी सामान्य परिणामात्मक क्रियायें कर रही है। उन सामान्य क्रियाओ मे जीव की सत्ता भी निमित्त होती है। जीव स्वल्प अणुमात्र है। इसलिए समष्टि प्रकृति के कार्यों को कैसे कर सकेगा। यदि ऐच्छिक क्रियाओ को भी ब्रह्म के सम्बन्ध से मान ले तो ब्रह्म को कर्ता भोक्ता, बद्धमुक्त जीव की तरह मानना पडेगा जो सर्वथा अनिष्ट है। यह तो साध्यसम दोष आ जायगा।

ब्रह्म मे कर्ता भोक्तापन का अभिमान भी नही होता है। अभिमान धर्म अहकार का है, ब्रह्म मे अहकार नही है। अहकार की आवश्यकता एकदेशी को होती है। ब्रह्म तो सर्वदेशी है। इसी लिए उसमे कर्तापन और भोक्ता पन भी नही होता है। उसके सब कार्य अनिच्छापूर्वक प्रकृति द्वारा होते है।

ईश्वर के समान चेतन-गुण जीवात्मा मे है अनिच्छित क्रियाओ का यह भी निमित्त है। दोनो चेतनो के सहयोग से अनिच्छित कार्य हो रहे है। वेद ने भी 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया' मन्त्र मे कहा है 'अनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति'। शरीर की सामान्य क्रिया का निमित्त होने पर भी ईश्वर भोक्ता नही बनता। साक्षी रूप मे ही रहता है। भोक्ता कर्ता का जीवात्मा मे आरोप होता है, इसीलिए शरीरो मे विशेषता आयी हुई है। शरीरो मे दो चेतनो का आवास है, वरना यह भी पृथिवी के समान बनकर पडे रहते, और भगवान् के अनिच्छित कार्यो का ही आश्रय होते, भोग और अपवर्ग का निमित्त न बन पाते। शरीरो मे जो भूमि आदि की अपेक्षा जीवन का विशेष सचार, कर्म और व्यापार—इच्छा, प्रयत्न, सुख, दुःख आदि हो रहे है वे सब जीवात्मा के सम्बन्ध से ही हो रहे है।

दृश्यमान जितने भी लोक और पदार्थ हैं इन सबमे सकल्प-रहित, प्रयत्न और इच्छा हीन ईश्वर की चेतन सत्ता के सम्बन्ध विशेष से कार्य-कारण रूप प्रकृति परिणाम को प्राप्त हो रही है। ब्रह्म चेतन है, और निष्क्रिय है। प्रकृति इसके सन्निधान मात्र से ही सदा कार्य रूप पदार्थो का निर्माण करती रहती है, और चेतनवत् सी बनी रहती है। ब्रह्म की व्यापकता से यह चेतनवत् सी बनी जगत् की रचना, पोषण, और विनाश करने मे समर्थ हो जाती है। प्रकृति पाद-रहित पगु के समान है अत चेतन की सहायता की अपेक्षा रखती है। निमित्त कारण ब्रह्म के चेतन रूप बल को लेकर सृष्टि के निर्माण

तथा उसके अगणित कार्यों के करने में समर्थ हो जाती है। जीवात्मा को भोग और अपवर्ग प्रदान करने के लिए।

यह प्रकृति अपने सात्विक, राजस, तामस गुणों के आधार पर सृष्टि की रचना करती है।

सात्विक भाग से—इस लोक मे भी समष्टि रूप महा पृथिवी सात्विक भाव मे कार्य रूप मे परिणाम भाव को प्राप्त होकर मुख्य रूप से प्राणियों के शरीरो मे निर्माण मे प्रवृत्त हुई है। सब लोकों मे जितने भी जीवो के शरीर हैं उन सबकी रचना इसके सात्विक भाग से ही होती है।

राजस भाग से—समष्टि महा पृथिवी के राजस भाग से स्वर्ण, रजत, ताम्बा, पीतल, लोहा, रांगा, सिक्का, हीरा, मोती, नीलम, पन्ना, कांच, पारद, मणियाँ, युरेनियम, विविध धातें, और गैसें भूमि के गर्भ मे बनती है।

तामस भाग से—समष्टि महा पृथिवी के तामस भाग से साधारण विशेष पाषाण, सगमरमर, संगस्याह, लाल पत्थर, चूने का पत्थर, कोयला आदि, और चिकनी, काली, लाल, पीली आदि मिट्टी और रेत, रेणुका आदिक बनते हैं। इस कार्य रूप महा-भूमि मे असंख्य पदार्थ उत्पन्न हुए हैं और महाप्रलय तक होते रहेंगे। ये सब कार्य-कारण आत्मक पदार्थ मिलकर भोग और अपवर्ग का हेतु बनते है, और बनते रहेंगे।

महाभूत पृथिवी और इसके कार्यों मे सर्वत्र ब्रह्म की भावना कर के इसमे पूर्ण ज्ञान और वैराग्य प्राप्त करना चाहिये जोकि मोक्ष के लिये और ब्रह्म विज्ञान के लिये अत्यन्त हितकर और कल्याणकारी होगा।

मनुष्य देह का प्रयोजन

वास्तव में मानव देह ही आत्मज्ञान और ब्रह्मज्ञान के लिये प्राप्त होता है। यह नादान मनुष्य इस अमूल्य जीवन को संसार के भोगों को भोगते-भोगते ही व्यतीत कर देता है। अपने वास्तविक उद्देश्य से भटक जाता है। कर्तव्य से विमुख हो जाता है।

संसार में जितने भी शरीर-धारी प्राणी हैं इन सबमे मानव शरीर ही सर्व-श्रेष्ठ है। इस शरीर मे ही अपने स्वरूप और भगवान् के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त हो सकता है। इसी कारण मनुष्य को सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। इसकी श्रेष्ठता तब ही है जबकि यह कम से कम अपने आपको तो पहचान ले, और जान ले कि में कौन हूँ? कहाँ से आया हूँ? कहाँ जाना है? क्या मेरा लक्ष्य है? इस वास्तविक उद्देश्य को भूलकर लोक संग्रह या इन्द्रियो के भोगो मे आसक्त होकर जीवन भर इन्ही भोगो का संग्रह करता रहता है।

जब बालक कुछ पढ-लिख कर बड़ा होता है तब किसी व्यापार या व्यवसाय मे लग जाता है। फिर विवाह कर के विषयों को भोगते हुए सन्तान उत्पन्न करता है। फिर इनका पालन-पोषण रक्षण करता है, और धन, भूमि, मकान इत्यादि सामग्री इकट्ठी कर के उपभोग में लाता है। पदार्थों के सग्रह मे न्याय-अन्याय, पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म का भी ध्यान नही रहता है। अनेक सुख, आराम और भोगो के सामान जोड़ता

है। अन्त मे असन्ताप अतृप्ति को साथ मे लेकर और सब कुछ यहाँ ही छोड कर मजबूरी की हालत म इस ससार से चला जाता है। कहाँ जाता है ? यह कुछ पता नही। क्या जाता है ? यह भी कुछ पता नही ।

प्राय ससार म सब मनुष्यो की यही दशा है। अनेक अधूरी कामनायें साथ लेकर और सब कुछ छाड कर जाना पडता है। इस जन्म मे कामनाय पूर्ण नही कर पाया ता एसे और भी सैकडो जन्म मिल जाय तब भी तृष्णा या कामना पूर्ण होन की सभावना नही है।

अब बताओ इस जीवन मे और पशु जीवन मे क्या अन्तर है। पशु भी अपना पेट भर लेता है। बच्चे भी उत्पन्न करता है। इन्द्रिया के सब ही भोग मनुष्य के समान भोगता है। कई अच्छी बाते पुरुष की अपक्षा पशुओ मे अधिक भी होती है। पशु भविष्य के लिए कुछ भी सग्रह नही करता है क्योकि भविष्य की उसको कोई चिन्ता नही। अन्याय से तो क्या वह न्याय से भी कुछ नही जोडता। दभ पाखण्ड, ढाग दूसरा का शापण आदि कुछ भी अनाचार नही करता है। नियत समय पर ही सभोग कर सन्तानो त्पत्ति करता है। कितने ही गुण पुरुष की अपेक्षा से अच्छे है।

आप कह सकते हैं कि पशु मे अपना हानि लाभ सोचने की बुद्धि नही है। परन्तु मानव को तो ईश्वर ने बुद्धि प्रदान की है। समाज माता पिता, अथच गुरु द्वारा बुद्धि का विकास होता है। परन्तु अत्यन्त खेद की बात है कि मनुष्य फिर भी नही सोचता, फिर भी सावधान नही होता। यह नही विचारता कि मनुष्य जीवन वास्तव मे किसलिए प्राप्त हुआ है। क्या खाने कमाने, भोग-भोगने, विषयो मे आसक्त रहने और अन्त मे असहाय की तरह सब कुछ यहाँ ही छोड कर, मर जाने के लिए ही यह अमूल्य देवपुर या ब्रह्मपुर प्राप्त हुआ है। शास्त्रो मे इस मानव शरीर का देवपुरी या ब्रह्मपुरी नाम से कथन किया गया है। इन्द्रपुरी भी इसे ही कहा है, क्योकि इसमे आत्मा रूपी इन्द्र या देव का, और ब्रह्म का भी वास है। इसी म आत्मा और ब्रह्म की प्राप्ति होती है ज्ञान होता है। यह मानव शरीर ही आत्मा और ब्रह्म का मन्दिर है। इस दुर्लभ शरीर को प्राप्त करके भी यदि जगत् म भोग ही भोगने हैं तब तो यह पशु पक्षी आदि के शरीरा में भी भोगे जा सकते हैं। जो विषयभोगजन्य सुख मनुष्य को देवपुरी या ब्रह्मपुरी इस मानव दह मे प्राप्त होता है, वही एक कुत्ते को भी कुतिया के सहवास से प्राप्त होता है। वही सुख वृषभ को गाय के साथ म प्राप्त होता है। जो आस्वाद मनुष्य को षड्रस के व्यजनो मे प्राप्त होता है वही एक शूकर को विष्ठा के खाने मे प्राप्त होता है। मनुष्य को रेशम और मखमल, या रुईदार गद्दे पर सोने मे जो सुख का अनुभव हाता है, वह एक खर को घूरे मे लेटकर अनुभव होता है। अब सोचो पशु मे और मनुष्य मे क्या अन्तर रहा ? इसमे मानव की क्या श्रेष्ठता हुई ?

वर्तमान युग म मनुष्य अध्यात्म विज्ञान से विमुख होकर अधिकाश मे भोग-प्रधान ही बना हुआ है। अहर्निश इस शरीर और भोगा की ही चिन्ता बनी रहती है। उन भोगों और शरीर से परे कोई आत्मा भी है, इसके जानने की कभी जिज्ञासा ही नही हाती है। इस जीवन मे अधिक से अधिक भोग और ऐश्वर्य प्राप्त हो यही अभिलाषा बनी रहती है। क्या यह सुदर पवित्र शरीर रूपी मन्दिर इसीलिये प्राप्त हुआ है कि सम्पूर्ण जीवन ही भोगा म व्यतीत कर दें।

संसार मे नित्य ही मरे हुए शरीर की गति देखते हो—कोई अग्नि मे भस्म कर देता है, कोई जल मे डाल देता है, कोई भूमि मे दबा देता है, कोई कौवे, कुत्ते और गिद्धो को फेंक देता है। फिर भी इसके भोगो पर अभिमान करते हो, जिसकी अन्त को यही गतियाँ होती है।

अच्छा हो, यदि अब भी सावधान होकर इस शरीर के द्वारा आत्मा और ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त कर लो। अन्यथा यह पशु की तरह ही समाप्त हो जायेगा। पशु भी भोग भोग कर चला गया, कुछ भी साथ न ले गया, मनुष्य भी भोग भोग कर चला गया, कुछ भी साथ न ले गया। भोग सब ही अनित्य है, क्षणभगुर है, नाशवान् है। इसीलिये विषयजन्य सुख थोडी देर के लिये केवल भोग काल म ही प्रतीत होता है। भोग से पहले इनकी प्राप्ति की अभिलाषा मे सन्तप्त बने रहते है। और भोगने के पश्चात् उनसे ग्लानि का भी अनुभव होने लगता है। केवल भोगकाल के थोडे से समय के लिये ही सुख की अनुभूति होती है, जिसके लिये कितना घोर परिश्रम करना पडता है। और इस क्षणिक सुख का परिणाम भी दु ख ही है। इससे सिद्ध होता है कि भोग काल का सुख भी दु ख का ही रूप था। मनुष्य भ्रान्ति से सुख समझ बैठा था। जिस सुख का प्रारम्भ और अन्त दु ख ही है तो बीच का क्षणिक सुख भी भ्रान्ति ही तो है। परिणाम ताप, और सस्कार रूप मे सुख भी अन्ततोगत्वा दु ख ही है, क्योकि वह भी दुख का हेतु सिद्ध होता है। यह सुख या आनन्द यदि स्थायी, अविनाशी और नित्य होता तब तो इसके लिये यह महान् प्रयत्न करना बुद्धिमत्ता होती, सार्थकता होती, पूर्ण सफलता होती इस मानव जीवन की। पर यह इन्द्रियजन्य सुख तो अनित्य है, क्षणिक है, यह प्रत्यक्ष अनुभव मे आता है। पर यह मानव महान् मूर्ख है, भ्रान्त हुआ हुआ है जो उस क्षणिक और नाशवान सुख के पीछे सारा जीवन दौड लगाता रहता है। यह मरु मरीचिका मे मृग के समान दौडकर, भटक-भटक कर मर जाता है। फिर भी इसे अपनी, भूल, भ्रान्ति या मूर्खता पर लज्जा नही आती न ही पश्चात्ताप होता है। जो इन्द्रिय-ज य सुख विषय के सयोग से उत्पन्न होता है पहले अमृत के समान जान पडता है, वह अन्त मे विष के समान ही सिद्ध होता है। यह दुर्बुद्धि मनुष्य वास्तव मे नित्य सुख और आनन्द से वञ्चित ही रहता है।

उपनिषद कहती है—'उत्तिष्ठत जाग्रत'। उठो! जागो! अविद्या अन्धकार से निकलो। इस अमूल्य मनुष्य जीवन को ससार के भोगो म व्यर्थ नष्ट न करो। मनुष्य जीवन के यथार्थ लक्ष्य को पूरा करो। परन्तु यह मानव फिर भी चेतता नही है! समझ नही पाता है। ससार के भोग कुछ ऐसे ही है, जैसे गुलाब का बूटा। इसमे पुष्प तो बहुत कम होते है, और वह भी कभी-कभी निकलते हैं, परन्तु उसमे काटे तो सहस्रो लाखो ही होते है, और सदा ही बने रहते हैं। इसी प्रकार ससार के भोगो मे भी सुख बहुत थोडा, और वह भी क्षणिक होता है। दु ख तो असख्य होते है, काटो के समान। पुन पुन दु ख भोगने पर भी विषयो से, भोगो से सुख की आशा रखते है। राग और मोह की यह महिमा कितनी प्रबल है। मानव को अपना दास बना कर रखती है।

हे मानव! यह विषय भोग और शरीर सब अनित्य हैं, नाशवान् है। तो फिर तू क्यो इनकी प्राप्ति और इनसे तृप्ति पाने के लिये अहर्निश लगा हुआ है, क्यो इनमे इतना रत हो गया है कि तुझको अपने यथार्थ कर्त्तव्य का ही पता नही हैं। सब कुछ इस

शरीर के लिये कर रहा है। इसके अभिमानी शरीरी-आत्मा की खोज या प्राप्ति के लिये प्रमादी और अकर्मण्य होकर क्यो बेकार बैठा है। जिस भगवान् ने तेरे ऊपर अनन्त उपकार किये है तू उसके प्रति भी कृतघ्न बना हुआ है। उसका धन्यवाद भी नही करता। मृत्यु से पूर्व ही जो कुछ करना है कर ले, मौत सिर पर सवार है। एक-न-एक दिन तुझे अपना ग्रास बना लेगी। तू उसे कदापि हटा न सकेगा। उसका निवारण नही हो सकता। जिनके संग्रह मे तू लगा हुआ है, उनमे मे कोई भी तो तेरे साथ नही जायेगी। अतः इनमे ममता की भावना को छोड, इनके सग्रह मे इस घोर परिश्रम का त्याग कर। इस मानव जीवन के सच्चे उद्देश्य को पूरा कर। अपने स्थायी, नित्य, असङ्ग, आनन्दमय चेतन रूप को पहचान। अथवा उस महान् उपकारी ईश्वर की आराधना कर, पूजा कर, ध्यान कर, उपासना कर। उसको जान, उसका साक्षात्कार कर। जिसने तेरे प्रति निष्काम भाव से अनन्त उपकार किये है।

आलस्य और प्रमाद को त्याग कर ब्रह्म की प्राप्ति के लिये कटिबद्ध हो जा। जुट जा। उपनिषद आदेश कर रही है—

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो,
न च प्रमादात्तपसो वाप्यलिगात्।
एतैरुपायैयते यस्तु विद्वान्स,
तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम ॥

मुण्डको० मुण्डक० ३। ख० २। म० ४।

जिस योगी मे शारीरिक और बुद्धि बल का अभाव है, जो आलसी, प्रमादी, और तप आदि से रहित है उसको ब्रह्म प्राप्त नही हो सकता है। जो बलवान है, बुद्धिमान् है, जिसके अन्दर आलस और प्रमाद नही है, जो तपस्वी जितेन्द्रिय है, वह विद्वान योगी अपने आत्मा या बुद्धि द्वारा उस ब्रह्म मे प्रवेश करके साक्षात्कार कर लेता है। इसको प्राप्त करके ज्ञान से तृप्त, कृतकृत्य एवं वीतराग होकर पूर्ण स्थायी शान्ति को प्राप्त होता है और उस ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।

ब्रह्म-ज्ञान का सर्व प्रथम द्वार

हमने ब्रह्म-विज्ञान और उसके साक्षात्कार के लिए सर्व-प्रथम इस स्थूल समष्टि महाभूत पृथिवी को लक्ष्य बनाया है। यह प्रत्यक्ष रूप से कारण और कार्यात्मक रूप मे सब मनुष्यो के दर्शन का विषय बनी हुई है। सब स्थूल पदार्थो मे महान् भी है। यह स्थूलता की दृष्टि से महान् है, ब्रह्म सूक्ष्मता की दृष्टि से सबसे महान् है। अत. महान् मे महान् का दर्शन ठीक हो सकता है। ब्रह्म-ज्ञान के जिज्ञासु योगी के लिये नाना प्रकार के साधनों द्वारा इस पृथिवी महाभूत की पाँच अवस्थाओ मे इनके विज्ञानपूर्वक ब्रह्म-विज्ञान का वर्णन किया है। इस पृथिवी की सब अवस्थाओ को समझ कर, इसका वास्तविक स्वरूप जान कर इससे वैराग्य करना होगा, क्योकि मानव के लिये सर्वप्रथम यही बन्ध, राग और भोग का हेतु बनी है। अत मोक्ष का सर्वप्रथम द्वार भी यही बनती है। जब तक इसके भोग की आसक्ति दूर न होकर विरक्ति नही होगी तब तक छुटकारा, होना, इसके बन्धन से मुक्त होना असम्भव ही समझे। यह पृथिवी महाभूत भगवान् या

आवासस्थान है। भगवान् इसमे व्यापक होकर ओतप्रोत हुआ है। इसको आप भगवान् का मन्दिर समझे। सर्वप्रथम इसी मे उस ब्रह्म की उपासना और विज्ञान हो सकता है। इसी को ब्रह्मज्ञान का प्रथम द्वार समझो। इसके अनन्तर इसमे सूक्ष्म इसमे अगले पदार्थो मे ऋतंभरा विज्ञान के द्वारा ब्रह्म की अन्वेषणा करे।

इति समष्टि पृथिवीमहाभूत मण्डलम्

इति प्रथमाध्याये द्वितीयः खण्डः

इति त्रयस्त्रिंशदावरणम्

तृतीय खण्ड

(३२वाँ आवरण)

समष्टि जल महाभूत, पाँचों रूपों में ब्रह्म-विज्ञान

'साधक-वृन्द ! द्वितीय खण्ड प्रोक्त विधि के अनुसार आपने समष्टि-महाभूत-पृथिवी के पाँच रूपों का समाधि द्वारा प्रत्यक्ष कर लिया है। पृथिवी की परिणाम होती प्रत्येक अवस्था मे ईश्वर के सन्निधान का भी प्रत्यक्ष कर लिया है। अब आप पृथिवी और पृथिवी के कार्यों में सर्वत्र ब्रह्म को पाते है। विस्तृत वसुन्धरा और यह लोक-लोकान्तर, यह वन पर्वत वनस्पति सब ही पार्थिव भूत उस भगवान् की विद्यमानता को दिखाने लगे हैं। इन स्थूल पार्थिव पदार्थों को देखकर स्थूल मे भगवान् की सत्ता तो समझ मे आने लगी, भगवान् तो अत्यन्त सूक्ष्म, सूक्ष्मातिसूक्ष्म है, अत आप भी सूक्ष्म की ओर समाधि को बढ़ाइये। पृथिवी से सूक्ष्म जल है, अब इस जल के पाँचो रूपो का साक्षात्कार समाधि मे कीजिये। उन सबमे ही व्याप्त ब्रह्म के दर्शन भी कीजिये। ध्यान के विषय को सूक्ष्म करते चलिये, जिससे आप क्रमश: अत्यन्त सूक्ष्म ब्रह्म के दर्शन को भी पा सके।

साधक वृन्द ! अब आप ने अपनी धारणा ध्यान समाधि का विषय जल महा-भूत को बनाना है जिसका आप दिन-रात प्रयोग करते है, और नाना उपयोग लेते है। इसके भी पृथिवी के समान पाच रूप है, १. स्थूल रूप, २. स्व रूप, ३. सूक्ष्म रूप· ४. अन्वय रूप ५. अर्थवत्ता रूप। द्वितीय खण्ड के आरभ मे इन पाचो की व्याख्या दी है। उसे हृदयंगम कर लीजिये और जल महाभूत का समाधि मे विश्लेषण कीजिये। उसके सूक्ष्म रूपो को समझिये, और साथ ही साथ निमित्त कारण भगवान् का भी प्रत्यक्ष कीजिये, जिससे जल से भी सूक्ष्म भूतो मे आपकी गति हो सके।

समष्टि जल महाभूत मण्डल

प्रथम रूप में ब्रह्म-विज्ञान

(जल का प्रथम रूप)

१ जल के स्थूल रूप में –

सृष्टि रचना मे जल महाभूत पृथिवी से पहले होने वाली चौथे नम्बर की परिणाम अवस्था है। जल के परिणाम से पूर्व अग्नि महाभूत पर्यन्त परिणाम हो चुका है। गन्ध और रस तामात्रा को छोड कर अन्य अग्नि, वायु और आकाश की तन्मात्राये परिणाम भाव को प्राप्त हो चुकी है। रस तन्मात्रा का सूक्ष्मतम रूप ही जल महाभूत के रूप में परिणाम भाव को प्राप्त हुआ है। साथ मे क्रमपूर्वक अपने सब गुणों को लेकर उत्पन्न हुआ है।

आरभ मे आप जल महाभूत के दृश्यमान और अनुभूयमान स्थूल रूप पर मनन कीजिये। इस जलमहाभूत के स्थूल रूप की अपेक्षा भूमि का स्थूल रूप अत्यन्त स्थूल था। पृथिवी को उठा कर कुछ भी रूप दे सकते थे। जल तो बिना किसी आधार के उठाया ही नही जा सकता। कलश या बाल्टी या लोटा कोई पात्र होना चाहिये जल को उठाने के लिये, पृथिवी का ढेला, पत्थर, लकडी, सोने, चादी आदि की डली तो बिना किसी आधार के ही सुविधा के साथ उठा ली जाती है। पृथिवी जल से बहुत स्थूल थी, जल पृथिवी की अपेक्षा सूक्ष्म है।

१ सूक्ष्मता—सूक्ष्मता जल का सर्वप्रथम धर्म है। जल इसीलिये पृथिवी मे प्रवेश कर जाता है। पृथिवी के रूप पत्थर लकडी, धातुएँ आदि जल मे प्रवेश नही करती। जल इनमे घुस जाता है। सूखी लकडी वर्षाकाल मे फूल जाती है। कच्ची मिट्टी पानी मे घुल जाती है, पर पानी मे प्रवेश नही कर पाती इसीलिये थोडी देर पीछे नीचे बैठ जाती है। पानी नितर कर ऊपर आ जाता है। मिट्टी के कारण पानी अलग नही होता, क्योकि मिट्टी पानी मे प्रवेश नही करती। पानी मिट्टी म प्रवेश कर जाता है, इसलिये इकट्ठी हुई बडी मिट्टी को नरम कर देता है और अन्त म अलग-अलग भी ढेला को कर देता है। पर जब इसकी मात्रा अधिक हो या इसकी मात्रा परिमित हो और मिट्टी सूखी हो तो प्रवेश कर जाता है, और उसको सघात मे पलट देता है। इसीलिये पृथिवी के सघात मे सर्वप्रथम इसी का योग होता है। पृथिवी और इसके कार्यात्म पदार्थो मे सूक्ष्मता के कारण बहुत शीघ्र प्रवेश कर जाता है। जल ने सूक्ष्मता के कारण ही पृथिवी के कण-कण के साथ मिलकर इसको महान् आकार वाली बनाया हुआ है जिससे पृथिवी सर्वभोग्या बन सकी।

जल सूक्ष्मता के कारण ही फल, वनस्पति, लता आदि मे प्रवेश कर उन्हे 'सजीव' सा बनाये हुए है। सूक्ष्मता के कारण पृथिवी मे प्रवेश कर वापी, कूप, झरने, स्रोत आदि का निमित्त बनता है। सूक्ष्मता के कारण ही जल वस्त्र क रग-रग मे घुस मैल को बाहर निकाल लाता है। सूक्ष्म होने के कारण ही वनस्पति एव जीव जन्तुओ एव मनुष्यो के देहो मे सर्वत्र पहुँच कर बाल से भी सूक्ष्म नसो और रोम राजि को जीवित सा किये हुए है। मास सैलो मे प्रवेश कर मानव देह को जो उज्जीवित बनाये हुए है यह इसकी सूक्ष्मता का परिणाम है। सूक्ष्मता के कारण ही शरीर से बाहर स्वेद के रूप म वह निकलता है। जल सूक्ष्म है इसीलिये सोम वल्ली, गिलोय, आदि बेलो और अन्य वनस्पति, फल, फूल, ओषधिया के सुरस के रूप मे उनके सारे गुणो के सहित निचोड कर रोगियो के उपयोग मे आता है। जल की सूक्ष्मता ही नाना प्रकार की नेति धौति वस्ती आदि हठ योग की क्रियाओ को कराने मे समर्थ होती है। कुन्जल, करणी, व्याघ्री आदि क्रियाओ का निमित्त भी जल की सूक्ष्मता है। विषाभरण-सूचिका, इन्जेक्शन आदि जो मरणासन्न को बचा लेते हैं, यह भी जल की सूक्ष्मता के निमित्त ही हैं। सूक्ष्मता के कारण ही जल नलो मे और फव्वारो म कही-कही से लाकर, उद्यानो और घरो की शोभा बढाने वाला होता है। यह सूक्ष्मता ही इस प्रकार अनन्त उपकारो का निमित्त बनी है।

२ स्नेह—जल के साक्षात् अथवा परम्परित कारणो म से किसी मे स्नेह नही है। पर प्रभु के सन्निधान से चेतन से बने इस जल मे स्नेह गुण प्रकट हो जाता है। भूमि

या इससे बने सब पदार्थों को चिकना कर देना, नरम कर देना, उनकी शुष्कता को मिटा देना भूमि और इसके बने पदार्थों मे स्निग्धता पैदा करना इसी का धर्म है। जितने भी चिकने या स्नेहवान् पदार्थ है वे सब इसी स्नेह गुण के कारण बने हैं। लावण्यता, सुन्दरता, चमक, झिमलना इसी स्नेह रूप गुण से सब पदार्थों मे आये हुए है। तैल, घृत आदि मे जो चिकनापन है वह इसी स्नेह से आया है। सीमेन्ट के पलस्तर पर इसी जल के संघर्षण से स्निग्धता आती है। नदियो मे बहते खुरदरे नोकीले पत्थर भी जल के इसी स्नेह गुण के कारण रगड खा-खाकर वहे या चिकने सुन्दर बढ़िया बन जाती है। शीशा, संगमरमर आदि मे जो स्निग्धता है वह इसी जल के स्नेह गुण के कारण है। मार्बल चिप्स के फर्श भी जल डाल-डाल कर घिसने से इसी स्नेह धर्म के कारण अत्यन्त चिकने बन जाते है। रग रोगन का चिकनापन भी जल के स्नेह गुण के कारण है। आर्ट पेपर वारनिश आदि मे जो चिकनापन है वह भी इसी स्नेह के कारण से आया है। जल मे पडी रहने पर इसी गुण के कारण खुरदरी मिट्टी चिकनी बन जाती है। चिकनी मिट्टी के खिलोनो और बरतनो पर कुम्हार इसी जल को लगा कर चिकनापन पैदा करता है। फर्नीचर पेन्ट और वारनिश के पालिश के कारण जो बहुमूल्य चिकना हो जाता है उसका कारण भी यही स्निग्धता है।

३ मृदुता—जल की मृदुता भी जल से पहले या पीछे उत्पन्न होने वाले अग्नि या पृथिवी कीनहीं है। जल मे यह विलक्षणता प्रभु के सन्निधान से ही आयी है। पृथिवी और इसके पदार्थो मे जो कोमलता है, वह इस जल के मृदु रूप गुण के योग से आयी है। अन्यथा पृथिवी का स्वाभाविक धर्म तो शुष्कता है। कठोरता का अभाव करके लचक पदा करना, मिठास पैदा करना, भूमि मे उपज की योग्यता बना देना, उसे नरम कर देना इसी मृदु गुण का कार्य है। जल इतना कोमल है कि उसमे वस्तुएँ प्रवेश पा जाती है, धुस जाती है। मोटे से मोटा शहतीर और पतले से पतला तिनका भी इस मृदुता के कारण जल मे घुस जाता है। बडी बडी चट्टानें एव बडे बडे पोत भी इसी मृदुता गुण के कारण जल के तल मे विलीन हो जाते हैं। जो सन्धान करे उसमे मृदुता होनी ही चाहिए। बिना मृदुता के दो को मिलाया नही जा सकता। इसलिये सूखी और भुरभुरी मिट्टी मे जब जल मिलता है, तो वह भी मिल जाती है, और जल के कोमलता गुण को भी धारण कर लेती है। जो मिट्टी का ढेला टकराने से चोट पहुचाता था, जल के स्नेह के कारण कीचड के रूप मे कोमल हो गया। अब लगने पर चोट नही पहुँचाता। वेग के कारण भी हलका सा ही आघात पहुँचाता है, और मृदुता के कारण वही चिपकना चाहता है। नमक और चीनी कितनी कठोर प्रतीत होती है। पर जल की मृदुता प्राप्त कर स्वय अत्यन्त मृदु हो जाती हैं, पानी का सा ही रूप धारण कर लेते हैं। जल की मृदुता देखिये, जिस किसी भी आकृति के आकाश मे समाता है उसी आकृति का बन जाता है। विरोध नही करता, लोटे की आकृति का बन जाता है। थाली मे डालो थाली की आकृति और बालटी मे डालो तो बालटी की आकृति धारण कर लेता है। जल के इस मृदुता गुण के कारण दुनिया मे सहस्रो साचे काम कर रहे हैं। जल से सानी गयी मिट्टी भी इस मृदु गुण को धारण कर साँचे मे पड साँचे की ही आकृति धारण कर लेती है। इसी आधार पर मिट्टी, चीनी, मोम, सैलोलाइट, रबड, धातु आदि की न

जाने कितनी वस्तुएँ, आकृतिएँ साचो मे ढलती हैं। इसी मृदु गुण के कारण जल सर्वत्र पहुँच जाता है, बडी-बडी चट्टानो को भी मार्ग देने के लिये मजबूर करता है।

४. गुरुत्व—जल मे भी पृथिवी की तरह का भारीपन है। जिस पदार्थ के साथ इसका मेल होता है उसके भार को अधिक कर देता है, जैसे, मिट्टी, वस्त्र आदि। गरमियो मे नगरो मे सूखी कुट्टी और भूसा बेचने वाले पानी डालकर कुट्टी और भूसे का भार बढा देते हैं। शाक आदि बेचने वाले भी पानी डालकर शाक का भार बढा देते हैं। दूध बेचने वाले भी पानी मिलाकर पानी को भी दूध के भाव इसी गुरुत्व के कारण बेच लेते हैं। पृथिवी के साथ मिलकर जल ने पृथिवी के भार को भी बढाया हुआ है। पृथिवी के भार मे इसमे साढे पांच (५½)वा भार है। पृथिवी और इससे बने पदार्थो से अधिक भार वाला अन्य पदार्थ नही है।

जल गुरु है। भारी है। जल मे भार है। इसे तोला जा सकता है। यह तैल आदि से अधिक गुरु है। तैल मे जल मिलाने पर जल नीचे बैठ जाता है। तैल ऊपर तैरने लगता है। लकडी आदि मे भी गुरु है। लकडी इसके ऊपर तैरती रहती है। जितनी लकडी गीली होगी, अर्थात् लकडी मे पानी होगा, उतनी ही अधिक भारी होगी। वृक्षो की हरी लकडियां इसीलिए भारी होती हैं। जल गुरु है, इसलिये पृथिवी पर टिका रहता है, वायु के समान उड नही जाता। वर्षा मे भी आकाश से इसी भारी गुण के कारण पृथिवी पर गिरता है, इधर-उधर उड नही जाता। हल्का होता तो भाप के समान वर्षा का जल भी ऊपर उड जाता। फिर तो वर्षा ही न हो पाती। गुरु गुण के कारण ही पृथिवी पर वर्षा होती है। वर्षा के भूमि पर आ गिरने मे भूमि का आकर्षण भी जल के भार के कारण निमित्त बनता है। वायु मे या अग्नि मे भार नही, इसलिये भूमि का आकर्षण इन्हे अपनी ओर नही खीचता। जल गुरु है इसीलिये नीचे की ओर बहता है। जल को ऊपर मजिलो मे जल के तल से ऊपर ले जाना हो तो वायु के दबाव का सहारा लेना पडता है, या जल की टकी को कही ऊपरी तल पर रखना पडता है। इसी आधार पर नगरो मे वाटर-वर्क्स बनते हैं। जल मे गुरुत्व है, इसीलिये उसके विकार ओले, बरफ आदि मे भार है।

५ प्रभा—कान्ति—चमक पैदा करना इसी का गुण-विशेष है। मनुष्य, पशु, पक्षी आदि जब स्नान करते हैं तब उनके शरीरो मे चमक आ जाती है। जब यह अधिक शीत के कारण से हिम, बरफ या ओले के रूप मे जम जाता है, तो इसमे विशेष चमक आ जाती है। यदि पर्वतो की जमी हुई हिम पर सूर्य की किरणें पड रही हो, तो बरफ की चमक के कारण उस पर दृष्टि नही टिकती, इस तीखी चमक से आँखें खराब हो जाया करती हैं। इसीलिये पर्वतारोही बरफ के चश्मे लगाया करते है। भूमि मे जितने भी पदार्थ चमकीले हैं, उनमे इस जल की चमक या प्रभा होती है। वृक्ष, वनस्पति, अन्न, ओषधि आदि वर्षा के कारण एकदम हरे-भरे हो जाते हैं और चमकने लगते हैं। हिमालय की बरफ से आच्छादित चोटियां इसी प्रभा रूप गुण से चमकती रहती हैं।

जल की प्रभा अग्नि की उग्र प्रभा से भिन्न प्रकार की है। जल की प्रभा हृदय और आंखो के लिये शान्ति प्रदान करती है। साय तथा प्रात स्थिर जल की प्रभा शान्त भाव से देखने योग्य होती है। चन्द्रमा की चाँदनी मे तो जल की प्रभा अत्यन्त प्यारी

मनोरम हो जाती है। प्रचण्ड आतप के योग से यही जल की सौम्य प्रभा असह्य प्रचण्ड हो जाती है। हिम का रूप धारण करने पर इसकी प्रभा और ही विशेष रूप धारण कर लेती है। हिमाच्छन्न हिमालय-शृंग सूर्य और चन्द्रमा के प्रकाश मे स्वर्णिम प्रतीत होते है, इसी कारण पुराणो मे सोने के बने सुमेरु पर्वत की कल्पना की जा सकी। सुमेरु पर्वत मुखवे और गोमुख से देखा जा सकता है। यह सदा ही हिम से आच्छादित रहता है। जिस समय सुमेरु की वरफ पर सूर्य की तिरछी किरणे पडती है, उस समय सूर्य की अरुण लाल-लाल किरणो से यह चमकने लगता है और सोने का पर्वत जैसा लगता है। सूर्य की किरणो मे ऐसा तिरछापन प्रात ७-८ बजे और साय ४ बजे के लगभग होता है उस समय जी चाहता है देखे ही जाये। यह भी ससार मे एक अलौकिक ही दृश्य है। सुमेरु के स्वर्णिम दिखने का यह अभिप्राय कभी नही कि सुमेरु बिलकुल स्वर्ण से बना है वरफ पर प्रात-साय सूर्य की लाल-लाल तिरछी किरणे पडने से वरफ मे सोने के समान आभा या चमक प्रतीत होने लगती है।

पानी मे एक वार गिर कर वाहर निकलने पर सब ही वस्तुओ मे प्रभा के कारण रूप मे निखार आ जाया करता है। सब्जी और फल वेचने वाले इसका विशेष उपयोग करते है।

६ शुकलता—जल का स्वाभाविक गुण शुक्ल ही है। जल मे शुकलता है इसी लिये मैले कपडे के मैल को निकाल कर उन्हे भी शुकल बना देता है। ओले, हिम, बरफ आदि मे यह शुकलता स्पष्ट भासती है। यदि जल का रग नीला होता जैसा कि नदी तालाब, या समुद्रो मे भासता है, तो कपडे धोने के बाद उनमे नील देने की आवश्यकता न पडती, वह स्वय ही पानी के डालने से नीले हो जाते। जल का यह नीला रग आकाश के प्रतिविम्व से प्रतीत होता है। आसमान पर भी भूमि के हरे, वृक्ष, वनस्पति, घास आदि का अक्स पडता है। या अनन्त आकाश मे सूर्य, चन्द्रमा आदि नक्षत्रो का जहाँ प्रकाश नही पहुच पाता उस अन्धकार वाले पोल की यह कालिमा जलकण, मेघ मण्डलो या अन्य प्रतिविम्बो के योग से नीली सी भासती है। जल का रग तो वस्तुत श्वेत ही है। देखिये। जब वर्षाकाल मे जल मोटा हो जाता है, अर्थात् उसमे रेत, मिट्टी, कूडा मिल जाता है, तो उसकी स्वच्छता नष्ट सी हो जाती है, मैली हो जाती है, मैले मे प्रतिविम्ब नही पड सकता। उस मैले जल मे भी आकाश का प्रतिविम्व नही पड़ पाता, इसलिये उस समय वह मटियाला सफेद साफ-साफ प्रतीत होता है।

जल श्वेत होने के कारण सब मलो को धो डालता है। अन्य पार्थिव रगो में मिल जाने पर उसी रग का बन जाता है, और अन्य वस्त्र आदि के रगने मे भी समर्थ हो जाता है। मैला जल या रग वाला जल अन्य पर रग चढाने के काम नही आता जब सूर्य की सफेद किरणे विशेष कोण बना कर जल पर पडती है, तो सूर्य-प्रकाश का सफेद रग जल की सफेदी मे विलीन हो जाता है और सात रग बिखर कर अपनी निराली आभा दिखाने लगते है, जैसे इन्द्रधनुष और फव्वारे के जल आदि मे होता है।

जल सफेद है इसीलिये शरीर आदि के मल को धो डालने मे समर्थ होता है। जल की शुकलता के कारण ही समुद्र के तल मे मोती, मूँगा, प्रवाल आदि की खोज आसानी से हो जाती है। समुद्र के तल मे भी जा-जाकर देखा जा सकता है। जल की शुकलता

कारण ही वर्षा आदि मे देखने का व्यवहार बन्द नही होता। इस स्वेनिमा के कारण ही आज के वैज्ञानिक लोग समुद्र के तल मे, और हजारो फीट ऊँची बरफ की तहो के नीचे हजारो मील लम्बी यात्रा करने मे सफल हो रहे है और सृष्टि के आरम्भ मे लेकर आज तक अज्ञात बरफ के नीचे बहने वाले उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवो के तलो का विषद वर्णन सामने ला रहे हैं। इस प्रकार जल की शुक्लता एक वरदान सिद्ध हो रही है।

७ शीतता—जल का गुण शीतता है। जल से पूर्व निर्मित अग्नि, वायु, आकाश किसी मे भी शीतता नही है। यह तो सर्वत्र व्यापक भगवान् के सन्निधान की महिमा है कि जल मे सब मूल प्रकृतियो मे भिन्न शीतता गुण आ गया। जल की शीतता जीवन तत्त्व की रक्षिका है, पोषिका है। यदि जल मे शीतता न आती तो अग्नि की गरमी सब पदार्थों को भस्मसात् कर देती। वायु भी जल के अभाव मे अग्नि का सहायक होता है और अग्निसखा अपने इस नाम को चरितार्थ कर सब को सुखाने मे अग्नि का सहायक बनता है। जल की शीतता बरफ मे पहुँच कर पूर्ण रूपेण विकसित हो गयी है। शीत मे जीवन के कण नष्ट नही होते है। शीतल जल शरीर मे पहुँचते ही जीवन सचार सा कर देता है। इसीलिये जल का एक पर्याय जीवन भी है। कितना ही शीत प्रदेश हो, वहाँ भी शरीर जीवन के लिये जल की माँग करता है। ठण्डक मे फल देर तक ठहरता है। ठण्डक मे दही भी कई-कई दिन तक बिगडता नही है। इसीलिये फलो और मक्खन एव औषधि आदि को सुरक्षित रखने के लिये ठण्डे रेफ्रीजरेटर मे रखा जाता है। उत्तरी ध्रुव आदि मे हिम मे दबे मुरदा शरीर हजारो वर्ष तक बिगडते नही है। अब तो ५०० वर्ष तक बरफ से दबे पडे रहे गोह आदि के शरीर को पुन जीवित करने का भी परीक्षण रूस आदि मे हो चुका है। दक्षिणी ध्रुव पर किसी अमरीकी पर्वतारोही दल के वर्षो पूर्व के बरफ मे पडे रह गये खाद्य पदार्थ उसी रूप मे सुरक्षित मिल चुके हैं। जल की शीतता शरीर के अनेक रोगो के निराकरण करने के प्रयोग मे लाई जा रही है। जल की शीतता ही मानव-देहो एव वनस्पतियो आदि मे दाह का अवरोध कर जीवन का सचार करती है।

प्राणायाम के अभ्यास से बढी ऊष्मा और योगाभ्यास से जाग्रत् कुण्डलिनी की गरमी भी शीत प्रधान प्रदेश मे सयम मे रहती है, इसीलिये योगी लोग शीत प्रधान हिमालय के एकान्त प्रदेश गगोत्तरी आदि की शरण लेते हैं। बडे-बडे महान् योगी इसी-लिये हिमालय या तिब्बत मे मिलते हैं। योरप आदि देशो मे बहुत से शीत प्रदेश है, पर योरप मे अध्यात्म ज्ञान की प्रवृत्ति ही नही, तो योगी वहा मे मिलें। योगाभ्यास के लिये शीत प्रदेश अत्यन्त हितकर है।

८. सम्मेलन—पृथिवी महाभूत का सघान करने वाला और बडे-बडे लोक-लोकान्तरो को स्थूल महान् आकार देने वाला जल महाभूत का यह 'सम्मेलन' गुण ही है। इसके बिना पृथिवी का सघात ही नही हो सकता था और न ही यह इस आकार मे आ सकती थी। बिना जल के यह रेत के आकार मे परमाणु रूप ही रहती, चूर्ण रूप कण कण ही रहती। जल का सन्धान गुण ही भूमि मे से वनस्पति आदि के तत्त्वो का सन्धान करता है, तभी तो वर्षाकाल मे और वैसे भी जल सेचन करने मे

भूमि हरी-भरी हो जाती है, और उपजाऊ धर्म को अपनाये रखती है। जहाँ वृष्टि नही होती या बहुत कम होती है वहाँ जल के अभाव मे वनस्पति नही होती, वह प्रदेश रेगिस्तान या मरुभूमि ही बना रहता है। इसीलिये पुराकाल मे भी और आजकल भी बडे-बड़े महासर या डेम बना-बना कर रेगिस्तानो को हरा-भरा बनाया जा रहा है। एक वर्ष भी यदि पृथिवी को जल का सन्धान गुण न मिले तो अकाल पड जाता है, हाहाकार मच जाता है। परिमित जल ही सन्धान का हेतु होता है, मात्रा से अधिक जल आटे को नष्ट कर देता है, रोटी बनने लायक ही नही छोडता। इसी प्रकार महाप्रलय और खण्डप्रलय के अवसर पर अतिवृष्टि ससार के विनाश का हेतु बनती है।

जल के सम्मेलन या सन्धान गुण के कारण ही वृक्ष, वनस्पति आदि जुडे रहते है। हरी लकडी के फाडने मे सूखी लकडी की अपेक्षा बहुत कठिनाई पडती है। हरी लकडी मे जल अपेक्षाकृत अधिक है, अत सन्धान भी उसके अनुपातानुसार अधिक है। जल की मात्रा अधिक हो जाये तो वह लकडी को गलाने का निमित्त भी बन सकती है। सोना, चादी, लोहा, ताम्बा आदि धातुओ मे विद्यमान जल का ही सन्धान गुण उनके परमाणुओ को गठित किये हुए है, जो पार्थिव ऊष्मा या पाक से अधिक दृढ हो गया है। जल का यह सन्धान गुण ही सब आकार-प्रकार की सृष्टि का मूल है।

महाभूत पृथिवी को जीवित सी रखने वाला, जान सी डाल देने वाला यह जल का सन्धान गुण ही है। जहाँ भी भूमि को खोदकर देखो वहाँ ही जल निकल आता है। यह सब भूमि और भूमि के कार्यो मे सन्धान बनाये रखने के लिये है। भूमि के गर्भ मे भी जगह जगह जल के दरिया बह रहे है जैसे कि ऊपर चल रहे है। यह सब सर्वत्र सन्धान को पहुँचाने के लिये है।

भूमि से निकलने वाले जितने भी द्रव पदार्थ है, या पिघलने वाले पदार्थ हैं, वे जल के ही एक प्रकार के परिणाम हैं। उनमे गौण रूप से पृथिवी का अश भी मिला रहता है। इनका सशोधन करके तेल, पैट्रोल आदि को प्राप्त करते है और यह सब द्रव नाना प्रकार के सन्धान के काम मे आते है। कोई रगो का सधान करता है, कोई पेन्टों का, कोई सरेश का। तारकोल के रूप मे आकर सड़को पर पहुँचकर पत्थर की रोडी का सन्धान यही गुण करता है।

इक सन्धान के परिणामस्वरूप हमारी भूमि पर बडे-बडे महान् समुद्र है, और हिम से आच्छादित पर्वत हैं। ये सब इसी सन्धान से बन पाये है। इसी प्रकार दूसरे लोको के नदी, नाले, पर्वत, वनस्पति आदि इसी सन्धान का परिणाम है। यह सन्धान क्रम महाप्रलय पर्यन्त बराबर चलता रहेगा।

महाभूत पृथिवी को जीवित सा रखने वाला, उसमें जान सी डाल देने वाला यह जल भत ही है। इसके सम्मेलन गुण से पृथिवी मे जीवन सा पैदा हुआ है। इसलिये कोई-कोई आचार्य हमारी भूमि और अन्य भूमियो मे अन्य जीवो के शरीरो के समान इनमे अभिमानी जीव मानते है। इस भूमि-अभिमानी जीवात्मा के शरीर पर यह प्राणियो की सृष्टि बसी हुई है। परन्तु यह मान्यता भूमि को जीवित सा देखकर बन गयी प्रतीत होती है। यह सिद्धान्त युक्ति युक्त भी नही है और प्रमाणो से भी सिद्ध नही होता है।

जब प्राणी के शरीर के साथ जल का मेल होता है, इसे पीते हैं, तो यह शरीर मे जीवन सा भर देता है। इसके पिये बिना कोई प्राणी जीवित नही रह सकता है। यह सब प्राणियो के जीवन का आधार है, जीवन प्रदान करना इसके सम्मेलन या मिलन का महान् गुण है।

जल जड या चेतन जिससे भी मिलता है, उसी का बडा उपकार करता है। सृष्टि के रचना काल मे पृथिवी से प्रथम उत्पन्न होने से जल पार्थिव परमाणुओ, द्वयणुको, और त्रसरेणुओ के साथ मिलकर सघात करता है। अब भी सब लोक, और उनके पर्वत आदि सब इस के सन्धान गुण के आश्रय मे खडे हैं, इसी जल ने इनका मेल किया हुआ है। सब प्रकार के आकार प्रकार की भावी और वर्तमान सृष्टि का यही मूल है।

६ पवित्रता—जल सब शरीरो को स्नान से शुद्ध करता है। वृक्ष, वनस्पति, अन्न, औषधि, लता, गुल्म, शाक आदि को वर्षा के द्वारा धोकर शुद्ध करता है। माली और कुंजडे भी फल, पौदो, सबजियो को जल से धो-धो कर साफ करते हैं। अनेक प्रकार की दुर्गन्धो को, मल-मूत्र को, गन्दी नालियो को इसी द्वारा शुद्ध किया जाता है। भूमि भी इसी के प्रक्षालन से शुद्ध होती है। देश-देशान्तरो मे सब प्रकार के मलो को नदी आदि मे बहाकर समुद्र आदि मे फेंक देता है। अनेक प्रकार के मैल व अशुद्धिया को दूर कर उन्हे पवित्र बनाता है। घरो, वस्त्रो, पात्रो आदि को जल ही पवित्र करता है। वस्ती, गजकरणी, नेति, धौति आदि क्रियाओ से शरीर की नस-नाडियो की शुद्धि करता है।

जल की पवित्रता अग्नि की पवित्रता से विलक्षण है। अग्नि केवल मिट्टी, धातु आदि को पवित्र करती है, पर साथ मे कुछ डाल देती है, कुछ निकाल देती है। मिट्टी की कचाई को अग्नि निकाल देती है। रग भी पलट देती है। पकने पर मिट्टी का रग लाल से काला हो जाता है। पूर्वापेक्षा दृढ या कठोर हो जाता है। धातुए अग्नि मे साफ हो जाती हैं। मिलावट दूर हो जाती है। जल मे धोने से न कुछ निकलता है न डलता है। वह ऊपर के तल पर धूल आदि जमी होती है उसे धो डालता है। शीशे, चादी सोने आदि के बरतन यदि जूठे हो तो धोने मात्र मे साफ हो जाते हैं। इन धातुओ मे छिद्र कम होते हैं मिट्टी आदि ऊपर ही लगी होती हैं, धोने मे घुल जाती है। मिट्टी के जूठे बरतन धोने से साफ नही होते, एक बार ही प्रयोग मे लेकर फेंक दिये जाते हैं। पीतल, ताबे, कासी आदि के बरतन सफाई के लिए मिट्टी के साथ पानी की भी अपेक्षा रखते हैं। इस प्रकार जल से पवित्रता की भिन्न भिन्न देश-काल के अनुसार मर्यादायें हैं।

वर्षा काल का यही जल स्थान स्थान के मलो को बहा कर ले जाता है। शरीर मे उत्पन्न हुए दोषो को रक्त मे मिला यह जल नस-नाडियो मे बहाता हुआ शुद्ध करने के लिये फेफडो मे ले जाता है। वहां से वे दोष श्वास के साथ बाहर निकल जाते हैं, जिन दोषो का निवारण श्वास से नही होता उनको पुन यह शरीरस्थ जल मूत्र एव पसीने के रूप मे बाहर ले जाता है और जीव के आवास इस घर को पवित्र रखता है। हस्पतालो मे डाक्टरी औजारो को अग्नि के साथ मिलकर यही शुद्ध करता है। रोगियो के

जखमो, फोडे आदि की चीड-फाड से निकली गन्दगी को जल ही साफ करता है। गन्दे हाथों को पानी मे धो लेने पर यही जल खाने के काम मे लाने के योग्य बनाता है। मल, मूत्र, तैल आदि पेय पदार्थों से उत्पन्न अपवित्रता को जल ही दूर करता है। सब दोषो को लेकर भूमि मे छिप जाता है और फिर पवित्र होकर वापी कूप आदिक के रूप मे प्रगट होता है। या आकाश मे उड कर पवित्र हो पुन वर्षा के पवित्र विशुद्ध जल के रूप मे अवतीर्ण होता है और इन्जेक्शन की शीशियो मे भरा जा कर रोगियो को प्राण रक्षा के लिये पुन. शरीर मे पहुँच जाता है। जल स्वय पवित्र है, अन्यो को भी पवित्र रखता है। सब ही देशो मे किसी न किसी नदी का जल अत्यन्त पवित्र माना जाता है। भारत मे गगा, अरब मे आबे जमजम, इग्लैण्ड मे फादर थेम्स, मिस्र मे नील, रूस मे वाल्गा, आदि नदियाँ अत्यन्त पवित्र मानी जाती हैं।

१०. रक्षा—सब प्राणियो की प्यास बुझाकर जीवन की रक्षा करता है। इसीलिए सस्कृत मे जीवन का निमित्त होने से 'जीवन' शब्द का अर्थ जल हो गया है। यही पृथिवी महाभूत जल के द्वारा ही सघात को प्राप्त होता है। इसकी रक्षा भी इसके के द्वारा होती है। जल के योग से ही भूमि प्राणियो के भोग का हेतु बनी है। यह जल-महाभूत पृथिवी के सहयोग से भी अनेक प्रकार से विभिन्न रूपो मे जीवो की रक्षा करता है। भूमि पर, कूओ, तालावो, नदियो और समुद्रो के रूपो मे प्राणिमात्र की रक्षा का साधन बना है। आकाश से वर्षा के रूप मे आ इन सब का उज्जीवक बनता है, खेतो, बाग-बगीचो, वनो को हरा-भरा कर मानव एव अन्य प्राणधारियो के प्राणधारण का निमित्त बनता है। शरीरो मे रस, रुधिर, वीर्य और रज के नाना रूपो मे यह जल प्राणि की रक्षा एव वश चलाने का निमित्त बनता है। सूर्य की रश्मियो द्वारा वायु के सहारे आकृष्ट हो वाष्प से बादल बन कर बरसता है, उससे ससार की रक्षा होती है। यह कृत्रिम उपायो से, नकली उपायो से असम्भव है। नदियो और समुद्रो मे किश्ती और जहाजो के चलाने का हेतु जल ही है। एक देश से दूसरे देश मे वस्तुएँ पहुँचती है, व्यापार होता है, अभाव का नाश होता है। कितना महान् उपकार है जल का प्राणिमात्र के लिये। भयकर गर्मी को वर्षा द्वारा शान्त करके महान् रक्षा करता है। पृथिवी मे प्रवेश करके सोतो और कूओ के रूप मे प्रकट हो बाहर निकल कर प्राणियो की रक्षा करता है। भूमि पर बर्फ के रूप मे जमकर शनैः-शनैः गल कर नदी नालो के रूप मे वह कर सब ही देश-विदेश वासियो की रक्षा करता है। घने वनो मे जहाँ से लकडी काट कर ढोने का मार्ग नही है वहाँ नदी का यही जल बढिया-बढिया कटे-कटाये भारी-भारी शहतीर, लक्कड, सलीपर, बल्लिया आदि अनायास ही धरातल पर पहुँचा देता है। बड़े बडे शहरो मे नलो के द्वारा घर-घर पहुँच कर हर प्रकार से आराम देता है।

बडे-बडे नालो और सीवरो मे वह कर असंख्य टन मल-मूत्र को बहा कर ले जाता है। उस गन्द को रोगो और कीटाणुओ के फैलाने से रोकने के लिये फिल्टरों मे ले जाकर खाद्य मे परिणत करता है। बडे-बडे स्टीमर, पोत और एजिन इसी जल से चलते हैं। और मानव की शान्ति और युद्ध मे सब ही अवसरो पर रक्षा करता है। बडे-बड़े बायलरो मे रह कर कपडे, गन्ने और लोहे के मिल जल ही चलाता है। बडे-बडे प्राकृतिक और जल-प्रपातो से गिर-गिर कर यही जल बिजली उत्पन्न कर हजारो मीलो मे घर-घर

को बिजली की रोशनी से प्रकाशित करता है। नाना प्रकार के कल-कारखानों को चलाता और देश को मालामाल बना रक्षा करता है। बड़े-बड़े विशाल बान्धों में एकत्र हो नहरों द्वारा दूर-दूर पहुँच ऊपर से ऊसर भूमि को भी उपजाऊ बनाता है। समुद्र के तल मोती, मूंगा, प्रवाल, शंख जैसी महार्घ औषधियों और रत्नों को अपने गर्भ में निर्माण कर यहीं तो अर्पित करता है। हजारों मन के भारी-भारी नक्र, ह्वेल, शार्क आदि को आवास प्रदान कर डाक्टरों के लिये तैल चर्बी आदि बहुमूल्य वस्तुएँ प्रदान करता है जिनसे अनेक घातक रोगों का उन्मूलन हो प्राणों की रक्षा होती है। जल चिकित्सा से भी जल सहस्रों रोगों का नाश कर रक्षा करता है। निस्सन्देह यह मानव का रक्षक और जीवन है।

गुणों के परिणाम में प्रभु का साक्षात्—

इन उपरोक्त गुणों को जल महाभूत मे दर्शाने का हेतु यह है कि योगी को यह अनुभव हो जाये कि ये गुण एक के पश्चात् एक के क्रम मे परिणाम भाव को प्राप्त हो रहे हैं या हुए हैं या आगामी काल में होंगे। यह उस महान् चेतन-शक्ति के सहयोग से ही हो रहा है। वह सर्वत्र व्याप्त होकर परिणामों का हेतु बनी हुई है। जैसे मानव शरीर में जीव की चेतना शक्ति का अनुभव होता है उसी प्रकार इस जल महाभूत के अन्दर और बाहर इस ब्रह्म की चेतन-शक्ति मे हुई क्रियाओं का अनुभव होना चाहिये। भूमि और जल महाभूत साकार भाव को प्राप्त होकर ईश्वर के कर्ता-पन के द्योतक बने हुए हैं। इनमें आरोप हुआ ही वह भगवान् उपासना का विषय बना हुआ है। मनुष्य जैसे पाषाण की मूर्ति को और गंगा-रूप में जल की मूर्ति को भक्ति, उपासना द्वारा भगवान् का इनमें आरोप कर के अपने कल्याण का हेतु मानता है, इसी प्रकार पाषाण के कारण भूमि मे, और गंगा जी के कारण जल महा-भूत मे भगवान् का आरोप करके कर्म, ज्ञान और उपासना का विषय बनावें। तब ही भगवान् की महानता, और व्यापकता का यथार्थ विशेष ज्ञान अनुभव और हो सकता है। यह विज्ञान और उपासना क्रम भगवान् के बहुत समीप ले जाता है और परम वैराग्य द्वारा अपवर्ग (मुक्ति) का हेतु बनता है।

भगवान् की सीमा को मन्दिर में, मूर्तियों मे, गोमुख से लेकर गंगा सागर तक की गंगा जी मे, मस्जिद और गिरजाओं में, गुरुद्वारों और उपासनालयों में ही समाप्त नहीं कर देनी चाहिये। ये सब भक्ति प्रार्थना के जितने भी प्रतीक लिखे हैं, ये सब तो मनुष्यों के निर्माण किये हुए हैं। इनसे आगे बढ़िये, ऊपर उठिये, उस सर्वान्त-र्यामी, सर्वव्यापक, कर्ता-धर्ता श्री भगवान् के निर्माण किये हुए जो समष्टि माहाभूतों-जल और पृथिवी के मण्डल है, इनको ही अपने कर्म, ज्ञान, और उपासना का विषय बनावें, तब ही भगवान् की महानता और अनन्तता का पता चलेगा। भगवान् के विज्ञान की बुद्धि बनेगी। भगवान् के अत्यन्त समीपवर्ती हो जाओगे। कार्य से कारण का ज्ञान होगा। स्थूल से सूक्ष्म की ओर गति होगी। भगवान् सूक्ष्म से भी सूक्ष्म अत्यन्त सूक्ष्म हैं और महान् से भी महान् अत्यन्त महान् हैं। मानव को अध्यात्म-विज्ञान का भी विकास करना चाहिये। केवल कूपमण्डूक बन कर भगवान् के विज्ञान को सीमित नहीं बनाना चाहिये, क्योंकि अणु से लेकर महान् तक आप ने

विज्ञान प्राप्त करना है। अत. एव इन समष्टि पदार्थों को अपने कर्म, ज्ञान, और उपासना का विषय बनाना चाहिये, तब ही आपको उस भगवान् का सर्वत्र प्रत्यक्ष रूप से अनुभव होगा। यथा च—

"स योऽपो ब्रह्म त्युपास्त आप्नोति सर्वान् कामां—
स्तृप्तिमान् भवति यावदपा गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवेत"

छान्दोग्योपनिषद् अ० ७। ख० ६। म० २।

जो योगी जल के साथ-साथ ब्रह्म को समझ लेता है, अर्थात् जल के गुणो और परिणामो मे निमित्त रूप से सर्वत्र विद्यमान् ब्रह्म की उपासना करता है, उसकी सब कामनाये सिद्ध होती है, और सर्व प्रकार से उस की तृप्ति होती है। वह ब्रह्मज्ञान को प्राप्त होता है।

समष्टि जल-महाभूत मण्डल
द्वितीय स्वरूप मे ब्रह्म-विज्ञान
(जल का द्वितीय रूप)

२ जल के स्वरूप मे—

जल भूत की यह दूसरी अवस्था या रूप है। जल के स्थूल रूप प्रकरण मे जिन दस धर्मो का उल्लेख किया गया है यह धर्म सब के सब सदा जल मे वर्त्तमान रहते है, जल से ये कभी अलग नही होते। जल के यह स्व-स्व सामान्य धर्म हैं। जहाँ जल होगा वहाँ ये धर्म भी होगे। जल मे भी रहेगे और जल के परिणामो मे भी रहेगे। जल का प्रथम धर्म सूक्ष्मता है। वह जल मे भी है, और जल के परिणामो मे भी है। जल सूक्ष्मता के कारण पृथिवी मे प्रवेश कर पहाडो मे झरनो के रूप मे प्रकट हुआ, सोते के रूप मे कूएँ मे प्रगट हुआ इसी प्रकार नदी, नाले, झील, तालावो मे प्रगट हुआ। जल के परिणाम रस रक्त आदि भी सूक्ष्मता के कारण वृक्षों, वनस्पतियो, और नस-नाडियो मेप्रवेश कर गये। उनके परिणाम लकडी के फर्नीचर, सूखे फल, शाक, सब्जी, मेवो मे भी जल सूक्ष्मता के कारण प्रवेश कर गया। रस आदि से बने इन्जेक्शनो आदि मे भी वह धर्म सूक्ष्मता का बना रहा। रोगी के शरीर मे लगते ही प्रवेश कर जाते है। उनके प्रवेश मे कोई रुकावट नही होती। इस प्रकार यह सूक्ष्म धर्म स्व-स्व सामान्य है। जल के अपने रूप मे भी है, और जल के अपने विकारो मे भी है। पृथिवी मे सूक्ष्म धर्म नही, वह किसी मे भी नही घुस सकती इसलिये सूक्ष्मता पृथिवी से विशेष हुई। अग्नि और वायु की सूक्ष्मता दूसरे प्रकार की है। अग्नि प्रवेश करती है, अपने रूप को छिपा कर, जल प्रवेश करता है, अवकाश बना कर इसलिये जल मे इनके प्रवेश से विशेषता है।

यह दसो धर्म जल मे स्वरूप सम्बन्ध से रहते है। वे कभी जल की स्वरूप अवस्था से अलग नही होते। इन धर्मो का जल धर्मी के साथ अभेद है। धर्मो से अलग जल कोई पदार्थ नही है। धर्मो का ही नाम जल है, जल का ही नाम सूक्ष्मता आदि धर्म है, क्योकि जल भूत के साथ इनका सम्बन्ध सदा बना ही रहता है। जब अलग-अलग सत्ता उपलब्ध नही होती तो दो कहना बनता नही। इसलिये धर्म धर्मी एक ही हैं। इसी को स्वरूप सम्बन्ध कहते है। सूक्ष्मता आदि जल का स्वरूप है। या कहिये सूक्ष्मता आदि जल रूप है।

जैसे सूक्ष्मता आदि धर्म अपने धर्मी जल भूत से अलग नही होते, इसी प्रकार ब्रह्म भी जल से कभी अलग नही होता है। जल धर्मी अपने धर्म मे सदा अनुस्यूत रहता है। इसी प्रकार जल मे भी ब्रह्म अनुस्यूत रहता है, क्योकि ब्रह्म सर्वव्यापक है।

धर्मी जल का किस प्रकार क्रमपूर्वक अपने धर्मो म परिणाम होता रहता है, और परिणाम होते हुए भी वह पृथक् नही होता है। इस परिणाम क्रम को योगी को अपनी ध्यान की दिव्य-दृष्टि से देखना चाहिये, यहाँ अत्यन्त सूक्ष्म बुद्धि की आवश्यकता है। जब धर्मो के परिणाम के अन्त तक बुद्धि पहुँचेगी, तब ही ब्रह्म की चेतन सत्ता का भी वहाँ अनुभव होगा जोकि निमित्तकारण से वहाँ परिणाम का हेतु बनी है। जैसे स्वर्ण से बने आभूषण मे स्वर्ण अलग नही होता है, केवल उसकी पहली अवस्था का ही एक अवस्था से दूसरी अवस्था मे परिवर्तन हुआ है। इसी प्रकार जल-रूप-धर्मी का स्नेह, सूक्ष्म, मृदु, शीत आदि धर्मो मे परिणाम हुआ है। कोई स्वरूप से विनाश नही हुआ है। वह अपने स्वरूप मे पूर्ववत् ही वर्तमान है। जल धर्मी का अपने स्नेह मृदु आदि धर्मो मे अभेद है। यही इसकी स्वरूप अवस्था है।

इस धर्म धर्मी के अभेद रूप परिणामो मे ब्रह्म के विज्ञान को भी प्राप्त करना चाहिये इस धर्म धर्मी से ससार के सब भोग भोगकर परम वैराग्य प्राप्त करके अपवर्ग (मोक्ष) प्राप्त करना चाहिये तब ही तो पदार्थ भोग और अपवर्ग का हेतु साबित होगा। इस मानव जीवन की सफलता भी तब ही हो सकती है।

समष्टि जल महाभूत मण्डल
तृतीय सूक्ष्म रूप मे ब्रह्म विज्ञान
(जल का तृतीय रूप)·

३ जल के सूक्ष्म रूप मे—

जल महाभूत का जिस अवस्था से परिणाम हुआ है, जल की उस पहली अवस्था को जल का सूक्ष्म रूप कहेगे। जल महाभूत के निमाण काल मे जल के परमाणु जल या जल की तन्मात्रा ही केवल महाभूत का उपादान कारण नही होती है किन्तु अग्नि, वायु, आकाश के परमाणु भी सहकारी कारण होते हैं। सामान्यत चारो कारण रूप तन्मात्रायें अपने कार्य विशेष जल महाभूत मे अनुस्यूत होती हैं। इस कार्य कारण का अयुतसिद्ध समुदाय ही महाभूत जल द्रव्य होता है। यही जल की सूक्ष्म अवस्था, या सूक्ष्म रूप कहलाता है। इस तन्मात्रा और जल का जो कारण कार्यात्मक सम्बन्ध है यही सूक्ष्म रूप है।

इस अवसर मे जो विशेष क्रिया होकर एक विशेष परिणाम रस तन्मात्रा मे होता है वह अत्यन्त ही आश्चर्यजनक होता है। योगिन्! यहाँ ही आपको अपने सयम का विषय इस परिणाम प्रक्रिया को बनाना है। यहाँ योगी को ध्यान से और दिव्य दृष्टि मे देखने योग्य यही विशेष बात होती है। आप साक्षात् करेगे कि रस-तन्मात्रा मे कैसे-कैसे परिणाम होते गये और अन्त म वह कैसे जल महाभूत मे बदल गयी। ब्रह्म की चेतन-शक्ति किस प्रकार सजातीय धर्मो और विजातीय धर्म का नियोजन कर एक आयुत सिद्ध द्रव्य जल का निर्माण कर रही है। किस प्रकार सूक्ष्म तन्मात्रायें सघात को प्राप्त

होकर स्थूलाकार जल के रूप मे परिणत हो रही है। इस काल मे ब्राह्मी चेतन सत्ता सघात करने वाली प्रकिा यानी योजिका होती है, क्योकि जड पदार्थ एक अन्न मे गति को रखते हुए भी विना चेतन सत्ता के सर्वांश मे नियन्त्रित गतिशील नही हो सकता।

भगवान् के सन्निधान की माया देखिये रस तन्मात्रा का सयोग अत्र तक बन चुके अग्नि, वायु आकाश महाभूतो के साथ हो जाता है। सर्वप्रथम यह सयोग परिमित मात्रा मे यथानुपात अग्नि आदि महाभूतो के साथ हुआ। इसमे निमित्त कारण भगवान् का सन्निधान ही होता है। उसकी विलक्षणता का अनुभव कीजिये।

रस तन्मात्रा जब अकेले रूप मे थी तो केवल दिव्य रसना का ही विषय थी। अग्नि तत्त्व से मेल हुआ तो इसमे रूप भी आ गया। जल आँख से दिखाई देने लगा। जल म प्रभा आयी तो पारदर्शी हो गया। इतना स्वच्छ निर्मल, पारदर्शी कि काश्मीर के वेरीनाग कुण्ड मे राई का दाना पडे तो भूमितल मे जाते हुए साफ साफ दिखाई दे जिसकी गहराई ५० फुट से अधिक है।

वायु तत्त्व के सयोग से स्पर्श भी जल मे होने लगा। वायु का स्पर्श न ठण्डा था न गरम। वायु से विलक्षण जल मे शीतलता आ गयी और हिम के रूप म आकर तो अत्यन्त शीतल। कही-कही तो अग्नि तत्त्व इतना दवा कि जल की हिम रूप में शीतता शून्य बिन्दु से नीचे उतर गयी। अग्नि के योग से रस तन्मात्रा केवल चमक वाली, प्रभा वाली, शुक्ल और पवित्र बनी थी। वायु के योग से सूक्ष्मता धारण कर तृप्तिकारिका जीवन-सन्चारिणी बनी।

आकाश के साथ सयोग हुआ तो सूक्ष्मता और सन्धान के साथ कल निनाद भी जल म आया और उग्र होने पर वही समुद्र म भयावह रुद्र रूप बन गया।

सक्षेप से इस प्रकार भी कह सकते हैं—सामान्य विशेष के भेद से अनुगत समुदाय अयुत सिद्ध द्रव्य ही जल का सूक्ष्म रूप है। इस अवस्था म सूक्ष्म रस तन्मात्रा का जल महाभूत के रूप में परिणाम हुआ है और वह तन्मात्रा धम, लक्षण अवस्था रूप म परिणत होकर स्थूल रूप को प्राप्त हो गयी है।

इस सूक्ष्म अवस्था मे ब्रह्म की चेतन सत्ता से जो जो क्रिया जिस जिस क्रम से जिस जिस रूप मे होती है यही समाधि की सयम-स्थिति द्वारा जाना जाता है। इस चेतन ब्रह्म के कारण होने वाली रस तन्मात्रा की क्रिया या गति का अनुभव करना चाहिये।

धर्म धर्मी का यहाँ अभेद है। इस अभेद मैं ही ब्रह्म की अनुभूति करनी होती है। कारण कार्य एव उनके परिणामकाल मे अनुस्यूत ब्रह्म का प्रत्यक्ष करना है।

वास्तव मे ब्रह्म विज्ञान तो इसी प्रकार की सूक्ष्म अवस्थाओ या परिणामो म होता है जो एक एक कण को नियोजन करने से क्रिया कराना है। इससे सिद्ध हो रहा है कि कोई भी पदार्थ उससे खाली नही है। प्रत्येक कण मे वह रमा हुआ है।

(शका) आप बार बार प्रत्येक पदार्थ मे उस ब्रह्म का क्या पिष्ट-पेषण कर रहे है?

(समाधान) यह बोध कराने के लिये कि ब्रह्म निमित्त कारण है। विना अभ्यास के पुन पुन प्रत्यक्ष किये विना ब्रह्म की सत्ता का, ब्रह्म के निमित्त कारण

होने का विश्वास हृदयगम नही होता। ब्रह्म विषय पर व्याख्यान देना और लिखना बहुत सरल है पर 'त्वमेव प्रत्यक्ष ब्रह्मासि'—तू ही प्रत्यक्ष ब्रह्म है—इस शुद्ध विज्ञान के साथ प्रत्यक्ष करने वाले विरले ही हैं। प्रत्येक पदार्थ मे, प्रत्येक परिणाम में उसकी चेतना निमित्तता का ज्ञान हो जाये, और सयम द्वारा प्रत्येक परिणाम मे उस ब्रह्म के साक्षात्कार का अभ्यास इतना बढ जाये कि वह स्वभाव सा हो जाय, उसके प्रति विश्वास अटूट हो जाये, इसलिये पुन -पुन नही, अपितु वास्तव मे प्रत्येक दशा मे उसकी सत्ता हृदयगम हो जाये इस लिये सब परिणामो का उल्लेख किया जा रहा है।

भौतिक सृष्ट की उत्पत्ति

प्रथम क्रम—जब आकाशीय परमाणु वायु के परमाणुओं से मिलते है, तब गतिरूप धर्म पैदा होता है। वह गति तिरछी होनी है। जब ये दोनों प्रकार के परमाणु अग्नि के परमाणु के साथ मिलते हैं तब उर्ध्वगमन रूप धर्म आ जाता है। और जब ये तीनो आकाश मण्डल में जल के परमाणु के साथ मिलते हैं तब इनमे कुछ गुरुत्व (भारीपना) धर्म पैदा हो जाता है। ये पार्थिव परमाणुओं की ओर आते हैं। पृथिवी के परमाणु इन सब को लेकर नीचे आते हैं, बैठ से जाते है क्योंकि चारो मिल कर गुरुत्व भार वाले हो जाते हैं। इस प्रकार ये सघात को प्राप्त होकर प्रत्येक भूत का निर्माण करते हैं।

इनके परस्पर मिलने से आकाशमण्डल में महान् क्षोभ उत्पन्न होता है। ऐसा लगता है, जैसे महान् आन्धी सी आ गयी हो। फिर त्रासरेणु और पचरेणुओं के रूप मे एक-दूसरे के साथ मिलकर गैसो का रूप धारण करते हैं, इसमे वायु और अग्नि ही प्रधान होते हैं। उस गैस का ब्रह्माण्ड में चक्र सा चलता रहता है। बहुत लम्बे काल तक यह चक्र घूमता रहता है।

तब यह व्यष्टि-भाव को प्राप्त होने लगता है। उस मे परिणाम भाव आने पर कुछ स्थूलाकार बडे-बडे गोले से बनने लगते हैं। यह गैसें अनेक प्रकार की बन कर कुछ द्रवी-भाव को प्राप्त होने लगती हैं। पुन इन गैस के महान् गोलो मे एक विशेष परिणाम होने लगता है। तब उबलते-उबलते कुछ ठोस से होने लगते हैं। आकाश-मण्डल मे क्षुभित हुए से उस पाकजन्य धर्म से कुछ गाढे होने लगते हैं। पुन महा प्रचण्ड वायु के वेग से लावा या कीचड के से रूप मे विलक्षण प्रकार से पलटने लगते हैं।

उस ब्राह्मी चेतन सत्ता का दमन-चक्र बराबर चल रहा होता है। भ्रम गति करते हुए ये गोले पाकज धर्म से कुछ कुछ ठोस होने लगते हैं। लम्बे समय के पीछे अत्यन्त देदीप्यमान ये गोले बाहर से कुछ ठण्डे पडने लगते हैं। इसी दमन चक्र के अवसर पर महान् गोले परस्पर टकरा जाते हैं और अपने से छोटे गोलो को उत्पन्न कर देते है। जो उसी गोले के साथ उसका अग होने से उसके आकर्षण से उसकी ही परिधि मे घूमने लगते हैं। इस प्रकार ये बडे-बडे गोले आकाश-मण्डल मे लोक का रूप धारण कर लेते हैं। जो गोले या लोक ठण्डे होते चले जाते हैं वे प्राणियों के वास-योग्य हो जाते हैं। इन लोको मे जैवी सृष्टि होने लगती है।

द्वितीय-क्रम—आकाश तन्मात्रा मे केवल आकाश की उत्पत्ति होती है। आरम्भ मे अगले चारो भूतो को अवकाश प्रदान करने वाला ही पदार्थ उत्पन्न होता है। उसका

और कोई कार्य नही होता। यह एक ही जाति के ऐसे परमाणु सघात को प्राप्त होते है जो किसी अन्य पदार्थ के तो आरम्भक नही होते, उनमे केवल अवकाश प्रदान करने की ही योग्यता होती है। इस समय इनमे विजातीय परमाणुओ का योग नही होता। अत. यह एक ऐसी अवस्था वाला विश्व-व्यापी सा पदार्थ उत्पन्न होता है जो अपने से स्थूलो को धारण करने की योग्यता रखता है। इस अपने-अन्दर धारण करने की योग्यता से ही यह आगे उत्पन्न होने वाले पदार्थो का सदा सर्वत्र सहकारी कारण रहेगा। इसके सात्विक, राजस, तामस भेद भी अन्य पदार्थो के भेद से हो जायेगे।

आकाश के पश्चात् वायु तन्मात्रा से वायु-भूत की उत्पत्ति होती है। इस तन्मात्रा का स्वाभाविक धर्म गति होता है। अत यह परिणाम-भाव को प्राप्त हुए अपने गतिक्रिया रूप धर्म के साथ ही वायुभूत के रूप मे परिणत होकर क्रियाशील हो जाती है। आकाश इसमे सहकारी होता है। आकाश सब जगह होता है, अत यह वायु-तन्मात्रा के सघात से उत्पन्न हुआ महान् वायु सारे ब्रह्माण्ड को ही कम्पायमान कर देता है। इस शून्य आकाश मे इसका महा-विनाश-समर्थ दमन-चक्र अत्यन्त प्रचण्ड वेग से दीर्घ काल तक चलता रहता है।

इसके पश्चात् अग्नि तन्मात्रा के परमाणु सघात को प्राप्त होकर वायु महा-भूत के साथ मिल कर एक महान् विनाश-सामर्थ्यवान् गैस के रूप मे ब्रह्माण्ड मे चक्र के आकार मे चलने लगते हैं। अग्नि और वायु के धर्म प्रकाश, तेज, दाह, स्पर्श आदि से युक्त होकर विनाश-समर्थ चक्र ब्रह्माण्ड मे चलने लगता है और अनेक वर्षो तक चलता रहता है।

इसके पश्चात् इसके साथ जल तन्मात्रा का मिलन होता है। यद्यपि वायु और अग्नि दोनो महाभूत इसके महान् शत्रु है। अग्नि जल को दग्ध कर देता है और वायु जल को सुखा देता है। परन्तु यह जल तन्मात्रा महान् राशि के रूप मे इनके साथ मिलती है अत उन दोनो के विरोधी धर्मो को दबा देती है। तेज के साथ मिलकर उसे कुछ शीतल सा कर देती है। आजकल भी तो प्रचण्ड अग्नि को तीव्र जल की धार शान्त कर देती है। इसी प्रकार उस गैस को भी कुछ ठण्डा सा कर देती है। तत्पश्चात् उसमे जल के भी गुण आ जाते हैं। इस अवस्था मे यह गैस चारो भूतो का मिश्रण (मिक्स्चर) सा हो जाता है। यह मिश्रण बहुत पतला होता है।

इस के अनन्तर पृथिवी तन्मात्रा परिणाम भाव को प्राप्त होते हुए इस पतले मिश्रण के साथ मिल जाती है। तब यह मिश्रण गाढा हो जाता है, और इस मे पृथिवी का धर्म भी उत्पन्न होने लगता है। अनेक वर्षो तक यह मिश्रण ब्रह्माण्ड मे गति करता रहता है। सारा ब्रह्माण्ड इस मिश्रण से भरपूर सा हो जाता है। इस ब्रह्माण्ड के गैस मिश्रण की कुछ कुछ तुलना आप उस गैस के साथ कर सकते हैं जो भूमि के गर्भ से आज-कल निकाली जा सकती है। होती वह इससे भी विलक्षण प्रकार की है।

अभी ब्रह्माण्ड मे यह गैस-मिश्रण भूमि, जल आदि स्थूल भूतो का परिणाम को प्राप्त होता हुआ पूर्व रूप ही होता है। इसके पश्चात् यह गैस-मिश्रण जल, भूमि आदि स्थूल महाभूतो के रूप मे परिवर्त्तित होकर स्थिर होने लगता है और पृथिवी के रूपो मे ब्रह्माण्ड के लोक-लोकान्तर और जल के रूपो मे समुद्र आदि बन जाते हैं। यह

भूत भी सात्विक, राजस, तामस भेद से बनते हैं। इनका विशेष वर्णन हमारे ग्रन्थ 'आत्म विज्ञान' के मनोमय और विज्ञानमय कोशो मे पढें।

तन्मात्राओं की अनन्तता

पाठकवृन्द यह न समझे कि तन्मात्रायें सम्पूर्ण रूप से परिणाम भाव को प्राप्त होकर स्थूल भूतो के आकार मे आ जाती है। तन्मात्राये अनन्त है। सब का एकदम परिणाम नही होता है। तन्मात्राओ के बहुत थोडे अंश का परिणाम होता है, शेष अपने स्वरूप मे कारण रूप मे पडी रहती है। इन तन्मात्राओ के अपने-अपने स्तर से है, बहुत थोडी मात्रा मे उन स्तरो से आती है, और केवल वे ही स्थूल-भाव को प्राप्त होती हैं। यदि सब ही तन्मात्राये परिणाम भाव को प्राप्त होकर स्थूल आकार मे आ जायें तो स्वर्गीय आत्माओ का भोग किन से निर्वृत्त होगा ? और अन्य सूक्ष्म शरीरो का भोग किनसे निष्पन्न होगा ? अब भी अनन्त परमाणु या तन्मात्रायें आकाश मण्डल मे भरी पडी है। जो परिणाम भाव को प्राप्त होकर भूतो के साथ मिलती रहती है। साथ ही ऐसी भी हैं जो स्थूल-भूतो से परिणाम भाव को प्राप्त होकर तन्मात्राओं का रूप धारण करती रहती है। ससार मे जितने भी समष्टि-पदार्थ हैं वे कार्यात्मक तथा कारण आत्मक दोनो ही रूपो मे रहते हैं। कारण और कार्य रूपो मे सदा परिणाम होता रहता है। विश्व के पदार्थ तो महान् और अनन्त है। मानव के विज्ञान की दृष्टि तो इतनी ही है जैसे सूर्य के सामने जुगनु। इस ब्रह्माण्ड का विज्ञान प्राप्त करने लगते है तो वार-पार नही मिलता है। ब्रह्म या ईश्वर को देखते-देखते कोई सीमा या अन्त ही नही मिलता है।

भूतकाल मे जितने भी विज्ञानवादी हुए हैं, सब ही इस ब्रह्माण्ड और ईश्वर के विषय मे थोडा-थोडा ही समझ पाये हैं, देख पाये है और जान पाये है। जैसे महान् समुद्र मे से केवल एक बून्द! दोनो के विज्ञान का कोई अन्त या पारावार नही मिलता। यह छोटा-सा अणु जीवात्मा, उस अनन्त विश्व या ब्रह्म का क्या अन्त पायेगा। अतः बुद्धिमानो को स्थाली पुलाक न्याय से अनुसन्धान करना चाहिए। जैसे कोई पाचक बडे बर्तन मे पकते हुए चावलो मे से ऊपर के दो-चार दाने चावलो के उठाकर देखता है, उन से ही सम्पूर्ण भरे हुए बर्तन के चावलो के पकने या न पकने का अनुमान कर लेता है और उनसे ही समझ लेता है कि इनकी तरह शेष भी पक गये है, इसी दृष्टान्त और लोक व्यवहार के अनुसार योगी, ज्ञानी, या भक्त को भी इस ब्रह्माण्ड और विश्व के विषय मे भी ज्ञान प्राप्त करना चाहिये।

- तदनन्तर अनादिकाल से जो इसके साथ रागयुक्त भोगात्मक सम्बन्ध चित्त का चला आ रहा है उसके सस्कारो का असम्प्रज्ञात समाधि द्वारा निरोध करना चाहिए। दीर्घकाल के अभ्यास और परम वैराग्य से सस्कार अपनी प्रकृति मे लौट जायेंगे, क्योंकि सर्वथा अभाव और विनाश तो किसी भी वस्तु या पदार्थ का होता नही है। आरब्धोन्मुख क्रियमाण सस्कार उत्पन्न नही होगे परम वैराग्य के कारण से, अतः आत्मा की मोक्ष मे स्थिति हो जायगी। यही वास्तव मे इस मानव जीवन का चरम लक्ष्य या उद्देश्य है।

समष्टि जल महाभूत मन्डल
चतुर्थ अन्वय रूप मे ब्रह्म-ज्ञान
(जल का चतुर्थ रूप)

४ जल के अन्वय रूप में—

जल महाभूत का मूल प्रकृति के साथ परम्परागत सम्बन्ध पृथिवी का अन्वय रूप है। अन्वय कहते है कुल को या सगति बैठाने को। जल की कुल-परम्परा जल का अन्वय है। या जल की अपनी कारण-परम्परा जल का अन्वय है।

प्रकृति के अन्वय रूप मे विस्तार से लिखा गया है कि ज्ञान और क्रिया प्रकृति के गुण है, स्थिति इसका अपना स्वरूप है। चेतन ब्रह्म के सम्बन्ध से ज्ञान और क्रिया प्रकृति मे आये है अत गुण है। यह अपने स्वरूप और गुणों के सहित अपने सब कार्यों मे अनुपतित होती है। इसीलिए प्रकृति परिणामिनी है और कार्य स्वभाव वाली है। अपने सब कार्यों मे इसका अनुपतन होता है। इसी हेतु से परम्परागत कार्यरूप जल मे भी इसका अपने सर्वगुणों को साथ मे लेकर अनुपतन हुआ है। अत मूल प्रकृति ही अवान्तर परिणामो को अभिव्यक्त करती हुई जल महाभूत के रूप मे परिणत हुई है। यह मूल प्रकृति का अनुपतन ही जल का अन्वय रूप है। प्रकृति की सत्ता से ही उसके कार्यो की सत्ता है। यही कार्यों मे प्रकृति कारण का अन्वय है। जो गुण कारण मे होते है वही कार्य मे आते है, जैसे स्वर्ण के गुण उसके कार्य आभूषणो मे आते है।

जल महाभूत रस तन्मात्रा का परिणाम है, और रस तन्मात्रा भी गन्ध तन्मात्रा के समान समष्टितम अहकार का परिणाम है। समष्टि-तम अहकार समष्टि महत्तम. से परिणाम मे आया है। समष्टि महत्तम मूल प्रकृति से अभिव्यक्त हुआ है। मूल प्रकृति भी दोनो चेतनो के समान अजा है। सत् नित्य है। निमित्त कारण रूप ब्रह्म के सान्निध्य से इस प्रकृति मे क्रिया होकर कारण में जो अनुपतन होता हुआ आ रहा है इसका ही ज्ञान प्राप्त करना है। यही इन मे ब्रह्म दर्शन का मार्ग है।

जल मे प्रकृति के गुण सत्त्व और रज बढ गये है। तम. दब गया है। इसलिए यह किसी वस्तु को छिपाता नही और सदा चलता ही रहता है। पृथिवी मे भी प्रवेश कर जाता है। सूक्ष्म होकर आकाश मे भी उड जाता है। सूक्ष्मातिसूक्ष्म नस-नाडियो मे प्रवेश कर जाता है।

इस अनुपतन और उसके निमित्त कारण ब्रह्म का भी विज्ञान अभ्यास मे साथ-साथ करना चाहिये। जिससे ब्रह्म की सर्वव्यापकता और अनन्तता अनायास ही बुद्धि का विषय बनने के योग्य बनती जायें। इस जल महाभूत की कारणता जो परमपरा से मूल प्रकृति मे पहुँची है और मूल प्रकृति जो परिणाम भाव को प्राप्त होते हुए जल महाभूत मे आई है इन लोम-अनुलोम की अवस्थाओ मे ब्रह्म का साक्षात्कार सम्प्रज्ञात समाधि द्वारा करना है।

समष्टि जल महाभूत मण्डल
पञ्चम अर्थवत्ता रूप में ब्रह्म-दर्शन
(जल का पञ्चम रूप)

५ जल के अर्थवत्ता रूप में—

इस जल महाभूत ने समष्टि पृथिवी का सघात कर महान् उपकार किया है, यह इसकी सर्व प्रथम अर्थवत्ता है। इसके सयोग से यह हमारी भूमि और अन्न लोक-लोका

न्तर प्राणियों के आवास, भोग और अपवर्ग का हेतु बने है। यह इसकी बड़ी अर्थवत्ता सार्थकता अथच सर्वकार्य-सिद्धि है। सर्व प्राणी इसको पान कर जीवन धारण करते हैं। इसके बिना तो सबका प्राणान्त ही हो जाये। यह जल अपने गुणों के कारण जड़ और चेतन सब का उपकारी और लाभकारी सिद्ध हो रहा है। मेघ, नदी, समुद्र, कूप, तडाग, स्रोतों के रूप से सब ही जड, चेतन का तर्पण करता है। जन-जन का ओस, धुन्ध, कोहरा, वर्षा आदि के रूप से महान् उपकारक और कल्याणकारी है। रोगी, शोकी, पापात्मा, पुण्यात्मा, महात्मा, दुर्जन सबको समान भाव से, बिना किसी भेदभाव के सदा तृप्त करता रहता है।

समुद्रों मे मेघों को उत्पन्न करके और वर्षा के रूप से बरसा कर देश-देशान्तरों की विस्तृत भूमियो को हरा-भरा कर प्राणियों का महान् रक्षक बनता है। नमक जिस का प्रत्येक वस्तु मे प्रयोग होता है, जिसके बिना रसोई रसोई नही रहती वह इसके रूप समुद्र से उपलब्ध होता है। इसी नमक पर सत्याग्रह के हेतु महात्मा गाधी की ऐतिहासिक डण्डी यात्रा हुई थी जिसमे भारत की स्वतन्त्रता की सफल लडाई का सूत्रपात हुआ। इन्ही समुद्रो पर बडे-बडे जहाजों और किश्तियो के द्वारा बड़ा भारी व्यापार करने मे मानव समाज अहर्निश लगा है जिसमे विकसित और अविकसित सभी देशो को महान् लाभ होता है और मानव का पालन-पोषण होता है। यह जल नदी-नालो के रूप मे बहकर देश-देशान्तरों के अनेक कार्य सिद्ध करता है। कही सवारियाँ ढोता है, कही सामान, कही बास-बल्लियाँ, कही सलीपर, कही कड़ियाँ तो कही बडे-बडे तने। कही खेतों और बागो को सीचता है, कही पनचक्कियाँ चलाता है, कही कारखाने। कही बिजली पैदा करता है, तो कही मल को बहा कर दूर ले जाता है।

तम: प्रधान होकर भूमियों मे वास करता है तो वहाँ भी अनेक प्रकार के कार्य करता है। पृथिवी के गर्भ मे अनेक पदार्थो का निर्माण करता है। वसुन्धराओं की गति तक मे सहायक होता है।

सत्व रूप से प्राणियो के शरीरो की रचना मे सहायक होता है। प्रकृति की रचना मे प्राणी श्रेष्ठ है, और प्राणियो में सर्वश्रेष्ठ मनुष्य है। उनके शरीरो मे सात्विक-वृत्ति को बढाता है अथवा सात्विक रूप से शरीरों की रचना मे प्रयुक्त हुआ है।

रजःरूप से अन्तरिक्ष मे यह निवास कर लोको और उनमे निवास करने वाले जीवो के अनेक कार्य सिद्ध करता है। अनेक उनके उपकार करता है।

प्यास लगने पर जल प्राप्त न हो तो मनुष्य कुछ दिनों मे ही प्राण त्याग देता है। अतः प्राणो की रक्षा करने वाला है। जीवन प्रदान करता है।

आर्य (हिन्दू) लोग गगा और समुद्र के ... मे इसके दर्शन, मज्जन, पान, उपस्पर्शन और मार्जन से सद्गति मानते हैं, इसलिये इसकी पूजा उपासना करते हैं। पार्सी लोग समुद्र की उपासना करते हैं। हिन्दू भी सागर मे स्नान का बडा महत्त्व मानते हैं। मिस्र के मुसलमान नील नदी को बडा भारी महत्त्व देते हैं, उसके लिये बलि चढाते हैं। इसी प्रकार अन्य देशों के लोग भी अपने दरियाओ और समुद्रो को बडा महत्त्व देते हैं, उनकी उपासना भी करते है।

ईश्वर का मन्दिर—ये सब जल के महाभूत के कार्यरूपों की पूजा है, भक्ति है। यदि समष्टि जल महाभूत को अपनी पूजा और भक्ति का विषय बना कर इससे ब्रह्म

की चेतन सत्ता का अनुभव किया जाये तो यह जल महाभूत ब्रह्म-विज्ञान और मोक्ष का हेतु बन सकता है। संसार के सब मनुष्यों को चाहे वे किसी भी धर्म या सम्प्रदाय के मानने वाले हों, इस पृथिवी महाभूत और जल महाभूत को अपनी उपासना का विषय बनाना चाहिये। ईश्वर का इनमें आरोप करके, और ईश्वर की इनको ही साकार अवस्था या मूर्ति समझ कर इनका और ईश्वर का विज्ञान प्राप्त करना चाहिये। ये ही वास्तव में ईश्वर की उपासना के मन्दिर हैं। मस्जिद है और गिरजे हैं।

योऽप्सु तिष्ठन्नद्भयोऽन्तरो यमापोन विदु,
यस्याप शरीर योऽपोऽन्तरो यमयति,
एष त आत्मान्तर्याम्यमृत ॥

बृहदा० अ० ३। ब्रा० ७। म० ४।

भावार्थ—जो ईश्वर जल महाभूत में ठहरा हुआ है, जो अन्दर से जल का संचालन करता है, जिसको जल नहीं जानता। जल ही जिसका शरीर है। जो इसको अन्दर से चलाता है। वह नाश रहित, अमृतमय मोक्ष रूप है।

इन महाभूतों की उपासना में सब मतों के झगड़े और भेद भाव खतम हो सकते हैं। मन्दिर की छोटी सी मूर्ति की अपेक्षा समष्टि महाभूत जल और पृथिवी बहुत बड़ी विशाल मूर्तियाँ हैं। इन मूर्तियों के समान विश्व में और कोई मूर्ति भगवान् की नहीं हो सकती। इन्हीं के अन्दर उस भगवान् का मिलन या प्राप्ति हो सकती है। ईश्वर के मिलन का यह निर्विवाद उपासना और भक्ति का मार्ग है।

इति समष्टि जल महाभूत मण्डलम्।

इति प्रथमाध्याये तृतीय खण्ड।

इति द्वात्रिंशद् आवरणम्।

चतुर्थ खण्ड

२१वाँ आवरण

समष्टि अग्नि महाभूत मण्डल

पाँचों रूपों मे ब्रह्म-विज्ञान

योगिन् ! तृतीय खण्ड में वर्णित विधि के अनुसार आपने समष्टि महाभूत जल के पांच रूपों का समाधि द्वारा प्रत्यक्ष कर लिया है। जल की परिणाम को प्राप्त होती हुई प्रत्येक अवस्था मे ईश्वर के सामीप्य की निमित्तता का भी प्रत्यक्ष कर लिया है। अब आप जल मे और जल के प्रत्येक परिणाम में ब्रह्म को पाते हैं। पृथिवी की स्थूलता से निकल कर अब जल की सूक्ष्मता मे आप पहुँच गये हैं। जल से भी सूक्ष्म अग्नि है। अपनी सविकल्प समाधि को और अधिक सूक्ष्मता की ओर बढाइये। सूक्ष्मतर अग्नि के पाँचों रूपो मे समाधि लगाइये, और उनमे सूक्ष्मता से व्याप्त ब्रह्म-दर्शन का अभ्यास कीजिये। ध्यान के विषय की सूक्ष्मता के साथ अपनी व्यापक सी बनी चित्त-वृत्ति को संक्षिप्त कीजिये, सूक्ष्म कीजिये। अब आप सूक्ष्मातिसूक्ष्म ब्रह्म-दर्शन के मार्ग पर अग्रसर हो चले हैं। इस अग्नि की सीढ़ी पर चढ़ कर आप ब्रह्म-दर्शन के अधिक समीप पहुँच रहे हैं।

ब्रह्म-जिज्ञासो ! अब आपने संयम का विषय अग्नि महाभूत को बनाना है। इसको आप सर्वत्र पायेंगे। जल की अपेक्षा यह अधिक निकट है। दिन-रात सोते-जागते यह आपके साथ है। इसके भी जल के समान पाँच रूपो का आपने साक्षात्कार करना है, १. स्थूल रूप, २. स्वरूप, ३. सूक्ष्म रूप, ४. अन्वय, ५. अर्थवत्त्व। इन पाँचो अवस्थाओ का आप द्वितीय खण्ड मे भली प्रकार साक्षात् कर चुके हैं। जल में इनका अभ्यास किया है, अब समाधि में अग्नि महाभूत का विश्लेषण कीजिये। उसकी सूक्ष्म अवस्थाओं में क्रमश: प्रवेश कीजिये और साथ ही उनमे निमित्त कारण रूप से निहित भगवान् का भी प्रत्यक्ष कीजिये।

समष्टि अग्नि महाभूत मण्डल

प्रथम रूप में ब्रह्म-विज्ञान

(अग्नि का प्रथम रूप)

१. अग्नि के स्थूलरूप में—

सृष्टि रचना मे जल महाभूत से पहले होने वाला अग्नि महाभूत तीसरे नम्बर की परिणाम अवस्था है। अग्नि महाभूत से पूर्व वायु और आकाश महाभूत का परिणाम हो चुका है। ये दोनों स्पर्श तन्मात्रा और शब्द तन्मात्रा से परिणत हुए हैं। अब रूप तन्मात्रा का सूक्ष्म रूप ही अग्नि महाभूत के रूप मे बदलने चला है।

आरम्भ में आप अग्नि के व्यवहार मे आने वाले रूप पर सयम कीजिये। अग्नि की अपेक्षा जल महाभूत का रूप स्थूल था। जल को आप पात्र मे उठा सकते थे, हाथ में

ले जा सकते थे। अग्नि तो ऐसा नही है। यह अदृश्य रहता है। प्रयत्न करो तो किसी के सहारे प्रकट हो जाता है। अग्नि के आश्रय को आप उठा सकते हैं, चाहे वह लकडी ही हो या अगारा, या बिजली का तार आदि, या गरम जल। पृथिवी और जल के सहारे ही यह अभिव्यक्त होता है। पृथिवी बिना ही आधार के स्वय उठा ली जाती थी। जल भी आधार और बिना आधार के उठा लिया जाता है। उन दोनो की प्रतीति प्रत्यक्ष है। अग्नि को आग्नेय-पदार्थो या ईन्धन से प्रकट करना पडता है। प्रकट हो जाये तो ईन्धन आदि डालते रहना पडता है, जिससे अग्नि बनी रहे। अग्नि बुझी हो, प्रसुप्त हो तो कितना ही ईन्धन पर ईन्धन डालो, टाल के टाल चुन दो, अग्नि व्यक्त नही होगा। ऐसे सूक्ष्म अग्नि के गुणो का आपने अग्नि के स्थूल रूप मे प्रत्यक्ष करना है।

१ लघु—पृथिवी और जल-भूत की अपेक्षा यह अत्यन्त लघु है, हलका है, अपितु भारहीन ही है। सोने या लोहे का जो तोल ठण्डा होने पर होता है, वही गरम होने पर होता है। गर्मी का-अग्नि का कोई तोल नही बढता। गरम करने पर लोहे आदि पदार्थो मे कितनी ही अग्नि प्रवेश कर जाये, वह अगारे के समान लाल हो जाये, या पिघल भी जाये तो भी उसका तोल नही बढेगा। पानी दूध आदि का भी गरम होने पर तोल नही बढता है। गरमी से फैल अवश्य जाते है। फैला हुआ पदार्थ किसी पात्र मे उसके माप के अनुसार आयेगा, वह तोल मे ठण्डे की अपेक्षा कम हो यह और बात है। अग्नि न तोल बढाता है, न घटाता है। फैले हुए पदार्थो का नाप बढ जाता है। अग्नि पदार्थो को फैलाता अवश्य है पर तोल नही बढाता क्योकि स्वय भारहीन है।

अग्नि इतना सूक्ष्म अथवा लघु है कि पृथिवी और जल मे प्रवेश कर जाता है। सदा उनमे बसा रहता है। पर प्रकट रूप से दृष्टिगोचर नही होता है। वायु भी गरम प्रतीत होता है, पर वायु मे अग्नि प्रवेश नही करता। वायु अग्नि से सूक्ष्म है, इसलिये वह अग्नि के कणो को इधर-उधर ले जा सकता है। कणो को ले जाता हुआ वायु ही गरम प्रतीत होता है और जल के कणो को ले जाता हुआ शीतल प्रतीत होता है।

अग्नि लघु होने से अत्यन्त गतिशील है। पतले से तार द्वारा क्षणो मे कहाँ से कहाँ पहुच जाता है। सूर्य की किरणें तो एक सैकण्ड मे एक लाख ४६ हजार मील की यात्रा कर भूमण्डल पर पहुच जाती है। अग्नि के ही रूप विद्युत् और प्रकाश की गति अत्यन्त तीव्र है। यह सब अग्नि के लघु होने के ही प्रमाण है।

२ ऊर्ध्व गमन—अग्नि मे गति है पर स्वभावत यह ऊपर को ही गति करता है, प्रभु की समीपता के कारण ही यह नियन्त्रण होता है। यदि आकर्षण करने वाला या साथ-साथ लेकर चलने वाला कोई पदार्थ नही है तो अग्नि ऊपर को ही गति करता है। भवभूति ने भी 'ऊर्ध्वगमन हविर्भुज'—अग्नि का गमन ऊपर की ओर होता है कह कर इस दार्शनिक तथ्य को व्यक्त किया है। पृथिवीगत लोहे, आदि के आकर्षण से मेघस्थ विद्युत् कभी-कभी धरती मे प्रवेश कर जाती है। तार के सहारे ऊपर जाने वाली विद्युत् ऊपर, नीचे, दाये, बायें सब ओर ले जाई जा सकती है। जहा कोई बन्धन नही है वहाँ होली या धोर की अग्नि ऊपर को ही जाती है। दूध या जल आदि किसी तरल पदार्थ के नीचे अग्नि जलाई जाये तो उसमे से भी अग्नि ऊपर को ही जाती है। उस पदार्थ को

ऊपर उठा कर फेंकती है । यही तो उबलने का स्वरूप है । दूध आदि मे जब ऊपर मलाई आ जाती है, अर्थात् बाहर की शीतल वायु से ऊपर की दूध की तह ठण्डी होकर दूध की मलाई के रूप में चद्दर सी जम जाती है, और अग्नि ऊपर निकलने नही पाती है, तो दूध मे उफान आ जाता है । जब मलाई फट कर अग्नि ऊपर निकल जाती है तो उफान ठण्डी हवा पाकर या ठण्डा पानी पाकर शान्त हो जाता है ।

जब ज्वर चढता है, शरीर की अग्नि बढ जाती है । गरमी पाकर थरमामीटर का पारा भी चढ जाता है । ऊपर की ओर अग्नि के कारण ही गति करता है । अग्नि मे तपाया जल भी भाप बन कर अग्नि के कारण ऊपर को उठता है । अग्नि की ऊर्ध्व गति ही नियन्त्रित की हुई रेल, मोटर, जहाज आदि के अञ्जन को आगे दौडाती है । अग्नि की ऊर्ध्व गति ही विमान, राकेट आदि को ऊपर ले जाती है । अग्नि की ऊर्ध्व गति के भरोमे ही मानव चाँद मे जाकर बसने की कल्पना कर रहा है । कोई इस ऊर्ध्व गमन के कारण ही वृहस्पति के समाचार ला रहा है, अग्नि के ऊर्ध्व गमन के कारण ही टलस्टार भूमि के समाचार आकाशमण्डल मे खेंच लेता है, और गति को नियन्त्रित कर पृथिवी पर जहाँ भी चाहो भेज देता है । बे तार की तार भी विद्युत अग्नि द्वारा ऊपर ही ऊपर गमन करती है।

साधारण अवस्था मे भी अग्नि को जलाओ तो ऊर्ध्व गमन करती है । ऊपर को उठती है । बिजली तो जब उठती है बहुत ऊँचे तक जाती है । ऊपर चलती जाती है, और अपने स्वरूप को दिखाती जाती है । ऊँचे उठकर आकाश मे फैलती है और फिर वही विलीन हो जाती है । ऊँचे गमन करना तामस अग्नि का स्वाभाविक कर्म या धर्म है । दूसरे पदार्थों को ऊपर उठाती है । फेंकती है, ऊपर लेकर चलती है ।

३ भास्वर अग्नि भास्वर है । अग्नि मे ऐसी भास्वरता है कि जिससे जहाँ अग्नि स्वय चमकीला है, सम्पर्क होने पर दूसरो को भी चमका देता है । लोहा काला है, पर विधि विधानपूर्वक अग्नि के भास्वर रूप को धारण कर चमक उठता है, स्टील बन जाता है और अग्नि मे पडा हुआ लोहा तो अग्नि सा भासता है । ईंधन के आकार का हो तो पहिचानना ही कठिन हो जाये । अग्नि का गोला यह सूर्य कितना भास्वर है कि उसके प्रकाश से प्रकाशित हो यह धरातल अपना सर्वस्व दिखा रहा है । यह भास्वान् इस भास्वरता के कारण ही चन्द्र आदि ग्रहो को प्रकाश युक्त कर उनसे जगती पर प्रकाश फैला रहा है । सूर्य की भास्वरता ही अन्धकार का नाश करती है और प्राणीमात्र को आँखो से देखने मे समर्थ बनाती है। नेत्रो मे भी तो यह अग्नि का अनुद्भूत भास्वर प्रकाश ही है जो देखने की शक्ति मे परिवर्तित हुआ है। यह सत्त्वप्रधान प्रकाश है । सिंह, बिल्ली, चीता आदि की आँखें तो प्रत्यक्ष रूप मे ही भास्वर होती हैं । रात को अन्धेरे मे बिजली के टार्च के समान चमकती है ।

सोना, चान्दी, युरेनियम आदि मे यही अग्नि की भास्वरता उपलब्ध होती है । इस चमक के कारण ही मध्यकालीन दार्शनिक सोने को तैजस मान बैठे पर वास्तव म तेज प्रधान पार्थिव परिणाम ही तो है। पार्थिव गन्ध तो लोहा, ताम्बा, पीतल आदि किसी मे भी उग्र रूप मे प्रतीत नही होती । हैं तो सभी पार्थिव । तेज के परिमाण भेद से यह धातुओ का विपरिणाम है । अग्नि मे पिघल जाना भी इनके तैजस होने मे हेतु नही हो

सकता, क्योकि चूने का पत्थर आदि भी अग्नि मे पिघल जाते हैं। अत हमारे विचार में यह धातुएँ पार्थिव ही है, पृथिवी मे ही इनकी खाने हैं, यदि यह धातुएँ आग्नेय या तैजस होती तो जहाँ-जहाँ ज्वालामुखी होते वही यह उपलब्ध होती।

अग्नि की यह भास्वरता सत्त्व गुण प्रधान है। सत्त्वगुण का ही परिणाम है। इसलिये यह भास्वरता मनुष्य मे हर्ष उत्पन्न करती है। इसी कारण इस भास्वरता से सत्त्व गुण का विकास होता है। इसे देख कर आबालवृद्ध प्रसन्नता और आह्लाद का अनुभव करते है। दीवाली, स्वतन्त्रता दिवस, एव वर-यात्रा आदि मे इसीलिये आग्नेय-प्रदर्शन किया जाता है। इस आतशबाजी से हर्षोत्सव और उल्लास बढ जाता है। सब ही अग्नि के इस भास्वर गुण की उपासना करते है।

यह भास्वरता प्रकाशमयी है, अत सब प्राणियो की पथ-प्रदर्शिका भी है। नेत्रो मे यही भास्वरता अनुद्भूत रूप धारण कर लेती है। यही भास्वरता प्रकाश बन कर प्राणियो के अनेक उपकार करती है। यह भास्वरता दीपक के द्वारा मानव के पथ-प्रदर्शन का काम करती है। इसके अभाव मे तो ठोकरे ही ठोकरे है।

विद्युत के रूप मे भास्वर बन घर-घर को भास्वर बना रही है। समुद्र मे दीप स्तम्भो के रूप मे खडी जल पोतो को चट्टानो के साथ टकराने से बचाती है। विद्युन् का बना अमरीका का कृत्रिम चन्द्र कुछ भूभाग को प्रकाशित कर रहा है। पृथिवी और समुद्र के तल मे घोर अन्धेरे मे यही विद्युत् की भास्वरता खोज कराने मे समर्थ होती है।

४. पाचक—*अग्नि का अपना गुण तो रूप ही है, पर प्रभु की सर्वत्र उपस्थिति* से कारण अग्नि पाचक धर्म को भी व्यक्त करने लगती हैं। जहाँ भी अग्नि है, वहाँ पाक आरम्भ हो जाता है। सूर्य की अग्नि के कारण ही अपने-अपने समय-समय पर सब वनस्पति, औषधि, अन्न, फल, शाको मे पाक होने लगता है। सावनी और कातिकी की फसलें ठीक समय पर सूर्य की अग्नि से पक जाती हैं। गरमियो मे आम, खरबूजे आदि फल अपने समय पर पक जाते है। गेहूं, चना, जौ, ज्वार, बाजरा, मटर, चावल, मकई, उडद, मूंग, अरहर आदि सब ही अनाज समय पर पक जाते है।

सब प्राणियो के शरीरो मे यह अग्नि जठर मे ठहरती है, और जठराग्नि कहलाती हैं। इसी के कारण शरीर के सब व्यापार चलते है। यह सब के जीवनो का आधार है, शरीर की स्थिति का भी कारण है, इसके अभाव मे मरण होने लगता है। इसके विषम होने पर ज्वरादि अनेक रोग उत्पन्न होकर प्राणान्त हो जाता है, इसके सम रहने पर मानव दीर्घजीवी होता है और अरोग रहता है। शरीर मे दमक और चेहरे पर कान्ति रहती है।

सब प्राणियो के शरीर में यही आहार को पचाती है। चेतन सी बनी यह माता के उदर मे भोजन का पाक भिन्न रूप से और गर्भस्थ बालक का विपाक भिन्न रूप से करती रहती है। साथ ही साथ माता के गर्भ का भी पोषण करती है। इसी अग्नि के मन्द हो जाने पर शरीर मे अनेक रोग उत्पन्न होने लगते हैं। इसी पाचक गुण के सहारे यह अग्नि शरीरो मे पोषण और वृद्धि करती है। अन्न का रस बनाती है, रस से रुधिर, रुधिर से मांस, मांस से मज्जा, हड्डी, वीर्य, रज, ओज, तेज, बल आदि इसी पाक गुण के कारण बनते है।

यह अग्नि का पाक धर्म पृथिवी के गर्भ मे नाना प्रकार की धातुओ की रचना करता है। यही पाक तीव्रतम हो बरफ की तह के नीचे कोयले को हीरा बना देता है। तत्त्व की दृष्टि से हीरे और कोयले मे कोई भेद नही। पर चेतन सत्ता के सामीप्य से हीरा हीरा है, और कोयला कोयला। जो गुण और मूल्य का भेद कोयले और हीरे मे है, क्या वह कभी जनसाधारण को विश्वास करने देता है कि कोयले और हीरे के तत्त्व समान है, केवल अग्नि के सम्पर्क-काल का भेद है। यही अग्नि का पाक हीरा, पन्ना, लाल, पुखराज, नीलम आदि का निर्माण करता है। भूमि के गर्भ मे भी सोना, चान्दी आदि धातुएँ भी इसी पाक धर्म के कारण बनती है।

यही पाचन प्राणी मात्र का जीवन हेतु है। पाचन क्रिया के मन्द पडने पर मृत्यु निकट आने लगती है। मृत्यु काल के समीप आने पर रोगी की पाचन रूप अग्नि की शक्ति का पहले अभाव होने लगता है। हाथपैर ठण्डे होने लगते है। फिर साथ ही साथ उस स्थान पर प्राणो की गति मन्द होने लगती है। गरमी का अभाव होता जाता है और प्राण भी शरीर के उस भाग को छोडते जाते हैं।

इस प्रकार अग्नि की यह पाचक शक्ति व्यष्टि और समष्टि का आधार बनी हुई है।

५ पावक—अग्नि स्वभाव से पवित्र है। पवित्र करना, स्वच्छ करना, दुर्गन्ध को निकाल कर उडा देना, सुखा देना, इसके धर्म हैं। शीतकाल मे जल को गरम करती है, शरीर की स्वच्छता के लिये वस्त्र भी गरम जल से अधिक शुद्ध होते है। अग्नि से जमा मैल भी निकल जाता है। इसीलिये धोबी लोग भट्टी पर चढा कर कपडो को अत्यन्त सफेद कर देते है। शीत प्रधान देशो मे अग्नि के द्वारा तपा कर शरीरो को शुद्ध करते है। सूर्य का उदय होने पर सूर्य-स्नान करते हैं, सूर्य की धूप मे नगे होकर लेट जाते हैं, और धूप-स्नान से शरीर को शुद्ध करते हैं, पसीना निकाल कर स्वच्छ करते है, रोगो को बाहर निकालते है। जब मकान बहुत दिनो तक बन्द पडे रहते है तो उनकी शुद्धि भी उनके अन्दर अग्नि जला कर करते है। अछूत के रोगो मे भी घर की शुद्धि अग्नि से तपा कर की जाती है। भारतीय लोग अग्निहोत्र से घर की शुद्धि करते हैं। जड और चेतन दोनो की शुद्धि अग्नि से होती है।

अग्नि स्वभावत स्वत पवित्र है। यह अपने स्वरूप मे विशुद्ध रूप मे रहती है, किसी की इसमे मिलावट नही हो सकती। अन्य मिले हुओ को भी अलग-अलग कर शुद्ध कर देती है। जल मे यदि पार्थिव पदार्थ मिल जाये तो वह सडने लगता है, दुर्गन्ध देने लगता है। अग्नि उबाल कर उसे शुद्ध कर देती है। विजातीय पार्थिव अश नीचे बैठ जाता है। पानी के पडने से मिट्टी आदि पार्थिव पदार्थ भी सडने लगते हैं जैसा कि वर्षा काल मे देखने मे आता है। सूर्य की ताप-रूप अग्नि उसे स्वच्छ बना देती है। वर्षा मे जब कपडे सील जाते है और दुर्गन्ध भी देने लगते है, तो धूप मे फैलाने से जलीय अश सील भी निकल जाती है और दुर्गन्ध भी हट जाती है।

सोने मे खोट मिला हो तो अग्नि ही सोने को तपा कर उसे विशुद्ध बना देती है। जब शरीर मे किसी अग मे वायु एकत्र हो जाता है, और भयकर पीडा उत्पन्न हो जाती है, तो उसका शोधन भी अग्नि की सेक से ही होता है। हस्पतालो मे डाक्टरो के औजारो

और रोगियो के कपडो को यह अग्नि ही उबाल कर पवित्र करती है। बन्द मकानो या नये मकानो की शुद्धि भी अग्नि या अग्नि होत्र से होती है। युद्धभूमियो, हस्पताला और नगरो के दुर्गन्ध स भरे दुर्गन्ध और रोगो को फैलाने वाले शवो को जला कर यही भस्मसात् करती है, और इस प्रकार यह पावक अग्नि ससार को पवित्र भी करती है, और रक्षा भी करती है। नगरो के कूडे-कर्कट के और मैले-कुचैले के ढेरो को जला कर यही अग्नि पवित्र करती है। सूर्याभिमुख बैठ कर पञ्चाग्नि तप करने वाले तपस्वियो के जन्म-जन्मान्तरो के पाप-कल्मष को यही पावक अग्नि ध्वस्त करती है। उनकी आत्माओ को पवित्र बना देती है। परम पावन भगवान् के सर्वत्र अत्यन्त समीप होने के कारण ही अग्नि अपने इस धर्म का पालन करने मे समर्थ होती है। तदनन्तर छटा परिणाम धर्म उत्पन्न होता है।

६ **ओजस्वी**--अग्नि बडी बलशालिनी है। अग्नि के छोटे-छोटे कण जब प्रभु के ईक्षण से सघात को प्राप्त होते है तो अपूर्व बल को प्रकट करते है। भूमि मे यह बडे-बडे भूकम्प पैदा करती है। भूमि को तोड-फोड कर पर्वतो को भूमि के अन्दर घसा कर वहाँ समुद्र बना देता है। जहाँ समुद्र होते है, वहाँ पहाड बना देती है। अग्नि इतनी बल शालिनी है कि भूकम्पो द्वारा जल-स्रोतो को भूमि से बाहर निकाल देती है। विद्युत् रूप मे प्रकट होती है तो यन्त्रो मे सहस्रो घोडा का बल पैदा कर देती है। बमो, राकेटा, स्पूतनिको, हवाई जहाजो, मोटरो, समुद्री जहाजो, पनडुब्बियो आदि को यही अपने बल से गमन कराती है। धक्का देकर चलाती है। इसी की शक्ति और बल से सब गमन करते हैं। अपने द्वारा यह अग्नि जड-चेतन के अनेक कार्य सम्पादन करती है। विद्युत् के रूप मे इसका बल आकर्पण और प्रक्षेप्ण करता है। विद्युत् के रूप मे प्रकट होकर बडे-बडे पर्वतो को विदीर्ण कर देती है। बल के कारण इसकी गति मे बडा वेग है। बडी द्रुत-गति है। सूर्य मे इसी का तेज है, इसी का बल है। सूर्य की किरनें एक मिनट म एक लाख ४६ हजार मील का गमन करती हैं। इस तीव्र चाल से चलती हैं।

यह बडे बडे वनो को भस्मीभूत कर देती है। शरीर मे प्राण बल के पश्चात् इसी का बल है। शरीर मे यह तेज और ओज पैदा करती है। कुपित हो जाने पर शरीर मे चालीस (४०) प्रकार के रोग उत्पन्न कर देती है। समभाव मे रहती है तो आरोग्य रखती है। हर प्रकार से शरीर का पोषण करती है। शीत से रक्षा करती है। शरीर मे अग्नि का तेज ही तो बल है, उसी के कारण शरीर शीत को सहन करता है या शीत का मुकाबला करता है। भोजन और औषधियो को पकाने मे इसी का बल लगता है। विशाल भार वाली भूमि को सदा गमन कराना, चलायमान रखना इसीकी बलशीलता का काम है। करोडो टन जल का आकर्पण करना इसके असीम बल का द्योतक है। इसके ओज से ही जड-चेतन शक्ति पाते है। अग्नि महान् शक्ति का भण्डार है, जड चेतन सब ही इसके बल पर अनेक अद्भुत कार्य करते हैं। विद्युत् के धक्के को पर्वत भी सहन नही कर सकता। भूमि के गर्भ मे अग्नि की ओजस्विता से अनेक चमत्कारपूर्ण अद्भुत कार्य होते हैं। वही अग्नि की ओजस्विता भूमि की गति मे भी सहायक है। अग्नि की ओजस्विता अतुल बलशालिनी है। तदनन्तर दाहकता धर्म उत्पन्न होता है।

७ **दाहकता**—अग्नि मे दाहकता है, जो भूमि के गर्भ मे पापाण आदि को दग्ध कर के पत्थर के कोयले को बनाती है। वनस्पतियो को दग्ध कर लकडी का कोयला

बनाती है। यह दाहकता ही सोफट कोक, और हार्ड कोक, या स्टीम कोक को तैयार करती है। भूमि के अन्दर की गैसों को भी अग्नि दग्ध करता रहता है। भूगर्भस्थ तैल आदि को भी जलाती रहती है। भूमि के गर्भ मे पड़े जल को भी फूंक-फूंक कर नष्ट करती रहती है, इसी कारण भूमि मे सैकड़ों स्थानों से गर्म जल के सोते निकलते रहते हैं।

जितने भी सोने, चांदी, लोहा, ताम्बा, अभ्रक, राग, पारा, जस्त आदि धातुएँ हैं सब को फूंक कर बहुमूल्य अत्यन्त गुणकारी भस्में बना देती है जो भयंकर रोगों पर अचूक काम करती है। पाषाणों को भस्म कर सीमेन्ट चूने के रूप में पलट देती है, जिनका बड़े-बड़े विशाल भवनो एवं सड़क आदि के निर्माण में उपयोग होता है। वनों, मकानों, काष्ठ-मय वस्तुओं को तो देखते-देखते भस्म बना कर रख देती है। मृत या जीवित जो भी शरीर अग्नि में रखा जाये उसे भस्म बना देती है। दावानल के रूप मे जब भड़कती है तो जगलो, फसलों, अन्नों और वनैले जन्तुओं तक का दाह कर डालती है। पार्थिक और जलीय सब प्रकार के पदार्थों को दग्ध करने की शक्ति रखती है। कुपित हो जाये तो नगरो, ग्रामों, और बाजारों तक को भस्मसात् कर धराशायी कर देती है। कठोर से कठोर धातु को पिघला देती है। प्रलयकाल में सब को दग्ध कर अपने-अपने कारण मे विलीन कर देती है। दाहक गैसों के रूप में अग्नि की दाहकता और भी भयकर विनाश-कारिणी हो जाती है। अस्त्रों के रूप मे परिवर्तित अग्नि की दाहकता जड-चेतन सब को ही क्षण भर में भस्म करने में समर्थ होती है।

अग्नि की दाहकता जब छोटा रूप धारण करती है तो दीपक और लैम्पों के रूप में अन्धकार का दाह कर मनुष्यो के अनेक उपकार करती है।

अग्नि की यह दाहकता वरदान भी है और अभिशाप भी। भूतों की विषमता से या प्राणियो के व्यवहार से जो अपवित्रता उत्पन्न होती है उसे यह दाहकता ही समाप्त करती है। मलमूत्र आदि की समस्त गन्दगी को सूर्य का ताप या मानव निर्मित भट्टियों की अग्नि ही साफ करती है। यह दाहकता अनुपयोगी पदार्थों को उपयोगी बना देती है। इस दाहकता से ही मलमूत्र का सुन्दर खाद बनता है। रोगों के कीटाणु इसी दाहकता से नष्ट किये जाते है। यज्ञ याग आदि द्वारा इस दाहकता को उत्पन्न कर ऋषि लोग जहाँ इस लोक को रोगों के कीटाणुओं से रहित करते थे, वहाँ परलोक को भी मानव के हस्तगत कराते थे।

इस दाहकता के कारण ही समस्त धातुएँ पृथिवी के तल मे तरल पदार्थ के रूप में इधर से उधर बहती हैं। बाहर निकलने पर यह दाहकता उन्हें पृथक्-पृथक् करने का निमित्त बनती है। आग्नेय प्रलय में तो भूमण्डल के समस्त पदार्थों को यहाँ तक कि हिमाच्छन्न हिमालय की पर्वत-मालाओं को भी भस्मसात् कर देती है। अस्त्रों के रूप में यह प्रलयकारी संग्रामों का रूप धारण कर लेती है। सूर्य के ताप को यह दाहकता भूतल पर जहाँ-जहाँ अधिक होती है, वहाँ-वहाँ के मनुष्यों को काला कर देती है।

८. प्रध्वंस—उस सर्वत्र व्यापक ब्रह्म की चेतन सत्ता से ही रूप-गुण वाली अग्नि में प्रलयंकर प्रध्वंस भाव उत्पन्न हो जाता है। अग्नि ही अन्य महाभूत पृथिवी और जल के कार्यों का विनाश कर सकती है। आग्नेय प्रलय में अग्नि ही पृथिवी और जल

का विनाश करती है। महाप्रलय के समय पहिले छोटे-छोटे पदार्थों का नाश करती है। फिर लोकों का विनाश करती है। अन्त मे समष्टि को ध्वस कर भस्मसात् कर देती है। मुख्य रूप से प्रध्वस का प्रयोग खण्डप्रलय और महाप्रलय मे होता है। गौण रूप से तो सदा ही प्रलय करती रहती है।

युद्धो मे यह अग्नि अस्त्र और आग्नेयचूर्ण (बारुद) के रूप मे महाप्रलय सा मचा देती है। ठण्डे पानी को गरम करें तो अग्नि उसकी ठण्ड को नष्ट कर देती है। अधिक अग्नि का प्रयोग करें तो पानी को ही जलाना आरम्भ कर देती है। अधिक गरम करते जाय तो सारे ही पानी को अग्नि जला डालती है। जल प्रध्वस को प्राप्त हो जाता है। कुछ भी शेष नही रहता।

अग्नि के इस प्रध्वस गुण का प्रत्यक्ष तो आयुर्वेद की शैली से भस्मे बनाते हुए होता है। सोना, चान्दी, लोहा, हीरा, मणि, माणिक्य कोई भी कठोर से कठोर धातु हो अग्नि की विशेष प्रक्रिया से भस्म बना दी जाती है। किसी धातु का अपना रूप शेष नही रहता। राख सी ही तो शेष रह जाती है। पर वैद्य आयुर्वेद के साक्षात्कृत धर्मा ऋषियो के प्रदर्शित नैपुण्य से धातुओ के गुण बचा लेता है। यदि भावनाओ (लाग) का प्रयोग न कर और अग्नि के बल से ही भस्म बनाते जावें तो कुछ भी शेष न रहेगा, न गुण न गुणी। अमरीका वाले हाई पोटासी की बिजली का ताप देकर सब धातुओ को क्षण भर मे फूक देते हैं, आजकल बहुत से प्रमादी नवीन वैद्य उनका प्रयोग करते हैं। उन भस्मो का अभीप्ट प्रभाव नही होता। तोलो अभ्रक खा जाने पर भी कोई प्रभाव नही होता। यह देख आयुर्वेद का उपहास करने लगते हैं। एक वृद्ध वैद्य से यह सहन नही हुआ। उन्होने आयुर्वेदके ढग से निर्मित सहस्रपुटी अभ्रक की आधी चावल की मात्रा दी तत्काल लोभ हुआ। यह देख आक्षेप कर्ता लज्जित हुए पर सदा के लिये आयुर्वेद के महत्व को समझ गये। अग्नि भस्म तो बनाती है, पर जिस-जिस की साथ मे रखोगे उनके मौलिक गुण को बचा लेती है। यही कारण है कि सब भस्मो मे भिन्न-भिन्न गुण होते है।

भोजन बनाते समय जब भोजन ठीक समय पर अग्नि पर से नही उतारा जाता है तो अग्नि उसे भी जला कर राख बना देती है। यहाँ तक कि हलवा, खीर जैसा स्निग्ध पदार्थ भी जल कर राख हो जाता है। जलाते ही जायें तो वह भी सर्वांश मे नष्ट हो जाता है। यही अग्नि कुपित होने पर घने वनो और बडे-बडे विशाल नगरो का ध्वस कर डालती है। दग्ध का अर्थ भस्म करना है। दह भस्मी-करणे धातु से दग्ध शब्द बना है, ध्वस का अर्थ सर्वथा नाश करना, या उस वस्तु का अदर्शन कर देना या लोप कर देना है, अर्थात् सर्वथा मिटा देना।

नैयायिको ने चार प्रकार के अभाव माने है। उन मे एक प्रध्वसाभाव भी है। उस का अभिप्राय भी स्वरूप से नष्ट हो जाना है। भले वह दूसरे रूप मे चला जाये, पर उसका अपना तो स्वरूप से नाश हो ही गया। इस प्रध्वस का प्रयोग प्रलय काल मे ही ठीक बैठता है, क्योकि उस समय प्रध्वस के कारण दृश्यमान सब पदार्थ कार्य रूप से कारण रूप मे चले जाते है। यह कार्य से कारण मे परिणाम होना, उस महान् चेतन

सत्ता के सर्वत्र विराजमान होने के कारण ही होता है। इसी को योगी अपने ब्रह्म-विज्ञान काल में साक्षात् अनुभव करता है।

यहां विशेष उल्लेखनीय यही विज्ञान है, कि उस ब्रह्म की चेतन सत्ता से इस अग्नि मे परिणाम होकर कैसे-कैसे ये उपरोक्त गुण आते हैं। उपनिषद् का कथन है—

"तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्,
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥"

कठ० अ० २। व० २। मं० १५।

"उस तेजोमय प्रकाश-स्वरूप श्री भगवान् के ही प्रकाशसे सम्पूर्ण विश्व के पदार्थ और यह अग्नि प्रकाशयुक्त हो रही है।"

यह ठीक है कि अग्नि का उपादान कारण रूपतन्मात्रा है, परन्तु निमित्त कारण तो भगवान् ही है। अतः इसके सब कार्यों मे इस चेतन निमित्त कारण की अनुभूति होनी चाहिये। जब योगी को किसी एक पदार्थ में इस चेतन ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है तो अन्य सब पदार्थों का साक्षात् होना सरल हो जाता है। इस चेतन शक्ति का विनाश किसी भी अग्नि आदि पदार्थ से नही होता। वह शक्ति सब पदार्थों मे एक रूप में ही वर्त्तमान रहती है। इसमे मे कोई विकार या परिवर्त्तन नही होता।

आत्मा और ब्रह्म प्रत्यक्ष हैं

योगी को अन्तःकरण चतुष्टय के एक अंश चित्त में अपने स्वरूप का साक्षात्कार होता है। इसमें वेदान्त दर्शन की भी साक्षी है।

पहला प्रमाण—

'गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात्।'

वेदान्त० अ० १। पा० २। सू० ११।

—'आत्मा और परमात्मा हृदयरूपी गुफा मे प्रविष्ट हैं। क्योंकि वहां इनका दर्शन होता है।'

इसलिये योगी हृदय की गुफा में प्रवेश कर के आत्मा परमात्मा का दर्शन करे।

दूसरा प्रमाण—

आत्मन्यात्ममनसोः संयोगविशेषादात्मप्रत्यक्षम्।

वैशेषिक० अ० ९। आ० १। सू० ११।

—'आत्मा मे, आत्मा और मन के संयोग से आत्म-प्रत्यक्ष होता है।'

जब एक बार अपने आत्मा के स्वरूप का दर्शन या साक्षात्कार हो जाये तो ब्रह्म के दर्शन मे देर नहीं लगती।

वेद ने भी आदेश दिया है—

यो विद्यात् ब्रह्म-प्रत्यक्षम्।

अथर्व० काण्ड ६। अनु० ३। सू० ६। मं० १।

—सन्यासी उस ब्रह्म को प्रत्यक्ष जाने। सन्यास का भाव वैराग्य है।

ऐतरेय ब्राह्मण मे भी यही लिखा है —

'त्वमेव प्रत्यक्ष ब्रह्मासि, त्वामेव प्रत्यक्ष ब्रह्म वदिष्यामि।'

तैत्तिरीय ब्रा० शिक्षाध्याय । १२ अनु०।

—"ब्रह्म ! तू ही प्रत्यक्ष है। तुझको ही प्रत्यक्ष ब्रह्म कहूगा।"

आत्मसाक्षात्कार के साथ ही ब्रह्म के दर्शन भी हो जाते है। आत्मा के दर्शन हो जायें तो फिर ब्रह्म के दर्शनमे देर नही। क्योकि जैसा चेतन जीवात्मा है वैसा ही चेतन ब्रह्म भी है। केवल अन्तर इतना है कि जीवात्मा अणु है, और ब्रह्म महान् है। स्वरूप का प्रत्यक्ष होने पर फिर ब्रह्म का प्रत्यक्ष करने मे किसी अनुमान की या शब्द प्रमाण की आवश्यकता नही रहती। यहा भी प्रत्यक्ष प्रमाण ही ब्रह्म के दर्शन का हेतु है।

(शका) कई आचार्यो का कथन है कि प्रमाणो द्वारा ब्रह्म का ज्ञान नही हो सकता है ?

(समाधान) ससार मे ऐसा कोई पदार्थ नही है जो हो और प्रमाण का विषय न हो। हा गधे के सीगो का अभाव है, वे न कभी भूत काल मे हुए, न वर्त्तमान काल मे हैं, न भविष्य मे ही कभी होगे। ये प्रमाण का विषय नही हो सकते है। पर ब्रह्म तो वर्त्तमान है। फिर क्यो वह प्रमाण का विषय नही बनेगा। यदि ब्रह्म को प्रमाण का विषय नही मानते हो तब वेद शास्त्र मानने भी बेकार है, क्योकि यह सब तो उस ब्रह्म का वडा विषद वर्णन करते है। ब्रह्म के होने के विषय मे वेद, शास्त्र, उपनिषद् सब का ही शब्द-प्रमाण मौजूद है। शब्द प्रमाण तो ब्रह्म के विषय मे प्रत्यक्ष ही है, फिर यह कैसे कह सकते है कोई प्रमाण नही।

वर्त्तमान दृश्यमान सृष्टि के विगडने को देख कर इसके बनाने वाले का अनुमान होता है। जो मरता है, वह पैदा अवश्य हुआ है। पहाड टूटता है, वृक्ष गिरते हैं, दरिया सूखते हैं, जगल जल कर नष्ट होते है, तो ये बने भी अवश्य है। जहा वर्त्तमान मे जगल है, कल वहा भविष्य मे शहर बस जाता है। जहा नदी है वहा सडक बन जाती है। जहा समुद्र है, वहा वडे बडे महल बन जाते है। तारे, नक्षत्र सब टूटते हैं, जब टूटते है, तो अवश्य बने है। बने हैं तो आवश्य बनाने वाला भी कोई है, हम आप तो इनके बनाने वाले नही हैं। पर्वत और नदी की तो क्या बात एक गेहू का दाना भी हम नही बना सकते। एक चना भी नही बना सकते तो फिर इस व्यापक सृष्टि का सर्व समर्थ कोई न कोई बनाने वाला अवश्य है, चाहे उसका नाम कुछ भी रख लो, ब्रह्म, ईश्वर, गाड, खुदा, अल्लाह, वाहेगुरु कुछ ही कहो।

शब्द प्रमाण और अनुमान प्रमाण भी प्रत्यक्ष पूर्वक ही होते हैं, जिस का प्रत्यक्ष नही उसके विषय मे अनुमान, शब्द, उपमान आदि कोई भी प्रमाण नही कहा जा सकता है। ईश्वर तो प्रत्यक्ष ही है। वेद, ब्राह्मण, दर्शनो का प्रमाण नमूने के लिये उपस्थित कर चुके समस्त प्रमाण दिये जायें तो उस का पृथक् ही एक विशाल ग्रन्थ बन जायेगा।

अब कुछ उपनिषद् आदि के प्रमाण भी पढिये—

अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते ।

मुण्डकोपनिषद् ख० १ । म० ५ ।

—उस परा विद्या के द्वारा नाश रहित ब्रह्म प्राप्त होता है ।

जो प्राप्त होता है वह भी तो प्रत्यक्ष का विषय हुआ, जो अप्रत्यक्ष है उस की प्राप्ति क्या ?

तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा ।
आनन्दरूपममृत यद्विभाति ॥

मुण्डक० मु० २ । ख० २ । म ७

—विद्वान् योगी लोग उस ब्रह्म को विज्ञान से देखते है जो आनन्द रूप है, मोक्ष स्वरूप है, और प्रकाशमान हो रहा है ।

यहाँ भी ब्रह्म को प्रत्यक्ष प्रमाण या दर्शन का विषय माना है ।

तिलेषु तैल, दधिनीव सर्पि,
आप स्रोतस्स्वरणीषु चाग्नि ।
एवमात्मात्मनि गृह्यतेऽसौ,
सत्येनैन तपसायोऽनुपश्यति ॥

श्वेताश्तवर० अ० १ । म० १५ ।

—जैसे तिलो मे तेल, दही मे घी, सोता मे जल और अरणियो (शमी की लकडियो मे) अग्नि वर्तमान है । इसी प्रकार वह ब्रह्म आत्मा मे मिलता है, यदि देखन वाला सत्य और तप के द्वारा उसको देखता है-सत्य और तप का आचरण कर उसको देखता है ।

महर्षि व्यास ने बहुत ही स्पष्ट कह दिया—

'योगिनामेव प्रत्यक्ष भवति नान्येषाम् ।'

—उस ब्रह्म का प्रत्यक्ष केवल योगियो को होता है, अन्यो को नही । वेद ने तो कह दिया है —

तमेव विदित्वातिमृत्युमेति,
नान्य पन्था विद्यतेऽयनाय । " यजु

—उसको जानकर ही मानव मृत्यु को विजय कर सकता है, मृत्यु पर विजय का अन्य मार्ग नही है ।

क्या यहाँ ब्रह्म को ज्ञान का विषय नही माना है ? ज्ञान का विषय किसी न किसी प्रमाण का विषय अवश्य होता है । अत यह धारणा कि ब्रह्म का ज्ञान प्रमाणो द्वारा नही हो सकता नितान्त अशुद्ध है ।

अनेक प्रमाणो और अनेक हेतुओ से ब्रह्म सत्र ही प्रमाणो का विषय है और प्रत्यक्ष है ।

इस अग्नि महाभूत के सब धर्मो का समाधि द्वारा योगि अनुसन्धान करें । जैसे तिलो मे तेल, और दूध दही मे घी वर्तमान है परन्तु आँखो से प्रत्यक्ष देखने मे नही आता है, इसी प्रकार ब्रह्म भी अग्नि के सब धर्मो म वर्तमान है । जैसे दूध दही को मथ

कर घी निकाला जाता है उसी प्रकार चित्त को सब ओर से समाहित करके समाधि द्वारा ब्रह्म का प्रत्यक्ष कर।

चिन्ता का कोई रग, रूप, आकार नही है, परन्तु इसकी चित्त मे प्रतीति होती है, इसी प्रकार यदि आप ब्रह्म का रग, रूप या आकार न माने तब भी वह अनुभूति का विषय बन सकता है। जैसे चिन्ता चित्त के लिए प्रत्यक्ष का विषय है इसी प्रकार ईश्वर भी चित्त द्वारा प्रत्यक्ष का विषय है।

समष्टि अग्नि महाभूत मण्डल
द्वितीय रूप मे ब्रह्मविज्ञान
(अग्नि का द्वितीय रूप)

२ अग्नि के स्वरूप मे—

अग्नि के स्थूल रूप प्रकरण मे जिन ८ गुणो का उल्लेख किया गया है ये सब गुण सदा अग्नि मे वतमान रहते हैं। अग्नि गुणी से ये गुण कभी पृथक् नही मिलते। अग्नि के यह स्व-स्व सामान्य धर्म है। अग्नि अपने किसी भी रूप मे रहे यह धर्म भी उसी रूप म वहाँ विद्यमान रहेगे। अग्नि मे भी मिलते हैं, और अग्नि के परिणामा मे भी। अग्नि का प्रथम धर्म लघु है। लघुत्व धर्म अग्नि मे भी है और अग्नि के परिणामो मे भी है। न अग्नि म तोल है, न अग्नि के परिणाम गरम लोहे, या उसके परिणाम गरम घौल धुरी आदि की अग्नि मे है। अग्नि लघु है, सर्वत्र ही उसका गुण लघुत्व विद्यमान है। अग्नि के अन्य रूप विद्युत्, उसके भेद विभिन्न प्रकार के प्रकाश, उन मे किसी मे भी तोल नही सब हलके हैं। अग्नि का एक अन्य रूप सूर्य है, उसके आतप मे, उस सूर्य की आतप से सगृहीत सूर्य आतप वाले यन्त्रो की गरमी मे तोल नही है। सब ही लघु है। चन्द्र-तारो की चमकती अग्नि मे भी यह हलकापन उसी प्रकार वर्त्तमान है। जीरो वाट के प्रकाश मे और हजार वाट के प्रकाश के हलकेपन मे कोई भेद नही, दोना ही लघु हैं। यह लघुता न जल मे है, न पृथिवी मे, उनके परिणामो मे भी हलकापन नही। भार है। उनके अगले परिणामो मे भी वही भार है, लघुत्व नही।

यह आठो धर्म अग्नि मे स्वरूप सम्बन्ध से रहते हैं। वे अग्नि से अलग नही होते। या अलग रह नही सकते है। अत यह अग्नि का धर्मो से अभेद ही इसका स्व-स्वरूप है। इन गुणो से पृथक् अग्नि कोई पदार्थ नही। लघु आदि धर्मो का नाम अग्नि है, और अग्नि ही लघु आदि आठ धर्मों को कहते है। क्योकि इन धर्मो का अग्नि के साथ शाश्वत सम्बन्ध है। जब अलग अलग अस्तित्व नही है तो दो कहना बनता नही। इसलिए धर्म, धर्मी, गुण, गुणी एक ही हैं, दो नही। इसी को स्वरूप कहते है।

हम नैयायिको की तरह द्रव्य और गुण को अलग अलग नही मानते हैं। गुण द्रव्य का स्वरूप ही है। द्रव्य से भिन्न द्रव्यान्तर नही। यह स्वरूप से कभी अलग नही होते हैं।

ब्रह्म व्यापक है, व्यापक भाव से अलग नही होता है। जिस प्रकार अग्नि जल मे व्याप्त हो जाती है, जल से सूक्ष्म होने के कारण, इसी प्रकार ब्रह्म भी अपनी अत्यन्त सूक्ष्मता के कारण धर्म और धर्मी मे व्यापक होकर ठहरा हुआ है। अग्नि मे ब्रह्म अनु-स्यूत रहता है क्योकि ब्रह्म सर्वव्यापक है।

धर्मी अग्नि का जिस प्रकार क्रमपूर्वक अपने धर्मो म परिणाम होता है, और परिणाम की दशा मे भी वह पृथक् नही है। इस अग्नि के परिणामक्रम को योगी अपनी समाधि में दिव्य दृष्टि से देखे। यहाँ अत्यन्त सूक्ष्म बुद्धि की आवश्यकता है। अग्नि म जिन-जिन धर्मो का क्रमपूर्वक परिणाम योगी अनुभव करता है उसी प्रकार उस परिणाम मे ब्रह्म का भी साथ साथ अनुभव करे कि यह ब्रह्म निमित्त कारण के रूप मे यहाँ परिणाम को प्राप्त होते हुए धर्म को प्रेरणा दे रहा है, या परिणाम के समय क्रिया करा रहा है। जब धर्मो के परिणाम के अन्त तक बुद्धि पहुँचेगी, तब ही ब्रह्म की चेतन सत्ता का भी वहाँ अनुभव होगा जो कि निमित्त कारण के रूप मे वहाँ परिणाम का हेतु बनी है। जैसे स्वर्ण से बने आभूषण से सोना अलग नही होता है, केवल उसकी पहली अवस्था का ही एक अवस्था स दूसरी अवस्था मे परिणाम होता है। जैसे सोना पहले रुचक बनता है। रुचक का कुण्डल, कुण्डल का ककण, ककण का कण्ठा, कण्ठा का हार। यह सब अवस्थाओ के भेद हैं, तथ्य मे कोई भेद नही, इसी प्रकार अग्नि रूप धर्मी का लघु, ऊर्ध्व गमन, भास्वर, पाचक, पावक आदि धर्मो मे परिणाम हुआ है। कोई स्वरूप से विनाश नही हुआ है। वह अपने स्वरूप म पूर्ववत् ही वर्त्तमान है। अग्नि धर्मी का लघु, ऊर्ध्वगमन आदि धर्मो से अभेद है। यही तो इसकी स्वरूपावस्था है।

धर्मीरूप अग्नि मे 'एक कालावच्छेदेन' तो सब धर्म उत्पन्न नही होते है। क्रमपूर्वक होते हैं। इस परिणाम क्रम मे साथ-साथ ब्रह्म की चेतन सत्ता का निमित्त कारण रूप से अनुभव होना चाहिए। यही इन चारो का विज्ञान है १ अग्नि, २ उसके धर्म, ३ *अग्नि का उपादान कारण, और ४ अग्नि का निमित्त कारण।*

इस धर्म धर्मी के अभेद रूप परिणामो मे ब्रह्म का विज्ञान योगी करता है।

समष्टि अग्नि महाभूत मण्डल

तृतीय सूक्ष्म रूपमे ब्रह्म-विज्ञान

(अग्नि का तृतीय रूप)

३ अग्नि के सूक्ष्म रूप मे—

अग्नि महाभूत का जिस सूक्ष्म अवस्था से इस स्थूल अवस्था मे परिणाम हुआ है, अग्नि की वह पूर्ववर्त्ती सूक्ष्म अवस्था ही अग्नि का सूक्ष्म रूप है। अग्नि स्थूल भूत सजातीय परमाणुओ का सघात है। किन्तु इसमे वायु और आकाश के परमाणु भी वर्त्तमान होते हैं, सहकारी कारण होते है। क्योंकि ये इसमे सूक्ष्म हैं, और पहले परिणाम को प्राप्त हो चुके हैं। सामान्यत अन्य कारण भूत तन्मात्राय अपने कार्य विशेष अग्नि मे अनुस्यूत होती हैं। अत अग्नि-भूत परमाणुओ अथवा समस्त तन्मात्राओ के सघात से ही स्थूलाकार को प्राप्त हुआ द्रव्य बना है। इस कार्य कारण का अयुतसिद्ध समुदाय ही महाभूत अग्नि द्रव्य है। अग्नि मे स्पर्श गुण तो वास्तव म वायु से आया है। और ऊर्ध्व गमन रूप क्रिया भी वायु से आयी है, क्योकि गति या कम्पन रूप धर्म वायु म वर्त्तमान थे, इसी के योग से अग्नि म भी यह धर्म आ गये। सामान्य विशेष के भेद स अनुगत अग्नि समुदाय अयुत सिद्ध द्रव्य है। इस अवस्था में सूक्ष्म रूप तन्मात्रा का अग्नि महाभूत के रूप में परिणाम हुआ है। वह रूप तन्मात्रा धर्म, लक्षण, अवस्था रूपो म परिणत होकर स्थूल रूप को प्राप्त हुई है।

इस अवसर मे जो विशेष क्रिया होकर एक विशेष परिणाम रूपतन्मात्रा मे होता है, वह अत्यन्त ही विस्मयकारक होता है। योगिन् ! यहा ही आपको अपने सयम का विषय इस परिणाम प्रक्रिया को बनाना है । यहा योगी को सयम की अवस्था मे दिव्य दृष्टि से देखने योग्य यही विशेष बात होती है। आप साक्षात् करेगे कि रस से भी सूक्ष्म रूप तन्मात्रा मे कैसे परिणाम होते जा रहे हैं। अन्त मे वह कैसे अग्नि महाभूत मे परिणत हो गई। ब्रह्म की चेतना किस प्रकार सजातीय और विजातीय द्रव्यो का नियोजन कर एक अयुत-सिद्ध द्रव्य अग्नि का निर्माण कर रही है। किस प्रकार सूक्ष्म तन्मात्रायें सघात को प्राप्त होकर स्थूलाकार अग्नि के रूप मे आ रही है। इस अवसर पर ब्राह्मी चेतना सघात करने वाली प्रेरिका होती है, क्योकि ये तन्मात्रायें सब जड है, और जड प्रकृति का ही परिणाम है। ये एक अश मे गति रखते हुए भी सर्वाश मे नियन्त्रित गति वाली नही हो सकती। इनको नियन्त्रण मे रखने वाली यही ब्राह्मी चेतना की समीप मे उपस्थिति ही है।

भगवान् की समीपस्थ सत्ता की महिमा देखिये, विचित्रता का साक्षात् कीजिये—जो रूप तन्मात्रा केवल दिव्य चक्षु का विषय थी, आकाश तत्त्व के मिलते ही लघु हो गई, वायु तन्मात्रा के मिलते ही ऊर्ध्व गमन करने लगी। स्पर्श तन्मात्रा से ओज और बल का भी अग्नि मे सचार हुआ। सब के मिल जाने पर प्रध्वसित्व भी उत्पन्न हो गया।

तीनो तत्त्वो का अयुत-सिद्ध समुदाय अग्नि का सूक्ष्म रूप है। समाधि मे यही जानना है कि किस तन्मात्रा के समवाय सम्बन्ध से कौन धर्म उत्पन्न हुआ। किस क्रम से, किस क्षण मे हुआ। साथ मे चेतन ब्रह्म के विद्यमान होने के कारण रूप तन्मात्रा मे होने वाली गति क्रिया परिणाम के साथ साथ ब्रह्म का भी साक्षात् करना चाहिये।

परम्परागत प्रकृति और ब्रह्म के सयोग से गति रूप धर्म अग्नि मे आया है। भगवती प्रकृति देवी ब्रह्म से क्रिया लेकर परिणाम भाव को प्राप्त हुई थी, तब से ही यह गति इसके सब कार्यो मे चली आ रही है । जो गुण इसमे ब्रह्म के योग से आये थे, उनको अपने कार्यो को प्रदान करती रही है । वास्तव मे ब्रह्म का साक्षात्कार तो इसी प्रकार की ब्रह्म-प्रकृति-सयोग जन्य सूक्ष्म अवस्थाओ या परिणामो मे होता है। इसी का सूक्ष्म-धिया योगी को अभ्यास करना है।

(शका) पाचो सूक्ष्म-भूतो के परमाणु जिनको योग-साख्य की परिभाषा मे तन्मात्रा कहते हैं एक दूसरे भूत, या तन्मात्रा की अपेक्षा सूक्ष्म होते है या समान ही होते हैं ?

(समाधान) सूक्ष्मता की दृष्टि से पाचो समान होते हैं।

(शका) यदि सूक्ष्मता मे सब ही समान हैं तो पृथिवी और जल मे क्यो गुरुत्व आया, और अग्नि, वायु में क्यो नही आया ?

(समाधान) पृथिवी मे पाचो तन्मात्राओ का सम्मिश्रण है, इसलिये सबसे अधिक गुरुत्व धर्म है। पृथिवी तत्त्व चारो तत्वो से भारी है। जल मे चार का ही समावेश है, पृथिवी का निर्माण उसके पीछे होता है, वह उसमे नही है, अत जल पृथिवी से हलका और अन्य तीन से भारी है। अग्नि के निर्माण काल मे न जल बना है, न पृथिवी। अत अग्नि मे भार नही । अग्नि की रचना मे वायु और आकाश ही कारण बने हैं,

अत इनकी ही तन्मात्रायें अग्नि मे है, वे दोनो भी भारहीन है, अत अग्नि में भार नही है। पर अग्नि या विद्युत् का माप होता है, यन्त्रो द्वारा मापा जाता है, कितनी बिजली जली, या कितनी तीव्र आच है। यह माप वास्तव मे अग्नि के प्रवाह का है, प्रवाह कितना है, जितना अधिक प्रवाह उतनी ही अधिक आग । या उसके प्रकाश की शक्ति को मापा जाता है। मोमबत्ती के प्रकाश को एक इकाई मान लिया गया है, उससे प्रकाश को मापते हैं, इतनी बत्तियो के प्रकाश के तुल्य यह प्रकाश है। अंग्रेजी मे उसे 'केण्डल पावर' का नाम दे दिया गया है। ऐसे ही बिजली के धक्के को घोडे के धक्के या झटके से माप लिया गया है और उसका नाम हार्स पावर रख दिया गया है। इस प्रकार नाना रूप मे अग्नि का माप होता है, पर अग्नि मे भार नही है। परन्तु अग्नि का वेग, धक्का और बल ही परिणाम भाव को प्राप्त होकर जल, पृथिवी आदि मे गुरुत्व या भार का रूप धारण कर लेता है। अग्नि मे भी वस्तुत कुछ-न कुछ सूक्ष्मातिसूक्ष्म भार अवश्य होता है, परन्तु वह तोल मे नही आता। इसलिये इसे और वायु को भारहीन कह दिया जाता है। गरम वस्तु और ठण्डी वस्तु के तोल मे कोई अन्तर नही। अनेक प्रकार से मापी जाती है, दृश्यमान भी है, इत्यादि हेतुओ से अग्नि, वायु और आकाश की उपेक्षा स्थूल है।

वायु का माप वायु के दबाव से मान लिया गया है। वायु के दबाव या चाल को मापा जाता है। कितना दबाव कितना भार उठा सकता है, इसका भी अनुमान कर लिया है, उसी के आधार से ट्यूबो मे हवा भरी जाती है। पर तोलने पर हवा मे भार बिलकुल नही होता। पार्थिव या जलीय कणो के मिल जाने से भार प्रतीत हो तो यह तो हवा का भार नही, जल के या पृथिवी के प्रमाणओ का है।

आकाश सबसे सूक्ष्म है, उसमे भार की बात नही उठती। स्थूलता का नाम भारी रख लिया जाये तो और बात है, इतने से अग्नि, वायु मे भार नही माना जा सकता।

न्याय और वैशेषिककार वायु और आकाश को नित्य मानते है। हमारे सिद्धान्त मे दोनो ही अनित्य हैं। क्योकि इनकी उत्पत्ति होती है। वायु मे मन्द, तीव्र और तीव्रतम धर्म पैदा होते है, अत अनित्य ही है। आकाश मे ऐसे धर्म तो उत्पन्न नही होते, परन्तु है अनित्य ही क्योकि उसमे भी १ सर्वतो गति २ अव्यूह ३ अवष्टम्भ ये तीन धम उत्पन्न होते है। जिस अवस्था मे नया धर्म या नया परिणाम उत्पन्न हो वह अवस्था अनित्य होगी। इसकी विशेष व्याख्या आकाश महाभूत के प्रकरण मे पढे।

अस्तु! अग्नि की सजातीय और वायु तथा आकाश की विजातीय सूक्ष्म तन्मात्राओं के सूक्ष्म सघात मे चेतन ब्रह्म के कारण क्रिया होकर स्थूल भूत अग्नि बनती है। उसी क्रियाकलाप को समाधि मे प्रत्यक्ष करना है। अग्नि तत्त्व का अग्नि तन्मात्रा कारण है अत कारण मे ही अग्नि की सूक्ष्मता परिसमाप्त होती है। इस कारण से कार्य मे परिणत होनी हुई अवस्था मे ब्रह्म की अनुभूति करे।

समष्टि अग्नि महाभूत मण्डल
चतुर्थ रूप में ब्रह्म-विज्ञान
(अग्नि का चतुर्थ रूप)

४ अग्नि के अन्वय रूप में—

अग्नि महाभूत का कारण-प्रकृति के साथ परम्परा- गत सम्बन्ध अग्नि का

अन्वय रूप है। अर्थात् अग्नि की कुल परम्परा, या कारण परम्परा ही तो अग्नि का अन्वय है।

यह बताया जा चुका है कि स्थितिस्वरूपा ज्ञान व क्रिया गुणवती चेतन ब्रह्म के सम्बन्ध से बनती है। अपने स्वरूप और गुणो को लेती हुई अपने सब कार्यों मे अनुपतन करती है और अनेक परिणामो को क्रमश प्राप्त होती जाती है। वे परिणाम ही इसका कार्य हैं। इसी परम्परा से अग्नि भूत भी प्रकृति का ही दूरगामी परिणाम है। इसमे भी प्रकृति अपने स्वरूप के साथ अनुपतित हुई है। मध्यगत परिणामो को भी अभिव्यक्त करती आयी है। यह मूल प्रकृति का अनुपतन ही अग्नि का अन्वय रूप हुआ।

प्रकृति की सत्ता है तो अग्नि और उसके कार्यो की सत्ता है। यही अग्नि महाभूत मे प्रकृति कारण का अन्वय हुआ। सोने के गुण भूषणो मे, और मिट्टी के गुण उसके पात्रो मे आते हैं। कार्य के गुण कारण के अनुरूप ही होते हैं।

मूल प्रकृति सर्वव्यापक सर्वगत चेतन ब्रह्म, और अणुचेतन जीव तीनो सनातन हैं। जीव और ब्रह्म एक रूप रहते है। प्रकृति परिणामिनी है। प्रकृति से समष्टि महत्तम, उसमे समष्टितम -अहकार, और उससे पाँचो तन्मात्राओ मे ही रूप तन्मात्रा भी परिणाम को प्राप्त हुई। निमित्त कारण ब्रह्म के सदा साथ मे रहने के कारण प्रकृति का इन सब कार्यों मे अनुपतन हो सकता है। इसका ही प्रत्यक्ष दर्शन समाधि मे करना है। यही ब्रह्म-दर्शन का उपाय है।

अग्नि मे सत्त्व अधिक मात्रा मे है। रज. तम से अधिक मात्रा मे है। तम सबसे कम है। है अवश्य, नही तो उसके बिना अग्नि की स्थिति या सत्ताही न होती। इसी लिये अग्नि प्रकाशमान भी है और अन्यो को भी प्रकाशित करती है गतिमान् है और अन्यो को भी गति देती है। इसकी गति बहुत ही तीव्र है। पृथिवी और जल मे घुस जाती है। वायु पर भी सवार हो जाती है। तीनो गुणो के कारण अग्नि के भी सात्विक, राजस, तामस तीन भेद हो गये हैं। इनका अन्वय इस अग्नि मे है।

योगी इस परम्परागत परिणाम क्रम को ध्यान की दृष्टि से देखे तो यह परिणामक्रम अन्ततोगत्वा ब्रह्म से ही गतिशील हुआ प्रतीत होगा। ब्रह्म की व्यापकता का इसम अनुभव करे और इसकी परिणत होती हुई अवस्थाओ मे भी।

समष्टि अग्नि महाभूत मण्डल
पञ्चम अर्थवत्ता रूप में ब्रह्म-दर्शन
(अग्नि का पञ्चम रूप)

५ अग्नि के अर्थवत्ता रूप में—

अग्नि ही दृश्यमान जगत् की रचना मे सहकारी कारण के रूप मे प्रयुक्त हुई है। इसी लिये यह सब कुछ दिखाई देता है, यही सर्व-प्रथम अग्नि की सर्वतो महती अर्थवत्ता है।

यह अग्नि सब प्राणियो के शरीरो मे सत्त्वगुण रूप से स्थित हो कर शरीरो के अनेक कार्य और उपकार करती है। राजस रूप से अन्तरिक्ष मे लोक लोकान्तरो का आकर्पण एव गमनागमन करती है। सूर्य के रूप मे मेघो का निर्माण और विद्युत् के रूप मे पृथिवी पर अवतीर्ण हो कला कौशल के निर्माणार्थ कल कारखानो को चलाकर

मानव एव अन्य प्राणियो का भी महान् उपकार करती है। तम रूप मे भूमियो में वास कर अगणित पदार्थो का पाक करती है, निर्माण करती है। लकडी, कोयला एव पत्थर मे वास कर मनुष्य के असख्यो कार्यों को सिद्ध करती है।

अग्नि का निवास सब शरीरो और अन्तरिक्ष मे भी है। सर्वत्र तीनो गुणो से युक्त होकर जीव मात्र के भोगो का सम्पादन करती है। सृष्टि के आरम्भ मे भी सब लोको का पाकज रूपकार्य इसी से हुआ था, वर्त्तमान मे भी हो रहा है, और भविष्य मे भी होता रहेगा। दृश्यमान जडात्मक पदार्थो और जैवी शरीरो मे व्याप्त हो कर उनकी स्थिति और स्थापक या हेतु बनी हुई है। उनका अनेक प्रकार से उपकार भी कर रही है। सर्व-भोग्या है। इसके अभाव मे तो जड और चेतन सब ही अन्धकार मे प्रवेश कर जाये। इसके बिना तो कोई भोग भी उपलब्ध न हो सके। जीवन ही समाप्त हो जाये।

वास्तव मे यह भगवती देवी सब मनुष्यो की आराधना के योग्य है। अनेकानेक उपकार कर रही है। सब जीवो के जीवन का विकास कर रही है। सूर्य के रूप मे उदय होकर उपासना और पूजा की आराध्य देवी बनी हुई है। सूर्य के उदय होते ही लोग सूर्य को नमस्कार करते हैं। यह सारे भूमण्डल के अन्धकार को दूर करता है। अन्न, वनस्पति, औषधि, फल आदि का पाक करता है। प्राणियो के पक्वाशय मे भी भोजन का पाक यही करता है।

यह सूर्य भगवती अग्नि का छोटा सा पुत्र ही तो है। इसी प्रकार के उसके असख्य सूर्यरूपी पुत्र लोक लोकान्तरो के कल्याण म लगे हुए है।

हमारी भारत भूमि पर कागडे मे जो अग्नि भूमि से निकल रही है, हिन्दू लोग उसकी पूजा करते है। याज्ञिक लोग यज्ञ वेदी मे इसको सदा प्रदीप्त रखते हैं और नानाविध हव्य कव्य से इसकी आराधना करते है। सद्ग्रहस्थो मे नित्य चूल्हे की अग्नि मे बलिवैश्व देव यज्ञ किया जाता है। अन्य देशो मे भी सूर्य, अग्नि आदि की देवता के रूप मे पूजा की जाती है। पारसी लोग भी इसको स्थायी रूप मे बनाये रखते है और इसी की पूजा करते है। जब सायकाल रजनीमुख के समय दीपक आदि जलाते है तो उसे नमस्कार करते है। अनेक प्रकार से खण्ड-खण्ड रूप मे, या समष्टि रूप मे इसकी पूजा की जाती है, परन्तु अब इससे आगे बढने की जरूरत है।

अग्नि मे ब्रह्मोपासना और ज्ञान

यह भगवती देवी समष्टि अग्निभूत के रूप मे सम्पूर्ण विश्व मे व्याप्त होकर ठहरी हुई है। विश्व के सब मनुष्यो को इस समष्टि अग्नि देवी को ही अपनी भक्ति, पूजा, उपासना, या समाधि का विषय बनाना चाहिये। विश्व-व्यापी इस अग्नि मे इस से भी अत्यन्त सूक्ष्म सर्वव्यापक भगवान् का आरोप कर के दोनो का वस्तुत साक्षात्कार करना चाहिए। यही इस भगवती अग्नि देवी की अर्थवत्ता है। यही अपने नियन्ता पिता का बोध कराती है। उसके समीप ले जाती है। अपनी सक्ष्मता से उसकी सूक्ष्मता का ज्ञान कराती है। व्याप्य व्यापक दोनो का साथ साथ बोध कराती है।

उपनिषदो मे सूर्य मे भगवान् का आरोप करके भगवान् की उपासना का ढग बताया है। परन्तु इस समष्टि अग्नि मे भगवान् का आरोप करके जो उपासना का ढग

या तरीका वहाँ बताया है वह उस ढंग से महान्, श्रेष्ठ भक्ति, उपासना एवं ब्रह्म ज्ञान का साधन है। उपनिषद ने अग्नि की उपासना, विज्ञान का एवं इसको ब्रह्म का शरीर मान कर ब्रह्म की उपासना और उसकी विज्ञान-प्राप्ति का बहुत ही उत्तम रूप से वर्णन किया है—

"योऽग्नौ तिष्ठन्नग्नेरन्तरो यमग्निर्न वेद,
यस्याग्निः शरीरं, योऽग्निमन्तरो यमयति,
एष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥

बृहदारण्यको० अ० ३। ब्रा० ७। मं० ५।

—जो भगवान् अग्नि में ठहरा हुआ है; अग्नि मे सूक्ष्म रूप से व्याप्त है। जिसको यह अग्नि नही जानती है। जिसका यह अग्नि शरीर है। जो ब्रह्म अग्नि को अन्दर से गति प्रदान करता है वह तुम्हारा अन्तर्यामी आत्मा (ब्रह्म) अमृत-मोक्ष रूप है।"

यहाँ अग्नि को ब्रह्म के शरीर की कल्पना करके उपासना और ज्ञान का ढंग बताया है। कैसा सुन्दर ज्ञान और उपासना का यह साधन वर्णन किया गया है।

इस समष्टि अग्नि की उपासना सब सम्प्रदायो के लोग कर सकते है। यह उपासना की विधि बिलकुल निर्विवाद है और बहुत ही शीघ्र श्रेय. की ओर ले जाने वाली है। यह समष्टि अग्नि की उपासना सब प्रकार के भेदभावो को खतम कर देती है। इस प्रकार तो चाहे किसी भी धर्म को मानने वाले हो, सब मनुष्यो का एक ही धर्म, एक ही कर्म, एक ही उपासना और एक ही पूजा हो जाती है। इस प्रकार सब का उपास्य देव भी एक ही हो जाता है, सब मनुष्यो मे प्रेम हो जाता है। सब ही एक प्रेम के सूत्र मे बन्ध जाते हैं।

यह उपासना साकारवादी और निराकारवादी दोनो के लिये ही कल्याणकारिणी है। यदि तुमने भगवान् की कोई मूर्ति ही माननी है तो इस विश्व व्यापिनी समष्टि अग्नि देवी को ही उसकी मूर्ति मान लो। यदि तुम्हे उस भगवान् की मूर्ति बनाना इष्ट नही है तो न सही, यहाँ समष्टि अग्नि मे उस भगवान् के व्याप्य-व्यापक भाव सम्बन्ध को देखो, अनुभव करो और आगे बढो।

इस विश्व-व्यापी समष्टि अग्नि की यह उपासना अथवा विज्ञान तुम्हे प्रकाश की ओर ले जायगा। क्योंकि यह स्वयं प्रकाश-स्वरूपा है। अन्धकार को दूर करने वाली है। अतः तुम्हारे हृदय के अन्धकार को भी दूर कर देगी। इसके आलोक मे तुम्हे भगवान् का आलोक मिलेगा और भगवान् के दर्शन में जो रुकावट रही है, जो अन्धकार का परदा बीच मे पड़ा रहा है, यह उसको भी दूर कर देगी। इसके सामने किसी भी प्रकार का परदा नही ठहरेगा। यह स्वय प्रकाश-स्वरूपा है और भगवान् भी प्रकाश स्वरूप है। इन दोनो प्रकाशो के दर्शनो से या विज्ञान से बाहर के—समष्टि जगत् के और अन्दर के अर्थात् मनुष्यो के हृदय के अन्धकार दूर हो जायेंगे।

ब्रह्म का उपमान

जगत् मे जितने भी रूप स्थूल शरीर की अथवा सूक्ष्म शरीर से आँखो से देखने में आ रहे हैं यह सब स्थूल और सूक्ष्म अग्नि के ही रूप हैं। उपनिषदो मे अग्नि को सात रूपो वाली कहा है :—

'काली कराली मनोजवा च, सुलोहिता याच सुधूम्रवर्णा।
स्फुलिङ्गिनी च विश्वरुची च देवी लेलायमाना इति सप्तजिह्वा॥
मुण्डको० खं० २। मं० ४।

—अग्नि की सात लपलपाती जिह्वायें हैं—१. काली २. कराली ३. मनोजवा ४. सुलोहिता ५. सुधूम्रवर्णा ६. स्फुलिङ्गिनी ७. विश्वरुची।'

यदि भगवान् को किसी रूप में ही देखना है तो वह इस समष्टि अग्नि के रूप में ही विशेष ज्योतियों की ज्योति के रूप में दीखेगा क्योंकि उपनिषदों में भी भगवान् को अग्नि कहा गया है।

वेदों में तो सूक्तों के सूक्त भगवान् को अग्नि नाम से सम्बोधित करते हैं। विशेष प्रचारित मन्त्र ही है—

अग्ने ! नय सुपथा राये ऽस्मान्। यजुर्वेद०

—हे अग्ने ! प्रकाश-स्वरूप भगवान्। हमें श्रेष्ठ मार्ग पर ले चल।

भगवान् का तुम्हें कोई न कोई रूप मानना ही पड़ेगा। तब ही वह दर्शन का विषय बन पड़ेगा। एक ही रूप की तुलना भगवान् के रूप के साथ हो सकती है अन्यथा इसके रूप का अन्य उपमान जगत् में है नहीं। उसकी उपमा है हमारा तुम्हारा जीवात्मा क्योंकि चेतनता के नाते ब्रह्म और जीव दोनों ही समान हैं। अतः जीव के रूप के साथ भगवान् के रूप की तुलना हो सकती है। जीवात्मा एक-देशी है, अन्त. अन्त.-करण देश में यह बहुत शीघ्र दर्शन का विषय बन सकता है। जब एक बार अपने स्वरूप का दर्शन हो जायेगा, फिर जिस पदार्थ में भी आप भगवान् को देखना चाहोगे, वहीं वह नजर आयेगा। उसको तब पहचानने में कठिनाई भी नहीं होगी।

कसौटी के रूप में जीवात्मा का स्वरूप तुम्हारे सामने है प्रत्येक पदार्थ में इस जीवात्मा की कसौटी पर भगवान् सही उतरेगा। यदि जीवात्मा का स्वरूप नहीं देखा तब तो भगवान् के दर्शन में भ्रान्ति भी हो सकती है, क्योंकि जिस अग्नि में आप भगवान् को देखना चाहते हैं उस अग्नि में तो वायु और आकाश भी तो हैं, ये दोनों ही अग्नि से सूक्ष्म हैं, और अग्नि में व्याप्त रहते हैं। सभव है अग्नि में तुम वायु या आकाश के स्वरूप को ही ब्रह्म समझ जाओ तुम्हे वायु और आकाश ही ब्रह्म प्रतीत होने लगें। उनको ही आप ईश्वर समझ बैठें, क्योंकि अभी तक आपने ईश्वर के रूप वाला कोई पदार्थ देखा नहीं है जिससे कि आप ईश्वर को पहिचान सको। इसीलिये अग्नि या आकाश के रूप में ब्रह्म की भ्रान्ति हो सकती है। इसलिए आपका भगवान् के उपमान जीवात्मा को पहले देख लेना आवश्यक है।

आपने गाय देखी है। जब आप वन में पहुँचते हैं तो गाय (नील गाय—जंगली गाय) आपके सामने आ जाती है। आपने पहले कभी नील गाय देखी नहीं। किसी ने बताया भी नहीं, वहाँ वन में भी कोई बताने वाला नहीं। आपने पहले नील गाय का नाम सुना है, यह भी सुना है कि वह गाय जैसी होती है, तो जब आप उस गाय को देखते हैं, तो गाय के समान उसके अंगों को देखकर अनुमान कर लेते हैं कि हो न हो यही नील गाय है।

इसी प्रकार आपने जीवात्मा को देखा हुआ है। जब अग्नि में वायु, आकाश और ब्रह्म के रूपों के देखते हैं तो जीवात्मा को समान चेतन को भी पहिचान लेते

है अन्यत्र किसी मे ब्रह्म का धोखा नही खाते। बिना गाय के देखे, जैसे नील गाय नही पहचानी जा सकती, इसी प्रकार बिना जीवात्मा को देखे ब्रह्म नही पहिचाना जा सकता। ईश्वर का दर्शन करके भी भ्रान्ति ही वनी रह सकती है। अतः ब्रह्म की पहचान के लिये पहिले स्वस्वरूप का दर्शन अवश्य होना चाहिये। अन्यथा ब्रह्म-ज्ञान असभव ही है। इसी लिये हमने पहिले अपने 'आत्म विज्ञान' ग्रन्थ मे जीवात्मा के स्वरूप और उसकी प्राप्ति की योग साधना बतायी है। जो अपने स्वरूप के दर्शन न करके, ब्रह्म-विज्ञान के पथ पर चल कर ब्रह्म का दर्शन करना चाहते है, वे बीच मे ही लडखडा कर पथभ्रष्ट हो जायेंगे।

वर्तमान मे भक्त लोग प्राय ईश्वर के नाम की माला जीवन भर फेरते रहते है। जीवन भर के लिये यह उपाय ठीक नही है। यह तो ईश्वर के पथ पर चलने के लिये पहला ही कदम है अथवा विज्ञान की दृष्टि से पहली ही क्लास है। क्या जीवन भर पहली श्रेणी मे ही पढते रहना है। आटे को बार-बार चक्की मे डालो तो आटा ही तो निकलेगा। यह तो मन को रोकने का एक छोटा सा प्रथम उपाय है। यदि मन को रोकने के इस उपाय से सफलता नही हो रही हे तो और भी तो अनेक मन को रोकने के उपाय है। उनको अपनाना चाहिये केवल नाम मात्र के जाप से ईश्वर का मिलना या ज्ञान होना कठिन ही है। ईश्वर तो विज्ञान का विषय है, विज्ञान का क्रम जाप नही है, किन्तु बुद्धि द्वारा अनुसन्धान है। जीवन भर माला फेरते है या भगवान् के नाम की रटना करते रहते हैं, तो न तो भगवान् ही मिलता है, न भगवान् का विज्ञान ही होता है। अत सर्वदा के लिये नाम मात्र का जो जीवन भर जाप किया है, यही उपाय ठीक साबित नही हुआ है। आगे बढना ही चाहिये। दूसरा उपाय अपनाना ही चाहिये।

उपाय है मनन का और ध्यान का। यह नाम जाप से अच्छा उपाय है और अगली श्रेणी का है। इसमे मन भी समाहित हो जाता है और बुद्धि द्वारा ईश्वर के विषय मे चिन्तन का भी अवसर मिलता है।

इससे अगला उपाय है समाधि के द्वारा ईश्वर को देखना, पहचानना, दर्शन करना। उसकी पहचान तब ही हो सकती है जबकि उसके समान अपना रूप देख लिया हो जिसके द्वारा आप उसकी तुलना कर सकें। इस ब्रह्माण्ड मे समष्टि अग्नि के रूप मे तब ही उस ब्रह्म का विज्ञान या साक्षात्कार होगा जबकि आपने जीवात्मा के स्वरूप को देख लिया है और यहाँ उसके समान तुलना कर सको। अन्यथा केवल अग्नि का ही विज्ञान होकर रह जायेगा। इसके प्रेरक और जगत् के कर्ता का विज्ञान नही हो सकेगा, यदि हो भी जाय तो सभव है कि भ्रान्तियुक्त ही हो।

इति समष्टि-अग्नि-महाभूत-मण्डलम्

इति प्रथमाध्याये चतुर्थः खण्डः

इत्येकत्रिंशदावरणम्

३०वाँ आवरण

समष्टि वायु महाभूत मण्डल

पाँचो रूपो मे ब्रह्मदर्शन

योगिन् ! चतुर्थ खण्ड मे वर्णित विधि के अनुसार आपने समष्टि महाभूत अग्नि के पाँचो रूपो का समाधि द्वारा प्रत्यक्ष कर लिया है। अग्नि की परिणाम भाव को प्राप्त होती प्रत्येक स्थिति मे ईश्वर के सन्निधान और निमित्त कारणता का भी प्रत्यक्ष कर लिया है। अब आपकी यह सामर्थ्य हो गयी है कि आप अग्नि और अग्नि के प्रत्येक परिणाम मे निमित्त भूत भगवान् के सन्निधान को पा सकें। अग्नि का सर्वत्र व्याप्त आलोक, भूलोक, मध्यम लोक और सूर्यलोक की सब ही अग्नि भूत भावन भगवान् की सत्ता को सर्वत्र दिखाने लगे है। पृथिवी, जल और अग्नि के रूप वान् पदार्थो परिणामो को देख कर रूपवानो मे तो भगवान् की सत्ता की निमित्तता हृदय मे स्थान करने लगी है। अभी इस सम्प्रज्ञात समाधि को अधिक सूक्ष्म भूत वायु के अवलम्बन वाला बनाइये जिस से आप अरूप वायु को और उसके सूक्ष्म परिणामो का साक्षात्कार कर सकें। वायु पृथिवी, जल और अग्नि तीनों भूतो से सूक्ष्म है, अत सूक्ष्मतर वायु को समाधि का विषय बनाने से सूक्ष्मता का अभ्यास बढेगा और तभी आप सूक्ष्मतम ब्रह्म को समाधि मे देखने के लिए एक पग और आगे बढ सकेंगे। ध्यान के विषय को उत्तरोत्तर सूक्ष्म कीजिए जिससे आप शनै शनै सूक्ष्मातिसूक्ष्म ब्रह्म के दर्शन के अधिकारी बन सकें।

अभिनव योगिन् ! अब आपने धारणा ध्यान समाधि तीनो की सूक्ष्म अवस्था संयम का विषय वायु महाभूत को बनाना है। इसके बिना तो केवल कुछ क्षण ही जीवित रहा जा सकता है। इस वायु के भी अन्य भूतो की भाँति पाँच रूप हैं—१ स्थूल रूप, २ स्वरूप, ३ सूक्ष्म रूप, ४ अन्वय रूप, ५ अर्थवत्ता रूप।

पिछले तीनों महाभूतो के व्याख्यान मे इन पाँचो रूपो का स्वरूप समझ लिया है। अब वायु महाभूत का समाधि मे पूर्णरूपेण विश्लेषण कीजिए। और साथ-ही-साथ परब्रह्म की निमित्तता को भी समझिये जिससे अरूप मे भी अरूप भगवान को प्रत्यक्ष निमित्त कारणता समझ मे आ जाये जिसके पश्चात् सूक्ष्म आकाश को और उसमे भी ब्रह्म को प्रत्यक्ष करने की सामर्थ्य उत्पन्न हो जाये।

समष्टि वायु-महाभूत मण्डल

प्रथम रूप मे ब्रह्म विज्ञान

(वायु महाभूत का प्रथम रूप)

१ वायु के स्थूल रूप मे—

सृष्टि रचना मे वायु महाभूत दूसरे नम्बर पर होने वाला परिणाम है, इससे पहले केवल आकाश महाभूत का ही तो परिणाम अभी तक हो पाया है। यह शब्द तन्मात्रा-

का ही विपरिणाम हुआ था। अब स्पर्शतन्मात्रा परिणाम भाव को प्राप्त होने चली है। सूक्ष्मतम स्पर्श तन्मात्रा ही वायु महाभूत मे परिणत हो जाती है। आकाश स्व सत्ता मे आ चुका है, इसे अवकाश प्रदान कर वायु महाभूत के निर्माण मे सहकारी होता है।

आरम्भ मे आप वायु के स्पर्श रूप मे अनुभूयमान इस स्थूल अवस्था पर सयम कीजिए। इस वायु महाभूत की अपेक्षा अग्नि, जल और पृथिवी का रूप स्थूल था। वे सब दृश्यमान होने से आँख का विषय थे। जल और पृथिवी रसना का विषय भी थे और पृथिवी नासिका का भी विषय थी। वायु तो केवल स्पर्श का विषय है। न देखी जा सकती है, न सूंघी और न चखी जा सकती है। केवल स्पर्श की जा सकती है। स्पर्श का अनुभव प्राय हाथ की अँगुलियो से किया जाता है। जहाँ हाथ नही पहुँचता वहाँ थर्मामीटर आदि से भी स्पर्श का परिमाण किया जाता है। पर यह ध्यान रखिये कि वायु का अनुभव केवल स्पर्श से होता है और कोई साधन इसके प्रत्यक्ष का नही है, पर इस ज्ञान के लिए एक बडी भारी सुविधा है कि यह समस्त शरीरव्यापी है। शरीर के प्रत्येक भाग मे स्पर्श का अनुभव होता है कही कम और कही अधिक। इस का कारण है शरीर मे सर्वत्र वायु का विभिन्न दस रूपो मे सञ्चार। जिनका विषद वर्णन आप 'आत्म-विज्ञान' मे पढ सकते हैं। यह स्पर्श गुण ही भगवान् की समीपता रूप निमित्त कारण से किस प्रकार परिणाम को प्राप्त होता है। यह योगी को यहाँ प्रत्यक्ष करना होता है—

१ **कम्पन**—स्पर्श की सर्वप्रथम परिणति कम्पन के रूप मे होती है। स्पर्श गुण जब तक किसी के साथ सम्पर्क मे न आये चरितार्थ नही होता। आकाश के साथ सम्पर्क हुआ तो वायु मे कम्प उत्पन्न हो गया। स्पर्श तन्मात्रा मे कम्प नही था। आकाश के सयोग से स्पर्श का परिणाम कम्प मे हो गया। प्रति क्षण यह धर्म वायु मे बना रहता है। वाति इति वायु। जो गति करे, कम्प करे वह वायु। वा धातु का अर्थ ही गति है। यह कम्प वायु मे तो सदा रहता ही है पर जो इसके सम्पर्क मे आता है उसमे भी कम्प उत्पन्न हो जाता है। रूपतन्मात्रा के साथ सम्पर्क हुआ तो अग्नि, जल, पृथिवी भी कम्प-युक्त हो गये और सब मे गति करने का सामर्थ्य आ गया। इसीलिए सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के पदार्थ प्रतिक्षण गति करते है। यह वायु, पृथिवी, जल और अग्नि और इनसे बने सब पदार्थो के अन्दर और बाहर रह कर अपनी सूक्ष्मता के कारण सब मे ओतप्रोत हुआ हुआ सब को गति प्रदान कर रहा है। सब को कम्पा रहा है।

वायु से कम्पित जल पवित्र हो जाता है। वायु से कम्पायमान अग्नि उग्र रूप धारण कर लेती है। उस उग्रता से सोने आदि के मल को भस्म करने मे समर्थ होती है। इसी वायु के नोदन से अग्नि को उग्र करने के लिये स्वर्णकारो के उपयोग के लिये जल भरी ताम्बे या पीतल की वकनल बनाई गयी है जो पानी को वायु मे परिणाम कर अग्नि को वेग से फूँकती रहती है। इसी वायु के द्वारा नोदन या कम्पन को प्राप्त करने के लिये लुहार की धौंकनी और घरवाली के लिये फूँकनी बनाई गयी है। यह वायु के नोदन का ही फल है कि फूँक भरी फुटबाल पैर की ठोकर लगते ही आकाश मे पहुँचती है और वालीबाल हाथ के थपेडे खा कर ऊँचे जाल को लाँघ जाती है। रबर की गेंद भी इसी नोदन के फलस्वरूप भूमि पर टकरा कर आकाश मे

उछलती है। बैडमिण्टन, टैनिस, बिलियर्ड, पोलो आदि सब खेल इसी नोदन का ही तो परिणाम है।

यह वायु का नोदन ही तो है जो पिचकारी से रंग फेंक कर होली का रंग जमाता है। यह नोदन गुण ही डाक्टर की विषाभरण-सूचिका मे औषधि को भर कर रोगी के शरीर मे पहुँच कर मृत्युञ्जय रूप धारण कर लेता है। इस नोदन की ही तो लीला है जो रंगों को स्प्रे कर मोटरों, साइकिलों, ट्रकों, रेडियो की केबिनों, तिजोरियों, बक्सो, सब ही प्रकार के केसो को अनुपम चित्तहारी रूप प्रदान करता है। यह वायु का नोदन ही तो है जो पिचकारियो द्वारा भवनों मे डी० डी० टी० को छिड़क कर मक्खी, मच्छर, दंश, बिच्छू, कृमि, कीट, पतंग आदि का नाश कर मानव को मौज की नीन्द सुलाता है। यह वायु का नोदन ही तो है जो एञ्जिन के द्वारा लखों-करोड़ो यात्रियो, एवं करोड़ों मन सामान को आवश्यकतानुसार यथास्थान पहुँचा देता है।

यह वायु का नोदन ही नाना प्रकार के प्राणायामों का कारण बनता है, जिससे विभूति-पाद-प्रदर्शित सिद्धियां योगी को प्राप्त होती है। वह पानी पर बैठ कर आसन जमा भगवान् के ध्यान मे तल्लीन हो सकता है। भूमि से ऊपर उठ कर आकाश में आसन जमा समाधि लगा सकता है। इस वायु के नोदन से ही आकाश मे आ-जा सकता है, और सूर्य की किरणों पर चढ सकता है।

यह वायु का नोदन पृथिवी, जल, अग्नि को बहा सकता है। धकेल सकता है। पैट्रोल की टंकियों और कुओं से पैट्रोल को यही वायु का नोदन बाहर निकालता है। यह वायु का नोदन ही है जो जल को समतल बनाये रखता है, और नल से घर-घर मे जल पहुँचा कर नगरवासियों को सुखी बना रहा है। ट्यूबवैलों से पानी निकाल खेतों को सींचने का काम भी यही वायु का नोदन सम्पन्न करता है।

इस नोदन से मानव ने बड़े लाभ उठाये हैं। जिस सर्वव्यापक भगवान् की सत्ता से चेतन से बने वायु ने यह नोदन स्वीकार किया है। उसका अभ्यासी ने अपने अभ्यास मे अनुभव करना है।

२. तिर्यग् गमन—वायु में सर्वप्रथम आकाश के सम्पर्क से नोदन, कम्पन, या गति रूप परिणाम हुआ। यह कम्पन तो केवल स्थानान्तरित होना मात्र था। गति किधर को हो, ऊपर को, नीचे को, दायें, वाये, उत्तर, दक्षिण को? विना सर्वत्र विद्यमान चेतन भगवान् के सम्पर्क के प्रकृति में चेतना सी नही आ सकती, वह निश्चय नही कर सकती किधर को गमन करे। भगवान् की समीपता से इस नोदन या गति का परिणाम तिर्यग् गमन में हो गया। अब वायु टेढ़ा-टेढा चलने लगा या बहने लगा। यही तिर्यग्गमन है।

वायु की गति बिलकुल टेढी होती है। जैसे सर्प टेढा चलता है, जैसे 'शतरञ्ज' में 'फरजी टेटो टेढो जाये'। इसका टेढा चलना ही वायु की गति मे बल का आधान करता है। वायु सदा लहरें उठाती हुई और तरङ्गें मारती हुई चलती है। शान्त समुद्र मे भी वायु के तिर्यगमन से लहरे उठा करती हैं। इसी कारण समुद्र सदा क्रियाशील और कम्पायमान रहता है।

ये सब लोक-लोकान्तर जो आकाश मे दीख रहे है, सब वायु के तिर्यग्गमन से गति कर रहे हैं। एक सैकण्ड भी तो नही ठहरते है। वायु के गतिशील स्वभाव से, वायु मे ही सदा रहने से ये लोक-लोकान्तर भी गति-शील बन गये है। जैसे पानी के बहाव मे भवर मे पडी लकडी भी जल के समान ही हिलोरे खाती ऊपर-नीचे होती और चक्कर खाती पानी के अनुरूप ही चलती है। इसीलिये अन्य पदार्थ भी जो वायु के आश्रित होते है गतिशील हो जाते है। जैसे फुटवाल आदि मे हवा भर देने पर और उसको रोक देने पर वायु का तिर्यग्गमन नही रुकता है। तनिक से आघात से वायु का तिर्यग् गमन प्रखर हो उठता है। ठोकर लगते ही फुटवाल भी हवा हो जाती है। ऊँची उठ कर टेढी टेढी हो जाती है। वायु के तिर्यग् गमन से पत्ते भी सदा वायु के गमन के अनुसार हिलते रहते है। वायु की गति जब मन्द हो जाती है, पत्तो की गति भी मन्द हो जाती है, कभी-कभी तो इतनीमन्द हो जाती है कि जान भी नही पडती, और पत्ते भी अचल से लगते हैं। जब वायु तीव्र चलता है, तो पत्ते तो क्या वृक्ष भी हिल जाते हे।

तूफान आने पर वायु के वेग के साथ-साथ समुद्र का जल भी मीलो उछल जाता है। बडे-बडे वायु के तीखे थपेडो से नदी-तालावो का जल भी लहरो का रूप धारण कर लेता है। जब वायु आँधी के रूप मे गमन करता है, तो महा भयकर इसका तिरछा गमन होता है, जो बडे-बडे वृक्षो को, मकानो को, छतो को उखाड कर फेंक देता है, रेगिस्तान मे रेत को एक स्थान से उडा कर दूसरे स्थान पर ले जाता है।

शरीर की नाडी मे भी वायु का वेग कुपित होने पर वह सर्पाकार चलती है। जब वायु शरीर मे विकृत हो जाती है और मात्रा से अधिक बढ जाती है तो रोगी वायु के वेग से इतना तेज भाग-दौड करता है, कि स्वस्थ स्थिति मे भी नही दौड पाता है। इस वायु के बिगड जाने पर, नियम मे न रहने पर हाथ-पैर मे कम्प तो बुढापे मे बहुधा हो ही जाता है। वायु की तिर्यग् गति के कारण किन्ही वातरोग-ग्रस्त रोगियो के होठ सदा हिलते रहते है, कितनो की गरदन के साथ जीभ भी हिलने लगती है। वात के प्रचण्ड होने पर रोग भी प्रचण्ड हो जाता है, मन्द होने पर मन्द, और मध्यम होने पर मध्यम। लौग या लौंग का पानी देने पर शरीर का वायु एक दम शान्त होते देखा गया है, साथ ही रोग भी एकदम उस समय शान्त हो जाता है। वातरोग ८० प्रकार के होते हैं।

भूमि की गति मे वायु का तिर्यग् गमन भी एक कारण है। जल भी वायु के प्रभाव से गमनशील है। जल का निम्न-गतित्व भी जल मे गति उत्पन्न कर देता है, पर समतल मे वायु का वेग ही जल की गति का निमित्त कारण होता है। मेघो को आकाश मे इधर-उधर वायु का तिर्यग् गमन ही ले जाता है। यह वायु का तिर्यग् गमन ही मेघ से मेघ को टकरा विद्युत् उत्पन्न कर देता है।

वायु का तिर्यग् गमन स्वभाव है। इसी से हाथ के कपडे के या बिजली के पखे से वायु को चला कर गर्मी को हल्का कर लेते है। बिजली के पखे से तो वायु पूरे तीव्र वेग से चल निकलती है। वायु के इस तिर्यग् गमन से समुद्रो मे बादबानो के सहारे जहाज चलते रहे है। वायु के तिर्यग् गमन मे ही पवन-क्रिया द्वारा जल ऊपर खैंचा जाता है और पवन-चक्कियो द्वारा आटा पीसा जाता है। इस वायु के तिर्यग् गमन के

सहारे ही हवाई छतरो द्वारा भूमि पर उतरा जाता है। इस तिर्यग् गमन से पतगें उडाई जाती हैं और दूर-दूर तक आकाश मे उडाई जाती हैं। इसी तिर्यग् गमन से राष्ट्रो के झण्डे राष्ट्रपतियो के भवनो और राजभवनो, राजकीय भवनो और कारो पर लहराते हैं। गुब्बारे और वैलून भी तिर्यग् गति के सहारे आकाश मे उडाये जाते है।

३ चञ्चलता—कम्पन और तिर्यक् गमन के कारण वायु मे चञ्चलता स्वाभाविक रूप से परिणाम भाव को प्राप्त हो आजाती है और प्रति क्षण वायु मे चञ्चलता वनी रहती है। एक क्षण भी तो शान्त भाव से नही बैठती है। अहर्निश प्रति क्षण इसमे गति या चञ्चलता वनी ही रहती है। इसीलिये इसका नाम सदा-गति भी है। स्वय ही चञ्चल नही रहती दूसरो को भी चञ्चल बना देती है। वृक्षो के पत्तो से हवा छू गई तो उन्हे ही चञ्चल बना दिया। औषधियो, वनस्पतियो से सम्पर्क हुआ तो उन्ह ही हिला दिया। धान, सरसो, गेहूँ आदि के खेतो से मेल हुआ तो उन्हे ही लहलहा दिया। राष्ट्रो और जातियो के ध्वज से सम्बन्ध हुआ तो उन्हे ही फहरा दिया।

शरीर मे फेफडे के द्वारा रक्त का प्राणो के साथ सम्बन्ध हुआ तो ३ सैकण्ड मे ही वह सारे शरीर मे घूम गया और हृदय की ७२ लाख नाडियो मे उसका सञ्चार हो गया। समुद्र मे हवा का सम्पर्क जलराशि के साथ हुआ तो उसे ही तरङ्गित कर दिया। किसी भी क्षण तो वायु के चञ्चल थपेडो के मारे उत्पन्न लहरो की चञ्चलता नही रुकती। इसी के सस्पर्श से झीलो तथा तालाबो मे जल सदा हिलोरे लेता रहता है। बालको के शरीर बहुत चञ्चल होने है क्योकि उनके शरीरो मे वायु की प्रधानता होती है, और उन्हे चञ्चल वस्तुएँ ही प्यारी लगती है। कागज की फिरकनी बना कर वे हवा के सम्मुख बडी उत्सुकता से दौड लगाते हैं, जब वायु के सस्पर्श से चञ्चलता के कारण फिरकनी घूमने लगती है, अत्यन्त चञ्चल हो जाती है तो चञ्चल बालक का चञ्चल मन मस्त हो जाता है। जिन अन्यो के शरीर वातप्रधान होते हैं, उनमे भी चञ्चलता होती है। कम्पवात मे हाथ, पैर, होठ काँपने लगते हैं। भूमि, जल, अग्नि वायु के कारण ही चचलता आती है। लाखो मन के जमे पडे रेगिस्तान के टीले वायु के वेग से उड कर एक साथ उठ कर दूसरे स्थान पर बिखर जाते है या फिर जम जाते हैं। कभी तो इन चञ्चल टीलो के नीचे गाँव तक भी दब जाते है। वायु और रेत की यह खिलवाड अरब या मिस्र के सहराओं मे खूब देखने को मिलती है। आँधी और तूफान के झोको से वर्षा का जल, ओले और वर्फ दूर तक मार करते है। आँधी से चञ्चल बने सिर के बाल और कपडे यात्री के होश भुला देते है। यदि दुर्भाग्यवश कभी आग लग जाए और उस समय आँधी या हवा भी चल निकले तो नगर के नगर तबाह हो जाते है, जगल के जगल क्षण भर मे भस्मसात् हो जाते है। यह भयकर करतूत होती है वायु की चचलता की। जिसको इसीलिये अग्नि सखा भी कहा जाता है। वायु की चचलता पतग और गुब्बारे को कैसे नचाती हुई ले जाती है।

४ रूक्षता—चचलता बार बार गति, या हरकत करने को ही कहते है। वायु की चचलता से या पुन गति करने से वायु की अधिकता हो जाती है और जल खिसक जाता है, बस रूक्षता प्रतीत होने लगती है। इसलिये वायु स्वभावत शुष्क है, रूखी है। इसमे तेल का सा या जल का सा चिकनापन नही है। वायु मे रूखापन इतना अधिक है

कि खाद्य, लेह्य, चोष्य प्रत्येक पदार्थ को सुखा कर शुष्क बना देती है। गर्मी हो या शीत जब तीव्र वायु चलती है तो शरीर को रूक्ष बना देती है, यहाँ तक कि त्वचा को भी फाड देती है। अत्यन्त गरम या अत्यन्त ठण्डी हवा तो एडी की मोटी खाल तक को रूखा कर फाड देती है। उसमे गहरी-गहरी खाइयाँ सी बना देती है। वायु मे रङ्गरेज और धोबी गीले कपडो को फहरा कर सामान्यत चलती वायु की अपेक्षा गति अधिक कर वायु की तीव्रता बढा, वायु की शुष्कता से कपडो को शीघ्र सुखा लेते है। शुष्क या रूखी हवा कपडो के पानी को पी जाती है।

हवा की रूक्षता के कारण खेतो की गीली मिट्टी भी सूख जाती है। जोती हुई भूमि की नमी भी हवा की शुष्कता के कारण नष्ट हो जाती है। तालावो, स्रोतो, नदियो, जलाशयो और हरी-भरी खेती का शोषण यह वायु की शुष्कता ही करती है। नही तो वर्षाकालीन इनमे एकत्रित जल सूखता ही नही और खेती नही पक पाती। सूर्य का ताप भी शोषण का कार्य करता है, पर वायु से कम। इसीलिये आत्मा की अमरता दर्शाते हुए श्रीमद्भगवद्गीता मे कहा है 'न शोषयति मारुत —हवा अन्य सब पदार्थो को सुखाती है पर आत्मा को नही सुखा सकती। अग्नि का काम जलाना मुख्य है। जलाने से पहले शुष्कता ले आती है, यह बात और है। हाँ, वायु और अग्नि दोनो ही मिल जायें—धूप भी हो और वायु भी चल रही हो तो शुष्कता बहुत शीघ्र आती है।

शिशिर मे तीखी हवा ही तो पत्तो को रूक्षता के कारण उनकी हरियाली को समाप्त कर सुखा देती है, और वृक्ष के सब पत्तो को गिराकर, ठूँठ बना देती है। उस समय तो सूर्य का आतप भी तीव्र नही होता। इस पतझड के पीछे ही वनश्री नव परिधान धारण करती है। सद्य बने मकानो मे चूने, गारा, सीमेन्ट के गीलेपन को वायु की शुष्कता ही समाप्त कर भवनो को दृढतर बनाती है। अन्यथा उनके गिराने के लिये मामूली सा धक्का ही उन्हे दिनरात भयप्रद बनाये रखता। अब तो इस वायु की रूक्षता के परिणामस्वरूप मकान शताब्दियो तक टिके रहते है। वायु से उत्पादित रूखापन ही तो सूखी लकडी को लचकने नही देता, और भवनो के निर्माण मे उन का बडा भारी उपयोग होता है। यह वायु की रूक्षता ही है जो खेत म पके अनाज को सुखा कर चिरस्थायी उपयोग योग्य बनाती है। हाँ, जब कभी शुष्क वायु असमय चल पडती है तो अधपके अनाज को ही सुखा कर जनता के अथवा राजा के दुष्कर्म का प्रतिफल प्रदान करती है। प्रकृति के ये सब गुण नियामत भी है, और शियामत भी है। वर्षाकाल मे जब पानी और कीचड के कारण यातायात ठप्प हो जाता है, सेनायें शिविरो मे, और सन्यासी तक भी चातुर्मास बिताने के लिये प्रतिषिद्ध ग्रामो मे बन्दी तक हो जाते हैं। उन कारा-गारो से यह वायु की रूक्षता ही मार्गों को सुखाकर मुक्ति प्रदान करती है। भस्त्रा आदि प्राणायामो से यह वायु शरीर के वात,कफ के दोषो को हर लेती है जिससे योगी लोग रोग मुक्त हो खूब घी-दूध पचाने मे समर्थ हो जाते है। कैसी कल्याणकारिणी है यह वायु की रूक्षता!

५ पवित्रता—यह उपकारी रूक्षता ही भगवान् की समीपता के कारण पवित्रता मे पलट जाती है। विजातीयता के साथ विवश हो मेल रखना पडे तो अपवित्रता उत्पन्न हो जाती है। वायु अग्नि को बुझाती है, जल को सुखाती है और पृथिवी को उडाती

है। किसी का इसमे मेल नही, इसीलिये पवित्र है। आकाश तो अवकाश प्रदान करता है, *उसके मेल से अपवित्रता नही आती। उसके कारण ही तो स्पर्शतन्मात्रा रूप मे* परिणत हुई है। उसका विघान नही कर सकती। वह आकाश भी तो इसकी पवित्रता का निमित्त है। इसलिये वायु स्वय पवित्र है तथा अन्यो को पवित्र करती रहती है। वायु कितनी ही पुरानी हो जाये कभी सडती नही है। नयी बनी कोरी शीशियाँ कितने ही दिन रखी रहे, उनमे दुर्गन्ध नही आती। हा, यदि उनमे जल, मिट्टी आदि का मेल हो जाये तो अवश्य वे सडने लगती हैं। सडी मिट्टी आदि को निकाल कर यदि हवा मे फैला दिया जाये तो वायु का सम्पर्क पा वह फिर शुद्ध हो जाती है। जिन मकानो भवनो और मन्दिरो मे वायु बेरोक-टोक, बिना किसी रुकावट के आती-जाती है, वे पवित्र रहते है। जिनमे वायु का गमनागमन स्वतन्त्र नही, वहाँ की चीजे सड जाती हैं और वायु को भी सडा देती हैं अर्थात् सडी वस्तु के कण वायु मे घुस जाते हैं। वायु मे जो गन्ध आती है वह उसकी नही होती। गन्ध धर्म पृथिवी का है, पृथिवी के कण वायु मे उडने लगते हैं और दुर्गन्ध फैलाते रहते हैं। वायु के बहने पर वह नीचे बैठ जाते हैं और अपने कारण पृथिवी मे मिला जाते हैं।

जब फेफडे सड जाते हैं, तो क्षय-रोग उत्पन्न हो जाता है। उस समय शुद्ध वायु मे किया हुआ प्राणायाम वायु को अन्दर ले जाता है और अन्दर के रोग के कीटाणुओ को नष्ट कर प्रश्वास के साथ बाहर निकाल कर फेंक देता है। रोगी स्वस्थ हो जाता है और वह दुर्गन्ध वनस्पतियो का आहार बन जाता है। प्राणायाम से असाध्य *रोगो की चिकित्सा तक भी की जा सकती है। क्योकि* वायु पवित्र है इसीलिये हिन्दू धर्म मे प्राणायाम का बडा महत्त्व है। कम से कम तीन प्राणायाम तो प्रत्येक हिन्दू को नित्य करने ही चाहिये। इससे बहुत से रोग नष्ट हो जाते हैं।

डाक्टर लोग भी दीर्घ श्वासोच्छ्वास और प्रात -भ्रमण का बडा महत्त्व बताते हैं। वास्तव मे यह महत्ता वायु की पवित्रता की है। इसीलिये प्राणायाम से दुरित नाश भी स्वीकार किया गया है।

बडे-बडे कारखानो मे जहाँ कलो और मनुष्यो की अधिकता वायु को अत्यधिक गन्दा बना देती है, वहाँ कमरो के वायु को बाहर निकालने या फेंकने के लिये पखे लगाए जाते हैं, जिससे वहा का दूषित वायु बाहर निकल जाये और रिक्त स्थान होने पर उसमे ताजा वायु पवित्रता लिए अन्दर प्रवेश करे और वहाँ के सारे स्थान को ही पवित्र कर दे। बडे-बडे नगरो मे जहाँ बडे-बडे कल-कारखाने मीलो तक फैले हुए हैं, वहाँ वायु की पवित्रता को सेवन करने के लिए लोग मोटरो मे बैठ-बैठ कर पचास-पचास मील दूर खुले उद्यानो मे जाते हैं। भगवान् के सर्वज्ञ होने के कारण चेतन सी बनी प्रकृति ने वायु का सृजन तो किया, पर मानव की भोग-लिप्सा ने उसे विषाक्त बना दिया, उससे बचने के लिये खुले मैदानो की शरण लेने के अतिरिक्त और सहारा नही। वायु की यह पवित्रता मानव को जीवन प्रदान करने वाली है।

वायु भूमि के सब पदार्थो का अन्दर और बाहर से सशोधन करती है, दुर्गन्ध युक्त सडे-बुसे पदार्थो को सुखा कर पवित्र बना देती है। हवादार मकानो मे रहने वालो के स्वास्थ्य अच्छे रहते हैं, बीमारियाँ कम होती हैं, दुर्गन्ध भी कम पैदा होती है। जिन मकानो

मे हवा का खुला यातायात नही वहाँ रोग पनपते है। ऐसे स्थानो को स्लम्म (Slums) कहते है। देहली और लन्दन जैसे नगरो मे आज के सभ्यता युग मे भी ऐसी गन्दी वस्तियाँ वहुत है, जिन्हे गिराये जाने के निर्णय कितनी वार हो चुके है, पर स्वार्थमय व्यक्तित्व ऐसे नियमो को कार्यान्वित करने मे बाधक हो जाते है।

जल और भूमि के कारण विकार-भाव को प्राप्त हुए पदार्थ वायु द्वारा शुद्ध होते जाते है। वायु की आक्सीजन मनुष्यो के फेफडो मे रक्त को शुद्ध करती है और बल प्रदान करती है। यह आक्सीजन प्राणिमात्र को जीवन प्रदान करती है। उनके शरीरो को शुद्ध करती है और पुष्टि भी प्रदान करती है। यह प्राणवायु जलाशयो को शुद्ध रखती है। प्रस्रवो और वहती नदियो का जल उथल पुथल हो ताजी हवा से सम्पर्क कर सदा ताजा ही वना रहता है। जिन कुओ का जल कम खिचता हे, पानी की उथल-पुथल नही होती, उनके जल का वायु से सम्पर्क नही हो पाता और उनका पानी खराब हो जाता है। प्रयोग के योग्य नही रहता। जहाँ शुद्ध पवित्र वायु खुला है वहाँ रोग के कीटाणु उत्पन्न नही होते। मच्छर, मक्खी, कीट पतग इसके वेग से नही ठहरते है। वायु सब प्रकार से पवित्र है और जीवन प्रदान करती है। मानव इसकी पवित्रता से पवित्र होता है, इसीलिये ऋषि मुनि, तपस्वी, योगी वनो मे खुले, विशुद्ध, पवित्र, सात्विक वातावरण मे रहते आये है।

६ आच्छादनाभाव—परिणाम क्रम से यह वायु की पवित्रता आच्छादनाभाव मे परिवर्तित हो जाती है पवित्रता किसी को ढकती नही। जव धूली या मैल आदि किसी वस्तु को ढक लेता है, तो उसकी पवित्रता भी नष्ट हो जाती है। उस मैल को हटाने से पवित्रता आती है। पवित्रता का परिणाम ही आच्छादनाभाव है।

वायु अदृश्य है, क्योकि वायु के निर्माण काल मे अभी अग्नि उद्भूत नही हुआ। वायु मे रूप का मेल कैसा होता। पृथिवी जल के साथ भी मेल नही हो पाया है न उसके गुण इसमे आये हैं, क्योकि ये दोनो परवर्त्ती पदार्थ हैं। अत वायु उद्भूत् अवस्था म पवित्रता गुण को लिये होती है अत किसी का अच्छादन नही करती, क्योकि न इस मे गुरुत्व है न आकार। सब भूतो के वन जाने पर भी यह वायु का आच्छादनाभाव वायु की सत्ता के साथ वना रहता है। यही कारण है कि पृथिवी, जल अग्नि के चारो ओर वायु रहता है पर उनको छिपाता नही है। वायु तीनो अग्नि आदि से पूर्ववर्ती है, और तीनो में कारण रूप से सम्मिलित भी है, पर इनके किसी भी भाग को छिपाता नही, ढकता नही। आच्छादनाभाव या रोक का अभाव होने से सब ही पदार्थ वायु मे आ जा सकते हैं। पहाड से कठोर और जाले के तन्तु से कोमल पदार्थ भी इसमे प्रवेश कर सकते हैं।

वायु का यह आच्छादनाभाव ही है, जो मनुष्य १५० १५० मजिल के ऊँचे मकान हवा मे खडे कर सका है। वायु के आच्छादनाभाव के कारण ही भवन निर्माण मे कोई कठिनाई नही आती और वे वरावर खडे दिखते है। अन्यथा वने वनाये मकान न दिखते तो वनाते-वनाते परस्पर मे टक्कर हो जाती। खिडकी और द्वार भी यदि वायु के कारण ढक जाते, आच्छादित हो जाते तो किसी का द्वार किधर को किसी का द्वार किधर को होता। न नगरी बन पाती न बाजार।

वायु के आच्छादनाभाव गुण के कारण ही फुफ्फुस हर समय वायु के सहारे वे रोक-टोक रक्त को फेंकता रहता है। वह रक्त प्राण-वायु के सहारे सब धमनियो मे चक्कर लगाता है और इस प्रकार शरीर को जीवित रखता है। आच्छादनाभाव के कारण ही वायु पृथिवी, पहाड, समुद्र आदि के गर्भ मे पहुँच कर भी सब प्राणियो की रक्षा करता है। अन्यथा वहाँ प्राणियो का जीना ही असभव हो जाता।

यदि वायु मे आच्छादन का दोष आ जाता तो सब की दृष्टि ही अवरुद्ध हो जाती। यह सर्वान्तर्यामी प्रभु की ही तो महिमा है कि वायु सवगा रही तो उसमे आच्छादनाभाव रहा और अग्नि सर्वग था तो उसमे सब कुछ दिखाने का गुण रहा। यदि सर्वगत पदार्थों मे कही आच्छादन आ जाता तो सारे ही व्यवहार ठप हो जाते।

वायु आकार और गुरुत्व से हीन है इसलिये किसी पदार्थ का आच्छादन नही करती है। आकारहीन जितन भी पदार्थ है ये सूक्ष्मता के कारण सब मे ओतप्रोत हो जात है। उनके लिए कोई रुकावट नही है। जितने भी पृथिवी, जल, वायु से बने पदार्थ हैं, वे सब वायु मे आते जाते है, वायु किसी के भी गमनागमन को नही रोकती है। यह वायु पारदर्शी है। किसी भी पदार्थ को नही ढकती है। ऐसा कोई स्थान नही, जहाँ वायु न पहुँचे। जहाँ पृथिवी, पहाड आदि की रुकावट के कारण वायु कम जाता है, वहाँ तो मनुष्य का मरण शीघ्र होता है। यह किसी को रोकती तो नही पर पृथिवी आदि से रुक जाती है।

७ बल—वायु किसी को रोकती नही, आच्छादन नही करती, यदि इसको कोई रोकता है, इसके चलने मे रुकावट डालता है, तो वायु का आच्छादनाभाव बल मे परिणत हो जाता है और वायु महाबली हो जाता है।

इतना बल पृथिवी, जल, अग्नि तीनो मे मिल कर भी नही जितना वायु मे है। इन तीना मे गति वायु से ही आती है। वायु के बल से ही लोक लोकान्तर चल रहे हैं। इस वायु के बल से इनके भी बल बढ जाते है। जब यह वायु आन्धी के रूप मे विकराल रूप धारण करती है तब बडे बडे वृक्षो को जड से उखाड कर फेंक देती है। मनुष्य लपेट मे आ जाये तो न जाने वहाँ से कहाँ ले जाती है। यानो के वेग को रोक देती है। वायु के साम्मुखीन वेग मे साइकिल चलाना असभव हो जाता है। साइकिल वाले को वायु के बल के आगे हार माननी पडती है और उतर कर पैदल चलना पडता है।

प्रलय यह काल मे सब लोगो को टकरा कर चूर-चूर कर देती है। आकाश मे आयी घनघोर घटा को क्षण भर मे छिन्न भिन्न कर के रख देती है। प्राणायाम के द्वारा छाती मे वायु भर उसके बल के कारण मनुष्य सा ५ फुट का जीव भी हाथी, घोडे, मोटर के वेग और बल को रोकने मे समर्थ हो जाता है। महाप्रलय मे मुख्य रूप से जगत् के विनाश का यही कारण बनती है। वायु के बल से ही भूमिगत अग्नि और जल क्रियाशील बने रहते है। सब पदार्थों मे गति के कारण वायु का बल सर्वाधिक है। वायु के वेग के बल से इसके ही कारण जलते दीपक बुझ जाते है। सब बलो मे वायु बल सर्वाधिक है।

रवड की ट्यूव में भरा हुआ वायु जब रवड के कारण बाहर नही निकल पाता तो उसमे अत्यधिक बल का सञ्चार हो जाता है। १½ इन्च की साइकिल की ट्यूब पर छ-छ भारी-भारी आदमी बैठ जाते है। मनों बोझा लादा जा सकता है। फेरी वाले साइकिल पर दुकान की दुकान लेकर चलते है। उस ट्यूब का थोडा ही सा भाग—शायद एक-दो इन्च का भाग—ही तो धरती पर टिका होता है। मोटर की ट्यूब बड़ी होती है। उसके अनुपात से २०-२० और बडी मोटर मे १००-१०० आदमी भर जाते है। बैल ठेले मे भी टायर-ट्यूब लगा दिये जाते हैं, हवा के बल के कारण, उसे सहायक पा एक-एक बैल सैकडो मन बोझा खेंचने में समर्थ हो जाता है। छाती मे प्राण भर कर छाती पर से आदमियो से भरी गाडी उतारी जा सकती है। राममूर्ति तो प्राणायाम के वल से हाथी को छाती पर चढा लेते थे, और रेल के एञ्जिन तक को रोकने की शक्ति रखते थे।

पौराणिक गाथा मे वायु को बलवान् सिद्ध करने के लिए ही मानो वायु के नियोग से उत्पन्न पवन-सुत हनुमान मे अमानुष बल का उल्लेख किया गया है जिसके कारण हनुमान जी समुद्र तक लाँघ गये और हिमालय के कुछ शिखर तक को उठा लाये। श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज प्राणायाम से चार घोड़ों की गाडी को रोक लेते थे।

हजारो मन पानी के नीचे भी वायु को दवाना चाहे तो वह रुकेगा नही अवश्य पानी के ऊपर ही निकल कर रहेगा। इसी नियम के कारण मछली नीचे गहरे पानी में साँस छोड देती है और वह श्वास पानी से बाहर बुलबुले के रूप मे निकल आता है। इसी नियम के कारण ट्यूब आदि के पञ्चर का निरीक्षण ट्यूब को जल मे डुवा कर किया जाता है। इसी वायु के बल के आधार पर हवा भरे बड़े-बडे ढोल समुद्र मे डाले जाते है, और उन पर दीपगृह (लाइटहाउस) बनाये जाते है। यह सब वायु के बल की ही करामात है। सब बलो मे वायु का बल सर्वाधिक है। इसीलिए महाभारत मे भीमसेन को भी पवन का नियोगज पुत्र लिखा गया है। वात भड़क जाने पर रोगी में इतना बल आ जाता है कि दस-बारह आदमी भी उसे रोक नही पाते हैं।

८. आक्षेप—शक्ति के स्वरूप में जब तक रहता है, बल नाम दिया जाता है, परन्तु जब बल भगवान् की समीपता के कारण क्रियाशील होता है, तो वह आक्षेप मे परिणत हो जाता है। आक्षेप बल का लोप नही करता, अपितु आक्षेप के समय बल ही आक्षेप अर्थात् धक्के के रूप मे परिणत हो जाता है। धक्का यह प्रमाणित करता है कि वह बल से ही लगा है, जितना अधिक बल होगा धक्का भी उतना ही प्रबल होगा। जितना आटा होगा उतनी ही रोटियाँ बनेंगी। रोटियाँ आटे का परिणाम है इसी प्रकार जितना बल उतना ही आक्षेप। आक्षेप बल का परिणाम जो हुआ।

वायु का बल अब निमित्त रूप भगवान् की सान्निध्य से आक्षेप रूप मे पलट गया। बिजली की धारा (करण्ट) का शक्ति के अनुरूप ही धक्का लगता है। वायु महा-बली है। इसलिये वायु मे आक्षेप की शक्ति भी अद्भुत है। चलती हुई तेज हवा या आँधी के सामने मुख करके साइकिल चलाना असम्भव हो जाता है। साइकिल सवार वायु के आक्षेप का प्रतिरोध नही कर सकता। वेग की हवा चले तो डाण्डी भी अपना पतवार पटक देता है; नौका को खेने का दु साहस नही करता। वायु का आक्षेप ही

खलिहान में किसान का अनाज बरसवाता है। वायु के आक्षेप से तुष या अनाज का भूसा अनाज से दूर जा गिरता है। वायु या भाप के आक्षेप से ही हजारों सवारियों और सैंकड़ों डिब्बों और भारी बोझे को लेकर इन्जन आगे बढ़ता है। वाष्प रूप वायु की आक्षेप शक्ति से ही स्टीमर समुद्र की छाती चीर कर हजारों यात्रियों और हजारों मन सामान को ढोकर इधर से उधर ले जाता है। वायु के आक्षेप से ही बादवान जहाजों को यात्रियों सहित समुद्र के पार करता है। वायु के आक्षेप के धक्के खाते-खाते पतंग आकाश में उड़ती है और मेघों तक पहुँचाई जा चुकी है। आकाशीय विद्युत् की खोज योरुप ने पतंग में तालियाँ बाँधकर ही तो की। पैट्रोल की बनी गैस-वायु के आक्षेप से ही वायुयान पर पक्षियों के उड़ान स्थल से भी ऊपर, बहुत ऊपर मानव को उड़ान कराता है। इसी गैस के आक्षेप से स्पुतनिक मानव को लेकर पृथिवी का चक्कर लगा सका है। चाँद पर पहुँचने के स्वप्न दिखा रहा है। बृहस्पति और शुक्र तक की दौड़ भी इसी आक्षेप गुण के कारण हो सकी है। इस वायु के आक्षेप गुण के कारण ही बड़े-बड़े टैंक और ट्रैक्टर ऊबड़-खाबड़, कठोर से कठोर भूमि को फाड़ने में समर्थ होते हैं। इस वायु के आक्षेप से ही बड़े-बड़े कल कारखाने, दानवाकार मशीनों को चला कर मानव का कल्याण सम्पादन कर रहे हैं।

आसमान में मेघों का इधर से उधर आक्षेप यह वायु ही करती है, जिससे समस्त प्रदेश का सिन्चन हो जाता है। अन्यथा मेघ जहाँ के तहाँ ही बरस जाते। वायु का आक्षेप इतना प्रबल हो जाता है कि आन्धी के वेग में मनुष्य चल नहीं सकता। आन्धी उसे उड़ा उड़ा कर फेंक तक देती है। आन्धी में तो यह आकाश में वायु के आधार पर स्वतन्त्र कल्लोलें करने वाले पक्षी भी नहीं उड़ पाते हैं। पशु भी आन्धी में आगे बढ़ने से इनकार कर देते है। हल्के पदार्थों को तो वायु के आक्षेप का धक्का कहीं का कहीं ले जाता है। वायु का आक्षेप कितने ही घरों को तोड़-फोड़ देता है। धक्का देकर यह हवा का आक्षेप पहाड़ों की चोटियों तक को गिरा देता है। आकाश में उड़ते हुए यानों तक को रोक लेता है। चलने नहीं देता, गिरा देता है। मार्गभ्रष्ट कर कहीं का कहीं ले जाता है। वायु में अमित आक्षेप बल है।

वायु की इस प्रकार की सब गति, धर्मों और परिणामों में उस ब्रह्म की महान् चेतन सत्ता का अनुभव अभ्यासी को करना है।

(शंका) यदि यह सब परिणाम वायु आदि में स्वाभाविक धर्म मान लिए जावें तो ब्रह्म की इन गतियों के लिए कोई आवश्यकता नहीं रहती।

(समाधान) मानने की तो कोई बात नहीं, कुछ भी माना जा सकता है, पर देखना तो यह है कि तथ्य क्या है। तथ्य रूप में देखा जाये तो यह सब गतियाँ उत्पन्न ही तो हुई हैं। एक कालावच्छेदेन तो यह सदा बनी नहीं रहती। सर्वत्र सबकी उपलब्धि भी नहीं होती। अतः इन सबका कोई न कोई उपादान कारण अवश्य है। कारण का कारण, फिर उस कारण का कारण, इस प्रकार माना जाये तो अनवस्था दोष आ जाता है। इस अनवस्था का परिहार यही है कि परब्रह्म की चेतन सत्ता ही सब गतिविधियों का निमित्त कारण है।

यदि इन जड पदार्थो का गति को ही स्वाभाविक धर्म मान लिया जाये, तब विचारो, महा प्रलय काल मे कार्यात्मक विशेष गति का अभाव कैसे होगा। क्योंकि स्वाभाविक धर्म तो कभी न पृथक् होता है न उसका विनाश होता है। हाँ, प्रकृति का स्वाभाविक धर्म सामान्य गति अवश्य है, जिसका प्रलय काल मे भी विनाश नही होता है। अत प्रकृति से लेकर उसके सब कार्यो तक, उनमे जो विशेष क्रिया रूप धर्म आया है, वह उस ब्रह्म के चेतन और समीपस्थ होने के कारण ही आया है।

इसी का अभ्यासी अपने अभ्यास काल मे प्रत्यक्ष करे कि किस प्रकार ब्रह्म की चेतना और सन्निधान से यह सब पगे पगे हो रहा है।

समष्टि वायु महाभूत मण्डल

द्वितीय रूप मे ब्रह्म-विज्ञान

(वायु महाभूत का द्वितीय रूप)

२ वायु के स्वरूप मे—वायु के स्थूल रूप प्रकरण मे जिन आठ धर्मो का निरूपण किया गया है, वास्तव मे वे धर्म वायु से अलग नही है। ये सब वायु मे सदा वर्तमान रहते हैं। वायु के परिणामो की ही ये अवस्थाएँ हैं। एक ही पदार्थ के भिन्न २ रूपो मे परिणाम है। वायु धर्म का अपने सब धर्मो से अभेद ही है, क्योकि ये इनको छोडकर अलग तो रह ही नही सकते है फिर भेद कैसा। ये वायु के स्व-स्व सामान्य धर्म है, वायु अपने किसी भी रूप मे रहे यह धर्म भी उसी रूप म वहाँ विद्यमान रहेगे ही। ये वायु मे भी मिलते है और वायु के परिणामो मे भी। वायु मे कम्पन है, तिर्यग् गमन है। वायु के परिणामो म भी ये सब परिणाम धर्म होगे। शरीर मे वायु के परिणाम ही प्राण अपान आदि दस प्रकार के हो गये है, सब मे ही कम्पन और तिर्यग् गमन है। वायु के कम्प का ही परिणाम है कि हृदय मे फुफ्फुस मे शाश्वत कम्प बना हुआ है। उसके सम्पर्क से नाडी भी सदा कम्प करती है। वायु का तिर्यग् गमन ही नस नाडियो मे किस प्रकार रक्त को तिर्यग् गमन कराता है। हजारो शरीर की नाडियाँ टेढी मेढी मरोड कर शरीर मे भरी है। उनके टेढेपन की कल्पना नही की जा सकती है, पर उन सब मे वायु के तिर्यग् गमन के कारण रक्त पहुँचता है। वायु-प्रधान पक्षी आदि के मानवीय शरीरो मे कितना कम्प है, परो से कम्प का उपयोग करते पक्षी, कहाँ से कहाँ उड जाते है। वायु के तिर्यग् गमन के कारण, उन पक्षियो म भी कैसी तिर्यक् गति है। दसो दिशाओ मे चाहे जिस तरफ मुड तुड सकते है, कलाबाजी खा सकते हैं। वायु की तिर्यग् गति और कम्प के कारण समुद्र की लहर कैसे काँपती हैं, वायु के साथ साथ कितना टेढा-टेढा चलती है।

कम्पन आदि आठो धर्म वायु मे स्वरूप सम्बन्ध से रहते हैं। वायु से कभी भिन्न नही होते। अलग इनकी कोई सत्ता नही। यह वायु के साथ धर्मो का एक रूप होना, दोनो का अभिन्न होना वायु का स्व-स्वरूप है। इन धर्मो से अलग वायु कोई पदार्थ नही है। कम्पन आदि धर्मों का नाम ही वायु है और वायु इन कम्पन आदि ८ धर्मों को कहते हैं। इन धर्मों का वायु के साथ सम्बन्ध नित्य ही बना रहेगा। इनकी अलग-अलग सत्ता नही है। अत इन्हे दो नही कह सकते। इसलिये धर्म धर्मी गुण गुणी एक ही हैं, दो नही। इसी का नाम स्वरूप है।

हमारे सिद्धान्त मे गुण द्रव्य का स्वरूप ही है, द्रव्य मे भिन्न कुछ नही है। गुण गुणी का अपना रूप है इसीलिये स्वरूप कहते है। स्वरूप से स्व या रूप कभी अलग नही होते। स्वरूप शब्द दो पदो से बना है सही, पर दो पदार्थों को नही कहता। पदार्थ तो एक ही है, चाहे वायु कहो, या कम्पन या तिर्यग्गमन। कम्पन और तिर्यग्गमन वायु के परिणामान्तर है, द्रव्यान्तर नही।

ब्रह्म व्यापक है। वह व्यापक धर्म से कभी अलग नही होता। जल की अपेक्षा अग्नि सूक्ष्म है। अत जल मे अग्नि व्याप्त हो जाती है। ब्रह्म अत्यन्त सूक्ष्म है। वह अपनी सूक्ष्मता के कारण धर्म और धर्मी मे व्याप्त होकर ठहरा है। वायु मे ब्रह्म ओतप्रोत है।

वायु अग्नि से सूक्ष्म है। इसलिये सूक्ष्म विषयक अभ्यास बनाने के लिये वायु का किस प्रकार क्रमश धर्मो मे परिणाम होता है और परिणाम की स्थिति मे भी वायु कोई भिन्न पदार्थ नही होता है। इस वायु के अन्य भूतो की अपेक्षा सूक्ष्म परिणाम क्रम को योगी अपनी ध्यान की दिव्य, अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से देखे। इस परिणाम को देखने के लिये अत्यन्त सूक्ष्म बुद्धि की अपेक्षा होती है। वायु तन्मात्रा मे जिन जिन धर्मों के क्रमश परिणाम का योगी साक्षात् करता है उसी प्रकार परिणाम मे उसके निमित्त कारण ब्रह्म का भी साक्षात् करे और अनुभव करे कि ब्रह्म निमित्त कारण के रूप मे परिणाम को प्राप्त हो रहे वायु धर्मो को प्ररणा दे रहा है, या परिणाम के लिये क्रिया करा रहा है। जब वायु के धर्मो के परिणाम की अन्तिम सूक्ष्म अवस्था तक बुद्धि पहुचेगी, तब ही ब्रह्म की चेतन सत्ता का भी वहाँ अनुभव होगा, जो परिणाम का निमित्त है।

रुई से पूनी, पूनी से सूत, सूत से आटी आदि, उससे ताना बाना, उससे कपडा बनता है। कपडे से कुरता, कमीज, कोट, कौपीन, लगोट आदि। यह सब अवस्थाओ के भेद है। रुई ही तो इन सब अवस्थाओ मे परिणत हुई है। इनसे भिन्न तो रुई नही। रुई पहली अवस्था का नाम है, पूनी आदि दूसरी, तीसरी आदि अवस्थाये है। कोई भिन्न पदार्थ नही। ऐसे ही वायु धर्मी के कम्पन, तिर्यग्गमन आदि धर्म रूप परिणाम है। स्पर्श तन्मात्रा का विनाश होकर यह धर्म उत्पन्न नही हुए है। स्पर्श तन्मात्रा अपने स्वरूप मे वर्त्तमान है। वायु तन्मात्रा का अपना कम्पन तिर्यग्गमन आदि से अभिन्न है। यही इसकी स्वरूप अवस्था कहलाती है।

(शका) एक वायु मे इतने धर्म या परिणाम एक काल मे कैसे रह सकते हैं, क्योकि एक एक धर्म उत्पन्न होता है और दूसरा धर्म उस समय उत्पन्न होता है जब पहला समाप्त हो जाता है?

(समाधान) आप एक समय खेत मे जाकर फसल बीजते है और पकने पर काटते भी है। आप ही दुकान पर जाकर कपडे के व्यापार भी करते है। चुनाव मे आ जाय तो विधान सभा मे जाकर आप भाषण झाडते हैं। कार्यालय मे बैठकर राज-कार्य भी करते हैं। युद्ध का अवसर आया तो आप शस्त्रास्त्र उठा कर युद्ध करने लगते हैं। जब प्रजा पीडित होती है। तो आप सेवा मे लग जाते हैं। जब सन्ध्या का समय आता है, आप ध्यान समाधि लगा कर बैठ जाते है। जब आपमे इस प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकार के अनेक गुण या धर्म रह सकते हैं, तो वायु मे क्यो शका करते हैं? क्या आपका एक धर्म या गुण दूसरे धर्म के आने पर खतम हो जाता है, सो तो होना ही नही है? अत एक धर्मी मे अनेक गुण रह सकते हैं। धर्मी के जितने भी धर्म होते हैं वे उसका स्वरूप ही होते हैं।

जिन धर्मों की चर्चा चल रही है, यह बुद्धि के धर्म है, आत्मा के नही। आत्मा तो अपरिणामी है। बुद्धि ही बदलती रहती है, कभी समझनी है, यह स्पर्श तन्मात्रा है। अब यह कम्प मे परिणत हो गयी, अब तिर्यग्गमन आदि मे। यह विपरिणाम तो बुद्धि मे हो रहा है, आत्मा मे नही। जैसे पण्डित जवाहर लाल नेहरू जी को कोई पण्डित जी, कोई नेहरू जी, कोई प्रधान मन्त्री, कोई भैय्या, कोई चाचा, कोई पिता, कोई मित्र, कोई भाई, कोई भतीजा कह कर पुकारते है। सब समझ का ही तो परिणाम है, नेहरू तो एक ही है। उसमे कोई परिवर्तन नही।

समष्टि वायु महाभूत मण्डल

तृतीय सूक्ष्म रूप मे ब्रह्म विज्ञान

(वाय का तृतीय रुप)

3 वायु के सूक्ष्म रूप मे—

वायु महाभूत का जिस सूक्ष्म अवस्था से इस स्थूल अवस्था मे परिणाम हुआ है, वायु की पूर्ववर्त्ती वह सूक्ष्म अवस्था ही वायु का सूक्ष्म रूप है। वायु स्थूलभूत सजातीय परमाणुओ का सघात ही है। परन्तु इसमे आकाश के परमाणु भी वत्तमान है। वे इसके सहकारी कारण होते है, क्योकि आकाश वायु से सूक्ष्म है और वह पहिले परिणाम को प्राप्त हो चुका है। सामान्यत कारण भूत आकाश की तन्मात्रा अपने कार्य विशेष वायु म अनुस्यूत होती है। अत वायु भूत आकाश तन्मात्रा के परमाणुओ के साथ सघात को प्राप्त हुआ स्थूल आकार मे परिणत द्रव्य है। इस कार्य कारण का अयुत सिद्ध समुदाय ही महाभूत वायु है। वायु मे शब्द और आच्छादना भाव आदि तो आकाश से ही आये हैं और आकाश से ही कम्पन आदि सामर्थ्य भी आये हैं। सामान्य विशेप के भेद से अनुगत वायु समुदाय अयुत सिद्ध द्रव्य है। इस अवस्था मे स्पर्श-तन्मात्रा का वायु महाभूत के रूप मे परिणाम हुआ है और वही स्पर्श तन्मात्रा धर्म लक्षण अवस्था रूपा मे परिणत हो कर वायु के स्थूल रुप को प्राप्त हो गयी है।

इस अवसर पर स्पर्श तन्मात्रा मे जो विशेप क्रिया होकर एक अद्भुत परिणाम होता है वह अत्यन्त ही अनासा चमत्कृतिपूर्ण होता है। इस परिणाम क्रम को ही अभ्यास काल म साक्षात् किया जाता है। धारणा, ध्यान और समाधि को एकत्र कर सयम की स्थिति मे इसी विशेप परिणाम को दिव्य दृष्टि से देखना है। आपको साक्षात होगा कि रूप से भी सूक्ष्म स्पर्श तन्मात्रा म कैसे अद्भुत ढग से परिणाम होते जा रहे है और अन्त मे वह कैसे वायु महाभूत के रूप मे परिवर्त्तित हो गयी। यह भी साक्षात होगा कि ब्रह्म की चेतन सत्ता किस प्रकार सजातीय तथा विजातीय धर्मो का नियोजन कर एक अयुत सिद्ध द्रव्य वायु का निर्माण कर रही है। किस प्रकार आकाश और वायु की सूक्ष्म तन्मात्रायें सघात को प्राप्त होकर स्थूल महाभूत वायु के रूप मे परिणत हो रही है। यहाँ सघात करने वाली ब्राह्मी चेतना ही प्रेरिका है। दोनो तन्मात्रायें ज्ञान शून्य जड हैं। ज्ञान शून्य जड प्रकृति का ही ये दोना परिणाम हैं। इनके एक अश मे तो गति अवश्य है पर सर्वाश म स्वत नियन्त्रित और नियमित गति इनमे नही हो सकती। इस नियन्त्रण को ही करने के लिये चेतन ब्रह्म समीप मे सदा व्याप्त रहता है।

ब्रह्म की समीपता की महिमा देखिये। जो स्पर्श तन्मात्रा केवल दिव्य त्वचा का विषय थी, आकाश तत्त्व के मिलने से कम्पन करने लगी, वायु रूप मे परिणत हो गयी और अगला परिणाम हुआ तो तिर्यग्गमन आदि करने लगी।

दोनो तत्त्वों का अयुत-सिद्ध समुदाय ही वायु का सूक्ष्म रूप है। ध्यान की स्थिति पैदा कर समाधि मे यही जानना है कि आकाश से मिलते ही किस क्रम से धर्म उत्पन्न होते जा रहे हैं। साथ मे क्षणो पर भी ध्यान दीजिये, कि किस क्षण मे क्या हो रहा है। साथ मे सर्वव्यापक चेतन ब्रह्म भी वर्त्तमान है स्पर्श तन्मात्रा मे होने वाली गति और क्रिया, परिणाम के साथ-साथ उस ब्रह्म का साक्षात् दर्शन कीजिये। वास्तव मे ब्रह्म का साक्षात्कार तो इसी प्रकार ब्रह्म-प्रकृति-सयोग-जन्य सूक्ष्म अवस्थाओं या परिणामो मे होता है इसी सूक्ष्म अन्वीक्षिका का योगी को अभ्यास करना है।

(शका) स्पर्श तन्मात्रा मे परम्परागत प्रकृति का धर्म गति भी है। यह स्वय आकाश के परमाणुओ के साथ मिल कर, एक विशेष अवस्था वाले परिणाम भाव को प्राप्त होकर वा सयोग को प्राप्त होकर वायु के रूप मे परिणत हो गयी। ब्रह्म की सत्ता को निमित्त मानने की क्या बात है?

(समाधान) जड पदार्थों का सयोग बिना निमित्त नही होता। वे स्वय कुछ नही कर सकते।

आप कह सकते है.—"चुम्बक (स्पर्श-मणि) सूई को अपने आप खैंच लेता है। वहाँ कोई निमित्त तो दीखता नही।"

"चुम्बक यदि सौ-दो सौ मील पर पडा हो तो दूर दूर से आकर सूइयो को उसके साथ जुडते नही देखा। जब तक कोई पास लाकर न रखे, चुम्बक सूइयो को खैंचता नही। हाँ, जब कोई चेतन सूई को चुम्बक के पास लाकर रख देता है तब सूई के पास आ जाने पर चुम्बक आकर्षण करता है। अत. वायु और आकाश के परमाणुओं को उपयुक्त मात्रा मे वा उपयुक्त काल मे सयुक्त करने मे उस चेतन विशेष का ही सहयोग निमित्त कारण के रूप मे मानना पडेगा। जिसे हम अपनी भाषा मे ईश्वर कहते हैं। आप कोई भी नाम रख सकते है।

समष्टि वायु महाभूत मण्डल

चतुर्थ रूप मे ब्रह्म-विज्ञान

(वायु का चतुर्थ रूप)

४. वायु के अन्वय रूप में—

वायु का कारण-प्रकृति के साथ परम्परागत-सम्बन्ध वायु का अन्वय-रूप है, अर्थात् वायु-परिणाम की कारण-परम्परा। वायु से पहले क्या था, उससे पहले क्या था, इस प्रकार की निमित्त परम्परा वायु का अन्वय रूप है।

साम्य अवस्था वाली प्रकृति मे जब ईश्वर की चेतन सत्ता के निमित्त से जो सर्वप्रथम परिणाम होना है वह परिणाम त्रिगुणात्मक होता है। ये तीनो गुण क्रमश. प्रकाश, क्रिया, स्थिति रूप या धर्म वाले होते हैं। इनके ये सब धर्म क्रमपूर्वक

परिणाम होते हुए सब पदार्थों मे अन्त तक आते हैं। इस प्रकार इनका अनुपतन होते हुए वायु मे भी आया है। वायु-भूत प्रकृति का दूरगामी परिणाम है। इसमे भी प्रकृति अपने स्वरूप के साथ अनुपतित हुई है और मध्यवर्त्ती परिणामो को अभिव्यक्त करती आयी है। यह मूल-प्रकृति का अनुपतन ही वायु का अन्वयरूप है।

प्रकृति की सत्ता पर ही वायु की सत्ता है और वायु के परिणामो की सत्ता है, आटे के गुण रोटी, पूरी आदि परिणामो मे आते हैं। रुई और ऊन के परिणामो मे उनके गुण आते है। आटे के परिणाम रोटी, पूरी आदि से भूख मिट जाती है, पर रुई या ऊन के परिणामो से भूख नही मिट सकती क्योकि रुई या ऊन कारण मे भूख मिटाने की शक्ति नही है। ऐसे ही आटे के परिणाम रोटी, पूरी आदि से शीत निवारण नही हो सकता, क्योकि आटा रूप कारण मे यह शक्ति नही है। जो गुण कारण मे होते है वे ही तो कार्य मे आते है।

प्रकृति, जीव और ब्रह्म तीन सनातन सत्ताये है। जीव और ब्रह्म एकरस रहते है। उनमे कोई परिणाम या परिवर्त्तन नही होता। प्रकृति परिणामिनी है। प्रकृति, समष्टि महत्तम, समष्टितम, अहकार इस प्रकार क्रमश परिणाम होता है। अन्त मे अहकार से पाँचो तन्मात्राओ का परिणाम हुआ है। उनमे से ही यह एक स्पर्श तन्मात्रा है। सदा सब मे रहने वाले ब्रह्म के निमित्त से कारण-भूत मूल प्रकृति का उसके सब कार्यो मे अनुपतन हो सका है। इस निमित्त कारण ब्रह्म का कार्यो मे या कार्यात्मक परिणामो की स्थिति मे दर्शन करना है। यही ब्रह्म-दर्शन का सरल मार्ग है।

वायु मे रजो गुण अधिक मात्रा मे है। वाति इति वायु। जो सदा चलता रहे वह वायु। वायु सदागति है। सत्त्व उसमे कम है और तमोगुण सबसे कम। तमोगुण है अवश्य, नही तो वायु का अस्तित्व कैसे बनता। केवल शाब्दिक ही रह जाता। सत्त्व भी है इसीलिये पवित्रता और आच्छादनाभाव इसमे आया है।

योगी यदि इन परिणामो की परम्परा को ध्यान की दिव्य दृष्टि से जाँचे तो अन्ततोगत्वा यह परिणाम क्रम ब्रह्म की सत्ता से ही गतिशील होता हुआ दिखाई देगा। सर्वत्र ब्रह्म की व्यापकता भी दृष्टिगोचर होगी और परिणामो मे भी वह रमा हुआ दीखेगा।

१—(शका) यह अन्वय रूप स्पर्श तन्मात्रा और आकाश-तन्मात्रा का ही क्यो न मान लिया जाये। वही तो वायु भूत के साक्षात् रूप से कारण है। और समीपवर्ती भी है। इतनी दूरस्थ मूल प्रकृति तक दौड क्यो लगाई जावे?

(समाधान) वास्तव मे वायु का समीप वर्ती अन्वय तो स्पर्श-तन्मात्रा और आकाश ही हैं, परन्तु उस अवस्था मे आप यह कह सकते थे कि ये अन्वय तन्मात्राओ मे कहाँ से आया। इस प्रकार अनवस्था दोष आता है। इसकी निवृत्ति के लिये सर्वप्रथम विद्यमान कार्यात्मक प्रकृति ही सही अन्वय रूप है। वहाँ जाकर इस अन्वय-भाव की समाप्ति हो जाती है। मूल-प्रकृति तक प्रत्येक पदार्थ मे यही अन्वय धर्म प्राप्त होता चला जाता है।

२—(शका) भूतो के सूक्ष्म रूप और अन्वय रूप मे क्या अन्तर है? दोनो ही कारण अवस्थाये है, फिर व्यर्थ मे एक और अवस्था या भेद मानना व्यर्थ है। दोनो अवस्थाओ का एक मे ही अन्तर्भाव कर लेना चाहिये।

(समाधान) सूक्ष्म और अन्वय का भेद बहुत स्पष्ट है, और दोनों को पृथक् रखना भी आवश्यक है। सूक्ष्म अवस्था मे सामान्य और विशेष द्रव्यो का समुदाय होकर एक द्रव्य बनता है। यह बताना आवश्यक है क्योकि बने हुए द्रव्य मे शका होती थी कि यह एक ही जाति के पदार्थो से बना है या इसमे विजातीय पदार्थो का भी योग है। इस शका की निवृत्ति के लिये बताना पडा कि सूक्ष्म सजातीय और विजातीय पदार्थों के सघात के योग से ही द्रव्य बनता है। अकेले से नही।

अन्वय अवस्था मे यह बात नही है। वह सजातीय या विजातीय कारण रूप पदार्थ की बात नही कहता। वहाँ तो यह बताना अभीष्ट है कि द्रव्य या पदार्थ मे ये गुण कहाँ से आये। पूर्व कारण मे तो वे उसी रूप मे है नही। इसलिये इसमे तो परम्परागत प्रकृति और गुण ज्ञान-क्रिया का सम्बन्ध दिखाया गया है। इस प्रकार के सम्बन्ध को ही अन्वय कहते है। क्योकि जब पदार्थ बनते बनते तीसरी सूक्ष्म अवस्था को पार कर गया और चौथी अवस्था आ गयी, तब यह शका हुई कि ये गुण इस पदार्थ मे कहाँ से आये ? इनका किनके साथ समन्वय है ? तब इस चतुर्थ अवस्था को समझने समझाने के लिये इसका सम्बन्ध परम्परागत प्रकृति के साथ बताना होता है। यही सम्बन्ध परम्परा अन्वय है।

अत सूक्ष्म और अन्वय अवस्था मे बडा भारी अन्तर है। दोनो एक नही हो सकती। सूक्ष्म मे समीपवर्ती उपादान कारण को बताया जाता है, और अन्वय मे परम्परागत अन्तिम उपादान कारण के अनुपतन को बताया जाता है। अन्तिम अनुपतन प्रकृति का है। यही दोनो अवस्थाओ का बडा भारी मौलिक भेद है।

सक्षेप मे—समीपवर्ती कारण को सूक्ष्म रूप कहा गया है।
प्रकृति के परम्परागत कारण कार्य रूप को अन्वय कहा है।

समष्टि वायु महाभूत मण्डल

पञ्चम रूप में ब्रह्म-दर्शन

(वायु का पञ्चम रूप)

५ वायु के अर्थवत्ता रूप मे

वायु सर्व प्राणियो के लिये जीवन का आधार है। सात्विक रूप मे सब प्राणियो के शरीरो मे प्राण के रूप मे आधार बनकर जीवन की रक्षा करता है। पृथिवी के समीप यही वायु आहार के रूप मे प्राणदा बन कर शरीर का पालन-पोषण कर जीवन प्रदान कर रहा है। इसके बिना प्राणधारी जीवित नही रह सकते हैं। मनुष्य तो वायु न मिलने पर कुछ मिनटो का ही मेहमान होता है। पशु-पक्षी भी इसके बिना जीवित नही रहते। वनस्पति भी वायु के अभाव मे मर जाते हैं। भूमि से उखाड लेने पर उनकी श्वसन प्रक्रिया बन्द हो जाती है। अत मर जाते हैं।

जब आकाश मे हजारो मील ऊपर जाना होता है तो इसी प्राणदा वायु को थैलो मे भर कर ले जाना होता है। इसको अग्रेजी मे आक्सीजन कहते हैं। सस्कृत मे प्राणदा और हिन्दी मे जीवन का आधार प्राण। जैसे अन्न को खाकर भूख मिट जाती है और विकलता दूर होती है, इसी प्रकार प्राणो का सेवन कर जान मे नई जान सी

आ जाती है और शरीर तृप्ति का अनुभव करता है। प्राणो का आहार इस वायु मे ही है। सर्प इसी का सेवन करते हुए महीनो बिलो मे पडे रहते है। यदि इसका आहार श्वास-प्रश्वास के रूप मे न मिले तो मानव के जीवन की इतिश्री कुछ मिनटो मे हो जाती है। अत वायु सब प्रकार से जीवो के जीवन का सर्वश्रेष्ठ आहार बनी हुई है। यही विशेष रूप से इसका अर्थवत्ता रूप है। रज -प्रधान वायु अन्तरिक्ष मे लोक लोकान्तरो के गमन का हेतु है और प्रत्येक लोक का आधार बनी है। सब लोक वायु पर ही ठहरे है। लोको के मध्य मे आकर उन को टकराने से बचाती है। उनकी गति का भी नियन्त्रण करती है। आकाशस्थ मेघो को इधर से उधर, उधर से इधर लाकर यथास्थान स्थापित करती है। एक देश से दूसरे देश मे ले जाकर वर्षा कराती है। भूमि से रेत को उडा मेघो से सम्पर्क स्थापित कर वर्षा का निमित्त बनती है। पहाडो की ऊँची ऊँची चोटियो और समुद्र के तल मे भी पहुच कर जीवन की रक्षा का कार्य करती है। अपने विभिन्न गुणो से मानव के जीवन को सुखी बनाती है। मनो भार को अपने ऊपर उठा वाहन के बोझे को हल्का बनाती है। टायर, ट्यूबो मे भरी जाकर पार्थिव अश के सहारे ही लाखो मन बोझा ढो ढो कर मानव को अपरिमित विश्राम प्रदान कर रही है। इन ट्यूबो के द्वारा डूबते हुओ की जीवन रक्षा करती है। नाना प्रकार की गेन्दो मे वास कर भिन्न भिन्न प्रकार से उछल उछल आबालवृद्ध सब के ही मनोरञ्जन का साधन बनी है। योग मे भी विभिन्न प्रकार के प्राणो पर वशित्व पा लेने पर विस्मय कारक सिद्धियाँ प्रदान करती है। विभिन्न प्रकार से यानो मे प्रयुक्त हो असीम अन्तरिक्ष वरुण लोक एव अन्य लोक लोकान्तरो के भ्रमण के साधन जुटा रही है। युद्धो मे पैराशूट एव छतरियो द्वारा शत्रु पर विजय प्राप्त कराती है। जलप्रवाहो एव अगम घाटियो मे इसके सहारे ही जीवन सामग्री पहुँचाई जा सकती है। भूमण्डल की यात्रा को स्थल जल की अपेक्षा वायु ने ही बेरोक-टोक एव सुगम सत्वर-गामी बनाया है। ससार भर मे वायु ने अपना समान रूप रखा हुआ है इसीलिये देश-देशान्तर मे जाने पर भूमि पर्वतो के समान बाधा नही पहुँचाती। वायु की भिन्नता के कारण कोई विशेष निर्माण की, आयोजन की व्यवस्था नही करनी पडती। भूमि पर पहाड, रेगिस्तान, वन आदि मे जाने के लिये तदुपयोगी व्यवस्था करनी पडती है। इस प्रकार वायु ने मानव को महान् सुख-सुविधा प्रदान की है।

तम रूप मे वायु लोको के गर्भ मे रहकर उनकी गति मे सहायक होती है, कारण बनती है। लोक गर्भस्थ अनेक पदार्थो का निर्माण करती है। उनके क्रमिक परिणाम मे सहायक होती है।

पृथिवी-मण्डल मे जितने प्रकार के भी यान है सबमे इसकी सहायता प्रधान रूप मे अपेक्षित होती है। मोटर मे हवा एञ्जिन मे भाप, वायुयान मे गैस आदि रूप मे यही चालन कार्य करती है। अन्य सजीव यानो मे वाहन मे जितना श्वसन अधिक होगा उतने ही वेग से चलेगी। बैल की अपेक्षा घोडा और घोडे की अपेक्षा ऊँट अधिक तीव्रगामी होता है। इन सबके वहन मे प्राण-वायु ही कारण है।

अनेक प्रकार से मनुष्यो का विशेष रूप से और अन्य प्राणियो का सामान्य रूप से रक्षण कर विश्राम देते हुए उपकार कर रही है। यह वायु की अर्थवत्ता है।

महाप्रलय-काल मे अग्नि लोक लोकान्तर का विध्वस करती है। उसमे मुख्य रूप से वायु ही सहायक होती है। ब्रह्माण्ड मे जितने भी गमनागमन के साधन है सबमे

वायुमहाभूत का किसी न किसी रूप में हाथ है। यह इसकी बड़ी भारी अर्थवत्ता, सप्रयोजनता, उपयोगिता या सार्थकता है। इस समष्टि महाभूत के उपकारों का वर्णन करते हुए अनेक ग्रन्थ लिखे जायें तब भी वे परिगणित नहीं हो सकते।

यह वायु महादेवता सब मनुष्यों के लिये उपासना करने योग्य है। अन्दर और बाहर से सबके जीवनों की रक्षा करता है। सब प्राणियों का महान् उपकारी है। अत्यन्त हितकारी है। एक प्रकार से तो यही उस भगवान् का चलता-फिरता रूप है। इसके अन्दर वह भगवान् छिपा हुआ है। एक प्रकार से यह वायु उसका चलता फिरता देह है, जैसे जीवात्मा का शरीर होता है। इस विषय में बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा भी गया है बड़े सुन्दर भाव हैं —

> "यो वायौ तिष्ठन-वायोरन्तरो,
> यं वायुर्न वेद, यस्य वायुः शरीरम्,
> यो वायुमन्तरो यमयति,
> *एष त आत्मान्तर्याम्यमृतः।"*

बृहदारण्यको० अ० ३। ब्रा० ७। मं० ७।

—*परम आराध्य श्री भगवान् वायु के गर्भ में निवास करता है। परन्तु इसको* वायु नहीं जानता। वायु उसका शरीर है। अत. वह भगवान् उसका अन्दर से संचालन करता है। वह तेरा अन्तर्यामी भगवान् है, जो शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव अमृतरूप है और मोक्ष स्वरूप है।

यहाँ वायु को भगवान् का शरीर कल्पित करके उपासना और ज्ञान का वर्णन किया गया है। यद्यपि उसका शरीर कोई नहीं हो सकता है, क्योंकि वह भोक्ता नहीं। भोक्ता को ही शरीर की जरूरत है। वायु और ब्रह्म का व्याप्य-व्यापक भाव सम्बन्ध है। इसमें ब्रह्म की उपलब्धि होती है। *यह एक प्रकार से ब्रह्म को आच्छादन करने वाला* बाहर का कवच है। कोश है। यह इसमें निवास करता है। जहाँ वायु गमन करके पहुँचता वहाँ वह पहिले ही मौजूद होता है। इस समष्टि वायु में ही भगवान् की खोज करनी चाहिये, कि वह किस प्रकार स्थिर होकर ठहरा हुआ है। इसके गति करने में भी वह गति नहीं करता है क्योंकि वह सब जगह है। वह सब देशों में है। वायु उत्पन्न होने वाला है अत एक देश में या कुछ देश में ही वह रह सकता है। इस विषय में यजुर्वेद ने भी कहा है—'**तदेजति तन्नैजति।**' इस वायु महाभूत के चलायमान होने पर, चञ्चल होने पर या गतिमान् होने पर भी वह ब्रह्म चलता नहीं। कम्पायमान नहीं होता है। चञ्चल नहीं बनता है। सदा तीनों कालों में एकरूप, एकरस होकर अडोल निष्क्रिय हो कर ठहरा हुआ है।

ईश्वर को मानने वालों का एक धर्म

इस भगवान् के नाम पर अनेक मत चले, अनेक प्रकार से इसको भिन्न-भिन्न रूपों से समझने की कोशिश की और कुछ अंशों में जाना भी। हमारे विचार में विशेष ज्ञानी और बुद्धिमान् वही व्यक्ति है जो *यह दावा नहीं करता कि मैंने ही* उस ब्रह्म को ठीक-ठीक समझा है औरों ने गलत समझा है। सामवेदीय तलवकारोपनिषद् में भी तो कहा है—

"यदि मन्यसे सुवेदेति,
दभ्रमेवापि नून त्व वेत्थ ब्रह्मणो रूपम् ।
यदस्य त्व, यदस्य च देवेषु,
अथ नु मीमास्यमेव ते मन्ये विदितम् ॥ "

केनोप० ख० २ । म० १ ।

—यदि तू समझता है 'मैने उसे ठीक-ठीक जान लिया है' तो निश्चय ही तू ब्रह्म के बहुत थोडे से रूप को जान पाया है, और जो तुमने जाना है, और जो अन्य विद्वानो ने जाना है, वह सब अभी मनन करने के योग्य है । ऐसा मैं केन का रचयिता समझता हूँ ।

"अविज्ञात विजानताम्"—जो कहते हैं हमने जान लिया वे उसे नही जानते ।
(केनो० ख० २ । म० ३)

यदि एक ही व्यक्ति की समझ मे उसका विज्ञान या स्वरूप आ जाता है तब तो वह ब्रह्म सीमित हो जाता है । एक देशी हो जाता है । उसके विज्ञान की अनन्तता तो तब ही सिद्ध होती है, जबकि परिछिन्न जीव को सीमित थोडा ही उसके विषय मे ज्ञान हो, और वह ज्ञान भी एक देश का ही हो। अत ज्ञानी को यह अभिमान ही नही करना चाहिये कि मैंने उस अनन्त भगवान् को सर्वरूप से जान लिया है, या समझ लिया है, देख लिया है, या प्रत्यक्ष कर लिया है ।

जिन लोगो, ऋषियो, मुनियो, पैगम्बरो या अन्य मतावलम्बियो ने उसके विज्ञान को सीमित सा कर दिया है, दूसरे के लिये गुञ्जायश ही नही छोडी है, वे सब मतमतान्तरो मे झगडो के मूल बने है । जब भगवान् सबका एक ही है तो उसके मानने वालो का धर्म, सिद्धान्त, मत भी तो एक ही होना चाहिये । यह हिन्दू है, यह मुसलमान है, यह ईसाई है, यह सिख है यह भेद नही होना चाहिए । अत ईश्वर को मानने वालो का सार्वभौम एक ही धर्म होना चाहिये क्योकि सब उस ही एक ईश्वर को मानने वाले हैं । उसके ही सब पुजारी हैं । उस एक के ही उपासक हैं । उसके विज्ञान के लिये यत्नशील हैं ।

इसको इस दृष्टान्त से समझिये—जैसे १०० की सख्या है । इसको पूरा करना है । एक (१०×१०) दस को दस वार लेकर पूरा करता है । एक (२५×४) पच्चीस को चार वार लेकर पूरा करता है । एक (२०×५) बीस को पाँच बार लेकर पूरा करता है । एक (५०×२) पचास को दो वार लेकर सौ पूरे कर देता है । अब इनमे एक ही व्यक्ति दावा करके बैठ जावे कि मेरी सख्या का ही जोड ठीक है तो वह बात गलत ही होगी ।

इसी प्रकार भगवान् के मानने वाला व्यक्ति या समाज यह दावा करने लगे कि मैंने, या हमने ही खुदा को, या गॉड को, या वाहे गुरु को, या कुदरत को ठीक समझा है । यह दावा उनका गलत है और बिलकुल नासमझी की बात है। यही गलती इस पृथिवी मण्डल पर भी और अन्य मण्डलो मे भी लडाई, झगडे, उपद्रव, फूट, भेद और शत्रुता का कारण बनी हुई है और सदा बनी रहेगी। अत सब ईश्वर के मानने वालो के मत, धर्म, स्नेह, प्यार, हमदर्दी, कल्याण और उत्थान की भावना, समान ही होने

चाहियें। एक सी ही होनी चाहिये। यह ही भगवान् की भक्ति, उपासना या ज्ञान का प्रत्यक्ष में फल है।

पाठक वृन्द ! आपको इस भावना पर विशेष ध्यान देना है। इसी प्रकार का जीवन भी बनाना है। इस शरीर के रहते हुए यही ईश्वर की भक्ति या ज्ञान का फल है, और मरने के पश्चात् भेद-भाव रहित मोक्ष।

इति समष्टि-वायु महाभूत-मण्डलम्।

इति प्रथमाध्याये पञ्चमः खण्डः।

इति त्रिंशदावरणम्।

२६वाँ आवरण

समष्टि आकाश महाभूत मण्डल

पाँचो रूपों मे ब्रह्म-विज्ञान

योगिन्! पञ्चम खण्ड मे वर्णित विधि के अनुसार आपने समष्टि महाभूत वायु के पाँचो रूपो का समाधि द्वारा प्रत्यक्ष कर लिया है। वायु की परिणत होती प्रत्येक स्थिति मे ईश्वर के सन्निधान और उसकी निमित्त कारणता का भी आपने साक्षात् कर लिया है। अब आप वायु और वायु के प्रत्येक परिणाम मे भगवान् और उसकी निमित्तता को पाते हैं। वायु के सवत्र विद्यमान कम्पन, तिर्यग् गमन, चञ्चलता आदि सब ही वायु के स्तरो मे सर्वत्र भूत-भावन-भगवान् की सत्ता को दिखाने लगे हैं। आपने समाधि की सूक्ष्म-स्थिति मे अरूप वायु और उसके अरूप परिणामो को परखा है।

वायु को सर्व शरीरव्यापी त्वचा से सर्वत्र अनुभव करने की सरलता थी। आकाश अरूप भी है और सूक्ष्मतम भी। इसका ज्ञान तो केवल श्रोत्र से हो सकता है। जो सारे लम्बे चौडे शरीर मे केवल छोटे से कर्ण गह्वर मे स्थित है। इसी और इसकी अन्तर्वर्तनी सूक्ष्म कर्णेन्द्रिय से शब्द-तन्मात्रा का और उसके परिणामो का प्रत्यक्ष करना है। भूत विषयक समाधियो मे यह अत्यन्त सूक्ष्मतम-विषयक समाधि है। आकाश के धर्म भी केवल तीन हैं। आकाश विषयक समाधि के अभ्यास से आपकी ऋतम्भरा सूक्ष्म होगी। इस सूक्ष्मता को पा आप महाभूतों की परिधि समाप्त कर तन्मात्राओ के मण्डल मे प्रवेश कर सूक्ष्मता उपलब्ध कर सकेंगे। इस प्रकार अभ्यास की परिपक्व सूक्ष्म स्थिति लाभ करते आप विकृति के जटिल दुर्गो की दुर्गम खाइयो को पार करते सूक्ष्मातिसूक्ष्म महामाया प्रकृति के सग मे आँख-मिचौनी खेलते इस ब्रह्म को साक्षात् रूप से प्रत्यक्ष कर अपनी साध को पूरा कर सकेगे।

धैर्य के धनी योगिन्! अब आपने सयम की सूक्ष्म स्थिति मे आकाश-महाभूत को समाधि का विषय बनाना है। आकाश अवकाश प्रदान न करे तो कोई भी भूत परिणाम भाव को प्राप्त न हो सके। महाभूतो की परिणति का यह भी एक प्रधान आधार है। आधार का शुद्ध विज्ञान भी आधेय को शुद्ध ज्ञान का हेतु होता है। आकाश महाभूत की सूक्ष्मता, वायु आदि की स्थूलता एव स्थूलता के कारण उनके परिणामों का विशुद्ध रूप मे बोध करायेगी।

इस आकाश के भी अन्य भूतो के समान ही पाँच रूप है: १. स्थूलरूप, २ स्वरूप ३. सूक्ष्म रूप, ४. अन्वय रूप, ५ अर्थवत्ता रूप। पिछले सब ही महाभूतों के व्याख्यान मे आपने इन रूपो का स्वरूप समझ लिया है। अब आकाश-महाभूत का समाधि मे पूर्ण-विश्लेषण कीजिये और उस सूक्ष्मता मे ही ब्रह्म की निमित्तता को भी परखिये, समझिये, बुद्धिगम्य कीजिये। अरूप वायु मे अरूप ब्रह्म का आप प्रत्यक्ष कर चुके है अब

चित्र स० ३

प न ो प ग्रोर पर र र स भ को
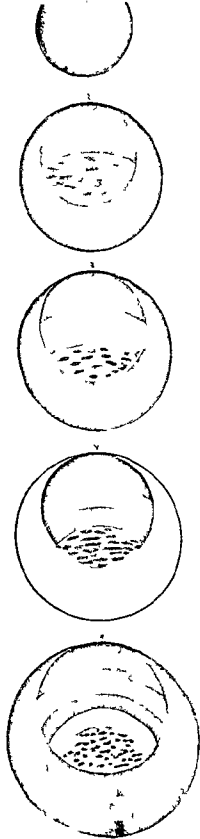
सर्व भूतों में व्यापक सूक्ष्मातिसूक्ष्म आकाश और उसके धर्मों, कार्यों और परिणामों का प्रत्यक्ष कीजिये जिससे उसमें निहित सर्वव्यापक ब्रह्म को भी आप समझ सकें, पा सकें। इससे आपकी सूक्ष्म-सामर्थ्य तीव्र होगी।

समष्टि आकाश महाभूत मण्डल

प्रथम रूप में ब्रह्म-विज्ञान

(आकाश का प्रथम रूप)

१ आकाश के स्थूल रूप में—

सृष्टि रचना में महाभूतों की रचना में आकाश महाभूत सर्वप्रथम परिणाम है जो गन्ध-तन्मात्रा की परिणति के उपरान्त हो रहा है। पाँचों तन्मात्रायें बन चुकी हैं। अपने-अपने रूप में अकेली हैं। ऐहिलौकिक भोग देने में यह तन्मात्राय असमर्थ हैं। सूक्ष्म तन्मात्रायें सूक्ष्म शरीरों का या स्वर्गस्थों का ही भोग सम्पादन कर सकती हैं। ऐहिलौकिक भोग तन्मात्राओं से निष्पन्न होंगे, पर महाभूत रचना के द्वारा। स्थूल शरीरों का भोग स्थूल भूत ही दे सकते हैं। इस लिये सूक्ष्म भूतों को स्थूल भूतों के रूप में परिणत होना पड़ता है। चित्र संख्या ३ देखें।

अब सर्वप्रथम शब्द तन्मात्रा आकाशमहाभूत में परिणत होने चली है। उसके पाँचों रूपों में होते परिणामों का साक्षात्कार करियें।

सर्वप्रथम स्थूल रूप को समाधि का विषय बनावें। यह आकाश तीन धर्मों वाला है। प्रत्येक धर्म क्रम से उत्पन्न होता है।

१ **सर्वत्रगति :**—इस वार्यात्मक आकाश के सृजन-काल में जहाँ-जहाँ आकाश पहुँचना है, वहाँ-वहाँ अवकाश होता जाता है। यह शब्द-तन्मात्रा विभु सी प्रतीत होने लगती है। आकाश के सब गुणों का परिणाम पूर्ण हो जाने पर जब वायु महाभूत का स्पर्श तन्मात्रा से परिणाम होगा तो यह अवकाश वहाँ पूर्ववत विद्यमान होगा। इसी प्रकार पृथिवी, जल, अग्नि सबको ही यह पूर्ववत विद्यमान होने के कारण अपने गर्भ में धारण करता है। यह चारों भूत इसी विभु आकाश में क्रीडा करते हैं और आकाश में ही अपने स्वरूप को, धर्मों को, कार्यों को प्रकट करते हैं। इन सबका यह निवास-स्थान है। इनमें भी है। इनमें होते हुए भी इनसे पृथक् है। इनका आधार भी है और इनमें रमा हुआ भी है। इनके निर्माण में सहकारी है, क्योंकि इनमें ओतप्रोत है।

चित्र संख्या ३ का विवरण—इस चित्र में पञ्च भूतों का परस्पर मिलकर संघात हुआ है। प्रथम न० १ आकाश महाभूत वायु महाभूत के अन्दर ओतप्रोत होकर ठहरा है। न० ३ में आकाश और वायु महाभूत मिलकर अग्नि महाभूत में सूक्ष्म होने से प्रवेश कर गये हैं। न० ४ में आकाश वायु अग्नि महाभूत जल महाभूत में विलीन होकर ठहर गये हैं जल महाभूत स्थूल होने से तीनों को अपने गर्भ में धारण करने में समर्थ हुआ है। न० ५ में पृथिवी महाभूत चारों की अपेक्षा स्थूल है अतः इसने इन चारों को अपने गर्भ में धारण कर लिया है। ये पाँचों महाभूत मिलकर स्थूल शरीर के निर्माण और इनके भागों के पदार्थ निर्माण करके भोग और अपवर्ग सम्पादन करते हैं।

अग्रिम निर्माण में यह वायु को अवकाश भी प्रदान करेगा और शब्द भी; क्योंकि आकाश का स्पर्श तन्मात्रा के साथ मिल कर ही वायु का विकास होगा। वायु धर्मों की परिणति पूर्ण होने पर आकाश और वायु दोनों रूप तन्मात्रा के साथ संयुक्त होकर ही तो अग्नि महाभूत का परिणाम होगा। पुनः यह तीनों भूत रस तन्मात्रा के साथ मिलकर जल का और पुन. चारो भूत गन्ध-तन्मात्रा के साथ संयुक्त होकर पृथिवी का परिणाम करेंगे। आकाश का सर्वत्र गति धर्म ही सबके साथ संयोग उत्पन्न करता है। इसीलिए पृथिवी, जल, वायु, अग्नि सबमें ही शब्द गुण विद्यमान है।

उपाधि का भेद होने पर आकाश के भेद मान लिये जाते हैं, अर्थात् उपाधि घट, पट, मठ (मन्दिर) आदि के साथ संयोग होने पर घटाकाश, पटाकाश, मठाकाश आदि की कल्पित भावना बना ली जाती है; पर तत्त्वतः आकाश एक ही है। उसके भेद की कल्पना अरुचिकर है, घट के टूटने पर यदि वहाँ मठ बना दिया जाये, तो क्या वही घटाकाश मठाकाश में परिवर्तित हो गया यह माना जाये। यदि इस परिवर्त्तन के कारण आकाश को परिवर्त्तन धर्म वाला मान ले तो यह अनोखा विवर्त्तमय सा आकाश बन जायेगा और निश्चित रूप से कोई भी कार्य इससे नही लिया जा सकेगा।

आकाश की सर्वत्र-गति की यह अद्‌भुत महिमा है कि इस पृथिवी के किसी भूभाग का मानव अपने आकाश से संयोग कर आकाश मे सैकड़ों मील ऊपर घूमते, आकाश में स्थित टेलस्टार द्वारा वहाँ के आकाश से एक होने के कारण सम्बन्ध सा जोड़ जर्मनी में स्थित मानव के साथ वहाँ भी व्याप्त उसी आकाश द्वारा बात-चीत कर रहा है। आकाश मे व्याप्त अनन्त शब्दो मे से केवल उन्ही शब्दों का आदान-प्रदान होता है जिनके साथ विद्युत् का सम्बन्ध जुड़ा है। जब विद्युत् के बिना भी साक्षात् आकाश का प्रत्यक्ष हो जायेगा तो भूत काल के भी आकाश मे स्थित शब्दो का भी बोध हो जायेगा। इसी आकाश की व्यापकता का लाभ उठा स्पुतनिक में यात्रा करते हुआ हजारों मील पर स्थित मानव पृथिवी के मानव के साथ बात-चीत कर रहा है, अपनी कुशलता भेज रहा है और पृथिवीस्थ मानव के आदेश पा रहा है। सर्वत्रगत आकाश में शब्द व्याप्त हो जाता है और उपकरणों द्वारा गृहीत भी हो जाता है। व्यापक आकाश के संकेतों को सब शत्रु, मित्र सब ही देशों के वैज्ञानिक ग्रहण कर सकते हैं, कर लेते है, पर दूसरे देशों से रहस्य को गुप्त रखने के लिए सब देशों ने अपने सांकेतिक कोड शब्द बनाये हुए है, और इस प्रकार सर्व-व्यापक आकाश की सर्वोपकारिता को भी एकदेशीय सा बना लिया है। आकाश की इस व्यापकता का उपयोग कर बेतार के तार और रेडियो द्वारा मनुष्य अगणित लाभ उठा रहा है।

यह आकाश दृश्यमान न होते हुए भी दर्शन का विषय बनता है, अग्नि के संयोग से। कोई इसको नित्य कहते हैं, कोई इसे अनित्य बताते है। यह कारण रूप से नित्य और कार्य रूप से अनित्य है। इसमें विभुता चारो भूतों की अपेक्षा है अन्य परमात्मा आदि की दृष्टि से नही। यह उनमे व्याप्त नहीं।

यह जड़ आकाश सर्वत्र पहुँचा हुआ है, किस-किस प्रकार अपने गुणों को अभिव्यक्त करता है, ब्रह्म के जिज्ञासु को अभ्यास काल में इसकी अभिव्यक्ति के निमित्त सर्वत्र विराजमान भगवान् की सत्ता का प्रत्यक्ष करना चाहिये।

२ अव्यूह—भगवान् के सान्निध्य से चेतन आकाश के में वन विभु हो जाने पर, सर्वत्र पहुँचने की सामर्थ्य आ जाने पर सबमे निहित सर्व-भाव को चरितार्थ करने के लिये आकाश के सबगतित्व का परिणाम अव्यूह धर्म में हो गया। आकाश ही सर्वपदार्थों को भिन्नभिन्न सत्ता रूप मे दर्शाने लगा। सब पदार्थों का विश्लेषण आकाश से कारण ही हो पाता है। सबको अलग करने की शक्ति आकाश में है। एक महाभूत को दूसरे महाभूत से अलग रखना इसी का काम है। पृथिवी से अलग जल को विशुद्ध रूप मे प्राप्त करते हैं, मैले गदले जल को नितार लेते हैं, या फिल्टर कर लेते हैं। फिल्टर यन्त्र ही बना लिया है, यह सब आकाश के व्यूह धर्म का ही सदुपयोग है। जल मे अग्नि पृथक् मिलती है यह आकाश के अव्यूह धर्म का ही तो फल है। यदि अव्यूह उन्हें अलग न रखता तो शीतल जल, हिम आदि कुछ भी उपलब्ध न हो सकते। सर्वत्र अग्निमय गरम जल ही मिलता और गरम जल के कारण वनस्पति आदि कुछ भी न पनप पाते। गरम जल से सब झुलस जाते और जब अग्नि भी विशुद्ध रूप मे न मिलती तो पाक कर्म सब ठप हो जाता। न फल पकते, न अनाज ही पकते। वैद्यक के रस निर्माण की सारी प्रक्रिया असंभव हो जाती। आकाश के अव्यूह ने अग्नि और जल को पृथक् पृथक् रख सारी सृष्टि के व्यापारो मे व्यावहारिकता उत्पन्न कर दी है। इसी प्रकार अव्यूह के कारण ही अग्नि से वायु, और वायु से आकाश अलग ज्ञान का विषय बन सके हैं और सब अलग-अलग रहकर भोग और अपवर्ग का निमित्त बने है। कार्य कारण मे भेद करने वाला भी यही अव्यूह धर्म है। कार्य कारण का भेदक काल भी होता है। पूर्ववर्त्ती कारण होता है और परवर्त्ती कार्य। पर साक्षात् दृश्यमान् भेदक तो आकाश है।

आकाश के कारण ही पृथिवी, जल, अग्नि, वायु का व्यूह-एकत्र समूह नहीं होने पाता। यदि आकाश इनमे अपने अव्यूह रूप मे व्यक्त न होता तो पृथिवी एक ही होती, यह अगणित लोक लोकान्तर ही न बन पाते। बस सबका सब एक पिण्ड होता। जैसा सृष्टि के आरम्भ मे 'हैममण्डलम्' था, वही रहता, और न ही पञ्च भूतो का विभाग हो पाता, और न ही भूतो के कार्यात्मिक विपरिणाम होते। जल भी एक ही रूप म होता। समुद्र, नदी, कूप, नाले, सर, वापी, प्रस्रव, झील आदि का भेद ही न होता। और तो और जल से जल भी अलग न किया जा सकता, न कोई जल का पान कर सकता, न उससे स्नान ही कर सकता, न जल आदि मे कोई पाक ही हो पाता। बस पानी की एक चद्दर सी होती और वह भी उस हैम महापिण्ड से अलग न की जा सकती। अलग अलग कोई व्यवहार ही न हो पाता। जीव का न भोग निष्पन्न होता न अपवर्ग। आकाश का अव्यूह धर्म भगवान् की चेतना से चेतन सा बना कार्य निरत हुआ है, आकाश की अव्यूह चेतना म ही वास्तविक भगवान् की चेतना का साक्षात्कार योगी को करना है। वास्तविक चेतना कौन सी है और आनुषंगिक कौन सी है, इसी का प्रत्यक्ष योगी को करना है।

३ अवकाश प्रदान—आकाश के अव्यूह धर्म ने सब को अलग अलग कर दिया, और साथ ही इन सबको टिकाने के लिए अपने अन्दर अवकाश प्रदान कर दिया, अव्यूह धर्म ही अवकाश प्रदान मे परिणत हो गया। संसार का कोई ऐसा पदार्थ नहीं जिसको यह आकाश अवकाश न देता हो। अवकाश का अभिप्राय है ठहरने के लिए स्थान।

आकाश के अन्दर सब जड, चेतन समाये हुए है। सबके ठहरने की जगह आकाश मे ही है। चारो समष्टि महाभूत इसमे निवास कर रहे है।

आकाश परिणामी है, अत अपने कारण से स्थूल है। हाँ, चारो भूतो की अपेक्षा अत्यन्त सूक्ष्म है। आकाश के लिए ऐसे स्थान की आवश्यकता नही, जिसम अन्य न आ सके। जहाँ पृथिवी है वहाँ जल नही आ सकता है, जहाँ जल है वहाँ आग नही। जहाँ आग वहाँ हवा नही। पृथिवी मे चारो भूत है, यह भिन्न बात है, पृथिवी की उद्भूत अवस्था मे पांचो भूतो क परमाणु मिश्रित है। पर जब पार्थिव परमाणु परिणाम को प्राप्त हो गये उस अवस्था मे जहाँ वे पार्थिव परमाणु है वहाँ जल, अग्नि आदि के परमाणु नही। जो वस्तुएँ स्थान घेरती हैं, उनमे से एक ही वस्तु उस स्थान मे समायेगी। उसको हटाये बिना दूसरी वस्तु वहाँ नही आ सकती। आकाश स्थान नही घेरता, अत आकाश मे सब वस्तुएँ समा जाती है। आकाश सबको अपने मे स्थान दे देता है। अत अवकाश-प्रदान आकाश का ही गुण है। सबको ठहरने के लिए आकाश ही स्थान देता है, चाहे वे स्थूल भूत हो या उनके विकार। चारो भूत और चारो भूतो के कार्य आकाश मे रहते है। पृथिवी के परमाणु आकाश मे रहते हैं और पार्थिव परमाणुओ के बने यह भूमण्डल तथा अन्य लोक-लोकान्तर भी आकाश मे रहते है। पार्थिव वनस्पति, पर्वत एव पार्थिव शरीर सब ही आकाश मे ठहरे हैं। इसी प्रकार अग्नि के परमाणु और अग्निमय लोक लोकान्तर सूर्य आदि, आग्नेय विकार विद्युत्, दीपक, विद्युत्-प्रदीप, चूल्हे भट्टी आदि की अग्नि एव सूक्ष्म शरीर भी आकाश मे ही ठहरे हैं। इसी प्रकार वायु के परमाणु, वायु के स्तर, वायु के आन्धी, तूफान, पक्षी आदि सब आकाश मे ही ठहरे है। इस प्रकार सब ही चेतन, अचेतन, जड, जीव आकाश मे ही ठहरे हुए है।

आकाश असीम है। हाँ, उपाधि परिछिन्न आकाश को भी मानव ने भूमि की नाई स्वायत्त कर लिया है। उपाधि परिछिन्न आकाश को खरीदा भी जाता है, और बेचा भी जाता है। एक हजार गज भूमि खरीदने पर उसके ऊपर का आकाश भी खरीदा जाता है। भूमि का स्वामी आकाश मे कितने ही तल (मजिलें) या खण्ड बना सकता है। कोई रोक नही। हाँ बडे-बडे नगरो मे नगरपालिकाओ आदि से एक खण्ड के लिये भी और अन्य खण्डो के लिये भी स्वीकृति लेनी पडती है जिससे भवन आदि की सुरक्षा एव पडोसी की सुविधा की भी रक्षा हो। बडे-बडे नगरो मे तो भूमि और आकाश का अलग-अलग विक्रय होता है। भूमि के साथ एक मजिल का आकाश सम्मिलित होता है। ऊपर की मजिलो का भूमि की नाप का आकाश बिकता है। पहली मजिल का मालिक कोई दूसरा, और दूसरी मजिल का मालिक कोई अन्य। जितनी मजिलें उतने ही मालिक। इस प्रकार अमरीका आदि देशो मे डेढ-डेढ सौ मजिलो मे भी अधिक के मकान हैं, और मजिलो के मालिक भी भिन्न-भिन्न है। यह मजिलो का क्रय-विक्रय आकाश के मूल्य के साथ होता है। यह सब आकाश के अवकाश प्रदान का ही मानव द्वारा स्वायत्तीकरण है।

आजकल तो आकाश का मूल्य बहुत बढ गया है, क्योंकि ऊपर की मजिल बढिया होती हैं। भौम जीव आदि का भय वहाँ नही होता। आजकल की सब ही देशो की सरकारें अपने अपने देश के आकाश पर अपना अपना अधिकार मानती है। बिना स्वीकृति के अन्य देश का विमान उनके आकाश मे आ जाये तो प्रतिरोध किया जाना है,

और यदि प्रतिरोध मान्य न हुआ तो फिर गगनभेदी तोपों का मुख ऊपर कर दिया जाता है और अनधिकृत वायुयानों को मार गिराया जाता है। यह सब आकाश के अवकाश-प्रदान की लीला है। पर जहाँ आकाश में मानव की पहुँच या रोकने की सामर्थ्य नहीं हो पाई है वहाँ के आकाश पर विवशता के कारण सब का अधिकार है। ऐसे बहुमूल्य आकाश की कोई हद नहीं, सीमा नहीं।

आकाश को स्वयं स्थान की अपेक्षा नहीं, पर वह सबको ठहरने के लिये स्थान देता है, उस आकाश पर आधिपत्य जमाये मालिक को उसे तनिक परवाह नहीं। वह सबको अवकाश प्रदान करता है। आकाश की यह सब विचित्र महिमा उस अप्रतिम सर्वव्यापक चेतन परब्रह्म की अनन्त महिमा का दर्शन कर रही है। प्रभु के सान्निध्य से यह अव्यूह किसी प्रकार अवकाश प्रदान में परिणत हो रहा है, इसी परिणाम का योगी को प्रत्यक्ष करना है। इन परिणामों में ही निहित उस प्रभु की अलौकिक सत्ता का साक्षात्कार होगा।

आकाश उत्पन्न हुआ है, अतः स्थूल है। परन्तु तो भी चारों भूतों की अपेक्षा तो अत्यन्त सूक्ष्म है। अनेक ग्रन्थों में इसकी व्यापकता से ब्रह्म की व्यापकता की तुलना की गयी है। जो आचार्य पञ्च भूतात्मक ही सृष्टि मानते हैं, जैसे न्याय-वैशेषिककार आदि, ये सब आकाश को नित्य और विभु मानते हैं। वैशेषिक दर्शन में एक सूत्र है—

'विभववान् महानाकाशस्तथा चात्मा।

वैशेषिक अ० ७। आ० १। सू० २२।

—महान् आकाश विभु है, ऐसे ही आत्मा भी।'

यहाँ आकाश को विभु माना है, और आत्मा को भी। यहाँ इस स्थल पर आत्मा के विभुत्व विषय में ऊहापोह अप्रासंगिक होगा। अन्यत्र प्रकरणानुसार लिखना ही है। इतना लिख देना आवश्यक है कि हमारी मान्यता है कि जीव अणु है और नाना है। इस सूत्र में यदि आत्मा शब्द से ब्रह्म का ग्रहण किया जाये तो हमें कोई आपत्ति नहीं है। यहाँ दर्शन में प्रकरण आकाश का चल रहा है अतः आकाश में जो विभुता बतायी गयी है वह चारों महाभूतों की अपेक्षा से ही मानी गयी है। अन्यथा उत्पन्न होने वाला पदार्थ विभु नहीं हो सकता। चारों भूतों की अपेक्षा आकाश सूक्ष्म है। इसलिये थोड़े से अंश में इसकी तुलना ब्रह्म के साथ की जा सकती है। अतः आकाश की सूक्ष्मता में ब्रह्म का अन्वेषण अन्यभूतों की अपेक्षा सुगम है। आकाश एक ही पदार्थ है, किसी अन्य की इसमें मिलावट नहीं। पृथिवी में तो अन्य चारों भूत भी मिले हैं, जल में अग्नि, वायु, आकाश मिले हैं। अग्नि में वायु और आकाश, वायु में भी आकाश मिला है। इन सब में मिलावट है, अन्य भूतों का मेल है। इनमें सूक्ष्म ब्रह्म की खोज या ब्रह्म का दर्शन कुछ कठिन है। आकाश तो विशुद्ध रूप में अकेला ही है और वह भी सूक्ष्म, अतः सूक्ष्माति-सूक्ष्म ब्रह्म का दर्शन यहाँ सरल एवं सुगम है।

इस आकाश की सूक्ष्मता में ब्रह्म की चेतन सूक्ष्मता का अनुभव करना चाहिये। ब्रह्म की सूक्ष्मता आकाश की सूक्ष्मता से भिन्न प्रकार की है विजातीय है। बहुत से सजातीयों में किसी एक विजातीय का ढूँढना कुछ प्रयास साध्य होता है, यहाँ तो आकाश के मुकाबले में एक विजातीय ब्रह्म ही है। यदि आकाश की सूक्ष्मता में समाधि द्वारा

वास्तव में आकाश के ये ऐसे अव्यक्त में धर्म हैं कि साधारण बुद्धि इन्हें समझ नहीं पाती। आकाश भी सूक्ष्म है और धर्म भी सूक्ष्म हैं। इनका भेदक विज्ञान कठिन ही है। यदि ये पृथक् होते तो भेद भी हो जाता पर वास्तव में ये आकाश के परिणत होते हुए तीन धर्म हैं। इनका ज्ञान उस समय ही होता है जब इन अवस्थाओं में या परिणामों में चारों भूतों के कार्य प्रारम्भ हो जाय। बिना अन्य भूतों के सर्वत्र गति कैसे जान, जब सर्व ही नहीं तो सर्वत्र कहाँ से आवे ? अवकाश प्रदान किस को किया जाये ? दानी हो और लेने वाला न हो तो दानी का ज्ञान कैसे हो ? जब कोई मिला ही नहीं तो अलग किसे कर ? जब तक आकाश में भूतों का व्यवहार नहीं तब तक इन तीनों परिणामों का ज्ञान नहीं हो सकता।

जब ब्रह्म की चेतन सत्ता में चारों भूतों का कार्य रूपेण परिणाम आरम्भ होता है उससे पूर्व आकाश एक विभु गुण वाला ही प्रतीत होता है। भूतों का व्यवहार प्रारम्भ होने पर सर्वतो गति धर्म की और अवकाश-प्रदान करने की शक्ति का प्रादुर्भाव देखने में आता है। इसके पश्चात् पदार्थों को अव्यूह की जरूरत हुई तब अव्यूह रूप गुण प्रकट हुआ, और व्यवहार में आया। इस एक ही पदार्थ आकाश में तीन प्रकार की अवस्थाओं का परिवर्तन योगी के देखने में आता है। ये तीनों गुण वैसे तो आकाश में पहिले से ही विद्यमान थे। बिना व्यवहार के इनकी प्रतीति कैसे होती ? अतः व्यवहारकाल में प्रकट होते हुए समाधि द्वारा दर्शन का विषय बने, और साथ में ही इनके प्रेरक परिणाम करने वाले चेतन ब्रह्म की भी प्रतीति हुई।

शब्द-तन्मात्रा में जिन-जिन धर्मों के क्रमशः परिणाम का योगी साक्षात् करता है उसी प्रकार परिणाम में उसके निमित्त कारण ब्रह्म का भी साक्षात् करे और अनुभव करे कि ब्रह्म निमित्त कारण बनकर आकाश धर्मों के परिणाम को प्रेरणा दे रहा है। या समझिये कि परिणाम के लिये क्रिया करा रहा है। जब बुद्धि आकाश के धर्मों के परिणाम की अन्तिम सूक्ष्म अवस्था तक पहुँचेगी तब ही वहाँ ब्रह्म की चेतन सत्ता का भी बोध होगा जो परिणाम का निमित्त है।

आकाश रूपी धर्मी की ही ये वास्तव में तीन अवस्थायें हैं। धर्मी इनसे अलग देखने में नहीं आया है। ये तीनों इसके रूप हैं। अतः इनका परस्पर अभेद है। भ्रान्ति से भेद प्रतीत होने लगता है। यही इसकी स्वरूप अवस्था है। इस धर्म धर्मी के अभेद में ही ब्रह्म का साक्षात्कार करना चाहिये।

समष्टि आकाश महाभूत मण्डल

तृतीय रूप में ब्रह्म-विज्ञान

(आकाश का तृतीय रूप)

३ आकाश के सूक्ष्म रूप में—

आकाश महाभूत का जिस सूक्ष्म अवस्था से इस स्थूल अवस्था में परिणाम हुआ है। आकाश की पूर्ववर्तिनी सूक्ष्म अवस्था शब्द-तन्मात्रा ही आकाश का सूक्ष्म रूप है

प्रवेश कर तो सीधा सम्मुख ब्रह्म ही बनता है। रुकावट करने वाला बीच मे अन्य कोई पदार्थ नही है। जैसा शून्य सा आकाश है वैसा ही शून्य सा ब्रह्म भी है। परन्तु अन्तर केवल जड और चेतन का ही है। सूक्ष्म मे सूक्ष्म की व्यापकता का शीघ्र ही अनुभव हो जाता है। भौतिक सृष्टि मे इतना सूक्ष्म और शून्य अन्य पदार्थ कोई नही है जैसा कि आकाश है। यहाँ अन्य कोई भूत बाधक भी नही है। इस आकाश का साक्षात्कार होते ही झट ब्रह्म मे ही प्रवेश हो जाता है। व्याप्य व्यापक-भाव का साक्षात् अनुभव होने लगता है। भौतिक जगत् मे इस निराधार आकाश मे निराधार ब्रह्म का प्रत्यक्ष करना चाहिये। आकाश मे जडात्मक शून्यता सी है और ब्रह्म मे चेतनात्मक शून्यता सी है। अत इस भेद के आधार पर शून्य म शून्य का अनुभव करना चाहिये। एक म जडात्मक धम जान पडेगा और दूसरे मे चेतना। व्यापकता मे भी भेद प्रतीत होगा, एक की व्यापकता अखण्ड और दूसरे की खण्ड खण्ड। फिर भी भौतिक सृष्टि मे आकाश ही ब्रह्म विज्ञान के लिये सर्वश्रेष्ठ सिद्ध हुआ है।

समष्टि आकाश महाभूत मण्डल
द्वितीय रूप मे ब्रह्म-विज्ञान
(आकाश महाभूत का द्वितीय रूप)

२ आकाश के स्वरूप मे

आकाश के स्थूल रूप प्रकरण मे जिन तीन परिणामो का निरूपण कर आये है, वास्तव मे ये आकाश से अलग कोई पदार्थ नही। ये आकाश मे सदा रहते है। आकाश के परिणामो की ये क्रमिक अवस्थायें हैं। आकाश का ही भिन्न २ अलग रूपो मे परिणाम है। आकाश धर्मी है और ये सब धम हैं। धर्म धर्मी का अभेद है। धर्मी को छोड कर धर्म की भिन्न कोई सत्ता ही नही। फिर भेद कैसा।

ये आकाश के स्व स्वसामान्य धर्म है। आकाश किसी भी रूप मे रहे, ये धर्म भी उस अवस्था मे भी वहाँ रहेगे। ये आकाश मे भी मिलते है और आकाश के परिणामा मे भी। आकाश में सर्वत्र गति है। आकाश के कार्य स्थूल शब्द मे भी सवत्र गति है। एक स्थान पर अथवा स्थान विशिष्ट आकाश मे उच्चारण किया शब्द सर्वत्र पहुँच जाता है। अनेक स्थानो के शब्द एक साथ आकाश मे आते है, एक ही काल मे विभिन्न देशो के रेडियो अपने अपने प्रोग्राम चालू करते है, सब एक साथ आते है, पर कोई किसी म बाधक नही होता। सब अलग है और सबको अवकाश प्रदान करते है। एक दूसरे मे रुकावट नही डालते। शरीर मे आकाश के ही स्थानकृत भेद से हृदय, फुफ्फुस, नस, नाडी धमनियो के शब्द मे भेद है। डाक्टर स्टैथोस्कोप लगा कर रोग के निदान हेतु सबको अलग अलग पहचानता और निदान करता है। ऐसे ही कार्यात्मक शब्द को भिन्न भिन्न प्रकार से उत्पन्न करने वाले वेणु वीणा मुरज शख, घडियाल आदि के शब्द सर्वत्र गति करते हैं। किसी को रोकते नही और है सब अलग।

सर्वत्र गति, अव्यूह अवकाश प्रदान तीनो धर्म आकाश मे स्वरूप सम्बन्ध से रहते है। आकाश से कभी अलग नही होते। धर्म और धर्मी दोनो का एक होना आकाश का स्वस्वरूप है। सर्वत्र गति आदि धर्मो का नाम ही आकाश है। आकाश हो के ये तीन धम है। गुण गुणी का एक होना ही स्वरूप है।

वास्तव मे आकाश के ये ऐसे अव्यक्त से धर्म है कि साधारण बुद्धि इन्हे समझ नही पाती। आकाश भी सूक्ष्म है और धर्म भी सूक्ष्म हैं। इनका भेदक विज्ञान कठिन ही है। यदि ये पृथक होते तो भेद भी हो जाता पर वास्तव म ये आकाश के परिणत होते हुए तीन धर्म है। इनका ज्ञान उस समय ही होता है जब इन अवस्थाओं म या परिणामो म चारो भूतो के कार्य प्रारम्भ हो जाय। बिना अन्य भूतो के सर्वत्र गति कैसे जाने, जब सब ही नही तो सर्वत्र कहाँ से आवे ? अवकाश प्रदान किस को किया जाये ? दानी हो और लेने वाला न हो तो दानी का ज्ञान कैसे हो ? जब कोई मिला ही नही तो अलग किसे कर ? जब तक आकाश मे भूतो का व्यवहार नही तब तक इन तीनो परिणामो का ज्ञान नही हो सकता।

जब ब्रह्म की चेतन सत्ता से चारो भूतो का कार्य रूपेण परिणाम आरम्भ होता है उससे पूर्व आकाश एक विभु गुण वाला ही प्रतीत होता है। भूतो का व्यवहार प्रारम्भ होने पर सर्वतो गति धर्म की और अवकाश प्रदान करने की शक्ति का प्रादुर्भाव देखने म आता है। इसके पश्चात पदार्थो को अव्यूह की जरूरत हुई तब अव्यूह रूप गुण प्रकट हुआ, और व्यवहार मे आया। इस एक ही पदार्थ आकाश म तीन प्रकार की अवस्थाओं का परिवर्तन योगी के देखने म आता है। ये तीनो गुण वैसे तो आकाश म पहिले म ही विद्यमान थे। बिना व्यवहार के इनकी प्रतीति कैसे होती ? अत व्यवहारकाल म प्रकट होते हुए समाधि द्वारा दर्शन का विषय बने और साथ मे ही इनके प्रेरक परिणाम करने वाले चेतन ब्रह्म की भी प्रतीति हुई।

शब्द तन्मात्रा म जिन जिन धर्मो के क्रमश परिणाम का योगी साक्षात् करता है उसी प्रकार परिणाम म उसके निमित्त कारण ब्रह्म का भी साक्षात् करे और अनुभव करे कि ब्रह्म निमित्त कारण बनकर आकाश धर्मो के परिणाम को प्रेरणा द रहा है। या समझिये कि परिणाम के लिये क्रिया करा रहा है। जब बुद्धि आकाश के धर्मो के परिणाम की अन्तिम सूक्ष्म अवस्था तक पहुँचगी तब ही वहा ब्रह्म की चेतन सत्ता का भी बोध होगा जो परिणाम का निमित्त है।

आकाश रूपी धर्मी की ही य वास्तव म तीन अवस्थायें हैं। धर्मी इनसे अलग देखने म नही आया है। ये तीनो इसके रूप हैं। अत इनका परस्पर अभेद है। भ्रान्ति से भेद प्रतीत होने लगता है। यही इसकी स्वरूप अवस्था है। इस धर्म धर्मी के अभेद म ही ब्रह्म का साक्षात्कार करना चाहिये।

समष्टि आकाश महाभूत मण्डल

तृतीय रूप में ब्रह्म विज्ञान

(आकाश का तृतीय रूप)

३ आकाश के सूक्ष्म रूप में—

आकाश महाभूत का जिस सूक्ष्म अवस्था मे इस स्थूल अवस्था मे परिणाम हुआ है। आकाश की पूर्ववर्त्तिनी सूक्ष्म अवस्था शब्द-तन्मात्रा ही आकाश का सूक्ष्म रूप है

(चित्र स० ४ मे सामने देखे)। आकाश स्थूल-भूत सजातीय प्रमाणुओ का सघात ही है। कारण भूत शब्द-तन्मात्रा अपने कार्य विशेष आकाश मे अनुस्यूत हुई है। यह कारण-कार्य का आयुत सिद्ध समुदाय ही महाभूत आकाश है। सामान्य आकाश और उपाधि-विशिष्ट अथवा स्तर विशिष्ट विशेष आकाश के भेद से अनुगत आकाश समुदाय अयुत सिद्ध द्रव्य ही है। इस अवस्था मे शब्द-तन्मात्रा का आकाश महाभूत के रूप मे परिणाम हुआ है और वही शब्द-तन्मात्रा धर्म-लक्षण-अवस्था रूपो मे परिणत होकर आकाश महाभूत के स्थूल रूप को प्राप्त हो गयी है। शब्द-तन्मात्रा के सूक्ष्म परमाणु ही सघात को प्राप्त होकर एक ऐसा द्रव्य बना जो सब पदार्थो को अवकाश देने मे समर्थ हुआ। यदि इसमे और कोई विजातीय परमाणु होते जैसे पृथिवी आदि मे सम्मिलित है तब इसमे अवकाश प्रदान करने की इस प्रकार की योग्यता न होती। इसी कारण यह सब भूतो से सूक्ष्म है और सबको अवकाश-प्रदान कर सकता है।

(शका) आकाश के सात्विक, राजस, तामस भेद किये गये है,। भला विभु पदार्थ मे ये भेद कैसे हो सकते हैं ?

(समाधान) आकाश को जो विभु माना है वह चारो भूतो की अपेक्षा से ही माना है, क्योकि आकाश चारो को व्याप्त करके रहता है। आकाश एक कार्यात्मक पदार्थ है। यह शब्द-तन्मात्रा का कार्य है। इसी कारण इसके सात्विक, राजस, तामस भेद किये गये हैं। सात्विक भाग शरीरो मे है, राजस भाग अन्तरिक्ष मे है और तामस भाग पृथिवी महाभूत मे है।

आकाश कार्य की सूक्ष्मता उसके अपने कारण शब्द-तन्मात्रा मे परिसमाप्त होती है। अत इसकी सूक्ष्मता मे ब्रह्म का आरोप कर उपासना और ज्ञान प्राप्त करे। उपनिषद् भी इसी का अनुमोदन करती है। यथा—

'य आकाशे तिष्ठन्नाकाशादन्तरो,
यमाकाशो न वेद, यस्याकाशः शरीर,
य आकाशमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृत.।

बृहदारण्यक, अ० ३। ब्रा० ७। म० १२।

—जो ब्रह्म आकाश मे ठहरा हुआ है और इसके अन्दर व्याप्त है, इसको आकाश नही जानता है। यह आकाश ही इस ब्रह्म का शरीर है।'

यहाँ आकाश मे ब्रह्म के शरीर की कल्पना की गयी है, उपासना और विज्ञान के लिये। केवल आलकारिक वर्णन नही है।

'यह ब्रह्म ही आकाश के अन्दर ठहर कर इसका नियमन करता है, अथवा इसे अपने अन्दर धारण करता है यही तेरा अन्तर्यामी भगवान् हैं।'

चित्र सख्या ४ म प्रथम आकाश मण्डल के प्रमाणु अर्थात् शब्द-तन्मात्रा के प्रमाणु स्पर्श-तन्मात्रा के प्रमाणु के साथ एक एक प्रमाणु सयोग को प्राप्त हो रहा है ये दोनो मिलकर तीसरे मण्डल मे जा मिले है। फिर ३ प्रमाणु इकट्ठे होकर जल प्रमाणु के साथ जा मिले हैं। इसके पश्चात् ऊपर के चारो प्रमाणु पार्थिव प्रमाणु के साथ मिलकर पञ्चाणुक सज्ञा हो गई है। य सब द्व्यणुकादि सघात को प्राप्त होकर पञ्च स्थूल भूतो की रचना करते हैं अर्थात् ये पञ्चाणुक आदि छोटे छोटे सूक्ष्म टुकडे या खण्ड मिलकर आकाश आदि स्थूल भूतो का निर्माण करते हैं।
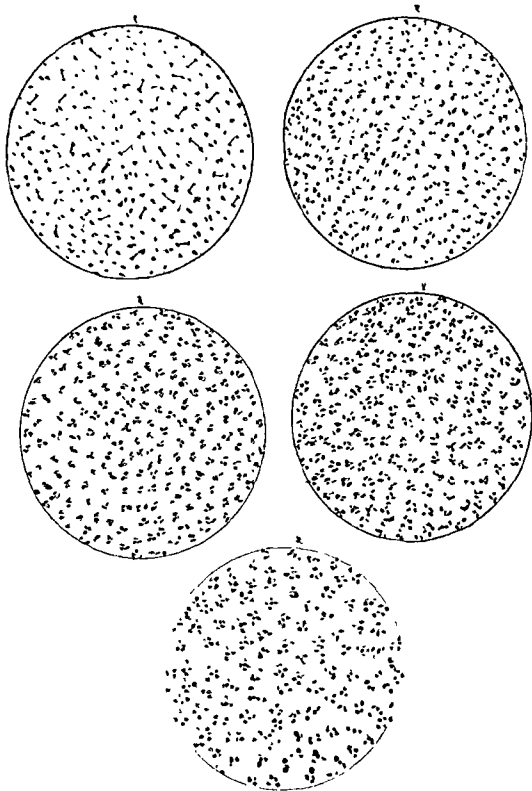
चि० सं० ४

पञ्च तन्मात्रा संघान को प्राप्त होकर स्थूल भूतों का निर्माण करने जारही हैं।

विज्ञान और उपासना का विषय इसी आकाश के कारण बना है।
'यह ब्रह्म ही अमृत रूप है।'
अर्थात् शुद्ध, बुद्ध, नित्य मुक्त-स्वभाव है।
इस आकाश मे ही इस ब्रह्म का अन्य भूतों की अपेक्षा सर्वश्रेष्ठ साक्षात्कार हो सकता है।

इस आकाश महाभूत की तीसरी सूक्ष्म अवस्था मे इससे भी अत्यन्त सूक्ष्म ब्रह्म का विज्ञान प्राप्त करना चाहिये।

यहाँ आकाश भी केवल आकाशीय परमाणुओं या शब्द-तन्मात्रा से ही बना है। अत. इसमे ब्रह्म के व्याप्य-व्यापक भाव सम्बन्ध को देखने या अनुभव करने मे विशेष कठिनता नही होती है। आकाश की व्यापकता की तुलना ब्रह्म के साथ की गयी है। अतः इस तुलना से भी ब्रह्म की अनुभूति शीघ्र हो सकती है। आकाश के परमाणुओं का मिल कर एक सूक्ष्मतम स्तर बना हुआ है। आकार और रूप मे यहाँ ब्रह्म का अत्यन्त साम्य है और सामीप्य भी। अतः इस अवस्था मे ब्रह्म शीघ्र ही अनुभूति का विषय बन जाता है। दोनो व्याप्य-व्यापक भाव से सम्बद्ध है। बीच मे कोई पदार्थ रुकावट या अड़चन का कारण भी नही है। इसलिये ब्रह्म शीघ्र सूक्ष्म बुद्धि का विषय बन जाता है। जैसे कोई रङ्ग, रूप, और आकार न होने पर भी शोक या चिन्ता चित्त मे अनुभूति का विषय बन जाती है, इसी प्रकार ब्रह्म भी अनुभव या विज्ञान का विषय बन जाता है। उपनिषद् मे कहा भी है :—

'मनसैवेदमाप्तव्यम्।'

—'बुद्धि के द्वारा 'इदम् ब्रह्म' यह ब्रह्म प्राप्त करना चाहिये, जानना चाहिये।'

यहाँ इस उपनिषद् वचन मे मन से बुद्ध का ही अर्थ गृहीत होता है। इस श्रुति मे विज्ञान या बुद्धि का विषय ब्रह्म को माना गया है।

आकाश में कैसे ब्रह्म-साक्षात्कार करें

योगिन्! बुद्धि के व्यापार को रोक, शान्त और समाहित हो अपनी दिव्य दृष्टि को ध्यान द्वारा आकाश-मण्डल मे फेंकिये। आकाश की सूक्ष्मता मे प्रवेश कीजिये। अब एकाकार सूक्ष्म स्तर मे प्रवेश कीजिये। आकाश के इस सूक्ष्म स्तर मे ब्रह्म की चेतना का अनुभव कीजिये। इस सूक्ष्म अवस्था मे एक बहुत ही सूक्ष्म से कम्पन का अनुभव होगा। यह आकाश के अपने ही स्वरूप मे अडोल सा, स्थिर सा कम्पन है। इन सूक्ष्म कम्पनो की सूक्ष्म सी लहरो मे ध्यान की गहरी और सूक्ष्म दृष्टि डालिये, देखिये! उस अडोल स्थिर कम्पन को ब्रह्म चेतनत्वेन सूक्ष्म गति प्रदान कर रहा है। कम्पना करा रहा है! मानो यह ब्राह्मी चेतना इसी स्तर मे मिलकर इसी में सूक्ष्म कम्पन करा रही है। जहाँ चेतना का सम्बन्ध है वहाँ क्रिया का अभाव नहीं हो सकता है। इस अवस्था मे सूक्ष्म क्रिया धर्म, लक्षण, अवस्था परिणाम के भेद से प्रत्येक पदार्थ मे बनी ही रहती है। क्रिया का विशेष-भेद मन्द या तीव्र रूप से हो जाता है। यह पदार्थ के भेद से होता है। वैसे तो ब्रह्म से जो गति प्राप्त होती है वह तो एक समान ही होती है। लोक मे सूर्य की रोशनी तो सब को एक समान ही मिलती है परन्तु नेत्र की खराबी या ठीक होने से मन्द और तीव्र प्रतीत होती है। अथवा इस प्रकार समझिये। सूर्य की धूप तो सर्वत्र एक

सी ही उष्णता वाली आती है, पर वह सूर्य-कान्त-मणि (आतशी शीशे) पर पड़ने से पार होकर जब केन्द्रित होती है तो दाह का हेतु बन जाती है, आग उत्पन्न कर देती है, पर, वही धूप सामान्य शीशे पर दाह का हेतु नही होती। केवल प्रकाश देती है। साधारणतया सब शीशो को पार कर निकल जाती है। परन्तु वही धूप लोहे, ताम्बे, लकड़ी आदि को पार नही करती। इसी प्रकार ब्रह्म की चेतना से सामान्य गति सब ही पदार्थो मे होती है, परन्तु पदार्थ के भेद से गति मे भेद प्रतीत होता है।

आकाश का कोई ऐसा प्रदेश नही है कि जहाँ द्वयणुक, त्रसरेणु, चतस्रेणु या पञ्चरेणु गति न कर रहे हो। उनका गमनागमन न हो रहा हो। इनके मध्य से दिव्य दृष्टि को पार कर सूक्ष्म स्तर मे पहुँचिये जहाँ इनका अभाव है। केवल आकाश है। इस स्तर मे ब्रह्म के व्यापकत्व का अनुभव करे। यही आपको ब्रह्म का साक्षात् होगा।

(शका) लोक मे उष्ण जल की तो स्पर्श से अनुभूति हो जाती है। क्या इसी प्रकार किसी इन्द्रिय के द्वारा उस ब्रह्म की अनुभूति होगी ?

(समाधान) अन्त करण मे चिन्ता की अनुभूति जिसके द्वारा होती है उसी के द्वारा विज्ञान का विषय बन कर उसकी अनुभूति हो जायेगी।

प्रश्न—चिन्ता तो अन्त करण चित्त का एक धर्म है। क्या वहाँ ईश्वर भी किसी का धर्म है ?

उत्तर—जैसे चिन्ता अन्त करण का धर्म है वैसे ज्ञान भी तो इसी का धर्म है। ज्ञान द्वारा अनुभूति होगी।

प्रश्न—चिन्ता तो अन्दर है, इसलिये प्रतीत हो जाती है। ब्रह्म की प्रतीति तो आप बाहर करा रहे है।

उत्तर—चिन्ता से भी समीपतम ब्रह्म अन्त करण मे व्याप्त है। आप अन्त.करण मे ही उसकी प्रतीति कर सकते हैं।

प्रश्न—फिर उस आकाश के स्तर मे कैसे विज्ञान होगा ?

उत्तर—जैसे आपको चित्त के स्तर मे जीवात्मा का विज्ञान हुआ है, इसी प्रकार आकाश के स्तर मे भी ब्रह्म का विज्ञान हो जायेगा।

प्रश्न—यहाँ तो जीवात्मा एकदेशी है। ज्ञान का विषय बन गया, वहाँ ब्रह्म और आकाश सर्वदेशी है, कैसे विज्ञान का विषय बनावे ?

उत्तर—आप आकाश के और ब्रह्म के एक देश मे सयम करें, उतने ही देश मे दोनो का प्रत्यक्ष विज्ञान हो जायेगा। जिस-जिस देश मे सयम करते जायेगे उस-उस देश के आकाश और ब्रह्म का ज्ञान होता जायेगा।

प्रश्न—फिर सम्पूर्ण आकाश और ब्रह्म का विज्ञान तो न हुआ ?

उत्तर—तो क्या आप विज्ञान के द्वारा ब्रह्म का अन्त करना चाहते है ? फिर तो ब्रह्म भी जीव के समान एकदेशी हो जायेगा। सर्वदेशी और अनन्त कैसे रहेगा ? क्रमपूर्वक जिस-जिस देश का ज्ञान करते जाओगे वहाँ-वहाँ का ज्ञान होता जायेगा। क्योंकि जीवात्मा एकदेशी है, परिच्छिन्न है। एक काल मे एक देश के साथ ही सम्बन्ध हो सकता है। जिस देश के साथ सम्बन्ध होगा उसी का ज्ञान होगा, सर्व देश का नही। यह ब्रह्म की

सर्वव्यापकता की कमी नही है, जीव आत्मा के परिच्छिन्न होने का प्रमाण है। ब्रह्म की सर्वव्यापकता के बोध की भावना जीव की अलपज्ञता की सूचक है। अनन्त अनन्त ही रहेगा। कभी परिच्छिन्न नही होगा।

समष्टि आकाश महाभूत मण्डल
चतुर्थ रूप मे ब्रह्म विज्ञान
(आकाश का चतुर्थ रूप)

४. आकाश के अन्वय रूप मे—

आकाश का कारण प्रकृति के साथ परम्परागत सम्बन्ध आकाश का अन्वय रूप है। आकाश का कारण शब्द-तन्मात्रा, शब्द तन्मात्रा का कारण तम अहकार, तम अहकार का समष्टि महत् तम, समष्टि महत्तम का कारण प्रकृति है। प्रकृति परिणामिनि है। यही परिणाम धर्म परम्परा से शब्द-तन्मात्रा मे अनुपतित हुआ है। शब्द-तन्मात्रा परिणत हो आकाश रूप मे अनुगत हुई। यही आकाश का अन्वय रूप है।

ईश्वर की चेतन सत्ता के निमित्त से साम्यावस्था वाली प्रकृति मे त्रिगुणात्मक परिणाम होता है। ये तीनो प्रकाश क्रिया-स्थिति, रूप और धर्म परिणत होते हुए सब पदार्थो मे अन्त तक आते है। ये ही धर्म परिणाम भाव को प्राप्त होते हुए आकाश महाभूत मे भी अनुपतित हुए है। इस प्रकार मूल प्रकृति अपने धर्मो सहित महाभूत आकाश मे अनुपतित हुई है। मध्यवर्ती परिणामो को भी अभिव्यक्त करती आयी है। यह मूल प्रकृति का अपने धर्मो सहित अनुपतन ही आकाश का अन्वय रूप है।

प्रकृति की सत्ता है तो आकाश की सत्ता है। आकाश मे अपेक्षाकृत सत्त्व गुण अधिक है। 'आ=समन्तात्, काशते=प्रकाशते इति आकाश।' जो सर्वत्र उपलब्ध हो वह आकाश है। सर्वत्र गति और अवकाश प्रदान इसीलिये इसमे अभिव्यक्त हुए हैं।

योगिन्! इन परिणामो की परम्परा को ध्यान की दिव्य दृष्टि से जाँचो। अन्तत यह परिणाम ब्रह्म की सत्ता से ही गतिशील हो रहे है। आकाश मे सर्वत्र ब्रह्म की व्यापकता स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हो रही है। देखो और अनुभव करो।

समष्टि आकाश महाभूत मण्डल
पञ्चम रूप मे ब्रह्म विज्ञान
(आकाश का पञ्चम रूप)

५. आकाश के अर्थवत्ता-रूप मे—

पाँचो भूतो की उत्पत्ति जीवो के भोग और अपवर्ग के निमित्त होती है। यह इन पाँचो मे अर्थवत्ता रूप सर्वश्रेष्ठ गुण है। ये पाँचो स्थूल महाभूत कारण और कार्य रूप से मनुष्य के विज्ञान और मोक्ष का हेतु बने है। भोग रूप से तो सब प्राणियो के लिए समान रूप से एक से हैं। मनुष्य के लिये मुख्य रूप से मोक्ष का साधन बने और अज्ञान से बन्धन का भी हेतु यही है। यही इन पाँचो की अर्थवत्ता है, उपयोगिता है।

आकाश की अर्थवत्ता सर्वप्रधान है। इसने चारो भूतो और जीवो को अपने अन्दर अवकाश प्रदान किया है। इसी हेतु सब जड़ो और चेतनो का इसमे गमनागमन हुआ है।

व्यष्टि से समष्टि का, और समष्टि से व्यष्टि का भेद भी इसी के द्वारा ज्ञात होता है। अन्यथा व्यष्टि समष्टि का बोध ही न हो पाता। यही इसकी अर्थवत्ता है।

सब लोक लोकान्तरो का इसमे गमनागमन होता है। सब प्राणियो का व्यवहार भी इसी मे होता है। सब शरीरो को सहकारी कारण के रूप मे यह अवकाश प्रदान करता है। शब्द का एक देश से दूसरे देश मे गमन इसी के आधार से होता है। मेघो का गमनागमन और वर्षा इसी मे होती है। चारो भूतो के सब कार्य और परिणाम इसी मे होते हैं। इस प्रकार बहुविध इसकी अर्थवत्ता है।

इसमे सर्वयोग्यता और सर्वार्थता है। सूक्ष्म रूप से चल होते हुए भी अचल होकर ठहरा हुआ है। सब जड चेतन का स्थिति स्थापक रूप से आधार बना हुआ है। एक लोक से दूसरे लोक मे इसी के आधार से गमनागमन होता है। चारो भूतो से अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण उनके अन्दर और बाहर ठहरा हुआ है। आकारवान् होते हुए भी निराकार सा प्रतीत होता है। उत्पत्ति धर्मवाला आकारवान् होता है। यह किसी भी जड चेतन के लिए बाधक नही है, परन्तु सब इसके लिये बाधक से बने हैं। इसके उपकारक जितने भी गुणो का वर्णन किया जाये थोडा है।

निराकार ईश्वर की उपासना और ज्ञान

शका—ब्रह्म को उपासना या ज्ञान का विषय कैसे बनावें? वह तो निराकार है!

समाधान—ब्रह्म सर्वव्यापक है। जिस रूप मे व्यापक है उसको ही निराकार का प्रतिपादक मान लो। आखिर उसकी व्यापकता का भी तो कोई स्वरूप मानना होगा। कुछ तो उसको कहा ही जायेगा। इस व्यापकता रूप आकार को उपासना और ज्ञान का विषय बना लो। उसकी व्यापकता का आकाश मे आरोप कर लो। निराकार की उपासना करने वालो के लिये तो आकाश द्वारा उसकी उपासना करना और विज्ञान प्राप्त करना बहुत श्रेष्ठ साधन है। आकाश भी तो बिना आकार का है। शून्य रूप ही माना जाता है। पर पदार्थ से तो इनकार नहीं। निराकार आकाश में निराकार ब्रह्म व्याप्त है, क्योंकि ब्रह्म की सर्वव्यापकता तभी होगी। उस आकाश मे निराकार की जो व्याप्ति है उस व्याप्ति को उपासना और ज्ञान का विषय बनाओ। व्याप्ति-आकाश की अपेक्षा सूक्ष्म है। अत आकाश स्थूल है। क्योंकि स्थूल को सूक्ष्म ही व्याप्त कर सकता है। आप आकाश मे उस ब्रह्म का आरोप करके उसको अपनी उपासना और विज्ञान का विषय बनावे। इस अध्यारोप से ही उस निराकार का विज्ञान हो सकेगा। तब ही इनके व्याप्य व्यापक भाव सम्बन्ध को हृदयगम कर सकोगे। एक ही ईश्वर के मानने वालो को इस आकाश मे ही उस भगवान का आरोप करके अपनी उपासना, भक्ति और विज्ञान का विषय बनाना चाहिए। यही सर्वश्रेष्ठ भगवान् का मन्दिर है, निवासस्थान है। इसमे अन्वेषण करने से निर्दोष निर्विकार ब्रह्म की प्राप्ति होगी।

हमने इन स्थूल महाभूतो को विज्ञान का विषय बनाया है और उन्हीं को उपासना का माध्यम। इस प्रकार स्थूल से सूक्ष्म की ओर गमन करने मे समर्थ हुए हैं। उदाहरण से विज्ञान के क्रम को आप इस प्रकार समझें। पर्वत या स्थूल पृथिवी के सघात की अपेक्षा जल सूक्ष्म है। क्योंकि वह [illegible]

वना है। इसी प्रकार जब पृथिवी के भीतर से अत्यन्त गरम जल सोतो के द्वारा निकलता देखते हैं, तो ज्ञान पड़ता है, अग्नि जल में व्याप्त हो गयी है। उसे गरम कर दिया है क्योंकि अग्नि जल से सूक्ष्म है। इसीलिए वह जल मे प्रवेश कर उसे गरम कर सकी है। इसी प्रकार जब ज्येष्ठ-आषाढ के मौसम मे गरम-गरम लू चलती है तो ज्ञान होता है कि सूर्य की गरमी मे वायु व्याप्त हो गयी है। क्योंकि वायु अग्नि से सूक्ष्म है। वायु में से आकाश शब्द को लेकर निकल जाता है। एक देश का शब्द वायु के स्तरों को पार कर कहीं का कहीं स्तरों से बहुत दूर पहुँच जाता है। क्योंकि आकाश वायु से सक्ष्म है। इसीलिए आकाश ने वायु को ओत-प्रोत किया हुआ है। इसी प्रकार आकाश से ब्रह्म सूक्ष्म है, अतः ब्रह्म आकाश मे भी ओत-प्रोत है। आकाश को व्याप्त किये है। इस प्रकार क्रमश: स्थूल से सूक्ष्म मे गमन करोगे तो अन्तिम सूक्ष्मता रूप ब्रह्म की अनुभूति कर सकोगे।

प्रायः सब ही लोग कहते हैं, कि जब हम बहुत छोटे थे तब माता जी आसमान की ओर हाथ उठा कर कहा करती थी, कि भगवान् ऊपर रहता है, या ऊपर वाले जाने। मुसलमान भी खुदा को सातवे आसमान पर बतलाते हैं। ईसाई भी खुदा की सलतनत चौथे आसमान पर बताते हैं। हिन्दू भी स्वर्गादि लोको में ऊपर ही विशुद्ध ईश्वर की प्राप्ति मानते है और मोक्ष मे गमन भी क्रम से ऊपर ही मानते हैं। इस प्रकार भौतिक उपासना भिन्न-भिन्न प्रकार से करते हुए भी यहाँ आकाश की उपासना मे या आकाश द्वारा ईश्वर की प्राप्ति में सब आकर एकमत हो गए है। आकाश शून्य-सा है। अतः इसकी मान्यता मे लडाई-झगडे या वाद-विवाद की गुँजाइश नही है। जब तक ईश्वरवादियो ने पृथिवी आदि के विकारो को ईश्वर की उपासना का माध्यम माना तब तक लड़ाई-झगड़े बने रहे। जैसे मन्दिर, शिवालय, मस्जिद, गिरजे, गुरुद्वारे, आर्य समाज या अन्य सम्प्रदायों के धार्मिक स्थान सदा झगडे का कारण बनते रहे। है ये सब वाद-विवाद, लडाई-झगडे, निन्दा-स्तुति आदि शून्य आकाश मे पहुँच कर शून्य ही हो गए।

वैसे तो सब भूमि पर बैठे-बैठे परोक्ष के विषय में अनेक प्रकार की कल्पनायें एव मनोपिकाये करते हैं। स्वर्ग आदि के विषय मे अनेक प्रकार के सब्ज बाग दिखाते हैं। वैमत्य के कारण उपस्थित करते हैं। पर स्वर्ग आदि मे तो जो जायेंगे उन्होने ही देखना है, कि वहाँ क्या-क्या प्राप्त होता है। लौट कर उन्होने बताना नही। और आँखों किसी ने देखा नही। तो उसके विषय मे वाद-विवाद की अपेक्षा नही।

वस्तुतः सब ईश्वर के उपासक आकाश मे आकर सहमत हो गए हैं। क्योंकि वाद-विवाद का आधार कोई साकार रूप नही रहा। यहाँ पहुँच कर सब का एक धर्म, एक उपासना, एक मत हो जाता है। वास्तव मे ये सब ही ईश्वर के मिलने, प्राप्ति या ज्ञान के द्वार पर पहुँचे हैं। अब यथार्थ रूप से ईश्वर का द्वार मिल गया है। यहाँ पहुँच कर सबका प्रवेश भगवान् के दरबार मे हो जाता है। इससे पूर्व ईश्वर-प्राप्ति के जो मार्ग या साधन थे वे सकुचित एवं संकीर्ण सावित हुए। आकाश पर पहुँच कर तो इतना वडा खुला स्थान मिला है कि जिसका कोई ओर छोर नही, जिसकी सीमा ही देखने मे नही आ रही है। इस खुले अनन्त आकाश मे भक्तो, उपासकों, योगियो, पण्डितों, मौलवियों, पैगम्बरो, पादरियो, पोपों, ऋषियों, वामुनियो को छूट है। देखें, कहाँ तक दौड लगा कर भगवान् के सिंहासन के पास पहुँचते हैं? चाहे जन्नत मे पहुँचे, चाहे गोलोक मे, चाहे स्वर्ग मे, और चाहे ब्रह्मलोक में।

वास्तव मे ब्रह्म के विज्ञान का इस समष्टि आकाश से सही-सही प्रारम्भ होता है। जैसा महान् भगवान् है। उसके पास पहुँचने का भी मार्ग वैसा ही विशाल चाहिए। वह सबमे बड़ा और महान् है। उसका कोई अन्त नही। वह बेअन्त है। सूक्ष्म से सूक्ष्म और महान् से महान् है। सत् चित् आनन्द सर्वव्यापक स्वरूप है।

इस प्रथम अध्याय मे समष्टि पाँच महाभूतो का विज्ञान, गति के निमित्त कारण ब्रह्म के साथ इनका सम्बन्ध, ब्रह्म की उपासना विधि और उसका विज्ञान भली भाँति समझाया गया है। इसमे स्थूल महाभूत स्थूल शरीर और स्थूल इन्द्रियो के द्वारा विज्ञान का विषय थे। अब इसके आगे दूसरे अध्याय मे आहकारिक सृष्टि अर्थात् पञ्च तन्मात्राओ, समष्टि इन्द्रियो, समष्टि मन एव समष्टि अहकार का समाधि-जन्य ज्ञान उपस्थित किया जायेगा। उसमे प्रत्येक के स्वरूप का वर्णन और उसके विज्ञान का विधान होगा। साथ ही साथ उनमे ब्रह्म के साक्षात्कार एव उसकी उपासना का वर्णन करेगे। स्थूल महाभूतो की अपेक्षा यह विषय अत्यन्त सूक्ष्म एव अतीन्द्रिय है। यह समस्त विषय सूक्ष्म दिव्य दृष्टि का विषय है।

इति समष्टि आकाश महाभूत मण्डलम्

इति प्रथमाध्याये षष्ठ खण्ड

इत्येकोनत्रिंशदावरणम्

प्रथम अध्याय समाप्त।

प्रकृति के कार्यों
में
त्रयीकरण

अहंकारिक सृष्टि

	समष्टि सत्त्वाहंकार	समष्टि राजसाहंकार	समष्टि तामसाहंकार	
तन्मात्रायें—गन्ध=	·१+	·३+	२·६	=३·०
रस=	·२+	·५+	२·३	=३·०
रूप=	·३+	·७+	२·०	=३·०
स्पर्श=	·४+	९+	१७	=३·०
शब्द=	·५+	१·१+	१·४	=३·०
कर्मेन्द्रिय—गुदा=	·१+	१५+	१४	=३·०
शिश्न=	·२+	१७+	१·१	=३·०
पाद=	·४+	१·८+	·८	=३·०
हस्त=	·६+	१·९+	·५	=३·०
वाणी=	·८+	२·०+	·२	=३·०
ज्ञानेन्द्रिय—घ्राण=	१·१+	·९+	१·०	=३·०
रसना=	१·२+	१·०+	·८	=३·०
चक्षुः=	१·३+	१·१+	·६	=३·०
त्वचा=	१·४+	१·२+	·४	=३·०
कर्ण=	१·५+	१·३+	·२	=३·०
उभयेन्द्रिय—मन=	१·४+	१·४+	·२	=३·०
व्यष्टि अहंकार=	१·६+	१·२+	·२	=३·०

त्रैगुण्य सृष्टि

	महत्सत्त्व भाग	महत्राजस भाग	महत्तामस् भाग	
समष्टितामसाहंकार=	·५+	·७+	१·८	=३·०
समष्टिराजसाहंकार=	·६+	१·०+	१·४	=३·०
समष्टि सत्त्वाहंकार=	·८+	·९+	१·३	=३ ०
समष्टि बुद्धि=	१·४+	१·५+	·१	=३·०
समष्टि चित्त=	१·८+	१·१+	·१	=३·०

द्वितीय अध्याय

तामस अहंकारिक सृष्टि

समष्टि अहंकारिक पंचतन्मात्राओं की सृष्टि मे ब्रह्म की उपासना

प्रथम खण्ड

योगिन्! आपने प्रथम अध्याय मे उपवर्णित समष्टि पाँचो रूपों का विज्ञान ऋतभरा-बुद्धि द्वारा दिव्य दृष्टि से साक्षात् कर लिया है। परिणाम भाव को प्राप्त होती उनकी प्रत्येक दशा मे उनके निमित्त कारण भगवान् के सन्निधान का भी प्रत्यक्ष कर लिया है। अब आप सूक्ष्मता की ओर बढ़िये। अपनी ऋतभरा प्रज्ञा को काम मे लाइये। भूतो से सूक्ष्म उनकी परिणति की कारण पाँचो तन्मात्राओं की सृष्टि परिणति। और उनकी पाँचो अवस्थाओं का तन्मयता से साक्षात्कार कीजिये। पंचतन्मात्राओं के परिणाम के कारण भगवान् के सन्निधान का भी प्रत्यक्ष कीजिये। जिससे सूक्ष्मतम भगवान् के प्रत्यक्ष की तल भूमि तक पहुँचने के लिये एक सीढ़ी और उतर कर गहराई के समीप पहुच जाय। जहाँ उसके साम्मुखीन की आपको प्रतीक्षा है।

शब्द-स्पर्श-रूप रस-गन्ध यह पाँच तन्मात्राय हैं। यह अत्यन्त सूक्ष्म होती हैं। यह पाँचो भूतो की अनुद्भूत अवस्थायें है। योग सिद्धान्त मे इन्हे सूक्ष्म भूत कहा है। सांख्य मे इन्हे तन्मात्रा कहते हे। न्याय और वैशेषिक इन्हे अविभाज्य परमाणु कहते हैं और नित्य मानते हैं। सांख्य और योग इनको अनित्य मानते है। क्योंकि उनके मत से ये समष्टि-तामस-अहंकार से उत्पन्न हुए है। उत्पन्न का विनाश अवश्य होता है। अत तन्मात्रायें या परमाणु दोनों ही अनित्य है (चित्र संख्या ५ मे देखें)।

अहंकार अविद्या-रूप है और तमोगुण अवष्टम्भक स्थिति-शील है। अत समष्टि तामस अहंकार जड है। सत्तारूप स्थिति शील है। मूढता रूप है। इसके कारण ही 'ममेदम्' 'यह मेरा है' रूप बुद्धि परिणत होती है। ऐसा मूढता रूप तामस अहंकार समष्टि रूप मे पाँचो तन्मात्राओं का कारण है।

तन्मात्रायें अहंकारिक सृष्टि का चरम चरण है। तन्मात्राओं का निर्माण तीनो समष्टि सत्वाहंकार, समष्टि राजसाहंकार एव समष्टि तामसाहंकार से मिलकर होता है। वास्तव मे यह सब सत्व रजस् तमस तीनो के मिश्रण का ही तारतम्य है। समस्त परिणामो मे यही तीन ओत-प्रोत है। पाँचभूतो मे भी यही हैं। पाँच भूत अन्तिम परिणाम है, उनसे

चित्र न० ५ का विवरण—न० १ शब्द तन्मात्रा न० २ स्पर्श तन्मात्रा के साथ संघात को प्राप्त हो रही है।

न० ३ मे रूप तन्मात्रा के साथ शब्द तन्मात्रा और स्पर्श तन्मात्रा संघात को प्राप्त हो रही हैं।

न० ४ मे रस तन्मात्रा के साथ शब्द तन्मात्रा स्पर्श तन्मात्रा रूप तन्मात्रा संघात को प्राप्त हो रही हैं।

न० ५ म पीत वर्ण की गन्ध तन्मात्रा के साथ ऊपर की चारो तन्मात्रायें संघात को प्राप्त होकर अपने कार्यों की आरम्भिक बनेंगी। सूक्ष्म जगत् के पदार्थों का निर्माण करेंगी।
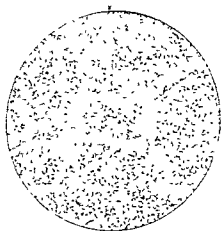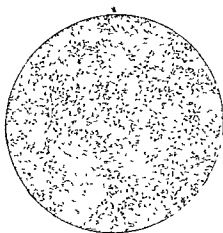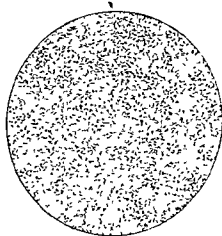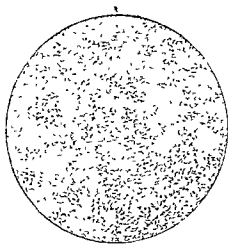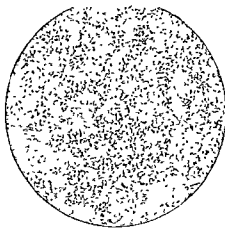
कोई समष्टि परिणाम नही होता । इसलिये परिणामो को पञ्चीकरण नाम देना असगत है । तीनो गुणो का ही सब परिणाम होने से वास्तव मे यह त्रयीकरण है। पञ्चीकरण नही बनता । तन्मात्राएँ भी तीना अहकारो से बनी हैं। तीना अहकारो की न्यूनाधिकता रूप तारतम्य से इनके परिणाम ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रि और तन्मात्राओ के रूप और धर्म मे भेद हो गया है अन्यथा तीनो का एक ही कारण होने से तीनो मे भेद ही नही हो पाता । साख्य दर्शन ने यह तो लिखा—

"अहकारात्पञ्चतन्मात्राण्यु भयमिन्द्रियम्।"

साख्य० अ० १ । सू० ६१ ।

—अहंकार से पञ्चतन्मात्रायें और दोनो कर्मेन्द्रियाँ और ज्ञानेन्द्रियाँ होती हैं ।"

पर किसी ने इस बात पर विचार नही किया कि कारण एक होने पर तीनो कार्यों मे भिन्नता कैसे आयी ? सर्वप्रथम यह हमारा ही विश्लेषण है जो ध्यान दृष्टि मे आया है ।

तन्मात्राओं में तीनो अहंकारों का भाग

त्रयीकरण

	तन्मात्रायें	सत्वाहकार	राजसाहकार	तामसाहकार	
१.	शब्द तन्मात्रा	५	११	१४	= ३०
२.	स्पर्श तन्मात्रा	·४	९	१७	= ३०
३	रूप तन्मात्रा	३	७	२०	= ३०
४.	रस तन्मात्रा	२	·५	२३	= ३०
५.	गन्ध तन्मात्रा	१	·३	२६	= ३०

तीनो का भाग दशमलव से दिखाया गया है । इसी प्रकार समस्त परिणामो मे तीनो धर्मो के तारतम्य से भेद हो जाता है। समष्टितम अहकारके परिणाम कर्मेन्द्रियो और ज्ञानेन्द्रियो मे भी इसी प्रकार सत्व रजस् तमस् का तारतम्य काम करता है । मल्ल-ग्रामवत् प्रधान से व्यपदेश हो जाता है। समष्टि पदार्थ व्यष्टियो के कारण होते है । समष्टि पदार्थ सदा आकाश मण्डल मे रहते है। समष्टि तामस अहकार भी सदा आकाश मे रहता है । यह पाँचो तन्मात्राओ का कारण है । पाँचो तन्मात्राय व्यष्टि रूप मे प्रत्येक पदार्थ मे समाविष्ट है । व्यष्टि पदार्थ एक एक करके प्राणियो के उपभोग मे आते रहते हैं । समष्टि सदा आकाश मे सुरक्षित रहते है । समष्टि तम अहकार भी सदा आकाश मे सुरक्षित रहता है। उसमे गन्ध तन्मात्रा आदि व्यष्टि रूप मे बन बन कर आती रहती है । जीव के भोग या अपवर्ग का सम्पादन कर फिर समष्टितम अहकार मे विलीन हो जाती है । सब तन्मात्राओ का यह चक्कर चलता रहता है ।

जड का परिणाम होने से ये पाँचो तन्मात्रायें भी जड रूप हैं । सर्वव्यापक चेतन भगवान् के सन्निधान से ही चेतन सी बनी स्थूल भूतो मे परिणत हो जाती हैं। स्थूल भूतो के रूप मे प्राणिमात्र का भोग निष्पादन करती हैं। मानव मात्र के भोग और अपवर्ग दोनो का निमित्त बनती हैं। सूक्ष्म अवस्था मे ये योगियो, सूक्ष्म शरीराभिमनियो और स्वर्गस्थो के उपभोग का निमित्त बनती हैं। इनका विषद वर्णन तत्तत्प्रकरण मे आयेगा ही ।

अब पाँचो तन्मात्राओ के पाँचो रूपो का अवलोकन क्रमश एक-एक खण्ड मे कीजिये। चित्र स० ६ मे देखे। यद्यपि श्री वालक रामोदासीन आदि आचार्यों ने तन्माना-दिपु पञ्चरूपाभावाद्'=तन्मात्रा आदि मे पाँचो अवस्थाये नही घटती, केवल महाभूतों मे घटती हैं, ऐसा लिख दिया है। परन्तु ऐसी बात है नही। यदि यह थोडा भी तन्मात्रा आदि को सम्प्रज्ञात समाधि का विषय बनाते तो यह रहस्य खुल जाता और तन्मात्रा आदि की पाँचो अवस्थायें सामने आ जाती। व्यास भाष्य मे जो 'इदानीभूतेपु' पद लिखा है। उसका भी रहस्य अवगत हो जाता। इसका अर्थ 'इदानीतनेपु स्थूल भूतेपु करना उनकी कोरी शाब्दिक कल्पना है। इदानीन्तनेपु का अर्थ-इदानीजातेपु इदानी स्वरूपापन्नेपु तन्मात्रादिपु है। अर्थात् इस समय स्वरूपापन्न जो तन्मात्रादि है उनमे पाठक देखेंगे कि पतञ्जली और व्यास भगवान् के गहन दृष्टिकोण को सबकी पाँचो अवस्थाओ को विपद् व्याख्या मे किस प्रकार सरलता से हमने समझाया है। यह भी हमारा नूतन समाधि जन्य ज्ञान का अभिनव प्रकाशन है। योग रहस्य अति गहन है। इदानीन्तनेपु का सम्बन्ध केवल 'स्थूल भूतेपु' के साथ करना वर्तमान मे भी वर्तमान और सदा ही आकाशमण्डल मे सुरक्षित रहने वाली तन्मात्राओ से इनकार करना होगा जो उन्हे भी अभिप्रेत नही।

तन्मात्राओ के पाँचो रूपो के साक्षात्कार के साथ-साथ उनके निमित्त भूत भगवान् के सन्निधान का भी साक्षात्कार कीजिये। इन तन्मात्रा आदि मे भगवान् के साक्षात्कार का अन्य प्रकार भी हो सकता है—

ब्रह्म के विराट् रूप की उपासना

जीवात्मा के समान ब्रह्म के साथ भी स्थूल, सूक्ष्म कारण शरीर का आरोप करके उसको ज्ञान और उपासना का विषय बनाया जा सकता है। तथा च—

जैसे जीवात्मा के स्थूल शरीर की रचना मे पञ्चभूत उपादान कारण होते है, इसी प्रकार उपादान कारण तो नही किन्तु इन पाँचो के सघात को ही भगवान् का शरीर मानकर एव कल्पना करके इनको साक्षात्कार का विषय बनाना चाहिए। क्योंकि इनके प्रत्येक कण कण मे ब्रह्म व्यापक होकर ठहरा हुआ है। अत इस व्याप्य-व्यापक

चित्र सख्या ६ का विवरण—न० १ मे शब्द तन्मात्रा का स्वरूप दिखाया गया है जो नील वर्ण के असख्य परमाणु सघात को प्राप्त होने जा रहे हैं।

न० २ के मण्डल मे स्पर्श तन्मात्रा का स्वरूप दिखाया गया है जिसमे हरे से रग के असख्य परमाणु गमन कर रहे हैं।

न० ३ मण्डल मे रूप तन्मात्रा का स्वरूप दिखाया गया है। जोकि रक्त से वर्ण के परमाणु रूप का विषय बनने जा रहे हैं।

न० ४ मे रस तन्मात्रा के स्वरूप को दिखाया गया है जो कि रसना इन्द्रिय का विषय बनेगी। इसके किञ्चित नील से वर्ण के परमाणु सघात को प्राप्त होकर सूक्ष्म शरीरो के भोग का विषय बनेंगे।

न० ५ इस मण्डल मे गन्ध तन्मात्रा के परमाणु पीत से वर्ण के हैं। वे सब परिणत होकर सूक्ष्म घ्राणेन्द्रिय का विषय बनेंगे। ये सब तन्मात्रायें मिलकर सूक्ष्म, [illegible] निर्माण भी करेंगी और इनके भोग का विषय भी बनेंगी। इस परमाणु आत्मक अवस्था [illegible] भूत भी है। वे तन्मात्रायें ही पञ्चमहाभूतो का उपादान कारण बनेंगी।
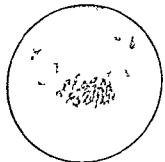
भाव सम्बन्ध का अनुभव करना चाहिए। इसके साथ ही इनके निर्माण में ब्रह्म को निमित्त कारण के रूप में देखना या अनुभव करना चाहिए।

जैसे मनुष्य के देह में पृथिवी तत्त्व अस्थि आदि के रूप में, जल तत्त्व रस रुधिर आदि के रूप में, अग्नि तत्त्व जठराग्नि के रूप में और वायु तत्त्व प्राण के रूप में वर्तमान है। इसी प्रकार ब्रह्म के विराट् शरीर में समष्टि पृथिवी तत्त्व, अस्थि आदि के रूप में, जल तत्त्व रस, रुधिर आदि के रूप में तथा नदी, नाले आदि को नस-नाडी के रूप में, सम्पूर्ण अग्नि महाभूत को जाठर आदि के रूप में और सम्पूर्ण वायु महाभूत को प्राण के रूप में समझना चाहिए।

जैसे आत्मा के स्थूल शरीर में १७ तत्त्वों का सूक्ष्म शरीर वर्तमान है, इसी प्रकार समष्टि पञ्च तन्मात्राओं, समष्टि ज्ञानेन्द्रियों, समष्टि कर्मेन्द्रियों, एव समष्टि मन बुद्धि के मण्डलों को ब्रह्म का सूक्ष्म शरीर कल्पना कर लेना चाहिये। जैसे कारण शरीर में अन्त करण आदि है, भगवान् के भी मूल प्रकृति रूप कारण शरीर में समष्टि चित्त अहंकार के मण्डल है। प्रकृति की क्रिया का हेतु सूक्ष्म प्राण भगवान् का प्राण समझना चाहिए।

भगवान् का कोई शरीर नहीं है तथापि समष्टि पदार्थों और ब्रह्म के साक्षात्कार के विज्ञान का छोटा-सा सूक्ष्म मार्ग हो सकता है। इसके आधार पर समष्टि पदार्थों का शीघ्र बिना किसी कठोर प्रयास के साक्षात्कार हो जाता है परन्तु जिस योगी ने पहले आत्म-साक्षात्कार कर लिया हो, और अब साथ ही ब्रह्म का भी कर ले।

जो एक साथ सारी कल्पना नहीं कर पाते उनके लिए एकैकश का अग्रिम क्रम है। समष्टि गन्ध-तन्मात्रा के पाँचों रूपों में ब्रह्म दर्शन का क्रम प्रारम्भ करते हैं।

समष्टि गन्ध-तन्मात्रा व्यष्टि गन्ध तन्मात्रा का उपादान कारण है। समष्टि गन्ध-तन्मात्रा से व्यष्टि गन्ध तन्मात्रा उत्पन्न होती है। योगी या सूक्ष्म शरीराभिमानी सूक्ष्म घ्राणेन्द्रिय से जिस गन्ध तन्मात्रा का उपभोग करता है, वह व्यष्टि गन्ध-तन्मात्रा है। यह आकाश में सदा रहने वाली समष्टि गन्ध तन्मात्रा से उत्पन्न हुई है। समष्टि गन्ध-तन्मात्रा सदा आकाश मण्डल में रहती है। व्यष्टि गन्ध-तन्मात्रा उससे बनबन कर आती रहती है। जब व्यष्टि गन्ध-तन्मात्रा का उपयोग प्राणी कर लेता है तो व्यष्टि गन्ध-तन्मात्रा लौट कर फिर समष्टि गन्ध-तन्मात्रा के सुरक्षित कोष में जा मिलती है। प्रलय पर्यन्त यह क्रम चलता रहता है। प्रतिक्षण असख्य व्यष्टि गन्ध-तन्मात्राय प्राणियों का भोग सम्पादन करती है। अपना कार्य पूरा कर समष्टि में जा समाती है। उधर समष्टि भी प्रतिक्षण व्यष्टि गन्ध-तन्मात्राओं की असख्य मात्राओं की उत्पत्ति करता रहता है। ब्रह्म के सम्पर्क से चेतन-सी बनी गन्ध-तन्मात्रा इस कार्य कारण रूप परिणाम चक्र को घुमाती रहती है।

समष्टि गन्ध तन्मात्रा मण्डल

प्रथम रूप में ब्रह्म विज्ञान

(गन्ध-तन्मात्रा का प्रथम रूप)

१ गन्ध तन्मात्रा के स्थूल रूप में—

गन्ध-तन्मात्रा ही पृथिवी महाभूत में परिणत हुई है। गन्ध-तन्मात्रा पृथिवी की अनुद्भूत सूक्ष्म अवस्था है। पृथिवी उद्भूत अवस्था है जिसका स्थूल इन्द्रिया से ज्ञान

हो जाता है। गन्ध-तन्मात्रा अनुद्भूत अर्थात् अप्रकट सूक्ष्म अवस्था है, जिसका ज्ञान सूक्ष्म घ्राणेन्द्रिय से होता है। सूक्ष्म घ्राणेन्द्रिय सूक्ष्म शरीर मे होती है। स्थूल घ्राणेन्द्रिय अन्नमय स्थूल शरीर मे है। स्थूल गन्ध स्थूल इन्द्रिय से गृहीत होती है। वही स्थूल गन्ध सूक्ष्म इन्द्रिय तक पहुँचते पहुँचते सूक्ष्म गन्ध-तन्मात्रा रह जाती है। स्थूल का उपभोग स्थूल शरीर कर लेता है। सूक्ष्म घ्राणेन्द्रिय जिसका ग्रहण करती है वही गन्ध-तन्मात्रा है। यह सूक्ष्म नासिका सूक्ष्म शरीर बुद्धिमण्डल मे वास करती है। स्थूल गन्ध का भोग प्राणिमात्र करते है। सूक्ष्म दिव्य गन्ध-तन्मात्रा का भोग योगी, सूक्ष्म शरीराभिमानी आकाशचारी आत्मायें अथवा स्वर्ग मे निवास करने वाली पुण्यात्मायें किया करती है।

गन्ध-तन्मात्रा के दो भेद मानते है १ सुगन्ध, २ दुर्गन्ध। वास्तव मे बुद्धि की अपेक्षा से यह भेद कह दिये है। परन्तु गन्ध-तन्मात्रा एक ही प्रकार की है। इसी के परिणामात्मक अनेक भेद गन्धो के रूप मे हो जाते हैं। जैसे कस्तूरी, केसर, कपूर, अगर तार की गन्ध या गुलाव, चमेली, चम्पा, गेन्दा आदि पुष्पो की भिन्न-भिन्न प्रकार की गन्धे। इसी प्रकार अन्य औषधियो, तथा वनस्पतियो की विभिन्न गन्धे। ये सब एक ही गन्ध के परिणामात्मक गुण है।

सुगन्ध दुर्गन्ध अपेक्षाकृत है मल-पाखाने की गन्ध को हम दुर्गन्ध मानते है, क्योकि वह हमारे प्रतिकूल है, और हमारे शरीर का अनुपयोगी त्यक्त भाग है, पर वही मल की गन्ध शूकर के लिए आनन्ददायक है। वह बडा प्रसन्न होकर उसे खाता है। वह उसके शरीर को लाभकर है। हाँ, उसका अपना मल उसके लिए भी दुर्गन्ध है। सुगन्ध दुर्गन्ध अपेक्षाकृत है जो एक के लिए सुगन्ध है वही दूसरे के लिए दुर्गन्ध हो सकती है। दूसरे के लिए दुर्गन्ध पहले के लिए सुगन्ध। प्याज लहसुन खाने वाले के लिए उनकी गन्ध आकर्षक भूखवर्धक होती है। न खाने वाले के लिए बदबू वाली और अत्यन्त उद्वेजक।

योग के आचार्य अनुद्भूत रूप पार्थिव परमाणुओ को सूक्ष्म पृथिवी भूत के नाम से पुकारते है। सांख्य के आचार्य इन्हे गन्ध-तन्मात्रा कहते है। न्याय वैशेषिककार इन्हे पृथिवी की परमाणु रूप अवस्था कहते है। इन परमाणुओ को ये नित्य मानते है। योग सांख्य के मत मे ये समष्टि तामस अहकार से बने है, अत अनित्य है, नाशवान् है। ये तन्मात्रायें ही सूक्ष्म शरीर के निर्माण मे उपादान होती हैं और सूक्ष्म शरीराभिमानियो को भोग भी प्रदान करती है (चित्र सख्या ७ देखें)।

(शका) सूक्ष्म शरीराभिमानी से आपका क्या अभिप्राय है ? क्या वे जिन्होने स्थूल शरीर को छोड दिया है, अभी पुन जन्म धारण नही किया है और पुनर्जन्म की प्रतीक्षा मे है अथवा उन मुक्तात्माओं से है कि जो स्वर्ग मे वास करते हैं। फिर तो दोनो के भोग मे कुछ भी अन्तर नही हुआ। फिर तो स्वर्ग के लिए यत्न करना व्यर्थ ही हुआ।

चित्र सख्या ७ मे निर्माण हुए ५ सूक्ष्म शरीर दिखाए गए हैं। सूक्ष्म तन्मात्राओ से ही उत्पन्न हुए हैं और इन्ही का उपभोग भी करते है। इनके हृदय मे कारण शरीर दिखाया गया है और मस्तिष्क मे मन इन्द्रियें दिखाई गई है। यहां इनका व्यापार भी होता है। इन्ही के द्वारा सूक्ष्म शरीर भोग करता है। इस कारण शरीर मे जीवात्मा को बिन्दु के रूप मे दिखाया है।
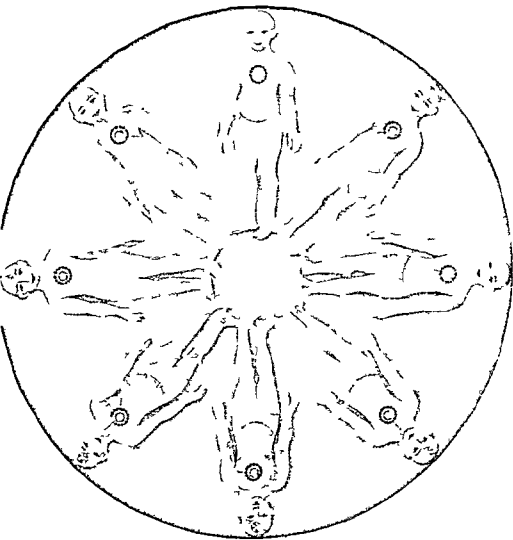
(समाधान) आकाश में विचरने वाले और पुनर्जन्म की प्रतीक्षा वाले सूक्ष्म शरीराभिमानी तम-प्रधान होते है, और स्वर्ग प्राप्त करने वाले स्वर्गवासी आत्मायें सत्व-प्रधान होती हैं। इसलिए इनके भोगो मे अन्तर होता है। जडबुद्धि मूर्खों और आत्मज्ञानियो के भोग मे जो अन्तर होता है। ऐसा ही अन्तर आप उन दोनो मे समझें। दोनो ही शरीर के रहते इन्द्रियो के भोग भोगते हैं। पर दोनो के विधि-विधान मे महान् अन्तर है। इतना अन्तर कि जड मूर्खो का भोग पशुओ-सा लगता है। उन्हे उसके परिणाम और विधि विधान का कोई ध्यान नही होता। भविष्य में अधोगति का ही कारण बनता है। विज्ञ का भोग उससे सर्वथा निराला। इहलोक और परलोक दोनो में सुख देने वाला होता है। इसी प्रकार जब सूक्ष्म शरीर का भोग-आहार तन्मात्राये ही है, तब दोनो ही स्वर्गस्थ और पुनर्जन्म धारण करने वाले दोनो ने इन्ही का भोग करना है। केवल देश, काल और ज्ञान की ही विशेषता तो होती है। वैसे भोग रूप से दोनो के भोग समान है। पुनर्जन्म वाले कुछ मिनट, घण्टे, दिन, पक्ष, मास या वर्षो तक तम प्रधान भोग करते है और स्वर्गवासी अनेक दिव्य वर्षों तक रहने वाले सत्त्व प्रधान दिव्य-तन्मात्राओ का भोग करते हैं।

स्वर्गलोक में दिव्य सुखो का उपभोग

(शका) इन स्थूल भूतो के चक्र से निकल कर कब तन्मात्राओ के लोक मे गमन होता है ?

(समाधान) स्थूल भूत के चक्र से छुटकारा उस समय होता है, जब इन भूतो से ज्ञानपूर्वक वैराग्य हो जावे। इसके पश्चात् तन्मात्रा के स्वर्गलोक मे गमन होता है। इसी तन्मात्रा के लोक का नाम स्वर्गलोक है। इस स्वर्गलोक के भोग दिव्य होते हैं।

जो सम्प्रदाय मोक्ष मे सूक्ष्म शरीर का भाव मानते हैं उनका गमन इस तन्मात्रा के स्वर्गलोक में होता है। ये तन्मात्रायें ही वहाँ के सूक्ष्म दिव्य भोग हैं। श्री शकराचार्य जी क्रमिक मुक्ति को मान कर जीवात्मा का स्वर्गलोक मे भी गमन मानते हैं। इसी प्रकार स्वामी दयानन्द जी सरस्वती, श्री रामानुजाचार्य, श्री सनन्दनाचार्य, श्री जैमिनी आचार्य सब पुराण तथा कुछ इतर नवीन धर्मावलम्बी भी ऐसा ही मानते हैं। वास्तव मे यदि दिव्य लोक मे भोग ही मानने हैं तो इनसे श्रेष्ठ और भोग नही हैं। प्रकृति के सब परिणामात्मक कार्यो मे इनसे बढकर सूक्ष्म शरीर के लिए और भोग नही है। इनमे सब इन्द्रियो की तृप्ति हो जाती है। इस लोक मे इन दिव्य भोगो के साथ ईश्वर के आनन्द का उपभोग भी ये सब आचार्य मानते है। वहाँ के सुख का और आनन्द का क्षय नही मानते है, जोकि मुक्ति से पुनरावृत्ति नही मानते हैं।

अपना अपना विचार और अपनी-अपनी मान्यतायें हैं। कहा भी हैं—

श्रुतयो विभिन्ना स्मृतयो विभिन्ना,
नैको मुनिर्यस्य मत प्रमाणम्।
धर्मस्य तत्त्व निहित गुहायाम्,
महा-जनो येन गत स पन्था ॥

—वेद कुछ कहते है। स्मृतियाँ कुछ और ही कहती हैं। कोई मुनि कुछ और ही प्रतिपादन करता है। कोई भी एक ऐसा ऋषि नही जिसका सिद्धान्त प्रमाण मान लिया जाये,

क्योकि धर्म का ज्ञान अत्यन्त गहन है, सूक्ष्म है। अत जैसा भी कोई समझता है कह देता है। विज्ञान की अनन्तता भी तब ही सिद्ध होती है, जब कि सब ही विद्वान् आचार्य थोडा-थोडा ही कह पायें, क्योकि जगत् का उपादान कारण और ब्रह्म दोनो ही अनन्त है। अत इनके विज्ञान का कैसे अन्त किया जा सकता है।

इस सूक्ष्म जगत् मे जो कि तन्मात्राओ का लोक है, जिसको दिव्यलोक या स्वर्गलोक कहते है-सुखो के भोगने की प्रधानता है। भगवान् का सामीप्य और उसका आनन्द भी माना है। इस दिव्य लोक मे केवल भोग मात्रा ही है। करना कुछ नही पडता। सकल्प मात्र से सब कुछ प्राप्त हो जाता है।

योग दर्शनकार पतञ्जलि ने इस दिव्यलोक के विषय मे उपरामता दिखाते हुए सूत्र दिया है। भाष्यकार व्यास ने उसका अर्थ यह किया है—"स्थूल शरीर के विषय स्त्री, अन्न, पान, ऐश्वर्य आदि की तृष्णा से रहित होना। स्वर्ग के भोगो, विदेह और प्रकृति-लीन योगियो के भोगो, और उनकी तृष्णा को भी समाप्त कर देना अर्थात् अदिव्य और दिव्य विषयो से वैराग्य हो जाना। इसका नाम वशीकार वैराग्य है।

भोग किसी प्रकार का हो वह राग और बन्ध का हेतु तो हो ही सकता है। स्वर्ग मे भगवान् के साथ सहवास का भी तो अनुराग ही है। पर कह सकते है कि यह अच्छा अनुराग है वहा सदा आनन्द का हेतु बना रहेगा। परन्तु स्वर्ग के दिव्य विषयो मे जो अनुराग पूर्वक सुख है, वह दु ख मे भी तो परिणत हो सकता है। वहाँ अनेक स्वर्गीय आत्मायें वास करती है, सभव है कभी राग द्वेष की भावना भी उत्पन्न हो जाये। स्वर्ग का विनाश भी हो सकता है, क्योकि उत्पन्न हुआ है। जब कभी उसे छोड कर जाना पडेगा तो सभव है, दु ख की भी प्रतीति हो। ऐसे स्वर्गीय सुखो को छोडते हुए होनी ही चाहिये। वास्तव मे हमारे विचार मे इस लोक और स्वर्गलोक के विषय मे केवल मात्र स्थूल-भूत और सूक्ष्म -भूतो (तन्मात्राओ) का ही अन्तर है। मोक्ष अथवा कैवल्य मे हम किसी प्रकार का भोग नही मानते, क्योकि वहाँ सब करणो का अभाव होता है।

इस तन्मात्रा के स्वर्गलोक मे दिव्य गन्ध, दिव्य रस, दिव्य रूप, दिव्य स्पर्श, दिव्य शब्द का भोग होता है। यह सूक्ष्म शरीर आकाश गामी होते है। स्थूल शरीर को छोडते समय जैसी आकृति स्थूल शरीर की होती है, उसी आकृति का सूक्ष्म शरीर निकल कर स्वर्ग-लोक मे गमन करता है। स्वर्ग मे गमन करते समय दिव्य भोगो की वासना को साथ मे लेकर गमन करता है। तब ही तो यह दिव्य तन्मात्राओ का लोक प्राप्त होता है।

इस स्वर्ग-लोक मे वास करने की अवधि भिन्न-भिन्न प्रकार से मानते है। एक मान्यता १०० मन्वन्तर तक की है। दूसरी मान्यता १००० मन्वन्तर की मानी जाती है। तीसरी मान्यता है ३६ हजार बार सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय का जितना समय होना है। चौथी मान्यता है कभी लौटना ही नही पडता। इसके काल की कोई सख्या ही नही है।

जैन धर्म की मुक्ति

जैन शास्त्रो के अनुसार जीव अनादि, मध्यम परिमाणी कर्ता भोक्ता है। पुनर्जन्म धारण करता है। वैराग्य और ज्ञान द्वारा मुक्त होकर ईश्वर-भाव को प्राप्त हो

जाता है। ग्रनादि, नित्य, सर्व व्यापक, जगत् कर्ता ग्रादि धर्म वाला ग्रन्य कोई ईश्वर नही है। मुक्त ग्रात्मा का वास सिद्ध शिला पर होता है, जो स्वर्ग के ऊपर १४वें भुवन की चोटी पर है। वह सिद्ध शिला ऊर्ध्व-लोक म स्वर्ग पुरी के ऊपर ४५ लाख योजन लम्बी ग्रौर इतनी ही चौड़ी तथा ८ योजन मोटी है। मोती, स्फटिक मणि, एव दुग्ध के समान श्वेत, स्वच्छ उज्ज्वल ग्रौर निर्मल है। इस सिद्ध-शिला पर शिवपुर धाम है। उसमे मुक्त ग्रात्माय रहती हैं। उनका जन्म मरण नही होता। सदा ग्रानन्द मे रहती है। पुनजन्म, पुनर्मरण के चक्र मे नही ग्राते। सब प्रकार के कर्मो से मुक्त होकर सदा मोक्ष मे निवास करते है।

बौद्धो की मुक्ति

इसी के समान बौद्धो की भी मुक्ति है। बौद्धो के चार भेद—१ माध्यमिक २ योगाचार ३ सौत्रान्तिक ४ वैभाषिक है। बौद्ध, जैन के समान ही जगत् की उत्पत्ति स्वभाव से ही मानते हैं। जीवात्मा को मध्यम-परिमाणी, मुक्ति, ग्रौर पुनर्जन्म मानते हैं। परन्तु चारवाक शरीर के साथ ही जीवात्मा की उत्पत्ति ग्रौर शरीर के साथ ही मरण समय मे विनाश मानते है। इनके सिद्धान्त मे मुक्ति नही है। पुनर्जन्म या परलोक-गमन कुछ नही है। ये केवल प्रत्यक्ष प्रमाण को ही मानते हैं। ये वितण्डावाद की ही शरण लेकर वाद विवाद करते हैं। ये जगत् की उत्पत्ति स्वभाव से ही मानते हैं। इनके मत मे जगत् का कर्ता कोई नही। पचभूत ही सघात को प्राप्त होकर जगत् का निर्माण करते है।

ईसाइयो का स्वर्ग

ईसाइयो का स्वर्ग इस लोक के समान पञ्च स्थूल भूतो के पदार्थो मे बना है। ईसा ईश्वर का बेटा है। ईसा ग्रपने भक्तो की सिफारिश खुदा के सामने करता है, ग्रौर पापो को क्षमा करा देता है। गडे हुए मुर्दे कयामत के समय ईश्वर के सामने उपस्थित होंगे। उस वक्त ईश्वर इन के ग्रच्छे बुरे कर्मो का फल प्रदान करता है। तदनुसार स्वर्ग या नरक म भेज देता है। स्वर्ग म ईश्वर के सिंहासन के पास ही श्री ईसा साहब का सिंहासन होता है। इन के स्वर्ग की रचना ग्रनुपम है। वहाँ स्थूल शरीर ही होते हैं। स्वर्ग का निर्माण बहुत सुन्दर ढग से हुग्रा है। स्वर्ग की लम्बाई चौडाई बराबर है। कुल ७५० कोस लम्बा चौडा है। इस की दीवारें हीरे, सूर्य कान्तमणि नीलमणि लाल मणि, मरकत मणि, गोमेद मणि, माणिक्य मणि, पीत मणि, पुखराज, लहसन मणि, धूम्र कान्त मणि, स्फटिकमणि ग्रादि मणियो ग्रौर जवाहरात से बनी बारह दीवार है। बारह ही दरवाजे मोतियो से बने हैं। एक मोती मे एक दरवाजा बना है। यहाँ सब मुक्त ग्रात्मायें खुदा के दास दासियो के रूप मे रहते हैं। यहाँ बहुत सुन्दर ग्रप्सरायें प्राप्त होती हैं। यहाँ सब प्रकार के भोक्तव्य पदार्थ स्वर्ग वासियो को प्राप्त होते हैं। वे सब प्रकार के सुखो ग्रौर ग्रानन्दो का उपभोग करते हैं। वहाँ दिन ग्रौर रात नही होते। केवल ईश्वर इन्हे ज्योति प्रदान करते हैं। स्वर्ग वासी सदा ईश्वर का मुख देखते रहते हैं।

मुसलमानो का स्वर्ग

इस्लाम के मत मे खुदा रूहो को पैदा करता है। मरने के पीछे रूहे कब्र मे रहती हैं कयामत के समय तक। खुदा का सिंहासन सातवे आसमान पर स्वर्ग मे है। वहा साथ मे ही मुहम्मद साहब का सिंहासन भी होता है। जो इस्लाम और मुहम्मद साहब पर ईमान लाते है, उन की सिफारिश कयामत के समय मुहम्मद साहब करते है। जब खुदा रूहो को अच्छे बुरे कर्मो का फल नरक स्वर्ग प्रदान करता है, उस वक्त मुहम्मद साहब नेक कर्म करने वाला की सिफारिश कर के जन्नत मे स्थान दिलाते है जो इन पर ईमान नही लाते उन्हे नरक (जहन्नुम) मे भेज देते है। इस बहिश्त मे बहुत सुन्दर हूर (अप्सरायें) मिलती है। जो सदा स्वर्ग मे निवास करती है। स्वर्ग मे सब प्रकार के मास, शराब, मेवा, शहद, दूध, मिष्ठान, नाना प्रकार के स्वादु व्यञ्जन और भोक्तव्य पदार्थ प्राप्त होत हैं। मुक्तात्माओ के स्थूल शरीर होते है। उन से सब भोग भोगे जाते है। उनके सूक्ष्म या दिव्य शरीर नही होते। वहाँ सुन्दर सुन्दर बाग बागीचे और नहर होती हैं। वस्त्र रेशमी, आभूषण सोने जवाहरात के, तकिये सोने के तारो के, और तखत सोने के दूसरा दर्जा प्राप्त होते है। खुदा सोने के तखत पर बैठता है। उसे फरिश्ते उठा कर चलते है। खुदा से मुहम्मद साहब का है। इन का सिंहासन सदा खुदा के पास ही होता है। यहाँ सर्व प्रकार के सुख, भोग, और आनन्द उपलब्ध है।

हमारे मत मे—

दिव्यलोक

दिव्य लोक मे सूक्ष्म शरीर मोक्ष पर्यन्त रहता है। इस सूक्ष्म शरीर मे कारण शरीर भी सम्मिलित है। इस की आकृति स्थूल शरीर जैसी ही होती है। वही आकृति साथ जाती है। यह सूक्ष्म शरीर तन्मात्राओ से बना होता है। इसमे २३ पदार्थ होते हैं। सूक्ष्म के १७ अर्थात् पाच तन्मात्राय+पाच ज्ञानेन्द्रिय+पाच कर्मेन्द्रिये+एकमन+एक बुद्धि =१७। कारण शरीर मे ६ अर्थात् १ सूक्ष्मप्राण २ अहकार ३ चित्त ४ जीव ५ प्रकृति ६ ब्रह्म=६। इन सब का मिला कर एक सघात सा बना होता है। जिस मे ये २३ पदार्थ होते हैं। इस को ही हम सूक्ष्म शरीर के नाम से व्यवहार कर रहे है।

जिन योगिया को स्थूल भूतो से वैराग्य हो जाता है पर दिव्य भोगो को भोगने की अभिलाषा बनी रहती है, उन योगियो का गमन तन्मात्राओ के दिव्य लोक स्वर्ग लोक मे होता है। इस दिव्य लोक मे बिना किसी यत्न के, केवल सकल्प मात्र से ही भोग उपलब्ध होते हैं। यहा कर्म ज्ञान उपासना की आवश्यकता नही होती है। केवल भोग ही प्रधान होता है। यहा किसी ब्रह्मलोक या विशेष मोक्षादि किसी के लिये न कोई कर्म किया जा सकता है और न ज्ञान ही प्राप्त किया जा सकता है। यह लोक इन स्थूल लोको मे पृथक् होता है। इसे सूक्ष्म पञ्च तन्मात्राओ का मण्डल या लोक समझें तन्मात्राओ के मण्डल से लेकर ऊपर के जितने भी पदार्थ हैं वे सब सूक्ष्म मण्डला के रूप मे ही हैं। एक के पश्चात् एक की कारण रूप से सतह या तह सी लगी होती है। इस दिव्य लोक से लौट कर आना पडता है, क्यो कि ज्ञान कर्म उपासना का यह पाँच भूतो का पृथिवी लोक ही सर्वश्रेष्ठ माना गया है।

(कैवल्य)

जिन योगिया को इस मनुष्य लोक मे विज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् वशीकार सज्ञा वैराग्य हो जाता है उन का गमन इस पञ्च-तन्मात्रा के लोक मे नही होना है। उन को कैवल्य प्राप्त होता है जहाँ किसी भी प्रकार का भोग नही है। वहा कोई सुख दु ख नही होता है, क्यो कि वहाँ सब शरीरा का अभाव होता है। बिना किसी करण के सुख या आनन्द कैसे भोगेगा। वहाँ स्व-स्वरूप मे स्थिति होती है। वह स्वय ही सत् चित् आनन्द रूप है, और आनन्द की उसे जरूरत नही होती है। यदि कैवल्य मे ब्रह्मानन्द का भोग मानें तो इस भोग के लिये उस के लिये भी कोई करण होना चाहिये। जहाँ करण होगा वहाँ अन्य इन्द्रियाँ आदि भोग भी होगे क्या कि इनके बिना अन्त करण, सूक्ष्म या कारण शरीर होता ही नही। अत आत्मा मुक्ति मे कैवल्य भाग को प्राप्त होता है।

इस लोक मे ही सर्वोत्कृष्ट आनन्द

वास्तव मे ब्रह्म के आनन्द का उपभोग सर्वश्रेष्ठ रूप मे अधिकार पूर्वक इस मनुष्य लोक मे ही होता है। जहा तीना स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीर वर्त्तमान है। जिन योगियो को इस लोक मे ब्रह्मानन्द का उपभोग लेना है उनको तो इस पृथिवी लोक मे ही रहना चाहिये। और शरीर छोडने के पश्चात् भी इस लोक मे इच्छा पूर्वक आना चाहिये। परन्तु इस लोक मे भी ब्रह्मानन्द का भोग तब ही श्रेष्ठ है, जब स्थूल सूक्ष्म विषय भोगो से यथार्थ रूप मे वैराग्य हो जाये। ईश्वर के साथ ही सच्ची प्रीति, भक्ति, अनुराग, अनन्य श्रद्धा विश्वास हो जाये। इस आनन्द का उपभाग करते हुए स्वेच्छापूर्वक मनुष्य शरीर को धारण करते रहे। समाधि द्वारा ब्रह्मानन्द अथवा स्व-स्वरुपानन्द को असख्य जन्मो तक भोगते रह। जो स्थूल शरीर के अभाव मे स्वर्ग मे आनन्द है, सभव है वह भी इसके समान न हो। जो तीनो शरीरो के अभाव मे मोक्ष है, वहाँ तो ब्रह्मानन्द की सम्भावना नही हो सक्ती है, क्योकि वहाँ कोई शरीर ही नही होगा, जिसके द्वारा आनन्द का उपभोग करे। आत्मा स्वय ही ब्रह्मानन्द का उपभोग कर ले ऐसी बात भी असम्भव सी है, क्योकि बिना करण के कर्ता कोई भी कर्म या व्यापार नही कर सकता है। न इस लोक मे और न परलोक मे ही। हम तीनो ही शरीरो का अभाव मोक्ष मे मानते है। आत्मा की वहाँ स्वरूप मे स्थिति होती हैं।

शका—जीवात्मा को मोक्ष मे ब्रह्मानन्द प्राप्त हो जाये, तो इसका ब्रह्म के सन्निधान से आनन्द और अधिक बढ जायेगा। केवल कैवल्य मानने की क्या बात ?

समाधान—मुक्तात्मा मे और आनन्द की गुजाइश नही रहती है, क्योकि वह स्वय ही भरपूर आनन्द स्वरूप होता है। एक घडा जल से पूर्ण हो, यदि उसमे और जल डालें ता बाहर ही तो गिरता रहेगा।

शका—तब तो आप के सिद्धान्त मे ब्रह्म ज्ञान से मोक्ष नही हुआ ?

समाधान—हाँ ठीक है। क्योकि ब्रह्म कोई हमारे बध का कारण नही है जिस के ज्ञान से छूट जाय। न हम उससे अलग है, जिसकी प्राप्ति हो।

शका—तब आप के मत मे किस से बन्ध है, और किस के ज्ञान से मोक्ष हो सकता है ?

समाधान—हमारा बन्ध प्रकृति और उसके कार्यो से है। अत हमने इन्ही से छूटना है। इनसे छुटकारा तब ही हो सकता है जब हमे यह ज्ञान हो जाये कि यह हमारे बन्धन और दु ख का कारण है। तब इससे वैराग्य हो जायेगा और मुक्ति मिल जायेगी। आत्मा अपने स्वरूप मे स्थित हो जायेगा।

आत्मा स्वय सत् चित् आनन्द रूप है। ब्रह्म भी ऐसा ही सत् चित् आनन्द रूप है। एक बडा भारी और अन्तर है, कि आत्मा अणु है, और ब्रह्म विभु है। जहाँ यह मुक्तात्मा होगी वहाँ ब्रह्म भी मौजूद होगा। जैसे—समुद्र मे एक मोती पडा हो। समुद्र उसके चारो तरफ है। इसी प्रकार आनन्द स्वरूप मुक्तात्मा के सब तरफ आनन्द स्वरूप ब्रह्म भी होगा।

शका—आपका सिद्धान्त है—मुक्ति मे आत्मा ब्रह्मानन्द का भोग नही करता है। तब तो इस लोक मे भी उसके आनन्द के भोग की जरूरत नही है ?

समाधान—इस लोक मे मनुष्य प्रकृति के सुखो को भोगता है। इनकी अपेक्षा ब्रह्म का आनन्द भोगना श्रेष्ठ है। जिन शरीरो और करणो के द्वारा प्रकृति के सुखो को भोगता है उन्ही के द्वारा ब्रह्मानन्द को भी भोग सकता है। और अपने स्वरूप के आनन्द का भी भोग कर सकता है। यहाँ सब ही साधन है।

शका—तब तो मोक्ष भी बेकार ही हुआ। क्योकि जब इस लोक और इस मनुष्य शरीर मे स्वरूप का और ब्रह्म के स्वरूप का आनन्द मिल सकता है, तब अन्यत्र जाने की क्या जरूरत है ?

समाधान—मोक्ष निरर्थक नही है। इस शरीर मे व्युत्थान और निरोध दोनो ही बने रहते है। जब व्युत्थान होता है तब बाह्य-वृत्ति होकर भोग लेने के लिये प्रकृति के विषयो का भोग करने लगता है। जब निरोध होता है तब समाधि मे स्व-स्वरूप या ब्रह्म के स्वरूप के आनन्द का उपभोग लेने लगता है। कभी-कभी व्युत्थान और निरोध दोनो से भी तग सा आ जाता है। व्युथान मे प्रकृति के साथ प्रेम करता है और निरोध मे भगवान् के साथ। परन्तु यह दोनो ही धर्म व्युत्थान और निरोध चित्त के ही तो धर्म हुए, सो इस व्युत्थान और निरोध मे चित्त डावाडोल सा बना रहता है। जैसे धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का। इसी प्रकार चित्त की भी दशा बनी रहती है। कभी व्युत्थित कभी निरुद्ध। हम इन दोनो अवस्थाओ से ही मुक्त होना चाहते है।

शका—यह भी तो हो सकता है, सदा निरोध ही बना रहे।

समाधान—यह सर्वथा असभव है, क्योकि चित्त मध्यम परिमाणी है। इसका स्वाभाविक धर्म सदा परिवर्तित होते रहना है, बदलते रहना है। जैसे अग्नि का स्वाभाविक धर्म दाह और प्रकाश है, इसी प्रकार व्युत्थान और निरोध इसके भी धर्म हैं।

हम तो ऐसा मोक्ष चाहते है जिसमे व्युत्थान और निरोध कुछ भी न हो। यह तब ही हो सकता है, जब चित्त का सम्बन्ध आत्मा से छूट जाये। सो चित्त का सम्बन्ध न तो इस लोक मे छूटता है, और न स्वर्ग मे छूटता है। यदि ब्रह्म-लोक मे कोई आनन्द

भोगना हो तब तो इस चित्त[के द्वारा ही भोगा जा सकता है। यदि वहाँ भी इससे सम्बन्ध रहा तब तो वहाँ भी इस के व्युत्थान और निरोध स्वाभाविक धर्म रहेगे। तब वह मोक्ष भी इस लोक के समान हो जायेगा। जहाँ दोनों व्युत्थान और निरोध का अभाव हो जाये वह है चित्त से मुक्ति, और अपने सत् चित् आनन्द रूप मे स्थिति। यथा च—

'चित्तमेव ही संसारो रागादि क्लेशदूषितम्।
तदेव हि तैर्विनिर्मुक्तं भवान्त इति कथ्यते॥

महोपनिषद् अ० ४। म० ६६।

—चित्त ही मुख्य रूप से संसार में राग और क्लेश आदि दोषों से दूषित होता है, अतः इसी से मुक्त होना चाहिये। तब संसार मे आवागमन—मरण जन्म से पीछा छूट सकता है।

और भी कहा है—

'अतः पौरुषमाश्रित्य, चित्तमाक्रम्यचेतसा।
विशोकं पदमालम्ब्य, निरातङ्कः स्थिरीभव॥

महोपनिषद् अ० ४। म० १०४।

—भु ऋषि अपने शिष्य निदाघ को उपदेश देते हुए कहते हैं हे निदाघ ! पुरुषार्थ का आश्रय लेकर आत्मा के द्वारा चित्त का दमन कर। तब ही शोक रहित होकर, सदा के लिए स्थिर शान्त होकर स्वस्वरूप मे स्थिर हो सकता है।

इस समष्टि गन्ध-तन्मात्रा के स्थूल रूप मे और इसके क्रमिक परिणामों में निमित्त-भूत भगवान् की सूक्ष्मता और उसके सन्निधान का साथ-साथ अनुभव करना चाहिये। तन्मात्रा और ब्रह्म के स्वरूप को आप सही रूप मे हृदयंगम कर ले, इस लिये व्याख्यान लम्बा किया गया।

समष्टि गन्ध तन्मात्रामण्डल

द्वितीय रूप में ब्रह्म-विज्ञान

(गन्ध तन्मात्रा का द्वितीय रूप)

२. गन्ध तन्मात्रा के स्वरूप में—

गन्ध तन्मात्रा की यह दूसरी अवस्था या रूप है। गन्ध तन्मात्रा का धर्म गन्ध है। यह गन्ध सदा गन्ध तन्मात्रा में वर्त्तमान रहती है, तन्मात्रा से कभी अलग नही होती। गन्ध तन्मात्रा का यह स्व-स्वसामान्य धर्म है। जहाँ गन्धतमात्रा होगी वहाँ गन्ध भी होगी। यह गन्ध-गन्ध तन्मात्रा मे भी है और तन्मात्रा के परिणामो मे भी।

संसार में जितने भी गन्ध हैं, चाहे वे वनस्पति की हों, चाहे खनिजों, चाहे पुष्प, फल, मूल, पत्र आदि किसी की भी हो, सब सामान्य गन्ध का ही परिणाम हैं। हमे जीवन मे परिणत गन्धों का ही अभ्यास होता है। उन्हे हम तत्काल पहिचान लेते हैं— यह गुलाब, गेन्दा, चमेली, चम्पा मोतिया, मौलसरी, केवडा आदि की गन्ध है या चन्दन, अगर, तगर, कपूर, केसर, कस्तूरी आदि की गन्ध है। या आम, खरबूजा, आड़, अमरूद

नीबू खट्टा, सन्तरा, नाशपति, नाख, कमरख सरदा आदि की गन्ध है। या घी, तेल, चरबी, वसलीन आदि की गन्ध है। जब हम किसी वन्य प्रदेशो मे पहुँचते है, अनुभव की हुई गन्धो से निराली गन्ध सूँघते है, तो कहते हैं गन्ध आ रही है। सब गन्धो मे वर्त्तमान सामान्य गन्ध को हम खूब जानते है, उसी सामान्य गन्ध को इस नवीन गन्ध मे पा हम तत्काल बोल उठते है गन्ध आ रही है। यही सामान्य गन्ध है। शेष जानी अजानी गन्धें इसी गन्ध का परिणाम है। यही सामान्य गन्ध है जो गन्ध तन्मात्रा का स्वरूप है।

ये गन्ध धर्म गन्ध तन्मात्रा म स्वरूप सम्बन्ध से रहते है। गन्ध कभी भी गन्ध तन्मात्रा से अलग नही होती। यही गन्ध तन्मात्रा की स्वरूपावस्था है। गन्धो का गन्ध तन्मात्रा के साथ अभेद है। गन्ध धर्मो से अलग गन्धतन्मात्रा कोई पदार्थ नही। गन्ध का ही नाम गन्ध तन्मात्रा है। गन्ध तन्मात्रा ही गन्ध है। गन्ध का सम्बन्ध गन्ध तन्मात्रा के साथ सदा बना ही रहता है। इनकी अलग सत्ता नही, अत इन्हे अलग अलग नही कह सकते। धर्म धर्मो एक ही हैं।

गन्ध तन्मात्रा कहो या दिव्य गन्ध बात एक ही है। यह दिव्य गन्ध पृथिवी के कारण रूप अनन्त सूक्ष्म परमाणुओ का समुदाय एक गन्ध तन्मात्रा द्रव्य है। दिव्य गन्ध या तन्मात्रा का अभिप्राय है गन्ध का सूक्ष्म रूप। यह गन्धतन्मात्रा अपने परिणामात्क धर्मो सहित विविध गन्धो के रूप मे सूक्ष्म शरीरो के भोग म आती है। इस तन्मात्रा की गन्ध रूप ही अवस्था है। परिणाम भाव को प्राप्त होकर यह स्थूल भूतो मे चली जाती है।

गन्ध धर्म गन्ध तन्मात्रा मे सदा अनुस्यूत रहता है। इसी प्रकार ब्रह्म भी तन्मात्रा म अनुस्यूत रहता है, क्योकि ब्रह्म सवगत है। गन्ध तन्मात्रा किस प्रकार क्रम पूर्वक अपन सामान्य विशेष धर्मो मे परिणत होती रहती है। परिणत होते हुए भी उन से पृथक् नही होती है। इस सूक्ष्म परिणाम क्रम मे चेतन ब्रह्म की व्यापकता और निमित्तता का अनुभव कर। जो इसके परमाणुओ मे गति करके परस्पर सघात करता रहता है वह निमित्त कारण चेतन ब्रह्म ही है। यह गन्ध तन्मात्रा के द्वितीय स्वरूप का अभेद रूप से वर्णन किया है। गन्ध तन्मात्रा का और उसके अनेक गुणो का स्वरूप सम्बन्ध है। इसे समवाय सम्बन्ध भी कहते है।

इस धर्म धर्मी के अभेद रूप परिणाम म ब्रह्म का विज्ञान प्राप्त करना है।

समष्टि गन्ध तन्मात्रा मण्डल
तृतीय रूप मे ब्रह्म विज्ञान
(गन्ध तन्मात्रा का तृतीय रूप)

३ गन्ध तन्मात्रा के सूक्ष्म रूप मे—

समष्टि गन्ध तन्मात्रा का जिस अवस्था से परिणाम हुआ है समष्टि गन्ध तन्मात्रा की उस पहली स्थिति को गन्ध-तन्मात्रा का सूक्ष्म रूप कहेगे। समष्टि तम अहकार ही समष्टि गन्ध का सूक्ष्म रूप है। समष्टि तम अहकार अपने कार्य विशेष समष्टि गन्ध तन्मात्रा मे अनुस्यूत है। यह कारण कार्य का अयुत सिद्ध समदाय समष्टि

गन्ध तन्मात्रा है। अहकार के सूक्ष्म अश सामान्य और विशेष गन्ध तन्मात्रा का समुदाय ही यहाँ एक अयुत सिद्ध द्रव्य गन्ध तन्मात्रा बनता है। यहाँ तम प्रधान अहकार कारण म काय रूप गन्ध तन्मात्रा की सूक्ष्मता है। इसी का गन्ध तन्मात्रा का सूक्ष्म रूप कहते है।

इस अवसर म जो एक विशेष क्रिया होकर एक विशेष परिणाम समष्टि तम अहकार मे उसके सहयोगी सत्त्व रज के साथ म होता है वह अपूव हाता है। आश्चर्यमय होता है। योगिन्! यहाँ इस परिणाम प्रक्रिया ही आपका अपने समाधि सयम का विषय बनाना है। यहाँ योगी के लिए दिव्य दृष्टि से देखन योग्य यही विशेष बात होती है। आप साक्षात् करगे कैसे आश्चर्यमय ढग से तम अहकार म सत्त्व रज की मात्राय कैसे परिणाम करती है और वह कैसे अत मे गन्ध तन्मात्रा मे परिवर्त्तित होता है। साथ ही प्रत्यक्ष कर कि किस प्रकार सजातीय विजातीय धर्मों का नियाजन कर ब्राह्मी चेतन सत्ता अपने सन्निधान से अयुत सिद्ध द्रव्य गन्ध तन्मात्रा का निर्माण कर रही है। किस प्रकार सूक्ष्मतम तम अहकार सत्व रजस् के साथ सघात को प्राप्त होकर स्व स्थूलाकार गन्ध तन्मात्रा क रूप मे पनपता रहा है। ब्राह्मी चेतना ही इस अवसर मे सघात करन वाली प्रेरिका है। उसी चेतन ब्रह्म सत्ता का आपको अनुभव करना है।

विलक्षणता का अनुभव कीजिये समष्टि तम अहकार जो केवल बुद्धि का विषय था, गन्ध तन्मात्रा मे परिणत होते ही दिव्य घ्राण से गृहीत होने लगा।

सक्षेप से इस प्रकार कह सकते है—सामान्य विशेष के भेद से अनुगत समष्टि तम अहकार समुदाय अयुत सिद्ध द्रव्य ही गन्ध तन्मात्रा का सूक्ष्म रूप है। इस अवस्था म समष्टि-तम अहकार का समष्टि गन्ध तन्मात्रा के रूप म परिणाम हुआ है। वह समष्टि तम अहकार धर्म लक्षण अवस्था रूप मे परिणत होकर स्थूल रूप को प्राप्त हो गया है।

गन्ध तन्मात्रा की सूक्ष्मता को इस प्रकार समझिये—दूर देश मे निम्बू पडा है। योगी उस पर सयम करता है। स्थूल भूत निम्बू से, स्थूल भूत के पूर्व परिणाम विशेष गन्ध निम्बू की गन्ध पर पहुँचता है। उसमे तन्मय होता है तो सामान्य गन्ध पर पहुँचता है और सयम की गहरी स्थिति मे सामान्य गन्ध तन्मात्रा के पूर्व रूप जड सत्तात्मक तम प्रधान अहकार का साक्षात् करता है। यह जड सत्तात्मक तम अहकार ही तो सामान्य, विशेष गन्ध तन्मात्रा मे परिणत हुआ है। यहाँ सामान्य तो तम प्रधान अहकार है और विशेष गन्ध तन्मात्रा है। इनका समुदाय ही अयुत सिद्ध द्रव्य है। गन्ध की विशेषता जिसमे सामान्य गन्ध के परिणत गुण निम्बू की गन्ध को जाना गया है, यह गन्ध तन्मात्रा का परिणामक गुण है।

यही इसका सूक्ष्म रूप या अवस्था है। अर्थात गन्ध-तन्मात्रा का यह तीसरा रूप है। योगी इस परिणामक सम्बन्ध का प्रत्यक्ष कर लेता है। कारण से कार्य म परिणाम सदा होता ही रहता है।

एक बारा एक योगी को हम ने देखा। वह आकाश मे हाथ फेंक कर चाहे जिस प्रकार की गन्ध अपनी मुट्ठी मे सुँघा देता था। रस क विषय मे भी ऐसा ही करता था। आकाश मे हाथ मार कर जल कण के रूप म अपनी हथेली पर खट्टा, मीठा,

नमकीन आदि रस चखा देता था यह कुछ दिन मोती राम की बागीची मे, अमृतसर मे नहर के किनारे मेरे पास रहा था। इसे और भी कई सिद्धिया प्राप्त थी। कहता था मैं पूर्वजन्म का योग भ्रष्ट हूँ। मुझे ऐसी सूक्ष्म बातो मे बहुत आनन्द आता है। अत मेरी मुक्ति इस जन्म मे भी नही होनी है। तुम्हे स्थूलो मे आनन्द आता है मुझे सूक्ष्मो मे। तुम्हारी अपेक्षा मुझमे कोई विशेषता नही है। तुम स्थूल विषयो को भोगते हो, मैं सूक्ष्म स्थूल भूतो को।

अत योगी को इन तन्मात्राओ के सजातीय विजातीय सयोगात्मक कारण से कार्यात्मक परिणाम मे उस ब्रह्म की अनुभूति करनी चाहिए। इस अभेद मे ब्रह्म की अनुभूति करनी चाहिये। कारण कार्य एव उनके परिणाम काल मे अनुस्यूत ब्रह्म का प्रत्यक्ष करना चाहिये।

साधारण मोटी बुद्धि वालो को तो यह तन्मात्रा की बात कल्पना सी मालूम पडती है। परन्तु अब तो आजकल के साइन्टिस्ट भी सूक्ष्म पदार्थो का प्रत्यक्ष करने लगे हैं और उनसे सूक्ष्मो का अनुमान करने लगे है परन्तु यह है प्रत्यक्ष वादी। यन्त्रो के द्वारा परीक्षण पर ही सही मानते हैं। किन्तु तन्मात्राओं का प्रत्यक्ष इन भौतिक यन्त्रो से नही हो सकता है, क्योकि यह इन स्थूल भौतिक इन्द्रियो का विषय नही है। जब ये माइण्ड (मन) को यन्त्रो द्वारा प्रत्यक्ष कर लेगे, तब इनके भौतिक विज्ञान की विशेषता मान ली जायेगी। अब तो मन का केवल अनुमान ही करते है और कहते है, मन है तो जरूर पर देखने मे नही आ रहा है। इसे भी ये शरीर की आँखो से देखना चाहते है। भले ही खुरदबीन या सूक्ष्मेक्षणयन्त्र लगा कर देखे। पर मन के प्रत्यक्ष करने मे इनका विज्ञान अभी अधूरा ही है और भविष्य मे भी अधूरा रहने की सभावना है।

समष्टि गन्ध तन्मात्रा मण्डल

चतुर्थ रूप मे ब्रह्मविज्ञन

(गन्ध तन्मात्रा का चतुर्थ रूप)

४ गन्ध-तन्मत्रा के अन्वय रूप मे—

गन्ध-तन्मात्रा का मूल-प्रकृति के साथ परम्परागत कारणकार्य रूप सम्बन्ध गन्ध तन्मात्रा का अन्वय है। गन्ध तन्मात्रा किस का परिणाम है। वह परिणाम किस का परिणाम है। अन्तिम परिणाम किस अपरिणाम भूत मूल-प्रकृति का है। इस प्रकार परिणाम-परम्परा को जानना तन्मात्रा का अन्वयन रूप जानना है।

समष्टि गन्ध तन्मात्रा समष्टि-तम अहकार का परिणाम है। समष्टितमः अहंकार समष्टिमहत्तम का परिणाम है। समष्टिमहत्तम अव्यक्त, अपरिणाम रूप, नित्य मूल प्रकृति मे अभिव्यक्त हुआ है। मूल प्रकृति अजन्मा शाश्वत् नित्य है। स्थिति या सत्ता इसका स्वरूप है। प्रभु के सन्निधान से इसमे क्रिया और ज्ञान गुण का प्रादुर्भाव हुआ। अपने स्वरूप और गुणो के साथ सब कार्यो मे अनुपनित होती जाती है। प्रकृति स्वय तो किसी का परिणाम नही, किसी का कार्य नही, पर अपने कार्य-रूपो मे परिणत होती जाती है। गन्ध-तन्मात्रा मे कार्य परम्परा से इसका गुण सहित अपने स्वरूप को लिये हुए अनुपतन हुआ है। प्रकृति की सत्ता से ही गन्ध तन्मात्रा की सत्ता है। प्रकृति की

सत्ता से गन्ध तन्मात्रा और उसके कार्यो की सत्ता है। जो गुण कारण में होते है वह ही कार्य में आते हैं। सृष्टि के प्रारम्भकाल से कार्योन्मुख प्रकृति अपने स्वरूप और गुणो के साथ परिणत होती हुई, अनुपतित होती हुई गन्ध तन्मात्रा में पहुची है। बहुत लम्बी यात्रा के कारण अपने सत्ता रूप को मुख्य रूप से लेकर पहुँची है। ज्ञान और क्रिया गौण हो गये हैं। इसलिये गन्ध-तन्मात्रा मे प्रधानतया गन्ध की सत्ता है। गन्धरूपेण गन्ध-तन्मात्रा की सत्ता का बोध होता है। ज्ञान ज्ञेयत्व रूप से ही शेष रहा है। क्रिया भी विलुप्त प्राय हो गई है। इस प्रकार गन्ध तन्मात्रा में अन्वयरूप धर्म वर्तमान है।

गन्ध-तन्मात्रा के अन्वय-रूप में भी ब्रह्म की सूक्ष्म-रूप व्यापकता का अनुभव करना चाहिये। इसमे यह चरितार्थ होगा कि किसी पदार्थ की भी परिणत होती हुई अवस्था चेतन ब्रह्म के सम्बन्ध से अलग नही रह सकती है। प्रकृति मे यहां इस प्रकार गन्ध तन्मात्रा की अन्वय रूप सूक्ष्म अवस्था समझनी चाहिये।

इस अनुपतन और उसके निमित्त कारण ब्रह्म का भी विज्ञान अभ्यास मे साथ-साथ करना चाहिये। जिस से ब्रह्म की सर्व व्यापकता सर्व सन्निधानता अनायास ही बुद्धि गम्य होती जाये।

समष्टि गन्ध तन्मात्रा मण्डल

पञ्चम रूप मे ब्रह्म-विज्ञान

(गन्ध तन्मात्रा का पञ्चम रूप)

५ गन्ध तन्मात्रा के अर्थवत्त्व रूप मे—

स्थूल जगत् के उपादान कारण पाँचो स्थूल भूत है। इसी प्रकार सूक्ष्म जगत् की ये पाँच तन्मात्रायें उपादान कारण हैं। यह सूक्ष्म शरीरो के निर्माण मे भी कारण होती हैं। उन सूक्ष्म शरीरो के भोग का भी सम्पादन करती हैं। यही इनकी अर्थ-वत्ता है।

पाँच स्थूल भूतो से यह दृश्यमान जगत् बना है। सूक्ष्म पाँचो तन्मात्राओं से सूक्ष्म जगत् बना है। स्थूल जगत् मे स्थूल भूत मिल कर नानात्व उत्पन्न कर देते है। सूक्ष्म जगत् मे सूक्ष्म-भूत मिल कर विभिन्नता उत्पन्न करते है। सूक्ष्म तन्मात्राय आकाश मण्डल मे सर्वत्र व्याप्त है, अत सूक्ष्म जगत् भी आकाश म सर्वत्र है। किस एक स्थान पर नही सर्वत्र है।

सूक्ष्म जगत् मे गन्ध-तन्मात्रा का उपभोग सूक्ष्म रूप मे ही होता है। गन्ध-तन्मात्रा के परिणाम पृथिवी के लोक मे जिस प्रकार के पार्थिव पदार्थ मकान, खेत, धरती, शरीर, वृक्ष फलादि हैं। ऐसा सूक्ष्म जगत् मे कुछ नही है। वहाँ तो केवल गन्ध-तन्मात्रा के सामान्य विशेप रूप का उपभोग है।

गन्ध-तन्मात्रा का सामान्य रूप गन्ध है। यह गन्ध सब विशेप गन्धो मे रहती है। सर्व प्रथम इस सामान्य गन्ध का ही बोध होता है। विशेप का तो पीछे अनुसन्धान करने पर होता है, जिसको जान कर उसका विशेप नाम रखा जाता है। सूक्ष्म जगत् मे सब सूक्ष्म सामान्य गन्ध और विशेप गन्धो का उपभोग होता है। सूक्ष्म जगत् मे सूक्ष्म

सामान्य या विशेष गन्ध से सूक्ष्म शरीरो की तृप्ति होती है। सूक्ष्म शरीर हलवा जलेबी आदि व्यञ्जनो की गन्धरस रूप आदि का सूक्ष्म रूप मे ग्रहण कर तृप्त हो जाते है। स्थूल का सम्पर्क उनके साथ नही होता। स्थूल से तृप्त हो कर सूक्ष्म के भोग के लिए स्वर्ग मे प्रवेश होता है। सूक्ष्म शरीरो को भौतिक ताप नही सताते। वे तो स्वर्ग मे सूक्ष्म शरीर द्वारा सूक्ष्म दिव्य सुख भोग के लिये जाते है। इसलिये सूक्ष्म शरीरो को मकान भवन परिधान आदि की कोई अपेक्षा नही होती। सामान्य और विशेष दिव्य गन्धो से वे तृप्त हो जाते है क्योकि यही सूक्ष्म गन्ध तन्मात्र उनके शरीर की अनय तन्मात्राओ के साथ उपादान कारण होती है और ये ही सूक्ष्म जगत् की भी उपादान कारण होती है। ये सूक्ष्म जगत् और सूक्ष्म शरीर सर्वत्र हैं, जिन्हे समाधि स्थिति मे साक्षात् किया जा सक्ता है। ब्रह्मरन्ध्र के अवकाश मे इसी लिए तो सद्धो के दर्शन हो जाते है। समाधि दशा मे योगी की सूक्ष्म इन्द्रियाँ ही काम करती हैं, स्थूल नही। सूक्ष्म का दर्शन तो सूक्ष्म से ही होता है। स्थूल का दर्शन स्थूल इन्द्रियो के द्वारा सर्व साधारण करता है। पर केवल सूक्ष्म से स्थूल का दर्शन योगी ही कर सकता है। स्थूल गन्ध का बोध स्थूल नासिका द्वारा सूक्ष्म रूप मे परिणत होकर सूक्ष्म घ्राणेन्द्रिय से ही होता है। परन्तुदिव्य सूक्ष्म गन्ध का स्थूल नासिका से नही हो सकता, सूक्ष्म नासिका से ही होता है।

यह सूक्ष्म सामान्य विशेष गन्ध ही सूक्ष्म शरीर और सूक्ष्म जगत् का विषय है। यही गन्ध-तन्मात्रा की अर्थवत्ता है।

शका—स्थूल शरीरो की तरह सूक्ष्म शरीरो मे भी योनिकृत भेद होता है? जैसे इस लोक मे मनुष्य, पशु, पक्षी आदि होते है ऐसे उनमे भी होते है?

समाधान—सूक्ष्म शरीरो मे स्थूलो के समान भेद नही होता है। मनुष्य का शरीर २५। ५०। १०० वर्ष रह कर भी मनुष्य का ही रहता है उसमे ऐसा परिवर्तन नही होता कि वह पशु या पक्षी का बन जावे। इसी प्रकार सूक्ष्म-शरीर मे भी कोई परिवर्तन मोक्ष पर्यन्त नही आतर है स्थूल शरीर की अवधि स्थूप शरीर के मरण पर्यन्त रहती है। सूक्ष्म शरीर की अवधि मोक्ष होने तक होती है।

हाँ सूक्ष्म शरीरो मे यह भेद तो हो जाता है कि मानव के सूक्ष्म शरीर के साथ मानव की आकृति भी जाती है। पर मनुष्यतर का सूक्ष्म शरीर गोलाकार ही होता है। मानवाकृतियाँ सिद्धो की मूर्धज्योति मे अभ्यास काल मे देखने मे आती हैं। अन्य आकृतियाँ भी गोलाकार देखने में आयी हैं। सूक्ष्म जगत् मे स्वर्गीय भोगो को भोगने के लिये मानव जन्म से ही सूक्ष्म-शरीरो मे जाना होता है। अन्य योनियो से स्वर्ग मे सीधा गमन नही होता है क्योकि वे केवल भोग योनिया है। इसलिये सूक्ष्म जगत् मे पशु पक्षी आदि नही होते या स्वर्ग लोक मे पशु पक्षी के रूप मे शरीर नही होते हैं।

यह मानव योनि की ही विशेषता है कि इसी योनि से स्वर्ग भी प्राप्त कर सक्ते हैं, और नरक भी। स्वर्ग नरक भोग कर भी पुन मनुष्य योनि मे आना पडता है, इसीमे मोक्ष के साधन उपलब्ध है, इसीसे मोक्ष मे जाना होता है। स्वर्गलोक या सूक्ष्म जगत भी भोग प्रधान है, उसमे केवल सुख भोगना है, कर्म नही करता है। भोग की समाप्ति भोग योनिवालो की तरह फिर मानव योनि मे आना होता है। मोक्ष नरक स्वर्ग सब इसी मानव योनि से प्राप्त किये जाते हैं। यह आत्मा का तिराहा है, जिधर जाना चाहे जा सकता है।

स्थूल शरीर की अपेक्षा सूक्ष्म शरीर मे विशेषता यह है कि सूक्ष्म शरीर मध्यम-परिमाणी है, अर्थात् सकोच विकास वाला है। कर्म फल के अनुसार जिस प्रकार के छोटे या बडे शरीर मे जाना होता है। उसी प्रकार छोटा या बडा यह सूक्ष्म शरीर बन जाता है। मच्छर की योनि मे छोटा और हाथी की योनि मे बडा। सूक्ष्म शरीर का स्वरूप से विनाश हो कर यह छोटा बडा परिवर्तन नही होता है। यह रबड की तरह सुकडने और फैलने वाला होता है।

सात्विक, राजस, तामस के भेद से गुणो का परिवर्तन जैसे स्थूल शरीरो मे है, वैसा ही सूक्ष्म शरीरो मे भी होता है। जैसे स्थूलो मे योगियो का सात्विक और पशुओ का तामसिक। सूक्ष्म शरीरो मे भी राजस, तामस और सात्विक तीनो प्रकार के भेद होते है। सात्विक सूक्ष्म शरीर धवल देदीप्य मान होता है। राजस शक्तिमान स्वर्णिम सा होता है। और तामस नीलाभ धु धली चमक वाला होता है।

ये तन्मात्राये गुणो के भेदो से सूक्ष्म शरीरो का निर्माण करती हैं। जब प्रलय का समय आता है, तब यह सूक्ष्म शरीर पुण्यापुण्य के धर्माधर्म सस्कारो को लेकर अपने कारण मे विलीन हो जाते हैं, अर्थात् प्रकृति मे लीन हो जाते है। सृष्टि के समय फिर उसी क्रम मे लौट आते हैं।

(शका)—पशु पक्षी आदि भोग योनी जब शरीर को त्यागते हैं तो इनके सूक्ष्म शरीर की आकृति कैसी होती है ?

(समाधान)—उनके स्थूल शरीर के समान ही होती है। इनमे सकोच विकास धर्म होने से गोलाकार अथवा अण्डाकार भी हो जाते हैं और इनसे भी बहुत छोटे हो जाते हैं। जब किसी अन्य योनी मे प्रवेश करते हैं तब उसी स्थूल शरीर के आकार के हो जाते हैं और शरीर के साथ बढते रहते है।

(शका)—आप ने कई बार कहा है कि सूक्ष्म शरीर का विनाश मोक्ष मे होता है। तो क्या प्रलय काल मे इसका विनाश नही होता है ?

(समाधान)—प्रलय काल मे सूक्ष्म शरीर का भी विनाश हो जाता है। परन्तु सृष्टि के समय उन्ही अन्त करण, उन्ही इन्द्रियों, उन्ही अङ्ग प्रत्यङ्गो, उन्ही धर्माधर्म के सस्कारो को लेकर निर्मित्त हो जाता है, क्योकि उसी आत्मा को इसने भोग देने हैं जिस के साथ यह पहले जुडे थे, और उसके भोग शेष रह रहे थे। इन धर्माधर्म के सस्कारो को यह सूक्ष्म शरीर ही तो •लेकर चलने वाला होता है। जीवात्मा भी प्रलय काल की अवस्था मे सुप्तावस्था मे चला गया था। उसका इन धर्माधर्म के सस्कारा का भोग भी तो सृष्टि समय मे उसी नियमित सूक्ष्म शरीर द्वारा होता है। अत वही सूक्ष्म शरीर पुन साथ मे आता है। स्थूल शरीर मे यह बात नहीं है। वह पहले शरीर के रूप मे नही आता है। भिन्न रूप मे ही आता है। पहला तो जीर्ण शीर्ण वृद्ध हो गया था, आगे काम ही कैसे देना। युवक मृत शरीर तो अपवाद है और स्थूल शरीर तो यहा ही अल्प से समय मे नष्ट हो जाता है। यूनानियो ने ममाला लगा-लगा कर ममी ठहराये भी, पर वह कभी किसी आत्मा के पुन उपयोग मे न आये। उनकी आकृति तो रही, पर वे निस्सार धूली रूप ही हो गये। इसलिये दूसरा ही शरीर मिलता है जो दूसरे प्रकार का होता है। सूक्ष्म मे यह बात नही है। यह तो पहिले ही रूप म ज्या का त्यो आता है।

उन ही धर्माधर्म के सस्कारो को भी साथ लेकर आता है। धर्माधर्म का क्रम अनादि काल से चला आ रहा है और सदा ही चलता रहेगा।

(शङ्का)—यदि ऐसा मान ले तो क्या हानि है कि धर्माधर्म के सस्कार तो वही बने रहे और सूक्ष्म शरीर नया बनकर आजाये ?

(समाधान)—यदि ऐसा मान लिया जाये तो बताओ धर्माधर्म के सस्कार किसे के आश्रय रहगे। यदि कहो कि सस्कारो को किसी के आश्रय की आवश्यकता नही है, बिना आश्रय के वैसे ही भोग दे दिया करेगे। तब तो सूक्ष्म शरीर की आवश्यकता ही नही रहेगी, न सृष्टि मे न प्रलय मे। सूक्ष्म शरीर मन बुद्धि चित्त अहकार ही न रहे तो सस्कार किस के आश्रय ठहरेगा। बिना आश्रय वे कहा ठहरेगे। कैसे भोग दे सकेंगे। भोग के लिये तो कोई न कोई आश्रय मानना ही पडेगा।

यदि कहो कि सस्कार प्रकृति के आश्रय रह जायेंगे। तो भी बात बनती नही, क्योकि प्रकृति के आश्रय तो सब ही स्थूल और सूक्ष्म पदार्थ रहते हैं। वे सब ही पूर्व रूप मे लौट आयेंगे। तब प्रलय का प्रयोजज ही समाप्त हो जायेगा। यदि प्रलय से पूर्व की स्थिति मे प्रकृति कार्य करने मे समर्थ थी तो प्रलय क्यो हुई प्रलय का समय आने पर तो प्रकृति अस्त व्यस्त सृष्टि व्यवहार मे असमर्थ हो जाती है, इसलिये तो प्रलय आता है। अत सूक्ष्म शरीरो के भी सब अङ्ग प्रत्यग, इन्द्रिय अन्त करण आदि सब क्रम पूर्वक अपने अपने करणो मे छिन्न भिन्न होकर विलीन होते जाते है। जैसे वट के बीज मे सब वृक्ष सूक्ष्म रूप मे समाया होता है, वृक्षोत्पत्ति काल मे सब सर्वाङ्गीण रूप मे विकसित हो जाता है उसी प्रकार प्रलय काल के उपरान्त पुन सृष्टि काल मे उसी क्रम से लौट आते हैं। सस्कार भी और सस्कारो के आश्रय सूक्ष्म शरीर भी।

मोक्ष से पूर्व क्या कर्म नष्ट हो जाते हैं ?

(शका)—जीव जब मोक्ष प्राप्त करता है, तब इस सूक्ष्म शरीर और धर्माधर्म सस्कारो का क्या बनता है, क्योकि सब सस्कार नष्ट तो हुये नही थे। वे अपनी प्रकृति मे ही लीन हुए थे, क्योकि आप के सिद्धान्त मे सर्वथा रूप से तो कोई पदार्थ नष्ट नही होता है, क्योकि आप सत्कार्यवादी हैं ?

(समाधान)—जब जीव मुक्त होता है तो प्रारब्ध से प्राप्त हुए प्रारब्धोन्मुख कर्मो का फल भोग कर ही मुक्त होता है। परन्तु सञ्चित कर्मो के सस्कार तो बने ही हैं, क्योकि वे अनादि काल से चले आ रहे हैं और अनन्त हैं। यदि यह माना जाये कि उनका भोग कर के ही मोक्ष होता है, तब तो असख्यो जन्मो मे भी वे भोगे नही जा सकते। यदि इनका कभी आरम्भ आदि काल होता तो इनको भोग कर, समाप्त करके ही मोक्ष होता। आदि न होने से, इनको भोग कर समाप्त करने का प्रश्न ही उत्पन्न नही होता। इस जन्म मे या पूर्वजन्मो मे जो जीवात्मा को ज्ञान और वैराग्य १०।२०।५० जन्मो से होता चला आ रहा है। ये ही मुख्य रूप से मुक्ती की ओर ले जाने वाले कर्म हैं। इनकी प्रधानता से ही इनका फल शीघ्र मिलता है। ये ही प्रारब्धोन्मुख बनकर शीघ्र ही मोक्ष देने वाले बन जाते हैं, और सचित जो अनेक जन्म जन्मान्तरो के कर्म हैं, उनके सस्कारो को लेकर ही चित्त अपनी कारण रूप प्रकृति मे चला जाता है। तब यह आत्मा मोक्ष मे स्थिर हो ठहरा है।

आत्मा—मोक्ष अवस्था में इसकी संज्ञा आत्मा है।

जीवात्मा—शरीर में रहने से जीव या जीवात्मा है।

जीव—प्राण धारणे धातु से जीव शब्द बना है। प्राण धारण क्रिया स्थूल सूक्ष्म शरीर के साथ ही है। अकेला आत्मा प्राण का व्यापार नहीं कर सकता है। अत. सूक्ष्म शरीर नरक, स्वर्ग या मानव योनि में आत्मा के साथ रहता है। उसी अवस्था में यह आत्मा जीव कहलाता है। स्थूल शरीर में स्थूल प्राण रहता और सूक्ष्म शरीर में सूक्ष्म प्राण रहता है।

जब मुक्ति प्राप्त हुई है तो उसकी अवधि भी माननी पड़ेगी। योगियों ने इसकी अवधि एक परान्त काल मानी है। इस अवधि के समाप्त होने पर आत्मा को फिर मुक्ति से लौटकर सृष्टि के आदि में आना पड़ेगा। उस समय उन्हीं सञ्चित ससकारों और उसी सूक्ष्म शरीर का सम्बन्ध इस मुक्ति से लौटी आत्मा के साथ हो जायेगा मुक्ति से लौटी आत्मा को वही अपना पहला चित्त और वही पहले सञ्चित सस्कार मिल जायेंगे। जिन से आगे फिर अपने कर्म चक्र में व्यवस्थित हो जायेगा। यदि इन सञ्चितों का सम्बन्ध न मानें तब वर्तमान जन्म में प्रवृत्ति का कारण क्या होगा। नये कर्म किस के कारण करेगा और नया जन्म ही किस कारण से मानोगे। अन्तत. सञ्चित सस्कार और उनके साथ सम्बन्ध मानना ही पड़ेगा। और कोई गति नहीं है। यही ठीक भी है। समाधि में साक्षात् सञ्चित सम्कारों का प्रत्यक्ष होता है।

शंका-फिर भला ऐसे मोक्ष से क्या लाभ हुआ, जो फिर उसी बन्धन में आन फसना है ?

(समाधान)—आरम्भ हुई वस्तु कभी नित्य नहीं हो सकती है। जिस मोक्ष को प्राप्त किया है, जिस का संयोग हुआ उसका वियोग अवश्य होगा। यही मुक्ति की समाप्ति है। संयोग वियोगान्ता.। सयोग का अन्त वियोग है। मोक्ष अनित्य है फिर भी उसके लिये यत्न करना चाहिये।

क्योंकि आप निद्रा भूख प्यास के निवारण के लिये नित्य ही यत्न करते हैं। परन्तु ५।६ घन्टे में फिर खाने की इच्छा हो जाती है। १२।१५ घन्टे में फिर सोने की जरूरत पड़ जाती है। एक बार ही खा पीकर या सो कर तृप्ति नहीं होती है। अनित्य की तो यही दशा होती है। इसी प्रकार मोक्ष भी अनित्य है। जैसे निद्रा लेने के पश्चात् पुन. पूर्ववत् उन्हीं कर्मों में प्रवृत्त हो जाता है। इसी प्रकार मोक्ष के पश्चात भी उन्हीं कर्मों में प्रवृत्ति होगी जिन्हें छोड़कर गया था। अनित्य का फल अनित्य ही होता है।

(शका)—आपने तो पहले कहा है, 'जब जीव का मोक्ष होता है तब इस सूक्ष्म शरीर का नाश होता है ?

(समाधान)—एक परान्त काल अर्थात् ३११०४०००००००००० वर्षों के लिये नाश समझना चाहिये। सदा के लिये किसी वस्तु का हमारे सिद्धान्त में नाश नहीं होता है। हम अभाव से भावात्मक पदार्थ की उत्पत्ति नहीं मानते हैं। हम सत्कार्य-वादी हैं। कारण नित्य होता है। कार्य अनित्य। खर्बों वर्ष क्या थोड़े हैं, इस में तो ३६ हजार

बार सृष्टि और प्रलय हो जायेगा । एक प्रान्त काल इकतिस नील दश खरब चालिस अरब का होता है ।

(शका)—जब सूक्ष्म शरीर का नाश नही होता है तो स्थूल शरीर का क्यो नाश मान लिया है । यह क्या पूर्ववत उत्पन्न नही होता ?

(समाधान)- स्थूल शरीर सस्कारो का आधार या आश्रय नही है । इनका आश्रय सूक्ष्म-शरीर है । वह सस्कारो को लेकर परलोक गमन करता है । स्थूल शरीर पाचों भूतो से बना है । पन्च भूता का नाश नही होता, शरीर का और इसके मेल का नाश होता है । शरीर की समाप्ति पर भूत अपने कारण मे चले जाते हैं । केवल शरीर की आकृति का नाश हुआ है । आकृति तो स्थूल शरीर का उपादान कारण नही है । उपादान कारण तो पाच भूत हैं । यदि पुन जीवात्मा शीघ्र ही मनुष्य के शरीर मे आगया, तो वह भी तो पूर्व शरीर के समान ही होगा । मनुष्यो के शरीर तो एकसमान ही होते है, केवल आकृतियो या वयका अन्तर होता है । किसी भी शरीर से जीवात्मा भाग ले सकता है । हा ! अच्छा बुरा शरीर कर्मो के आधार पर मिलता है ।

सूक्ष्म शरीरो का निर्माण करना, और सूक्ष्म भोग देना यही पचतन्मात्राओ की अर्थवत्ता है । जब सृष्टि बनते बनते, परिणत होते होते तन्मात्राओ के रूप मे परिणत होती है परमाणु रूप होती है, उस समय तन्मात्राओ से सूक्ष्म शरीरो का निर्माण होता है । चित्त बुद्धि अहकार मन और इन्द्रिया पहिले ही उत्पन्न हो चुके होते हैं । ये सब मिलकर पन्च तन्मात्रो से निर्मित सूक्ष्म शरीर मे प्रवेश करते है । आकाश तन्मात्रा के अन्दर इन सब सूक्ष्म-शरीरो का निवास होता है । अभी स्थूल भूत और स्थूल सृष्टि उत्पन्न हुई हुई नहीं होती है ये पीछे बनती है । उस समय केवल सूक्ष्म-सृष्टि जिसे अहकारिक सृष्टि कहते है, वही बनी होती है । अनेक वर्ष इस अहकारिक सृष्टि के बनने मे लग जाते हैं । स्वर्ग लोकादि सूक्ष्म जगत् का निर्माण भी इसी काल मे होता है । स्वर्ग प्राप्त आत्माये पञ्चतन्त्राओ से निर्मित इस स्वर्ग लोक मे आनन्द का उपभोग करने लगती है । दूसरे जीव भी अपने सूक्ष्म शरीरो के साथ अल्प कालिक सक्ष्म भोग मे प्रवृत हो जाते है । स्थूल जगत का निर्माण होने पर अपने-अपने भोगानुसार उस मे जन्म ले लेते हैं ।

(शका) मुक्त आत्मायें क्या एक परान्त काल तक स्वग मे निरन्तर वास करती हैं, क्या प्रलय का उन पर कोई प्रभाव पडता है ?

(समाधान) महा-प्रलय रात्रि मे तो मुक्त और बद्ध सब को ही शयन करना पडता है ।

(शका) क्या स्वर्ग मे दिन रात भी होते हैं ?

(समाधान) आप स्वर्ग मे दिन-रात की बात पूछते हैं । इस भूमि पर भी भारत के समान दिन रात नही होते । उत्तरी ध्रुव मे और आयरलड के ऊपर ६ मास का दिन और ६ मास की रात्रि होती है और उषा काल भी २४ घन्टे का होता है । २४ घन्टे तक सूर्य दिखता ही नही है ।

स्वर्ग लोक तो दिन रात के झगडो मे सर्वथा मुक्त है । सूर्य का आलोक वहा अपना प्रभाव नही रखता । सूर्य का प्रकाश तो स्थूल नेत्रो के लिये आवश्यक है । सूक्ष्म

नेत्र या दिव्यचक्षु हो तो यहां इस मानव जीवन मे भी सूर्य की आवश्यकता नही। स्वर्ग-वासी आत्माओं के तो शरीर ही सूक्ष्म होते है। स्थूल नही। उन के नेत्र दिव्य होते हैं। पारदर्शी होते हैं। उनको सूर्य के प्रकाश की जरूरत नही होती। इस लोक की अपेक्षा कुछ तो वहां विशेषतायें हैं, जिन के कारण सब स्वर्ग को पसन्द करते है। सामान्य रूप से अग्नि-तन्मात्रा का आलोक वहां होता है, जिस से भौतिक अग्नि और सूर्य आदि बने हैं।

कर्मफल का विभाग

(शंका) इतना बडा हिसाब किताब सूक्ष्म विशाल सृष्टि का कौन रखता है। किस को स्वर्ग मे भेजना, किस को नरक म भेजना। किसी को कैसा शरीर देना, किसी को कैसा ?

(समाधान) इस लोक मे ही आप एक खण्ड भूमि लेकर देखे। उसमे आप बाग लगवावें और उस मे पाँच सात सौ किस्म के वृक्ष, जडियां, बूटियां, ओषधियां, फल और वनस्पति बोवे। आप तो उन को केवल खाद और पानी ही देते हैं। जगल मे होने वालो को तो यह भी नही दिया जाता। आम के बूटे और फल मे अलग रस, नीम्बू के बूटे और फल मे अलग रस। सब मे अलग रस का विभाजन कौन करता है। पृथक्-पृथक् स्वाद, पृथक् रग रूप, पृथक् पृथक् लम्बाई चौडाई अन्दर बैठा बैठा कौन करता रहता है। जैसे इस बाग मे भूमि जल, धूप, हवा आदि पालन, पोषण, रक्षण, विभाजन आदि करते रहते हैं, उसी प्रकार प्रकृति देवी इस सूक्ष्म और स्थूल जगत् म करती रहती है।

(शका) आप ईश्वर को क्यो नही विभाग-कर्ता मानते है।

(समाधान) यदि यह सब कार्य ईश्वर के ही मान लिये जाय तो प्रकृति क्या करेगी। इसको भी तो कुछ कार्य करना चाहिए। परिणाम धर्म या विकास तो प्रकृति और उसके कार्यों मे हो रहा है। ईश्वर मे तो नही हो रहा। तब ईश्वर को कैसे मान ल अत परिवर्तन, प्रपेक्ष विभाजन, विकास, एव कार्य रूप म परिणत ये सब प्रकृति के ही कार्य है। हां ! ईश्वर के सन्निधान से ही प्रकृति करती है। अकेली प्रकृति नही कर सकती। इसका आरोप ईश्वर मे कर दिया जाता है। कहा जाता है, ईश्वर कर रहा है। असग और निष्क्रिय मे कर्ताधर्म नही होता है।

(शका) तब तो ईश्वर बेकार और व्यर्थ ही हो जायेगा।

(समाधान) ईश्वर बेकार और व्यर्थ नही है। इसका कार्य प्रकृति म गति क्रिया-हरकत पैदा करना है। आगे सब कार्य प्रकृति म स्वय ही होते रहते हैं या प्रकृति स्वय ही करती रहती है। ईश्वर का तो उसे केवल सन्निधान ही चाहिए। इस ईश्वर के सन्निधान से इस प्रकृति देवी म भी चेतना सी पैदा हो जाती है। और यह चेतनवत् कार्य करने लगती है जैसे मनुष्य के शरीर म जीवात्मा का सन्निधान चित्त के साथ मे है। इस आत्मा के सन्निधान म चित्त भी चेतन सा बन कर अन्त करण, इन्द्रियो, स्थूल, सूक्ष्म शरीरो मे सब कार्य कराता रहता है। या जसे बडी भारी मशीन का एक छोटा सा बिजली का स्विच गतिशील कर देता है। इसी प्रकार प्रकृति के कारण-कार्यात्मक जितने भी

परिणाम-भाव हर समय होते रहते हैं उन सब को गतिशील कर देने मे ईश्वर ही निमित्त कारण है। शेष सब कार्य प्रकृति स्वय करती रहती है। इसी के ये सब धर्म कर्म है। यदि ईश्वर को ही सब प्रकार कर्ता मान ले, तो इसका कोई करण भी मानना पडेगा। क्योकि विना करण के कोई भी कर्ता कुछ भी व्यापार या कार्य नही कर सकता। और उपनिषद कहती है।

"न तस्य कार्यकरण च विद्यते'

उस ईश्वर का कोई कार्य या करण नही है।

(शका) इसी मन्त्र के अन्त मे जो कहा है—

"परास्य शक्ति विविधैव श्रूयते,
स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया च।"

इस ब्रह्म की स्वाभाविक ज्ञान बल और क्रिया है। इसके द्वारा सब कार्य कर सकता है। फिर आप अकर्ता कैसे मान रहे है।

(समाधान) यहा जो स्वाभाविक ज्ञान, क्रिया और बल कहे हैं ये वास्तव मे प्रकृति के सत्त्व रज, तम के ही नाम है। ज्ञान से तात्पर्य सत्त्व का है। क्रिया से तात्पर्य रज का है। बल का तात्पर्य स्थिति है। 'प्रकाश क्रिया-स्थिति शील' ही तो योग ने प्रकृति के धर्म माने है।

ईश्वर भी नित्य है, और प्रकृति भी नित्य है। इन दोनो का सम्बन्ध भी नित्य है। इसी सम्बन्ध से स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया का ईश्वर मे आरोप कर दिया है। वास्तव मे ये प्रकृति के ही तीन गुण हैं।

"असङ्गोऽय पुरुष।"

सांख्य अ १। सू १५

यह वचन उपनिषद् और सांख्य दर्शन का है। यह पास रहते हुए भी असङ्ग रहता है। जैसे जल के अन्दर रहते हुए भी कमल का पत्ता पानी से गीला नही होता है। पानी से अलिप्त रहता है। पानी मे भीगना नही है। इसी प्रकार पुरुष भी व्यापार से लिप्त नही है। इसी लिये पुरुष के लिये निष्क्रिय विशेषण भी आता है। भगवान् मे क्रिया नही भगवान् के समीपस्थ होने से प्रकृति मे स्वय ही क्रिया होने लगती है। यह नही कि भगवान् उस क्रिया या गति को कराता है, या गति का कर्ता है। वह तो वस्तुत असग और ही निष्क्रिय ही है।

(शका) ऐसा क्यो न मान ले, कि ईश्वर भी जीवात्मा की तरह प्रकृति से करण लेकर सृष्टि की रचना कर देता है, जैसे प्रकृतिनिर्मित अन्त करण जीवात्मा के सब कार्य करते रहते हैं, उसी प्रकार कुछ करण परमात्मा के भी प्रकृति विकृति सम्बन्धी सब कार्य कर दगे।

(समाधान) फिर जीवात्मा और परमात्मा मे क्या भेद रहा ? जैसे जीवात्मा कर्ता भोक्ता है ऐसे ही परमात्मा भी कर्ता भोक्ता हो जायेगा। कर्म बन्धन मे फस जायेगा।

(शका) ईश्वर सर्वव्यापक है अत उसको किसी करण की जरूरत नहीं। वह अपनी सर्वव्यापकता से सब कुछ कर सकता है।

(समाधान) जब इसको करण की जरूरत नहीं है तो कर्तापन की या कर्ता बनने की ही क्या आवश्यकता है। सृष्टि स्वय ही इसके सन्निधान से कारण-कार्योन्मुख हो जायेगी।

(शका) प्रकृति तो जड है, वह स्वय कुछ नहीं कर सकती। इस लिये उसको चेतन ब्रह्म की जरूरत है। जिससे वह अपने सब कार्य कर करा सके।

(समाधान) हम भी तो ऐसे चेतन ब्रह्म को स्वीकार करते है जिसके सन्निधान मे प्रकृति स्वय क्रिया-शील हो जाये। इससे न तो ब्रह्म का कुछ विगडता है, न वह कर्ता ही बनता है।

(शका)—आप सब जगह ईश्वर मे आरोप की बात करते है। जैसे आप गुण गुणी का अभेद मानकर कारण-कार्यात्मक परिणाम स्वीकार करते हैं ऐसे ही ब्रह्म के ही गुण मानकर अभेद स्वीकार कर लें, फिर वह अकर्ता इत्यादि भी सिद्ध हो जायेगा।

(समाधान)—जिन पदार्थों मे हमने गुण गुणी का अभेद माना है वे सब प्रकृति के कार्यात्मक रूप हैं। जब यह परिणाम भाव को प्राप्त होते हैं, तो उनमे गुणो का प्रादुर्भाव हो जाता है। जैसे जब पृथिवी परिणाम भाव को प्राप्त हुई तब उसमे ग्यारह (११) गुण अभिव्यक्त हो गये। परन्तु ईश्वर का तो परिणाम नही होता है यदि ईश्वर मे परिणाम माने तो उसमे भी गुण या धर्म उत्पन्न हो सकते हैं। परन्तु परिणाम तो प्रकृति या उसके कार्यों का होता है। अत गुण भी उन्ही मे प्रकट होते है। यदि ईश्वर मे भी ऐसा परिणाम स्वीकार कर लोगे तब तो वह भी प्रकृति जैसा हो जायेगा। भेद यही होगा, उसमे चेतना की उत्पत्ति होगी, इसमे जडो की होती है। तब फिर एक अन्य ऐसा ब्रह्म स्वीकार करना पडेगा जो निष्क्रिय हो असङ्ग हो। हम जो प्रकृति मे क्रिया या परिणाम मानते हैं वह ब्रह्म के सन्निधान से मानते हैं। उपादान कारण के रूप मे नही। ब्रह्म चेतन है। इसके चेतन होने से प्रकृति स्वय क्रियाशील होने लगती है। जैसे यदि अग्नि मे लोहे का टुकडा पड जाये तो वह भी अग्नि के समान तपने लगता है। दाह और प्रकाश करने लगता है। इस मे अग्नि का क्या विगडता है। ऐसे ही इस अग्नि रूप चेतन ब्रह्म मे प्रकृति पडकर स्वय ही चेतनवत् सी बन कर, परिणाम भाव को प्राप्त होकर नाना प्रकार के पदार्थो और जगत् को उत्पन्न करने लगती है।

प्रलय काल मे भी प्रकृति मे क्रिया

(शका)—ईश्वर की समीपता या सन्निधान तो सदा ही बना रहता है। फिर सदा एक समान क्रिया या कार्य क्यो नही होते रहते। विषमता क्यो देखने मे आती है?

(समाधान)—क्योकि प्रकृति परिणामिनी है। इसके परिणाम भिन्न भिन्न रूपो मे होते है। यद्यपि चेतन से तो गति एक समान ही प्राप्त होती है। जैसे मोटर तो केवल गति देता है, उस गति से चाहे मशीन छापे, चाहे चक्की आटा पीसे और चाहे पावर लूम कपडा बुने।

(शका)—तब परिणामिनी प्रकृति मे प्रलय काल मे भी क्रिया बनी रहनी चाहिये, क्योकि वह परिणामिनी है, साम्य भाव नही आना चाहिये। परिणामिनी मे साम्य अवस्था कैसे आयेगी ?

(समाधान)—चेतन पुरुष सर्वगत नित्य है। प्रलय काल मे भी चेतन का सम्बन्ध या सम्पर्क बना रहता है। अत प्रकृति मे भी सूक्ष्म सी क्रिया बनी रहती है। वहाँ गुणो की साम्यावस्था होती है, विषमता नही होती। किसी प्रकार का कर्म या व्यापार नही होता। पर चेतन का सम्बन्ध बना रहता है। प्रलय मे भी सम्बन्ध का अभाव नही हुआ। न व्याप्य व्यापक भाव सम्बन्ध का ही विच्छेद हुआ है। यह सम्बन्ध ही तो गति का हेतु है। इसके होते गति का अभाव कैसे हो सकता है। हाँ केवल गुणो की विषमता नही होती है। उदाहरण के रूप मे जैसे चित्त और जीवात्मा का सयोग है। वहाँ कर्म का अभाव नही हो सकता। जागृत मे नाना प्रकार के कर्म और व्यापार करता है। स्वप्न मे भी अन्त करण का स्मृति-जन्य व्यापार सूक्ष्म शरीर मे होता रहता है। निद्रा मे भी सुख दु ख उत्पन्न होता है। जो चित्त का ही कर्म है। इसीलिये निद्रा को भी अन्त करण की वृत्ति कहा है। जहाँ चेतन का सयोग है वहाँ कर्म का अभाव नही हो सकता है। जैसे निद्रा मे अन्त करण मे सूक्ष्म सा सुख दु ख धर्म उत्पन्न हो रहा है। अन्त करण मे क्रिया का सर्वथा अभाव नही हुआ है। इसी प्रकार प्रलय में भी प्रकृति और ब्रह्म का सम्बन्ध है। अत सामान्य क्रिया का अभाव नही हो सकता है। हाँ विशेष क्रिया का अभाव अवश्य हुआ हुआ है अर्थात् जो तीनो गुणो की विषमता से विशेष क्रिया उत्पन्न होती है वह नही है। गुणो की साम्य अवस्था है। यह नहीं कि प्रकृति मे सूक्ष्म कम्पनो का अभाव हो गया है। यदि सूक्ष्म क्रिया का अभाव हो जाये तो सामान्य क्रिया भी न [illegible]

[illegible] होती है। [illegible] अभाव [illegible] का हमे [illegible] अभाव [illegible] शरीर

प्रकृति मे भी प्रलय को समझना चाहिये। जिसमे सब कार्यो और व्यापारो का अभाव होता है। परन्तु सामान्य क्रिया अति सूक्ष्म रूप मे बनी रहती है।

(शका)—यदि प्रकृति मे सामान्य क्रिया सदा बनी रहती है, तो प्रकृति की साम्यावस्था का कुछ भी प्रयोजन सिद्ध न हुआ ?

(समाधान)—तब तो मनुष्य की निद्रा से भी कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होना चाहिये, क्योकि निद्रावस्था मे रक्तपरिभ्रमण, हृदयस्पन्द श्वासोच्छ्वास पाचनादि सब सामान्य क्रियाये काम करती है। निद्रा से तो बडा भारी प्रयोजन सिद्ध होता है। आलस्य, प्रमाद, शरीर इन्द्रियो की थकावट सब दूर हो जाती है। मनुष्य फिर तरोताजा हो जाता है। पुन कार्य करने की शक्ति आ जाती है। इसी प्रकार प्रकृति मे प्रलय काल की अवस्था आ जाने से विश्राम मिलता है। वह तरोताजा और नई सामर्थ्य युक्त हो जाती है।

(शका)—मनुष्य तो चेतन है, थक जाता है, इसलिये विश्राम की आवश्यकता है। प्रकृति तो जड है, उसे विश्राम की क्या आवश्यकता ?

समाधान—थकावट चेतन मे नही, चेतन से बने जड मे होती है। थकावट तो देखो ! स्थूल शरीर और इन्द्रियो मे होती है। ये प्रकृति की तरह जड है। आत्मा मे थकावट नही होती। वह चेतन है, चेतन मे थकावट कहाँ। देखो ! आत्मा तो तीनो अवस्थाओ मे जागता रहता है क्योकि तीनो अवस्थायें वृत्ति वाली हैं। वृत्ति आत्म-सयुक्त चित्त मे ही होती हैं। जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति तीनों में वृत्ति रहती है यह पहले बताया जा चुका है। शरीर की तरह प्रकृति भी जड है। भगवान् के सन्निधान से चेतन सी बनी है, अत थकावट महसूस करती है। इसलिए विश्राम की आवश्यकता होती है। निद्रा से जैसे शरीर की थकावट दूर होती है, प्रलय काल मे लम्बे विश्राम से इसकी भी थकावट दूर हो जाती है। पुन सृष्टि रचना करने के लिये तरोताजा हो जाती है। इसके जितने भी पदार्थ कार्यात्मक थे बहुत काल तक भोग देते रहने से जीर्ण शीर्ण पुराने हो गये थे। जैसे स्वर्ण के आभूषण पुराने हो जाते हैं तो सुनार द्वारा भट्टी मे कुठाली मे रखे जाकर नवीनतम हो जाते हैं। इसी प्रकार प्रलय में विश्राम करके तरोताजा होकर प्रकृति पुन कार्य सृजन मे उद्यत हो प्रवृत्त हो जाती है। अस्तु। ये तन्मात्रायें सूक्ष्म शरीर का निर्माण करके इस सब प्रकार के सूक्ष्म भोग प्रदान करती हैं। मोक्ष पर्यन्त जीव का साथ देती हैं। यही महान् उपकार इनमें अर्थवत्ता रूप धर्म है। इसकी अर्थवत्ता में ब्रह्म की व्यापकता का सर्वत्र अनुभव करना चाहिये।

इति समष्टि गन्धतन्मात्रा मण्डलम्

इति द्वितीयाध्याये प्रथमः खण्ड

(इत्यष्टाविंशावसरम्)

द्वितीय खण्ड

२७ वा आवरण

समष्टि रस-तन्मात्रा मण्डल

पाँचो रूपो मे ब्रह्म-दर्शन

समष्टि रस-तन्मात्रा व्यष्टि रस-तन्मात्रा का उत्पादान कारण है। समष्टि रस तन्मात्रा से व्यक्तिगत रस तन्मात्रा बनती है।

योगी या सूक्ष्म शरीराभिमानी सूक्ष्म-रसनेन्द्रिय से जिस रस-तन्मात्रा का उपभोग करता है, व्यवहार मे लाता है वह व्यष्टि रस-तन्मात्रा है। समष्टि रस-तन्मात्रा से व्यष्टि रूप मे परिणत हुई है। समष्टि रस-तन्मात्रा सदा आकाश मे सर्वत्र रहती है। व्यष्टि रस-तन्मात्रा उससे बन बन कर आती रहती है। वह लौट कर परिणत होकर फिर समष्टि रस-तन्मात्रा के कोष मे सुरक्षित हो जाती है। प्रलय पर्यन्त यह क्रम चलता रहता है।

ब्रह्म के सन्निधान से चेतन सी बनी रस-तन्मात्रा इस कारण कार्य रूप परिणाम चक्र को घुमाती रहती है।

समष्टि रस-तन्मात्रा मण्डल

प्रथम रूप में ब्रह्म-विज्ञान

(रस-तन्मात्रा का प्रथम रूप)

१. रस-तन्मात्रा के स्थूल रूप में—जल-भूत का पूर्व परिणाम रस-तन्मात्रा है। रस-तन्मात्रा ही जल-महाभूत मे परिणत हुई है। रस-तन्मात्रा जल-महाभूत की अनुद्भूत सूक्ष्म अवस्था है। जल-महाभूत उद्भूत अवस्था है। इस जल को स्थूल रसना इन्द्रिय से बोध हो जाता है। रस-तन्मात्रा अनुद्भूत अर्थात् साधारणतया अप्रकट सूक्ष्म अवस्था है। इसका ज्ञान सूक्ष्म रसनेन्द्रिय से होता है। सूक्ष्म रसनेन्द्रिय सूक्ष्म शरीर मे रहती है अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र मे विद्यमान सूक्ष्म शरीर के बुद्धि मण्डल में वास करती है। स्थूल रसना इन्द्रिय स्थूल शरीर में स्थूल जिह्वा मे ठहरी है। स्थूल रस या स्वाद स्थूल जिह्वा इन्द्रिय से गृहीत होता है और स्थूल रस या स्वाद सूक्ष्म इन्द्रिय तक पहुंचते-पहुँचते सूक्ष्म रसतन्मात्रा रह जाती है। स्थूल रस का भोग स्थूल शरीर कर लेता है जिसका ग्रहण सूक्ष्म रसना इन्द्रिय करती है वही रस-तन्मात्रा है। यह सब योगाभ्यास-गम्य है।

सूक्ष्म रसना सूक्ष्म शरीर के भाग बुद्धि-मण्डल मे वास करती है। स्थूल रस का भोग तो प्राणिमात्र करते हैं, सूक्ष्म दिव्य रस-तन्मात्रा का भोग योगी, सूक्ष्म-शरीराभिमानी आकाशचारी आत्माये, अथवा स्वर्ग मे निवास करने वाली पुण्य आत्मायें किया करती है।

गन्ध-तन्मात्रा से, पूर्व वर्णित जितने भी सूक्ष्म पदार्थ सूक्ष्म शरीर के भोग के लिये बनते हैं, उनमें इस रस-तन्मात्रा का भी सहयोग होता है। यह उसका सहकारी

उपादान कारण है। योग-भाष्यकार ने इस विषय मे कहा है, कि योगी को इसका प्रत्यक्ष करने के लिये—

'जिह्वाग्रे रस संवित्।'

जब भी योगी जीभ के अगले भाग मे रस तन्मात्रा के विषय मे अभ्यास करने लगता है तो कुछ काल के पश्चात उसे दिव्य रस की अनुभूति होने लगती है। यह सूक्ष्म रसना इन्द्रिय जो ब्रह्मरन्ध्रस्थ-सूक्ष्म शरीर मे विद्यमान है, वहा पर इस दिव्य रस का संवेदन होता है, जिह्वा के अग्र भाग मे किसी रस का अभ्यास करने से वह स्थूल से सूक्ष्म रस-तन्मात्रा के रूप मे परिणाम भाव को प्राप्त होता हुआ, जिह्वा के अग्रभाग मे वर्तमान सूक्ष्म ज्ञान वाहक तन्तुओ के द्वारा ब्रह्मरन्ध्र मे सूक्ष्म रसना इन्द्रिय पर पहुंच कर अपना प्रत्यक्ष ज्ञान कराता है।

सूक्ष्म गन्ध जैसे गुण भेद से अनेक प्रकार की हैं इसी प्रकार रस भी गुणो के भेद से अनेक प्रकार का है। एक रस के अन्तर्गत सब प्रकार के रसों को करके इसका नाम रस-तन्मात्रा है। जैसे मीठारस, खट्टा रस, नमकीन रस, इन सबके साथ रस शब्द का प्रयोग होता है। ये सब एक ही रस के परिणात्मक गुण है।

यह रस-तन्मात्रा सूक्ष्म-शरीरो के निर्माण मे और इसके बने हुए सूक्ष्मपदार्थो मे तथा सूक्ष्म भोग मे प्रयुक्त होती है। यही इसका स्थूल-रूप है।

जब यह परिणाम भाव को प्राप्त होकर किसी पदार्थ का निर्माण करती है, उसी अवसर मे ब्रह्म की चेतन सत्ता का अनुभव करना चाहिये कि किस प्रकार इसके साथ चेतना का सम्बन्ध है और वह किस प्रकार इस सूक्ष्म गन्ध मे ओत-प्रोत है। इसकी सूक्ष्मता का अनुभव हो जाने पर ब्रह्म की सूक्ष्मता का भी अनुभव होता जाता है।

समष्टि रस-तन्मात्रा मण्डल

द्वितीय रूप में ब्रह्मदर्शन

(रस-तन्मात्रा का द्वितीयरूप)

२. रस-तन्मात्रा के स्वरूप में—

रस-तन्मात्रा का अपना रूप रस है। रस-तन्मात्रा का धर्म रस है। यह रस सदा रस-तन्मात्रा मे रहता है। कभी उस मे अलग नही होता। रस का और रस-तन्मात्रा का अभेद है, स्वरूप है। गुण गुणी का और धर्म-धर्मी का अभेद है। रस तन्मात्रा का रस स्व-स्वसामान्य धर्म है।

जहाँ रस-तन्मात्रा होगी वहाँ रस भी होगा। यह रस रस-तन्मात्रा मे भी है और रस-तन्मात्रा के गुण-रूप परिणामो में भी है।

रस के जितने भी भेद चखने मे आते है, ये रस के परिणामात्मक धर्म है। रस-तन्मात्रा के ही दूसरे परिणाम है। अपने वास्तविक स्वरूप से अलग नही रह सकते है। इस प्रकार परिणामो मे उपादान कारण और निमित्त कारण का भी ज्ञान होना चाहिए। धर्म-धर्मी का अनुभव होना चाहिये।

इस प्रकार संसार में जितने भी स्वाद हैं, सामान्य रस के परिणामात्मक गुण हैं। हमारे बहिर्मुख दैनिक जीवन में परिणत रसों का ही अभ्यास होता है। उन्हें जानने या पहचानने में हम अधिक समय नहीं लगाते। मीठे रस को हम तत्काल पहिचान लेते हैं। पर मीठे के भी कितने परिणाम हैं। इन सब परिणामों की विभिन्नता देख कर हमें आश्चर्य होता है। मीठे रस को ही लीजिये। हलवाई की दूकान पर सब मीठा ही रस है। फिर प्रत्येक मिठास में बड़ा भारी भेद है। जलेबी, इमरती, जलेबा में मीठा रस मय होता है पर तीनों के मीठे रस में अन्तर है। लड्डू, बुन्दी, बेसन, खोये, मूंग, मगद, कसार, सोंठ, सौंफ, अजवायन, शतावरी, मलाई आदि अनेक प्रकार का होता है पर सब का ही मिठास भिन्न है। हलवा कितने प्रकार का होता है। आटे, रवे, बादाम, पिस्ते, गाजर, पपीता, पेठा, शकरकन्दी, आलू आदि बहुत सी वस्तुओं का बनता है। सब के मिठास में कितना अन्तर, जिसके चखते ही आप तत्काल कह देते हैं यह हलवा रवे का है, यह मोहन हलवा, यह गाजर का है। यह सोहन टिकिया है। इसी प्रकार बंगाली मिठाइयाँ हैं। दूध फाड़ कर पनीर से बनाई जाती है। विधि अलग है। रसगुल्ला, चमचम आदि और देश विदेश के भेद से सब के मिठास में कितना भेद है। ऐसे ही कराची, मारवाड़ी, गुजराती, मद्रासी, बिहारी आदि प्रान्तों की विभिन्न मिठाइयाँ हैं, सब का मिठास परिणाम सब से जुदा। फलों की मिठास इन सब से निराली है। आम, सन्तरा, चीकू, खजूर, खरबूजा, सरदा, शरीफा, केला, सेव, अंगूर आदि सब ही तो मीठे हैं, क्या सब का मिठास एकसा है? इसी प्रकार मेवा में किशमिश, छुहारा, अजीर, चिलगोजा, सूखी खजूर, पिस्ता, बादाम, अखरोट सब ही तो मीठे हैं, क्या इस मिठास के परिणामों के भेद किसी तुला से तोले जा सकते हैं। ईख, पौण्डा, ज्वार आदि घासों की मिठास क्या एक दूसरे से निराली नहीं। यह सब और इसी प्रकार सब अन्य मिठास मीठे रस के परिणामात्मक कार्य हैं। इसी प्रकार खट्टे रस में नीबू, आम, इमली, अनार दाना, टाटरी, खट्टा, आमला, कमरख, करौंदा, गलगल, आदि सब ही के खट्टेपन में भेद है। पर मूल खट्टापन एक ही है। जिसको जान कर हम सब को खट्टा कह देते हैं। ऐसे चरपटा, कसैला, कड़वा आदि रसों के परिणामात्मक सैकड़ों भेद हैं। यह तो प्रसिद्ध स्वादों की बात हुई। प्रत्येक जलीय एवं पार्थिव परिणामकार्य में निराला स्वाद है। प्रत्येक वनस्पति, औषधि फूल, पत्ती, जड़, छाल, मिट्टी, पत्थर आदि सब का ही भिन्न स्वाद है। स्थान स्थान के जल का स्वाद भिन्न है। वर्षा, समुद्र, कूप, नदी, झरने, तालाब आदि सब ही जलों का अलग अलग स्वाद है। पर इन सब स्वादों में एक सामान्य स्वाद या रस जिसके कारण हम सब को स्वाद कह रहे हैं। यही सामान्य स्वाद रस तन्मात्रा है, जो अन्य स्वादों में परिणत होती जाती है।

जब हम किसी अनजाने पदार्थ को डरते डरते जिह्वा से छुआते हैं तो उसका स्वाद आता है। सामान्य रस को हम खूब जानते हैं, नित्य उसका स्वाद लेते हैं परिणामात्मक रसों को जिह्वा से छूने से पीछे सूक्ष्म रसनेन्द्रिय पर पहुँचते हैं तो रस-तन्मात्रा में पलट जाते हैं। इस रस-तन्मात्रा के अनुभव का हमें नित्य अभ्यास है उसी अभ्यास से हम पदार्थ को जिह्वा से छूते ही बोल पड़ते हैं, स्वाद आ रहा है। यह स्वाद को हमने सूक्ष्म रसना इन्द्रिय से जाना है। अन्य ज्ञानेन्द्रियों के स्वाद का बोध कराने के लिये

अहकार के सूक्ष्म अश सामान्य और गन्धतन्मात्रा के विशेप का समुदाय ही यहा एक अयुत-सिद्ध द्रव्य रस-तन्मात्रा बनता है। यहाँ तम. प्रधान अहंकार कारण मे कार्य रूप रस-तन्मात्रा की सूक्ष्मता है। इसी को रस-तन्मात्रा का सूक्ष्म रूप कहते है अर्थात् सामान्य विशेप का परस्पर संघात ही रस-तन्मात्रा का सूक्ष्म रूप है।

इस अवसर पर जो एक विशेप क्रिया हो कर एक विशेप परिणति जो समष्टि तम प्रधान अहकार मे उस के सह कारण सत्त्व रजस् के साथ मे होती है वह विलक्षण है। गन्ध-तन्मात्रा की अपेक्षा विचित्र है। आश्चर्यमय है। यहाँ इस परिणाम की गति-विधि को ही समाधि का विपय बनाना होता है। यहाँ दिव्य दृष्टि से देखने की यही विशेप प्रक्रिया है। यहा साक्षात् होगा कि किस प्रकार अनोखे ढग से तम प्रधान अह-कार मे सत्त्व रजस् की मात्राये परिणाम पैदा करती है। अन्त मे वह किस प्रकार रस-तन्मात्रा मे परिवर्त्तित हो जाता है। साथ ही यह भी प्रत्यक्ष हो रहा है कि किस प्रकार सजातीय विजातीय धर्मो का नियोजन हो कर ब्रह्मो चेतन सत्ता के सन्निधान से अयुत-सिद्ध द्रव्य रस-तन्मात्रा बन कर तैयार हो रही है। किस प्रकार सूक्ष्मतम तम अहकार सत्त्व राजस् के साथ मिला हुआ रसतन्मात्रा का रूप धारण कर रहा है। ब्रह्म की चेतन सत्ता इस अवसर पर सघात करने वाली प्रेरिका है। उसी ब्रह्म सत्ता का आप को विज्ञान करना है।

अहो विलक्षणता। समष्टि तम प्रधान अहकार केवल बुद्धि का विपय था अब वह रस तन्मात्रा का रूप धारण करते ही दिव्य रसना का विपय बन गया। दिव्य रसना से चखा जाने लगा।

सक्षेप मे समझावे तो—सामान्य विशेप के भेद से अनुगत समष्टितम.-अहंकार समुदाय अयुतसिद्ध द्रव्य ही गन्ध-तन्मात्रा का सूक्ष्म रूप है। इस परिस्थिति मे समष्टि तम. अहकार का समष्टि रस-तन्मात्रा के रूप मे परिणाम हुआ है और वह समष्टितम. अहकार धर्म-लक्षण अवस्था रूपो मे परिणाम भाव को प्राप्त हो कर रस तन्मात्रा के स्थूल रूप मे पलट गया है।

रस-तन्मात्रा की सूक्ष्मता को इस प्रकार भी समझिये—दूर देश मे आम रखा है। योगी उस पर सयम करता है। धारणा ध्यान समाधि का उसको विपय बनाता है। स्थूल भूत आम से स्थूल भूत के परिणाम आम के विशेप रस-स्वाद पर पहुँचता है। अधिक तन्मय होता है, तो सामान्य रस पर पहुँच जाता है। जिस सामान्य का यह आम विशेप परिणाम है। इससे भी गहनतम सयम की गहरी स्थिति मे रस-तन्मात्रा के कारण भूतपूर्व रूप जड—सत्तात्मक तमः प्रधान अहकार का साक्षात्कार करता है। यह जडसत्तामय तम. अह कार ही तो रस-तन्मात्रा मे परिणत हुआ है। यहा सामान्य तो तम. प्रधान अहंकार है, और विशेप रस-तन्मात्रा है। इन का समुदाय ही अयुतसिद्ध द्रव्य है। रस की विशेपता जिस से सामान्य रस के परिणाम-भूत गुण आम के रस (स्वाद) को जाना गया है यह रस-तन्मात्रा का परिणामात्मक गुण है।

रस-तन्मात्रा का यह सूक्ष्म रूप तीसरा रूप है। योगी इस परिणामात्मक सम्बन्ध का प्रत्यक्ष करता है। कारण से कार्य मे परिणाम प्रतिक्षण होता ही रहता है।

योगी को इन तन्मात्राओ के सजातीय विजातीय सयोगात्मक परिणाम मे उस ब्रह्म का प्रत्यक्ष करना चाहिये। इस अभेद मे ही ब्रह्म का अनुभव होता है। कारण कार्य एव उन के परिणाम काल मे अनुस्यूत ब्रह्म का प्रत्यक्ष होता है।

समष्टि रस-तन्मात्रा मण्डल
चतुर्थ रूप मे ब्रह्म विज्ञान
(रस-तन्मात्रा का चतुर्थ रूप)

४ रस-तन्मात्रा के अन्वयरूपो में—

रस तन्मात्रा का अपरिणत मूल प्रकृति के साथ परम्परा से कारण कार्य रूप सम्बन्ध है, यही रस-तन्मात्रा का अन्वय है।

समष्टि रस-तन्मात्रा समष्टि तम अहकार से कार्य रूप मे परिणत हुई। समष्टि तम अहकार कारण है और समष्टि रस-तन्मात्रा कार्य है। समष्टि तम अहकार समष्टि महत्तम से कार्य रूप मे परिणत हुआ है। समष्टि महत्तम कारण है और समष्टि तम अहकार कार्य है। समष्टि महत्तम अव्यक्त, अपरिणाम रूप नित्य मूल-प्रकृति से कार्यरूप मे आया है। समष्टि महत्तम कार्य है और मूल प्रकृति कारण है। मूल प्रकृति अजा है। शाश्वत् है, नित्य है। इस की सत्ता धर्म है। धर्म धर्मी का अभेद होता है। अत यह इस का स्वरूप है। क्रिया और ज्ञान इसमे प्रभु के सम्पर्क होने के कारण प्रकट होते हैं। अपने स्वरूप और गुणो को साथ लिये लिये सब कार्यो मे अनुपतित होती आती है। प्रकृति स्वय किसी का परिणाम नही। इस का कोई कारण नही। यह कार्य रूप नही है। पर अपने कार्यो म—कार्य रूपो मे परिणत होती जाती है। कार्य से अभिन्न रहती है। कारण कार्य का अभेद होता है।

रस-तन्मात्रा मे मूल प्रकृति अपने गुणा सहित अपन स्वरूप मे अनुपतित हुई है। प्रकृति की सत्ता है तो रस तन्मात्रा है और उस के कार्यात्मक परिणाम हैं। सृष्टि के आरम्भ से कार्योन्मुख मूल प्रकृति अपने स्वरूप और गुणो के साथ अनुपतित होती हुई रस-तन्मात्रा मे पहुँची है। बहुत लम्बी दूरान्वयी यात्रा के कारण मुख्यरूप से सत्ता रूप को लेकर पहुँच पायी है। ज्ञान और क्रिया विभक्त होते-होते गौण हो गये हैं। इस लिये *रस-तन्मात्रा मे प्रधानतया सत्ता रस रूप मे है। ज्ञान गुण ज्ञेय बन गया है। क्रिया* विलुप्त सम हो गयी है। है सही, पर अत्यन्त अज्ञात से रूप मे। इस प्रकार रस-तन्मात्रा म अन्वयरूप चरितार्थ होता है।

रस तन्मात्रा के अन्वय रूप गन्ध-तन्मात्रा से भी सूक्ष्म अवस्था मे ब्रह्म की सूक्ष्मातिसूक्ष्म व्यापकता का अनुभव होना चाहिये। जिस से इस निष्कर्ष पर पहुँचोगे कि रस पदार्थ की परिणत होती हुई स्थिति ब्रह्म के सम्बन्ध से अछूती नही। इस अनुगतन के निमित्त कारण ब्रह्म का भी अभ्यास म साक्षात करना यहा अभिप्रत है। जिससे उस की सर्व-व्यापकता और निमित्त भूत-सन्निधानता बुद्धि मे घर करले।

शका—आप सर्वत्र पुन पुन ब्रह्म के दर्शन की बात ले आते हैं जब दर्शन ही करना है ता एक ही पदार्थ मे हो सकता है। सब मे पुन पुन खोजने, परेशान होने और समय खोने की क्या जरुरत है।

[illegible] यह अनेक प्रकार से गन्ध-तन्मात्रा के साथ मिलकर सूक्ष्म जगत् के निर्माण मे सहायक होती है। जिस प्रकार स्थूल जल के अनेक रस सब प्राणियो के लिये सुख के हेतु होते है उसी प्रकार रस-तन्मात्रा भी अनेकानेक स्वादो [illegible] रसो के रूप [illegible] भाव को [illegible]

है [illegible]

[illegible] यह रस-तन्मात्रा आकाश मण्डल मे सूक्ष्म दिव्य पदार्थों के निर्माण मे सहायक होती है। दिव्य रसो की अनुभूति इसी का तो परिणाम है। योगी इस पर [illegible]

[illegible]

नही होती। जिस प्रकार [illegible] रूप बनकर समा जाती है। यह सूक्ष्म शरीर होते बहुत पतले सूक्ष्म है पर दिव्य नेत्र के प्रकाश मे बडे दिखाई देते हैं।

(शका) क्या सूक्ष्म जगत् मे भी इस लोक के समान भोग विलास होते है, और क्या वहाँ बाल बच्चे भी होते हैं ?

(समाधान) इन कार्यो के लिये यह स्थूल लोक ही है। यू तो अनेक सम्प्रदायो मे यह मान्यता है कि वहा स्वर्ग मे हूरे और अप्सरायें भोगने के लिये प्राप्त होती हैं परन्तु हमारे अनुभव के आधार पर कह सकते है यह अनजाने की बातें हैं वहा केवल ज्ञानेन्द्रियो के ही भोग सूक्ष्म-तन्मात्रायें ही भोगने को मिलती हैं। यह सुखी योनि है और वह भी केवल भोग योनि कर्म योनि नही सकल्प मात्र से ही वहा तृप्ति है। सूक्ष्म शरीर सकल्प से ही वहा चलता है, पैरो की थकाने की वहाँ प्रक्रिया नही। यदि थकावट ही आगयी तो वह स्वर्ग क्या रहा। सदा सुख मे रहना ही तो स्वर्ग है।

जैसे इस लोक मे मनुष्य के शरीर से पुत्र-पुत्रियो के शरीर का निर्माण होता है। स्वर्ग लोक या सूक्ष्म जगत् मे ऐसा कुछ नही है। वहा सूक्ष्म शरीर से सूक्ष्म शरीर का

निर्माण नही होता है। स्वर्ग लोक मे केवल भोग ही प्रधान है वह भी सूक्ष्म पञ्चतन्मा-त्राओ से निर्मित दिव्य भागो का। कर्म और ज्ञान का वहाँ कोई साधन नही। कर्म ज्ञान उपासना, पाप-पुण्य, धर्म अधर्म, वैराग्य और मोक्ष प्राप्ति के साधनो के अनुष्ठान के लिये यही स्थूल मानव लोक ही है। सूक्ष्म जगत् मे यहा की तरह मरण भी नही होता। हा, प्रलय काल मे सब की तरह वहा भी मरण हो जाता है।

इस रस-तन्मात्रा के विज्ञान के साथ ब्रह्म का विज्ञान भी साथ २ करना चाहिये क्योकि यह ब्राह्मी सृष्टि है। इसका निर्माण ब्रह्म के द्वारा ही होता है। कार्य तो यह सब प्रकृति के ही है। ब्रह्म तो केवल चेतनत्त्वेन गति का निमित्त बना है। अत जल के कण-कण मे योग की सूक्ष्म दिव्य दृष्टि और समाधि द्वारा उस चेतना शक्ति का अनुसन्धान करना चाहिये।

इस समस्त विश्व मे सूक्ष्म जल भूत व्याप्त है। और पृथिवी तन्मात्रा मे ओत प्रोत होकर इसका सघात बनाने मे सहयोग दिये हुए है। अत इस से भी सूक्ष्म वह चेतन शक्ति इस के अन्दर ओत प्रोत है। यही इस रसतन्मात्रा की अर्थवत्ता है।

समष्टि सूक्ष्म जगत् की यह रस-तन्मात्रा पोषक बनी हुई है। सूक्ष्म शरीर के जीवन का आधार और आहार यह रस-तन्मात्रा है इसके बिना इनका भी जीवन नही रह सकता है। जैसे इस लोक मे जल-भूमि आदि जीवन के आधार है, इसी प्रकार सूक्ष्म जगत् मे पृथिवी तन्मात्रा और जल तन्मात्रा सूक्ष्म शरीरो के जीवन के ठहरने का आधार हैं, पुराणो आदि मे वरुण लोक मे गमन माना है, वास्तव मे यह सूक्ष्म रसतन्मा-त्रा का जो मण्डल है यही है—यही वह वरुण लोक है। जैसे इस भूमि पर आकाश मण्डल मे मेघ छाये हुए होते हैं इसी प्रकार सूक्ष्म-पृथिवी तन्मात्रा के ऊपर सूक्ष्म जल-तन्मात्रा का मण्डल होता है। जल तन्मात्रा सूक्ष्म पृथिवी तन्मात्रा मे भी ओत प्रोत होकर रहती है। यही इसका महान् उपकार है और यही इसकी अर्थवत्ता है।

इति समष्टि रस-तन्मात्रा मण्डलम्

इति द्वितीयाध्याये द्वितीय. खण्ड:

इति सप्तविंषमापरणम्

तृतीय खण्ड

२६ वा आवरण

समष्टि रूप-तन्मात्रा मण्डल

पांचों रूपों मे ब्रह्म-दर्शन

समष्टि रूप-तन्मात्रा से व्यष्टि रूप-तन्मात्रा का निर्माण होता है। समष्टि रूप-तन्मात्रा पाँच-तन्मात्राओं में तीसरी है। इस समुदायरूप-तन्मात्रा से व्यक्ति रूप तन्मात्रायें परिणत होती है।

योगी या सूक्ष्म शरीराभिमानी जीव सूक्ष्म-नेत्रेन्द्रिय से जिस रूप-तन्मात्रा का उपभोग करता है, व्यवहार में लाता है, वह व्यष्टि रूप-तन्मात्रा है। समष्टि तन्मात्रा सदा आकाश मे रहती है। व्यष्टि-तन्मात्रा सदा उससे एक एक करके व्यक्ति रूप में परिणत होती रहती है। जब इस व्यष्टि रूपतन्मात्रा का उपयोग कर चुकता है तो यह लौटकर फिर समष्टिरूप तन्मात्रा के अक्षय कोष में सुरक्षित हो जाती है। उसी मे सम्मिलित हो जाती है। प्रलय काल के आने तक यही क्रम चलता रहता है।

ब्रह्म की व्यापकता से चेतन सी बनी रूप-तन्मात्रा इस कारण-कार्य रूप परिणाम चक्र को चलाती रहती है।

समष्टि रूप-तन्मात्रा मण्डल

प्रथम रूप में ब्रह्म-विज्ञान

(रूप-तन्मात्रा का प्रथम रूप)

१ रूप-तन्मात्रा के स्थूल रूप में—

अग्नि भूत का कारण रूप-तन्मात्रा है। रूप-तन्मात्रा ही परिणाम-भाव को प्राप्त होकर अग्नि बन जाती है। रूप तन्मात्रा कारण है, अग्नि कार्य। रूप-तन्मात्रा अग्नि महाभूत की अनुद्भूत सूक्ष्म अवस्था है। अग्नि महाभूत उद्भूत अवस्था है। स्थूल अग्नि का स्थूल नेत्र इन्द्रिय से ज्ञान होता है पर रूप तन्मात्रा साधारणतया अप्रकट सूक्ष्म अवस्था है। । सूक्ष्म नेत्र इन्द्रिय से जिसका का ज्ञान हो वह रूप-तन्मात्रा है। स्थूल आँखो से रूप का बोध होता है। सूक्ष्म आंख से रूप तन्मात्रा का। यह सूक्ष्म आख ब्रह्मरन्ध्र मे वर्तमान सूक्ष्म शरीर के अंश बुद्धि मण्डल में है, स्थूल नेत्र स्थूल शरीर मे आख की कनीनिका मे है। स्थूल रूप को स्थूल आख ग्रहण करती है। यह स्थूल रूप सूक्ष्म नेत्रेन्द्रिय तक पहुचते पहुचते सुक्ष्म रूपतन्मात्रा मे परिणत हो जाता है। स्थूल रूप स्थूल शरीर मे रह गया। सूक्ष्म नेत्र से जिसका ग्रहण होता है वही रूप तन्मात्रा है अथवा आप यों समझें स्थूल रूप के सूक्ष्म अंश को सूक्ष्म नेत्र ग्रहण करता है।

स्थूल रूप को तो प्राणिमात्र देखता है, और उसके अनुसार व्यवहार करता है। सूक्ष्म रूप का भोग योगी, सूक्ष्म शरीराभिमानी आकाशचारी आत्मायें अथवा स्वर्ग

बनता है या जल, अग्नि, वायु, आकाश से जल भूत बनता है। इसी प्रकार मुख्यत तामस अहङ्कार से और गौणरूप से सात्त्विक तथा राजस अहङ्कार भी मिलकर एक सूक्ष्म पृथिवी तन्मात्रा बनती है रस तन्मात्रा और रूप-तन्मात्रा इससे सूक्ष्म है। अत यह सूक्ष्म पृथिवी भूत ही सूक्ष्म जल अग्नि वायु और सूक्ष्म शरीरो का आधार बनती है। इस की आकाश-तन्मात्रा के अन्दर सतह सी बन कर ठहरी हुई है। सूक्ष्म आकाश तन्मात्रा के अन्दर इसकी जो सतह सी बनकर ठहरी हुई है, जो सूक्ष्म सतह गन्ध-तन्मात्रा के रूप म वर्तमान है यही सूक्ष्म शरीरो के ठहरने का आधार होती है। पृथिवी तन्मात्रा के आश्रय ही सब सूक्ष्म शरीराभिमानी आत्माय ठहरती है। उनको वहा मकानो आदि की आवश्यकता नही है। ये तो इस लोक म भी लडाई झगडे और बन्धन का हेतु बने हुए हैं। अत सूक्ष्मशरीरी पृथिवी तन्मात्रा के मण्डल म स्वतन्त्र रूप से अबाधगति से विचरते है और सकल्प मात्र से सूक्ष्म पदार्थो का भोग करते है।

तन्मात्रा का लोक कहाँ है ?

शका—यह तन्मात्रा का लोक यही कही पास मे ही है या कही बहुत दूर देश मे वर्तमान है ?

समाधान—भूत जयी योगियो और स्वर्गवासियो के लिये तो अत्यन्त ही निकट है। परन्तु अज्ञानियो के लिये बहुत दूर है। यदि हम चित्र बना कर दिखायें तब तो समष्टि पञ्च स्थूल-भूतो के मण्डलो को पार कर के बहुत दूर जाने वाली बात बन जाती है। क्रम से स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाने मे बहुत देर लगती है, दूरी बहुत जान पडती है। वरना समस्त विश्व में समस्त स्थूल भूतो को समष्टि पृथिवी तन्मात्रा व्याप्त कर के ठहरी हुई है। सारे ब्रह्माण्ड मे ही तन्मात्रा का लोक वर्तमान है। जब योगी ध्यान की दिव्य दृष्टि से तन्मात्रा लोक को अपने विज्ञान का या भोग का विषय बनाता है। तब स्थूल जगत् को पार कर के सूक्ष्म पञ्च-तन्मात्रा के लोक मे पहुँच जाता है। उसकी दिव्य दृष्टि दिव्य लोक को अपना विषय बना लेती है। तब स्थूल जगत् का अभाव हो जाता है। सूक्ष्म लोक बहुत ही समीप जान पडता है। आपने कभी ध्यान काल मे दिव्य सूक्ष्म शरीराभिमानियो को सामने खडा या आकाश मण्डल मे विचरते देखा होगा। इस विज्ञान के आधार पर तो स्वर्ग लोक या तन्मात्रा-लोक बहुत समीप है। जब हमने बाह्य विज्ञान की दृष्टि से खोज करनी है प्रारम्भ करते है तो बहुत दूर प्रतीत होता है। इस लोक मे क्रम से ही जा सक्ते हैं। अनेक तप, जप, शम, दम, उपरति, तितिक्षा, धारणा, ध्यान, समाधि साधनो द्वारा वहाँ गमन होता है।

इस लोक मे जैसे भूमि, जल, अग्नि, वायु का सघात बना हुआ है, ऐसे ही तन्मात्राओ के लोक मे भी तन्मात्राओ का मण्डल के आकार मे सग्रह, सघात, या तहें (स्तर) सी बनी हुई है, इस प्रकार वे सूक्ष्म शरीरो के भोग का हेतु बनी हुई हैं। परमाणु इन सूक्ष्म भूतो के मण्डलो से गमनागमन का सम्बन्ध स्थूल लोको से बनाये रखते हैं। कभी आपने बद खिडकी की झिरियो मे से सूर्य का टेढा प्रकाश आते हुए देखा होगा। वह सूर्य का प्रकाश कमरे मे तिरछी धाराओ के रूप मे पडता है। उसमे असख्य सूक्ष्म और स्थूल कणो का जाना-आना उडना सा दीख पडता है। जिस प्रकार यह सूर्य आतप

की धारायें सूक्ष्म कणो से व्याप्त हैं ऐसे ही सारा विश्व इन से व्याप्त है। वास्तव मे यह कण परमाणु नही है। यह परमाणुओ का सघात है। जो नस्रेणु, चनस्रेणु आदि के रूप मे पृथिवी, जल आदि भूतो के पोषक बने रहते है। इस तरह इनका आवागमन स्थूल तथा सूक्ष्म सृष्टि के सम्बन्ध को बनाये रखता है।

वर्तमान युग मे जैसे भौतिक विज्ञान-वादी पच भूतो पर अनुसन्धान कर रहे हैं इसी प्रकार अध्यात्मवादी योगियो को भी सूक्ष्म सृष्टि के विषय मे विशेष चमत्कृति-पूर्ण अनुसन्धान करना चाहिये। केवल वैराग्य की भावना को लेकर सूक्ष्म जगत् की उपेक्षा नही कर देनी चाहिये। इसका विशेष अनुसन्धान पूर्वक विज्ञान प्राप्त करना योगियो का ही काम है, क्योकि इनकी ही बुद्धि इस अतीन्द्रिय विज्ञान मे विशेष प्रगति कर सकती है।

वहुत से आचार्यो ने स्थूल-भूतो के विज्ञान और सूक्ष्म भूतो के विज्ञान को रला-मिलाकर खिचडी सा बना दिया है। जिसमे सर्वसाधारण की गति नही होती है। इस प्रकार की अस्पष्टता से साधक अध्यात्म विज्ञान के मार्ग से भटक जाता है। अत आध्यात्मिक सूक्ष्म जगत् के विज्ञान को पृथक् रूप मे कर देना चाहिये। जिस से सर्वसाधारण भ्रान्ति मे न पडे। चाहे योगी को मोक्ष की प्रबल इच्छा ही हो, तो भी इन स्थूल और सूक्ष्म भूतो का विज्ञान तो प्राप्त करना ही होगा। तब ही तो इन से सच्चा वैराग्य हो सकेगा। यदि विरक्ति न हो तो भी योगी इनका अच्छी प्रकार बुद्धि पूर्वक भोग कर सकता है, और चाहे तो इन से बुद्धि-पूर्वक विरक्त होकर मुक्ति भी प्राप्त कर सकता है। क्योकि बन्ध और मोक्ष दोनो के ये हेतु हैं।

योगी का कर्तव्य

योगी को चाहिये कि अपनी ध्यान की दिव्य दृष्टि को आकाश मण्डल मे फैंक कर सूक्ष्म जगत् के साथ सम्बन्ध बनाये। जिस से वहाँ के दर्शन और विज्ञान का विशेष अनुभव प्राप्त हो सके। वहाँ जाने और रहने की इच्छा हो तो अधिकारपूर्वक वहाँ जावे और वहाँ के दिव्य भोगो को भली प्रकार भोगे। यदि वहाँ जाने की इच्छा न हो तो उन भोगो से इसी लोक मे रह कर भी विरक्त हो सकता है। अत वहाँ का विशेष विज्ञान यहाँ रह कर प्राप्त करना चाहिये। इस बाह्य स्थूल देह के अध्यास से ऊपर उठ कर योगी को अपने सूक्ष्म शरीर द्वारा उस दिव्य लोक के साथ सम्पर्क बनाना चाहिये। इस सूक्ष्म शरीर मे महान् बल हैं। इसकी दिव्य दृष्टि असख्यो मील तक पहुँच सकती है। इन स्थूल नेत्रो से ही करोडो अरबो मील दूर के लोक यहाँ बैठे ही दृष्टि का विषय बनते हैं। दूरवीक्षण लगाने से तो इस से भी अधिक दूरी के नक्षत्र दीख जाते हैं। सूक्ष्म नेत्र की दिव्य दृष्टि को भी जितनी दूर फैंकना चाहोगे जा सकेगी। इस प्रकार अनन्त दूरी तक सूक्ष्म ब्रह्माण्ड को अपने दर्शन का विषय बनाओ। वहाँ भी जाने की अथवा यन्त्रो के सग्रह की आवश्यकता नही है। अपने आसन पर ही बैठ कर योगी अनन्त दूरी तक अपने दिव्य नेत्रो मे सब कुछ देख सकता है। सूक्ष्म ब्रह्माण्ड के विज्ञान को भी अच्छी तरह प्राप्त कर सकता है।

ब्रह्म दर्शन

यही इस अग्नितन्मात्रा या रूप-तन्मात्रा का विषय है। योगी को इसका विशेष विज्ञान प्राप्त करना चाहिये। वास्तव मे इस दिव्य रूप मे ही ब्रह्म दर्शन यथार्थरूप मे हो सकता है, क्योकि भगवान् का रूप भी दिव्य ही है, यदि उसका कोई रूप माना जाये तो। वह इस रूप-तन्मात्रा मे ही अच्छी तरह से विज्ञान का विषय बन सकता है।

ससार के सब वैज्ञानिको और योगियो को इस अग्नितत्त्व के सूक्ष्म रूप मे ही ब्रह्म का अध्यारोप कर के उसको विज्ञान का विषय बनाना चाहिये। जैसे इस लोक मे सूर्य के तेज मे भगवान् का अध्यारोप कर के उपासना और ज्ञान का विषय बनाते है। इसी प्रकार इस सूक्ष्म जगत् की रूप-तन्मात्रा मे अर्थात् समष्टि सूक्ष्म अग्नि भूत मे भगवान् का अध्यारोप कर के इसकी उपासना करनी चाहिये, और विज्ञान भी प्राप्त करना चाहिये। वह ज्योतियो की ज्योति है। अत सूक्ष्म ज्योति मे ब्रह्म की उस सूक्ष्मता का यथार्थ रूप मे साक्षात्कार हो सकता है।

उपनिषद् इस विषय मे इस तेज का इस प्रकार उल्लेख करती है, यथा —

"यस्तेजसि तिष्ठन् स्तेजसोऽन्तरो,
य तेजो न वेद, यस्य तेज शरीरम्।
यस्तेजोऽन्तरो यमयत्येष त आत्मा,
अन्तर्याम्यमृत.॥

बृहदारण्यक० अ० ३। ब्रा० ७। म० १४।

—जो ब्रह्म तेज के अन्दर ठहरा हुआ है। जिसको यह सूक्ष्म तन्मात्रा का तेज नही जानता है। जिसका यह तेज ही शरीर है। जो इस तेज रूपी शरीर का अन्दर से ही सचालन करता है। यही आत्मा ब्रह्म तेरा अन्तर्यामी अमृतरूप है। इसी की उपासना और इसी का विज्ञान प्राप्त करना चाहिये।"

यह इस रूप तन्मात्रा के प्रथम स्थूल रूप अवस्था का निरूपण किया गया है।

समष्टि रूप-तमात्रा मण्डल

द्वितीय रूप मे ब्रह्म-विज्ञान

(रूप तन्मात्रा का द्वितीय रूप)

२ रूप-तन्मात्रा के स्वरूप मे—रूप-तन्मात्रा का स्वरूप रूप है। रूप-तन्मात्रा का धर्म रूप है। यह रूप सदा रूप तन्मात्रा मे रहता है। कभी भी उससे अलग नही हो सकता। वास्तव मे रूप का और रूप-तन्मात्रा का अभेद है। तादात्म्य है। गुण-गुणी या धर्म धर्मी का अभेद रूप सम्बन्ध है।

जहाँ रूप-तन्मात्रा होगी वहाँ रूप भी होगा। यह रूप रूप-तन्मात्रा मे भी है और रूप तन्मात्रा के धर्म रूप-परिणामो मे भी है।

संसार मे जितने भी रूप है, सामान्य रूप के परिणामक गुण है। हमारे सासारिक जीवन मे परिणत रूपो का ही व्यवहार होता है। उन्हे जानने मे हम देर नही लगाते। काले, पीले, लाल को हम तत्काल पहिचान लेते है। पर काले के ही कितने परिणाम है। रात काली होती है, सिर के बाल काले होते है। सुरमई पैंसिल काली होती है, काली स्याही, कोयला, आबनूस, रीछ, सलेट, काला कम्बल, तिल, हबशी, अफ्रीकी सब काले हैं पर सब की कालिमा मे भेद है। उसी के कारण तो अलग अलग नाम रखे है, लेते ही जान जाते है। पीले के कितने भेद है ? हल्दी, सरसो, सन्तरा, अमरूद, बेर, केला, आम, पीला कन्द, कनेर, पकी नाशपाती, कमरख, खरबूजा, अलूचा, पके पत्ते यह सब पीले ही है। सबका पीलापन भिन्न हैं जिस भिन्नता से उसे हम पहचानते है। इसी प्रकार सब रगो मे विभिन्न प्रकार के नानारूप है। है यह सब रूप-तन्मात्रा के परिणाम भेद। रूप तन्मात्रा का परिणाम अग्नि या प्रकाश, उस प्रकाश या अग्नि के ही ये विभिन्न रूप परिणाम है। सब वृक्षो का रूप हरा, पर सब के हरेपन मे भेद है। इन सब मे जो सामान्य रूप है, वही रूप-तन्मात्रा है।

हिमाछन्न पर्वतो का एक रूप है, जो देखते ही मोहित कर लेता है। पर्वत शृ ग मेखला का भी एक मनोहरी रूप है जो आकृष्ट करता है। विशाल अनन्त जल राशि समुद्र का भी एक मोहक रूप है, जो बरबस आँखो को आकृष्ट कर लेता है। वर्षा कालीन मेघा का भी एक आकर्षक रूप है जो मोर को केकारव करने एव नाचने के लिए विवश कर देता है। भगवान् कृष्ण का भी तो हृदयहारी रूप ही था, जो जन-जन का आकर्षण रहा है और रहेगा। पूर्णिमा के चान्द का कैसा हृदयहारी रूप है, जो सृष्टि के आरम्भ से आज तक कवियो की लेखनी का विषय बना रहा। पर उसका सुन्दर रूप लेखनी बद्ध न हो सका। यह सब रूप ही तो है। कोई नाम नही। पदार्थ को उपाधि बना कर भले ही समझने समझाने का साधन बना लो, पर रूप तो रूप ही है। जिससे स्थूल आँख आकृष्ट हो, स्थूल रूप का ग्रहण करती हैं। सूक्ष्म नेत्र के पास भेजने का साधन बन स्थूल रूप को सूक्ष्म मे परिणत कर देती है। सूक्ष्म रूप ही सूक्ष्म नेत्रा का विषय है। उपाधि भेद से रहित रूप ही रूप-तन्मात्रा है।"

यह सामान्य रूप रूप तन्मात्रा है। शेष सब देखे बिना देखे रूप इसी का परिणाम है। जो रूप तन्मात्रा का धर्म है, यह रूप धर्म रूप-तन्मात्रा मे स्वरूप सम्बन्ध से रहता है। रूप कभी भी रूप तन्मात्रा से अलग नही मिलता। यही रूप-तन्मात्रा की स्वरूपावस्था है रूप का रूप तन्मात्रा के साथ अभेद है। रूप धर्म से रूप तन्मात्रा भिन्न कोई वस्तु नही हैं। रूप का ही नाम रूप-तन्मात्रा है। रूप तन्मात्रा ही रूप, सुरूप, कुरूप अरूप है। यह अलग नही हो सकते, धर्म धर्मी एक ही है।

सुरूप, कुरूप, अरूप रूप के भेद कहे जा सकते है, पर वास्तव है रूप ही, भेद कुछ नही, केवल मानव के किए गये भेद है। हर एक माँ को अपना कुरूप से कुरूप पुत्र भी प्यारा लगता है। दूसरे की नजर से उसे बचाती है। मन ही पुत्र सुरूप है तो कुरूप कौन रहा। परत्र या स्वार्थ की भावना पदार्थों म सुरूप कुरूप का भेद कर देती है। गरम देशवासियो के लिए पसीना और उस का मैल कुरूपता है, पर तिब्बतियो के लिये वह सुगन्ध है। हिन्दु युवक के लिये दाढी मूछ के बाल कुरूपता हैं, वह प्रतिदिन उन्हे

प्रातः ही साफ करने की चिन्ता में रहता है। परन्तु सिख युवक के लिये केश शोभा है। धर्म चिन्ह हैं। सिखों मे नंगा सिर कुरूपता है, अपशकुन है, बंगालियो का यह चिन्ह है। इस लिये सुरूप कुरूप कोई भेद नही, जिसको जो अच्छा लगे वही सरूप है।

रूप-तन्मात्रा कहो या दिव्य-रूप, बात एक ही है। यह दिव्य-रूप अग्नि के कारणभूत असंख्यात सूक्ष्म परमाणुओं का अयुत-सिद्ध समुदाय एक रूप-तन्मात्रा है। रूप ही रूप-तन्मात्रा से कहा जाता है। यह रूप-तन्मात्रा अपने परिणामात्मक विविध सूक्ष्म रूपों में सूक्ष्म शरीरों का भोग निष्पादन करती है। परिणाम भाव को प्राप्त हो कर यही सूक्ष्म स्थूल भूतों मे चली जाती है।

रूप-धर्म रूप-तन्मात्रा मे सदा अनुस्यूत रहता है। इसी प्रकार ब्रह्म भी रूप-तन्मात्रा मे सदा अनुस्यूत रहता है। ब्रह्म सर्व-व्यापक है, सर्वत्र विद्यमान है। रूप-तन्मात्रा किस प्रकार क्रमशः अपने सामान्य विशेष धर्मो मे परिणत होती रहती है और परिणत होते हुए भी उनसे पृथक नही होती। इस सूक्ष्म परिणाम क्रम मे सूक्ष्मातिसूक्ष्म चेतन ब्रह्म की व्यापकता और निमित्त-कारणता का अनुभव करें। जो रूप के परमाणुओं को गतिमान् करके परस्पर सघात-रूप मे परिणत करता रहता है। निमित्त कारण चेतन ब्रह्म ही है।

यहां रूप-तन्मात्रा का जो वर्णन है, वह द्रव्य और गुणों का वर्णन है। हम द्रव्य से गुणो को पृथक् नही मानते। अत यहाँ द्रव्य सूक्ष्म-अग्नि भूत और इसके गुण, रूप भेद से अनेक हैं। दोनो का परस्पर अभेद है। इस लोक मे अग्नि स्थूल इन्द्रियो का विषय बनती है। जैसे कोयलो में अग्नि जल रही है। यहाँ यह स्थल-नेत्र का विषय है। कोयले के ऊपर गरम जल रखा है, वहाँ उस की उष्णता नेत्रो से नही दीखती, स्पर्शेन्द्रिय से उस का प्रत्यक्ष होता है। हाथ डालने पर जान पडता है कि जल गरम हो गया है, यहाँ स्पर्श रूप-गुण वायु के सयोग से आया है क्यों कि वायु सूक्ष्म है। ज्येष्ट मास के मध्याह्न काल मे बहुत उष्णता प्रतीत होती है, यह भी स्पर्शेन्द्रिय का गुण है, परन्तु यहां वह आकाश-मण्डल मे अनुभव किया जा रहा है; क्यों कि विभु आकाश यहां अग्नि मे ओत-प्रोत हो रहा है।

योगी का सूक्ष्म जगत् में प्रवेश

जब योगी योग-शक्ति से सूक्ष्म-जगत् में प्रवेश करता है तो सूक्ष्म-जगत् में विद्यमान रूप-तन्मात्रा की अनुभूति उसके सूक्ष्म शरीर के प्रत्यक्ष का विषय बनती है। वह योगी रूप-तन्मात्रा का प्रत्यक्ष अनुभव करता है। उस योगी ने अपने सूक्ष्म शरीर द्वारा स्वर्ग के किसी देश-विशेष मे अग्नि के परमाणु सघात को प्राप्त होते हुए देखे, उस समय उनमें बडी भारी हलचल रूप क्रिया होती है। सयुक्त होते समय ये योगी के सूक्ष्म शरीर के दर्शन का विषय बन जाते है। यदि शरीर के पास ही उनका संघात हो रहा हो तो वह तेज के द्वारा स्पर्श का विषय भी बन जाते है। तन्मात्रा के मण्डल मे इनसे अत्यन्त उष्णता सी व्याप्त हो जाती है। ये इस रूप में भी सूक्ष्म शरीर के प्रत्यक्ष का विषय बन जाते है।

समाधि की स्थिति मे भी जब योगी ध्यान बल से सूक्ष्म-जगत् मे प्रवेश कर जाता है, उस काल मे भी इस प्रकार की अनुभूतिया सूक्ष्म शरीर मे प्रत्यक्ष रूप से हुआ करती हैं। यह रूप-तन्मात्रा सूक्ष्म शरीर का विषय-रूप से भोग है। समाधि-काल में इस प्रकार सूक्ष्म जगत् के साथ सम्बन्ध कर लेने पर रूप-सम्बन्धी अनेक प्रकार की अनुभूतिया हुआ करती है। परन्तु साधक प्राय इनको ठीक-ठीक नही समझ पाते, और कल्पना कह कर उपेक्षा कर बैठते हैं। या मनोराज्य कह देते है।

इस प्रकार के अनेक दृश्य सम्प्रज्ञात-समाधि-काल में योगी को प्राय आते हैं। परन्तु वह इनको ठीक-ठीक नहीं समझ पाता है। यह वास्तव मे सूक्ष्म जगत् के ही दृश्य होते हैं। सूक्ष्म जगत् का ही दर्शन होता है। इनके विज्ञान का अभ्यासियो को विशेष अनुसन्धान करना चाहिये। स्वर्ग मे भी तो ऐसे ही भोग प्राप्त होते हैं। जो कि अभ्यासियो को समाधि काल मे दृश्यों के रूप मे सामने आये है। अभ्यासी लोग इन दृश्यो की अपेक्षा मानसिक जाप को अधिक महत्त्व देने लगते हैं। परन्तु विज्ञान की दृष्टि से इन सूक्ष्म दृश्यों का महत्त्व अधिक होना चाहिये। वे कल्पनाये नही होती है। किन्तु तन्मात्राओ के सूक्ष्म जगत् मे अभ्यासी योगी का प्रवेश होता है। और उसके सामने नाना प्रकार के सूक्ष्म दृश्य आने लगते हैं। जब तुम बाजार मे या वन मे जाते हो, तो सब कुछ देखते जाते हो। वहा के पदार्थों को देखने मे तुम्हे बिल्कुल उपेक्षा नही होती है। फिर सोचो! ध्यान समाधि के समय पञ्चतन्मात्रा के उपवन में पहुच कर तुम्हे उपेक्षा क्यो हो जाती है। उसको भी देखो, ध्यान से देखो! उनका पूरा विज्ञान प्राप्त करो। उनपर मनन और निदिध्यासन करो। उन्हे साक्षात् रूप से सही अर्थों मे जानो। समझ लो वह कोरी कल्पना नही है। किन्तु सूक्ष्म जगत् की वास्तविकता का दर्शन है और सूक्ष्म जगत् मे सूक्ष्म शरीर का व्यापार है।

यदि कहो इन सब व्यापारो को बन्द करना है, इनका तो अभाव करना है, तो पहले स्थूल जगत् के व्यवहारो को बन्द करो, जिन्हे दिन रात करते नही अघाते। यदि इस लोक से तुम्हारा चित्त उपराम हो गया है, और सब व्यापार छोड दिये है, तब तो अन्दर के व्यापारों को छोडना ठीक होगा। इस प्रकार की ख्याति के विरक्त योगी को तो अधिक से अधिक दिन रात का समय 'अहमस्मि' स्व-स्वरूप के अभ्यास मे अथवा 'अयमस्ति' ब्रह्म के स्वरूप के अभ्यास मे लगाना चाहिये।

यह रूप-तन्मात्रा के द्वितीय स्वरूप मे ईश्वर की उपासना और उसके विज्ञान का एव सूक्ष्म जगत् का वर्णन किया यहा धर्म धर्मी के अभेद रूप परिणाम मे ब्रह्म का विज्ञान प्राप्त करना चाहिये।

समष्टि रूप-तन्मात्रा मण्डल

तृतीय रूप मे ब्रह्म-विज्ञान

(रूप-तन्मात्रा का तृतीय रूप)

३ रूप-तन्मात्रा के सूक्ष्म रूप मे—

समष्टि रूप-तन्मात्रा अपने पूर्व रूप मे वर्तमान जिस कारण से परिणत हुई है उस कारण रूप पदार्थ को रूप-तन्मात्रा का सूक्ष्म-रूप कहेगे।

अहंकार तीन प्रकार का है। १. सात्विक, २. राजस ३. तामस। इनके भिन्न-भिन्न कार्य हैं। तीनों अलग-अलग उपादान कारण बनकर अलग-अलग अपने कार्यो को उत्पन्न करते हैं। कारण कार्य में सजातीय विजातीय का प्रयोग किया गया है, क्योंकि तीनों के तीन पदार्थ बने है। समष्टितमः प्रधान अहंकार ही समष्टि रूपतन्मात्रा का उपादान कारण है। इसके सहकारी सात्विक और राजस अहंकार भी है। यहां समष्टि-तमः अहंकार अपने कार्य-विशेष रूप-तन्मात्रा में अनुस्यूत है। यह कारण कार्य का अयुत सिद्ध समुदाय समष्टि रूप-तन्मात्रा है। अहंकार के सूक्ष्म-अंश सामान्य और रूप-तन्मात्रा के विशेष रूप का समुदाय ही यहां एक अयुत सिद्ध द्रव्य रूप-तन्मात्रा बनता है। यहां तमः प्रधान अहंकार कारण में कार्य रूप रूपतन्मात्रा की सूक्ष्मता है। इसी को रूप-तन्मात्रा का सूक्ष्म रूप कहते हैं। अर्थात् सामान्य विशेष का परस्पर संघात ही रूप-तन्मात्रा का सूक्ष्म रूप है।

इस अवसर पर जो एक विशेष क्रिया होकर समष्टि तमः प्रधान अहंकार में उस के सहकारी सत्त्व रजस् में परिणाम के साथ २ होती है, वह विलक्षण ही होती है। रस-तन्मात्रा की अपेक्षा कुछ और ही होती है, आश्चर्य में डाले रखती है। यहा समाधि में दिव्य दृष्टि से इसी अद्भुत प्रक्रिया को देखना होता है। देखिये ! यहां किस प्रकार सत्त्व की ०.३, रजस् की ०.७ मात्राये तमः प्रधान अहकार के २० अश में कैसे परिणाम पैदा कर रही है। अन्तिम क्षण में वह किस प्रकार रूप-तन्मात्रा बन बैठती है। साथ ही यह भी दीख रहा है कि किस प्रकार सजातीय विजातीय धर्मो का नियोजन ब्राह्मी चेतन सत्ता के सन्निधान से अयुत-सिद्ध द्रव्य रूप-तन्मात्रा बनकर तयार होती जा रही है। ब्रह्म की चेतना संघात करने वाली प्रेरिका है। इसी ब्रह्म-सत्ता का आप को विज्ञान करना है।

अहो विचित्रता ! केवल बुद्धि का विषय तमः अहंकार अब रूप-तन्मात्रा बनते ही दिव्य चक्षुः का विषय बन गया। दिव्य चक्षुः से देखने योग्य हो गया। यहां तमः अहंकार धर्म-लक्षण-अवस्था भेदों से परिणत होता हुआ रूप-तन्मात्रा में पलट गया है।

रूप-तन्मात्रा की सूक्ष्मता को योगी इस प्रकार समझता है—परोक्ष में कहीं सेव रखा है। योगी उस पर संयम करता है। सेव में पांचों भूत सम्मिश्रित हैं। पृथिवी की गन्ध, जल का रस (स्वाद), अग्नि का रूप; वायु का कोमल चिकना स्पर्श, और आकाश अवकाश प्रदान किये है। योगी पांचों में से केवल रूप पर संयम करता है। स्थूल चर्म चक्षुओं से दृश्य रूप उसके समक्ष आ जाता है। गहरी दृष्टि से अनुभव करता है कि स्थूल रूप दिव्य चक्षुः के सम्पर्क में आने से सूक्ष्म हो गया है। और गहरी दृष्टि से देखता है, सूक्ष्म रूप विशेष परिणाम है। सामान्य रूप तो अन्तर्निहित है। जिस को देखकर अजान अपरिचित बालक भी कह उठता है कैसा सुन्दर रूप है। यही रूप तन्मात्रा है। और गहरी दृष्टि ले जाता है तो इस तन्मात्रा के कारण जड़रूप सत्तात्मक तमः अहंकार का साक्षात् करता है। इस जड़ सत्तामय तमः अहंकार का ही परिणाम तो रूप तन्मात्रा है। यहां सामान्य तमः अहंकार है और विशेष रूप-तन्मात्रा है। इनका समुदाय ही अयुत-सिद्ध द्रव्य है। रूप की विशेषता जिससे सामान्य रूप के परिणाम-भूत सेव के रूप को जाना गया है। यह सेव का रूप रूप-तन्मात्रा का परिणामात्मक गुण है।

यही इसका सूक्ष्म रूप है। रूप-तन्मात्रा का यह तीसरा रूप है।

(शका) 'अहकार तो एक ही पदार्थ है, परन्तु उसकी तीन अवस्थाये हैं' ऐसा मानें तो क्या आपत्ति है ?

(समाधान) शास्त्रकार सात्त्विक अहकार से और राजस अहकार से मन की उत्पत्ति मानते हैं। इससे सिद्ध है कि ये भिन्न २ ही पदार्थ हैं। मन के उपादान कारण सात्त्विक अहकार और राजस अहकार भी सात्त्विक, राजस तामस, भेद वाले है। अत अहकार को भी तीन भेद वाला मानना ही ठीक है क्योकि ये तीनो भिन्न पदार्थ को उत्पन्न करते है। यदि अहकार एक ही पदार्थ होता तो इसके कार्यो मे विलक्षणता न आती। न उनके भिन्न २ धर्म होते। ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, और तन्मात्रायें भिन्न धर्म-गुण वाले अहकार के तीन कार्य है। अत अहकार भी तीन ही प्रकार का है क्योंकि उपादान के भेद और विलक्षणता से कार्य मे भी भेद और विलक्षणता आ जाती है।

(प्रश्न) कही ऐसा तो नही है कि एक ही पदार्थ तीन रूपा मे परिणत हो गया हो। जैसे अग्नि भूत मे ११ धर्म या परिणाम आ गये। मूल प्रकृति भी साम्यावस्था के पश्चात् त्रिगुणात्मक हो गयी। ऐसे ही अहकार भी त्रिगुणात्मक हो गया। अलग अलग पदार्थ मानने की क्या आवश्यकता ?

(उत्तर) यदि प्रारम्भ मे तीनो गुणो को धर्म ही मान लिया जाये तो विचारो, आगे सृष्टि का विकास कैसे होगा, क्योकि कार्यात्म पदार्थ के प्रारम्भक केवल गुण नही होते पदार्थ ही होता है। प्रकृति से कार्यात्मक पदार्थ उत्पन्न होते हैं। ये कार्य होने से ही अग्रिम कार्य को उत्पन्न करते हैं। उनके प्रति सर्वत्र ही उपादान कारण रहते हैं। जैसे पाचो भूत अपने अपने कार्यो के आरम्भक होते हैं। इसी प्रकार सत्त्व, रजस्, तमस् ये तीन पदार्थ और आकाश, दिशा, काल मिलकर कार्यों के आरम्भक होते हैं। पृथिवी मे जो धर्म उत्पन्न होते है, वहा भी पृथिवी अकेली ही नहीं है, उसके साथ जल-अग्नि आदि भी तो मिले हुए हैं। तब ही प्रत्येक धर्म मे भेद एक दूसरे की अपेक्षा होता है। जैसे गुरुत्व की अपेक्षा रूक्षता धर्म मे बहुत अन्तर है। गुरुत्व पृथिवी मे अपना और जल के योग से आया है। रूक्षता धर्म वायु का इसमे आ गया है। ऐसे ही कृशता रूप धर्म अग्नि से आया है।

इसी प्रकार तीनो प्रकार के अहकारो को अलग अलग ही पदार्थ समझना चाहिये। अग्नि के तृतीय रूप सूक्ष्म रूप म अहकार के अश से ही सूक्ष्मता आयी है। सामान्य विशेष के सयोग से ही एक अयुत सिद्ध द्रव्य रूप तन्मात्रा उत्पन्न हुई है। अत आहकारिक सृष्टि की उत्पत्ति तीन-तीन पदार्थो से ही माननी चाहिये, जैसे भूतो की पाचो से है। इति।

यह जो रूप-तन्मात्रा की सूक्ष्म तीसरी अवस्था है, यहा सूक्ष्मता की विशेषता है। जो इस के उपादान कारण आहकारिक अवयवो के सयोग से एक द्रव्य विशेष बना है, यह सामान्य विशेष भेदा से अनुगत समुदाय अयुत सिद्ध द्रव्य है। यहा उपादान कारण अहकार से रूप-तन्मात्रा की जो उत्पत्ति है यही कारण कार्य का सम्बन्ध सूक्ष्म-रूप है।

इन अवयवो की सूक्ष्मता के सयोग मे उस ब्रह्म के स्वरूप का भी प्रत्यक्ष करना चाहिये, जो पदार्थ के परिणाम धर्म मे सर्वत्र अनुस्यूत होकर वर्तमान रहता है। यही ब्रह्म की उपासना भी है, और विज्ञान भी है। यहा प्रत्येक अवयव मे वह अभेद रूप से विजातीय होकर भी व्याप्य व्यापक भाव से सदा रहता है।

समष्टि रूप-तन्मात्रा मण्डल

चतुर्थ रूप मे ब्रह्म-विज्ञान

(रूप-तन्मात्रा का चतुर्थ रूप)

४ रूप तन्मात्रा के अन्वय रूप मे —

इस रूप-तन्मात्रा का अपने परम्परागत उपादान कारण प्रकृति मे अन्वय है, यही रूप-तन्मात्रा का अन्वय है।

यह प्रकृति परिणाम रूप से अनुपतन हुए रूप तन्मात्रा मे पहुँची है। अन्वय का अभिप्राय कारण का कार्य मे अनुगत होना है। रूप तन्मात्रा मे प्रकृति अपने गुणो सहित अनुगत हुई है। समष्टि तम अहकार कारण है, और समष्टि रूप तन्मात्रा कार्य है। समष्टि तम अहकार का कारण समष्टि महत्तम है। समष्टि महतम का कारण अव्यक्त अपरिणत नित्य मूल प्रकृति है। यह मूल प्रकृति अजन्मा है। शाश्वत् है। नित्य है। इसका कभी विनाश नही होता। इसका धर्म सत्ता है। धर्म धर्मी का अभेद है। यह इसका स्वरूप है। ज्ञान और क्रिया इसके गुण है। अपने स्वरूप और गुणो को साथ साथ लिये सब कार्यो मे अनुपतित हुई है। कारण कार्य का अभेद है।

प्रकृति की सत्ता से ही रूप तन्मात्रा की सत्ता है और रूप तन्मात्रा के कार्यात्मक परिणामो की सत्ता है। मूल प्रकृति और रूप-तन्मात्रा के मध्य अनेक कार्य-परिणामो के पडाव पडे हैं। बहुत लम्बा दूरान्वय है। इस लिए मूल प्रकृति रूप तन्मात्रा मे सत्ता धर्म को मुख्यत लेकर पहुची है। ज्ञान और क्रिया गुण स्वल्प मात्रा मे रह गये है। ज्ञान क्रिया की अपेक्षा अधिक है। रूप के ज्ञान गुण के कारण सब रूप से ही पहचाने जाते हैं। रूप ही एक दूसरे का भेदक है। वास्तव मे रूप से ही सब की सत्ता है। जातीय विजातीय का भेद भी इसी का कारण है। रूप के अभिन्न मूल कारण रूप-तन्मात्रा की ही यह महिमा है। जो इसे मूल प्रकृति के और प्रभु के सन्निधान से प्राप्त ज्ञान गुण के कारण मिली है। इस प्रकार रूप-तन्मात्रा मे अन्वय रूप धर्म चरितार्थ हुआ है।

रूप-तन्मात्रा के अन्वय रूप म रस-तन्मात्रा से भी सूक्ष्मतर अवस्था मे ब्रह्म की सूक्ष्मतम व्यापकता का अनुभव होना चाहिये। इस अनुपतन के निमित्त कारण ब्रह्म का ही अभ्यास मे लक्ष्य रूप से साक्षात्कार कीजिये। जिससे भगवान् की सर्व व्यापकता और सन्निधानता मे विश्वास और विज्ञान की दृढ मूलता हो।

समष्टि रूप-तन्मात्रा मण्डल

पञ्चम रूप मे ब्रह्म-विज्ञान

(रूप-तन्मात्रा का पञ्चम रूप)

५ रूप-तन्मात्रा के अर्थवत्त्व रूप मे—यह समष्टि रूप-तन्मात्रा वायु-तन्मात्रा के योग से स्पर्शयुक्त और आकाश की तन्मात्रा के योग से शब्द-युक्त बनी हुई है। ये

दोनो गुण इन तन्मात्राओं के योग से इसमे आये हुए हैं। समस्त सूक्ष्म शरीरो के निर्माण मे ये प्रयुक्त हुई हैं। मुख्य रूप से रूप-तन्मात्रा का वास जठर और नेत्र मे हुआ है। इसके कारण से सूक्ष्म शरीर हल्के, आकाश गामी, देदीप्यमान, तेजस्वी, चमकते हुए प्रकाश-युक्त देखने मे आते हैं। वास्तव मे वे ऐसे ही हैं भी। बहुत बार ध्यान काल मे अनेको सूक्ष्म-शरीर तेज से पूर्ण, ज्योतिर्युक्त देखने मे आये हैं। मानो सूक्ष्म जगत् का आकाश-मण्डल इन्ही से भरा हो। सूक्ष्म जगत् मे इस रूप तन्मात्रा की यही विशेष अर्थवत्ता है।

अनेक प्रकार से यह सूक्ष्म-लोक मे यह भोग का हेतु बनी हुई है। अनेक सूक्ष्म पदार्थों का निर्माण योगी लोग भी इस भौतिक जगत् मे इस से कर लिया करते हैं। रूप-तन्मात्रा पर अधिकार हो जाने पर ही यह सिद्धियाँ प्राप्त होती है। अपने मनोबल तथा बुद्धि-बल से इस लोक मे, अथवा ध्यान काल मे अपने सम्मुख सूक्ष्म शरीरो का आह्वान् भी कर लेते हैं।

ध्यान काल मे सिद्धो के दर्शन

ध्यान-काल मे अनेक सूक्ष्म-शरीराभिमानी देवो के दर्शन हुआ करते हैं। कोई-कोई महान् आत्मा बहुत देर तक ध्यान काल मे आकाश मण्डल मे देखने मे आती रहती है। मानो उपदेश देने आई हो। इनके दर्शनो से महती शान्ति प्राप्त हुआ करती है। अभ्यास मे विशेष उन्नति होने लगती है। श्रद्धा भक्ति बढ जाया करती है। विशेष शान्ति और आनन्द की उपलब्धि होने लगती है। इस प्रकार के दर्शनो की अभ्यास काल मे उपेक्षा नही करनी चाहिये। महर्षि पतञ्जलि ने कहा है—

"मूर्ध-ज्योतिषि सिद्ध-दर्शनम्।"

योग० विभूति पाद ३। सूत्र० ३२।

मूर्धा—ब्रह्म-रन्ध्र या भ्रू मध्य (आज्ञा चक्र) मे योगी ध्यान करते हैं, उनको सूक्ष्म शरीराभिमानी सिद्धो के दर्शन होने लगते हैं। उन सिद्धो मे बहुत से तो बिल्कुल श्वेतरङ्ग के बरफ के समान धवल होते हैं। बहुत से चमकते स्वर्ण या सूर्य के समान होते हैं। बहुत से मन्द फीकी-सी नीलिमा से युक्त देखे गये हैं। बहुत से धुन्धले रग के शरीर वाले होते हैं। ये सब देखने मे आते हैं। हमारे लोक मे भी गमनागमन उनका होता है, क्योकि पञ्च-तन्मात्रा का लोक तो सर्वत्र ही है।

जो सूक्ष्म-शरीर इस लोक के मरने वाले सर्वसाधारण के होते हैं, और जिन्हो ने निकट-भविष्य मे जन्म लेना होता है, उनके सूक्ष्म-शरीरो के रगो मे उनकी अपेक्षा कुछ अन्तर होता है। इन शरीरो को तन्मात्रा के लोक का विशेष ज्ञान नही होता है और न सूक्ष्म भोगो का ही विशेष ज्ञान होता है। सामान्य या पशु के समान या जगली के समान जीवन-यापन-मात्र का ज्ञान होता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो किसी से नियोजित किये हुए से आकाश मे गमनागमन कर रहे हो। ऐसी स्थिति के ये स्थूल लोक के बद्ध सूक्ष्म-शरीराभिमानी जीव होते हैं। जो विज्ञान द्वारा मुक्त हो कर जाते हैं, वे स्वेच्छाचारी होते हैं। वे सब प्रतिबन्धो से रहित होते हैं।

इस सूक्ष्म जगत् का विशेष विज्ञान योगो को करना हो तो ध्यान-काल मे सूक्ष्म लोक के साथ सम्बन्ध जोड कर वहाँ का सर्व-विज्ञान प्राप्त करना चाहिए। सूक्ष्म जगत्

का विज्ञान भी अत्यन्त रोचक है। विशेष सुख, आह्लाद और आनन्द का देने वाला है। इस लोक मे स्थूल शरीर के व्यवहार मे भी तो कई घन्टे मनुष्य लगाता है। अत योगी का अभ्यास काल मे जब सूक्ष्म दृश्य आने प्रारभ हो, अवश्य ध्यान देकर उन की तह मे जाना चाहिए। अपनी भ्रान्ति को दूर करना चाहिये, कि ये वास्तविक रूप मे सत्य है या अयार्थ झूठी कल्पना है।

जब अभ्यासी का ध्येय अभ्यास काल मे कोई दृश्य देखने का न हो और कोई इस ओर ध्यान भी न हो, यदि ऐसी स्थिति मे भी सूक्ष्म दृश्य सामने आते है तो इनको मिथ्या या कल्पना नही कहना चाहिए। किन्तु सूक्ष्म जगत् में यह मन बुद्धि का प्रवेश समझना चाहिए। उस काल मे बुद्धि को स्वतन्त्र छोड दो, और जो सूक्ष्म दृश्य सामने आवे उसको अच्छी तरह देखो। पूर्वापर मिलाकर यथार्थ निर्णय करो, कि आपके सम्मुख यह यथार्थ वस्तु है या व्यर्थ मे कोई मनोराज्य है। मनोराज्य मे यह बात होती है कि वह इच्छा पूर्वक होता है और यहाँ अनायास ही नाना प्रकार के सूक्ष्म पदार्थ सामने आने लगते है। जो कभी देखे सुने भी नही होते है। अत योगी को इस सूक्ष्म जगत् का विज्ञान विशेष अनुसधान एव तन्मयता के साथ करना चाहिए और अधिकार पूर्वक करना चाहिए। अधिकार पूर्वक अपने दिव्य चक्षु से कार्य लेना चाहिए। जिस दिव्य लोक के विद्वान् आचार्य लोग बडे स ज बाग दिखाते है। अपने उपदेशो मे उन का मनोहारी वर्णन करते है। इनका प्रत्यक्ष विज्ञान और उनका भोग योगी को इस स्थूल शरीर मे ही करना चाहिये। यदि उस समय इच्छा हो और वह सुख और आनन्द का हेतु प्रतीत हो तो इसकी प्राप्ति और भोग के लिये यत्न विशेष करना चाहिए। इच्छा या आर्कषण न हो तो पुन पुन इसी स्थूल शरीर को धारण करना, और यदि यह भी दु ख और क्लेश का हेतु प्रतीत हो तो वशीकार सज्ञा वैराग्य द्वारा परम वैराग्य प्राप्त करना चाहिये। जिसमे तीनो प्रकार के गुणो से युक्त प्रकृति जो जगत् का कारण है, इससे भी वैराग्य प्राप्त कर के उस मोक्ष को प्राप्त करना श्रेष्ठ होगा, जिसमे सब ही शरीरो का अभाव हो जाता है। इत्यल विद्वद्वरेषु।

इस सूक्ष्म अग्नि तन्मात्रा मे ब्रह्म का आरोप करके उसकी उपासना और विशेष ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। उस की व्यापकता और सन्निधानता एव निमित्ता का इसमे अनुभव करना चाहिये।

इति समष्टि रूप-तन्मात्रा मण्डलम्

इति द्वितीयाध्याये ततीय खण्ड ॥

इतिपङ्क्तिशमावरणम्

चतुर्थ खण्ड

२५वाँ आवरण

समष्टि स्पर्श-तन्मात्रा मण्डल

पांचों रूपों में ब्रह्म-दर्शन

समष्टि स्पर्श-तन्मात्रा व्यष्टि स्पर्श तन्मात्रा का उपादान कारण है। समष्टि-से व्यष्टि उत्पन्न होता है। योगी या सूक्ष्म-शरीराभिमानी सूक्ष्म-त्वचा या सूक्ष्म-स्पर्शेन्द्रिय से जिस स्पर्श-तन्मात्रा का उपभोग करता है वह व्यष्टि स्पर्श-तन्मात्रा है। इसी समष्टि-तन्मात्रा से व्यष्टि तन्मात्रा उत्पन्न होती रहती हैं। और व्यक्तियों को भोग देने के लिये आनी रहती है। प्रलय पर्यन्त यह क्रम चलता रहता है।

ब्रह्म |के सम्पर्क से चेतन सी वनी स्पर्श-तन्मात्रा इस कारण-कार्य रूप परिणाम चक्र को घुमाती रहती है। स्पर्श-तन्मात्रा के भी पाँच रूप अन्यों की भाँति है— १. स्थूल २ स्वरूप ३ सूक्ष्म रूप ४ अन्वय रूप और ५. अर्थवत्त्व। इन पाँचों रूपों की सूक्ष्मता को भी समझिये और इन पांचो रूपो मे परिणाम उत्पन्न करने वाली निमित्त कारण बनी भगवान् की सन्निधानता भी अनुभव कीजिये।

समष्टि स्पर्श-तन्मात्रा मण्डल

प्रथम रूप में ब्रह्म-विज्ञान

(स्पर्श-तन्मात्रा का प्रथम रूप)

१. स्पर्श-तन्मात्रा के स्थूल रूप में—

वायुमहाभूत का कारण समष्टि स्पर्श-तन्मात्रा है। स्पर्श-तन्मात्रा ही वायु-महाभूत में परिणाम भाव को प्राप्त हुई है। स्पर्श-तन्मात्रा वायु-महाभूत की अनुद्भूत सूक्ष्म अवस्था है। वायु स्थूल या उद्भूत अवस्था है। स्थूल वायु का स्थूल त्वचा या स्पर्श से ज्ञान हो जाता है। स्पर्श-तन्मात्रा अनुद्भूत अर्थात् अप्रकट सूक्ष्म अवस्था है। जिसका ज्ञान ब्रह्म-रन्ध्रस्थ सूक्ष्म स्पर्शन इन्द्रिय से होता है। बस निष्कर्ष निकला कि सूक्ष्म स्पर्शनेन्द्रिय जिसका ग्रहण करती है, वह स्पर्श-तन्मात्रा है। सूक्ष्मस्पर्शेन्द्रिय सूक्ष्म शरीर का अवयव है। स्थूल स्पर्शेन्द्रिय स्थूल अन्नमय शरीर का भाग है। स्थूल स्पर्शेन्द्रिय स्थूल-शरीर-व्यापिनी त्वचा में सर्वत्र वास करती है। स्थूल स्पर्श का अनुभव स्थूल स्पर्शेन्द्रिय से होता है। यही स्थूल स्पर्श सूक्ष्म-स्पर्शेन्द्रिय तक पहुँचते-पहुँचते सूक्ष्म-स्पर्श तन्मात्रा रह जाती है। स्थूल स्पर्श का उप भोग स्थूल शरीर कर लेता है। सूक्ष्म स्पर्शेन्द्रिय जिसके सम्पर्क से स्थूल स्पर्श छन कर सूक्ष्म स्पर्श-तन्मात्रा बनता है, सूक्ष्म-शरीर के भाग बुद्धि मण्डल मे वास करती है। स्थूल स्पर्श का अनुभव प्राणिमात्र करते हैं। सूक्ष्म दिव्य स्पर्श-तन्मात्रा का भोग योगी, सूक्ष्म-शरीराभिमानी आकाशचारी आत्मायें अथवा स्वर्ग में वास करने वाली सुकृत-कर्मफला पुण्य आत्मायें किया करती हैं।

स्पर्श के शीतल उष्ण। भेद तो जल और अग्नि के सम्पर्क से हो जाते हैं। स्पर्श वास्तव मे एक ही है, जो अनुष्णाशीत है। जो न गरम है, न ठण्डा। बस स्पर्श है। जिसका हम हाथ से या शरीरगत त्वचा वाले किसी भी भाग से अनुभव करके जानते है कि रात्रि को अन्धेरे में हम चले जा रहे है। सहसा पैरों को कुछ छू जाता है। हम चौकन्ने हो जाते हैं। कहते हैं—'कुछ छू गया है। बस यह जो कुछ छूना है यही सामान्य स्पर्श, स्पर्श-तन्मात्रा का रूप है। शेष विशेष स्पर्श इसी स्पर्श के परिणाम है। कठोर, कठोरतर, कठोरतम, कोमल, कोमलतर, कोमलतम आदि स्पर्श के अनेक परिणामात्मक भेद हैं। प्रति विशेष स्पर्श का अनुभव साधारणतया कम अवगत होता है। पर यदि एक ही माप के जूते पड़े हों और हमारा जूता भी उसी माप का वहाँ पड़ा हो। अन्धेरा भी हो, तो उस समय अस्पृश्य यह पैर देवता उतावले हो आगे बढ़ते है, और सब जूतों को पहन-पहन कर अपने जूते को स्पर्श से छाँट करने लगते है; और अपने ही स्पर्श को पा जूते को छाँट लेते है। फिर प्रकाश में जा आखों से पुष्टि करा लेते हैं। प्रज्ञा-चक्षुओ मे स्पर्श-परिणाम की अनुभूति बहुत बढ़ी-चढी होती है। प्रज्ञा-चक्षु: साथी जब कभी बहुत दिनों के बाद आते तो सब साथी एकत्र हो जाते। बिना नाम लिये साथी को आगे कर पूछते, 'बताओ कौन है ?' वह हाथ पकड़ते, हाथ फेरते स्पर्श का अनुभव करते, और नाम लेकर कह देते, 'अमुक है।' यह स्पर्श के परिणामो के ज्ञान-अभ्यास का ही परिणाम था। इसी प्रकार कठोर कोमल शीतोष्ण आदि के तारतम्य से स्पर्श का परिणाम भेद हो जाता है।

स्पर्श-तन्मात्रा के विषय में वैशेषिक दर्शन ने सूत्र दिया है—'**स्पर्श वान् वायुः**'— स्थूल सूक्ष्मभूत वायु स्पर्श गुण वाला है। अतः उपरि प्रदर्शित अनेक प्रकार के स्पर्श वायु तन्मात्रा के हैं। आपने वायु के वेग से चलते समय देखा होगा, वायु भी शब्द करती है। यह गुण इस मे आकाश के व्यापक होने से प्रतीत होता है। वायु का वास्तविक स्पर्श-रूप त्वक् इन्द्रिय का विषय है।

जब सूक्ष्म शरीरों का निर्माण होता है, तब यह स्पर्श-तन्मात्रा शरीरों में प्राण के रूप मे सहकारी होती है। यही सूक्ष्म शरीरो के जीवन और गति का आधार बनती है। —'वायु लोकं च गच्छति'—जो यह वाक्य उपनिषद् में जीव के लिये आया है, वह इसी वायु-सूक्ष्म-तन्मात्रा के लोक का ही वर्णन है। आजकल जब मनुष्य वायुयान के द्वारा आकाश में बहुत ऊँचे चढता जाता है, वैसे-वैसे ही वायु भी बहुत सूक्ष्म होती चली जाती है। इसी प्रकार यह स्पर्श-तन्मात्रा रूप वायु अत्यन्त सूक्ष्म से सूक्ष्म है।

स्थूल भूत और सूक्ष्म भूत वायु में अन्तर

(शंका) जब इस लोक में स्थूल वायु वर्त्तमान है और आप कहते हैं स्पर्श-तन्मात्रा भी यहाँ वर्तमान है, इसकी यहाँ क्या जरूरत है ? सूक्ष्म शरीराभिमानी स्थूल से ही काम ले सकते हैं।

(समाधान) जैसे आप सूक्ष्म-स्पर्श-तन्मात्रा से काम नही ले सकते है, आप के आहार व्यवहार और जीवन के लिये यह स्थूल वायु ही उपयोगी है। इसी प्रकार सूक्ष्म-शरीरों के लिये भी सूक्ष्म-स्पर्श-तन्मात्रा ही उपयोगी है। इसी से उनका शरीर बना है।

यही उनके शरीरो का प्राण-रूप से आधार है। इस लोक मे भी जो हमारे स्थूल शरीरो मे सूक्ष्म शरीर वर्त्तमान हैं यह भी तो स्पर्श-तन्मात्रा से ही अपने आहार को ग्रहण करते है। स्थूल शरीरो का स्थूल-भूत जीवन का आधार हैं, और सूक्ष्मा का सूक्ष्म। योगी लोग तो इस विज्ञान के रहस्य को प्रत्यक्ष-रूप से समझते हैं, और प्रत्यक्ष देखते भी हैं, स्थूल वायु तो सूक्ष्म के बाहर है, सूक्ष्म तो इसके अन्दर भी है और बाहर भी है, क्योकि सूक्ष्म स्थूल का कारण है। यह सूक्ष्म वायु का सूक्ष्म-स्पर्श ही स्थूल वायु मे भी गया है। शेष जो आठ गुण उसमे और आये हैं, सूक्ष्म का परिणाम हो कर ही आये हैं। जब यह सूक्ष्म वायु काय रूप मे परिवर्तन होने लगी—उस परिणाम काल मे उस स्थूल वायु मे वे धर्म क्रम-पूर्वक उत्पन्न होते गये। वैसे बीज रूप मे वे सूक्ष्म मे भी वर्त्तमान हैं।

सूक्ष्म शरीराभिमानी कोई विशेष व्यवहार या विज्ञान प्राप्त नही करते, उनका तो यह भोग स्थल है। *उनकी यह सुखमय—भोग योनि है। उनका एक स्पर्श-मात्र* से ही कार्य सिद्ध हो जाता है। क्योकि वहा केवल मात्र एक भोग ही प्रधान होता है। कर्म विशेष या विज्ञान विशेष की वहाँ जरूरत नही है। इनकी मानव लोक मे ही आवश्यकता है, क्योकि इनके विज्ञान द्वारा मोक्ष प्राप्त करना है। स्थूल वायु मे स्पर्श-तन्मात्रा के परमाणुओ का गमनागमन होना रहता है। वे इसकी शक्ति और बल को बढाते रहते हैं। इसका पोषणभी करते रहते है। प्रत्येक क्षण मे परमाणुओ का परिणाम क्रम बना ही रहता है, क्योकि ये सूक्ष्म शरीरो का भी पोषण करते रहते हैं। इनको अपना आहार प्रदान करते रहते हैं। सूक्ष्म शरीर को केवल सूक्ष्म आहार ही चाहिये। अत वह स्वभाविक रूप मे ही इसे प्राप्त होता रहता है। उसके लिये यत्न की इसे जरूरत नही। कहावत भी तो है, देवता तो वासना के ही भूखे हैं।

इस तन्मात्रा के स्पर्श रूप मे ब्रह्म का आरोप करके उपासना करनी चाहिये। ऐसा अनुभव करना चाहिये जैसे मेरे सूक्ष्म और स्थूल शरीर मे ब्रह्म का ही आह्लाद और आनन्द दायक स्पर्श अत्यन्त मधुर रूप मे हो रहा है। वह भगवान् इस स्थूल और सूक्ष्म शरीर के रोम रोम और कण-कण मे व्याप्त हो रहा है। वह अन्दर भी है और बाहर भी। इस स्पर्श-तन्मात्रा के प्रत्येक परमाणु मे ओत प्रोत होकर इन सूक्ष्म जर्रो मे जीवन सा भर रहा है। इन को मानो कार्यो मे नियोजित कर रहा है। इन्हे मानों प्रेरित कर रहा है। इसी के व्यापक रूप सम्बन्ध से यह सब प्राणियां मे गति और चेतना का मानो सञ्चार कर रही है। समष्टि ब्रह्माण्ड मे यह स्पर्श-तन्मात्रा ही ब्रह्म की चेतनता के साथ जीवन और चेतना को लेकर मानो मातृवत् पोषण कर रही है। इस प्रकार की भावना द्वारा इसको प्रतीक बनाकर भगवान् की उपासना करे और स्पर्श तन्मात्रा के परिणत होते अनेक दिव्य स्पर्शों में ब्रह्म का अनुभव करें।

समष्टि स्पर्श-तन्मात्रा मण्डल

द्वितीय रूप मे ब्रह्म-विज्ञान

(स्पर्श तन्मात्रा का द्वितीय रूप)

२ स्पर्श तन्मात्रा के स्वरूप मे—

स्पर्श-तन्मात्रा की यह दूसरी अवस्था है। या दूसरा रूप है। स्पर्श-तन्मात्रा का धर्म स्पर्श है। यह स्पर्श स्पर्श-तन्मात्रा मे सदा वर्त्तमान रहता है। कभी अलग नही

होता। इसीलिये स्पर्श-तन्मात्रा और स्पर्श दो पदार्थ अलग कभी नहीं मिलते। स्पर्श स्पर्श-तन्मात्रा का स्व-स्वसामान्य धर्म है। जहाँ स्पर्श-तन्मात्रा होगी वहाँ स्पर्श भी होगा। यह स्पर्श स्पर्श-तन्मात्रा मे भी है, और स्पर्श तन्मात्रा के परिणामो मे भी।

ससार मे जितने भी स्पर्श हैं, चाहे वे अग्नि के हो, चाहे हिम के, चाहे कान्टे के, चाहे फूल के, चाहे तलवार के, चाहे ढाल के, चाहे छुरी के, चाहे गोली के, चाहे बिजली के करन्ट के, चाहे साइनाइट के, चाहे सखिया और चाहे हलाहल के, चाहे सौदामिनी के, चाहे कामिनी के, चाहे कालकूट के, चाहे अमृत के, सब सामान्य स्पर्श के परिणाम हैं। स्पर्श तन्मात्रा के धर्म है।

यह स्पर्श धर्म स्पर्श-तन्मात्रा मे स्वरूप सम्बन्ध से रहता है। स्पर्श कभी भी स्पर्श तन्मात्रा से अलग नही। यही स्पर्शतन्मात्रा या वायु के सूक्ष्म रूप धर्म का इस धर्मी के साथ स्वरूप सम्बन्ध है। अर्थात् सम्वाय सम्बन्ध है। यहाँ धर्म धर्मो का अभेद है। धर्म धर्मी मे सदा बने रहते है। अत परस्पर अभेद है। स्पर्श-तन्मात्रा का उपरिप्रदर्शित अपने अनेक परिणामात्मक नाना प्रकार के स्पर्श गुणो के साथ स्वरूप सम्बन्ध से अभेद है। स्पर्श धर्म से अलग स्पर्श-तन्मात्रा कोई पदार्थ नही है। स्पर्श का नाम स्पर्श-तन्मात्रा है। और स्पर्श तन्मात्रा ही स्पर्श है। इनका त्रिकालाबाध शाश्वत सम्बन्ध है। इनकी अलग-अलग सत्ता नही। धर्म धर्मी एक ही है। हम न्याय वैशेषिक के समान धर्मो को धर्मी से पृथक नही मानते है।

स्पर्श-तन्मात्रा कहो या दिव्य स्पर्श बात एक ही है। यह दिव्य स्पर्श वायु के कारण भूत अनन्त सूक्ष्म-परमाणुओ का समुदाय एक स्पर्श-तन्मात्रा द्रव्य है। दिव्य स्पर्श या स्पर्श-तन्मात्रा का अभिप्राय है स्पर्श का सूक्ष्म रूप। यह स्पर्श-तन्मात्रा अपने परिणामात्मक धर्मो सहित विविध स्पर्शो के रूप मे सूक्ष्म शरीर के भोग मे आती है। इस तन्मात्रा की स्पर्श रूप ही अवस्था है। परिणाम भाव को प्राप्त होकर यह सूक्ष्म स्थूल भूतो मे चली जाती है।

स्पर्श धर्म स्पर्श तन्मात्रा म सदा अनुस्यूत रहता है। इसी प्रकार ब्रह्म भी स्पर्श-तन्मात्रा मे अनुस्यूत रहता है। क्योकि ब्रह्म-सर्वगत है। स्पर्श-तन्मात्रा किस प्रकार क्रम पूर्वक अपने सामान्य विशेष धर्मो मे अभेदरूप से परिणत होती रहती है। और परिणत होते हुए भी उनसे पृथक् नही होती है। इस प्रकार अभेद रूप सम्बन्ध मे उस अभेद रूप ब्रह्म की अभेद रूप मे उपासना करें। मानो वह इस धर्म धर्मी के अभेद मे समाया हुआ है। रमा हुआ है। और इसको एक प्रकार से चेतना देकर मानो प्राणियो के लिए महान् उपकार रूप से प्रस्तुत कर रहा है। योगी को अपनी सूक्ष्म बुद्धि बना कर इस सूक्ष्म-सम्बन्ध मे प्रवेश करके यथार्थ निश्चयात्मक विज्ञान को प्राप्त करना चाहिए। इस सम्बन्ध मे ब्रह्म का आरोप करके प्रत्यक्ष रूप से उसकी अनुभूति करनी चाहिये। यह ब्रह्म विज्ञान का एक अच्छा क्रम है। इस क्रम से प्रकृति के यावत्मात्र कार्यो मे सर्वत्र ब्रह्म की अनुभूति होती चली जायेगी, और पदार्थ के स्वरूप का भी विज्ञान हो जाएगा।

यह स्पर्श-तन्मात्रा की द्वितीय स्वरूप अवस्था का अभेद रूप से उल्लेख किया है। स्पर्श तन्मात्रा का और उसके अनेकानेक गुणो का स्वरूप सम्बन्ध है। इसे सम्वाय सम्बन्ध भी कहते हैं और तादात्म्य सम्बन्ध भी कहते हैं।

समष्टि स्पर्श-तन्मात्रा मण्डल

तृतीय रूप मे ब्रह्म विज्ञान

(स्पर्श-तन्मात्रा का तृतीय रूप)

३ स्पर्श तन्मात्रा के सूक्ष्म रूप मे—

समष्टि स्पर्श-तन्मात्रा का जिस अवस्था से परिणाम हुआ है, समष्टि स्पर्श-तन्मात्रा की उस पहिली स्थिति को स्पर्श-तन्मात्रा का सूक्ष्म रूप कहेंगे। समष्टि तम अहंकार ही समष्टि स्पर्श तन्मात्रा का सूक्ष्म-रूप है। समष्टि तम अहंकार अपने कार्य विशेष समष्टि स्पर्श-तन्मात्रा मे अनुस्यूत है। यह कारण कार्य का अयुत सिद्ध समुदाय समष्टि स्पर्श-तन्मात्रा है। अहंकार के सूक्ष्म अंश सामान्य और विशेष स्पर्शतन्मात्रा का समुदाय ही यहाँ एक आयुत-सिद्ध द्रव्य स्पर्श-तन्मात्रा बनता है। यह तम प्रधान अहंकार कारण मे कार्य रूप स्पर्श-तन्मात्रा की सूक्ष्मता है। इसी को स्पर्श तन्मात्रा का सूक्ष्म रूप कहते हैं।

इस अवसर पर समष्टि-तम -अहंकार मे उनके सहयोगी सत्त्व रजस के साथ मे जो एक विशेष क्रिया के उपरान्त एक विशेष परिणाम होता है। उसका दर्शन आश्चर्य-मय है। योगिन् ! इस परिणाम प्रक्रिया का यहाँ दर्शन कीजिये। यह दर्शन सम्प्रज्ञात समाधि मे ही होगा।

आप साक्षात् देखेंगे कि किस आश्चर्यमय रूप से तम प्रधान अहंकार मे सत्त्व रज अहंकार की मात्रायें कैसे परिणाम पैदा करती हैं। वह कैसे अन्ततोगत्वा स्पर्श-तन्मात्रा मे परिवर्तित हो जाता है। साथ ही यह भी अनुभव करें कि किस प्रकार सजातीय विजातीय धर्मों का नियोजन कर ब्राह्मीचेतन सत्ता अपने सन्निधान से अयुत-सिद्ध द्रव्य स्पर्श-तन्मात्रा का निर्माण कर रही है। किस प्रकार सूक्ष्म तम अहंकार का १७ भाग सत्त्व के ०४ भाग और रजस् के ०६ भाग के साथ संघात को प्राप्त होकर स्वस्थूलाकार स्पर्श-तन्मात्रा के रूप में पलट रहा है। ब्रह्म की सर्वव्यापक चेतना ही इस अवसर मे संघात करने वाली प्रेरिका है। इसी ब्रह्म-सत्ता का आपको यहाँ अनुभव करना है।

विलक्षणता देखिये, समष्टितम अहंकार बुद्धिगम्य था। स्पर्श-तन्मात्रा में पलटा तो दिव्य स्पर्शेन्द्रिय का विषय बन गया।

संक्षेप मे समष्टितम अहंकार का समष्टि स्पर्श-तन्मात्रा के रूप मे परिणाम हुआ है, और वह समष्टि-तम अहंकार धर्म-लक्षण अवस्था रूप मे परिणत होकर स्थूल रूप मे आ गया है।

स्पर्श तन्मात्रा की बारीकी को इस प्रकार समझिये—हमारे भूमण्डल में मानव की आदि जन्म भूमि त्रिविष्टप मे वर्त्तमान कैलाश शिखर का योगी ध्यान करता है। हिमाच्छन्न धवल कैलाश शिखर योगी के सामने है। कैलाश शिखर से योगी कैलाश शिखर के शान्त वातावरण पर ध्यान की दिव्य दृष्टि स्थिर करता है। शीतल, शून्य ताप से भी नीचे हिमशीतता का अनुभव करता है। उस शीतता में और गहरा पैठता है, सामान्य स्पर्श का अनुभव करता है जिस स्पर्श का यह शीतता परिणाम है, और

रेगिस्तान मे जिस स्पर्श का परिणाम झुलसा देने वाला हो, उन दोनो तथा अन्य स्पर्शों मे वर्त्तमान सामान्य स्पर्श का अनुभव करता है। और अधिक सयम की स्थिति मे इस सामान्य स्पर्श-तन्मात्रा के पूर्ववर्त्तमान उसके मूल कारण सत्तात्मक तम प्रधान अहकार का प्रत्यक्ष करता है। यह जड सत्तात्मक तम अहकार ही तो स्पर्श-तन्मात्रा के रूप मे परिणत हुआ है। यहाँ सामान्य तो तम प्रधान अहकार है। और विशेष स्पर्श-तन्मात्रा है। इनका समुदाय ही अयुतसिद्ध द्रव्य स्पर्श तन्मात्रा है। स्पर्श की विशेषता जिससे सामान्य स्पर्श के परिणतगुण कैलाशहिम की शीतता को जाना गया है, स्पर्श-तन्मात्रा का ही परिणामात्मक गुण है।

यही स्पश तन्मात्रा का सूक्ष्म रूप है। स्पर्श तन्मात्रा का यह तीसरा रूप है। योगी इस परिणात्मक सम्बन्ध का प्रत्यक्ष कर लेता है। कारण कार्यरूप मे सदा पलटता ही रहता है। योगी को अपनी सूक्ष्म बुद्धि बनाकर इस सूक्ष्म सम्बन्ध मे प्रवेश कर के यथार्थ निश्चयात्मक विज्ञान को प्राप्त करना चाहिये। इस सम्बन्ध मे ब्रह्म का आरोप कर के प्रत्यक्ष रूप मे उसकी अनुभूति करनी चाहिये। यही इसकी सूक्ष्म अवस्था है। योगी को ध्यान काल मे ऋतभरा बुद्धि से इनका निर्माण होते हुए अपनी दिव्य दृष्टि से अनुभव करना चाहिये, क्याकि यहा कार्य से कारण का बोध परिणाम होते हुये करना है। साथ मे ब्रह्म की अनुभूति भी। यहाँ तम-प्रधान अहकार ही स्पर्श-तन्मात्रा की सूक्ष्म अवस्था है।

जितना यह सूक्ष्म पदार्थो का विज्ञान कठिन और गहन है, उससे अधिक गहन उस ब्रह्म का विज्ञान है। जो यहाँ कारण और कार्य मे ओत प्रोत हो रहा है। यह सजातीय विजातीय अहकार और तन्मात्राओ का परिणाम क्रम सूक्ष्म रूप से सदा होता रहता है। तन्मात्राओ के परमाणु परिणत होकर या अपने कार्य से अलग होकर नवीनता प्राप्त करने के लिये अपने कारण मे जाते रहते है। इसी तरह अहकार के सूक्ष्म अश उस से पृथक होते है, और परिणाम भाव को प्राप्त होकर अपने महान् कार्य-तन्मात्रा मे आते रहते हैं। यह आवागमन सृष्टि के आदि से लेकर अन्त तक वना ही रहता है। इस सूक्ष्म परिणाम क्रम मे ब्रह्म की भावना करनी चाहिये। इन सूक्ष्म अशो का किस सूक्ष्मता से यह नियोजक बना हुआ है। सर्वत्र अपने स्वरूप के अनुभव के साथ उसके अनन्त स्वरूप की तुलना कर के देखते रहें कि वास्तव मे यह चेतन ब्रह्म का स्वरूप है। जैसे चित्त मे मिल हुए अपने स्वरूप की अनुभूति होती है, ऐसे ही सूक्ष्म कारण कार्य मे व्याप्त हुए ब्रह्म की अनुभूति होनी चाहिये।

समष्टि स्पर्श-तन्मात्रा मण्डल

चतुर्थ रूप मे ब्रह्म-विज्ञान

(स्पर्श तन्मात्रा का चतुर्थ रूप)

४ स्पर्श तन्मात्रा के अन्वय रूप मे—स्पर्श-तन्मात्रा का मूल प्रकृति के साथ परम्परागत कारण कार्य रूप सम्बन्ध स्पर्श तन्मात्रा का अन्वय है। स्पर्श-तन्मात्रा का कारण क्या है? उस कारण का कारण क्या है? अन्तिम कारण किस अकारण, अपरिणामिणी मूल प्रकृति का है। इस प्रकार कारण के कारण को जानना स्पर्श-तन्मात्रा का अन्वयरूप जानना है।

समष्टि तमः अहंकार समष्टि-स्पर्श-तन्मात्रा का कारण है। समष्टि महत्तमः समष्टितमः अहकार का कारण है। अव्यक्त अपरिणामी नित्य मूल प्रकृति समष्टि महत्तमः का कारण है। इस मूल-प्रकृति मे ही स्पर्श-तन्मात्रा का इस प्रकार परम्परागत अन्वय है। यह स्पर्श-तन्मात्रा की वंशावलि है।

मूल प्रकृति अजन्मा है, अतः नित्य है। स्थिति इसका स्वरूप है। प्रभु के सन्निधान से इस मे ज्ञान और क्रिया गुण आये। अपने स्वरूप और गुणो के साथ अपने परम्परागत सब कार्यो मे इसका अनुपतन हुआ है। प्रकृति का कोई कारण नही, प्रकृति किसी का परिणाम नही, किसी का काय नहीं, पर कार्यों मे परिणत होती जाती है। स्पर्श-तन्मात्रा मे अपने स्वरूप और गुणों को लिए अनुपतित हुई है। प्रकृति की सत्ता से ही स्पर्श-तन्मात्रा है। प्रकृति है तो स्पर्श-तन्मात्रा और उस के कार्य है। कारण प्रकृति के गुण कार्य रूप स्पर्श-तन्मात्रा मे आये हैं। बहुत लम्बी परम्परा के कारण सत्ता रूप धर्म ही स्पर्श तन्मात्रा में मुख्यतः आया है। इस लिए स्पर्श-तन्मात्रा मे स्पर्श की सत्ता है। स्पर्श रूपेण इसका बोध होता है। प्रकृति का ज्ञान ज्ञेयत्व रूप से स्पर्श मे आया है। स्पर्श के द्वारा जब कुछ जाना जाता है, तो ज्ञान भी अव्यक्त से रूप मे इसमे आया प्रतीत होता है। प्रकृति की क्रिया तो इस मे आकर विलुप्त सी हो गयी हैं, स्पर्श कही स्वयं जाता नही। किसी के आश्रय से गमन इस मे आया सूक्ष्म-रूपावशिष्ट क्रिया का द्योतक है। इस प्रकार स्पर्श-तन्मात्रा मे अन्वय-धर्म वर्त्तमान है।

स्पर्श-तन्मात्रा के अन्वय रूप में ब्रह्म की सूक्ष्म रूप-व्यापकता का अनुभव करना चाहिये। क्योकि किसी पदार्थ की भी परिणत होती हुई अवस्था चेतन ब्रह्म के सम्बन्ध से अलग नही रह सकती। अतः इस अनुपतन और इसके निमित्त-कारण ब्रह्म का भी विज्ञान अभ्यास मे साथ-साथ करना चाहिये। जिससे ब्रह्म की सर्व-व्यापकता और सन्निधानता अनायास ही हृदयंगम होती जाये।

समष्टि स्पर्श-तन्मात्रा मण्डल

पञ्चम रूप में ब्रह्म-विज्ञान

(स्पर्श-तन्मात्रा का पञ्चम रूप)

५. स्पर्श-तन्मात्रा के अर्थवत्त्व रूप में—यह स्पर्श-तन्मात्रा स्थूल भूत वायु मे मुख्य रूप से उपादान कारण होती है। इस का एक ही धर्म मुख्य रूप से स्पर्श है। जिस की स्थूल सूक्ष्म मे सर्वत्र अनुभूति होती है। सूक्ष्म शरीर में इस की प्राण-रूप मे प्रतिष्ठा है। वहाँ इसका आहार रूप मे भी उपभोग होता है। जैसे स्थूल लोक मे भूमि के पास की वायु प्राणदा है, मानव के जीवन का आधार है। इसी प्रकार पृथिवी-तन्मात्रा की निकटवर्त्ती यह स्पर्श-तन्मात्रा सूक्ष्म शरीरों के लिये प्राणदा होती है। हर प्रकार से सूक्ष्म शरीरो का पालन-पोषण तर्पण करती है। यही इसका अर्थवत्त्व है।

जब तन्मात्रायें प्रलय-काल में प्रवेश करती हैं, तब यह ही इनका संहार में भाग लेती है। प्रत्येक तन्मात्रा को गति-प्रदान करती है। इसके कारण [illegible] त्राओ के परमाणुओं मे सदा कम्पन बना रहता है। चाहे गतिशील हो वा [illegible] कारण कम्पन अवश्य होता है। यह भी इसकी अर्थवत्ता है। इसकी [illegible] का अनुभव करना चाहिए।

यह अध्यात्म वादियो का परिणाम इतनी सूक्ष्म अवस्था पर पहुँचा है कि जिस की साधारण व्यक्ति कल्पना ही नही कर सकता । वह समझ ही नही सकता है। यह उसकी पहुँच से परे है।

प्रत्यक्ष वादियो की भ्रान्ति

प्रत्यक्षवादी अभी भ्रान्त ही है क्योकि वे प्रत्येक पदार्थ को स्थूल इन्द्रियो का विषय मानते हैं। जो पदार्थ इन को प्रत्यक्ष न हो, वह ससार मे है ही नही। ऐसी इन की मान्यता है। ध्यान समाधि मे इनका विश्वास ही नही है। जिन के द्वारा इन सूक्ष्म पदार्थो को जाना जा सकता है। जो सूक्ष्म पदार्थ अभी इन की समझ मे नही आये है, उन्हे कुछ स्वीकार तो करते है, परन्तु कहते है कि हम अपने विज्ञान के आधार पर प्रत्यक्ष करके इनके विषय मे कुछ कहेगे। जैसे मन का अनुमान तो करते है, प्रत्यक्ष रूप से देख नही पाये है। हमारा कथन है कि जैसे आप मन को स्वीकार करते है, पर अभी प्रत्यक्ष नही कर पाये है। इसी प्रकार तन्मात्रा और स्पर्श के विषय को भी स्वीकार करना चाहिये।

इस शरीर का अभिमानी जीवात्मा है। और इस सृष्टि का कर्ता ईश्वर भी है। यहाँ ये लोग कहते है जब देखेंगे तो मान लेंगे। इसी प्रकार अन्य अनेक भ्रान्त आत्माय सकार मे है।

सूक्ष्म भूत वायु जैसे सूक्ष्म रूप से ससार मे सूक्ष्म भूतो और पदार्थो को क्रिया करा रहा है। इसी प्रकार इसके अन्दर भी एक चेतन सत्ता है जो प्रत्येक परमाणु को अन्तर्यामी रूप से क्रिया शील कर रही है। इस समष्टि स्पर्श-तन्मात्रा मे ब्रह्म का अध्यारोप कर के उपासना और विज्ञान करना चाहिये। वह अन्तर्यामी रूप से प्रत्येक कण-कण को चेतनवत् बनाये हुए है। यह उस ही चेतन की महती, अपार एव अनन्त शक्ति है। इस चेतन सत्ता ने इन जीवा पर अनन्त उपकार किये हैं। जिस के ऋण से अनेक जन्मो मे उऋण नही हो सकते हैं, यदि इस को ऋण ही समझा जाये तो। परन्तु ब्रह्म से तो यह कार्य होना ही है। चाह हम ऋण समझें या न सकझ। चाहे उस की भक्ति उपासना या पूजा करें या न कर। वह नही कहता कि मेरी पूजा करो, ध्यान करो, भक्ति करो। किन्तु हमे ही एक लज्जा सी आती है कि जिसने हमारे लिये अनेक पदार्थ बनाये, उपकार किये, उसका धन्यवाद भी नही करते हैं। हमे अपना जीवन कुछ कृतघ्न सा प्रतीत होने लगता है। इसी लिये ईश्वर के प्रति श्रद्धा भक्ति विश्वास की भावना कर के उऋण होने के लिये वाध्य होना मानव का कर्तव्य हो जाता है, कि उसकी पूजा, जाप, उपासना, ध्यान किया जाये। इससे मानव की बुद्धि और चित्त शान्त होते हैं। और विकारो से बचे रहते हैं। अपनी ससीमता की-तुच्छता की अनुभूति होने लगती है। अहकार भावना जाती रहती है। महान् समुद्र की जल राशि के सामने अपने आप को एक छोटे जलबिन्दु के समान समझने लगता है। उस भगवान् के निष्काम कर्म को देख कर स्वय ही निष्काम कर्म करने की भावना बनती है। भगवान् के कर्तृत्व के निरभिमान भाव को देख कर स्वय भी निरभिमानी बनने का यत्न करता है। अनेक पाप कर्मो और बुराईयो से बचता है। जीवन सुखी और शान्त बनता है। ज्ञान और वैराग्य की भावना दृढ होती है। दु खो से निवृत्ति

का उपाय करता है। भगवान् के समान दया और दान की भावना उपजती है। भगवान् को अपनाने का विशेष प्रयत्न करता है। ससार के भोगो से उदासीन होने लगता है। ससार को परिणामी, अनित्य एव निस्सार समझ कर ज्ञान और वैराग्य के पथ को दृढ करता है। आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक परिणाम ताप सस्कार रूप दु खो के स्वरूप को समझ कर इन से अलग होने की, निवृत्त होने की भावना प्रबल हो जाती है। इन साधनो से मोक्ष का मार्ग सुन्दर, सरल, निरातक, निर्भय, निष्कण्टक, सुख-दायक, आनन्द प्रद प्रतीत होने लगता है और इसी जीवन मे मुक्त हो जाता है।

इति समष्टि स्पर्शतन्मात्रा मण्डलम्

इति द्वितीयाध्याये चतुर्थं खण्ड

इति पञ्चविंशमावरणम्।

पञ्चम खण्ड

२४वाँ आवरण

समष्टि शब्द-तन्मात्रा मण्डल

पाँचो रूपो मे ब्रह्मदर्शन

समष्टि शब्द-तन्मात्रा सदा आकाश मण्डल मे सुरक्षित कोप के रूप मे सुरक्षित हैं। जिस से व्यष्टि शब्द तन्मात्रा उत्पन्न हो हो कर योगियो, सूक्ष्म शरीराभिमानियो के उपभोग मे आती है, वह ही समष्टि शब्द-तन्मात्रा का सुरक्षित कोष है। समष्टि शब्द-तन्मात्रा का स्तर सब से अन्तिम स्तर है। पर यह अन्य पृथवी जल अग्नि वायु की समष्टि तन्मात्राओं मे व्याप्त सी हो कर रहती है अत विशेप स्तर के अतिरिक्त समस्त आकाशमण्डल मे शब्द-तन्मात्रा उपलब्ध होती है।

प्रतिक्षण असख्य व्यष्टि शब्द-तन्मात्राय प्राणियो का उपभोग सम्पादन करती है। अपना कार्य पूरा कर फिर समष्टि मे जा मिलती है। उधर समष्टि शब्द-तन्मात्रा भी प्रतिक्षण व्यष्टि शब्द तन्मात्राओं की असख्य तन्मात्राओ की व्युत्पत्ति करती रहती है। ब्रह्म के सम्पर्क से चेतन सी बनी शब्द-तन्मात्रा इस करण कार्य रूप परिणाम चक्र को घुमाती रहती है। समष्टि शब्द-तन्मात्रा के भी स्थूल, स्वरूप, सूक्ष्म, अन्वय, और अर्थवत्त्व पाच रूप हैं। उन पाचो रूपो, उनमे क्रमश होते परिणामो को भी योगी को साक्षात्करना है, साथ ही उनके प्रेरक नियामक सर्वत्र विद्यमान भगवान् की चेतन-सन्निधानता को भी सर्वत्र प्रत्यक्ष करना है।

समष्टि शब्द-तन्मात्रा मडण्न
प्रथम रूप मे ब्रह्म-विज्ञान
(शब्द तन्मात्रा का प्रथम रूप)

१. शब्द तन्मात्रा के स्थूल रूप मे—

आकाश का पूर्वरूप शब्द-तन्मात्रा है। यह शब्द-तन्मात्रा ही आकाश महाभूत मे पलटी है। शब्द-तन्मात्रा आकाश की अनुद्भूत सूक्ष्म अवस्था है। आकाश शब्दतन्मात्रा की उदभूत अवस्था है। शब्द-तन्मात्रा का ज्ञान सूक्ष्म श्रोत्रेन्द्रिय से होता है। श्रोत्र तो बाहर कनपटी पर दिखाई देते हैं। पर सूक्ष्म श्रोत्रेन्द्रिय ब्रह्म-रन्ध्र मे सूक्ष्म शरीर मे रहती है। श्रोत्र स्थूलेन्द्रिय है, और अन्नमय शरीर का भाग हैं। स्थूल शब्द स्थूल श्रोत्रेन्द्रिय से गृहीत होता है। और यही स्थूल शब्द सूक्ष्म श्रोत्रेन्द्रिय तक पहुँचते-पहुँचते सूक्ष्म शब्द-तन्मात्रा के रूप मे बन जाता है। स्थूल शब्द का उपभोग स्थूल शरीर कर लेता है। और सूक्ष्म श्रोत्रेन्द्रिय जिस का ग्रहण करती है वही शब्द-तन्मात्रा है सूक्ष्म श्रोत्रेन्द्रिय सूक्ष्म शरीर के एक भाग बुद्धिमण्डल मे अन्य सूक्ष्मन्द्रियो के साथ रहती है। स्थूल शब्द का व्यवहार प्राणीमात्र करते हैं। सूक्ष्म दिव्य शब्द-तन्मात्रा का व्यवहार उपभोग योगी, सूक्ष्म शरीराभिमानी आकाशचारी आत्मायें अथवा स्वर्गस्थ आत्मायें करती हैं।

शब्द-तन्मात्रा कहे या आकाश-तन्मात्रा बात एक ही है। यह परिणाम भाव को प्राप्त होते हुए अनेक सूक्ष्म शब्दो को गुणों के रूप मे उत्पन्न करती है। जो कि दिव्य लोक मे प्रयुक्त होते है और इस लोक मे परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी के रूप मे और दश प्रकार के नाद के रूप मे प्रकट हुए हैं। हारमोनियम आदि का सप्तक षड्ज, रैवत, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद. यह सब आरोह अवरोह के भेद से शब्द-तन्मात्रा के परिणामात्म कार्य स्वरूप ही विभिन्न विभिन्न भेद हैं।

शब्द के विषय मे अनेक वाद विवाद है। कोई इसे अनित्य कहते हैं, कोई इसे नित्य मानते हैं। हम इससे कार्य रूप से अनित्य और कारण रूप से नित्य कहते हैं। सयोग से प्रकट होता है इस लिये अनित्य है। सूक्ष्म रूप से कारण मे वर्तमान था, सयोग ने इस को प्रकट कर दिया, इसलिये नित्य है। प्रादुर्भाव इस का आकाश मे ही होना है। अन्यत्र इस के लिये कोई स्थान ही नही है। आकाश सर्वत्र है। अत. शब्द जहाँ भी होगा, वह आकाश मे होगा। शब्दतन्मात्रा को दिव्य शब्द भी कहते है, यह सूक्ष्म शरीर की कर्णेन्द्रिय का विषय है। इसका उपभोग सूक्ष्म शरीर द्वारा होता है जब योगी का सूक्ष्म-भूतों पर अधिकार हो जाता है। वह भी इच्छा पूर्वक सकल्प द्वारा इसको सुन लिया करता है और सूक्ष्म-शरीरो के शब्द सकेतो की भी समझने की योग्यता हो जाती है। ध्यान काल मे योगी दिव्य शब्दो को सुना करता है। दश प्रकार के नादो के सूक्ष्म शब्दो को योगी सुनता है। उन पर ध्यान लगाता है। जो बाहर के स्थूल शब्दो से विचित्र, मनोरञ्जक एव मन बुद्धि को समाहित करने मे अत्यन्त ही उपयोगी होते हैं, और भी नाना प्रकार के सूक्ष्म शब्दो को योगी सुनता है, जिनको आकाशवाणी के रूप मे प्राय कहा करता है। इन से अनेक प्रकार के विज्ञान प्राप्त कर के भविष्य वाणी के रूप मे साधको को सुनाया करता है।

ये सब शब्द-तन्मात्रा के ही परिणात्मक नाना प्रकार के शब्द गुणात्मक विषय होते हैं। जब योगी को इसका रहस्य समझ मे आ जाता है, और दिव्य शब्द पर अधिकार हो जाता है, तब सिद्धो के दर्शन के समय मे उन से वार्ता करके विज्ञान प्राप्त करने की शक्ति भी योगी मे हो जाया करती है। यदि दिव्य शब्द पर सयम करके अधिकार प्राप्त न किया हो तब सिद्धो का केवल दर्शन ही हो कर रह जाया करता है। इसके विषय मे योग दर्शन ने भी इस प्रकार लिखा है, यथा —

'तत प्रातिभश्रावण वेदनादर्शास्वाद-वार्ता जायन्ते'

योग दर्शन विभू० पा० ३। सू ३६

प्रातिभ विज्ञान के द्वारा सूक्ष्म-व्यवहित विप्रकृष्ट-अतीत अनागत ज्ञान प्राप्त होता है। और दिव्य शब्द, दिव्य-स्पर्श, दिव्य-रूप, दिव्य-रस, दिव्य गन्ध का विज्ञान हो जाता है।"

अभ्यास काल मे योगी अपने साधक अभ्यासी पर दूर देश मे भी अपने विज्ञानात्मक शब्दो द्वारा सन्देश भेजा करता है। वे शब्द उसी प्रकार के विज्ञान या पदार्थ बोध का हेतु बन जाते हैं। कई बार ऐसा भी करके देखा गया है यदि कोई परिचित या अपरिचित—जिसके आकार आदि का कुछ विवरण मिल गया हो, दूर देश मे उसके ऊपर ताडना के शब्दो का प्रयोग किया जाये या ऐसा कहा जाये कि यह काम नहीं करना है तो उस व्यक्ति पर ये शब्द अवश्य प्रभाव डालते हैं। वे वाणी से निकले हुए स्थूल शब्द

आकाश मे गमन करते हुए सूक्ष्म-भाव को प्राप्त होकर उसके मन पर प्रभाव डाल कर उसे उस कार्य मे प्रवृत्ति से रोक देते है। ऐसा अनेक वार करके देखा गया है। और यथार्थ निकला है।

शब्द-तन्मात्रा पर योगी का कुछ अधिकार हो जाने से दिव्य शब्द की अनुभूति स्वय भी होती है, और दूसरे को अनुभव कराने मे भी समर्थ हो जाता है।

एक योगी का चमत्कार

एक योगी मेरे पास कुछ काल तक अमृतसर में नहर पर मोती राम की वगीची मे रहे थे। उन्होने कई वार उपदेश रूप मे मेरे पास नीचे से ऊपर के कमरे मे सन्देश भेजे थे। वे पहिले अपने पास लिखकर रख लेते थे। मुझे भी समझाया हुआ था कि आप भी सन्देश जैसा समझ में आवे कागज पर नोट कर लिया करो। अमुक समय मेरे पास ले आया करो और दोनों नोटों का मिलान किया करो।

दोनो ओर के लेखो की वातें प्रायः समान ही हुआ करती थी। केवल भाषा का ही कुछ अन्तर होता था, लिखा हुआ विषय पत्रो का समान ही होता था।

इनके अन्दर कई सिद्धिया थी। एक खद्दर की चद्दर और दो लगोटी केवल इनके पास थीं न कोई अन्य वस्त्र, न बरतन। कुछ भी तो और न रखते थे। कमजोर दुवला पतला सा शरीर था। किसी से कोई सम्बन्ध नही रखते थे। मैं इन्हे नित्य साबुत मू ग पका कर घी डाल कर दिया करता था। २४ घन्टे मे वहुत थोड़ा सा यही आहार था। २, ३ मास ही वहा रहे। अन्त मे अन्तर्धान होकर चले गये थे। फिर कभी कही भी न मिले। वे वाङ्गर देश के सन्त थे। इन्होने कुटिया के अन्दर समाधि मे वैठकर वाहर से मेरे से ताला लगवा कर पहरा बठाया था, ४ दिन तक। परन्तु जव चौथे दिन ताला खोला गया तो वे अन्दर नही मिले थे।

यह शब्द तन्मात्रा का विषय अत्यन्त ही सूक्ष्म और गहन है। यह सूक्ष्म शरीरो, योगियो और अन्तरिक्ष मे रहने वाले सूक्ष्म शरीरो के भोगने, व्यवहार मे लाने या प्रयोग करने का विषय है। एकान्त मे रहकर निरन्तर अभ्यास करने, और अन्तर्मु ख वृत्ति होने से इस पर वहुत कुछ अधिकार हो जाता है। वाह्य मुख वृत्ति मे इस विषय का ह्रास होता है।

इस आकाश-तन्मात्रा मे सव सूक्ष्म भूतों और सूक्ष्म शरीरो का व्यवहार होता है, जैसे स्थूल आकाश में स्थूल भूत और स्थूल शरीरों का व्यवहार होता है। यह शब्द-तन्मात्रा सात्त्विक, राजस, तामस भेद से सूक्ष्म जगत् के लिये महान् उपकारक है। योगी भी इस से अपना अनेक कार्य करते है।

तमः प्रधान अहकार से सर्व-प्रथम इसी की उत्पत्ति हुई है। इसके पश्चात् जो जो भूत उत्पन्न होते गये यह सबका आवास स्थान बनती गयी। सबको अपने अन्दर धारण किया। इस आकाश-तन्मात्रा के अनेक परिणामात्मक शब्द धर्म है और वह भी अत्यन्त सूक्ष्म। अर्थात् स्थूल शरीर की श्रोत्रेन्द्रिय से जो स्थूल शब्द सुनाई देते है उनमे अत्यन्त सूक्ष्म और विलक्षण है। स्थूल शब्द की गति भी अत्यन्त तीव्र और सूक्ष्म है।

यह शब्द सहस्रो मील सैकिण्डो मे पहुच जाता है। अमरीका मे रेडियो स्टेशन पर भाषण होता है, और वह सैकिण्डो मे भारत पहुच जाता है। वहा यह शब्द कण्ठ, तालु, दन्त ओष्ठ आदि के सयोग से ही उत्पन्न हुआ था।

इस आकाश-तन्मात्रा का बहुत विस्तृत, व्यापक, एव सूक्ष्म प्रसार है। इसमे स्थूल और सूक्ष्म जगत् ओत प्रोत होकर ठहरे हुए है। इतना सूक्ष्म होते हुए भी इतने बडे ब्रह्माण्ड को धारण किये हुए है। इसकी शक्ति और बल का वर्णन ही नही हो सकता है। इस सूक्ष्म शब्द-तन्मात्रा मे उस चेतन सूक्ष्म से भी सूक्ष्म ब्रह्म का अध्यारोप करके इसको अपनी उपासना और विज्ञान का विषय बनाना चाहिये। यह सूक्ष्म विज्ञान की अत्यन्त पराकाष्ठा है। इस अवस्था मे ही पहुच कर भगवान्की सूक्ष्मता की पूर्ण अनुभूति होती है। यदि इस आकाश-तन्मात्रा मे भगवान् का आरोप करके विज्ञान प्राप्त किया जाये तो सब कामनाये शान्त हो जाती है। सब विषय निवृत्त हो जाते हैं। अन्त करण मे शून्यता छा जाती है। सब विषय-भोगो का अभाव हो जाता है। यहा आकर वशीकार सज्ञक वैराग्य हो जाता है। ऐहिक और स्वर्गीय सब विषयो का अभाव हो जाता है। यहा पहुच कर दोनो प्रकार के भोगो का आभास तक समाप्त हो जाता है। अथवा यहा सूक्ष्म शब्द अर्थात् ओङकार मे भगवान् का अध्यारोप करके इस शब्द-तन्मात्रा द्वारा ब्रह्मोपासना या ब्रह्म-विज्ञान प्राप्त करना चाहिये। अथवा 'ओम् स ब्रह्म' इस रूप मे उपासना और ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। यह सूक्ष्म आकाश ही ब्रह्म रूप है क्योकि ब्रह्म इसमे व्यापक है। यदि भगवान् को किसी रूप मे ही देखना है तो इस शब्द-तन्मात्रा के रूप मे ही देखना चाहिये। यही मानव मात्र की उपासना का विषय होना चाहिये। यह उपासना का विषय होते हुए भी निर्विषय ब्रह्म की उपासना या विज्ञान है। यह शब्द-तन्मात्रा सूक्ष्म आकाश रूप ही है। अत इसमे ही 'शब्दो वै ब्रह्म' इस रूप मे ब्रह्मोपासना करनी चाहिये।

आकाश सूक्ष्म भूत की अनित्यता

(शका) आप आकाश-तन्मात्रा (शब्द-तन्मात्रा) की भी उत्पत्ति मानते हैं। परन्तु न्याय वैशेषिक तो आकाश को नित्य मानते हैं। आप आकाश-तन्मात्रा के अनित्यत्व का ठीक रूप से समाधान करें, ताकि हमारी समझ मे भी आ जाये।

(समाधान) सूक्ष्मता की दृष्टि से योग और सांख्य, न्याय वैशेषिक से बहुत आगे बढ गये हैं। जिन सूक्ष्म परमाणु रूप भूतो को न्याय वैशेषिक नित्य मानते है, योग सांख्य इनको अनित्य मानते है। सब पदार्थों का मूल-उपादान कारण प्रकृति को ही बताते हैं। अत इस सिद्धान्त की दृष्टि से ये सूक्ष्म भूत कार्यात्मक ही सिद्ध होते है। न्याय वैशेषिक इन्द्रियों को भौतिक मानते है। और मन (अन्त करण) को नित्य और अणु-प्रमाण मानते हैं। बुद्धि को गुण मानते हैं, जो आत्मा और मन के सयोग से उत्पन्न होती है। इस प्रकार परस्पर विचार भेद है। दर्शनो मे योग, सांख्य, न्याय, वैशेषिक इन चार दर्शनो ने ही पदार्थों का विवेचन अच्छी तरह से किया है। उनमे भी सांख्य और वैशेषिक ने विशेष प्रकार से विवेचन किया है।

जब प्रकृति मे सृष्टि का आरभ होता है तब सर्वप्रथम छ पदार्थों की उत्पत्ति होती है। आकाश, काल, दिशा, सत्त्व, रज, तम ये प्रकृति के प्राथमिक कार्य-विशेष हैं। सृष्टि के निर्माण मे ये अन्त तक कार्य रूप मे परिणत होते जाते है। न्याय वैशेषिक ने आकाश, काल, दिशा प्रकृति के इन तीन कार्यो को नित्य मानकर इनके आगे होने वाले कार्यों को ही समाप्त कर दिया है। हम इन्हे अनित्य मानते है और इनको कार्यरूप दिया है, क्योंकि जो पदार्थ उत्पन्न हुआ है वह अवश्य ही अनित्य होगा। उसको अनित्य ही मानना पडेगा। प्रलयकाल मे ये सब अपनी कारण रूप प्रकृति मे विलीन हो जाते हैं। सर्वप्रथम परिणाम भाव को प्राप्त होकर आकाश, काल, दिशा कार्यरूप मे आये हैं। अत इनका कार्यान्तर भी होना ही है। योग साख्य ने तो आकाश को कार्यान्तर मे कर दिखाया है और साख्य ने दिशा और काल को आकाश के अन्तर्गत करके एक सूत्र का निर्माण किया है यथा—

'दिक्कालावाकाशादिभ्य.'

साख्य अ० २। सू० १२।

— भाष्यकार और वृत्तिकार आदि ने काल दिशा को आकाश की उपाधि से विशिष्ट समझकर इनको आकाश के अन्तर्गत कर दिया है। वृत्तिकार ने तो लिखा है, नित्य जो दिशा और काल हैं वे आकाश के प्रकृति भूत होकर, प्रकृति के ही गुण विशेष हैं। जब इन्हे प्रकृति का गुण-विशेष माना है, तब तो ये कार्यात्मक ही सिद्ध होते हैं। जैसे कि सत्त्व रज तम कार्यात्मक पदार्थ हो गये हैं। इसी प्रकार आकाश, काल, दिशा को भी कार्यात्मक ही मानना चाहिए। अत आगे आकाश से आकाश, काल से काल और दिशा से दिशा की उत्पत्ति होती माननी चाहिए क्योकि ये तीनो ही अनित्य हैं, जैसे सत्त्व रज तम ने अपने कार्यान्तरो को उत्पन्न किया है, इसी प्रकार आकाश काल दिशा ने भी परिणाम भाव को प्राप्त होकर अपने-अपने कार्यो को उत्पन्न किया है।

वैशेषिक के षट् पदार्थ

वैशेषिककार ने जो ६ पदार्थ माने है वे वास्तव मे कारण प्रकृति के अन्तर्गत ही समझने चाहियें। १ द्रव्य, २ गुण, ३ कर्म, ४ सामान्य, ५ विशेष, ६ समवाय। ये ६ पदार्थ हैं। द्रव्य ९ माने है—१ पृथिवी, २ अप्, ३ तेज, ४ वायु, ५ आकाश, ६ काल, ७ दिशा, ८ आत्मा, ९ मन। इनमे आत्मा को छोड कर शेष आठ प्रकृति के कार्य होने से इसके अन्तर्गत हो जाते है। इन्होने वायु, आकाश, काल, दिशा, मन, आत्मा को नित्य माना है। शेष पृथिवी, अप्, तेज इन तीन को अनित्यनित्य माना है।

योग साख्य ने गुण गुणी का अभेद माना है। अत २४ प्रकार के गुण जो वैशेषिक मानता है, ये प्रकृति का कार्य होने से स्वरूप सम्बन्ध मे प्रकृति के अन्तर्गत हो जाते है। कर्म तो कारण और कार्यों मे सदा ही बना रहता है। अत यह भी प्रकृति के अन्तर्गत हो जाता है। यह प्रकृति का गुण विशेष ही है क्योकि यह सूक्ष्म रूप से साम्यावस्थारूप प्रलयकाल मे और स्थूल रूप मे कार्य सृजन, और सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर प्रलयकाल तक बना रहता है। सामान्य और विशेष दोनो पदार्थ योग साख्य मे धर्म धर्मी के अभेद से गतार्थ हो जाते हैं। जैसे प्रकृति के सत्त्व, रज, तम तीन गुण प्रकृति से भिन्न

नही है, इसके ही परिणाम विशेष हैं। कार्य रूप से अनित्य, कारण रूप मे नित्य। अत सामान्य रूप से प्रकृति और विशेष रूप से सत्त्व रज तम ये अयुतसिद्ध द्रव्य ही प्रकृति हैं।

रहा समवाय सम्बन्ध। यहाँ स्वरूप सम्बन्ध प्रकृतिरूप धर्मी अपने सत्त्व, रज, तम धर्मो से अलग नही होना है। क्योंकि कारण कार्य के साथ सदा सूक्ष्म रूप म बना रहता है। जैसे सोना कुण्डल के रूप मे बना रहता है। अत प्रकृति भी सत्त्व रज तम गुणो मे विद्यमान रहती है। सो वैशेषिक का समवाय सम्बन्ध योग का स्वरूप सम्बन्ध ही है। *गुण और गुणी का अभेद होने से समवाय सम्बन्ध भी प्रकृति के अन्तर्गत* हो जाता है।

वैशेषिक के ६ पदार्थ अनित्य होने से प्रकृति के ही कार्य विशेष हैं। अत प्रकृति के अन्तर्गत हो जाते है। इसी हेतु से हमने आकाश, काल, दिशा को अनित्य मानकर कार्य रूप माना है।

'प्रकृति-पुरुपयोरन्यत्सर्वमनित्यम्।'

सांख्य० अ० ५। सूत्र ७२।

—प्रकृति और पुरुप—अर्थात् जीवात्मा और परमात्मा से भिन्न सब कुछ अनित्य है।

शब्द की अनित्यता

शब्द को बहुत से लोग नित्य मानते हैं, परन्तु उत्पन्न होने वाली वस्तु नित्य नही हो सकती है। आकाश अनित्य है क्योंकि शब्द-तन्मात्रा से परिणत हुआ है। कार्य रूप में आया है। कार्य अनित्य ही होता है, इसी प्रकार शब्द तन्मात्रा भी तम प्रधान अहकार का परिणाम है अत अनित्य है।

आज के विज्ञानवादी

वर्तमान के विज्ञानवादी ४।५।१० हजार वर्षो के शब्दो को पकडने की कोशिश कर रहे हैं। पर वह भी शब्दो का पकडना नही होगा। वह तो ऐसे ही होगा, जैसेकि फोनोग्राम के रेकार्ड पर या टेपरेकार्ड के टेप पर शब्द प्रतिबिम्बित हो जाते हैं। ऐसे ही २।४।१० हजार वर्षो के शब्द भी पृथिवी के भागो पर अंकित या प्रतिबिम्बित मिल सकते हैं। एक प्रकार से इनको शब्दो का सस्कार ही समझना चाहिए। जैसे कि अन्त करण पर सस्कार पडे हुए हैं। इसी प्रकार बाहर के रेकार्ड पर भी समझना चाहिए।

वास्तव मे यह सब भौतिक विज्ञान का विकास है—रेडियो पर शब्द का पकडना टेलीविजन पर रूप को पकडना। रेडियो और टेलीविजन की मशीनें पार्थिव हैं, अत पार्थिव पदार्थो पर शब्द और रूपो को अंकित कर लिया है। ऐसे ही शरीर म भी तो पार्थिव पदार्थ अधिक हैं। कान शब्द को पकडना है और यह आख रूप को पकडती है। इस शरीर रूपी प्राकृतिक मशीन का अनुकरण ही यह मानव की ईजाद, रचनाय या कृतियाँ है। इन स्थूल इन्द्रियो के बेकार हो जाने पर कृत्रिम इन्द्रियरूपी मशीनें आख, नाक, कान आदि लोक व्यवहार के लिए, अपने सुख और आराम के लिए मानव ने बना लिए हैं। यह मानव की बुद्धि का विकास है। उस प्रकृति या कुदरत का ही अनुकरण है।

इस स्थूल शरीर की इन्द्रियो से भिन्न इनसे भी सूक्ष्म, सूक्ष्म शरीर की सूक्ष्म इन्द्रियाँ ब्रह्म रन्ध्र मे है, जिनके आधार पर ये स्थूल शरीर आख, नाक, कान आदि इन्द्रिया और यन्त्र रूपी कृत्रिम इन्द्रियाँ कार्य करती है। जब यह सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर को छोडकर चल देता है, तब उस स्थूल शरीर को मृत शव समझकर अग्नि, जल, भूमि आदि मे फेंक देते हैं। अत यह जीवित शरीर की आखें, कान आदि तथा इनके स्थाना पन्न कृत्रिम आख कान आदि के यन्त्र सब सूक्ष्म इन्द्रियो के ही उपकरण मात्र हैं। करामात तब होगी जब भौतिक विज्ञानवादी शरीर के मृत हो जाने पर कई वर्ष या मास के पश्चात् उसमे कृत्रिम यन्त्र रूपी इन्द्रियो का सयोग करके उस शरीर को पुन जीवित कर काय रत कर देव। जब यह भौतिक विज्ञान से ऊपर उठकर आध्यात्मिक विज्ञान के सूक्ष्म जगत् मे प्रवेश करगे तब सम्भव है सूक्ष्म शरीर पर और सूक्ष्म तन्मात्राओ पर इस लोक के समान अधिकार करल। जैसे योगी करते है, परन्तु हमारी दृष्टि मे ये फिर योगी ही कहलायगे।

योगी की हेय उदासीनता

अत्यन्त खेद का विषय है कि जब हमारे भारतीय योगी अध्यात्मिक विज्ञान मे कुछ प्रवेश करके कुछ सफलता प्राप्त करने लगते है। थोडी सी विभूति के प्राप्त होने पर सन्तुष्ट होकर व्यर्थ मे दुरभिमानी हो, आलसी, प्रमादी, भोगी विलासी बन जाते है। सब कुछ करा कराया नष्ट कर लेते है। प्रकृति का अन्त नही, अत इसकी विभूतियो का भी अन्त नही है। जिस प्रकार दुनियादार लोग ससार के पदार्थो और ऐश्वर्यो की प्राप्ति मे अहर्निश लगे रहते हैं। हतोत्साह नही होते है, दिन प्रतिदिन उन्नति करते चले जाते है। मरण पर्यन्त वही रुकते ही नही। इसी प्रकार योगी को भी सूक्ष्म जगत् मे प्रवेश करके रुकना नही चाहिये। दिन प्रतिदिन उन्नति ही करनी चाहिये। सब सूक्ष्म पदार्थो पर अधिकार करना चाहिये। उनकी सूक्ष्मता के विज्ञान को बढाना चाहिये। थोडी सी विभूति से सन्तुष्ट होकर आलसी, प्रमादो, भोगी नही बनना चाहिये। इसका नाम त्याग वैराग्य नही है जो अनमिले के त्यागी वैरागी बन जाते है। यदि एक धनी है, उसमे धन ऐश्वर्य कमाने की कुशलता है, बल है, शक्ति है, बुद्धि है, पराक्रम है, तो उसको भी उस मे सन्तुष्ट होकर आलसी, प्रमादी, अकर्मण्य, दीर्घ सूत्री, भोग विलासी नही बनना चाहिये। उसका अपने लिये जरूरत नही है तो उसको दीन दुखी, अनाथ, विधवा, निर्धनो, असाहया के लिये अपने धन ऐश्वर्य को देकर उनके दु खो का निवारण करना चाहिये। तब ही वह धनी यथार्थ सच्चा त्यागी वैरागी हो सकता है। योगी को भी यदि अपने लिये उस अध्यात्म विज्ञान या सूक्ष्म जगत् के ऐश्वर्य की आवश्यकता नही है तो उसे दूसरे अधिकार सेवाओ को प्रदान करते हुए त्यागी वैरागी बनना चाहिय। बुद्धिमत्ता दानी के लिये दोनो प्रकार के ऐश्वर्य केवल अपने भोग के लिये नही होन चाहिये। अपितु दूसरा के लिये होने चाहिये तब ही उसका त्याग और वैराग्य सिद्ध होगा।

यहा कई प्रकार से आकाश-तन्मात्रा या शब्द-तन्मात्रा मे ब्रह्मोपासना और विज्ञान के क्रम लिखे गये है। योगी को इनके द्वारा शब्द-तन्मात्रा का साक्षात्कार, ब्रह्मोपासना तथा ब्रह्म विज्ञान एव ब्रह्म साक्षात्कार करना चाहिये।

समष्टि शब्द-तन्मात्रा मण्डल
द्वितीय रूप में ब्रह्म विज्ञान
(शब्द-तन्मात्रा का द्वितीय रूप)

२ शब्द-तन्मात्रा के स्वरूप में—शब्द-तन्मात्रा की यह दूसरी अवस्था है। शब्द-तन्मात्रा का धर्म शब्द है। यह शब्द धर्म शब्द-तन्मात्रा में सदा रहता है। सूक्ष्म भूत आकाश या आकाश-तन्मात्रा के अनेक गुण या धर्म हैं। आकाश-तन्मात्रा का शब्द आदि धर्मों के साथ अभेद है। आकाश-तन्मात्रा धर्मी और अनेक परिणामात्मक शब्द धर्म हैं। धर्म धर्मी का परस्पर अभेद है। यह भेद में अभेद का वर्णन है। यही वास्तव में स्वरूप सम्बन्ध है।

संसार में जितने भी शब्द हैं, चाहे मानव की भाषा हो, कोई सी भाषा हो, संस्कृत हिन्दी, अंग्रेजी, तामिल, तैलगू, गुजराती, महाराष्ट्री, पञ्जाबी, बंगाली, फ्रांसीसी, रूसी, जर्मन, जापानी, अरबी, फारसी, यूनानी, संसार की हजारों भाषाओं में से कोई भी भाषा हो, पशु पक्षी की बोलियां हों, या नाना प्रकार के वाद्यों की धुनें हों, चाहे युद्ध का तुमुलरव हो, चाहे वायु की सांय-सांय या नदी की कलकल,या सुनसान वन के पत्तों की खड़खड़ाहट हो, है यह सब सामान्य शब्द के निकटवर्ती अथवा दूरगामी परिणाम।

शब्द कभी भी शब्द-तन्मात्रा से अलग नहीं होता, क्योंकि स्वरूप सम्बन्ध है। शब्द तन्मात्रा ऊपर दिखाये परिणामात्मक नाना प्रकार के शब्दों के साथ स्वरूप सम्बन्ध से अभेद है। शब्द का नाम शब्द-तन्मात्रा है, और शब्द तन्मात्रा ही शब्द है। इनकी अलग-अलग सत्ता नहीं। धर्म धर्मी एक ही हैं।

शब्द-तन्मात्रा कहो या दिव्य शब्द बात एक ही है। यह दिव्य शब्द आकाश के कारण भूत अनन्त सूक्ष्म परमाणुओं का समुदाय एक शब्द-तन्मात्रा है। दिव्य शब्द का अर्थ है शब्द का सूक्ष्म-रूप, यह शब्द-तन्मात्रा भी अपने परिणामात्मक धर्मों सहित विविध शब्दों के रूप में सूक्ष्म शरीरों के भोग में आती है। इसकी शब्द रूप ही अवस्था है। परिणाम भाव को प्राप्त होकर सूक्ष्म स्थूल भूतों में चली जाती है।

शब्द धर्म शब्द-तन्मात्रा में सदा अनुस्यूत रहता है। इसी प्रकार ब्रह्म भी शब्द-तन्मात्रा में अनुस्यूत रहता है। शब्द-तन्मात्रा किस प्रकार अपने सामान्य विशेष धर्मों में अभेद रूप से परिणत होती रहती है। गुण गुणी के स्वरूप सम्बन्ध में योगी को भेदाभेद का प्रत्यक्ष विज्ञान होना चाहिये, और इसी स्वरूप सम्बन्ध में सूक्ष्म रूप से चेतन ब्रह्म की भी व्यापक रूप से अनुभूति होना चाहिये।

समष्टि शब्द-तन्मात्रा मण्डल
तृतीय रूप में ब्रह्म विज्ञान
(शब्द-तन्मात्रा का तृतीय रूप)

३ शब्द तन्मात्रा के सूक्ष्म रूप में—समष्टि शब्द-तन्मात्रा की उस पहली अवस्था को जिससे इसका परिणाम हुआ है, इसी का सूक्ष्म रूप कहेंगे। समष्टि तम अहंकार ही इसका सूक्ष्म रूप है। वह अपने कार्य विशेष समष्टि शब्द-तन्मात्रा में अनुस्यूत है। यह कारण कार्य का अयुत सिद्ध समुदाय समष्टि शब्द-तन्मात्रा है। सूक्ष्म अंश अहंकार

के सामान्य और शब्द तन्मात्रा विशेष तदात्मक अयुत-सिद्ध निरन्तर- अवयव सामान्य विशेष के भेद मे अनुगत समुदाय ही द्रव्य की सूक्ष्म अवस्था है। यह तम प्रधान अहकार कारण मे कार्य रूप शब्द तन्मात्रा की सूक्ष्मता है। इसी शब्द तन्मात्रा का सूक्ष्म रूप कहते है।

आप सम्प्रज्ञात समाधि मे प्रत्यक्ष करेगे कि १४ तम प्रधान अहकार मे ०५ सत्व और ११ रज प्रधान अहकार की मात्राये कैसे परिणाम पैदा करती है। वह कैसे शब्द-तन्मात्रा मे परिवर्त्तित होता है। ब्रह्म की सर्व व्यापक चेतना ही इस अवसर पर सघात करने वाली प्रेरिका है। इसी ब्रह्म की विद्यमानता का आपको यहाँ अनुभव करना है।

समष्टि तम अहकार बुद्धिगम्य था। शब्द तन्मात्रा मे पलटा तो दिव्य श्रोत्र का विषय बन गया।

शब्द तन्मात्रा की सूक्ष्मता को इस प्रकार समझ सकते है। हिमालय की कन्दरा मे, एकान्त गुफा मे योगी समाधिस्थ है। पास मे ही अनीश्वरवादी नास्तिक चीन का फेंका गोला कन्दरा के समीप ही आ फटता है। अभिनिवेश मुक्त, मृत्युजय योगी उसी गोले की गडगडाहट पर ध्यान करता है। यह शब्द कैसा ? पहले कभी सुनने मे आया नही। योगी थे ध्यान मग्न तत्काल शब्द तन्मात्रा सामने आयी। यह तो कारण है, इसका कार्य क्या है ? दिव्य दृष्टि फेंकी गोले की गडगडाहट सामने आयी। जाना यह शब्द-तन्मात्रा का परिणाम है और जान लिया। समाहित हो स्थूल से सूक्ष्म की ओर लौटे। शब्द तन्मात्रा किस से परिणत हुई जाने तो, योगी ने सकल्प किया और शब्द तन्मात्रा का पूर्वरूप कारणभूत तम प्रधान अहकार सामने था।

यहाँ इस प्रक्रिया मे सामान्य तो तम प्रधान अहकार है और विशेष शब्द-तन्मात्रा है। इनका समुदाय ही आयुत सिद्ध द्रव्य शब्द तन्मात्रा है। शब्द की विशेषता जिससे सामान्य शब्द के परिणत गुण गोले की गडगडाहट को जाना गया है। शब्द तन्मात्रा का परिणात्मक गुण है।

यही शब्द-तन्मात्रा का सूक्ष्म रूप है। आपने देखा, योगी ने इस परिणामात्मक सम्बन्ध को प्रत्यक्ष कर लिया। कारण मे कार्य परिणाम सदा होता रहता है। योगी को अपनी ऋतभरा बुद्धि से सूक्ष्म सम्बन्ध मे प्रवेश करके यथार्थ विज्ञान का निश्चय करना चाहिये। साथ ही उस परिणाम क्रम मे ब्रह्म का भी अनुभव करना चाहिये क्योकि यहा अत्यन्त सूक्ष्म परिणाम क्रम है। इसमे सूक्ष्म ब्राह्मी चेतना का अनुभव अच्छी तरह हो सकता है।

समष्टि शब्द-तन्मात्रा मण्डल
चतुर्थ रूप मे ब्रह्मविज्ञान
(शब्द तन्मात्रा का चतुर्थ रूप)

४ शब्द-तन्मत्रा के अन्वय रूप मे—

कार्योन्मुख मूल प्रकृति का अपने कार्यो सहित अनुपत होते हुए शब्द तन्मात्रा मे अन्वय हुआ है। यही शब्द-तन्मात्रा का अन्वय है। यही अन्वय रूप अवस्था है। सब कार्य रूप पदार्थों का अन्वय मूल प्रकृति मे है। अत अन्वय अवस्था सब की समान है।

किसी में एक दो सीढ़ी कम किसी में अधिक यही भेद रहता है । प्रकृति का स्वरूप स्थिति है। ज्ञान और *क्रिया गुण है*। प्रकृति की *स्थिति* से ही शब्द तन्माना की स्थिति है। प्रकृति के ज्ञान गुण के कारण शब्द-तन्मात्रा सर्वाधिक ज्ञान की प्रकाशिका बनी है। जितना भी ज्ञान है वह शब्द-तन्मात्रा अथवा उसके कार्यात्मक परिणामो से प्रकाश मे आता है। शब्द और ज्ञान का नित्य सम्बन्ध बन गया है। बिना शब्द के ज्ञान की सत्ता ही नही। ज्ञान न कराये तो शब्द भी व्यर्थ है। अपशब्द है। शब्द अभिधायक है, और ज्ञान *अभिधेय है । इसी सिद्धान्त को महर्षि पतञ्जलि ने अपने अष्टाध्यायी के व्याकरण* महाभाष्य में वैयाकरण शिरोमणि वार्तिककार वररुचि के वार्तिक को उद्धृत कर प्रतिपादन किया है :– यथा 'सिद्धे शब्दार्थ-सम्बन्धे ।' शब्द अर्थ और उनका सम्बन्ध तीनों नित्य हैं। १. शब्द २ अर्थ ३ शब्द और अर्थ का सम्बन्ध नित्य हैं। जब तक शब्द है शब्द का अर्थ है। जब तक पदार्थ है उसका वाचक शब्द है। कोई जाने कोई न जाने, यह दूसरी बात है।

इस प्रकृति के सन्निधान से उपात्त ज्ञान गुण शब्द-तन्मात्रा मे आकर पूर्ण रूपेण विकसित हो गया। शब्द ही प्रकृति के ज्ञान का मुख्य ज्ञापक बना है। क्रिया गुण को भी शब्द ने पूर्णतया ग्रहण किया है। शब्द की गति सर्वाधिक है। प्रकाश से भी अधिक है। बड़े परिश्रम और यत्नो के उपरान्त शब्द से भी अधिक तीव्रगामीयान का *आविष्कार कर पाये हैं । अस्तु कुछ हो शब्द ने प्रकृति के क्रिया गुण को अपनी तीव्रगति* में पूर्णतया धारण किया है।

शब्द-तन्मात्रा के अन्वय रूप मे ब्रह्म की सूक्ष्म-तम व्यापकता का समाधि में अनुभव करना चाहिये। क्योंकि सब परिणामों में ब्रह्म निमित्त रूप से उपस्थित होता है, बिना उसकी समीपता के कोई परिणाम नही हो सकता।

समष्टि शब्द-तन्मात्रा मण्डल

पञ्चम रूप में ब्रह्म-विज्ञान

(शब्द-तन्मात्रा का पञ्चम रूप)

२. शब्द-तन्मात्रा के अर्थवत्त्व में—

इस *आकाश-तन्मात्रा में* यह समष्टि ब्रह्माण्ड ओत प्रोत होकर ठहरा है। इसकी सूक्ष्मता और *विभुता में अनन्त शक्ति है । अतः सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को धारण किए हुए* है। सूक्ष्म दैवी दिव्य सृष्टि का सब कार्य या व्यवहार इसमें होता है। सूक्ष्म जगत् के निर्माण मे सर्व-प्रथम इसका उपयोग होता है। दिव्य आत्माओं का गमनागमन और भोग इसी सूक्ष्म आकाश में होता है। इसके अनेक गुण या धर्म अतीन्द्रिय शब्द हैं, इनका सब कर्म-व्यापार गमनागमन और उपभोग इसी मे होता है, यह इसकी अर्थवत्ता है।

सूक्ष्म शरीरों के निर्माण-काल में सहकारी कारण के रूप मे सर्वप्रथम इसी का प्रवेश अवकाश प्रदान करने के लिये होता है। सहकारी कारण से तात्पर्य यह है कि स्थूल और सूक्ष्म शरीरों मे मुख्य रूप से पृथिवी भूत और पृथिवी तन्मात्रा उपादान कारण के रूप में होते हैं। इनका भाग शरीरो मे अधिक माना में होता है। शेष का भाग कम होता है। अतः शेष सहकारी कारण होते है। पदार्थ-रचना में मुख्य एक उपादान

कारण ही होता है। शेष सहकारी कारण हुआ करते हैं। शरीर में गुरुत्व—भारीपन धर्म अधिक होता है। यह धर्म पृथिवी का मुख्य और जल का गौण है। क्योंकि यद्यपि जल मे भी गुरुत्व धर्म है सही पर पृथिवी से कम।

दिव्य सूक्ष्म-शरीर वैसे तो आकाश गामी होते है। परन्तु उनमे भी पृथिवी-तन्मात्रा का अंश अधिक होता है अन्य भूतों की अपेक्षा। उनमे भी सब ही मात्राओं का मिश्रण होता है। अतः तन्मात्राओ की अपेक्षा से कुछ-न-कुछ गुरुत्व मानना ही पडेगा। इन शरीरो के निर्माण मे पृथिवी-तन्मात्रा मे रस, रूप, स्पर्श, शब्दों की तन्मात्रायें मिली होती है। जल-तन्मात्रा में भी रूप, स्पर्श-शब्दों की तन्मात्रायें मिली होती है। अग्नि तन्मात्रा मे शब्द और स्पर्श की तन्मात्राये मिली होती हैं। वायु-तन्मात्रा में केवल आकाश-तन्मात्रा का योग होता है। आकाश तन्मात्रा में किसी का योग नही होता है। वह स्वयं शब्द-तन्मात्रा के रूप में अवस्थि है। प्रत्येक स्थूल और सूक्ष्म भूत अपने-अपने धर्मो या गुणों को साथ लेकर ही दूसरे भूतो मे संघात को प्राप्त होकर पदार्थ का निर्माण करता है। तव ही ये सूक्ष्म और स्थूल शरीरों के भोग प्रदान करने मे समर्थ होते हैं। यह सब आकाश-तन्मात्रा की अर्थवत्ता है।

इस शब्द-तन्मात्रा मे ब्रह्म का अध्यारोप कर के इसकी उपासना और विज्ञान प्राप्त करना चाहिये, क्योंकि यही अत्यन्त सूक्ष्म से सूक्ष्म है। और ब्रह्म सूक्ष्मतम है। अतः दोनों के लिये लगाई गयी समाधि की स्थिति मे ऋतभरा बुद्धि के द्वारा पूर्ण रूपेण ब्रह्म की अनुभूति हो सकती है। इनका बहुत समीप-वर्ती सम्बन्ध है। यह दो पदार्थ हैं। इनका व्याप्य व्यापक भाव सम्बन्ध है और ब्रह्म अत्यन्त सूक्ष्म है। यह तन्मात्रा आकार-वान् न होते हुए भी, आकारवान् इसलिये कहा है कि यह उत्पन्न हुई थी। अतः आकार वाली होते हुये भी निराकारवत् है। इसमें ही ठीक रूप से ब्रह्म का अनुभव हो सकता है।

सूक्ष्म जगत् का निर्माण

समष्टि तमः प्रधान अहंकार के सूक्ष्म स्तर में ब्राह्मी चेतन सत्ता के सम्बन्ध विशेष से परिणामात्मक एक महान् क्रान्तिकारी क्षोभ उत्पन्न होता है। जो सम्पूर्ण अहकारो को कम्पायमान कर देता है। बहुत समय तक यह क्षोभ बना रहता है। फिर इसमें सूक्ष्म रूप से विभाग धर्म उत्पन्न होने लगता है। इससे उसमें शनैः शनैः अत्यन्त सूक्ष्म कण या परमाणु बनने लगते हैं।

सर्व प्रथम इस अहंकार का परिणाम आकाश के परमाणुओ के रूप में होता है। जो महा आकाश प्रकृति से सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ था, वही परिणत होता हुआ आ रहा है। वह इस अहंकार में भी वर्त्तमान है, जो कि परिणत होता हुआ, इसके साथ आया है। यह अहंकार के साथ-साथ अवकाश प्रदान करता है। तत्पश्चात् यह कारण रूप अहकार आकाशतन्मात्रा के रूप में परिणाम भाव को प्राप्त होकर एक सूक्ष्म आकाश का स्तर बनाता है।

तत्पश्चात् इसमें एक और महान् क्षोभ उत्पन्न होता है। जिसमें कि असंख्य सूक्ष्म-शब्द-रूप-गुण इसके परिणामकाल मे उत्पन्न होते हैं। जब वह अहंकार परिणाम

ाव को प्राप्त होकर आकाश-तन्मात्रा के रूप में जा रहा था, आकाश-तन्मात्रा संज्ञा ोने से पूर्व ही अनेक शब्द रूप गुण उसके आश्रय में ही उत्पन्न हुए अर्थात् वे शब्द-न्मत्रा को साथ लिये हुए प्रकट हुए।

तब इस धर्मी में एक महान् क्रान्तिकारी क्षोभ हुआ। और तब इस सूक्ष्म-ाब्द-तन्मात्रा ने अनेक मन्द-मन्द कम्पन करते हुए आकाश के परमाणुओ में अनन्त सूक्ष्म ाब्दों को उत्पन्न करते हुए टकरे सी लगाई। इन शब्दों की गति ने आकाश के परमाणुओ ो क्रिया शील बनाकर गति देते हुए वायु को परमाणुओ के रूप मे प्रकट किया। ाब्दों ने ही गति करते हुए वायु के परमाणुओं मे स्पर्श रूप धर्म उत्पन्न किया। तब ायु के परमाणु शब्द और स्पर्श रूप गुणों से युक्त हो कर गतिशील बन गये। इस रिणति से वायु-तन्मात्रा मे गति रूप धर्म स्वाभाविक ही होगया। ये अपने इस धर्म ो लेकर ही प्रकट हुए। तब इसकी स्पर्शतन्मात्रा संज्ञा हुई जो गतिमान पदार्थ होगा ह ही संयोग से स्पर्श रूप धर्म को पैदा करेगा। आकाश अपने गुण शब्द को लेकर ायु तन्मात्रा के रूप में प्रकट हुआ। आकाश के अनन्त परमाणु शब्दो के रूप में थे, कारण रूप से मण्डल के रूप मे भी वर्त्तमान रहे, और उनका बहुत कुछ अंश वायु परमाणुओं के रूप में परिणत हो गया। अब स्थूलरूप से इस अवकाश मे वायु के ो परमाणु अनन्त रूप से गतिशील हो गये। और अपने मण्डल के बनाने में समर्थ हुए।

इसके अनन्तर इनमें उस महान् चेतन सत्ता के कारण एक महान् क्रातिकारी ोभ हुआ। सारा ब्रह्माण्ड आकाश के परमाणुओं मिश्रित वायु के परमाणुओं से ही रपूर हो गया। एक महान् उथल-पुथल के रूप में बड़ा भारी क्षोभ था। बहुत काल र्यन्त यह क्रिया होती रही।

आकाश और वायु के परमाणु संघात को प्राप्त हो कर अग्नि-तन्मात्रा के प में प्रकट हुए। अब इस सर्व संघात से रूपात्मक धर्म आगया। ये चमकते हुए सब रमाणु बन गये। शब्द, स्पर्श, रूप गुण युक्त ये परमाणु बन गये। कुछ स्थूल भाव में र्शन का विषय बन गये। आकाश-तन्मात्रा ने वायु-तन्मात्रा को अपने गर्भ में धारण र लिया। वायु-तन्मात्रा ने अग्नि-तन्मात्रा को अपने गर्भ में धारण कर लिया। एक ण्डल के रूप में बन गई।

फिर इस समष्टि अग्नि-तन्मात्रा मे सम्पूर्ण विश्व भर में एक बड़े-भारी म्पन-पूर्वक क्षोभ हुआ। सब मण्डल-रूप और परमाणु रूप विश्व कम्पायमान हो कर ुभित हो उठा। त्रित्व के रूप में परिणत हो कर अर्थात् आकाश, वायु, अग्नि के रमाणुओं में परिवर्तित हो कर जल-तन्मात्रा का निर्माण हुआ। इस रस-तन्मात्रा में इन ीनों तन्मात्राओ के धर्म भी आ मिले।

फिर रस-तन्मात्रा के समष्टि मण्डल में एक बडी भारी कम्पन रूप क्रिया में ोभ होता रहा। बहुतकाल के अनन्तर ये सब मण्डल और परमाणु अपने गुणों को ाथ लेते हुए पृथिवी-तन्मात्रा के रूप मे परिणत हुए। इस परिणामकाल मे गन्ध-रूप र्म इस तन्मात्रा मे उत्पन्न हुआ। शेष पहली तन्मात्राओं के धर्म भी ओत-प्रोत हो गये। ब सम्पूर्ण रूप से सूक्ष्म-पृथिवी मण्डल की गन्ध तन्मात्रा संज्ञा हुई।

हमारे सिद्धान्त मे ये सब तन्मात्रायें उत्पन्न होने के कारण एक की अपेक्षा क सूक्ष्म है, और एक की अपेक्षा एक स्थूल है। न्याय वैशेषिक के समान नही हैं क्योकि

वे परमाणुओं का परिणाम क्रम नही मानते। वे उन्हे नित्य, एक ही रूप में रहने वाला अविकृत मानते है। हमारे सिद्धान्त में ये सब तन्मात्रायें विकारी है। उत्पन्न होकर आयी है। अतः एक दूसरे की अपेक्षा स्थूल सूक्ष्म हैं। इस परिणाम से पूर्व ये व्यापक मण्डल के रूप में थी। अब ये छोटे अंश के रूप में हो गयी है। और मण्डल के रूप में भी वर्तमान रहेंगी। इनमें से छोटे-छोटे परमाणु गमनागमन करते रहेगे क्योंकि इन्हों ने अब सूक्ष्म जगत् का निर्माण करना है। सो यह अश रूप मे ही सघात को प्राप्त हो कर कर सकेंगी।

तन्मात्राओ के निर्माण का सूक्ष्म रूप यह है—

"सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मे तमः प्रधान अहकार का एक अत्यन्त सूक्ष्मतर स्तर सर्वत्र व्यापक सा ठहरा हुआ था। वह परमाणु रूप पञ्च-तन्मात्रा के रूप में खण्ड-खण्ड हो गया। उसके सूक्ष्म और स्थूल दो रूप बने। इस पञ्चत्व के रूप मे वह खण्ड-खण्ड हो ग या। यह चूर्ण रूप अवथा ही पञ्चतन्मात्रा, सूक्ष्म भूत. या परमाणु रूप अवस्था बनी।

सूक्ष्म-शरीरों का निर्माण

पूर्वोल्लिखित प्रकार से पांचो समष्टि-तन्मात्राओं के पाँच सूक्ष्म मण्डल एक दूसरे के ऊपर औरएक दूसरे मे व्याप्त पांच सूक्ष्म मण्डल बने। सब से पहले आकाश मण्डल मे शेष चारो मण्डल ठहरे। सूक्ष्म जगत् में भी स्थूल जगत् की तरह पांचों ही सूक्ष्म भूत हैं। जब ये तन्मात्राओ के मण्डल सूक्ष्म शरीरों के निवास योग्य हो गये, तब सूक्ष्म शरीरों का निर्माण हुआ।

इन पञ्चतन्मात्राओं के निर्माण से पूर्व ही कर्म और ज्ञान इंद्रियों के तथा मन, बुद्धि, चित्त आदि के समष्टि लोक, और इनके कार्य रूप व्यष्टि समुदाय भी उत्पन्न हो चुके थे। यह सब अगले प्रकरणों मे स्पष्ट रूप से आयेगा।

तब ये व्यष्टि इन्द्रिय आदि संघात को प्राप्त होकर इन तन्मात्राओं से परिवेष्टित हो,सूक्ष्म शरीरों का निर्माण करते हैं। इसमें चित्त मुख्य होता है। इसी मे जीवात्मा वास करता है। यह चित्त अपने संस्कारों से सूक्ष्म शरीर में सम्मिलित होता है। सूक्ष्म शरीरों के निर्माण-काल में भी सब ही तन्मात्राओं में एक महान् क्षोभ उत्पन्न होता है। उस क्षोभकाल में ही सूक्ष्म शरीर आकाश मण्डल में बन जाते हैं। इनके भी सात्विक, राजस, तामस अदि भेद होते है। यह सूक्ष्म-शरीरों का निर्माण उस चेतन ब्रह्म के सन्निधान से नियमित गतिशील हुई-हुई सर्वोपादान-कारण रूप प्रकृति देवी भवानी की विशेष सृजन रूप क्रिया से ही होता है। प्राणियों के भोग और मोक्ष के लिए ही सूक्ष्म जगत् का निर्माण होता है। अनेक वर्षो तक इस सूक्ष्म जगत् का निर्माण होता रहता है। इन सूक्ष्म-शरीरों को धारण कर के ही आत्माओ की जीवात्मा संज्ञा होती है। उस समय यह सूक्ष्म-शरीराभिमानी बन जाता है और सूक्ष्म-तन्मात्राओं से भोग ग्रहण करते हुए अपने को कृतकृत्य मानता है। सूक्ष्म दिव्य भोगों को अपनी सात्विक, तामस, राजस वृत्ति के अनुसार भोगने लगता है।

जब तक स्थूल-सृष्टि की उत्पत्ति नही होती तब तक ये सूक्ष्म शरीराभिमानी इसी सूक्ष्म लोक मे निवास करते हैं। पांचों सूक्ष्म भूत ही इन के सूक्ष्म भोगो का सम्पादन

करते हैं। जब स्थूल-सृष्टि का निर्माण हो जाता है तब अपने अपने कर्म फल के अनुसार मर्त्य लोक में अथवा लोक लोकान्तरों में चले जाते है। स्वर्गलोक के अधिकारी इसी तन्मात्रा के मण्डल मे रह कर दिव्य भोगों को भोगते रहते हैं।

स्वर्ग का स्वरूप

अब दो प्रकार की सृष्टियों का वर्णन किया गया है। १. स्थूल २. सूक्ष्म। इनके भोग भी स्थूल और सूक्ष्म हैं। जो स्थूल और सूक्ष्म शरीर के द्वारा भोगे जाते हैं। इन के भोगों का क्रम कभी समाप्त नही होना है। जब तक कि इन से परमवैराग्य हो कर इन के बन्धन से मुक्त नही होते। स्थूल जगत् मे भोग भोगते हुए जन्म मरण का क्रम तब तक समाप्त नही होता जब तक स्वर्ग के दिव्य भोगों को भोगने की अभिलाषा अत्यन्त तीव्र न हो जाये। उसके लिये भी अनेक जन्मों तक अनेक शुभ और पुण्य कर्म करने की आवश्यकता है। बहुत जन्मों तक यम-नियम, जप-तप, योगाभ्यास आदि के करने की परम आवश्यकता है। तब यह तन्मात्राओं का दिव्य-लोक प्राप्त होता है। इस लोक मे वास करने की अवधि शास्त्रकारों ने यह बताई है, यथा—

'दश मन्वन्तराणीह तिष्ठन्तीन्द्रियचिन्तकाः,
भौतिकास्तु शतं पूर्णं सहस्रन्त्वभिमानिकाः।
बौद्धा दशसहस्राणि तिष्ठन्ति विगतज्वराः,
पूर्णं शत-सहस्रन्तु तिष्ठन्त्यव्यक्त-चिन्तकाः॥
पुरुषं निर्गुणं प्राप्य काल-संख्या न विद्यते।'

'—जो केवल सूक्ष्म इन्द्रियों को आत्मा समझ कर चिन्तन करते हैं, उनका समष्टि इन्द्रिय-लोक मे वास होता है। वे दश मन्वन्तर तक इस लोक में ठहरते हैं। एक मन्वन्तर ३०६७२०००० वर्ष का होता है।

जो सूक्ष्म भूतों को आत्मा समझकर उपासना करते हैं वे १०० मन्वन्तर तक तन्मात्रा के लोक में वास करते हैं।

जो अहंकार को ही आत्मा समझकर उपासना करते है वे १००० मन्वन्तर तक अस्मिता के लोक मे वास करते है।

जो बुद्धि को ही आत्मा समझ कर उपासना करते हैं वे दश हजार (१००००) *मन्वन्तर तक महत्त्व-लोक में वास करते हैं।*

जो अव्यक्त प्रकृति को ही आत्मा समझ कर उपासना करते हैं वे सौ हजार (१०००००) अर्थात् एक लक्ष मन्वन्तर तक प्रकृति की सूक्ष्म अवस्था मे ठहरते है।

जो योगी निर्गुण पुरुष की उपासना करते हैं उनके मोक्ष के काल की कोई संख्या नही। या संख्या गिनने में नही आ सकती है। यहां पुरुष शब्द से जीवात्मा और परमात्मा का ग्रहण होता है। इन श्लोकों मे आरोप अर्थ के लिये कोई शब्द नही दिया है। इसका भाव तो यही है जो इन्द्रियों, भूतों, अहंकार, बुद्धि एवं अव्यक्त प्रकृति का चिन्तन करने वाले हैं वे इन लोकों मे गमन करते है, और इनके सुखों को भोगते हैं और उल्लिखित अनेक वर्षों तक वहां रह कर लौट आते है, परन्तु निर्गुण आत्मा और ब्रह्म का जो चिन्तन करते है, इन के स्वरूपों का साक्षात्कार करते हैं, इनके मोक्ष के वर्षों की संख्या कोई गिन नही सकता है।

इन प्रमाणो को उद्धृत करने का तात्पर्य यही है कि जब मुक्ति प्राप्त होने वाली है तो इसका समय मानना ही पडेगा। जैसे यह बन्ध है, ऐसे यह फिर भी तो हो सकता है। अब क्यो बन्ध हुआ है। जब अब हुआ है तो मोक्ष के बाद भी हो सकता है। या कहो कि मोक्ष अब तक कभी नही हुआ है। तो क्यो नही हुआ ? और बन्ध हुआ तो कब से हुआ। बन्ध होने का भी तो आपके पास कोई प्रमाण नही है। अत बन्ध है तो मोक्ष भी है और मोक्ष है तो बन्ध भी पुन होना ही है क्योकि अब जो हुआ है।

इन सूक्ष्म-भूतो या तन्मात्राओ के मोक्ष मे भोग की अवधि १०० मन्वन्तर तक कही है। इस लोक मे सूक्ष्म दिव्य भोगो का भोग होता है। इस से ऊपर के जो लोक है, उनमे पच-तन्मात्राओ के भोगो का अभाव है। तब वहाँ उन लोको मे सूक्ष्म शरीर को आहार कहाँ से प्राप्त होगा ? यही एक बडी भारी समस्या उत्पन्न होती है। जिस का कोई समाधान समझ मे नही आता है। सूक्ष्म शरीर को तो आहार चाहिये। उन मण्डलो मे तो स्थूल और सूक्ष्म दोनो ही प्रकार के आहारो का अभाव है। इन से अलग और कोई सूक्ष्म शरीर के लिये आहार नही है, जिस से कि यह जीवन धारण कर सके।

यदि सूक्ष्म शरीर का अभाव मोक्ष मे मान ले तब किसी भी प्रकार के आहार की वहाँ आवश्यकता नही है। फिर ब्रह्मानन्द के सुख के भोगने का भी कोई साधन या द्वार नही रहेगा। जिस के द्वारा ब्रह्म-लोक मे ब्रह्म का सुख भोग सके।

"अत हमारा ही सिद्धान्त कुछ श्रेष्ठ प्रतीत होता है। कि जिस मोक्ष मे सूक्ष्म शरीर का अभाव हो कर अपने सत्-चित् आनन्द स्वरूप मे स्थिति हो जाती है।"

इति समष्टि शब्द-तन्मात्रा मण्डलम्

इति द्वितीयाध्याये पञ्चम खण्ड ।

इति चतुर्विंशमावरणम्।
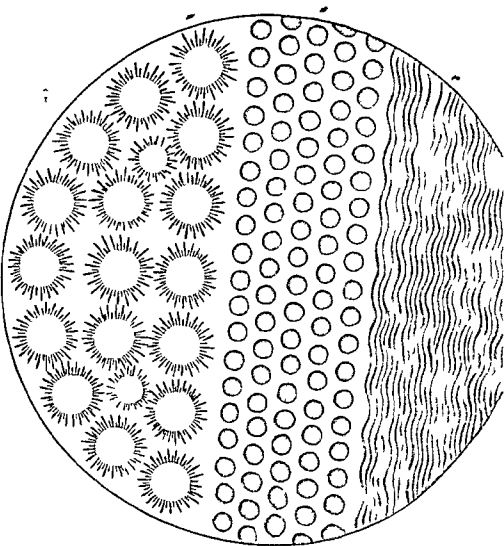
चित्र सं० ८
समष्टि रजः अहंकार से व्यष्टि कर्मेन्द्रियों की उत्पन्न होती हुई अवस्था

षष्ठ खण्ड

२३ वाँ आवरण

राजस-अहंकारिक सृष्टि

अवतरणिका

योगिन्! आपने द्वितीय अध्याय के पाचवे खण्ड तक वर्णित अपने और भगवान् के बीच पडे दस आवरणों को ज्ञान दृष्टि के साथ-२ वैराग्य की तीक्ष्ण दुधारी से विदीर्ण कर दिया है। आपने पाँचों भूतो तथा पाचो तन्मात्राओं के स्वरूप को पाचो अवस्थाओं मे आमूलचूल भली-भान्ति परीक्षण कर लिया है। आत्मा या परमात्मा का सजातीय उपकारक कोई भी तत्त्व कही भी, किसी भी अग मे वहाँ दृष्टिगोचर न हुआ। प्राकृतिक चित्त को ही आत्मरूप समझकर अविद्या-ग्रस्त हुआ जीवात्मा पांच भूतो और तन्मात्राओं की रगरलियो मे फसा हुआ था। उनमे उपराम हो कुछ अन्तरारामता की भावना जगी है। उनमे वैराग्य कर सग्रह की भावना से मुक्त हुआ है। इस ज्ञान और वैराग्य की नौका के सहारे आगे की वैतरणियो को पार करना है।

इन पाँचें कर्मेन्द्रियो का भवर पहले पाचो भूतो और पाँचो तन्मात्राओ की भूल भूलियो मे अधिक जटिल है। इन जटिलता के दुर्गों को विध्वस कर इनमे निहित इनको नेमिचक्रवत् गतिशील बनाने वाले भगवान् के इन्हीं मे दर्शन करने हैं। विशुद्ध के अभी न सही इन झिलमिल जवनिकाओं मे छिपे प्रियतम ब्रह्म की झाकी ही सही। यह *झाकी आप को ब्रह्म का और ब्रह्म को आप का बना देगी। उसके समीपतम पहुँचने के* लिये, या अपने समीपतम उसके दर्शनो के लिये कृत सकल्प हो इन तिरस्करणियो को विदीर्ण करने के लिये तीव्र सवेग हो साधना मे जुट जायगे। इन का स्वरूप चित्र स० ८ मे देखें।

समष्टि अहंकारिक सृष्टि--पाँचों कर्मेन्द्रियो मे ब्रह्मोपासना

गुदा, शिश्न, पाद, हस्त, और वाणी ये पांच कर्मेन्द्रियाँ है। प्रत्येक देह मे ये पाँचो कर्मेन्द्रियाँ व्यष्टि रूप मे प्राप्त होती है। वह देह चाहे भोग योनी हो, चाहे कर्म

चित्र सख्या ८ का विवरण—न० १ मे समष्टि रज प्रधान अहकार अपने सहकारी सत्त्व तम अहकार को साथ मे लेकर परिणाम भाव को प्राप्त होकर व्यष्टि कर्मेन्द्रियो को उत्पन्न कर रहा है।

न० २ मे उत्पन्न हुई हुई व्यष्टि कर्मेन्द्रियो को दिखाया गया है शान्त और स्तब्ध सी क्रिया रहित अवस्था मे।

न० ३ मे व्यष्टि कर्मेन्द्रियो को सूक्ष्म और स्थूल शरीर मे भोग प्रदान करते हुए गति शील होकर कर्म करते हुए दिखाया गया है। यहाँ प्रत्येक इन्द्रिय की सब अवस्थाओ को न दिखाकर केवल एक ही इन्द्रिय का चित्र दिया है। शेष कर्मेन्द्रियो को भी इसी के अनुसार समझ लेना चाहिये।

यानि, चाहे उभय योनी। यह व्यष्टि कर्मेन्दियाँ समष्टि कर्मेन्द्रियो से परिणत हुई हैं। इन समष्टि कर्मेन्द्रियो के मण्डल आकाश मे निर्मित हो आकाश मे अवस्थित होते हैं। पाँचो भूतो और पाँचो तन्मात्राओ के मण्डल आकाश मे अवस्थित है। उन के ऊपर यह कर्मेन्द्रियो का मण्डल है एक दूसरे से यह मण्डल सूक्ष्म होते जाते है। पच भूतो की अपेक्षा तन्मात्राओ का मण्डल सूक्ष्म है। और तन्मात्रा की अपेक्षा कर्मेन्द्रियो का मण्डल सूक्ष्मतर है। उन मण्डलो के पाँचो स्तर भी एक दूसरे की अपेक्षा सूक्ष्म है।

सूक्ष्म मण्डल स्थूल मे ओत प्रोत भी होता है। उस से पृथक ऊपर भी। अपने से सूक्ष्म मे वह व्याप्त नही होता। स्थूल मे ही व्याप्त होता है। इस प्रकार समष्टि पृथिवी मण्डल मे अन्य चारो भूता, तन्मात्राओ और कर्मेन्द्रिय आदि के मण्डल व्याप्त है। पर समष्टि पृथिवी मण्डल केवल अपने मे ही व्याप्त है। समष्टि जल मण्डल मे उसका प्रवेश नही। पर समष्टि जल मण्डल समष्टि पृथिवी मण्डल मे व्याप्त है। समष्टि अग्नि मण्डल अपने से पूर्ववर्ती समष्टि पृथिवी मण्डल और समष्टि जल मण्डल मे व्याप्त है पर अगले वायु आदि के मण्डल मे नही। इस प्रकार सूक्ष्माति सूक्ष्म ब्रह्म तो सब मे हैं। इस लिये सब मण्डलो मे दर्शन का विषय बन जाता है। पर ब्रह्म की सूक्ष्मता मे कोई नही। क्योकि उस से सूक्ष्म कोई नही है।

यह पाँचो समष्टि कर्मेन्द्रियाँ भी पञ्चतन्मात्राओ की तरह अहकार की सृष्टि है। इनमे समष्टि राजस अहकार की प्रधानता है। चल हिरज। इसलिए कर्मेन्द्रियाँ गतिशील है। कर्म निपुण है। अहकार अविद्या रूप है। जड है। अत कर्मेन्द्रियाँ भी कर्म निपुण होते हुए भी जड ही है। इन्हे अपने कर्म का भले-बुरे का बोध नही होता। अन्य से प्ररित हो कर्म करती है। सत्त्वाहकार की स्वल्पमात्रा इनमे होती है, जिससे इन को अपने अपने कर्म को व्यवस्थित करने मे सहायता मिलती है। समष्टि पाँचो कर्मेन्द्रियाँ अहकार का परिणाम है। इसमे अहकार समष्टि राजस, समष्टि तामस एव समष्टि सत्त्वाहकार सम्मिश्रित है। इन तीनो का तारतम्ययुक्त जो अश ध्यान दृष्टि मे आया है उसे दर्शाते हैं—

समष्टि कर्मेन्द्रियो मे तीनो समष्टि अहकारो का भाग

समष्टि कर्मेन्द्रिय	समष्टि सत्त्वाहकार	सम० राजसाहकार	स० ता० अह०
१ गुदा	१	१५	१४–३०
२ शिश्न	२	१७	११=३०
३ पाद	४	१८	८=३०
४ हस्त	६	१९	५=३०
५ वाणी	८	२०	२=३०

इनमे राजस अहकार की मात्रा अन्य दोनो की अपेक्षा अधिक है, अत यह कर्म प्रधान हैं। यह पाँचो कर्मेन्द्रियाँ प्रत्येक देहधारी को व्यष्टि रूप मे व्यक्तिगत रूप से मिली है, यही सदा मोक्षपर्यन्त जीव के साथ सूक्ष्म शरीर मे रहती है।।

अहकार से समष्टि कर्मेन्द्रियो के मण्डल परिणत हुए, और समष्टि मण्डल से व्यष्टि इन्द्रियाँ। जो गुण, धर्म, कर्म व्यष्टि इन्द्रियो मे है, वही समष्टि इन्द्रियो मे हैं,

क्योकि कार्य मे कारण के ही गुण आते हैं। व्यष्टि इन्द्रियो के गुण धर्म कर्म तो व्यक्ति में दृष्टिगोचर होते हैं, स्पष्ट प्रतीत होत हैं, पर समष्टि इन्द्रिय मण्डल मे यह सब होते हुए भी अव्यक्त है, इसलिए समष्टि मण्डल के गुण, धर्म, कर्म बताने के लिए व्यष्टियो का ही उल्लेख किया जाता है। अत सर्वत्र व्यष्टि के निदर्शन से समष्टि का ही व्याख्यान समझ लेना चाहिए।

यह कर्मेन्द्रियाँ भोग का तो साधन हैं ही, जीवमात्र अपने भोग और पुरुषार्थ के अनुसार भोगो का उपभोग करता ही है, पर जब साधक इनके तथ्य को हृदयगम कर लेता है यही अपवर्ग का साधन बन जाती हैं। समष्टि भी और व्यष्टि भी। समष्टि कर्मेन्द्रियो मे यह ब्रह्म की उपासना का क्रम इसी का निदर्शन है। यह ध्यान रखिये यह साधना परम वैराग्य से ही सफल होगी। बिना वैराग्य तो सिनेमा की स्क्रीन मात्र है। वेद मन्त्रों का रिकार्ड मात्र है। जिससे केवल हमने वेद सुन लिया, हमने योग सीख लिया की मिथ्या धारणा पुष्ट होती है। यदि आप भगवान् के दर्शन करना चाहते हैं तो वैराग्य भावना को साथ साथ दृढ करते चलिए।

मण्डलो का प्रयोजन

समष्टि तन्मात्रा के मण्डलो का उपयोग तो महाभूतो के निर्माण और विलय मे सदा होता रहता है। स्वर्गीय जीव, सूक्ष्म शरीराभिमानी तथा योगी उनका उपयोग करते रहते है। इसी प्रकार इन कर्मेन्द्रियो के मण्डलो का उपभोग सर्गारभ म तो सूक्ष्म शरीरो के निर्माण मे होता है। सूक्ष्म शरीर की रचना हो जाने पर प्रत्येक जीव अपने-अपने सूक्ष्म शरीर म वास कर उसका अभिमानी बन जाता है और मोक्षपर्यन्त उसका सम्बन्ध अटूट रहता है। उस सर्ग के पश्चात् उन सुरक्षित कर्मेन्द्रिय मण्डलो से योगी चाहे तो कर्मेन्द्रियो का निर्माण तथा चित्तो एव सूक्ष्म शरीरो का निर्माण कर लेता है। मुक्तात्माओ के सूक्ष्म शरीर एव चित्त भी तो सुरक्षित रहते है। उनके कर्मेन्द्रिय भी इन्ही समष्टि कर्मेन्द्रिय मण्डलो मे आसुरक्षित होते हैं। मुक्ति से पुनरावृत्ति पर उन्ही आत्माओ के साथ उनके सचित सस्कारो का शेष रहा भोग भुक्ताने के लिए जा सयुक्त होते हैं।

अब पाँचो समष्टि कर्मेन्द्रियो के पाँचो रूपो का अवलोकन भी क्रमश एक एक खण्ड मे कीजिए। जिससे व्यक्त हो जाएगा कि यह पाँचो अवस्थाएँ प्रकृति के ही परिणामो की हैं, और इन सब म ही वैराग्य भावना की परिपक्वता के साथ ब्रह्मदर्शन करना है क्योकि मोक्ष प्राप्ति मे परवैराग्य ही मुख्य हेतु होगा।

समष्टि गुदेन्द्रिय मण्डल

पाचो रूपो मे ब्रह्मानुभूति

प्रति व्यक्तिगत गुदा इन्द्रिय समष्टि गुदा इन्द्रिय के मण्डल का परिणाम है। क्योकि समष्टि से ही व्यष्टि उत्पन्न होता है। पहले समूह या स्टाक होता है, उसमे से फिर एक एक अलग होता है वही व्यष्टि है। गुदा इन्द्रिय दो प्रकार की हैं। १ स्थूल, २ सूक्ष्म।

१ *स्थूल गुदा इन्द्रिय*—स्थूल तो प्रत्येक देह मे मांस रुधिर आदि से बनी होती है, यह स्थूल शरीर का ही अग है। इसमे स्वत कोई क्रिया नही होती। अन्य की प्रेरणा

पर यह क्रियाशील होती है। यह ऐसे ही जैसे मकान का मल निकालने के लिए 'सीवर' बना दिया हो। 'सीवर' मे मल-का धकेलना और बहाकर ले जाना किसी अन्य प्राणी या जल, वायु के दबाव आदि का ही काम है। वे सब क्रियारत होगे तो 'सीवर' बहाकर ले जायेगा। यदि वे क्रिया मे नही लगे तो 'सीवर' का काम बन्द रहता है। ऐसे ही गुदा इन्द्रिय भी जब इसके प्रेरक काम नही करते तो व्यापार-विरत रहती है।

२. सूक्ष्म गुदा इन्द्रिय—यही वास्तव मे गुदा इन्द्रिय है, जो समष्टि-गुदेन्द्रिय के मण्डल से निर्मित हो जीव को सूक्ष्म शरीर के साथ मिली है। यही स्थूल की प्रेरिका है। इसी की प्रेरणा से अपान की अधोगति होती है और वह मल को स्थूल गुदा के द्वारा बाहर निकाल कर ले जाती है। यही तो प्राणी के ध्यान से प्रेरित हो मलविसर्जन के लिए प्राण को प्रेरित करती है। यही कारण है कि जब तक ध्यान न दिया जाये वेग नही होता।

यह व्यष्टि गुदा इन्द्रिय की बात हुई। मलविसर्जन इसका धर्म है। व्यष्टि मे यह धर्म क्रियान्वित होने से स्पष्ट प्रतीत होता है। पर समष्टि गुदा इन्द्रिय के मण्डल मे यह धर्म तो वर्तमान है परन्तु व्यापाराभाव के कारण प्रतीत नही होता। क्योकि समष्टि गुदा इन्द्रिय मे यह धर्म था तभी तो व्यष्टि मे आया। यह समष्टि गुदा इन्द्रिय का मण्डल सदा आकाश मे सुरक्षित रहता है। जब कोई योगी किसी मानव लोक मे निर्माण-शरीरो का निर्माण करता है तो इसी मण्डल से गुदा इन्द्रिय को लेकर उस नये शरीर मे जोड देता है। मुक्ति से लौटी आत्माओ को भी जब शरीर मिलता है, तो गुदा इन्द्रिय इसी समष्टि मण्डल से मिलती है।

ब्रह्म के सम्पर्क से चेतन-सी बनी इस प्रकृति महामाया का विधान इसी प्रकार चलता रहता है।

समष्टि गुदेन्द्रिय मण्डल

प्रथम रूप मे ब्रह्म-विज्ञान

(गुदा इन्द्रिय का प्रथम रूप)

१ समष्टि गुदा इन्द्रिय के स्थूल रूप में—

गुदा इन्द्रिय अहकारिक-सृष्टि की ग्यारहवी और समष्टि राजस अहकार का अन्तिम पाचवाँ परिणाम है। गुदा इन्द्रिय के निर्माण से पूर्व सब शेष कर्मेन्द्रियाँ बन चुकी है। यद्यपि गुदा इन्द्रिय समष्टि-राजस अहकार का पृष्ठभूमि मे पडा अन्तिम परिणाम है, पर उपयोगिता की दृष्टि से सर्वतो महान्, सर्वश्रेष्ठ और उपयोगतम परिणाम है, क्योकि इसका एक ही धर्म 'मल त्याग' है। और यह शरीर की दृष्टि से सर्वाधिक आवश्यक है। मल का विसर्जन न हो तो शरीर जीवित ही नही रह सकेगा। कितना ही उत्तम से उत्तम आहार किया जाये, मल तो बनेगा ही। यदि उस मल का विसर्जन न हो तो वह उत्तम आहार भी निकृष्टतम हो घातक हो जायेगा।

व्यष्टि गुदा इन्द्रिय स्थूल मल का भी निस्सरण करती और अपान वायु का भी। जब प्राणी अहभाव मे आ जाता है, तो वह गुदा इन्द्रिय को अपवित्र समझने लगता है। उसके शोधन का ध्यान नही रखता। स्वाद के चस्के मे दबादब खाये जाता है।

गुदा इन्द्रिय मल निस्सारण नही कर पाती । मल रुकता है । सडता है, अपान बढ जाता है । उसके भी निकलने का मार्ग मल से अवरुद्ध हो जाता है । कितनी पीडा होती है उस समय । अहकार के अभिमान और अज्ञान गुदा की परवाह न करने वाले के कारण ही यह आपत्ति आयी, और यदि मार्गावरोध के कारण गुदा इन्द्रिय के काम न करने पर अपान का विलोम गमन हो जाये, और गति करते-करते यह मस्तिष्क मे पहुँच जाये तो ब्राह्मण सिर और क्षत्रिय हाथ आदि सब उलटे काम करने लग पडते हैं । पागलपन या उन्माद जाग जाता है, रोगी भागता है । उपचारक को पीटता है । वश मे ही नही आता । कभी मरणान्तक हिचकिया लग जाती हैं । हिचकी के साथ जिह्वा अन्दर को ही धसती जाती है । जीवन का कोई उपाय नही दिखता । उस समय गुदा इन्द्रिय का रूप समझ मे आता है । यह जड गुदा इन्द्रिय जड राजस अहकार का परिणाम, स्वय कुछ भी नही कर सकती । पर देखो आप ने जड की करामात भगवान् के सन्निधान और जीवात्मा के अनुशासन से यह गुदा इन्द्रिय ही मल विसर्जन द्वारा जीवन धारक एव प्राण रक्षक बनी हुई है । मल-त्याग जीवन का परम उपयोगी एव सहायक है । यह मल विसर्जन रूप धर्म ही समष्टि गुदेन्द्रिय के मण्डल मे अव्यक्त रूप से और व्यष्टि मे व्यक्त रूप से अवस्थित रहता है । इस धर्म अवस्थिति का कारण वह परब्रह्म चेतना ही है । इस समष्टि गुदेन्द्रिय मण्डल के प्रत्यक्ष के साथ ही इसके धर्म की व्यवस्थापिका ब्राह्मी चेतना की सन्निधानता का भी प्रत्यक्ष अनुभव करना चाहिये ।

(शका) गुदा इन्द्रिय स्थूल शरीर मे तो मल विसर्जन करती है पर क्या सूक्ष्म शरीर मे भी मल त्याग का काम करती है ? सूक्ष्म शरीर तो है ही सूक्ष्म उसमे मल कहाँ से आयेगा ?

(समधान) हाँ ! सूक्ष्म शरीर मे भी सूक्ष्म मल त्याग होता ही है । देखिये । सूक्ष्म शरीर का भोग तन्मात्राओ का आहार है । तब ही तो सूक्ष्म शरीर जीवित रहता है । सूक्ष्म आहार होने से मल का त्याग भी अवश्य ही सूक्ष्म रूप से होना हुआ । अत सूक्ष्म शरीर मे भी गुदा इन्द्रिय का होना आवश्यक है । हाँ यदि आप बाह्य शरीर के गोलकरूप गुदेन्द्रिय का सूक्ष्म शरीर मे होना स्वीकार नही करते तब ठीक है, जब वहाँ स्थूल शरीर ही नही तो इन्द्रियो के स्थूल गोलक कहाँ से आयेंगे । सूक्ष्म शरीर की आकृति तो स्थूल शरीर से मिलती है, पर उस आकृति मे स्थूल गोलक नहीं होते । देखो इन स्थूल गोलको को दार्शनिक, इन्द्रिय भी स्वीकार नही करते । योग और साख्य शास्त्र तो इन्द्रियो को अहकारिक ही मानते है । अहकार से तो सूक्ष्मेन्द्रियाँ ही परिणत हुई है अत सर्वत्र सूक्ष्म इन्द्रियो का ही ग्रहण होता है और स्थूल शरीर मे जो नाक कान गुदा आदि हैं ये तो केवल बाहर के गोलक हैं । ये गोलक तो इन सूक्ष्म इन्द्रिया के कार्य या व्यापार के अथवा भोग सम्पादन के बाह्य साधन हैं । वास्तव मे तो सूक्ष्म इन्दियाँ—जो ब्रह्मरन्ध्रस्थ सूक्ष्म शरीर मे स्थित है—वे ही भोग और मोक्ष का साधन है । बाह्य गोलक नही ।

मल-विसर्जन एक ही धर्म इस इन्द्रिय का है । इसमे उसपर ब्रह्म की चेतना ही कार्य कर रही है । अत इसकी अनुभूति करनी चाहिये ।

समष्टि गुदा इन्द्रिय मण्डल
द्वितीय रूप मे ब्रह्म विज्ञान
(गुदा इन्द्रिय का द्वितीय रूप)

२ समष्टि गुदा इन्द्रिय के स्वरूप मे—

मल त्याग गुदा इन्द्रिय का धर्म है यह धर्म गुदा इन्द्रिय मे सदा वर्तमान रहता है। गुदा इन्द्रिय से मल त्याग धर्म कभी अलग नही होता। जहा गुदा इन्द्रिय होगी वही त्याग धर्म भी होगा। यह मल त्याग गुदा इन्द्रिय का स्वरूप है। इनका धर्म धर्मी भाव सम्बन्ध है। मलत्याग गुण है, गुदा इन्द्रिय गुणी है। गुण गुणी से पृथक नही हुआ करता है। इनका स्वरूप सम्बन्ध है।

(शका) आप कहते है गुदा इन्द्रिय प्राणीमात्र की समान हैं। पर जतनी भी योनियां है सब की गुदा इन्द्रिय भिन्न २ क्यो भासती है। हाथी और चीन्टी की, गधे और टिड्डे की, इसी प्रकार सब योनियो की गुदा इन्द्रिय भिन्न २ प्रकार की हैं। यह क्यो ?

(समाधान) जिन को आप गुदा इन्द्रिय कह रहे हो, वे इन्द्रिय नही इन्द्रियो के गोलक है। यह सूक्ष्म गुदा इन्द्रिय के व्यापार करने के मार्ग है। देखो! जब शरीर से जीव निकल जाता है, तो यह गोलक तो इसी शरीर मे रह जाता है। उस मृतशव का गोलक इन्द्रिय तो अब मरने के पीछे मुरदा रूप मे मल विसर्जन नही कर सकता। यदि यही शरीर का गोलक गुदा इन्द्रिय होता तो इस का मल विसर्जन धर्म इस से पृथक् न होता। वास्तविक गुदेन्द्रिय तो सूक्ष्म शरीर मे जीव के साथ चला गया। मल विसर्जन धर्म उसके साथ वर्तमान है। जब तक सूक्ष्म शरीर मे रहेगा वहा सूक्ष्म मल विसर्जन करता रहेगा। जब स्थूल के साथ सम्बन्ध होगा तो स्थूल के गोलक से मल विसर्जन करेगा।

यह भी विचारने की बात है कि सब योनियो के गुदा गोलक भिन्न भिन्न प्रकार के है। मल विसर्जन का प्रकार भी भिन्न है। पक्षी, उष्ट्र हाथी, कीट, मत्स्य, पतग आदि सब का मल विसर्जन प्रकार भिन्न २ हैं, कोई खडा होकर, कोई लेटकर, कोई बैठ कर कोई उडते उडते और वह भी भिन्न २ प्रकार से मल विसर्जन करते है। मल का आकार प्रकार भी भिन्न २ प्रकार का होता है। यदि प्रत्येक योनि मे नई, नये ढग की गुदा इन्द्रिय जीव को मिलती तो वेचारा जीव परेशान हो जाता, हर योनि मे नया प्रकार सीखना पडता, और जब तक न सीख लेता मल विसर्जन ही न कर पाता। बिना मल विसर्जन के वह छोटा सा नवजात शिशु कैसे जीता। भगवान् के सन्निधान से प्रकृति महामाया की ऐसी व्यवस्था है कि प्रत्येक जीव को मोक्ष पर्यन्त सदा के लिये एक ही सूक्ष्म शरीर और उसमे वही इन्द्रिय मिली है। उनके धर्म निश्चित हैं। उन धर्मो का उनके साथ स्वरूप सम्बन्ध है। धर्म धर्मी का अभेद है। किसी भी योनि मे किसी प्रकार का बाह्य गोलक मिले उन के गुणाश्रित क्रिया व्यापार मे अन्तर नही पडता।

यही मल विसर्जन धर्म समष्टि गुदन्द्रिय मण्डल मे अव्यक्त रूप मे स्वरूप सम्बन्ध से वर्तमान है। साधक को इस समष्टि मण्डल गुण गुणी स्वरूप सम्बन्ध मे इसके नियामक भगवान् के सन्निधान का प्रत्यक्ष करना है। बिना प्रभु की व्यापक सत्ता

के परिणाम भूत समष्टि गुदा इन्द्रिय मण्डल का यह गुण गुणी भाव अविभाज्य सम्बन्ध बना नही रह सकता।

जिस प्रकार की गुदा इन्द्रिय का दर्शन आपने आत्म-विज्ञान के अभ्यास में किया है, या 'आत्म-विज्ञान' ग्रन्थ मे पढा है, उसी प्रकार चमकता हुआ उसी प्रकार के नारजी से रग का यह गुदेन्द्रिय मण्डल का स्तर होगा। यह २३ वाँ परदा है, जो आपके और ब्रह्म के बीच मे पड़ा है, इसे पहले दस पर्दों की नाईं विदीर्ण कर आपने ब्रह्म के और अधिक निकट हो ब्रह्म दर्शन पाना है। विना गुदा इन्द्रिय के भोग रूप से वैराग्य पाये यह अपवर्ग मार्ग पार करना असंभव है। वैराग्य इसमे परम साधन है।

समष्टि गुदा इन्द्रिय मण्डल

तृतीय रूप में ब्रह्म-विज्ञान

(गुदा इन्द्रिय का तृतीय रूप)

३. समष्टि गुदा इन्द्रिय के सूक्ष्म रूप में—

समष्टि गुदेन्द्रिय मण्डल का जिस अवस्था से परिणाम हुआ है, वही इसका सूक्ष्म रूप है। समष्टि सात्त्विक अहंकार और समष्टि तामस अहकार की अल्पमात्राओ के सहयोग से समष्टि राजस अहंकार का यह समष्टि गुदा इन्द्रिय मण्डल परिणाम है और इसका परिणाम व्यष्टि गुदा है। इस समष्टि गुदा इन्द्रिय और समष्टि रजः प्रधान अहंकार की प्रधानता में तीनों अहकारों के सम्मिश्रण का जो समुदाय है यही यहां अयुत सिद्ध द्रव्य है। जैसे मनुष्य का शरीर अवयवी और हाथ पैर आदि अवयव, यह अवयव और अवयवी का समुदाय ही अयुत सिद्ध द्रव्य है। अर्थात् समष्टि रजः प्रधान आदि समष्टि अहंकारत्रय का मिश्रण ही गुदा का यहां सूक्ष्म रूप समझना चाहिये। एक प्रकार से कार्य कारण का अभेद ही यहाँ अयुत सिद्ध द्रव्य बनता है। पृथक व्यष्टियों का समुदाय यहाँ द्रव्य नही है जैसे कि आमों का वन या मनुष्यों का संघ होता है।

यह गुदा इन्द्रिय तो समष्टि अहंकारत्रय के भेद रूप से अभेद को प्राप्त एक द्रव्य है। गुदा इन्द्रिय का परिणाम समष्टि सात्त्विक अहंकार '१ अंश+समष्टि राजस अहंकार १'५ अंश+और समष्टि तामस अहंकार १'४ अंश के सम्मिश्रण से अभेद रूप मे हुआ है।

समाधि मे तो आप साक्षात् करेंगे ही—तनिक अभी पढते-पढ़ते कल्पना तो कीजिये कहाँ तो तीनों समष्टि अहंकार और कहाँ जन-जन से दुतकारी गुदा। 'ममेद' का या 'मेरा-मेरा' का प्रसार करने वाला तो अहकार, जो प्रकृति के तमस् से परिणाम को प्राप्त हुआ और उसको प्रभावित किया या सत्त्व रजस् तमस् ने, अपने तीनों गुणो के साथ, और परिणत हुई समष्टि गुदा इन्द्रिय भगवान् के सन्निधान की माया है। इस अवसर पर जो विशेष क्रिया होकर विशेष परिणाम रूप मे जो समष्टि गुदेन्द्रिय मण्डल परिणत होता है और व्यष्टियों को उत्पन्न करता है। वह एक आश्चर्यमय दृश्य है। इस काल मे ब्राह्मी चेतन सत्ता संघात करने वाली प्रेरिका होती है क्योंकि जड़ द्रव्य क्रियावान् होते हुए भी परिमित मात्रा मे, परिमित दिशा काल में गति नही कर सकते। इसी नियोजन मे ब्रह्म का दर्शन करना चाहिये।

इन समष्टि इन्द्रियो के विज्ञान काल मे यह बात सदा ध्यान रखनी चाहिये और भली प्रकार समझ लेनी चाहिये कि दोनो प्रकार के स्थूल और सूक्ष्म शरीरो की रचना मे जो गुदा आदि मार्ग शरीरा मे हैं। यह तो बाह्य उपकरण हैं। इनकी रचना तो स्थूल पृथिवी आदि भूत तथा उनकी तन्मात्राओ से हुई है। यह इन्द्रियाँ नही हैं। उनके व्यापार के मार्ग हैं। दश इन्द्रियाँ तो ब्रह्म-रन्ध्र मे ज्योतियो के रूप मे है। मन उनमे एक तीव्र ज्योति है। वेद ने भी तो कहा है, 'ज्योतिषा ज्योतिरेक तन्मेन मन ।— इन्द्रियरूप ज्योतियो की जो ज्योति है। उनको प्रकाशित करने वाली, उनसे व्यवहार कराने वाली जो ज्योति है वह मन है। यही वास्तव मे इन्द्रियाँ है। लोक व्यवहार म गोलकों को इन्द्रियाँ और इन्हे सूक्ष्म इन्द्रियाँ कह देते है। पर व्यवहार मात्र से तो शरीर-माँस चर्म-अस्थिमय इन्द्रियाँ नही बन जायेगा। प्रति शरीर मे यह व्यष्टि, इन्द्रियाँ हैं, और आकाशमण्डल मे समष्टि इन्द्रिया के स्तर है, जिससे व्यष्टि इन्द्रिया उत्पन्न हुई हैं। इन व्यष्टि इन्द्रियो के भोगो से विरत और विरक्त हो समष्टि इन्द्रियो के स्तर मे प्रेरक चेतन ब्रह्म का साक्षात्कार करना है।

समष्टि गुदा इन्द्रिय मण्डल

चतुर्थ रूप मे ब्रह्म विज्ञान

(गुदा इन्द्रिय का चतुर्थ रूप)

४. समष्टि गुदा इन्द्रिय के अन्वय रूप मे—

समष्टि गुदा इन्द्रिय का स्तर भी मूलत मूलप्रकृति से ही परम्परा रूप से परिणत हुआ है। मूल प्रकृति ही अपने आवान्तर परिणामो को अभिव्यक्त करती हुई गुदा रूप मे परिणत हुई है। प्रकृति अपने स्थिति रूप धर्म और भगवान् के सन्निधान से प्राप्त ज्ञान और क्रिया गुणा को लेकर मध्यगत परिणामो को पार करती हुई गुदा रूप मे अनुपतित हुई है। मूल प्रकृति परिणामिनी है। इस परिणामिनी मूल प्रकृति का अनुपतन ही समष्टि और व्यष्टि गुदा इन्द्रिय रूप मे हुआ है। वह प्रकृति अपने धर्म और गुणो के साथ ही अनुपतित हुई। इस गुदेन्द्रिय समष्टि मण्डल का धर्म भी मल-विसर्जन ही है। यह सृष्टि का रचना काल है। समष्टि मे उसके धर्म मल विसर्जन का कोई कार्य व्यवहार इस काल मे नही होता जैसे बिजली के तार मे बिजली का करन्ट है, उसमे प्रकाश धर्म है, पर वह व्यक्त होता है, बल्ब मे जाकर ही। ऐसे ही समष्टि का धर्म मलविसर्जन व्यष्टि गुदा इन्द्रिय मे ही अभिव्यक्त होता है। यह विसर्जन धर्म वाला समष्टि गुदा इन्द्रिय का मण्डल या स्तर समष्टि सत्त्व राजस् तम अहकार का परिणाम है। समष्टि सत्त्व राजस् तम अहकार समष्टि महत्तम का परिणाम है। समष्टि महत्तम मूल प्रकृति से अपने स्वरूप मे आया है। मूल प्रकृति अजन्मा सत् और नित्य है। उसका क्रिया धर्म ही गुदा इन्द्रिय के मल विसर्जन रूप धर्म मे व्यक्त हुआ है। मूल प्रकृति की स्थिति ही तेज स्वरूप गुदा इन्द्रिय के समष्टि स्तर की स्थिति रूप मे व्यक्त हुई और मूल प्रकृति का ज्ञान गुण समष्टि गुदा इन्द्रिय के स्तर मे निहित ता है जिससे वह जानी जाती है, और स्तरो से पृथक् अपनी सत्ता रखे है पर व्यष्टि गुदा

इन्द्रिय के व्यवहार काल मे यह ज्ञान धर्म प्रस्फुटित हो उठा है जिसके आधार पर यह व्यष्टि गुदा इन्द्रिय शरीर के समस्त भोज्य मे से अनुपयोगी भाग का ही ग्रहण कर विसर्जन कर देती है। विसर्जन क्रिया द्वारा केवल मल और अपान को ही बाहर निकालना गुदा इन्द्रिय का प्रकृति से अपहृत ज्ञान गुण को प्रमाणित करता है।

इस प्रकार मूल प्रकृति अपने धर्म और गुणो के साथ समष्टि गुदा इन्द्रिय के स्तर मे अनुपतित हुई है। यही समष्टि गुदा इन्द्रिय मण्डल का अन्वय है। इस मण्डल या स्तर के प्रत्यक्ष समय म उस ब्राह्मी चेतन सत्ता की विद्यमानता का भी साक्षात् प्रत्यक्ष करना है जिसकी सन्निधानता से इस मण्डल म मल विसर्जन धर्म इस अद्भुत रीति से निहित है।

इस गुदा इन्द्रिय के मल विसर्जन का सहारा लेकर दवादव खाने पीने, और रसास्वाद मे ही जीवन को नष्ट नही करना चाहिये। यदि आपको दिव्य नेत्र के सहारे गुरु चरण कृपा से इन स्तरो का साक्षात्कार हो गया है, और उनम ब्रह्मानुभूति भी होने लगी है तो भी यह ध्यान मे रख लीजिये कि यह रसास्वाद आपको फिर आत्म दर्शन या ब्रह्म दर्शन से विमुख कर देगा, क्योकि ब्रह्म दर्शन तो केवल ज्ञान और परम वैराग्य के ही पर परमपुनीत पात्र मे चिर स्थिर रह सकता है, अन्य ताव या पीतल के पात्र म पडे स्वच्छ निर्मल दही की तरह नीला, कडवा, विप बनकर ब्रह्म-ज्ञान अहभाव-अहमन्यता का कारण बन जायेगा, इसलिये योगिन् अपने पर दया कर ब्रह्म के साक्षात्कार के साथ-साथ परवैराग्य की सुधा का भी पान करते चलो। जिससे आप की साध पूरी हो सके। यह हुआ समष्टि गुदेन्द्रिय के चतुर्थ रूप मे ब्रह्म दर्शन।

समष्टि गुदा इन्द्रिय मण्डल

पञ्चम रूप मे ब्रह्म-विज्ञान

(गुदा इन्द्रिय का पञ्चम रूप)

५ समष्टि गुदा इन्द्रिय के अर्थवत्त्व रूप मे—

समष्टि गुदेन्द्रिय स्तर का अर्थवत्त्व तो इसी मे है कि यह योनिमात्र के अर्थात् ८४ लाख योनियो के स्थूल शरीरो और उससे भी पहले सूक्ष्म शरीरा के निर्माण मे उपयुक्त होती है। योगी जन भी निर्माण चित्तो के साथ और स्थूल शरीरो के निर्माण मे इसी स्तर से इच्छानुसार अपेक्षित गुदा इन्द्रियो को लेकर उनके शरीरो मे अपने भोगो को परिसमाप्त कर मुक्त होते हैं। यदि यह समष्टि गुदेन्द्रियो का स्तर न होता और आकाश मण्डल मे सर्वत्र व्याप्त न होता तो सर्वत्र भूमण्डल, और लोक लोकान्तरो मे विषम से विषम और जटिल से जटिल परिस्थितियो मे भी शरीर निर्माण कैसे होता अत समस्त आकाश मण्डल मे सर्वत्र विद्यमान इस गुदा मण्डल की शरीर निर्माण मे अर्थवत्ता है।

समष्टि गुदेन्द्रिय मण्डल मे विद्यमान 'मल विसर्जन' धर्म की अर्थवत्ता व्यष्टि गुदा इन्द्रिय मे प्रकट होगी। यह गुदा इन्द्रिय मल-विसर्जन क्रिया सजीव मात्र के स्थूल

और प्रत्येक सूक्ष्म शरीर मे कल्याण का हेतु बनी है किसी कारण से एक दिन मल का विसर्जन न हो तो कितनी बेचैनी और परेशानी होती है। कष्ट और क्लेश की सीमा नही रहती। पेट फूल जाता है, अफारा आ जाता है। हाथ पैर अकड जाते है, आँखे पथरा जाती है। शरीर को छोड जीव बाहर भागने की तैय्यारी मे लगता है। देखने वाले इधर-उधर भागते है, नाना प्रकार के उपचार करते है, औषधि खिलाते-पिलाते है, यदि उस से मल विसर्जन हो गया, अपान बाहर निकाल दिया तो प्राण बच जाते हैं। अन्यथा मरण निश्चित है ही। यह दशा भोग योनि और कर्म योनि की समान रूप से होती है। ऐसी है अर्थवत्ता इस गुदेन्द्रिय के मल विसर्जन की है।

यदि यह गुदेन्द्रिय किसी भी कारण से नियमित कार्य न कर सके, और अति-सार या विशूचिका, दस्त या हैजा हो जाये, और इस क्रिया को भी औषधि से नियमित न किया जा सके तो भी मरण निश्चित है। अत गुदा इन्द्रिय का वास्तविक उपयोग ही सूक्ष्म और स्थूल शरीर मे अत्यन्त आवश्यक है।

जब किसी वैद्य या डाक्टर के पास जाना पड जाता है तो वह सर्व प्रथम गुदे न्द्रिय के मल-विसर्जन के बारे मे ही पूछता है यदि मल-विसर्जन ठीक होता रहे तो स्वास्थ्य ठीक रहता है। स्वस्थ व्यक्ति ही भोगो को भोग सकता है, और स्वस्थ व्यक्ति ही योगाभ्यास कर सकता है। स्वस्थ व्यक्ति ही भोगो से उपराम हो विरक्त हो सकता है। रोगी तो कुछ भी नही कर सकता। स्वास्थ्य बनाये रखने मे गुदेन्द्रिय की बडी भारी अर्थवत्ता है।

मनुष्य दिन-रात मे बहुत आहार खा जाता है। अन, फल, दूध, घी, शाक, दाल आदि। यदि यह इन्द्रिय न हो इनका पाकान्तर अवशिष्ट मल कहाँ रहे। यदि शरीर मे रह जाये तो सैकडा प्रकार के भयकर से भयकर रोग उत्पन्न कर देता है। इसी लिये आयुर्वेद मे कहा गया है—'न वेगान् धारयेत् धीमान्'—बुद्धिमान् मल के वेग को रोकता नही, तत्काल उस मल का विसर्जन करता है। यह गुदा इन्द्रिय का ही काम है जो अनावश्यक अनुपयोगी, हानिकारक मल का विसर्जन करती है। स्थूल शरीर के समान सूक्ष्म शरीर मे भी सूक्ष्म गुदेन्द्रिय अकेली मल त्याग का काम करती है। इसी मल त्याग के कारण दोनो शरीर स्वस्थ बलवान्, आरोग और दीर्घ जीवी रहते हैं।

(शका)क्या सूक्ष्म शरीर मे भी रोग आदि होते है?

(समाधान)—'भोगे रोग-भयम्'—जहाँ जहाँ भोग है वहाँ रोग भी है। जब सूक्ष्म शरीर पच-तन्मात्राओ का भोग करते है, तो मल का त्याग न होने पर सूक्ष्म शरीर मे कुछ न कुछ विकार तो होगा ही। पर विद्वान् लोग वहाँ विकार नही मानते क्योकि वहाँ अत्यन्त सूक्ष्म-तन्मात्राओ का भोग होता है। वे हमारी तरह पेटू नही होते। केवल वासना मात्र से ही उनकी तृप्ति हो जाती है।

इस प्रकार आप ने देखा कि व्यष्टि गुदेन्द्रिय का मल विसर्जन जीवन के लिये कितना अपरिहार्य धर्म है। यही धर्म समष्टि गुदेन्द्रिय मण्डल मे अधिष्टित है। उस धर्म की यथावसर इतनी बडी भारी अर्थवत्ता है। समष्टि गुदेन्द्रिय मे इस अर्थवत्ता का समाधि-काल मे प्रत्यक्ष करें और साथ ही सर्वव्यापक उस ब्राह्मी चेतना का भी साक्षात् करें जिसके सन्निधान से चेतन सी बनी जड यह समष्टि व्यष्टि गुदाइन्द्रिय जीवमात्र का भोग और

मनुष्य का अपवर्ग भी सम्पादन करने मे समर्थ है। ब्रह्मानुभूति करते हुए भी इसे स्मरण रग कि अत्यन्त उपयोगी इस समष्टि और व्यष्टि गुदेन्द्रिय से विरक्ति लाभ किये विना यह ब्रह्मानुभूति चिर-स्थायिनी न होगी। अभ्यास के साथ-साथ वैराग्य की निष्टा अभ्यास से भी अधिक आवश्यक है यही मुक्ति प्रदान करेगी।

इति समष्टि गुदेन्द्रिय मण्डलम्

इति द्वितीयाध्याये षष्ठ खण्ड

इति त्रयोविंशमावरणम्

सप्तम खण्ड

२२वा आवरण

समष्टि राजस-अहंकारिक उपस्थेन्द्रिय मण्डल

पांचो रूपो में ब्रह्मानुभूति

समष्टि अहकारिक उपस्थेन्द्रिय का मण्डल समष्टि गुदेन्द्रिय के मण्डल के ऊपर है, यह मण्डल चमकदार और नारञ्जी से रग का है। गुदेन्द्रिय के मण्डल से मिलता-जुलता है। गुदेन्द्रिय की अपेक्षा इसमे सत्त्व की श्वेतिमा और राजस की लालिमा कुछ अधिक है। तामस पीतिमा उससे कम है। गुदेन्दि मण्डल मे तमोगुण अधिक है। अत उसमे पीलापन अधिक है। सत्व गुण और रजोगुण की मात्रा अधिक होने से उपस्थेन्द्रिय मण्डल मे चेतना और क्रिया की मात्रा अधिक है। गुदेन्द्रिय मण्डल की अपेक्षा इसमे चञ्चलता और स्वछता अधिक है।

योगिन् ! आप के और ब्रह्म के बीच नीचे से यह बारहवा परदा है। ग्यारह को पार कर आये है। उनकी अपेक्षा इसको विदीर्ण करना तनिक कष्ट साध्य है। यदि आप ने काम पर विजय पा ली है, तो इसको पार करने मे कोई कठिनाई न होगी। काम पर विजय ही सर्वाधिक दु साध्य है। पर वैराग्य ही इसकी विजय का अचूक शस्त्र है। इस मण्डल मे सूक्ष्म रूप से दो धर्म निहित है, १—मूत्र विसर्जन २ वीर्य विसर्जन। यहाँ इन धर्मो की अभिव्यक्ति नही है। इन धर्मो की अभिव्यक्ति तो सूक्ष्म शरीर की रचना के सम्पन्न होने पर होगी। अभी तो सूक्ष्म शरीरो की रचना के लिये गोदाम भरे जा रहे है। जिस प्रकार जब कोई भोज करना होता है तो कोठार मे सब सामग्री एकत्रित कर ली जाती है। उस सामग्री मे भोज के समय उपस्थाप्यमान सब मिठाइयो के रस और स्वाद विद्यमान है, पर यदि कोई उसी समय उनको चखने की बात कहे तो मूर्खता होगी। पर हलवाई सब निश्चय पूर्वक जानता है। विज्ञ जन भी। इसी प्रकार यहाँ उपस्थेन्द्रिय समष्टि मण्डल मे मूत्र और वीर्य विसर्जन दोनो धर्म विद्यमान हैं। भगवान् की इस करामात को योगिजन ही जान सकते है। समाधिस्थ हो इसे जानने का प्रयत्न करते है।

यह समष्टि उपस्थेन्द्रिय मण्डल सृष्टि काल मे सदा आकाश मण्डल मे रहता है। सृष्टि काल मे तो इसका उपयोग समस्त सूक्ष्म शरीरो के निर्माण मे होता है और उसके पश्चात् 'यदा तु योगी बहून् कायान् निर्मिमीते' (व्यास भाष्य) जब योगी बहुत शरीरो को बनाता है तब इस समष्टि मण्डल से उपस्थेन्द्रिय को लेकर शरीर रचना पूरी करता है, मुक्ति से लौटने वाली आत्माओ की शरीर-पूर्ति भी इसी मण्डल से उपस्थेन्द्रिय लेकर होती है।

ब्रह्म के सम्पर्क से चेतन सी बनी इस प्रकृति महामाया का विधान इस प्रकार आगे बढता है। समष्टि उपस्थेन्द्रिय के पाँचो रूप भी इस विधान का अग हैं। उन पाँचो

रूपों का तथा उनमें अपने तीव्र ज्ञान और वैराग्य की पुट से ब्रह्म का साक्षात् अनुभव कीजिये।

समष्टि उपस्थेन्द्रिय मण्डल

प्रथम रूप में ब्रह्म-विज्ञान

(उपस्थेन्द्रिय का प्रथम रूप)

१. समष्टि उपस्थेन्द्रिय के स्थूल रूप में—

समष्टि उपस्थेन्द्रिय अहंकारिक सृष्टि का दसवां और समष्टि राजस अहंकार का चौथा परिणाम है। ब्रह्म और जीव के बीच यह २२वां आवरण है। इसके हट जाने पर २१ आवरण अभी और हटाने हैं। समष्टि उपस्थेन्द्रिय के निर्माण से पूर्व तीनों समष्टि कर्मेन्द्रियों वाणी हस्तपाद के मण्डल तथा ज्ञानेन्द्रियों आदि के मण्डल बन चुके हैं। तीनों कर्मेन्द्रियो तथा समस्त ज्ञानेन्द्रियों से बढ कर इसकी उपादेयता और क्लिष्ट-तम-हेयता है।

समष्टि उपस्थेन्द्रिय मण्डल में दो धर्म निहित हैं १. मूत्र-त्याग २. वीर्य विसर्जन। इस समष्टि मण्डल मे इनका व्यवहार सूक्ष्म शरीर के समस्त अवयव सहित अवयवी के निर्माण तक व्यक्त नही होता। यह दोनों धर्म समस्त समष्टि मण्डल मे हैं, तभी तो व्यष्टियों में व्यक्त हो पाते है।

समष्टि उपस्थेन्द्रिय के स्थूल रूप को समझने के लिये इन दोनो धर्मो को समझना आवश्यक है। इन दोनों धर्मो का विशद रूप मे स्पष्टी करण व्यष्टि मे ही हो सकता है। अतः व्यष्टि का आश्रय लेकर इनको समझना है।

शरीर के स्वास्थ्य की दृष्टि से मूत्र-विसर्जन अत्यन्त आवश्यक है। मल का विसर्जन तो दो चार दिन के सगृहीत होने के बाद ही चिन्ता का विषय बनता है। मूत्र-विसर्जन में यदि कुछ घन्टो का ही विलम्ब हो जाये तो तबाही मचा देता है। डाक्टर भी चिन्तित हो उठते हैं। तत्काल सलाई डाल कर मूत्राशय से मूत्र निकाल कर ही समझते हैं रोगी बच गया। यदि किसी मांसपेशी के अटक जाने से या अन्य किसी व्युत्क्रम के कारण मूत्र नही उतरता तो निराशा का वातावरण छा जाता है। मूत्र विषाक्त हो जाता है। मूत्र की अधिक मात्रा से अफारा तो हो ही जाता है, विष भी बड़ी तीव्रगति से शरीर मे फैलना आरंभ कर देता है। और जीवन लीला शीघ्र ही समाप्त हो जाती है। मूत्रावष्टम्भ का ऐसा घातक परिणाम होता है। उपस्थेन्द्रिय जीवन के लिये अपरिहार्य है।

प्यास मिटाने के लिये जब जल का पान किया जाता है। और भूख मिटाने के लिये दूध या फलों आदि का रस पान किया जाता है, तो शरीरानुपयोगी जल तत्व के निकलने का मार्ग तो होना ही चाहिये। वह मार्ग उपस्थ मे रखा गया है। मूत्र के साथ केवल जलीय दुष्ट अंश ही बाहर नही निकलता, शरीर के अन्य बहुत से विष भी मूत्र के साथ बहकर बाहर निकलते हैं। शरीर को स्वस्थ बनाये रखते है।

उपस्थेन्द्रिय को भी लोग मूत्र की नाली कह कर अपवित्र समझ लेते है। चाहते हैं उपस्थेन्द्रिय तो शरीर से तरल मल को निकालती रहे, चाहे वे उस को साफ न करें।

रसोई, घर, पाखाने आदि की मोरियो को साफ न किया जाये तो वे रुक कर घर भर को खराब बना देती है। इसी प्रकार यदि मूत्रेन्द्रिय को साफ न रखा जाये, मूत्र वेग के समय मूत्र विसर्जन न किया जाये, खाल को हटाकर धोया न जाये तो अनेक घातक रोग उत्पन्न होने का डर लगा रहता है। इसीलिये शिष्ट लोग मूत्र के उपरान्त जल से इन्द्रिय का प्रक्षालन अवश्य करते है।

पीने मे भी मात्रा का ध्यान रखते है, स्वाद के चस्के स्वादिष्टपेय या भोजन अतिमात्रा मे नही खाते। इस मूत्रेन्द्रिय के दुरुपयोग के लोमहर्षक दुष्परिणाम देखने हो तो किसी पब्लिक हस्पताल के मूत्र-रोग वार्ड को देख लेना चाहिये। इतना उपयोगी और अनिवार्य है यह मूत्र-विसर्जन।

२ दूसरा धर्म है वीर्य-विसर्जन। वीर्य शरीर का ओज बल कान्ति है। इसीसे शरीर मे कान्ति आती है। जो कुछ हम आज खाते है ४० दिन मे जा कर रस, रक्त, मास, मेदा, अस्थि आदि बनते बनते अन्त मे वीर्य बनता है। वैद्य लोगो का कथन है ४० सेर अन्न से केवल एक तोला वीर्य बनता है। दीपक मे तैल के समान यह स्थूल-शरीर का जीवन है। 'अमृतविन्दुधारणम्' इसके एक बून्द की भी रक्षा करनी चाहिये यह अमृत है। इसी से बुद्धि तत्त्व पुष्ट होता है। वेद ने भी कहा है, ब्रह्मचर्येणमृत्युमुपाघ्नत' वीर्य रक्षा से मृत्यु पर विजय प्राप्त होता है। इसी के धारण से हनुमान् वज्राङ्ग बने। भीष्मपितामह इसी के आधार पर १७५ वर्ष के महाभारत युद्ध भूमि मे तहलका मचा गये, और शरशय्या पर छ मास तक लेटे मृत्यु को ललकारते रहे, जब सूर्य उत्तरायण हुआ तभी प्राण त्यागे। इस युग के वेद के विद्वान् अखण्ड आबाल ब्रह्मचारी अष्ट प्रकार के मैथुनो से रहित योगिवर दयानन्द धर्म मे क्रान्ति लाये, और अन्त मे मृत्यु पर विजय प्राप्त कर सिद्धासनस्थ हो प्रसन्न मुद्रा मे प्राण त्यागे। वीर्य रक्षा की महिमा महान् है। इसके सरक्षण पर ही योग की पूर्णता निर्भर है। आज का ससार इसके महत्व को नही समझ रहा है। इसका रक्षण ही परम धर्म है।

सृष्टि के चलाने और वश परम्परा को बनाये रखने के लिये वीर्य मे ८४ लक्ष योनियो के सृजन का बीज भी निहित है। पशु पक्षी मानव कीट पतग सब ही प्राणियो की उत्पत्ति इससे होती है। इस महत्वशाली वीर्य के निस्सरण का मार्ग भी उपस्थ मे ही रखा गया है। इसी से प्राणी गर्भाधान कर वश परम्परा कायम रखते हैं। मानव का प्रजनन भी इसी के द्वारा होता है। सब प्राणियो मे यही बुद्धि जीव है। पर इसने बुद्धि का उपयोग विपरीत मार्ग मे किया। प्रकृति के सब प्राणी ऋतुगामी है। ऋतु आने पर, या समझिये प्रजनन का समय आने पर ही सयुक्त हो अपना वश चलाते है। सब योनियो का प्रजनन समय निर्धारित है। पर मानव! बुद्धि जीवी मानव। सब मर्यादाओ को तोड बैठा। प्राकृतिक भी और शास्त्रीय भी। इसने भोग विलास को ही उपस्थ का धर्म समझ लिया। ऋतु, समय का सब विचार भुला कर दिन रात मुँह काला करना ही सुख का सार समझ लिया। परन्तु यह घोर अनाचार है। घोर पाप है।

अन्य भोग योनियो के लिये प्रजनन धर्म हो सकता है, पर मानव के लिये नहीं। वे भोग योनियाँ हैं। परवश है। यह तो कर्म योनि है। मानव देह वह चौराहा है जिस से मोक्ष मे भी जा सकते है, स्वर्ग मे जा सकते है, अन्य नरक योनियो मे भी जा सकते हैं

और मानव देह में भी लौट सकते हैं। इस चौराहे पर तो इस लिये आये हैं कि मोक्ष प्राप्त करना है। ८४ लाख भोग योनियों में से यही तो अवसर है, न जाने कितने जन्मों, और कितने वर्षों के बाद हाथ लगा है, यदि यहाँ आकर भी मोक्ष के लिये कटिबद्ध न हुआ, तो न जाने कितने युगों के लिये लम्बे चौरासी के चक्कर में फिर भटकना और यातनायें सहना पड़ेगा। अतः मानव धर्म तो अखण्ड ब्रह्मचर्य धारण कर मोक्ष प्राप्त करना ही है। मानव जीवन में तो उपस्थ का केवल एक ही धर्म उपयोक्तव्य है मूत्र विसर्जन। वीर्य-विसर्जन तो पथ-भ्रष्ट करने वाला है। इस लिये उपस्थ का मुख्य धर्म एक ही है मूत्र विसर्जन। इस लोक में बाल-ब्रह्मचारी इस इन्द्रिय के एक ही धर्म का उपभोग करते हैं केवल मात्र मूत्र त्याग का ही। अतः यही धर्म सब के लिये मुख्य है। काम भोग, प्रजा जनन गौण हैं। मुक्ति की इच्छा वाला सन्तानोत्पत्ति का कार्य करेगा ही नहीं, क्योंकि उसकी भावना पुत्रैषणा की जाती रही है। बाल-ब्रह्मचारी भी इस काम धर्म का उपभोग नहीं करते हैं। वैसे भी शास्त्र मर्यादानुसार ब्रह्मचारी वानप्रस्थ और सन्यास तीन आश्रमों में काम धर्म सर्वथा वर्जित है। निर्बल आत्माओं के घोर पतन से बचाने के लिये आयु का चौथा भाग गृहस्थ के लिये रखा था। यह तो ब्रह्मचर्य का पालन न कर सकने वाले रोगियों के लिये हस्पताल था। परन्तु महान् खेद का विषय है कि सब रोगी बनते जा रहे हैं, डाक्टर कोई भी नहीं। अध पतन का मार्ग ही सबने अपना लिया है।

मुक्ति की इच्छा वाला सन्तानोत्पत्ति का कार्य करेगा ही नहीं। इस उपस्थ का यह काम धर्म गौण ही है। मुख्य धर्म मूत्र त्याग ही है।

तन्मात्रा के स्वर्ग लोक आदि में भी इस उपस्थ का धर्म मूत्र त्याग ही है, क्योंकि वहाँ कुटुम्ब कबीला और सन्तानोत्पत्ति नहीं है।

यह व्यष्टि उपस्थेन्द्रिय के दोनों धर्म समष्टि उपस्थेन्द्रिय मण्डल में बीज रूप से वर्तमान रहते हैं। वही व्यष्टियों में आकर विकास भाव को प्राप्त हुए उपलब्ध होते हैं। यह समष्टि उपस्थेन्द्रिय मण्डल का प्रयोजनमय स्थूल रूप है। समाधि द्वारा आपने इसी का प्रत्यक्ष करना है। सर्वत्र विद्यमान निमित्त कारण भगवान् की सन्निधानता का भी अनुभव करना है। यदि भगवान् की अनुभूति को चिरस्थायी और दृढ बनाना है तो वैराग्य की भावना को दृढतम करना होगा। जो वास्तव में मोक्ष का हेतु बनेगी।

(शका) क्या स्वर्ग में भी पेशाब करने की जरूरत पड़ती है? तब तो वहाँ शौचालय आदि भी होते होंगे, और गृह आदि भी।

(समाधान) यदि स्वर्ग में शौचालय और घर माने जायें तो इस लोक में और उस लोक में क्या अन्तर हुआ। दोनों ही समान हुए। फिर ऐसे स्वर्ग लोक के लिए कौन बुद्धिमान् कठिन साधना और घोर तप करेगा?

तन्मात्रा के स्वर्ग लोक में रस तन्मात्रा का भोग तो अवश्य है, पर वह इस जल का ही सूक्ष्म रूप है। वहाँ सूक्ष्म गन्ध और सूक्ष्म रस के क्या मल मूत्र बनेंगे। यदि कुछ बने भी तो वह उस सूक्ष्म आकाश मण्डल में ही अग्नि और वायु की तन्मात्राओं से भस्मी भूत होकर समाप्त हो जायेंगे। स्थूल लोक तक नहीं पहुँचेंगे। सूक्ष्म गन्ध ही उनका भोग है। सूक्ष्म रस में यहाँ के षट्रस के स्वाद भी समझने चाहियें। सो गन्ध और स्वाद का

क्या मल बनेगा। नाम मात्र को भी बनता हुआ नजर नही आ रहा है। सूक्ष्म शरीर मे गुदा और उपस्थ सूक्ष्म चमकती दीप्त तार का रूप सूक्ष्म इन्द्रियो से क्या मल निकलेगा। नही के बराबर ना मालूम ही होगा, जो वही दूसरी तन्मात्राओ मे ही विलीन हो जाता है। यहाँ का मल स्थूल भूतो मे विलीन हो जाता है, वहाँ का सूक्ष्म भूतो मे। वहाँ का आकाश मण्डल मे अपने ही भूत मे विलीन हो जाता है।

समष्टि उपस्थेन्द्रिय मण्डल

द्वितीय रूप मे ब्रह्म विज्ञान

(उपस्थेन्द्रिय का द्वितीय रूप)

२ समष्टि उपस्थेन्द्रिय के स्वरूप मे--

मूत्र त्याग और वीर्य विसर्जन दोनो धर्म समिष्ट उपस्थेन्द्रिय मण्डल मे अव्यक्त रूप मे सदा वत्तमान रहते है। यह दोनो धर्म समष्टि उपस्थेन्द्रिय मण्डल से कभी अलग नही होते। यह दोनो धर्म ही समष्टि उपस्थेन्द्रिय मण्डल का स्वरूप है। इनका धर्म धर्मी भाव सम्बन्ध है। यह दोनो गुण है और मण्डल गुणी है। गुण से गुणी अलग नही हुआ करता है। इनका स्वरूप सम्बन्ध है।

(शका) इस लोक मे जिस प्रकार प्रत्येक योनि का उपस्थेन्द्रिय भिन्न आकृति वाला है, क्या इनके कारण भूत समष्टि उपस्थेन्द्रिय मण्डल मे यह आकृतियाँ भी निहित रहती है ?

(समाधान) यह विभिन्न योनियो मे विभिन्न आकृति के उपस्थ, उपस्थेन्दियाँ नही हैं। वास्तविक उपस्थेन्दियाँ तो सूक्ष्म रूप मे ब्रह्म-रन्ध्र मे रखी हुई है। वह तो चमकते हुए नारगी रग के छोटे-छोटे तारे जैसे कण है। यह सब योनियो मे एक जैसे होते हैं। इन म कोई भेद नही होता। दोनो धर्म इन मे साथ-साथ रहते हैं। यह तो सूक्ष्म शरीर का एक भाग है। जो आवागमन के समय सूक्ष्म शरीर के साथ जाता है। कर्मानुसार यही सूक्ष्म शरीर सब योनियो मे जाता है। यह सूक्ष्म शरीर सकोच विकास शील है। हाथी के शरीर मे फैल जाता है। चीन्टी के शरीर मे सुकड जाता है। यह सूक्ष्म इन्द्रियाँ ही साथ जाती है। साथ ही अगले शरीर मे आती हैं। यही वास्तविक इन्द्रियाँ हैं। उपस्थ इन्द्रिय भी इसी प्रकार एक तारा सा कण है। यह बाहर के अग तो इस सूक्ष्म इन्द्रिय के व्यवहार के मार्ग है। यह तो शरीर के साथ ही भस्मीभूत हो जाते हैं। समष्टि उपस्थेन्द्रिय मण्डल से व्यष्टि रूप मे यह छोटे छोटे चमकते तारे ही उत्पन्न होते हैं। इन तारो का कारण वह विशाल समष्टि उपस्थेन्दिय मण्डल है। वहाँ इन आकार-प्रकारो की क्या कल्पना। इस ब्रह्म विज्ञान को समझने के लिए स्थूल, सूक्ष्म आदि शरीरो का विज्ञान हमारे 'आत्म-विज्ञान' ग्रन्थ से प्राप्त कीजिए।

मूत्र त्याग और वीर्य विसर्जन धर्म है, उपस्थेन्द्रिय मण्डल धर्मी है। धर्म धर्मी का अभेद है। इस अभेद का ही आप को समाधि मे दर्शन करना है। इस मण्डल का यह बारहवाँ परदा है, इसके अन्दर दिव्य दृष्टि से समाधि की गहन स्थिति म प्रवेश कीजिये, और सर्वान्तर्यामी प्रियतम के दर्शन कीजिये। पर ध्यान रखिये यह प्रियतम भी एक स्नेही व्रत को चाहता है। इसी से प्रेम करने वाले को यह दर्शन देता है, अन्यानुरक्त से तत्काल अन्तर्धान हो जाता है। यदि आपने भगवान् के दर्शन को शाश्वत बनाना है

प्रकृति की रति के राग से अलग हट जाइये। परम वैराग्य को धारण कीजिये। फिर देखिए ये परदे कैसे फटते हैं, और कितना शीघ्र उस प्रियतम का दर्शन या मिलन होता है।

(शका) समष्टि मण्डल से दोनो धर्मो का अभेद है वे उससे कभी अलग ही नही होते, तब तो स्वर्ग लोक मे भी उपस्थेन्द्रिय मे काम धर्म रहता होगा, उनका वहाँ निवारण कैसे होता होगा।

(समाधान) इस लोक मे मोक्ष की इच्छा वाला ब्रह्मचारी इसका दमन कामोद्दीपक सामग्री के होते हुए भी कर लेता है। तो स्वर्ग लोक मे इसके निवारण की क्या बात वहाँ तो कामोद्दीपक प्रसग है ही नही। वहाँ तो स्त्री पुरुष नाम का कोई भेद है ही नही। सूक्ष्म शरीरो मे यह भेद होता ही नही। साथ ही यह बात भी ध्यान देने की है, कि उपस्थ का मुख्य धर्म मूत्र त्याग है। इसी लिए मोक्ष की इच्छा करने वाला ब्रह्मचारी काम वासना को दमन कर लेता है। यदि उपस्थ का धर्म वीर्य विसर्जन होता तो इस लोक म ब्रह्मचारी या सन्यासी से काम दमन न होता तो शास्त्र आदि मे ब्रह्मचर्य पालन का आलाप व्यर्थ ही सिद्ध होगा। फिर जितेन्द्रियता क्या हुई। देखो काम भोग और प्रजाजनन के बिना तो मनुष्य रह सकता है, जैसे सन्यासी, वानप्रस्थी, बाल ब्रह्मचारी, योगी, जितेन्द्रिय पुरुष रहते ही हैं। परन्तु पेशाव किये बिना तो कोई भी मनुष्य नही रह सकता है। अत उपस्थेन्द्रिय का मुख्य धर्म मूत्र त्याग ही है।

(शका) बहुत से बडे बडे विद्वान् स्वर्ग के बडे-बडे सब्ज बाग दिखाते हैं कि वहाँ अप्सरायें, देवाङ्गनाय, या हूरें भोगने को मिलती है। तब काम रूप वीर्य विसर्जन दूसरा धर्म अनर्थक कैसे हुआ।

(समाधान) मालूम होता है यह सब इस प्रकार का स्वर्ग या जन्नत मे देवाङ्गनाओ के मिलने का ऐतिहासिक वर्णन उन भोगी, विलासी, कामी पुरुषो की प्रसन्नता एव आकर्षण के लिए किया गया होगा जिनकी इस लोक मे भोगा को भोगते भोगते तृप्ति नही हुई वास्तव मे स्वर्ग या जन्नत की प्राप्ति तो अत्यन्त श्रेष्ठ कर्म करने वाले जितेन्द्रिय पुरुषो के लिए है। अत जितेन्द्रिय महान् आत्माओ का ही वहाँ गमन होता है। जिससे कि वे वहाँ अनन्तसुख शान्ति और आनन्द भोग सकें।

(शका) स्वर्ग म स्त्रियाँ भी तो गमन करती हागी। और पुरुष तो जाते ही हैं, तब दोना का निवास वहाँ होता ही होगा। तब काम की व्यवस्था भी होगी।

(समाधान) वहाँ इस ससार के समान राग-द्वेष, मोह-काम, भाग आदि कर्म नही होते हैं। ये तो इसी मनुष्य लोक के भोग हैं। स्वर्ग मे तो केवल पन्च-तन्मात्राओ के सूक्ष्म भोग ही होते है। केवल गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द ही तन्मात्राओ के रूप म परि-तृप्ति करने वाले होते हैं। इनका भोग दिव्य होता है। जैसे मनो गुलाब सूँघने पर वह तृप्ति नही होती जो तनिक से उसके इतर के फाये से हो जाती हैं, और चिरस्थिर रहती है। गुलाब तो सबको मिल जाता है पर इतर किसी किसी को। स्वर्ग के दिव्य भोग भी महान आत्माओ को प्राप्त होते हैं। मुक्ता स्त्रियाँ भी स्वर्ग मे होती हैं। बाह्य आकृति मे भेद होता है, पर स्थूल शरीर और स्थूल इन्द्रियाँ नही होती। सूक्ष्म शरीर ही तो होते हैं। स्त्री-पुरुष के सूक्ष्म शरीरो मे भेद नही होता। जैसा उपस्थ सूक्ष्मेन्द्रिय तारिका के समान पुरुष के सूक्ष्म शरीर मे होता है ठीक वैसा ही स्त्री के सूक्ष्म शरीर मे छोट से तार

जैसा योनि का सूक्ष्मेन्द्रिय होता है। सूक्ष्म शरीरो मे काम भोग की कल्पना बेहूदा कल्पना है। वहाँ तो दिव्य ज्ञानेन्द्रियों का दिव्य आनन्द है। कर्मेन्द्रियाँ तो केवल कर्म करने के लिए हैं, उनमे आनन्द नही। हाथ से उठाने या पैर से चलने मे क्या आनन्द है, कुछ भी नही। इसी प्रकार मूत्र त्याग और पुरीषोत्सर्ग मे कोई आनन्द नही। वीर्योत्सर्ग मे भी आनन्द नही पर मिथ्या कल्पना एव भ्रान्तिवश ऐसा मानव मान बैठा है। जैसे सूखी हड्डी मे कोई आनन्द नही, पर कुत्ते को अपने दान्तो मसूढो का खून ही हड्डी का रस मालूम पडता है। वीर्योत्सर्ग मे भी कोई आनन्द नही, अपितु महान् विषाद एव कष्ट होता है, इसका अनुभव युवक को अपनी युवा अवस्था मे स्वप्नदोष के समय होता है। वीर्योत्सर्ग का तो इतना मानस विषाद होता है कि कोई-कोई तो आत्महत्या तक को उतारू हो जाते है। अनुभव सबका ऐसा ही होना है, मूर्ख अज्ञानी उसकी परवाह नही करता। स्पर्श मे भी कोई सुख नही। यह भी भ्रान्ति है। सर्प का स्पर्श कितना कोमल होता है पर क्या वह सुखदायी है? सर्वथा नही, और उसके स्पर्श से तो होश ही गुम हो जाते है। स्पर्श से तो स्पर्श वाले से प्राप्त होने वाले भावी सुख दु ख की कल्पना ही सुख दु ख है, वास्तव मे कुछ नही। प्रिय के स्पर्श मे सुख और अप्रिय के स्पर्श मे दु ख क्यो? यदि स्पर्श मे ही सुख हो तो यह भेद न हो। अत स्वर्ग मे इस प्रकार के स्पर्श सुख को काम भोग की कोई बात नही होती।

(शका) स्वर्ग मे स्त्रियो के भी तो दिव्य शरीर होते है अत दिव्यो का दिव्यो के साथ सम्बन्ध हो सकता है?

(समाधान) पूर्व समाधान मे ही इसका तथ्य बता दिया गया है। दिव्य शरीरो मे इस प्रकार का भोग नही बनता। फिर यह भी तो विचारो, कि ये भोग तो इस लोक मे प्राप्त हैं, फिर इन भोगो के लिए स्वर्ग मे जाने की क्या जरूरत। ऐसा मानोगे तो इस लोक मे और स्वर्ग लोक मे कोई अन्तर नही रहेगा। फिर स्वर्ग की भावना या धारणा ही समाप्त हो जायेगी। स्वर्ग तो ऐसा लोक है, जहाँ न राग है, न द्वेष है, न मोह है। न काम है। न किसी से प्रीति है, न कोई दु ख है, न कोई बन्धन है। सब प्रकार के क्लेशो का अभाव है। पूर्ण शान्ति। पूर्ण सुख। पूर्ण आनन्द है।

समष्टि उपस्थेन्द्रिय मण्डल के द्वितीय रूप धर्म धर्मी के अभेद मे ब्रह्म-विज्ञान प्राप्त करना चाहिए। इस इन्द्रिय के समष्टि मण्डल मे ब्रह्म की व्यापकता और चेतना का अनुभव करना चाहिए, यह अनुभव स्थिर तब ही होगा जब इस प्रकृति के परिणामो का ठीक-ठीक रूप समझ, इनकी असलियत को पहचान इनसे वैराग्य धारण कर पर-वैराग्य को प्राप्त किया जाये। आत्म-रूप और ब्रह्म-रूप पहिचानने की जानने की, ज्ञान और वैराग ही महौषध है। इसका हाथ लगना ही वास्तविक पुरुषार्थ है।

समष्टि उपस्थेन्द्रिय मण्डल
तृतीय रूप में ब्रह्म विज्ञान
(उपस्थेन्द्रिय का तृतीय रूप)

३. समष्टि उपस्थेन्द्रिय के सूक्ष्म रूप में—

समष्टि सात्विक अहकार और समष्टि तामस अहकार के स्वल्प मिश्रण से समष्टि राजस अहकार का समष्टि उपस्थेन्द्रिय मण्डल परिणाम है। इस समष्टि उपस्थे-

न्द्रिय का और समष्टि रजः प्रधान अहंकार की प्रधानता में तीनों अहंकारों के सम्मिश्रण का जो समुदाय समष्टि उपस्थेन्द्रि-मण्डल बना है यही अयुत-सिद्ध द्रव्य है। अथवा समष्टि रजः प्रधान अहंकार सामान्य और समष्टि उपस्थेन्द्रिय मण्डल विशेष का समुदाय ही यहाँ अयुत-सिद्ध द्रव्य है। इनका यह परस्पर भेद से अनुगत अभेद रूप समुदाय है। यहाँ समष्टि रजः प्रधान अहंकार तीनों अहंकारों का सम्मिश्रण कारण और समष्टि उपस्थेन्द्रिय कार्य है यही इसका सूक्ष्म रूप है। इसी प्रकार समष्टि उपस्थेन्द्रय और व्यष्टि का कारण कार्य भावरूप सम्बन्ध सूक्ष्म रूप समझें।

यहाँ उपस्थेन्द्रिय तो समष्टि अहंकारत्रय के भेद रूप से अभेद को प्राप्त एक द्रव्य है। समष्टि उपस्थेन्द्रिय मण्डल का परिणाम, समष्टि सात्विकाहकार ·२ अंश+ समष्टि राजस अहकार १·७ अंश+समष्टि तामस अहंकार १·१ अंश के सम्मिश्रण से अभेद रूप मे हुआ है। शिश्न मे गुदा की अपेक्षा सत्त्व दुगना है। यही कारण है, गुदा मे सत्त्व का रूप ज्ञान तिरोहित सा है पर शिश्न मे ज्ञान गुदा की अपेक्षा अत्यधिक है। मूत्राशय में मूत्र एकत्र हुआ इसमे उसे निकाल बाहर करने की चेतना आयी। ब्रह्म-रन्ध्रस्थ उपस्थेन्द्रिय के कार्यवाहक शरीरांश माँस नलिका और पेशियो मे प्राण का सन्चार हो जाता है, और वे उपस्थेन्द्रिय की आज्ञा मान तत्काल उस मूत्र को बाहर निकालने के लिए तत्पर हो जाती हैं, यहाँ तक कि गाढ निद्रा म सोये जीव को भी चेतन कर देती है। इससे भी बुरी दशा काम विकार या विषयवासना के मन मे आने पर या स्वप्न दशा मे विषय वासना की घटना के आने पर होती है। शिश्न मे गुदा की अपेक्षा राजस भी ·२ अंश अधिक है। यह रजो गुण उस समय मानव को उतावला बना देता है। सत्त्व तो इसमे केवल ·२ भाग है,पर रजो गुण १·७ भाग है। यह क्रिया शील हो उठता है, भड़क जाता है। उस समय इस राजोगुण का निवारण अत्यन्त दुष्कर हो जाता है। इसलिये पहले से ही सात्विक भावनाओ को बढाते रहना चाहिये। जिससे रजोगुण उपद्रव न मचा सके। नही तो महीनो वर्षो की कमाई क्षण भर में लुटते देर नही लगती।

इस शिश्न मण्डल का सूक्ष्म रूप तो तामस अहकार ही है। अहकार भी तामस् से उत्पन्न हुआ, और वह अहकार भी तामस। करेला और नीम चढा। जड और ममत्व की भावना से भरा। उसमे रजोगुण का यह पुट राजस अहंकार की मात्रा से आया। तामस अहंकार की मात्रा तमोगुण ने मिलकर उत्पन्न किया उसके मण्डल को। इनका परिणाम हुआ शिश्न और मूत्र विसर्जन, और वीर्य विसर्जन मे। मूत्र तो शरीर के रस का निकृष्ट-तम भाग और वीर्य शरीर का भोज्य को सर्वोत्तम भाग। यदि शिश्नेन्द्रिय सरल स्वाभाविक रूप मे चलाई जाती रहे तो महा उपयोगी, शरीर मे मूत्र को बाहर निकाल उसे स्वस्थ बनाये रखती है, और अष्ट मैथुनो मे से किसी का भी कुसंग इसे स्पर्श कर गया तो शरीर के सर्वस्व वीर्य पर सीधा हमला कर बैठती है। ऐसा करारा घाव लगती है कि आयु भर उपचार किये जाओ ठीक ही होने मे नहीं आता, अतः आरम्भ से ही आठो प्रकार के मैथुनो से युवा मनुष्य, बचता रहे तभी कल्याण है। इस शिश्न को उसके स्वाभाविक धर्म-कर्म मूत्र त्याग मे लगा रहने दे। अप्राकृतिक अस्वाभाविक कामवासना को मन मे आने ही न दे जिससे यह शिश्नेन्द्रिय बिगडे बाघ की तरह हमला कर सदा के लिये घायल न कर सके।

पाठक ! आपने समझा समष्टि उपस्थेन्द्रिय मण्डल का परिणाम समष्टि तामस, राजस एव सत्त्वाहकारा की मात्राओ से हुआ है। उस समष्टि उपस्थेन्द्रिय मण्डल से व्यष्टि उपस्थेद्रिय का निर्माण हुआ है। जो चमकते नारञ्जी रग के छोट से तारे के रूप मे है। यही व्यष्टि उपस्थेन्द्रिय सूक्ष्म शरीर मे है, और सूक्ष्म शरीर के साथ ही स्थूल शरीर मे आयी है। समष्टि मण्डल म इसके दोनो धर्म प्रस्तुत होते हैं। सूक्ष्म शरीरो मे सूक्ष्म सी मात्रा म मूत्रत्याग धर्म का ही उपयोग होता है। प्रजनन सूक्ष्म शरीर मे नही है। जब यह सक्ष्म शरीर स्थूल मे प्रवेश करते हैं, वहाँ दोनो धर्म जागरूक हो उठते है मूत्र त्याग और वीर्य विसर्ग भी अधिक मात्रा मे होते है। ब्रह्मचर्य का पालन इस वीर्य निसर्ग को रोक सकता है और रोकना चाहिये। इन दोनो धर्मो को क्रियान्वित करने के लिये स्थूल शरीर मे ये लिङ्ग और योनि के रूप मे मार्ग रखे गये है। ये दोनो वास्तव मे मार्ग है, स्थूल मासपिण्ड शरीर के भाग है। यह इन्द्रियाँ नही है। इन्हे तो गौणरूप से इन्द्रियाँ कह दिया जाता है। कहने मात्र से इन मास पेशियो या मास के लोथडा को इन्द्रियाँ नही समझ लेना चाहिये। यह व्यष्टि इन्द्रियाँ प्रत्येक प्राणी के शरीर मे हैं और समष्टि उपस्थेद्रिय मण्डल जिससे यह उत्पन्न हुई हैं आकाश मे व्याप्त चमकदार १२वा स्तर है। रज अहकार समष्टि उपस्थेन्द्रि का सूक्ष्म रूप है और समष्टि उपस्थेन्द्रिय व्यष्टि उपस्थेन्दिय का सूक्ष्म रूप है।

इन तीनो समष्टि अहकारो का जब परिमित मात्राओ के सयोग से समष्टि उपस्थेद्रिय मण्डल मे परिणाम होता और इससे व्यष्टियो का उत्पादन है, तो वह भी एक विस्मय कारक दृश्य होता है। उस काल मे ब्राह्मी चेतन सत्ता सघात की प्रेरिका होती है। क्योकि जड पदार्थो को अपनी परिमित मात्रा का ज्ञान कैसे हो सकता है। परिमित काल म परिमित दिशा मे ब्रह्म का नियोजन समष्टि उपस्थ मण्डल को परिणत कर देता है और इससे व्यष्टि को इस भेदानुगत व्यष्टि समष्टि मण्डल मे ब्रह्मानुभूति करनी चाहिये। क्योकि कोई भी पदार्थ उसकी व्यापकता से खाली नही। पर साधक वृन्द यदि गुरुकृपा, या उनके निर्देशानुसार अपने अध्यवसाय से ब्रह्म दर्शन कर भी लिये तो बिना पर वैराग्य निष्ठा के यह स्थायी नही हागे, न मोक्ष तक ले जा सकगे। अत वैराग्य के रग को परिपक्व करते चलिये। तभी आपकी साधना सार्थक होगी।

समष्टि उपस्थेन्द्रिय मण्डल

चतुर्थ रूप मे ब्रह्म विज्ञान

(उपस्थेद्रिय का चतुर्थ रूप)

४ समष्टि उपस्थेन्द्रिय के अ चय रूप मे—

समष्टि उपस्थेद्रिय ा स्तर भी उत्पन्न हुआ है परिणत हुआ है। सदा से इसी रूप मे नही है। प्रलय काल मे यह नही रहता। अब भी घटता बढता रहता है। जब व्यष्टि उपस्थ बनत है यह कम हो जाता है। यह योगी निर्माण शरीरो के लिये उपस्थो का आहरण करता है तो कम हो जाता है। जब मुक्तात्माअ योगियो के निमाण शरीरो के चित्त लौटते हैं तो यह बढ जाता है। यह परिणामी है अत उत्पन्न हुआ है। यह स्तर भी परम्परा से मल प्रकृति का ही परिणाम है। मूल प्रकृति अपने स्थिति कम और ज्ञान

तथा क्रिया गुणों के साथ अनुपतित हुई है। प्रकृति सर्वप्रथम महत्तत्त्व महद्रज और महत्तम मे परिणत हुई उनमें वे महत्तम समष्टि सत्त्वाहंकार समष्टि राजसाहंकार और समष्टि तामस अहंकार में परिणत हुआ। उन तीनों से समष्टि उपस्थेन्द्रिय का मण्डल परिणाम भाव को प्राप्त हुआ और इससे व्यष्टि उपस्थ। प्रकृति के क्रिया और ज्ञान इनमें मुख्य रहे, और वे मूत्र त्याग और वीर्य विसर्जन में परिणत हो गये। समष्टि उपस्थेन्द्रिय मण्डल में यह दोनो धर्म अव्यक्त हैं। पर है अवश्य। इनकी अभिव्यक्ति सूक्ष्म रूप से सूक्ष्म शरीर मे और स्पष्ट रूप से स्थूल शरीर में होगी।

इस सबका अभिप्राय यही है कि कारण रूपा प्रकृति, भोगात्मक कार्यरूपा प्रकृति के रूप मे परिणाम भाव को प्राप्त होती हुई समष्टि व्यष्टि उपस्थेन्द्रिय मण्डल में अपने धर्मो और गुणों सहित अनुपतित हुई है। इस अनुपतन में ही योगी को ब्रह्मानुभूति करनी चाहिये, क्योकि वह अनन्त है और है सर्वव्यापक। उपस्थ के स्तर में यह ब्रह्मानुभूति तब ही स्थिर होगी जब आप इस तत्वज्ञान के परिणाम पर वैराग्य को दृढ़ कर इतने दृढ हो जायेंगे कि व्यष्टि उपस्थ के चक्कर में न पड़ जायेंगे। भगवान् शंकर की तरह पूर्ण काम विजयी होगे। और काम आपके सामने आते ही अनंग हो जायगा। उसकी कुछ न चलेगी।

समष्टि उपस्थेन्द्रिय मण्डल

पञ्चम रूप में ब्रह्म-विज्ञान

(उपस्थेन्द्रिय का पञ्चम रूप)

५. समष्टि उपस्थेन्द्रिय के अर्थवत्व रूप में—

समष्टि उपस्थेन्द्रिय स्तर की अर्थवत्ता या सार्थकता इसी में है कि ब्रह्माण्ड भर के जीवो के सूक्ष्म शरीरों की रचना मे यह काम मे आती है। उन्ही से फिर स्वर्गस्थ सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीरस्थ सूक्ष्म शरीरो मे विभाजन होता है। योगी भी जब अपनी योगशक्ति से नये शरीरो का निर्माण करता है तो इसी स्तर से उन शरीरों के लिये उपस्थ लेता है। जब जीव मुक्त हो जाते है तो उनके सूक्ष्म शरीरों के उपस्थ भी इसी स्तर मे सम्मिलित हो जाते है। यह स्तर अपनी परिधि मे समस्त आकाश मण्डल में फैला हुआ है, इसीलिये आकाशवर्ती समस्त लोक लोकान्तरो में सब परिस्थितियों मे शरीर निर्माण हो जाता है। योगी का सामर्थ्य कही भी अवरुद्ध नही होता। मरण समय में यदि कोई क्षति या न्यूनता सूक्ष्म शरीरो मे आ जाती है तो इन्ही स्तरो मे से जाते हुए वह पूर्ण हो जाती है। मनुष्य की कल्पना भी जहाँ नही पहुँच पाती वहाँ भी यह स्तर विद्यमान हैं, और लोक लोकान्तरों मे आवान्तर प्रलय होने पर इन स्तरो के आधार पर ही सृष्टि निर्माण और शरीर निर्माण चल रहा है।

इस उपस्थ के स्तर में भी जो मूत्र-त्याग और वीर्य विसर्जन धर्म विद्यमान है उनकी अर्थवत्ता प्राणियो की व्यष्टिगत उपस्थेन्द्रियों से प्रकट होगी। यदि किसी भी योनि मे उपस्थ न होता तो उस शरीर का सार हीन अनुपयोगी तरल तत्त्व वैसे बाहर

निकलता। कैसे वह शरीर जीवित रहता। कैसे कर्म करता। कैसे भोग-योनि या कर्म योनि सार्थक होती है। मोक्षैक मार्ग मनुष्य योनि के लिये वीर्योत्सर्ग गौण धर्म होते हुए भी अन्य भोग योनियो के लिये मुख्य ही धर्म है। यदि उनमे उपस्थ प्रजनन न करता शुभाशुभ कर्मो के भोग की व्यवस्था ही समाप्त हो जाती। यदि यह कर्म योनियाँ समाप्त हो जाय तो मानवजीवन मे पडी हुई आदत या इन्द्रियो का दुरुपयोग स्वभाव कहाँ ठीक होता। वह इन की योनिया मे आकर सुधरता है। मनुष्य जिस अग का अम दुपयोग करता है, उसके वे सस्कार दृढ हो जाते है, उन सस्कारो के अवरोध के लिये उसे ऐसी यानि मे जाना पडता है जहाँ वे सस्कार पनप न सकें, उस इन्द्रिय का वहाँ उपयोग नही होता। यदि इन भोग योनियो मे उपस्थ का प्रजनन धर्म न होता तो भोग योनियाँ समाप्त ही हो जाती। यह दूसरी बात है कि प्रकृति के प्रकोप या मानव की उच्छृखलवृत्ति से कुछ योनियो का लोप कभी कभी होता रहता है। जैसे अभी वत्तमान मे अधिक शिकार खेलने से सिंह की नसल ही समाप्त हो चली थी। तब सरकार को वन्य सरक्षण के आधीन सिंह का शिकार वर्जित करना पडा। श्वेतसिंह भी अब केवल चिडिया घरो या पञ्जरो मे ही सुरक्षित है। इस प्रकार भोग योनि की स्थिति के लिये उपस्थ का प्रजनन धर्म अनिवार्य है इसी लिये प्रजनन का नाम शास्त्रकारो ने पशु धर्म रखा है। प्रतीत होता है यह पशुओ का ही धर्म है मानव का नही।

यह इन्द्रिय भोग और अपवर्ग मे सहायक है। इसके द्वारा ही जीवात्मा मानव देह धारण कर पाती है, जो कि मोक्ष का एक मात्र साधन है। सन्तानोत्पादन के लिये, कामवासना के लिये नही, किया हुआ वीर्य दान भी इसी लिये धर्म माना गया है, कि इसके द्वारा किसी जीव को मनुष्य देह मिल सकेगा, और वह और मोक्ष की तैय्यारी करेगा। पर यदि किसी के दान किये हुऐ सद्भावनामय वीर्य से उत्पन्न हो कर भी मानव भोग विलास और काम तृप्ति मे पड जाता है तो उस से बढ कर अभागा नही। वीर्य दान देने वाले का तो महाविनाश किया और अपना कुछ बनाया नही। क्षुद्र योनिया के जीव भी इसी उपस्थ की कृपा से मानव देह प्राप्त कर जीवन सफल बनाने का अवसर प्राप्त करते है।

पर प्राय प्राणी इसका उपयोग अवर्ग और मोक्ष के लिये न कर इस इन्द्रिय का दास बन भोग विलास मे फस जाते हैं। माना यही एक भोग उनके लिये मुख्य है शेष गौण है। अन्य इन्द्रिया के भोग भी इसी के अग से बन जाते है। श्रोत्र जिस से भगवद्भक्ति, या सदाचार देश भक्ति आदि के गान सुनने चाहियें थे, वह भी कामोत्तजक कामवासना मे भरे गाने मे प्रवृत्त हो मानो इसे ही रिझाने और भडकाने का ठेका ले बैठी है। आँख भी उसी प्रकार के कामुक वेश भूषा को पसन्द करती हे, जिस से इसकी तृप्ति हो। इसी प्रकार के खेल-तमाशे और सिनेमा देखती है, जिनसे इसको ही प्रोत्साहन मिले। नासिका भी इसी प्रकार की अप्राकृतिक गन्ध पसन्द करती है जिस से इसको बढावा मिले। रसना भी ऐसे ही स्वाद चखती है जिस से यह उत्तेजित हो हर्षित हो। स्पर्श भी इसी प्रकार के स्पर्श का सग्रह करता है, जिस से इसका लालन हो। पैर भी वहो जाते है। जिसमे इसकी प्रसन्नता हो और स्वच्छन्द विहार हो। हाथ भी उन्ही वस्तुओ को पकडते है जिसमे इसका प्रसाद मिले। इसके सम्पर्क मे आते

ही संसार पलट जाता है। शान्त अशान्त हो जाता है। गंभीर चंचल हो उठता है। अमृत विष बन जाता है। इसका नशा ऐसा चढ़ता है कि अन्य नशों को मातकर देता है। यह मोक्ष से हटा नरक में डाल देता है। न जाने कितना पीछे धकेल देता है। मनुष्य इसकी तृप्ति करने के लिये राज्य को देश को परिवार घर को छोड़ कर चल देता है।

पर यदि मानव की बुद्धि विचलित होने से रुक जावे, और मननशील मानव को विवेक पूर्वक उसे रोकना ही चाहिये —तब तो इस पर विजय प्राप्त कर लेने पर सारी ही इन्द्रियाँ अपने आप वश में होती चली आती हैं। मानव वास्तव में पूर्ण रूपेण स्वर्ग तथा मोक्ष का अधिकारी बन जाता है। किसी कवि ने कहा है, 'तेषु तास्वप्यनासक्त, साक्षान्नरो भर्गाकृति' कामिनी और कनक में जो नहीं फंसा वह साक्षात् महादेव है। कामवासना रहित व्यक्ति संसार के अनेकानेक बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

संसार के मूर्ख जीव वीर्य के पतन में सुख का अनुभव करते हैं, इसके खोने के अनेक साधन या उपाय इकट्ठे करते हैं। इसके विनाश का विवाह बहुत अच्छा साधन माना जाता है। मानो वीर्य-विनाश का पासपोर्ट मिल गया है। पर यह सब मूर्खता है, भोलापन है। नादानी है और है भयंकर बेवकूफी। मानव को जान बूझ कर अन्धा नहीं बनना चाहिये। जानते पहचानते विष नहीं खाना चाहिये, गरल नहीं पीना चाहिये। संसार का इस भावना ने आज सत्यानाश कर दिया है।

यदि इस अमूल्य रत्न की रक्षा की जाये, इसको भगवान् के निमित्त धरोहर समझ कर सुरक्षित रखा जाये तो इस से मिलने वाले आनन्द का व्याख्यान नहीं हो सकता। यह लोक भी सुख और आनन्द से भरपूर और स्वर्ग और मोक्ष भी सामने उपस्थित। ऐसी अनोखी दुधारी तलवार है यह उपस्थ। अत योगि प्रवर! सावधान हो जाँच कर ऐसा हाथ मारो कि यह कामवासना की विषवल्लरी सदा के लिये उच्छिन्न हो जाये, और इस उपस्थ के वास्तविक मुख्य धर्म मूत्र त्याग का आप यथोचित प्रयोग कर सकें। अपनी समाधि द्वारा समष्टि व्यष्टि उपस्थस्तर के इस मुख्य धर्म का साक्षात् कर सकें।

उपस्थ का मुख्य धर्म ?

(शंका) काम-भोग और सन्तानोत्पत्ति स्वाभाविक है, जैसे हाथ पैर मुख आदि इन्द्रियाँ अपने अपने कर्म करती हैं। आँख देखती है, कान सुनते हैं, इत्यादि सब कर्म स्वाभाविक ही हैं। इनका निरोध कैसे हो सकता है। इसी प्रकार उपस्थ का भी स्वाभाविक कर्म प्रजनन ही है, पशु पक्षी आदि को कौन सिखाता है, बिना सीखे ही बच्चे पैदा करने लगते हैं।

(समाधान) हाथ से दूसरों की हिंसा, प्राण वियोग और चोरी आदि निन्दित कर्म भी किये जा सकते हैं। और इन्हीं हाथों से दीन, दुःखी, अनाथ, पीड़ित, रोगी आदि की सेवा और रक्षा का कार्य भी किया जा सकता है। पैर से भी इसी प्रकार चोरी, हिंसा, ताड़न आदि का कार्य भी हो सकता है, और चल कर दूसरों की रक्षा और श्रेष्ठ कर्म भी किये जा सकते हैं। मुख में अच्छे सात्विक पदार्थ भी खाये जा सकते हैं, और बुरे मांस मछली, अण्डे, प्याज आदि भी। आँख महापुरुषों के दर्शन करा अच्छी

भावना भी पैदा कर सकती है। और किसी रूपवती सुन्दरी या सुन्दर पुरुष को देख कर उसके प्रति काम जन्य बुरी भावना भी पैदा कर सकती है। कान अच्छे कल्याणकारी हितकर वचनो को भी सुन सकते हैं, और निन्दा, चुगली, गाली, कुमार्ग प्रवर्तक वचनों को भी सुन सकते है। हम चाहे तो इन इन्द्रियों से कैसा भी कोई कर्म न करें। आँख से देखना बन्द कर सकते है। कान से सुनना बन्द कर सकते है। हाथ से पकड़ना, और पैर से चलना छोड़ सकते है।इसी प्रकार मैथुन कर्म को भी जीवन मे सदा के लिये छोड सकते है। बन्द कर सकते है। यदि यह मैथुन उपस्थ का मुख्य कर्म होता तो हमारी इच्छा के विरुद्ध भी होता रहता। यदि उपस्थ का मुख्य और अनिवार्य कर्म मानना है तब तो मूत्रत्याग करना ही मुख्य और अनिवार्य कर्म है। यदि गुदा का मुख्य कर्म ले तो मल त्याग का कार्य करना ही मुख्य है, क्योंकि नित्य खाते भी है और पीते भी हैं। अतः इनका मल-मूत्र बनना ही हुआ। अन्न जलादि उदर मे जाते ही है, पाक होकर शरीर के पोपरण-योग्य अश को छोडकर, शेष मल-मूत्र के रूप मे बाहर निकल आता है। यह आवागमन बना ही रहता है। पूर्ण बाल ब्रह्मचारी अष्ट प्रकार के मैथुनों का परित्याग कर आजीवन ब्रह्मचारी रह सकता है। कितने ही रह चुके है, और आज भी रह रहे है, अत. उपस्थ का मुख्य धर्म काम-भोग नही है। मुख्य धर्म तो मूत्रत्याग ही है, जिसे किसी भी अवस्था मे नही छोड़ा जा सकता मूत्र बन्द न योगी कर सकता है, न भोगी। यदि वीर्य-विसर्जन ही मुख्य और अनिवार्य धर्म होता तो संसार में कभी कोई जितेन्द्रिय न बन सकता और न उन्हे मोक्ष ही हो सकता। रही पशु-पक्षी की बात यह भी संसर्ग से प्रवृत्त होते है। और फिर यह है ११ भोग-योनि के। इनके लिये ब्रह्मचर्य धर्म लागू नही होता है। क्योंकि ज्ञान का अभ.व है। मनुष्य में तो ज्ञान है, अतः यह इन्द्रियों पर विजय पा सकता है।

(शका) गीता में कहा है 'प्रकृति यान्ति भूतानि, निग्रह. किं करिष्यति'। इन्द्रियो के स्वाभाविक धर्मो को रोका नही जा सकता है। अतः इनका निरोध करना बेकार है?

(समाधान) आँखों ने जरूर देखना है, परन्तु वह वस्तु का देखना भी अच्छी पवित्र और धार्मिक भावना से होना चाहिये। कान ने अवश्य सुनना है पर उसे भी अच्छे उपदेश और सत्सग की अच्छी बातें सुननी चाहियें। हाथों ने हिलना है पैरों ने चलना है, पर इन्हे भी अच्छे कार्यो के लिये हिलाना चाहिये। गुदा और उपस्थ ने मल मूत्र का त्याग करना है, अतः स्वाभाविक है। परन्तु दुराचारी दोनों इन्द्रियों का मैथुन के रूप मे प्रयोग करते हैं जो अस्वाभाविक है।

यदि मुख्य और अनिवार्य काम भोग को मान लिया जाये, तब तो स्वर्ग मे इसकी पूर्ति के लिये भी देवाङ्गनाओं की आवश्यकता होगी। स्वर्ग में काम भोग का जीवन बन जाने से इस लोक मे और स्वर्ग-लोक मे अन्तर ही क्या रहा? अतः काम भोग उपस्थ का मुख्य और अनिवार्य गुण नही है। हा वीर्य का स्वाभाविक धर्म सन्तति जनन अवश्य है। जो मनुष्य ब्रह्मचर्य का ठीक पालन नहीं कर सकते, जितेन्द्रिय नही बन सकते है, वे इसके द्वारा अच्छी श्रेष्ठ सन्तान पैदा कर के संसार की परम्परा को बनाये रख सकते हैं। आगे चला सकते है।

इस अर्थवत्ता-रूप मे भी ब्रह्म का अनुभव होना चाहिये। मोक्ष के जिज्ञासुओं को इन्द्रियों के आसक्ति पूर्ण भोगात्मक कर्मों को त्याग कर, पूर्ण वैराग्य धारण कर, जितेन्द्रिय हो आत्म-ज्ञान और ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त करना चाहिये।

इति समष्टि उपस्थेन्द्रिय मण्डलम्।

इति द्वितीयाध्याये सप्तमः खण्ड.।

इति द्वाविंशमावरणम्

अष्टम खण्ड

२१ वां अवरण

समष्टि राजस् अहंकारिक पादेन्द्रिय मण्डल

पांचो रूपो मे ब्रह्मानुभूति

अहकार से परिणत समष्टि पादेन्द्रिय का मण्डल समष्टि उपस्थेन्द्रिय मण्डल के ऊपर अवस्थित है।

आप के और ब्रह्म के बीच यह तेरहवा परदा है। बारह तो आप पार कर आये। ग्यारवहा कठिनतम था, वैराग्य की तीक्ष्ण धार से आप ने उसे भी विदीर्ण कर ही दिया। इसमे सात्विकता अधिक है, इसे आप सरलता से पार कर सकेंगे। इस मण्डल मे सूक्ष्म रूप मे 'गमनागमन' गति रूप धर्म निहित है। 'गमनागमन' धर्म का इस मण्डन मे भान नही होना। इस धर्म की प्रतीति कार्य-काल अर्थात् सूक्ष्म शरीरो की रचना होने पर होगी। अभी तो सूक्ष्म-शरीर की सामग्री एकत्र की जा रही है। इस सग्रह-काल मे भी यह 'गमनागमन' इसमे निहित है। इस धर्म का प्रत्यक्ष इस स्थिति मे योगज दिव्य-नेत्र से हो सकता है।

यह समष्टि पादेन्द्रिय मण्डल भी सृष्टि काल मे आकाश मण्डल मे ही वर्तमान रहता है। सूक्ष्म-शरीरो की व्यष्टि पाद इन्द्रिया इसी समष्टि मण्डल से परिणत होती है। मुक्ति से लौटी आत्माओ के पुन शरीर धारण पर इसी पाद मण्ड पादेन्द्रिय लेकर शरीर रचना होती है।

ब्रह्म की व्यापक-सन्निधानता से चेतन सी बनी प्रकृति अपना रचना चक्र घुमाये चलती है। समष्टि पादेन्द्रिय भी इसी चक्र का एक अरा है। आगे उन्ही पाचो रूपो का अवलोकन कीजिये। उनमे ओत-प्रोत ब्रह्म का भी साक्षात् दर्शन कीजिये।

समष्टि पादेन्द्रिय मण्डल

प्रथम रूप में ब्रह्म-विज्ञान

(पादेन्द्रिय का प्रथम रूप)

१ समष्टि पादेन्द्रिय के स्थूल रूप में—

समष्टि पादेन्द्रिय अहंकारिक सृष्टि की नवमी और समष्टि राजस अहकार का तीसरा परिणाम है। ब्रह्म और जीव के बीच यह २१ वां परदा है। हम स्थूल से सूक्ष्म की ओर आ रहे हैं। रचना तो सूक्ष्म मे स्थूल की ओर चलती है।

समष्टि पादेन्द्रिय मण्डल मे एक ही धर्म निहित है। १. गमनागमन। सूक्ष्म शरीर रचना पूर्ण होने तक यह 'गमनागमन' धर्म व्यक्त नही होगा। पर यह धर्म समष्टि पादमण्डल मे है तभी तो सूक्ष्म शरीर की सूक्ष्म पादेन्द्रिय मे व्यष्टि रूप मे व्यक्त होगा।

समष्टि पादेन्द्रिय मण्डल के 'गमनागमन' धर्म को समझने के लिये व्यष्टि पादेन्द्रिय मे ही इस धर्म के परिणामो को समझना होगा। व्यष्टि पादेन्द्रिय गमनागमन का

कार्य करती है। पर वास्तव मे जो सूक्ष्म पादेन्द्रिय 'गमनागमन' रूप धर्म से युक्त है, उसका गमनागमन साधारण अवस्था मे ज्ञात नहीं होता। उसको तो योगी ही ध्यानस्थ हो सूक्ष्म शरीर का साक्षात्कार कर साक्षात् कर सकता है। साधारणतया पादो मे जो गमनागमन प्रतीत होता है या समझा जाता है, वह उस सूक्ष्म पादेन्द्रिय के निमित्त से होता है। यह पैर तो उसके कार्यवाहक यन्त्र हैं। इस लिये इन्हे स्थूल पादेन्द्रिय कह कर पुकारा जाता है।

यद्यपि पैर दो है, पर सूक्ष्म शरीरस्थ पादेन्द्रिय एक ही है, और वह सब योनियो के शरीरो मे एक ही है। परन्तु योनियो के शरीरो की पाद सख्या भिन्न है। मनुष्य के दो पैर हैं। पशुओं के चार पैर हैं। षट् पद के ६ पैर है। मकडी के आठ पैर होते हैं। कनखजूरे के सैङ्कडो। और इसी प्रकार कान सलाई के अनगिनत। सबके पैरो की सख्या भिन्न २ होते हुए सब की एक ही और एक सी पादेन्द्रिय है। यदि पैरो की सख्या के अनुसार सूक्ष्म पादेन्द्रिय की सख्या मानी जाये तो व्यवहार नही हो सकेगा। अनेक सूक्ष्म इन्द्रिया, अपने- अपने पैर को चलने का आदेश देंगी। भिन्न भिन्न होने से यथा रुचि भिन्न २ दिशाओं मे ही चलने का आदेश देंगी। यदि ऐसा हो तो प्राणी एक भी पग आगे न धर सकेगा। यदि मन को नियामक मान भी लिया जाये, तो वह तो एक काल मे एक से ही कार्य करायेगा। एक क्षण मे एक ही पैर उठा और रुका रहा तब भी गति असम्भव हो जायेगी। अत एक ही सूक्ष्म पादेन्द्रिय सब पैरो से काम कराती है तभी ताल मेल बैठता है। तब ही सब पैर ठीक २ एक दूसरे की गति से गति मिला कर चलते हैं।

पैर का गमनागमन वास्तव मे केवल गति ही है। शरीर से स्थान की अपेक्षा दूसरी दिशा मे गति हो गयी गमन हो गया। उसी स्थान की ओर गति हो गयी, आगमन हो गया। गमन और आगमन का अर्थ केवल गति या क्रिया है। गति किसकी ओर हो रही है यह तो 'आ' उपसर्ग से व्यक्त किया जा रहा है। गम्लृ धातु 'गतौ' केवल गति अर्थ को ही कहती है। और उपसर्ग भी धातु के अर्थ अर्थात् धातु मे जो अर्थ निहित है, उसे ही व्यक्त करते हैं। उसी के द्योतक होते है। अपना उनका कोई अर्थ नही होता। अत आगमन का अर्थ भी गति ही है अन्य कोई भिन्न अर्थ नही है। भोजन तो भोजन ही रहता है, चाहे किसी के हाथ मे जाये। किसी का हाथ लगने से भोजनत्व मे अन्तर नही आता।

(शका) चलना तो हाथो से भी होता है, अभ्यासी व्यक्ति कितनी दूर तक मार चाल चल लेता है। यहाँ तक कि पैरेलल बार पर भी हाथो से चलता है। सिंगल बार पर भी हाथो से चलता है। फिर चलना धर्म पैरो का ही कैसे हुआ ?

(समाधान) गति करना, शरीर को इधर से उधर ले जाना तो पैरो ही का काम है। जब किसी यात्रा मे जाते हैं, लम्बी यात्रा होती है। पैर थक जाते है। हम भी थक कर बैठ जाते हैं, क्या ऐसे अवसरो पर कभी आपने इन चल सकने वाले हाथो से चलते देखा है। जब पैर थक जाते है, तो हाथ भी मोर चाल नही चल सकते। थके पैरो मे गति नही रही वे थक गये, जब उनमे गति नही तो अपनी गति को रोक दूसरे

को कैसे दे। अतः गति धर्म मुख्य रूप से पैरों का है। हाँ गति का अर्थ हिलना-डुलना लें, तो वह सारे ही शरीर मे, और शरीर के सब ही अगो मे है। पर यहाँ पैर के गमनागमन का अर्थ पैरो का स्वय जाना आना भी नही है, क्योकि शरीर से अलग होते ही यह शक्ति उनकी समाप्त हो जाती है, क्योकि ब्रह्मरन्ध्रस्थ सूक्ष्मादेन्द्रिय से उन का सम्बन्ध टूट गया। वही तो उनकी चालक थी। अब कौन चलावे। इसलिए पैरो के गमनागमन का अभिप्राय इस २-२।। मन की लाश को लिए फिरना है। भला है किसी श्रमजीवी मे इतना सामर्थ्य कि २।। मन के बोझे को २४ घन्टे उठाये फिरे। यह सूक्ष्म पादेन्द्रिय की ही सामर्थ्य है कि २४ घन्टे पैरो से शरीर को उठवाये रखती है। यह पैर चलने के लिए हर समय तत्पर रहते है। अन्धेरा हो, रात हो, उबड़-खाबड हो, काटे हो कैसी ही विषमता हो यह पैर स्वामी की आज्ञा मान हर समय चलने को तैय्यार। पहाडो मे यह पहाडी मनो बोझ सिर मे अटका कमर पर लाते है, मार्ग को छोटा करने के कारण कठिन से कठिन चढाई पर चढ जाते है, मार्ग मे सड़क से न चलकर, सीधी चढाई पर चलेगे, जहाँ बिना बोझ चढना कठिन है। वहाँ यह सहिष्णु पैर अपने मालिक को जवाब नही देंगे। खैंच-खाँचकर सब को उद्दिष्ट स्थान पर पहुँचा ही देते है।

पाठक यह न समझें, चलने वाले तो स्थूल पैर है, सूक्ष्मेन्द्रिय क्या कर सकती है। आपने कटे पैरो की दशा देखो बिना सूक्ष्मेन्द्रियो के छटपटाते है, और एक पग या इच भी नही चल सकते। पर सूक्ष्मेन्द्रिय पाद की गति अव्याहत होती है, बेरोक-टोक होती है, उसके मार्ग मे न समुद्र, न पहाड, न खाई, न खन्दक, न ऊँचाई, न नीचाई, न आग, न पानी बाधक हो सकते है। पहले समय मे प्राय और आजकल भी कभी-कभी हिन्दू देवियाँ जीते जी सती होती देखी गयी हैं। यह अग्नि केवल स्थूल शरीर को ही जलाता है, सूक्ष्म शरीर तो अक्षुण्ण बना रहता है। आग पानी हवा सबमे से अछूना निकल जाता है। उस समय भागने वाली यह सूक्ष्म पादेन्द्रिय होती है। यह सूक्ष्मेन्द्रिय पाद ही सूक्ष्म शरीरों को स्वल्प समय मे लाखो मील की दूरी के लोक-लोकान्तरो का भ्रमण करा देती हैं। स्वर्गस्थ जीव तो इसी सूक्ष्म पादेन्द्रिय के आश्रय यथेच्छ लोको मे गमन करते है। उनका सर्वत्र कामचार इसी सूक्ष्म पादेन्द्रिय के आधार पर है। योगी भी इसी सूक्ष्म पादेन्द्रिय के आधार पर है। योगी भी इसी सूक्ष्म पादेन्द्रिय के आधार पम सूर्य की किरणों पर आरोहण करता है। और अव्याहत गति हो सकता है। दौडना, चलना, कुदकना, फुदकना, दुलकी, रुहाल, रेंगना आदि सब पाद के ही कर्म है। यह सब गमनागमन या गति के ही विभिन्न रूप या परिणाम हैं। हैं सब पादेन्द्रिय के धर्म। जो समष्टि मे गति रूप से निहित हैं।

यह व्यष्टि पादेन्द्रिय मे 'गमनागमन' समष्टि पादेन्द्रिय से ही आया है। इस प्रकार का विचित्र शक्तिशाली गमनागमन समष्टि पादेन्द्रिय मण्डल मे निहित है। योगिन्! समाधि द्वारा आपने इसी का प्रत्यक्ष करना है। इस समष्टि पादेन्द्रिय के मण्डल मे जो गमन की शक्ति अन्तर्निहित है वह चेतन ब्रह्म के सम्बन्ध से ही परम्परागत रूप से आई हुई है। अतः इस गमनागमन अभिन्न धर्म मे ब्रह्म की अनुभूति होनी चाहिये। यदि ब्रह्मानुभूति को स्थायी और अचल बनाना है तो इस प्रकृति के सौंदर्य के अलोकनार्थ, या दुर्गम तीर्थों मे पुण्यार्जनार्थ, अथवा संसार के संघर्ष मे अर्थोपार्जनार्थ दौड़-धूप

से वैराग्य प्राप्त कीजिये। वैराग्य को ऐसा दृढ कीजिये कि अचल कूटस्थ भगवान् की स्थिर प्राप्ति के लिये आप भी अचल कूटस्थ हो जायें।

समष्टि पादेन्द्रिय मण्डल

द्वितीय रूप में ब्रह्म-विज्ञान

(पादेन्द्रिय का द्वितीय रूप)

२. समष्टि पादेन्द्रिय के स्वरूप में—

'गमनागमन' धर्म समष्टि पादेन्द्रिय मण्डल में सदा अव्यक्त रूप से विद्यमान रहता है। यह 'गमनागमन' इस समष्टि मण्डल से कभी अलग नही होता। यह गमनागमन व्यष्टि समष्टि पादेन्द्रिय मण्डल का स्वरूप है। इसको धर्म-धर्मी भाव सम्बन्ध भी कहते है। यह गमनागमन गुण है और मण्डल गुणी है। गुण गुणी अलग-अलग दो पदार्थ नही होते। यह इनका स्वरूप सम्बन्ध है। जब नाश होगा दोनो का ही होगा एक का नही।

(शका) आपने पहले प्रकरण मे बताया कि समष्टि इन्द्रिय मण्डल का परिणाम ही व्यष्टि इन्द्रियाँ हैं समष्टि इन्द्रिय मण्डल सबका एक है, और सूक्ष्म इन्द्रियाँ सब की समान हैं, तो फिर स्थूल पाद इन्द्रिय के स्वरूप मे आकृति मे भेद क्यो ?

(समाधान) जैसे सब प्राणियो की आत्मा और सूक्ष्म शरीर समान होते हुए भी कर्म भोग के अनुसार योनियाँ भिन्न-भिन्न हैं। उनके शरीर की आकृतियाँ भिन्न हैं, इसी प्रकार सूक्ष्म इन्द्रियाँ सब की समान होते हुए भी स्थूल इन्द्रियाँ भिन्न-भिन्न प्रकार की हैं। आदमी, ऊँट, हाथी, कुत्ता, बिल्ली, चूहा, सिंह, कृमि, कीट पतग आदि सब ही योनियो के पैर भिन्न-भिन्न शकल के हैं क्योकि ये योनियाँ भिन्न-भिन्न प्रदेशो मे भिन्न-भिन्न वातावरण मे उत्पन्न होती हैं। उस देश एव वातावरण के अनुकूल शरीर और पाद आदि इन्द्रिय बने हैं। ऊँट के पैर वक्र, लम्बे, विचित्र टेढे-मेढे होते हैं। वे रेतीले रेगिस्थान का जहाज है। उसके पैर की गद्दी रेत मे नही धसती। बैठता भी है तो फैलकर, जिससे रेत मे न धसे। डील-डौल भी इतना बडा है कि सहसा कोई रेत का टीला उडकर आ भी जाये, तो उसे न दबा सकेगा। वह दो-चार पैर मारकर उससे निकल जायेगा। इन सब परिस्थितियो के लिए भगवान् के सन्निधान से प्रकृति ने उसको ऐसे पैर दिये। यदि यही ऊँट पहाड़ पर ले जाया जाये तो बिल्कुल नही चढ सकता। भेड-बकरी छोटी-छोटी फटाफट बिना किसी असुविधा के यूँ ही चढ जाती हैं। इनके पैर छोटे-छोटे होते है। इसी प्रकार विभिन्न स्थान-स्थान के उपयोग के अनुपात से मनुष्यों, जीव-जन्तुओ के शरीर और अग बनाये गये हैं। सूक्ष्मेन्द्रियाँ सब की समान हैं, जो इनसे काम लेने वाली हैं, उन पर देश, स्थान का कोई प्रभाव नही पडता। वे तो अव्याहत गति हैं।

गमनागमन धर्म है, चाहे व्यष्टिगत उसका स्वरूप चलना, फिरना, दौडना, उछलना, छलाँग लगाना, कुदकना, फुदकना कोई भी क्यो न हो है वह धर्म। समष्टि व्यष्टि पादेन्द्रिय मण्डल धर्मी, गमन धर्म है। धर्म धर्मी की अभिन्नता है। इस अभिन्नता के साथ ही इस व्यष्टि समष्टि मण्डल का आपको दर्शन करना है। सयम-समाधि की स्थिति मे इसका भी दर्शन कीजिये और जिसकी सन्निधि से यह सब कार्य-कलाप हो रहा है, उसका

भी साक्षात्कार कीजिये। यदि चिरकाल तक इस अपूर्व दर्शन का आनन्द उठाना चाहते है, प्रकृति नटी की वास्तविकता को हृदयगम कीजिये, और इसमे अविवेक—जात राग को समाप्त कीजिये और वैराग्य द्वारा स्वस्पस्थ हो ब्रह्मदशन को चिरस्थिर बनाइये।

समष्टि पादेन्द्रिय मण्डल
तृतीय रूप मे ब्रह्म-विज्ञान
(पादेन्द्रिय का तृतीय रूप)

३ समष्टि पादेन्द्रिय मण्डल के सूक्ष्म रूप मे—

सब कर्मेन्द्रियो के समष्टि मण्डल राजस प्रधान समष्टि अहकारो के कार्यात्मक परिणाम है। समष्टि पादेन्द्रिय मण्डल भी समष्टि राजस अहकार का परिणाम है। इस समष्टि राजस अहकार के समष्टि सात्त्विक और तामस अहकार सहायक होते है। समष्टि तीना अहकार और समष्टि पादेन्द्रिय का जो समुदाय समष्टि पादेन्द्रिय मण्डल बना है यही अयुतसिद्ध द्रव्य है। अथवा राजस प्रधान तीनो अहकार सामान्य और समष्टि पादेन्द्रिय मण्डल विशेप का समुदाय अथवा समष्टि पादन्द्रय व्यष्टि का समुदाय ही यहा अयुत सिद्ध द्रव्य है। इनका यह पारस्परिक भेद से अनुगत अभेदरूप समुदाय है। रज प्रधान तीना समष्टि अहकार कारण और समष्टि पादेन्द्रि मण्डण काय है। यही इस मण्डल का सूक्ष्म रुप है। अथवा समष्टि पादेन्द्रिय व्यष्टि इन्द्रिय का सूक्ष्म रूप है यहाँ कार्य के प्रति कारण म ही सूक्ष्मरूपता हे।

यहाँ समष्टि पादेन्द्रिय मण्डल एक द्रव्य है जो तीनो अहकारा से भिन्न होते हुए भी अभिन्नता को प्राप्त हुआ है। इस मण्डल के कारण भूत तीनो अहकारो का सम्मिश्रण निम्न अनुपात से हुआ है। समष्टि राजस अहकार १८ अश+समष्टि सात्विक अहकार ४ अश+समष्टि तामस अहकार ०८ अश तीना का सम्मिश्रण जोड पूण ३० है। यह इस समष्टि पादन्दिय मण्डल का नयीकरण हे। इस मन्डल मे शिश्न की अपेक्षा सात्विक अश दुगुणा है। शिश्न मण्डल मे इसकी अपेक्षा सात्त्विकता आधी है। शिश्न मे मूत्र आदि दूसरे के प्रेरक होने पर चेतना जागती है। पर पादेन्द्रिय सदा जागरुक रहती है। कैसा ही अन्धेरा हो, किसी सत्सग मे एक ही साइज के जूते एकत्र हो, पैर म जूता पडते ही बुद्धि द्वारा पादेन्द्रिय तत्काल पहचान लेती है, यह मेरा पाद रक्षक है। गुदा और शिश्न पर सामुद्रिक लक्षण नही होते, पर पादतल मे सात्विकता की अधिकता के कारण अनेक सामुद्रिक लक्षण होते है। सीधी ऊर्ध्व रेखा सम्राट् होने या भाग्य शीलता का चिन्ह है। नदी पर स्नानार्थ गये। बरफ सा शरीर का काटने वाला जल कैसे स्नान होगा। हाथ शीत से बचने के लिये वस्त्र जो अपने ऊपर लपेट है। अछून सजातीय पाद सेवार्थ आगे बढा। जल की शीतता प्रापत्ति अपने पन्जों पर ली, पानी मे घुस ही तो गया। सूचना दी—अरे क्या डरते हो। जल ठडा है, पर इतना नही कि प्रवेश न किया जा सके। आओ हिम्मत करो। वस्त्रो को किनारे रखो। आओ स्नान कर। बस शरीर की हिम्मत बँधी और स्नान करने लगा। नदी मे जल कितना है। आग बढ़े तो यही डूब न जाय। लकडी या डण्डा पास मे नहीं कैसे थाह ले। पाद के सात्त्विक

भाग ने साहस किया पग आगे बढ़ा । शनै. शनै दो दो तीन इन्च नापता चला । फुटो आगे बढ गया । छाती तक जल मे पहुँच गया यह पाद का सात्विक अश न जाने कहाँ कहाँ कठिनाई मे काम आता है । यह सब कर्म पाद मे बुद्धि की सहायता से होता है । परन्तु करता यही है ।

इस पाद मे राजस सिद्धान्त मे '१ अश अधिक है। पाद कभी उतावला नही होना। चढाई चढनी है, तो पैर गभीरता से, सारे शरीर का बोझा सतुलित किये, पहले पग का जमाये अगले पैर के लिये स्थान उसी मे खोज उसको वहाँ जमा पिछले पैर को आगे लाता है । गिरने नही देना । देखो आप ने पादेन्द्रिय की रजो गुण नियन्त्रिता । यदि कभी उपद्रव हो जाये, और शरीर उसमे घिर जाये, या कभी कोई पाटच्चर सामने से आक्रमण कर दे, या कोई जगली जानवर हमला कर दे तो फिर पैरो के रजोगुण की करामात देखिये । कैसे पैरो को पर लगते हैं । कैसी तीव्रगति मे दौड होती है, और जान बचाई जाती है । फुटबाल, क्रिकिट या दौड के मैदान मे या युद्ध म जहा हारजीत की बाजी हो वहाँ पादेन्द्रिय के इस रजोगुण का प्रभाव देखिये । इस का तमोगुण अश मिश्रित से कम है पर इस का प्रभाव विभिन्न दिशा मे है । पाद के तामस अश ने इस मे तमोगुणी पृथिवी के समान सहन शीलता को बढाया। पैर ने कुछ कहना ही नहीं, जितना ही भार लाद लो, जितना ही चलालो । यदि थक गये तो दम ले लिये फिर चल पडे ।

यह है समष्टि पादेन्द्रिय का सूक्ष्मरूप । समष्टि पादेन्द्रिय मण्डल समष्टि तीनो अहकारो का परिणाम है । तीनो के सूक्ष्म धर्म इस मण्डल मे निहित हैं । इस समष्टि मण्डल मे व्यष्टि पादेन्द्रिया का निर्माण हुआ । यह गति धर्म समष्टि मण्डल मे अव्यक्त जो व्यष्टि रूपमे है मे आकर इस प्रकार अभिव्यक्त हुआ ।

जब इन तीनो समष्टि अहकारो की परिमित मात्रायें ब्राह्मी चेतना के सन्निधान से सयुक्त हो पादेन्द्रिय मे परिणत होने लगती हैं तो वह भी दृश्य अपूर्व ही होता है ऐसे दृश्य तो योगी ही देख सकता है । ब्राह्मी चेतना सघात की प्रेरिका होती है, क्योकि जड पदार्थ चाहे चेतन से बने हो, पर फिर भी बिना चेतन प्रेरणा के परिमित परिमाण मे, परिमित काल मे परिमित दिशा म स्वय सयुक्त नही हो पाते हैं । अत इस स्थिति मे योगी को इस पादेन्द्रिय मण्डल के परिणाम का भी साक्षात्कार करना चाहिय, और उस मे निहित प्रेरिका ब्राह्मी चेतन सत्ता का भी । ब्रह्म के इस साक्षात्कार से आप के वैराग्य का रग दृढतर होना चाहिये, जिससे आप पादेन्द्रिय के चक्कर मे पड घुमक्कड न बनें । और अपने लक्ष्य सच्चिदानन्द ब्रह्म प्राप्ति को ही सदा के लिये खो बैठे । यहाँ मुख्यरूप मे राजस अहकार और गौण रूप मे सत्व तमस अहकार समष्टि पादेन्द्रिय के सूक्ष्म रूप हैं, और समष्टि पादेन्द्रिय व्यष्टि पादेन्द्रिय का सूक्ष्म रूप है। दोनो कार्यों की अपने अपने कारण मे सूक्ष्म अवस्था है ।

समष्टि पादेन्द्रिय मण्डल
चतुर्थ रूप मे ब्रह्म-विज्ञान
(पादेन्द्रिय का चतुर्थ रूप)

४ समष्टि पादेन्द्रिय के अन्वयरूप में—

सब ही समष्टि मण्डल उत्पत्तिधर्मा हैं। और परिवर्तन शील हैं । सदा एक रस

नही रहते। प्रलय काल मे अपने कारण म लय हो जाते है। फिर अगले सर्ग मे इन का निर्माण होता है। इसी प्रकार समष्टि पादेन्द्रिय मण्डल का स्तर भी अपने अभिन्न कारण से परिणत हुआ। सदा एक रूप नही रहता। सदा घटता बढता रहता है। इसी से व्यष्टि पादेन्द्रिय बन कर निकल जायगे यह घट जायेगा, और व्यष्टि पादे न्द्रिय मुक्त जीवा या निर्माण शरीरो के लौटेगे यह बढ जायेगा। इस प्रकार यह परिणामधर्म वाला है। अत उत्पन्न है। जो जो परिणामी हैं सब उत्पद्यमान है। इस स्तर का भी अन्वय परम्परा से मूल प्रकृति मे पर्यवसित होता है। मूल प्रकृति अपने स्थिति धर्म ज्ञान तथा क्रिया के साथ अनुपतित होती चली आ रही है। प्रकृति का परिणाम जो महत्तम हुआ। उससे समष्टि तामस आदि तीना अहकार, परिणत हुए। उन तीनो के आनुपातिक सम्मिश्रण से यह समष्टि पादेन्द्रिय मण्डल परिणत हुआ और इससे व्यष्टि पादन्द्रिय प्रकृति का क्रिया गुण मुख्य रूप से समष्टि पादेन्द्रिय मण्डल म आया। जो गमनागन रूप मे परिणत हो इस मण्डल का धम बना। मण्डल मे यह धर्म स्पष्टतया कार्याभाव के कारण उपलब्ध नही होता। पर उसकी सत्ता वहा अवश्य है। तभी तो व्यष्टिया मे आकर व्यक्त हुआ। स्थूल शरीर मे स्थूलेन्द्रिय पाद मे गति स्पष्टतया जानी जाती है। पर योगी इन धर्मो के अधिकरण सूक्ष्म शरीरो का स्थूल शरीर मे भी और उस के बिना भी प्रत्यक्ष करना है।

इस प्रकार कारणरूपा प्रकृति भोगात्मक कार्यरूप सर्ग मे परिणत हुई है। आवान्तर कार्य कारण परम्परा मे अनुपतित होती हुई समष्टि पादेन्द्रिय मण्डल म अपने धर्म और गुणा सहित अनुपतित हुई है। जो गुण मुख्य रूप से इस मे अभिव्यक्त विभिन्न रूपा मे हुए है। इस अनुपतन का योगी को साक्षात्कार करना है और साथ ही और निमित्तरूप से वर्तमान भगवान् के सन्निधान का भी प्रत्यक्ष अनुभव करना है। यह प्रत्यक्ष तभी स्थिर होगा जब मुनि नारद के समान घुमक्कड न बन पूर्ण वैराग्य लाभ कर प्रकृति से तथ्यत उपराम हो जायेंगे।

पादेन्द्रिय-विजय की एक घटना।

अमृतसर मे स्वाक मण्डी मे श्री पूज्यपाद प० हरिश्चन्द्रजी दार्शनिक से हम दर्शन शास्त्र पढते रहे हैं। ये दर्शना के बडे भारी माने हुए उस काल के उच्चतम कोटि के विद्वान थे। ये आजीवन बालब्रह्मचारी रहे। एक दिन उनके पिता श्रीराम शरणजी ने सुनाया कि जिस स्थान पर आजकल आप पण्डित जी से पढ रहे है, पहले यहाँ पर एक बडे भारी योगी महात्मा रहे हैं। मैं उनको बाहर जगल से यहाँ ले आया था उन की सेवा के लिये बहुत आग्रह करने पर वे आये, और इस शर्त पर आये कि वे कोठे से नीचे नही उतरेंगे। उस महापुरुष ने उनकी बैठक मे आकर दो रस्सियाँ सूत की मगाई। पद्मासन लगा कर उन्हाने दोना घुटनो को रस्सियो से बान्ध दिया। फिर जीवन पर्यन्त कभी खोला नही। पास मे ही टट्टी और पेशाब करने हाथो के ही सहारे जाते थे। ये बडे भारी सिद्ध थे। इन्हाने सब इन्द्रिया पर विजय पा ली थी। परन्तु पैरो पर विजय पाने के लिये रस्सियों से घुटनो को बाँध कर यह साधन अपनाया था और पैरा से गमना गमन की तृष्णा को शान्त किया था। एक दिन वे श्री रामशरण जी से कहने लगे, कि फ्रास का बादशाह तख्त से गिर गया है। दूसरे दिन फ्रास से खबर आयी कि बादशाह

मर गया है। इस प्रकार की अनेक सिद्धियाँ इस महापुरुष मे थी। बडे भारी वीत राग महापुरुष थे। शरीर को तृणवत् समझते थे। किसी भी पदार्थ की आसक्ति नही थी। बहुत कम बोलते थे। हर्ष और शोक उनके अन्दर नही था। जीवनमुक्तो के समान इन का जीवन था।

समष्टि पादेन्द्रिय मण्डल

पञ्चम रूप में ब्रह्म विज्ञान

(पादेन्द्रिय का पञ्चम रूप)

५ समष्टि पादेन्द्रिय के अर्थवत्त्व मे—

समष्टि पादेन्द्रिय मण्डल की अर्थवत्ता इसी मे है कि अगणित सूक्ष्म शरीरो के निर्माणार्थ व्यष्टि पादेन्द्रियो के रूप मे परिणत हो काम मे आता है। स्वर्गस्थ सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीरस्थ या आकाशस्थ सूक्ष्म शरीरो के निर्माण मे यही स्तर पादेन्द्रियाँ प्रदान करता है। योगी भी तो निर्माण शरीरो की रचना के लिये इसी मण्डल से पादेन्द्रिय का आकर्षण करता है। मुक्ति लाभ होने पर मुक्तात्माओ के सूक्ष्म पादेन्द्रिय भी इसी मण्डल मे आ शामिल होते है। यह समष्टि पादेन्द्रिय मण्डल सारे आकाश मे फैला हुआ है। इसीलिये सर्वत्र सब परिस्थितियो म शरीर निर्माण म कठिनाई नही होती और न योगी का ही शरीर निर्माण सामर्थ्य कही अवरुद्ध होता है। मरणोपरान्त मरण समय मे आयी सूक्ष्म शरीर क्षति भी इन ही स्तरो को पार करते हुए पूरी हो जाती है। सर्वत्र यह स्तर विद्यमान है, इसी लिये लोक लोकान्तरो मे आवान्तर प्रलय होने पर भी इसी स्तर के आश्रय सृष्टि निर्माण या शरीर निर्माण चल रहा है। कही भी कोई सूक्ष्म शरीर विकलाग लूला लगडा दृष्टि गोचर नही होता। स्थूल शरीर ता लगडे मिलेंगे पर सूक्ष्म शरीर कही एक भी लगडा नही मिलेगा। कोई चाहे तब भी सूक्ष्म शरीरो को विकलाङ्ग नही बना सकता।

इस समष्टि पादेन्द्रिय मण्डल की अर्थवत्ता को व्यष्टि पादेन्द्रिय मे देखिये। इसी से इसकी परिणति हुइ। समष्टि के धर्मो को लिये हुए ही व्यष्टि रूप मे आयी है। स्थूल शरीर का गमनागमन इस व्यष्टि पादेन्द्रिय के बिना नही हो सकता है। शरीर के अनेक कार्यो का सम्पादन भी इसी इन्द्रिय के द्वारा होता है। सब प्राणियो के सब कार्य जो गमनागमन द्वारा चल फिर कर किये जाते है, वे इसी पादइन्द्रिय के द्वारा होते हैं। शरीर के पालन पोषण के अनेक कार्य इसी से सम्पन्न होते हैं। सब शरीरो की गति का यही कारण है। इसके बिना शरीर सुन्दर भी नही लगता है। इसके बिना तो यह मानव अपाहज होकर एक स्थान पर ही पडा रहता है। पराधीन हो जाता है। इस लोक मे और स्वर्ग लोक म गमनागमन इसी के द्वारा होता है। इस प्रकार यह अत्यन्त ही उपकारी इन्द्रिय है।

पादेन्द्रिय ससार के भोग और अपवर्ग मे अत्यन्त ही सहायक है। समस्त विश्व-मण्डल की तो बात ही क्या यह हमारा भूमण्डल ही इतना विशाल है कि दृष्टि फैलाकर तो क्या किसी दूर वीक्षण से भी सारा एक दम नही देखा जा सकता है। पर आप देखते है इस भूमण्डल के चित्र बने है। भूमि के सातो खण्डो के चित्र बने हैं। भूमि के

सातो महासागरो के चित्र बने है। भूमि के समस्त पहाडो वनो नदियो के चित्र बने हैं। सब का पूरा २ वर्णन लिखा और छपा मिलता है। यह सब इसी व्यष्टि पादेन्द्रिय की कृपा है। मानव की आस पास की, और आस पडोस की, फिर दूर दराज की, और फिर समस्त भूमण्डल की चप्पा चप्पा भूमि देखने की आकांक्षा और अधिक से-अधिक भाग को अपने अधीन करने की भावना ने पादेन्द्रिय को विवश किया कि अपने गमनागमन का विस्तार करे, सब कुछ देखे और दाव चले तो सब पर कबजा करे। मानव निकल पडा, पैरो को जूते पहनाये नये नये ढग के, मौजे दिये, गरम कपडे की पट्टिया दी, बान्ध जूड कर मजबूत किया, जिससे थकने का नाम न ले। मानव ने कूच बोल दिया इन पैरो के सहारे। और समाचार ले आया जगल बियाबानो के, उनम रहने वाले नाना प्रकार के जीवो, जन्तुओ, हिंसका अहिंसको के, वृक्ष वनस्पतियो के झील झरने नदी सरोवरो के कीट पतग सरीसृपो के, लता औषधि जडी बूटियो के। फल फूल कन्द मूल के। सोना चान्दी लोहा ताम्बा आदि धातुओ की खाना के। लाल काने सफेद रग बिरगे सगमरमर आदि के। हीरा पन्ना लाल मोती पुखराज के। कोयला, तैल पैट्रोल के। और न जाने जाने अजाने किस किस के समाचार ले आयी या लिवा लायी यह पादेन्द्रिया। देशो की ओर बढी तो देशविदेशो को छान मारा। समुद्रो की ओर चली तो उनका ओर छोड न छोर। समुद्र के तल का चप्पा २ ढू ढ लाई यह पादेन्द्रिय। कहाँ मछलिया है। कहा घोघे। कहा ह्वेल। कहा मगरमछ, कहा मोती। कहाँ गहरा है, कहा उथला कहा बरफ है। कहा पानी। जल धारा कितनी गहरी है। सब ही कुछ तो पता ले आयी पादेन्द्रिय।

जिस विश्वोच्चतम गौरी शङ्कर शिखर पर देवाधिदेव महादेव भगवान् और माता पार्वती ने योगाभ्यास किया, विचरण किया। जिन के नाम इस शिखर का नाम करण हुआ। देख तो इस पर क्या है यह लालसा तेनसिंह को बचपन से गौरीशकर की ओर खच रही थी। पादेन्द्रिय ने प्रोत्साहन दिया—'चल! आगे बढ। मैं तेरे साथ हू।

पादेन्द्रिय सबसे आगे थी। अन्तत पादेन्द्रिय की कृपा से तेनसिंह ने गौरी शकर शिखर पर सवप्रथम पहुच तिलक किया। मस्तक नवाया। भारत का तिरगा फहराया। भारत का सिर ऊचा किया। विश्वविजयी यात्री बना। सब इस पादन्द्रिय की कृपा और अर्थवत्ता से।

श्री महात्मा विनोबा भावे जी ने भारत की पद यात्रा करते हुए भूदान यज्ञ किया अनेक ग्रामो और नगरो से जमीदारो स भूमियें लेकर गरीबो को प्रदान की। यह सब इस पादेन्द्रिय की अर्थवत्ता है।

भगवान राम ने १४ वर्ष बनवास मे रहते हुए पद यात्रा करते हुए अपने धर्म और मर्यादा एव पिता की आज्ञा का पालन किया। यह पाद की अर्थवत्ता है।

पाण्डवो ने १२ वर्ष वनवास म रहकर सर्वदा पद यात्रा ही की। यह भी पादा की अर्थवत्ता ही है।

सन् १९०८ मे ज्येष्ठ मास से आश्विन मास के अन्ततक ५ मास मे मैंने पजाब देश के पर्वता म योगियो की खाज म १७५० मील की पद यात्रा की थी यह भी पाद की अर्थवत्ता का स्वरूप है।

युवा अवस्था मे ध्यान समाधि के अभ्यास मे प्रात ७ बजे से ११ बजे तक और साय काल मे ६ बजे से ११ बजे तक निरन्तर एक आसन पर स्थिर होकर बैठना नित्य प्रति की साधारण सी ही बात थी। किन्तु एक ही आसन पर अडोल निश्चेष्ट होकर कई-कई दिन की शून्य समाधि मे बैठकर भी समय व्यतीत किया यह भी एक आसन से निरन्तर कई दिन बैठना पाद या पैरो की ही अर्थवत्ता विशेष रूप मे है।

घर से निकल पडे बाल्यावस्था मे हिमालय से समुद्र तक पश्चिम से पूर्व तक, काश्मीर से मानसरोवर तक, शिखर शिखर पर कन्द्रा कन्द्रा मे योगियो के दर्शना के लिये। विलुप्त भारत की सर्वस्व विलुप्त योग पद्धति को खोजा। योगी गुरु जनो की कृपा हुई। हमने पाया 'विशोका ज्योतिष्मती' को उसी का प्रसाद यह बहिरङ्ग योग, आत्म-विज्ञान और ब्रह्म विज्ञान है। यह सब अर्थवत्ता हुई व्यष्टि पादेन्द्रिय की। ऊपर की घटनाये पादेन्द्रिय भोगार्थता को सिद्ध करती हैं। और हमारी घटनायें पादेन्द्रिय की अपवर्गार्थता को।

प्रकृति का परम्परागत कार्य होने से पादेन्द्रिय मे यह अर्थवत्ता धर्म आया है। इस लोक और परलोक मे चल फिर कर जितने भी व्यवहार होते है, या भोग सग्रह होता है वह सब इसी पादेन्द्रिय के द्वारा होता है यह रेलें, मोटरें, हवाई जहाज़ सब इसी पादेन्द्रिय के गमनागमन धर्म का विस्तार है। नगरो मे बडे बडे व्यापार केन्द्रो मे, कल कारखाना मे देख कोई निश्चिन्त या निश्चल नही बैठता। दिन रात दौड की होड लगी है। जो अधिक भाग दौड करता है। वही अधिक सफल होता है। क्या व्यापारी क्या मजदूर। क्या क्लर्क क्या सेठ साहूकार। आजकल तो सन्त भी इसी पादेन्द्रिय की भाग दौड से अधिकतर प्रतिष्ठा लाभ करते हैं। और तो क्या चुनावो को भी यह पादेन्द्रिय सफल बनाती है। जितना कोई अधिक भाग दौड करेगा, उतना ही सफल होगा। चाहे वह मिनिस्टर हो या प्राइममिनिस्टर। आजकल तो भोगवाद के युग मे पादेन्द्रिय का गमनागमन भगवान् का वरदान सा बना हुआ है। इतनी बडी अर्थवत्ता हो गयी है इस पादेन्द्रिय की।

वेद ने तो ईश्वर के पादो का भी अलकार रूप से या अध्यारोप से वर्णन किया है। "पादोऽस्य विश्वा भूतानि, त्रिपादस्यामृत दिवि' इस ब्रह्म का एक पाद सम्पूर्ण विश्व के भूतो मे है। और तीन पाद द्यौलोक मे हैं। अर्थात् अहकारिक सृष्टि त्रिगुण सृष्टि और मूल प्रकृति।

पादेन्द्रिय ससार के भोग और अपवर्ग मे अत्यन्त ही सहायक है। अत इसमे यही सब श्रेष्ठ अर्थवत्ता है। सब जीव इसी द्वारा सर्वत्र चलते फिरते हैं। अपने सुखो के लिये अनेक कार्य करते हैं। पदार्थों का सग्रह करते हैं, और अनेक प्रकार के सुखो का उपभोग करते हैं। योगाभ्यासियो के योग साधन मे भी पादेन्द्रिय की बडी भारी अर्थवत्ता है। योग के जितने भी आसन हैं, उनके निमित्त भी यह पैर हैं। बिना पैरो के तो एक भी आसन नही बनता। सिद्ध, स्वस्तिक या पद्मासन जिसमे लगातार १२ घन्टे तक अचल बैठकर समाधि की स्थिति उत्पन्न होती है, वह भी इस पादेन्द्रिय की ही अर्थवत्ता है।

इस इन्द्रिय की उपादेयता और सुख आराम को देखकर भगवान् का अनेक धन्यवाद करते हैं। जिस के निमित्त कारण की विचित्र रचना मे हम अनेक सुख और

भोग प्राप्त हो रह है। व्यष्टि पादेन्द्रिय का यह सब अर्थवत्व वास्तव मे समष्टि पादेन्द्रिय मण्डल का है, क्योकि उसी के गुण और धर्मो को लेकर यह व्यष्टि रूप मे परिणत हुई है। इस परम्परा से भगवती मूल प्रकृति देवी भी अपने विभिन्न कार्यो द्वारा मानव क भोग और अपवर्ग का साधन बनी हुई है। उस भगवान् से अपने अन्दर चेतना को धारण करके अपने परिणत पदार्था द्वारा मानव के भोग और अपवग का साधन बनी हुई है। जिससे प्राणी मात्र का कल्याण हो।

अत उस भगवान् के असीम उपकारा को समझ कर उसका अनेकश धयवाद करना चाहिये। इन उपरोक्त अर्थवत्ताग्रा मे सर्वत्र ब्रह्म की अनुभूति करनी चाहिये। वह निष्क्रिय होकर भी प्रकृति के साथ मिलकर क्रियावान् सा बना हुआ है। वह अकर्ता होते हुए भी अज्ञानियो को कर्ता प्रतीत हो रहा है वह सर्वत्र होते हुए भी अज्ञानियो के लिय एक देशी सा बना हुआ है, या अज्ञानियो ने ही उसे एक देशी बनाया हुआ है। इसका विज्ञान अवश्य प्राप्त करना चाहिये। क्योकि इसके विज्ञान के साथ ही प्रकृति के अनेका नेष कार्यो का भी विज्ञान हो जाता है, जो कि हमारे राग और बन्ध का हेतु बने हुए है। इनका प्रत्यक्ष ज्ञान करके ही मानव इनके बन्ध से छूट सकता है। अलग हो सकता है। विरक्त हो सकता है। अत प्रकृति पुरुष विवेक और पर वैराग्य ही मोक्ष का हेतु है।

इति समष्टि पादेन्द्रिय मण्डलम्।

इति द्वितीयाध्यायेऽष्टम खण्ड।

इत्येकविंशमावरणम्॥

२० वां आवरण

समष्टि राजस-अहंकारिक हस्तेन्द्रिय मण्डल

(पाँचो रूपो मे ब्रह्मानुभूति)

समष्टि अहंकारिक हस्तेन्द्रिय का मण्डल समष्टि पादेन्द्रिय के मण्डल के ऊपर है। यह मण्डल चमकदार, सफेदी लिये हुए हल्के से नारन्जी मैले से रग का है। अन्य कर्मेन्द्रियो के मण्डल की अपेक्षा इस मे पीलापन कम है, क्योकि तामस की मात्रा उनसे कुछ कम है। समष्टि पाद मण्डल मे इसकी अपेक्षा राजस की लालिमा किञ्चित् अधिक है। पाद मे राजस इसकी अपेक्षा अधिक है। चञ्चलता भी अधिक है पर कमठता पाद से कम। डटने की सामर्थ्य भी पैर से न्यून है।

ब्रह्म के बीच और आपके बीच नीचे से यह १४वाँ आवरण है। पहले स्थूल थे। उनकी अपेक्षा यह सूक्ष्म है। पादेन्द्रिय की अपेक्षा हाथ पर विजय थोडा अधिक परिश्रम चाहती है। इस इन्द्रिय मण्डल के मुख्य दो ही धर्म है १ ग्रहण २ त्याग। पर यहाँ इस समष्टि मण्डल मे यह साफ-साफ जान नही पडते। क्योकि यहाँ इनका कोई व्यवहार नही है। जब इनसे सूक्ष्म शरीरो की रचना हो जायेगी, तब उनमे यह स्पष्ट रूप मे मिलेंगे। अभी तो इनका संग्रहालय मे संग्रह हो रहा है।

यह समष्टि हस्तेन्द्रिय मण्डल सृष्टि के निर्माण काल मे आकाश मे उपस्थित रहता है। सारे सूक्ष्म शरीरो की सूक्ष्म हस्तेन्द्रियें इसी मण्डल से अपहरण की जाती हैं। यही व्यष्टि हस्तेन्द्रिय का उपादान कारण हैं। मुक्ति मे लौटी आत्माओ के सूक्ष्म शरीरो के लिए सूक्ष्म हस्तेन्द्रिये इसी से ली जाती हैं। मुक्ति मे जाने वाली आत्माओ के सूक्ष्म हस्तेन्द्रियें इसी समष्टि मण्डल मे आ सम्मिलित होती हैं।

ब्राह्मी चेतना के सन्निधान मे चेतन-सी बनी प्रकृति अपना यह सृजन चक्र घुमाती रहती है। समष्टि हस्तेन्द्रिय के पाँच रूप भी इस ३२ चक्र वाली प्रकृति का एक अरा है। उन पाँचो रूपो का तथा उनमे निमित्त-भूत भगवान् का समाधि द्वारा प्रत्यक्ष कीजिये। वैराग्य की सम्पदा से ब्रह्म दर्शन को परिपक्व करके कैवल्य भाव को प्राप्त कीजिये। यह हमारा ब्रह्म-विज्ञान नास्तिको के लिये भी अत्यन्त उपयोगी है, क्योकि प्रकृति और इसके कार्यात्मक पदार्थो का बोध होता है।

समष्टि हस्तेन्द्रिय मण्डल

प्रथम रूप में ब्रह्म-विज्ञान

(हस्तेन्द्रिय का प्रथम रूप)

१ समष्टि हस्तेन्द्रिय के स्थूल रूप मे—

समष्टि हस्तेन्द्रिय मण्डल अहंकारिक सृष्टि का आठवां और समष्टि राजस अहंकार का दूसरा परिणाम है। ब्रह्म और जीव के बीच यह ऊपर से २०वाँ आवरण

है। समष्टि हस्तेन्द्रिय मण्डल के निर्माण से पूर्व समष्टि वाणी कर्मेन्द्रिय का मण्डल तथा ज्ञानेन्द्रियों आदि के मण्डल बन चुके है। हस्तेन्द्रिय मण्डल की भोगार्थ उपादेयता सर्वाधिक है।

समष्टि हस्तेन्द्रिय मण्डल मे दो धर्म है १. ग्रहण २ त्याग। अथवा आदान-प्रदान। समस्त हस्त के कर्म इसके अन्तर्गत आ जाते है। हाथ से लिखना, हाथ से पैरो को धोना, हाथ से खाना खाना, या पानी आदि सब ही कर्म आदान-प्रदान मे आ जाते है। लिखना आदान ही है, लेखनी पकडकर लिखता है। यदि स्याही या रग मे अगुली भर कर लिखता है, तब भी स्याही या रग का पहले आदान और पीछे दीवार या कागज पर त्याग है। पैरो के धोने मे भी पहले जल का हाथ मे चुल्लु मे या किसी पात्र मे आदान करता है, फिर त्याग करता है डालता है। तभी धोना बनता है। खाना खाने मे भी पहले हाथ से पकडता है आदान करता है। उठाता है, आदान किये हुए। मुख मे देता है, आदान किये हुए। छोडता है—रखता है—प्रदान करता है त्याग करता है।

इस प्रकार के हाथ के सब ही कर्म आदान-प्रदान के अन्तर्गत ही आ जाते हैं। यह आदान-प्रदान स्थूल रूप से स्थूलेन्द्रिय लम्बे-लम्बे से हाथो का काम प्रतीत होता है, पर यह तो बाह्य उपकरण मात्र है। हड्डी माँस आदि के बने हैं। शरीर ही तो है। यह आदान-प्रदान करने वाली ब्रह्मरन्ध्र मे स्थित सूक्ष्म हस्तेन्द्रिय है। जो चमकते छोटे से छोटे तारे के रूप मे है। यही समष्टि मण्डल से परिणाम-भाव को प्राप्त हुई है। दिव्य लोक मे यह पञ्च-तन्मात्राओ से निर्मित्त सूक्ष्म शरीर मे स्थित हस्त को प्रेरणा कर कर्म कराती है। इस लोक मे स्थूल शरीर मे स्थित मस्तिष्क के भीतर ब्रह्म-रन्ध्र से इन पाञ्च-भौतिक हाथो से कर्म कराती है। जोकि अनेक धर्मो के द्वारा इस शरीर और लोक का कार्य करते है। वास्तव मे यह सब कार्य सूक्ष्मेन्द्रिय द्वारा ही होता। परन्तु लोग कहते है कि हाथ कार्य कर रहे है। इसके कर्म या गति के लिए सूक्ष्म शरीर वाले मस्तिष्क से ही प्रेरणा होती है। बुद्धि मन के द्वारा हस्तेन्द्रिय को कर्मशील बनाती है।

यह दोनो धर्म है तो समष्टि मण्डल मे ही, उसी से व्यष्टियो मे आये है। पर वहाँ इनका कोई व्यवहार नही। इसलिए व्यष्टि को लेकर ही समझाना पडता है। व्यष्टि सूक्ष्मेन्द्रिय के व्यवहार को भी सिद्ध योगी ही देख सकते है। अत उनकी क्रियाओ को समझाने के लिये उनके उपकरण भूत शरीर के अवयव हाथो को लेना पडता है। हस्तेन्द्रिय मे समष्टि सत्त्वाहकार की मात्रा ·६ है। अब तक वर्णित सब ही कर्मेन्द्रियो से अधिक है। सत्त्व कहे या ज्ञान बात एक ही है। यह ज्ञान है भी ब्रह्म-रन्ध्रस्थ कर्मेन्द्रिय मे यह सूक्ष्म कर्मेन्द्रिय सब योनियो मे सूक्ष्म शरीर के साथ जाती है। पर भोग योनियो मे बुद्धि का व्यापार बहुत थोडा रह जाता है, क्योकि यह योनियाँ कर्म-प्रधान नही भोग प्रधान हैं इसलिए यदि भोग-सम्पादनार्थ किसी ज्ञानेन्द्रिय की आवश्यकता होती है तो उसकी उस इन्द्रिय की शक्ति अत्यधिक बढ जाती है। कई कीट सैकडो मील दूर से अपना भोज्य प्राप्त करने के लिए गन्ध से आकृष्ट हो जाते है। चील आकाश मे उडती हुई बहुत ऊँचे ऊपर से माँस के टुकडे को देख लेती है। भोग योनियो मे ये इन्द्रियाँ केवल भोग उपार्जन के लिए ही कोई-कोई इन्द्रिय काम मे आती है, शेष ज्ञान की मात्रा तो प्रसुप्त रहती है। पशुओ के चार पैर होते है, खुर और सुम वाले पशुओ के तो चारो

पैर चलने के काम आते है । सूक्ष्म हस्तेन्द्रिय पकडने का काम लेने के लिये उपकरण मुख को बनाती है । गाय, भैस, गधा, घोडा, ऊँट सब पकडने का काम मुख से ही करते है । रोहतक की घटना है । एक ऊँट के मालिक ने ऊँट के बिगडने पर बडे जोर का एक लठ जमा दिया । उस समय तो ऊँट मार से सहम गया । जैसा मालिक चाहता था कर दिया । पर मार को भूल न सका । मालिक भी इस बात को भाँप गया । ऊँट को नौकर के सुपुर्द कर दिया और स्वय दूर रहने लगा । एक रात पेशाब करने उठा । नीद मे था । ऊँट के पास ही बैठ गया । ऊँट ने झटझपट डडे वाला हाथ पकड लिया । इतने जोर से दबाया कि ऊँट के दाँत कलाई के आर-पार हो गये । ऊँट चाहता था, छाती के नीचे दबा उसे पीस डालो । मालिक सब समझ रहा था । वह सहायता के लिए चिल्लाया भी, और दूसरे हाथ को जमीन पर टिका दूसरी ओर निकल जाता, और छाती के नीचे आने से बच जाता । इतने मे एक जमीदार उबले बिनौले की गरम मटकी लेकर अपनी भैस को डालने जा रहा था । उसने ऊँट वाले की पुकार सुनी । ऊँट के पास पहुँचा, और गरम-गरम मटकी ऊँट के सिर पर दे मारी । मटकी फूटी । गरम-गरम बिनौले सिर पर पडे ऊँट घबराया, चिल्लाया । मालिक का हाथ छूटा, जान बची । इस प्रकार इन पशुओ मे हाथ का आदान-प्रदान मुख मे आ जाता है ।

पचनख वाले शेर, चीता, कुत्ता, बिल्ली आदि अगले पजो से आक्रमण भी करते है, और पकडने का काम भी लेते हैं । इनके पकडने की हस्तेन्द्रिय की शक्ति अगले पजो तथा मुँह मे निहित रहती है । वैसे अगले और पिछले पैरो से चलने का काम तो लेते है । इस प्रकार सूक्ष्मेंद्रियाँ विभिन्न योनियो मे अपने कार्य के लिये भिन्न-भिन्न अगो को पकड लेते हैं । *साप पैरो का काम अपनी हड्डियो से लेता है । हाथी हाथ का काम सूण्ड से* लेता है । इसके हाथ की सूक्ष्म इन्द्रिय मे सात्विक अश अधिक है, ज्ञान की मात्रा अधिक है, पर उस का यहाँ उपयोग नही, क्योकि भोग योनि मे बुद्धि बहुत ही परिमित से स्वल्प से रूप मे काम आती है । पर मानव योनि मे इसका विकास अद्भुत रूप से हुआ है क्योकि मानव योनि धर्म और ज्ञान प्रधान योनि है ।

देखिये ! मानव का हाथ कैसा कौशल दिखाता है । यद्यपि स्वयं जड है । एक चावल के दाने पर गीता का पूरा ३२ अक्षर का श्लोक खोद कर अकित कर सकता है, जो सूक्ष्मेक्षण से साफ-साफ पढा जा सकता है । दिल्ली की विश्व-प्रदर्शनी और लाहौर के अजायबघर में यह रखा गया था । तनिक विचारिये ! हाथ तो जड हैं, शरीर का भाग हैं, श्लोक को कैसे लिख या पढ सकते हैं । यदि गीता को खोल कर हाथ की हथेली या अगुलियो के नीचे या किसी भी बडे से बडे विद्वान की अगुलियो के नीचे, क्या वे श्लोक पढ सकेंगी । नही कदापि नही क्योकि हाथ तो जड है । आप कह सकते हैं, अन्धे तो हाथ से ही पढते हैं । या कहिये उनके तो हाथ ही पढते हैं । उनकी पुस्तकें मोटे कागज की बनी होती है । उन कागजो पर उभार कर अक्षर बनाये होते है, जैसे कि काश्मीरी अखरोट की लकडी पर पच्चीकारी का काम होता है । अन्धा-व्यक्ति उन पर अगुली रख कर सब पढ देता है पर यहाँ भी आप देखे वही चौपायो वाला नियम काम कर रहा है । चौपाये के मस्तिष्क मे सूक्ष्म हस्तेन्द्रिय वर्तमान है । चौपाये हाथ न होने से चौपाये की सूक्ष्मेन्द्रिय मुँह से पकडने का काम लेती है । अन्ध विद्यालय

मे अन्धे भाइयो के स्थूल आँखे नही है, सूक्ष्म है, उन्हो ने अन्धो की अगुलियो को ही अपने उपकरण बना लिये । इसी प्रकार जब किसी दुर्घटना मे पैर कट जाते है तो लगडे लूले की सूक्ष्म पादेन्द्रियाँ हाथो से या लकडी घोडियो से चलने का काम ले लेती है ।

इस प्रकार आपने देखा कि हस्तेन्द्रिय का सूक्ष्म ९६ ज्ञानांश बुद्धि के साथ मिलकर किस प्रकार काम करता है । यह सूक्ष्मेन्द्रिय का ज्ञानांश ही जो इस प्रकार हाथो से मुँह बोलते चित्र बनवा लेता है। गगन चुम्बी ५० तल के मकान बनवा लेता है । सूक्ष्म से सूक्ष्म और विशाल से विशाल कारीगरियो मे यह जड हाथ सूक्ष्म हस्तेन्द्रिय को प्रेरणा पर चलते है । सूक्ष्मेन्द्रिय बुद्धि से सयुक्त होती है । और बुद्धि आत्मा से । सब तन्मय हो एक दूसरे की प्रेरणा पर चलता है । तब ही यह जड हाथ चेतन सा बना इतनी सुन्दर कलाकृतियाँ बना पाता है । एक-एक कलाकृति हजारो और कोई-कोई लाखो रुपए मूल्य पाती है । बास की पोरी मे समाने वाला, हाथी की अम्बारी को ढकने वाला, अगूठी के छल्ले मे से पार हो जाने वाला, सात तहो मे भी नगा शरीर दिखाने वाला ढाके की मलमल का थान इन्ही हाथो की करामात था । हाथो और हाथो की अगुलियो मे तो चेतना है, पर इन नाखूनो को जो चेतना रहित, आधे सप्ताह काटे जाने पर पीडा नही करते, इनके दबाव से कोरे कागज पर उभार दार मानव आकृति बनायी जा सकती है । केवल सैकिण्डो मे, यह सब सूक्ष्म हस्तेन्द्रिय की करामात है, इस कलाकौशल के मौलिक धर्म आदान-प्रदान को इस सूक्ष्म हस्तेन्द्रिय ने समष्टि हस्तेन्द्रिय मण्डल से प्राप्त किया है। यह सब दूर गामी समष्टि हस्तेन्द्रिय मण्डल का ही स्वरूप है । बुद्धिमान् की इस धर्मशीलता के अन्दर उस ईश्वर की चेतन सत्ता ही यह ग्रहण और त्याग का कार्य करती है। दिव्य शरीरो मे दिव्य रूप से और स्थूलो मे स्थूल रूप से कार्य का सम्पादन करती है । इस मे ही ब्रह्म के स्वरूप की अनुभूति करनी चाहिये । पर यह अनुभूति भी हाथ इन्द्रिय के भोगार्थ रूप से अनासक्त हो कर वैराग्य की दृढतर भूमि पर आरूढ होने से स्थिर होगी । अत योगिन् ! वैराग्य का चोला पक्के रग से रगते चलिये । यही परम कल्याण का मूल है क्यो ये ज्ञान और वैराग्य ही मोक्ष के कारण होगे इन्ही की सिद्धि के लिये यह विस्तार पूर्वक उल्लेख किया जा रहा है ।

समष्टि हस्तेन्द्रिय मण्डल

द्वितीय रूप मे ब्रह्म-विज्ञान

(हस्तेन्द्रिय का द्वितीय रूप)

२. समष्टि हस्तेन्द्रिय के स्वरूप मे—

हस्तेन्द्रिय के दो धर्म हैं। १ ग्रहण और २ त्याग। वस्तुत. हस्तेन्द्रिय का धर्म तो एक ही है ग्रहण । जहाँ ग्रहण होता है वहाँ त्याग अनायास ही आ जाता है । इसी प्रकार पाद का भी एक ही धर्म है गमन । वैसे गमन अनेक प्रकार का हो सकता है। वास्तव मे सब ज्ञान और कर्मेन्द्रियो का एक-एक ही धर्म है। फिर यह एक-एक धर्म अनेक अनेक प्रकार हो जाता है । हस्तेन्द्रिय मण्डल और ग्रहाधर्म का स्वरूप सम्बन्ध है । इसे ही तादात्म्य सम्बन्ध भी कहते हैं , क्योकि इसका यह धर्म इस से कभी अलग नही होता । यहाँ धर्म धर्मी का अभेद है । ग्रहण गुण है, समष्टि हस्तेन्द्रिय गुणी है। गुण मे गुणी अलग नही हुआ करता ।

(शंका)—जिन योनियों में हाथ नही हैं, जैसे कीड़े, मकोडे, मछली, पक्षी, साँप, बिच्छू ग्रादि। क्या इनके सूक्ष्म शरीर मे हस्तेन्द्रिय नही होती ?

(समाधान) सूक्ष्म शरीर किसी भी योनि मे विकल नही होते। पूर्ण १७ तत्त्वों सहित होता है। जिन सूक्ष्म इन्द्रियो के वाह्य उपकरण नही होता, वह ग्रपना काम किसी ग्रन्य भाग से लेती है। सर्प के पैर नही होते, पर इतना तीव्रगति से दौड़ता है कि घुड सवार भी दौड़ मे साँप को नहीं पकड़ सकता। इसका ग्रभिप्राय यह हुग्रा कि साँप की सूक्ष्म पादेन्द्रिय समूचे शरीर से ही ग्रपने चलने का काम लेती हैं। यदि सूक्ष्मेन्द्रिय नियामक नही होती तो शव के समान सर्प का शरीर भी कभी चल न पाता। कौवा पकड़ने का काम चोंच से लेता है। कबूतर ग्रौर कोयल ग्रादि के बच्चो को चोच से उठा कर ले जाता है। बिल्ली ग्रपने नवजात बच्चों को मुख से उठा-उठा कर सात स्थानो पर रखती फिरा करती है। इनके सूक्ष्म इन्द्रियाँ होती है, तभी तो ग्रन्य ग्रंगो से उसी क्रिया को कर पाते है। सूक्ष्म शरीर ग्रौर सिद्ध योगी तो बिना स्थूल शरीर तथा स्थूल इन्द्रियो के सूक्ष्म शरीर से ही सब काम करते है। बिना मुख से उच्चारण किये ग्रपनी सूक्ष्म वाणेन्द्रिय के दूसरे के कान तक शब्द पहुँचा देते हैं। कभी भाषा माध्यम होती है। कभी बिना भाषा के केवल भावमात्र ही प्रेषित किये जाते है। यह उस समय होता है जब योगी किसी दूसरे देश वाले से बात चीत करता है। ग्रत. जिन शरीरो मे वाह्य गोलक नही हैं उनमे भी वे सूक्ष्मेन्द्रियाँ होती हैं, ग्रौर यथा-समय ग्रपना काम करती हैं। सब योनियों की सूक्ष्मेन्द्रियाँ एक ही ग्राकार प्रकार की समान होती हैं। बाह्य गोलको मे तो योनिकृत भेद तो होता ही है, एक ही योनि के व्यक्तियो की स्थूलेन्द्रियों की ग्राकृति बनावट मे भी भेद होता है। उसी भेद को मस्तिष्क में रख कर ग्रन्धे लोग हाथ ग्रादि को टटोल कर व्यक्ति को पहिचान लेते हैं।

इस प्रकार के धर्म-धर्मी के ग्रभेद मे ब्रह्म की सूक्ष्मता की ग्रनुभूति करनी चाहिये। पर वैराग्य से ही यह ब्रह्मानुभूति दृढ होगी। ग्रदि योगी हस्तेन्द्रिय के धर्म संग्रह मे पड गया तो वह किया कराया सब नष्ट कर बैठेगा। ग्रत. योगी को ग्रभ्यास की परिपक्वता के साथ-साथ लोक सग्रह, धन सग्रह, जन संग्रह सब ही प्रकार के संग्रह का परित्याग करना चाहिये। वैराग्य ही भगवान् के विज्ञान ग्रौर मोक्ष का प्रधान साधन है। इन सर्व पदार्थो का विस्तारपूर्वक वर्णन करना, इनका विज्ञान ग्रौर इनसे वैराग्य ही हमारा मुख्य हेतु है, बिना इनके विज्ञान के इन से यथार्थ विरक्ति नही हो सकती है। इन से विरक्ति ग्रौर ब्रह्म ज्ञान तथा ग्रपने स्वरूप का ज्ञान ही मोक्ष प्राप्ति में मुख्य हेतु है।

समष्टि हस्तेन्द्रिय मण्डल
तृतीय रूप में ब्रह्मानुभूति
(हस्तेन्द्रिय का तृतीय रूप)

३ समष्टि हस्तेन्द्रिय के सूक्ष्म रूप में—

रज: प्रधान ग्रहकार जोकि समष्टि हस्तेन्द्रिय मण्डल का प्रधान तथा उपदान कारण है। यह इस मण्डल का सूक्ष्म रूप है। समष्टि सात्विक ग्रहंकार ग्रौर समष्टि

तामस-अहकार की अपेक्षाकृत अल्प मात्राओ के सम्मिश्रण से समष्टि राजस अहकार का परिणाम यह समष्टि हस्तेन्द्रिय मण्डल है। यहाँ पृथक्-पृथक् पदार्थो या समुदाय नही है। किन्तु जैसे शरीर मे हाथ पैर आदि शरीर से अलग नही होते, या जमे घडे से मिट्टी अलग नही है। इस समष्टि हस्तेन्द्रिय मण्डल का और समष्टि रज—प्रधान अहकार की प्रधानता मे तीनो अहकारो के सम्मिश्रण का जो समुदाय समष्टि हस्तेन्द्रिय मण्डल बना है यही अयुत-सिद्ध द्रव्य है। अथवा समष्टि रज प्रधान अहकारत्रय यहाँ सामान्य और समष्टि हस्तेन्द्रिय मण्डल विशेष का समुदाय ही यहाँ अयुत सिद्ध द्रव्य है यहाँ समष्टि रज प्रधान अहकार तीनो अहकारो का सम्मिश्रण कारण और समष्टि हस्तेन्द्रिय कार्य है। व्यष्टि हस्तेन्द्रिय के प्रति समष्टि हस्तेन्द्रिय कारण है व्यष्टि हस्तेन्द्रिय कार्य है। इस प्रकार सामान्य विशेष समुदाय ही यहाँ हस्तेन्द्रिय है। इसी को द्रव्य कहते है।

इसी प्रकार कारण और कार्य का भेद होते हुए भी अभेद बना रहता है, क्योकि सत्कार्य-वाद सिद्धान्त ही ऐसा है कि कारण कार्य मे अनुस्यूत रहता है। जैसे स्वर्ण आभूषण मे अनुस्यूत रहता है। यहाँ समष्टि हस्तेन्द्रिय मण्डल तो समष्टि अहकारत्रय के भेदरूप से अभेद को प्राप्त एक द्रव्य है। समष्टि सात्विक अहकार ० ६ अश + समष्टि राजस अहकार १ ६ अश समष्टि तामस ० ५ अश के आनुपातिक सम्मिश्रण से समष्टि हस्तेन्द्रिय मण्डल अभेदरूप मे परिणत हुआ है। हस्तेन्द्रिय मण्डल मे पादेन्द्रिय मण्डल की अपेक्षा समष्टि सत्विक अहकार १३ गुणा है। पादेन्द्रिय मे चेतना है पर हाथ की अपेक्षा बहुत न्यून। हाथ से सुन्दर से सुन्दर मानव आकृति कागज पर, कैन्वस पर और यहा तक कि पत्थर और लोहे आदि तक पर बनाई जा सकती है। पादेन्द्रिय की तो व्यक्ति विशेष मे विकसित या हस्त के अभाव मे पाद मे विकसित यह शक्ति कागज तक ही सीमित रहती है। ससार मे लकडी, कागज, टीन, पत्थर, मिट्टी, सोना, चान्दी आदि की जितनी भी मनोमोहक कारीगरी दृष्टि-गोचर हो रही है, यह सब हस्तेन्द्रिय ज्ञान प्रधानता का व्याख्यान है। हाथ मे सर्वाधिक मात्रा राजस अहकार की है। जिससे यह कर्म का प्रतीक बन गया है। इसी लिये लोकोक्ति बनी 'अपना हाथ जगन्नाथ।' जगन्नाथ भगवान् के सन्निधान से तो यह चर अचर समस्त सृष्टि की रचना हुई है। इसी प्रकार मानव के हाथ ने ही यह सब भोगात्मक रचना की है। गगन चुम्बी अट्टालिकाये और दो महासागरो को मिलाने वाली नहर स्वेज इसी हाथ की कर्मण्यता का ही तो फल है। सब कला कौशल मशीनरी, बडे-बडे कारखाने इस हाथ की ही तो करामात है। ये मोटर, तार, रेल, हवाई जहाज, स्पुतनिक घन्टे, घडिया सब इस हाथ के कर्म कौशल का ही बखान कर रही है। इन विश्वसहारक विश्वयुद्धो का सन्चालक हाथ ही तो है। तलवार, बन्दूक, तोप, एटम सब हाथ से ही चलाये जाते हैं। ससार मे सब व्यवहार, व्यापार, कार्य कलाप हाथ से ही तो होते है। शरीर मे भी सब इन्द्रियो की सेवा हाथ ही करता है। गुदा, उपस्थ, पाद, मुख सब की शुद्धि हाथ ही करता है। यह सब ग्रहण त्याग का ही परिणाम या रूपान्तर है। समष्टि तमः अहकार भी हस्तेन्द्रिय मे अपना स्थिति-शीलता का काम करता रहता है। यदि हस्तेन्द्रिय मे तमोगुण न होता तो बिना ब्रेक की मोटर के समान सहारक हो जाते। रुकने का नाम ही न लेते। जिस काम पर लगते लगे ही रहते। बस सदा एक ही काम होता दूसरा आरम्भ ही न हो पाता।

इस प्रकार व्यष्टि हस्तेन्द्रिय मे व्यक्त हुए यह सब धर्म समष्टि हस्तेन्द्रिय मण्डल से मूलत आये हैं। मूलत मण्डल मे यह धर्म ग्रनभिव्यक्त रूप मे वर्तमान थे। जब मण्डल का व्यष्टि मे परिणाम हुआ तो यह धर्म व्यष्टि मे पूर्ण रूपेण विकसित हो उठे। यह समष्टि हस्तेन्द्रिय मण्डल पादेन्द्रिय की अपेक्षा हलके रग का है। श्वेतिमा ज्ञान की मात्रा इस मे अधिक है। व्यष्टि हस्तेन्द्रिय भी इसी रग की है। व्यष्टि हस्तेन्द्रिय छोटे से तारे के रूप मे ब्रह्म-रन्ध्र मे है, समष्टि मण्डल आकाश मे अपनी परिधि मे और अपने से स्थूलो मे व्याप्त है।

इस समष्टि हस्तेन्द्रिय मण्डल का परिणाम अहकारत्रय की परिमित मात्राओ के सयोग से होता है तो पूर्वापेक्षा चमत्कृति पूर्ण होता है। इस प्रकार के भेदाभेद मे भगवान् का भी भेदाभेद जानना चाहिये। भिन्न पदार्थ होने से भेद भी है, और सदा व्यापक रहने से अभेद भी है। इस भेदानुगत व्यष्टि समष्टि मण्डल मे ब्रह्मानुभूति करनी चाहिये।

यदि हाथ की इस रचना चातुरी से आपको वैराग्य न हुआ और कही इसमे तनिक भी आसक्त रह गये तो किया कराया सब अभ्यास और ब्रह्म-दर्शन के हवाई किले सब व्यस्त हो जायेंगे। अत सावधान हो ज्ञान और वैराग्य भूमि को दृढतम बनाते चलना।

समष्टि हस्तेन्द्रिय मण्डल
चौथे रूप मे ब्रह्मानुभूति
(हस्तेन्द्रिय का चतुर्थ रूप)

४ समष्टि हस्तेन्द्रिय के अन्वय रूप मे—

समष्टि हस्तेन्द्रिय का मण्डल उत्पत्ति धर्म वाला है। सदा से इसी रूप मे नही है। अपने कारण से परिणाम को प्राप्त हुआ है। प्रलय काल मे अपने कारण मे लय हो जाता है क्योकि सदा एक समान नही रहता, घटता बढता रहता है। जब समष्टि मण्डल बन चुकेंगे, तब इन मण्डलो से व्यष्टियो का निर्माण होता है, वे व्यष्टि सघात को प्राप्त हो सूक्ष्म शरीरो का निर्माण करते है। तब पञ्च भूतो की सृष्टि के उपरान्त स्थूल शरीरो का निर्माण होता है। जब व्यष्टि हस्तेन्द्रियो का निर्माण होता है, तो समष्टि हस्तेन्द्रिय के मण्डल से ही होता है। समष्टि हस्तेन्द्रिय मण्डल् व्यष्टियो का कारण है, उस समय समष्टि मण्डल कम हो जाता है। जैसे घडा बनने पर जिस मिट्टी के ढेर से वह बना है, कम हो जाता है। जब मुक्त पर वास्तव मे देखा जाये तो हस्तेन्द्रिय मण्डल घटता बढता नही। जितनी मात्रा एक बार बन गयी, अन्त प्रलय तक मात्रा उतनी ही रहेगी। चाहे वह व्यष्टि रूप मे हो चाहे समष्टि रूप मे। कभी समष्टि अधिक, कभी व्यष्टि अधिक, पर हस्तेन्द्रिय नामक मे न्यूनाधिकता नही होती। यह परिणामी है इस लिये उत्पन्न हुआ है। पूर्व वर्णित अन्य स्तरो की भान्ति यह परम्परा से मूल प्रकृति का ही परिणाम है। मूल प्रकृति के अपने स्थिति ज्ञान और क्रिया का इसमे अनुपतन हुआ है। प्रकृति से सर्वप्रथम महत्सत्त्व, महत् रजस्, और महत् तमस् परिणत हुए। उन मे से महत् तमस् तीनो अहकारो के रूप मे परिणत हुआ। उन तीनो के आनुपातिक न्यूनाधिक सम्मि-

श्रण से समष्टि हस्तेन्द्रिय का स्तर बना है। प्रकृति का ज्ञान गुण अन्यापेक्षा इस मे अधिक रहा। क्रिया मुख्य होते हुए भी अपेक्षाकृत कम हुई। यही दोनो क्रमश. ग्रहण और त्याग मे परिणत हुए। समष्टि हस्तेन्द्रिय मण्डल मे यह दोनो धर्म व्यवहारी दशा न होने के कारण अव्यक्त रूप मे ही निहित है। इनकी स्पष्ट रूप से प्रतीत सूक्ष्म रूप से सूक्ष्म-रूप में सर्व ज्ञेय रूप से स्थूल शरीर मे होगी।

सक्षेप मे—इस हस्तेन्द्रिय मण्डल मे अन्वय रूप से प्रकृति ही अपने धर्मो और गुणो सहित अनुपतित हुई है। इस लिये इस का मुख्य क्रमानुगत सम्बन्ध प्रकृति के साथ ही है। प्रकृति अपने परिणामरूप धर्म से अपने गुणों सहित अनुपतन होती हुई हस्तेन्द्रिय के अन्वय मे पहुची है। यही स्हतेन्द्रिय का अन्वय रूप है। इसी अन्वय मे ब्रह्म की व्यापकता का अन्वेषण करना चाहिये।

(शका) आप सर्वत्र इन्ही १०।२० वाक्यो को दोहराते रहते है, क्या यह पुनरुक्ति दोप नही है?

(समाधान) हम इसी प्रकार के वाक्यो द्वारा अलग पदार्थो के साथ प्रकृति, उसके कार्य तथा ब्रह्म का सम्बन्ध दिखाते हैं। अत, यह पुनरुक्ति दोप नही। पुनरुक्ति दोप तो तब होता जब एक ही पदार्थ के साथ पुन पुन सर्वत्र उन्ही शब्दो या वाक्यो का प्रयोग करते। हम तो प्रत्येक पदार्थ मे अन्वय रूप धर्म दिखा रहे है। हमने आरम्भ मे सकेत किया है, कि कई आचार्यो ने सब पदार्थो की पाचो अवस्थाओ को न समझ पाया तो लिख मारा सब की पाच अवस्थाये नही होतीं, पाँचो अवस्थायें केवल पाच भूतो मे घटती हैं। तन्मात्रादि मे नही। ऐसी टीकाओ को पढ यही धारणा योग दर्शन के पाठको की बनती जा रही है। इस धारणा को हटाने के लिये हमे बार-बार खोल कर विस्तार के साथ लिखना पडा। सक्षेप मे तो पतञ्जली और व्यास दोनो ही लिख गये हैं। कितनो ने समझा और कितनो ने उसको क्रियात्मक रूप देकर भगवान् का साक्षात्कार किया। इस सृष्टि मे ३३ पदार्थ हे जो भगवान् से स्थूल हैं और उनकी १५७ दशाये बनती है, जिस प्रत्येक मे भगवान् की सन्निधानता की अनुभूति करते २ अन्त मे भगवान् का साक्षात् होगा। यदि आप इन स्थितियो को भी पुनरुक्ति कह कर अभ्यास से मुख मोडें तो आप ने विषय को समझ लिया बस। इतना विस्तार से लिखने पर भी यदि कोई १५७ मजिलें पार कर भगवान् के दर्शन कर सका तो हम अपना प्रयत्न सफल समझेंगे। अत ऐसे दुरुह विषय मे हमे यह पुनरुक्ति नही लगती। यह तो विशद रूप से समझाना ही है।

साधक 'आप को इस हस्तेन्द्रिय मण्डल चतुर्थ अन्वय रूप मे अब तक बताये क्रम से ६६ वें रूप का साक्षात् करना है। साथ मे निमित्त भूत प्रभु के सन्निधान का भी प्रत्यक्ष करना है, पर इन सबकी दृढ आधार-भूमि परम वैराग्य ही है, उसे दृढ, दृढतर, दृढतम करते चलिये, यही इस मार्ग का पार करने वाला शीघ्रगामी यान है। इसको दृढ धारणा के साथ अपनाये रहिये तब ही कैवल्य भाव. अवस्था प्राप्त होगी।

समष्टि हस्तेण्द्रिय मण्डल
पाचवें रूप में ब्रह्मानुभूति
(हस्तेन्दिय का पाचवा रूप)

५. समष्टि हस्तेन्द्रिय की अर्थवत्ता—

इस मण्डल की अर्थवत्ता इसी मे है कि यह ब्रह्माण्ड भर के जीवो के सूक्ष्म

शरीर की रचना मे काम आता है। इसी समष्टि मण्डल से सूक्ष्म शरीरो के निर्माण के लिये व्यष्टि हस्त सूक्ष्मेन्द्रिया ली जाती है। उन्ही सूक्ष्म शरीरा का विभाजन हो जाता है, कुछ स्वर्गस्थ आत्माओ के सूक्ष्म शरीर बनते है। कुछ सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीरो के चालक बनते है। योगियो के नवनिर्मित निर्माण शरीरो म भी यही से व्यष्टि हस्तेन्द्रिय आकृष्ट किये जाते है। मुक्त जीवो के सूक्ष्म शरीरो के हस्तेन्द्रिय भी इसी मण्डल मे आकर लय हो जाते है। यह मण्डल भी सारे ही आकाश मण्डल म फैला हुआ है पर अपनी परिधि मे। अब तक के वर्णित १३ मण्डलो मे यह व्याप्त है, क्योकि उन से सूक्ष्म है। अगले वाणी आदि के १६ मण्डलो मे यह नही है क्योकि उनसे स्थूल है। इसीलिये आकाशवर्ती समस्त लोक लोकान्तरो मे सब परिस्थितियो मे शरीरो का निर्माण हो जाता है। आवान्तर प्रलय के समय भी इन्ही मण्डलो से नव सृष्टि निर्माण होता है।

इस मण्डल के धर्म ग्रहण और त्याग है, इनकी अर्थवत्ता शरीरगत व्यष्टि इन्द्रियो से अभिव्यक्त है। यदि किसी योनि के किसी शरीर मे यह हस्तेन्द्रिय न होता, तो उस योनि का कर्म करना या भोग भोगना ही समाप्त हो जाता, अर्थात् कर्म योनि, भोग योनि, उभय योनि सब ही निष्प्रयोजन हो जाती। मानव योनि मे हाथ है, उठाता खा लेता है, हाथ न होते तो जीवन कैसे रहते। पाद आदि कोई भी शरीरावयव तो यह काम नही कर पाता। पशु का हस्तेन्द्रिय मुख मे आ गया है, क्यो उन का मुख जिह्वा वाणी का काम नही करते। पहले जन्म मे मानव रूप मे इन आत्माओ ने वाणी का दुरुपयोग किया। गाली गलौच दी, अपशब्द का प्रयोग किया, असत्य बोला, निन्दा की आदि। उस आदत को छुडाने के लिए इसे ऐसी योनि मिली कि बोल ही न सके। बोलने के सस्कारो को ही भुला दे क्योकि इसे, बहुत बुरा मुहावरा हो गया था। बोली के स्थान को हस्तेन्द्रिय का काम सौप दिया गया। जिससे परिमित रूप मे पकडने का भी काम कर सके। हाथ के दुरुपयोग को भी सुधार सके। हाथी को हाथ नही दिये पर नाक को ही इतना लम्बा कर दिया कि उससे पकडने का भी काम कर सके। दण्ड रूप मे उससे बडे शहतीरो या वृक्षो के रूप मे बोझा उठाये। यह सृष्टि विचित्रताओ से भरी है।

इस हस्तेन्द्रिय का धर्म तो आदान-प्रदान है। पर इस की व्यापकता बडी अनोखी है। गुदेन्द्रिय मल त्याग करती है। मल को बाहर निकाल देती है, पर स्वय अपवित्र हो जाती है। उसकी पवित्रता यह हाथ ही करता है उसको पवित्र कर स्वय भी मिट्टी पानी से अपनी सफाई करता है। शरीर के किसी अग पर मैल हो यही सफाई करता है। मूलेन्द्रिय को धोता, पैरो को धोता, मुँह आँख, नाक कान सब की सफाई करता है। मानो सब ही इन्द्रियो की सफाई इस का ही काम है। मुख खाना खा सकता है, पेय पी सकता है, पर यदि हाथ मुँह मे न डाले, मुख तक पेय को न पहुचाये तो मुख स्वय कुछ नही कर सकता। बुद्धि मे जो विचार आये उन्हे लेना समझना और लिपि बद्ध करना इसी का काम है। कितना सुन्दर लेख यह लिख सकता है। कितने बढिया ढग से हाव भावो को तूलिका से कागज पर अकित करता है। कैसी मुह देखती, मुह बोलती तस्वीरें बनाता है। मानव का कौन सा कार्य कलाप है, जिसमे हाथ आगे न हो। भवन बनाना हो, झोपडी बनानी हो हाथ आगे। यदि हाथ ईन्टे न बनाता, लकडी न चीरता, पत्थर को न तराशता तो भवन महल माडी किले कुछ भी न बन पाते। कैसी बडी बडी मशीनो को

ढाला है, इन हाथो ने। हाथ जिस काम को महीनो मे कर पाता, बुद्धि की सहायता से ऐसी मशीन बनाई हाथो ने कि वह उन कामो को क्षणो मे पूरा कर देती है। लाखो गज कपडा दैनिक बुना जाता है। लाखो मन गन्ना प्रतिदिन पिलता है। लाखो मन गेहू नित्य पिसता है। लाखो मन जल प्रतिदिन घरो मे नलो से पहुच जाता है, यह सब करामात है हाथो की। कितने बडे बडे नगर, सडकें, बान्ध और डेम बान्ध डाले इन हाथो ने। कितनी कितनी बडी बडी पुस्तकें लिख डाली और छाप डाली इन हाथो ने, मानो समस्त ज्ञान को सुरक्षित करने का श्रेय इन्ही हाथो को है। जब छापे खाने नही थे इन्ही हाथो ने भोज पत्र पर लिख लिख कर शास्त्रो को सुरक्षित किया।

घर का समस्त कार्य यही हाथ करते है। खाना पकाते है। कपडे धोते सारे ही घर की सफाई करते है। जिस अन्न का भोजन बनता उसको खेत मे यही उपजाते, पानी देते, खाद देते, फिर काटते साफ करते, बोरो मे भरते, गाडिया लादते, घरो मे लाते खतियो मे भरते निकालते और बेचते।

जब कोई आक्रमण करता है यही हाथ शस्त्र ले रक्षा को तैय्यार हो जाते। शस्त्रो को बनाते, और युद्ध मे चलाते भी है। आततायी को भगाने के लिये कैसे शस्त्र बनाये इन हाथो ने। जब अकाल पडता या बाढ आती है तब यही हाथ तो सकट का मुकाबला करते है, पानी मे तैरते, नाँव चलाते, हेलीकोपटर लाते, आकाश से आपद् ग्रस्तो के लिये सहायता पहुँचाते है, इस प्रकार भोग सम्पादन के लिये हाथो की अनन्त अर्थवत्ता है।

जब विपरीत मार्ग पर बुद्धि इन्हे ले जाये तो यह त्राहि-त्राहि बुलवा देते है। चोर इन्ही हाथो से चढते, दिवारे फाँदते, ताले तोडते, और माल लूट कर ले जाते हैं। कोई इस पाप कर्म मे बाधा डाले तो उसे वही ढेर कर देते है। रास्ता चलतो को लूटना, मारना यही तो हाथ करते है जेब काटना, हाथ पैर गले से जेवर उतारना भी यही हाथ करते है। रेलवे लाइन उखाडना, तारो को काट देना आदि उपद्रवो को भी यही हाथ जन्म देते है। हाथ जोड कर इज्जत भी हाथ करते हैं, और टोपी उछाल कर बेइज्जती भी यही हाथ करते हैं। दस्तावेजो को सही रूप मे भी यही लिखते हैं और उलटे रूप मे अलटा पलटी कर अनर्थ भी यही करते है। रोगी को औषधि पिला जीवित भी करते हैं, और विष पिला परलोक भी यही पहुँचाते हैं। इस प्रकार के असख्य पाप पुण्य के कामो को करते है। पाप कर्मो का फल दारुण दुख इन हाथो की बदौलत मानव को भोगना पडता है। नाना प्रकार के सुखो का मूल भी यह हाथ है। यह सब धर्म हस्तेन्द्रिय मण्डल मे आदान प्रदान रूप मे निहित हैं। यह धर्म जीवन के लिये कितना उपयोगी तथा अपरिहार्य है। कितनी बडी इसकी अर्थवत्ता है। समाधिकाल मे इसका प्रत्यक्ष करे और साथ ही ब्रह्म की चेतन सत्ता का भी साक्षात् कार कर। जिस के सन्निधान से यह हस्तेन्द्रिय भोग सम्पादन मे समर्थ है। ब्रह्मानुभूति को चिर स्थिर बनाने के लिये इस बात का ध्यान रखें कि भोगो मे अनासक्ति ही इस हस्तेन्द्रिय को कुकर्मो से रोक सकती है। इसी से सम्पादित भोगो मे आसक्ति भी जन्ममरण के दुखदायी चक्र म घुमाने वाली है। जिस मे सुख के क्षण थोडे होते है। अधिकतर तो उपार्जन रक्षणकृत दुख ही दुख होता है। अत पर-वैराग्य को धारण

कर इस शरीर बन्धन से छुटकारे का उपाय करें। पर वैराग्य से ही उस भगवान् के निरन्तर सान्निध्य का लाभ उठावे। स्वरूपस्थ हो मोक्ष लाभ करें।

(शंका) आपने अपने ग्रन्थ आत्म-विज्ञान मे स्थूल शरीर का जो पाँच-भौतिक वर्णन किया है उसमे क्रम पूर्वक कर्मेन्द्रियो और ज्ञानेन्द्रियों मे विशेष रूप से भूतो की प्रधानता दिखायी है। जैसे गुदा मे पृथिवी तत्त्व, उपस्थ मे जल तत्त्व, पाद मे अग्नि तत्त्व, हाथ मे वायु तत्त्व, वाणी मे आकाश तत्त्व प्रधान बताया है। इसी प्रकार ज्ञानेन्द्रियो मे भी प्रत्येक भूत की कुछ प्रधानता सी कथन की है। क्या इस सूक्ष्म शरीर मे भी इन्द्रियो मे पञ्चतन्मात्राओं की प्रधानता है।

(समाधान) जो नियम स्थूल शरीर मे है। वही नियम सूक्ष्म मे भी है। सूक्ष्म के आधार पर ही स्थूल शरीर मे वर्णन किया गया है। सूक्ष्मेन्द्रिय रज प्रधान अहंकार का परिणाम है। ये एक समान एक ही रूप मे दोनो स्थूल और सूक्ष्म शरीर मे रह कर अपना कार्य करती है। हस्तेन्द्रिय की अर्थवत्ता सूक्ष्म शरीर मे कम और स्थूल शरीर मे अधिक है। क्योंकि यहाँ कर्म और ज्ञान का विशेष उपार्जन करना होता है। एव भोग और मोक्ष भी सम्पादन करना होता है। तन्मात्रा लोक मे तो केवल भोग ही करना है।

इति समष्टि हस्तेन्द्रिय् मण्डलम्

इति द्वितीयाध्याये नवमः खण्ड.।

इति विशमावरणम् ॥

दशम खण्ड

१६ वाँ आवरण

समष्टि राजस-अहंकारिक वाक् इन्द्रिय मण्डल

पाँचो रूपो मे ब्रह्मानुभूति

समष्टि अहकारिक वाक् इन्द्रिय मण्डल समष्टि हस्तेन्द्रिय मण्डल के ऊपर है। ब्रह्म के बीच और आप के बीच नीचे से यह १५ वाँ आवरण है। १४ आवरण आप पार कर आये है। यह आवरण उत्तरोत्तर सूक्ष्म होते जाते है। वाणी पर सयम सर्वाधिक कठिन है। यह क्षण मे शान्ति और क्षण मे उपद्रव कर सकती है। फूलो का हार भी पहना सकती है। और थपड की मार भी।

इस का एक ही धर्म है– बोलना। यह बोलना समष्टि वाग् इन्द्रियमण्डल मे विद्यमान है, पर वहाँ प्रतीति का विषय नही। क्यो कि इसके उपयोग और व्यवहार का यहाँ अवसर नही। सूक्ष्म शरीरो मे यह धर्म व्यक्त होगा, और इह लोक वालो को स्थूल शरीर मे। योगी को सर्वत्र प्रत्यक्ष है। अभी तो इनका गोदाम भरा जा रहा है।

सृष्टि रचना के समय यह समष्टि वाग् इन्द्रिय मण्डल अन्य मण्डलो की भान्ति अपना एक स्तर बनाये रखता है। इस समष्टि वाक् इन्द्रिय के मण्डल रूप उपादान कारण से व्यष्टि सूक्ष्म वाक् इन्द्रिय परिणत होते है। सूक्ष्म शरीरो मे विद्यमान सूक्ष्म वाक्इन्द्रिय यही व्यष्टि वाक् इन्द्रिय है।

भगवान् की चेतना के सन्निधान से मण्डलो का यह निर्माण चक्र चलता रहता है। समष्टि वाक्इन्द्रिय मण्डल भी इस चक्र का एक अरा है। उसके भी अन्यो की भाँति पाँच रूप है। उन सब के साथ साथ निमित्त भूत भगवान् का भी समाधि द्वारा दर्शन कीजिये। और पर वैराग्य की अचूक औषध से उसे स्थायी बनाइये।

समष्टि वाग् इन्द्रिय मण्डल

प्रथम रूप मे ब्रह्मानुभूति

ॐ (वाग् इन्द्रिय का प्रथम रूप)

१ समष्टि वाग् इन्द्रिय मण्डल के स्थूल रूप मे—

यह अन्तिम कर्मेन्द्रिय मण्डल है। इस मण्डल का एक ही धर्म है–बोलना अर्थात् भावो का शब्दो द्वारा अभिव्यक्त करना। भाव तो सब बुद्धि के होते है, जो आत्मा के सम्पर्क से उत्पन्न होते हैं। वाणी उन्हे प्रकट कर देती है। यह धर्म समष्टि मण्डल मे वर्तमान है। पर इस की अभिव्यक्ति व्यष्टि सूक्ष्म इन्द्रिय म योगी के लिये और स्थूल मे भोगी जना को भी हो जाती है।

कर्मेन्द्रियो मे यह अन्तिम मण्डल है। यह भी अब तक वर्णित सभी मण्डलो मे सूक्ष्म होने के नाते व्याप्त है। बहुत हलके नारञ्जी रग का चमकदार स्तर। अब

कर्मेन्द्रिय मण्डलों से अधिक चमकदार है। इसमें सत्व की मात्रा सर्वाधिक है। सत्व की मात्रा अधिक होने से इस मे ज्ञान भी प्रचुर है। और रजोगुण के कारण क्रिया शीलता भी पर्याप्त है। वाणी का उपयोग कर्मेन्द्रियों में सर्वाधिक होते हुए अन्य हाथ, पैर, गुदा, शिश्न के समान इसका कोई स्थूल इन्द्रिय नही। जिह्वा है, जिह्वा को लोग वाणी कह भी देते है। जिह्वा शब्द का अर्थ भी पुनः-पुनः बुलाने वाली है, पर फिर भी जिह्वा वाणी नही है। यह तो रसना है। रसास्वादन इसका धर्म है। वाणी के बोलने में जिह्वा बड़ा भारी साधन है। इसके स्पर्श से ही सारे शब्द बोले जाते है। कही जिह्वा का अग्र भाग, कही मध्य, तो कही मूल भाग स्थानों को छूता है। जिह्वा के प्रधान सहायक होने पर भी जिह्वा वाणी नही। राजा के अनेक सहायक होते है। दायाँ बायाँ हाथ होते है, पर राजा 'राजा' ही होता है। सहायक कोई भी हों वाणी तो वाणी ही रहेगी। जिस प्रकार उच्चारण मे जिह्वा सहाय है, तालु, कण्ठ ओष्ठ, मूर्धा आदि भी तो सहायक हैं, यदि वे वाणी नही तो जिह्वा भी वाणी नही। भगवान् पाणिनी ने अपनी शिक्षा मे लिखा है—

"आत्मा बुद्धया समेत्यार्थान्, मनोयुक्ते विवक्षया।
सः कायाग्निमाहन्ति। सः प्रेरयति मारुतम्।
मारुतस्तूरसि चरन मन्द्रं जनयति स्वरम्॥"

पाणिनीय वर्णोच्चारण शिक्षा—

—आत्मा बुद्धि द्वारा अर्थो का संग्रह करता है। जब बोलना चाहता है तो मन को लगाता है। मन शरीर की अग्नि को आघात पहुँचाता है। टक्कर देता है उस आघात से वायु गति शील हो जाता है। उरः आदि स्थानों मे वायु घूमता हुआ स्वर को उत्पन्न करता है।' यह सारा मुख—उरः से ले कर ओष्ठपर्यन्त बुद्धिस्थ वाग् इन्द्रिय की स्थूल इन्द्रिय है। जिसमे ब्रह्मरन्ध्रस्थ वाग्इन्द्रिय शब्दों को उत्पन्न करती है। नाना प्रकार की सार्थक ध्वनियों को उत्पन्न करती है। देखिये प्रकृति नटी की विचित्र लीला। ब्रह्म-रन्ध्रस्थ श्रोत्रेन्द्रिय कर्णशष्कुली-अवछिन्न आकाश से शब्दों को ग्रहण करती है। दूसरी व.ी ब्रह्म-रन्ध्र मे बैठी सूक्ष्म वाग् इन्द्रिय आस्यावछिन्न आकाश से वर्णों को व्यक्त करती रहती है। यही तो तथ्य है कि शब्द का अधिकरण आकाश है। चाहे शब्द सुनना हो, चाहे बोलना हो, माध्यम आकाश ही रहेगा। 'मेरे घर में' मेरे घर से अवछिन्न आकाश मेरा हो गया। मैं उस मे किसी को आनेदूं या न आने दूं। ऐसे ही 'तुम्हारे घर से अवछिन्न आकाश तुम्हारा हो गया। तुम अपने आकाश मे किसी को आने दो न आने दो। इसी प्रकार आकाश तो एक ही है, पर अवच्छेदक भेद से कान सुनता है और मुख बोलता है। सुनने बोलने वाली तो सूक्ष्मेन्द्रिय है, यह तो उन के उपकरण हैं। इन उपकरणों से ही काम लें यह भी कोई नियम नही है। स्थूल शरीर में ही सूक्ष्मेन्द्रिय कान से भी सुनती है और माथे से भी सुनती है। सीधा बिना कान के। तनिक घड़ी को माथे पर लगा कर देखिये। कैसा साफ शब्द सुनाई देता है। इसी प्रकार योगी की तथा अभ्यासी की भी सूक्ष्म चक्षुः इन्द्रिय बिना आँख के गोलक के शरीर में बाहर भी सब देखती है। अन्य सूक्ष्म इन्द्रियों का भी यही स्वभाव, केवल अभ्यास द्वारा शक्ति को विकसित करने की आवश्यकता है इन्ही को दिव्य इन्द्रिय कहा जाता है। इसी प्रकार

की यह दिव्य श्रोत्र, दिव्य चक्षु, दिव्य रसना आदि इन्द्रियाँ है। इस प्रकार यह समस्त मुख-व्यापिनी आकाशरूपा स्थूल वाग् इन्द्रिय है।

इसका धर्म बोलना है, उच्चारण करना हे। वर्णो का अक्षरो का या ध्वनियो का। जिनमे वर्ण स्पष्टतया प्रतीत नही होते उन्हे हम ध्वनि कहते है। वर्णो को हम पहचान लेते है, ध्वनियो को जान लेते है, अनुकरण भी कर सकते है पर उनके अभिप्राय को नही समझते, इसलिये हम उन्हे बोली नही मानते।

बोली की समस्या आजकल के शब्द शास्त्रियो के लिये एक समस्या है। न सुलझ सकने वाली समस्या है। जिसे निराश हो आज का योरप छोड बैठा है। वाणी या भाषा सर्वप्रथम कैसे आयी इसका उनके पास कोई उत्तर नही। भगवान् से आयी ऐसा मानने को वे तय्यार नही, क्योकि फिर तो सबसे प्राचीन ऋग्वेद ही ईश्वर की वाणी सिद्ध हो जायेगा। भावाभिव्यक्ति का प्राथमिक और कोई उपाय बनना नही। इसलिय भाषा के मूल की खोज ही योरप ने छोड दी है और मूल ढूढने वाले को प्रमत्त कहने लग है।

यह जो पशु, पक्षी, कीट, पतग बोलते है इसको निरर्थक समझा जाता है। पर वनचारी शिकारियो ने कुछ और ही सिद्ध किया हे। जानवर भी मनुष्य के समान भाव अभिव्यक्त करते है। सिह का शिकार खेलने वालो को सिह मारना था। सिह वन मे था। पर सामने नहो आता था। शिकारियो ने चातुमती, सहवासीभलाषिणी सिहनी की उसे हरे होने के समय की ध्वनि को रेकार्ड पर चढाया हुआ था। उसी रेकार्ड को चढाया। और सिह कामातुर हो सिहनी की तलाश मे बाहर निकला और शिकार हो गया। आवाज भिन्न प्रकार की थी, जिसे सिह समझता था। उसमे सिहनी की भाव व्यञ्जना थी। इसी प्रकार जब सिह वन मे आ जाता है, तो पक्षी विशेष बोली वाल अन्य वनचरो को सावधान कर देते है। वे समझ लेते हैं, और छिपकर अपनी रक्षा कर लेते है। इस प्रकार पशु पक्षियो की अनेक घटनायें देखने मे आयी हैं, और इन वन्य शास्त्रियो ने उन्हे रेकाड किया है। महर्षि पतञ्जलि ने भी "सर्व भूत रुत ज्ञानम् विभूति पाद। सू १७। वाचस्पति मिश्र ने भी "सर्वेषा भूताना पशु मृग-सरीसृप वय प्रभृतीना यानि रुतानि (तानि जानाति)।" पशु, मृग, साप आदि तथा पक्षियो के रुत को जान लेता है। कादम्बरी म तो तोते से ही राजा को आशीर्वाद दिलाया है। है तो यह भी बोलियाँ ही। मनुष्य नही समझता तो क्या हुआ ? न समझने से बोली का बोलीपना समाप्त नही हो जाता। ससार म हजार प्रकार की तो मुख्य भाषाये है, लाखो उनकी अवान्तर भाषाय है। साथ मे रहने वाले मनुष्य एक दूसरे की बोली नही समझते। पजाबी, बगाली, मद्रासी, पहाडी आपस मे अपनी बोली बोल तो अन्य कुछ नही समझ सकने है। यद्यपि रहने वाले एक ही देश के है। फिर विभिन्न देशो की भाषाओ की तो बात ही क्या। रूसी, जर्मन, जापानी, चीनी, अग्रजी सब भाषाये सर्वथा भिन्न है।

इस प्रकार यह सब बोलियाँ वाणी का ही विषय है। वाणी का धर्म बोलना है। उच्चारण करना है। बुद्धि गत विचारो को यह वाणी ही प्रकट करती है। यह वाणी विचारो का आदान प्रदान करती है। पशु पक्षी तो खाना मिलने पर सभव है बिना वाणी के रह जायें, पर मनुष्य बिना वाणी का प्रयोग किये नही रह सकता। मौन

धारण के लिये साहस चाहिये। जब मौन धारण कर लेता है, तब लिखकर या संकेत में भावों को प्रकट करता है। जब इस पर भी संयम करना हो तो काष्ठमौन धारण करना होता है। न संकेत न लिखना।

जन साधारण के लिये वाणी ही व्यवहार का मुख्य साधन है। वाणी की क्लिष्टता और शिष्टता से व्यक्ति की योग्यता और स्तर तक जाना जाता है। मधुर सरस वाणी हृदय को आकृष्ट कर लेती है। पराये को अपना बना लेती है और अपने लिये प्राण तक न्योछावर करने को तय्यार कर लेती है। कटुवाणी झगड़ा, कलह, फिसाद, मुकद्दमे-बाजी तक करा देती है। खून खच्चर करा देती है। लाठी तलवार और बन्दूक तक की नौबत ला देती है।

वाणी से ही मनुष्य बुद्धिगत ज्ञान का प्रकाश करता है। कथा, सत्संग, व्याख्यान, सभा, जलसे सब इसी की तो करामात हैं। गाना, कविता करना, कहानी सुनाना इसी का ही तो रूप हैं। जीवित काल में जीवन के गहन से गहन अनुभवों को यह वाणी ही प्रकाशित करती है। इस वाणी का ही मूर्त रूप यह लिपि है। जिस प्रकार से टेढ़ी मेढ़ी होकर ध्वनि निकलती है, उसी प्रकार की टेढ़ी मेढ़ी लकीरें लिखकर यह लिपि बन गयी है। लिपि वाणी का मूर्तरूप है। यह वाणी का मूर्त-रूप जीवन काल में भी काम आता है, और जब मनुष्य की वाणी इस लोक में कानों से नहीं सुनी जा सकती उस समय वाणी का मूर्तरूप लिपि ही काम देती है।

वाणी के इस मूर्तरूप में ही तो विश्व के मनीषियों का अनुभव साहित्य भण्डार में सुरक्षित है। लाखों, करोड़ों, अरबों वर्ष की वाणी आज भी लिपि बद्ध मूर्त रूप में पढ़ी जा सकती है, उच्चारण की जा सकती है। लिपि में आने पर भी वाणी ने अपना उच्चारण धर्म नहीं छोड़ा। यदि वाणी का यह मूर्त रूप न होता तो वेद पुराण, बाइबिल, कुरान, तौरेत आदि की प्रचीनतम पुरानी विचारधारा मानव के सामने कैसे उपस्थित होती।

यह वाणी ही मानव के अन्तर भावों को अभिव्यक्त करती है। रागद्वेष, प्रेम, शत्रुता, क्रोध, दया आदि सब ही भावों को वाणी व्यक्त करती है। दिन रात चौबीस घन्टे यह वाणी विभिन्न प्रकार के नाना व्यापार करती है। वाणी का बड़ा भारी महत्व है, इस संस्कार के निर्माण में। सदा रहा है, और सदा रहेगा। वाणी स्वयं जड़ है, पर जिसके पास यह हो उसे यह चेतन बना देती है। वाणी भी जड, बुद्धि भी जड पर दोनों बोलती ज्ञान की बातें हैं। ज्ञान, विज्ञान, धर्म, नीति, राजनीति, इतिहास भूगोल, खगोल, भूगर्भ, पुरातत्व, भाषा विज्ञान, आदि समस्त विषयों का उल्लेख वाणी ही करती है।

यह वाणी के धर्म और रूप सब समष्टि मण्डल में निहित हैं, व्यवहार न होने से व्यक्त नहीं होते। व्यक्त होते हैं व्यष्टि में आकर। स्थूल शरीर में स्थूल शब्द बोले जाते हैं, और सूक्ष्म शरीरों में सूक्ष्म शब्द बोले जाते हैं, उसी को शब्द तन्मात्रा कहते हैं। इस लोक में स्थूल शब्दों से व्यवहार होता है। सूक्ष्म तन्मात्रा लोक में शब्द-तन्मात्रा से व्यापार होता है। शब्द सर्वप्रथम सूक्ष्म तन्मात्रा के लोक में होता है और पश्चात् स्थूल लोक में उच्चारण होता है।

(शका) क्या तन्मात्रा के लोक मे भी शब्द या वाणी से वार्तालाप होता है ?

(समाधान) जब तन्मात्रा के लोक मे सूक्ष्म शरीर और सूक्ष्मेन्द्रियाँ वर्तमान है तो शब्द तन्मात्रा से या सूक्ष्म शब्द से कुछ न कुछ व्यवहार तो मानना ही पडेगा। जब योगी इस लोक मे शब्द तन्मात्रा से काम ले सकता है, तो स्वर्ग मे क्या नही लेगा। योग भाष्यकार ने कहा है—'जिह्वामूले शब्द सवित्—जिह्वा के मूल भाग मे शब्द पर सयम करने से दिव्य शब्द की अनुभूति होती है। शब्दा का उच्चारण वाणी द्वारा होता है। तन्मात्रा के लोक मे भी सूक्ष्म वाग् इन्द्रिय द्वारा होता है। जैसे इस शरीर म भी जब अजपाजाप या मानस जाप किया जाता है तो सूक्ष्मेन्द्रिय वाग् ही सूक्ष्म बोली वालती है। जब यह पुस्तक लिख रहे है, उस समय भी तो सूक्ष्म वाणी ही काम कर रही है। स्थूल तो अवाक् है, नि स्तब्ध है।

यह समष्टि वाग् इन्द्रिय मण्डल का स्थूल रूप है। समाधि की सूक्ष्म स्थिति म इसका अनुभव कीजिये। और उसी अर्न्तहित भगवान् की सन्निधानता का अनुभव कीजिये जिसके निमित्त से यह सब परिणति हो रही है। यदि भगवान् के प्रत्यक्ष को बनाय रखना है, तो वाणी से वैराग्य धारण कीजिये इस द्वारा पाप्त होने वाले माया-जाल मे मत फँसिये। यह वैराग्य तरिण ही ससार सागर को पार कर मोक्ष प्राप्त करायेगी। वैराग्य को ही दृढता से सभाल रहिये।

समष्टि वाग इन्द्रिय मण्डल

द्वितीय रूप मे ब्रह्मानुभूति

(वाग् इन्द्रिय का द्वितीय रूप)

२ समष्टि वाग् इन्द्रिय मण्डल के स्वरूप म—

बोलना धर्म समष्टि वाग् इन्द्रिय मण्डल मे सदा वर्तमान रहता है। यह धर्म ही इस का स्वरूप है। इनका भी धर्म धर्मी भाव सम्बन्ध है। बोलना गुण है मण्डल गुणी है। गुण गुणी एक ही होते है। कभी अलग नही होते। बोलना धर्म का प्रत्यक्ष यहाँ समष्टि मण्डल म नही होता। जितनी भी वाणी है उसका उच्चारण व्यष्टि वाग् इन्द्रिया द्वारा होता है। व्यक्ति गत वाक् की उत्पत्ति समष्टि वाक् स ही होती है। व्यष्टि वाक् और इसके गुण का भी गुण गुणीभाव सम्बन्ध है।

(शका) वाणी क्या है ? बोलने को वाणी कहे तो रेडियो, फोनोग्राफ आदि भी तो बोलते है, क्या यह भी वाणी है।

(समाधान) नही यह वाणी नही है। यह तो वाणी की नकल है। उसकी प्रतिकृति है। मसाले को ऊँचा नीचा थोप कर वैसे ही ध्वनि निकाली गयी है। वह उर कण्ठ आदि स्थाना से वायु के सघर्पण से इच्छानुरूप उद्भूत नही की जा सकती। वाणी से इच्छानुसार भावा की अभिव्यक्ति हुआ करती है। रेडियो फोनोग्राफ आदि म तो ध्वनि की प्रतिकृति मात्र है। हाँ उन पर जो बोलने वाले होते हैं वह वाणी होती है। वाणी तो, वाणी कर्मेन्द्रिय का धर्म है। बिना वाक् कर्मेन्द्रिय के हम एक अक्षर का भी उच्चारण नही करा सकते हैं। मानव नक्ल कर सकता है। असल एक भी वस्तु आज

तक न बना सका। नकली फल बनाये पर असली फल एक भी न बना सका। वाणी से भी मानव नकल करता है, पर वह नकल नही रहती असल बन जाती है। यही वाणी मे और इन यन्त्रोच्चारित ध्वनियो मे भेद है।

(शंका) बोलना क्या है? जिसे आप वाणी कहते हैं? टेलीफोन की घंटी बोलती है, बाजा बोलता है, बांसुरी बोलती है, क्या यह सब भी बोली बोलते हैं?

(समाधान) नही टेलीफोन बाजे आदि की यह बोलियाँ नही हैं। यह ध्वनियाँ हैं। ध्वनियाँ तो बोली मे भी होती हैं, पर वे ध्वनिया सार्थक होती हैं। कई ध्वनियाँ मिलकर किसी पदार्थ को कहती हैं। वह वर्णों की समुदाय रूप ध्वनि सार्थक होती हैं। अतः उस स्फोट के अवयव वर्ण भी सार्थक होते है। जिसका समुदाय सार्थक है उसका अवयव भी सार्थक होता है। तिलों के ढेर से तेल निकलता है, तो उसके अवयव एक तिल से भी तेल निकलता है, चाहे वह थोड़ी हो मात्रा मे हो। रेत के मनो ढेर से एक बूंद तेल भी नहीं निकलता तो रेत के कण से क्या निकलना है। इसी प्रकार का वर्णों का समुदाय सार्थक है तो वर्ण भी सार्थक है। यदि समुदाय मे केवल एक ही वर्ण को सार्थक मानें तो शेष अनर्थक हो जायेंगे। यदि 'यूप' शब्द मे 'य्' ही सार्थक है तो अप अनर्थक हो जायेगा। अप सार्थक है तो य् अनर्थक हो जायेगा। इस प्रकार तो यूप, कूप, सूप, स्तूप, मे ऊप के कारण अर्थ-साकर्य हो जायेगा। सब वर्ण सार्थक हैं, इसीलिए उनका समुदाय भी सार्थक होता है। बस जो ध्वनि सार्थक, कुछ अर्थ वाली है, वही बोली है। बाजे, टेलीफोन, घण्टे आदि की ध्वनियाँ निरर्थक हैं, घन्टो बजाते रहो कोई अर्थ निकलता नहीं। उनमे कोई सकेत बना लिया जाये तो वह तो उसका अर्थ नहीं। वह तो काल्पनिक है अनित्य हैं। अनियमित है। एक ही ध्वनि से आप कुछ सकेत रख सकते हैं, दूसरा कुछ और ही रख सकता है। अत. व बोली नही।

ध्वनि शब्द का गुण है, जो आकाश मे रहती है। बोली भी रहती तो आकाश मे ही, आकाश मे ही सुनी भी जाती है, पर उस बोली का बोलने वाला शरीरधारी जीव होता है। यदि शरीर स्थूल हुआ तो बोली भी स्थूल होगी। शरीर सूक्ष्म होगा तो बोली भी सूक्ष्म होगी। अत. टेलीफोन आदि के शब्द का गुण ध्वनियाँ हैं बोली नहीं।

बाजा भी, बांसुरी भी गाना गाते हैं। गाने के स्वर मे स्वर और ताल मे ताल मिलाते हैं। पर वह भी बोली नही है। गाना तो किसी न किसी बोली मे है, पर बाजा किसी बोली को नही बोलता। बाजा तो ध्वनि के उतार-चढाव से लय या तरज निकालता है। गाना नही गाता। उस तरज पर सैकड़ो गाने गाते हैं। जब बाजा कोई तरज़ निकालता है तो सुनने वालो को उस तरज़ पर जो भी गाना आता होगा, बाजे मे वही सुनाई देगा। यदि सुनने वाले १०० हो, और एक ही तरज के भिन्न गाने सब को आते हो तो, एक बाजा सौ के सौ गानो के साथ एक ही बजेगा अत. बाजा भी लयात्मक ध्वनि निकालता है, बोली नही बोलता।

(शंका) समष्टि व्यष्टि वाग् इन्द्रिय का जो बोलना आप धर्म बताते हैं, वह कौन-सी भाषा का बोलना वाग् इन्द्रिय का धर्म है, क्या वह अनादि भाषा सस्कृत है?

(समाधान) नही वह बोलना प्राचीन भाषा सस्कृत का नही है। बस वह तो बोलना है। सामान्य धर्म है। यह भाषायें या बोली तो उसके परिणात्मक धर्म हैं।

माइक्रोफोन ने तो वोलना है, रेकार्ड ग्राप किसी देश की भाषा का, वोली का चढा द, वह उसे ही वजा देगा । उसका धर्म वोलना है । भाषा कौन-सी है इससे उसका प्रयोजन नही। मुँह का धर्म खाना है, दाँतो का चवाना, जो भी ग्रायेगा मुख उसे खायेगा, दाँत चवायेगे। चाहे वह खट्टा, मीठा, नमकीन, कठोर, कोमल कैसा भी हो इसमे उसका प्रयोजन नही। इस हिन्दी की वर्णमाला को ही ले लीजिए, यह वर्ण ध्वनियो को बताने वाले है। ग्राप किसी भी भाषा की ध्वनियो को इसमे लिखे । संस्कृत, प्राकृत, पाली, शूरसेनी, मागधी, ब्रजी, मराठी, गुजराती, वगाली, मलयाली कुछ भी लिख सकते है, इसी प्रकार समष्टि वाग् का धर्म वोलना है। कौन सी भाषा है इससे उसका प्रयोजन नही है। यह तो सामान्य ग्रौर विशेष परिणामो को समझने की वात है। प्रकृति, जल, ग्राकाश, प्रकाश सव के लिए है । यह हिन्दुग्रो के नल या कूएँ थोडे ही हैं, जो विशेष के लिए सुरक्षित हो। यही कारण है कि समष्टि वाग् इन्द्रिय मण्डल का विश्व भर के व्यष्टि विभिन्न देशो के मानव, तथा विभिन्न योनियो एव परिस्थितियों मे जीव इसी मण्डल के ग्राधार पर ग्रपनी ग्रपनी वाग् इन्द्रिय से ग्रपनी ग्रपनी वोली वोलते है। कभी किसी प्रकार प्रतिरोध उत्पन्न नही होता।

(शका) भगवन्! इस समष्टि वाग् इन्द्रिय मण्डल के प्रत्यक्ष के लिए किस-किस भाषा का जानना ग्रावश्यक है? तैरना सीखना हो तो पानी मे उतरना ही पडता है, वोलना हो तो कोई भाषा तो होनी ही चाहिये, वोलना विना भाषा के नही हो सकता?

(समाधान) समष्टि वाग् इन्द्रिय मण्डल के प्रत्यक्ष के लिये किसी भी भाषा का ज्ञानी होना ग्रावश्यक नही। गूँगा भी ग्रौर वाचाल भी, मौनी भी ग्रौर वाग्मी भी इसका प्रत्यक्ष कर सकता है। ग्रभ्यास करते-करते शब्द, ग्रर्थ, प्रत्यय (ज्ञान) के प्रविभाग पर ग्रलग ग्रलग सत्ता पर सयम करे तो सव मानव, पशु, पक्षी ग्रादि की वोली का ज्ञान हो जाता है। जब योगी योग से ग्रभ्यास करने पर सव भाषाग्रो को जान सकता है तो किसी एक भाषा को सीख कर ही योग क्यो सीखे। योग तो पृथिवी भर के मानवो के लिये खुला है। किसी भाषा, देश, धर्म या मत का इसमे प्रतिवन्ध नही है। वालक उत्पन्न होते ही वोलता है। सव का वालक वोलता है, किसी भी जाति का हो, उसका ग्रारभिक वोलना सामान्य वोलना है। ग्रग्रेज, रूसी, जर्मन, ग्रमरीकन चीनी, जापानी, सव वच्चे उत्पन्न होते समय एक ही वोली वोलते है, वही मौलिक बोली है। क्या नवजात शिशु का रोना सुनकर ससार का कोई भी भाषा विशेषज्ञ पहचान सकता है, किस देश का वालक जन्मा है। देव दारु किसी भी देश मे उत्पन्न हो रूप उस का एक ही देश के कारण ग्राकृति भेद नही। समष्टि वाग् इन्द्रिय मण्डल विश्वभर के लिए एक है। उससे व्यष्टि वाग् इन्द्रिय भी सव एक सी ही परिणत हुई, जिन का धर्म भी समान हैं। विषमता तो पीछे विशेष परिणामो मे ग्रायी है। वोलना पहले होता है, भाषा पीछे। सव प्राणी पहले वोलते है, जिसे सुनते ही हम कहते है, कोई वोल रहा है। भाषा तो पीछे का परिणाम है। इसलिए वोलने मात्र के लिये किसी की भाषा की ग्रावश्यकता नही। इस समष्टि वाग् इन्द्रिय मण्डल मे वोलना धर्म है। जिस के ग्राधार पर सव भाषाये बोली जाती है।

समष्टि व्यष्टि वाग् इन्द्रिय मण्डल के द्वितीय रूप मे धर्म-धर्मी के ग्रभेद का साक्षात् करना चाहिए ग्रौर उसम निमित्त रूप से वर्तमान भगवान् की सन्निधानता का

भी प्रत्यक्ष करना चाहिये। यह वाग् इन्द्रिय जहाँ इतना उपयोगी है वहाँ इसके मोह में फंस मृग अपने प्राण गंवा देता है। इसके स्वरूप को समझ पर वैराग्य से मोक्ष का मार्ग प्रशस्त बनाना चाहिए।

समष्टि वाग् इन्द्रिय मण्डल
तृतीय रूप में ब्रह्मविज्ञान
(वाग् इन्द्रिय का तृतीय रूप)

३. समष्टि वाग् इन्द्रिय के सूक्ष्म रूप में—

समष्टि सात्त्विक अहंकार ०·८ भाग + समष्टि तामस अहंकार ०·२ भाग और + समष्टि राजस अहंकार २·० भाग के सम्मिश्रण का परिणाम यह समष्टि वाग् इन्द्रिय मण्डल है। इस समुदाय के सम्मिश्रण से जो मण्डल बना है, वह अयुतसिद्ध द्रव्य है। तीनों अहंकार सामान्य और मण्डल विशेष का समुदाय अयुतसिद्ध है। यह परस्पर भेद से अनुगत अभेद रूप समुदाय है। यहाँ तीनों अहंकार कारण और वाग् मण्डल कार्य है। समष्टि राजस अहंकार की मात्रा सर्वाधिक होने से यह राजस अहंकार का परिणाम कहलाती है। यही समष्टि वाग् इन्द्रिय मण्डल का सूक्ष्म रूप है। समष्टि वाक् इन्द्रिय व्यष्टि वाक् का सूक्ष्म रूप है, कारण का कार्य के साथ सम्बन्ध होने से।

वाग् इन्द्रिय में अन्य कर्मेन्द्रियों की अपेक्षा सत्त्व का भाग सर्वाधिक है। इस लिये यह मण्डल सर्वाधिक ज्ञान प्रधान है। अतः वाग् भावाभिव्यक्ति में अत्यन्त निपुण है। इस सत्त्व की प्रधानता बनाये रखने से वाणी मधुर, प्रिय, एवं आकर्षक होती है। सात्त्विक पुरुष की वाणी सत्त्व प्रधान होती है। सात्त्विक वाणी सदा ज्ञान, ध्यान, धर्म, प्रेम, सहानुभूति एवं सौहार्द को व्यक्त करती है। सात्त्विक गुण की अधिकता ही अनन्त ज्ञान के भण्डार को वाणी द्वारा व्यक्त कराने में समर्थ होती है। इसी गुण के कारण वाणी स्वयं जड़ होते हुए कैसी-कैसी अद्भुत ज्ञान की गहरी बातों को दूसरों पर प्रकाशित कर देती है। वाणी अधिकाधिक सात्त्विक बने, इसी लिये राजस और तामस को दबाया जाता है। वाणी का कम प्रयोग करने से वाणी में सात्त्विकता बढ़ती है। वाणी जब सत्य का ही आश्रय करती है, यथार्थ भाव को ही प्रकट करती है तो—'सत्य प्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्' सत्य के साध लेने पर वाणी से जो कहता है, वही हो जाता है। 'अमोघास्य वाग् भवति' सत्याश्रयी की वाणी विफल नहीं होती। जो कुछ कह देता है, वही हो जाता है। सात्त्विक वाणी ही मनुष्य को प्रेय से श्रेयमार्ग की ओर लगाती है। प्रणवः एवं गायत्री आदि पवित्र मन्त्रों का जाप वाणी का सात्त्विक अंश है। सब इन्द्रियों को प्रधानतया ज्ञानेन्द्रियों को श्रेयः की ओर लगाने का श्रेय इस सात्त्विक जाप को ही है। वाणी में सात्त्विकता का आधान ही मानव को पशुता से देवता की ओर ले जाता है।

वाणी का राजस भाग नियन्त्रित रहे तो सात्त्विक क्रियाओं को आगे बढ़ा, सत्त्व को ही अभितः विकसित करता है। राजस स्वयं प्रधान हो जाये तो वाणी में तीक्ष्णता वाचालता और कटुता ले आता है। वाणी की कटुता बड़ी भयंकर होती है। शस्त्रों के जख्म तो भर जाते हैं, पर वाणी का जख्म कभी नहीं भरता। वाणी की कटुता लड़ाई,

झगडे, मुकदमे तक करवा देती है। सिर फुडवा देती है। रामायण और महाभारत का सून-पात कटु वाणी से हुआ। मन्थरा की कटु वाणी ने राम को १४ वर्ष वन मे वास करा दारुण दु ख दिये। द्रौपदी की कट-भाषिता ने महाभारत सा प्रलयकारी युद्ध करा दिया।

वाणी का तामस गुण भडक जाये, तो वाणी प्रभाव हीन हो जाती है। अधर्म अनाचार की बातें करती है, इस लोक को भी बिगाडती है, और परलोक का तो सत्यानाश कर देती है। अन्धतमस तन्द्रालु योनियो का कैदी बना देती है। सदा उत्साह हीनता और अकर्मण्यता की ही बातें करती रहती है। राजस अवस्था मे बोलना तीव्रतर हो जाता है। तामस अवस्था तो स्वाभाविक सा मौन ले आती है। व्यक्त भी होती है तो अव्यक्त शब्दो के रूप मे।

वाणी के ये तीनो रूप ब्रह्मरन्ध्रस्थ वाग् इन्द्रिय से अभिव्यक्त होते है। स्थूल मुख आदि मे वर्त्तमान वाग् इन्द्रिय तो उस के उपकरण मात्र हैं। वाणी मे ये धर्म उसके सूक्ष्म-रूप तीनो अहकारो से आये हैं। यह इन कारणो के भेद मे अभेद रूप से अनुस्यूत है। इस प्रकार कार्य की कारणता मे सूक्ष्मरूप से वाक् सम्बन्धित है। इस सूक्ष्मरूप की अनुभूति के साथ इस मे सर्वव्यापक भगवान् की भी सूक्ष्मरूप से अनुभूति करनी चाहिए। तब ही तो इस ब्रह्म की सब पदार्थो मे, सब अवस्थाओ मे सर्वव्यापकता की अनुभूति होगी। इस ब्रह्मानुभूति को स्थायी बनाने के लिये वैराग्य की भावना को दृढतर करते जाइये, कही ऐसा न हो कि वाणी के बाह्य आकर्षण मे ही आप रम जाये, शब्द और नाम तक ही आप की गति हो कर रह जाये, या मधुर तान मे ही खोये जा कर उस ब्रह्म को खो बैठें। अत. वैराग्य और ज्ञान की भावना को दृढ कीजिये यही आपका प्रकृति से बन्धन काटेगी।

समष्टि वाग् इन्द्रिय मण्डल

चतुर्थ रूप में ब्रह्म-विज्ञान

(वाग् इन्द्रिय का चतुर्थ रूप)

४. समष्टि वाग् इन्द्रिय के अन्वय रूप मे—

प्रकृति कार्य के स्वभाव वाली है। अतः अपने धर्म और गुणो को साथ लेकर प्रत्येक कार्य मे अनुगत होती है। इस समष्टि वाग् इन्द्रिय मण्डल मे भी प्रकृति ही परम्परा से अपने धर्म गुणो सहित अन्वित हुई है। प्रकृति के सर्व-प्रथम परिणाम महत्सत्त्व महत्रज. और महत्तमस् हैं। महत् तम से तीनो समष्टि अहकार परिणत हुए। उन तीनो ने मिलकर समष्टि वाग् इन्द्रिय स्तर को प्रस्तुत किया है। इस मण्डल मे प्रकृति का ज्ञान प्रधान रहा। स्थिति और क्रिया गौण रहे। वह ज्ञान क्रिया के मेल से 'बोलना' रूप-धर्म मे परिणत हुआ। बोलना धर्म इस समय मण्डल मे प्रतीत नही होता पर व्यष्टियो मे व्यक्त होगा।

इस प्रकार यह समष्टि वाग् इन्द्रिय मण्डल उत्पत्ति धर्म है। सदा से इसी रूप मे नही है। व्यष्टियों के परिणाम काल मे यह घट जाता है। व्यष्टियो के लय से यह बढ जाता है।

(शंका) बोलना क्रिया तो शब्द के होने पर होगी, शब्द-तन्मात्रा सृष्टि क्रम में पीछे बनती है, तो यह वाग् इन्द्रिय मण्डल पहले कैसे बन सकता है ?

(समाधान) बोलना एक धर्म है, जो अपने धर्मी में रहता है। बोलना एक क्रिया भी है। जिसकी बात आप कह रहे है। यह बोलना क्रिया तो कण्ठ, जिह्वा, तालु, मुख आदि के होने पर ही हो सकती है। अभी तो सूक्ष्म शरीर के अवयव भी पूरे नही हुए, कण्ठादि की रचना की बात तो बहुत दूर है। अतः यह 'बोलना' रूप धर्म कण्ठ आदि की क्रिया से भिन्न है, अन्य है। यह भी विचारणीय है कि जो व्यक्ति दिल के दौरे से मरा है, अभी कुछ क्षण पहले बोल रहा था। कण्ठ, तालु, मुख सब ही तो मौजूद है वह बोलता क्यों नही। आप कह सकते है, आत्मा नही इस लिये नही बोलता। पर जानना तो यह है, कि मृत होने की घोषणा से पूर्व, जब अभी आत्मा शरीर मे ही था, कण्ठ तालु आदि भी थे, तब क्यों नही बोलता था। बोलना एक क्रिया है। जिसे वाग् इन्द्रिय कराती है। बोलना उस वाग् इन्द्रिय का धर्म है या रूप हैं, धर्म धर्मी का अभेद है। बोलना धर्मरूप वाग् इन्द्रिय की प्रेरणा से, आदेश से यह उपकरण बोलने की क्रिया करते हैं। उस क्रिया से आकाश का धर्म शब्द प्रकाशित होता है। उस शब्द को प्रकाशित करने के लिये बोलना क्रिया की आवश्यकता है। बोलना क्रिया तो मुख आदि अवयवो में है, उस बोलना क्रिया का निमित्त आकाश नही। जब बोलना क्रिया का निमित्त भी आकाश नही है तो बोलना धर्म रूप वाग् इन्द्रिय की सत्ता के लिये आकाश निमित्त की क्या आवश्यकता। अतः यह शंका निराधार रही। वाग् इन्द्रिय मण्डल की सत्ता स्वतन्त्र है, जिसका धर्म बोलना है। जिस धर्म के कारण से बोलना क्रिया होती है।

इस प्रकार कारण-रूपा प्रकृति, तमस् और अहंकारो के रूप मे परिणत होती हुई, अब इस रूप से वाग् इन्द्रिय मण्डल मे परिणत हुई है। इस अद्भुत परिणाम दशा का योगी को साक्षात्कार करना चाहिये। इस अवसर पर ही निमित्त कारण भगवान् की सन्निधानता का समाधि में साक्षात्कार करना चाहिये। इस अन्वय अवस्था मे भी ईश्वर का विज्ञान प्राप्त करना चाहिये। किस प्रकार ईश्वर के सन्निधान या व्यापक होने से यह क्रम पूर्वक अन्वय प्राप्त हुआ, और चेतन ब्रह्म किस प्रकार इससे सम्बद्ध है। ब्रह्म के इस साक्षात्कार को भी आप वैराग्य की तीव्र भावना से ही दृढ़तम कर सकते हैं बिना वैराग्य तो यह सब बालू पर किला है, जो हवा की एक हलकी सी लहर से धराशायी हो जायेगा। अतः वैराग्य को दृढ करने से ही यह सब क्रिया-कलाप योगाभ्यास बद्ध मल होगा।

समष्टि वाग् इन्द्रिय मण्डल
पञ्चम रूप में ब्रह्म-विज्ञान
(वाग्इन्द्रिय का पञ्चम रूप)

५. समष्टि वाग् इन्द्रिय के अर्थवत्त्व रूप में—

समष्टि वाग् इन्द्रिय मण्डल का अर्थवत्त्व इसी में है कि इसी से व्यष्टि वाग् इन्द्रियों का निर्माण होता है, और उनसे समस्त सूक्ष्म शरीरो की रचना सम्पन्न होती है। उन्ही में से जो सूक्ष्म शरीर स्वर्ग-भोगी होते है, वे स्वर्ग में इन व्यष्टि इन्द्रियो

से सूक्ष्म भोग सम्पादन करते हुए वास करते हैं। जो सुख दु ख भोगी होते है वे लोक लोकान्तरा मे अपनी अपनी व्यष्टि वाग् इन्द्रियों के लिए भोग योनियो मे कृत सञ्चित कर्मो का भाग भोगते है। शेष ज्ञान सम्पन्न मानव शरीर म मोक्ष के प्रयत्नार्थ और मानव योनि के भोगा को भोगने के लिए व्यष्टि वाग् इन्द्रिय को लिए हुए आते है। यह मण्डल आकाश मण्डल मे अपनी परिधि मे सर्वत्र फैला हुआ है। इसीलिए सर्वत्र सूक्ष्म शरीरा का निर्माण हो जाता है। आवान्तर प्रलय म जब सृष्टि निर्माण होता है तो इसी मण्डल से वाग् इन्द्रिय का आहरण शरीर निर्माणार्थ होता रहता है।

बालना धर्म इस वाड् मण्डल मे प्रच्छन्न रूप से विद्यमान है उसकी अर्थवत्ता व्यष्टि वाग् की अर्थवत्ता से ही जानी जा सकती है। समस्त ससार का बोलने का व्यव हार स्थूल या सूक्ष्म वाणी के द्वारा ही होता है। वाणी व्यवहार दो ही बातो के लिए होता है भाग या अपवर्ग के लिए। अत वाग् भोग और अपवग का हेतु है। दिव्य रूप से वाणी का व्यवहार स्वर्ग लोक मे होता है। अदिव्य रूप से इस लोक म कार्यो को करती है। शब्दो का उच्चारण हाने पर वाक्यार्थ बोध इस के द्वारा ही होता है। गुरु वाणी द्वारा ही शिष्यो को अध्यापन कराता है। उपदेष्टा सन्यासी पुरोहित भी वाणी द्वारा ही उपदश करते है। जिम्से मानव मात्र का कल्याण अभीष्ट होता है, उस पर आचरण करने वाला का कल्याण भी इसी के कारण होता है।

उपनिषद् मे भी वाणी की बहुत प्रशसा की गयी है—

'वाक् प्राण भूत्वा मुख प्राविशत्'

—वाणी प्राण रूप होकर मुख मे प्रवेश कर गयी। वाग् इन्द्रिय का वास तो ब्रह्मरन्ध्र मे है। उसका व्यापार मुख म है। इसलिए मुख प्राविशत् कहा है। वाणी का सब व्यापार प्राण पर आश्रित है। प्राण के द्वारा ही सब उच्चारण व्यवहार होता है अत मानो वाणी प्राण रूप होकर मुख मे प्रवेश कर गयी 'मारतस्तूरसि चरन् मन्द्र जनयतिस्वर— वायु ही हृदय मे सचार करता हुआ वाणी को उत्पन्न करता है।' (पाणिनीय शिक्षा)

प्राणी अपनी भावाभिव्यक्ति वाणी द्वारा ही कर सकता है। हर्ष विषाद, सुख-दु ख, क्रोध, सन्तोष, दया सब ही भावो की अभिव्यक्ति वाणी द्वारा होती है। मरणासन्न व्यक्ति की जब वाणी अवरुद्ध हो जाती है, और वह अपने भाव तक प्रकट करन म असमर्थ होता है, कुछ कह नही पाता, कहना बहुत कुछ चाहता है। अपने जीवन की कमाई अपना को सौंपना चाहता है। जीवन का अनुभव, सार, तत्त्व सब कुछ प्रकट करना चाहता है। पर लाचार एक अक्षर भी न बोल पाता तो चार चार आसू रोता है। सास फूली जाती है। देखने वाल भी विषण्ण हुए जाते हैं ऐसा विषाद वाणी के अपने व्यापार को छोड देने पर होता है।

अव्यक्त वाक् प्राणी भी अपनी आन्तर व्यथा को करुणामयी वाणी से व्यक्त करते हैं। सिंह जैसा हिंसक जानवर अपनी दीन दशा को करुणामयी वाणी म व्यक्त करने पर मजबूर हाता है। नन्हा-सा शिशु भी अपनी भूख प्यास को तातली वाणी म व्यक्त न कर पाये तो माँ अपने धन्धे म उसे खिलाना पिलाना भूल जाये। वाणी जहाँ शिशु के जीवन का आधार है वहाँ मानव जीवन सारा ही इससे ओत-प्रोत है। जीवन के प्रत्येक स्तर म वाणी की महत्ता है। वस्तु खरीदनी हा वाणी की महत्ता है। यदि मुख

से नही बोलते तो दुकानदार कैसे समझेगा, आप क्या लेना चाहते है। उसके झुझलाकर पूछने पर आपने हाथ से सकेत कर बता भी दिया कि अमुक वस्तु लेनी है। दुकानदार ने पूछा कितनी लेनी है। वाणी है नही, या उपयोग नही करना कैसे समझायें ? लेनी चार आने की थी। पास मे अठन्नी थी। बोलना है नही, मजबूर अठन्नी दे, जितनी वस्तु दी लेकर चले आये, न भाव जान सके न तोल। बिना वाणी व्यवहार चल ही नही सकता। बिना वाणी व्यापारी से कैसे व्यापार होगा। कैसे भाव ठहरेगा। कैसे आर्डर दिया जायेगा। आदि।

वाणी के सहारे ही देश-विदेश की, देखे बिन देखे की, जाने अजाने प्रदेश की हजारों मील की यात्रा सुखद हो जाती है। इस प्रकार वाणी से हजारो नित्य नये अनुभव होते हैं। जो लोग उतनी दूर नही जा सकते उनको वाणी द्वारा ही तो सब समझाया जाता है। वेद शास्त्र इतिहास पुराणो मे निहित अरबों वर्षो का अनुभव, ज्ञान विज्ञान इस काल के मानव तक वाणी के द्वारा ही तो प्राप्त हो सका है। स्पुतनिकों द्वारा आकाश यात्रा जान जोखों मे डाल लाखो रुपया व्यय कर, हजारो व्यक्तियो के परिश्रम के आधार पर कुछ ही व्यक्ति कर पाये है, वह सब अनुभव वाणी देवी की कृपा से ही तो बिना किसी परिश्रम के ही साधारण व्यक्ति को प्राप्त हो जाता है। शत्रु मित्र देश संसार की समस्याओ को सुलझाने का यत्न इस वाणी द्वारा ही करते हैं। इस वाणी के प्रयोग ने महाभारत सा ससार सहारक युद्ध कराया। वर्तमान युग के ससार का पहला और दूसरा विश्व-युद्ध नरसहार का कारण भी इसी वाणी द्वारा बना। हिरोशिमा पर एटम बम भी इसी वाणी के आदेश से गिराया गया। वह युद्ध विराम भी इसी वाणी के द्वारा हुआ। आज भी तीसरे विश्व-युद्ध की ज्वाला भडकी हुई है, और उसे भी अभी तक यह वाणी ही रोके हुए है। अन्तिम क्षण तक वाणी का प्रयोग कर युद्ध को रोका जा सके इसके लिए बडे-बडे राष्ट्रो के राष्ट्रपतियो का टेलीफून सम्बन्ध जोड दिया गया है। जल और स्थल से वाणी का प्रयोग कर मित्र राष्ट्र वार्तालाप कर सकते है, पर शत्रु चाहे तो दोनो का सम्बन्ध तोड सकता है, ऐसे साधन तो विज्ञान ने उपस्थित कर दिये हैं, पर आकाश के माध्यम से टैलस्टार द्वारा हजारो मील दूरी पर बात करने मे बाधा के साधन विज्ञान के पास अभी नही है, अत टैलस्टार द्वारा मित्र राष्ट्रो ने वाणी के प्रयोग की योजना चालू की है।

वाणी का प्रयोग ऊँचे-से-ऊँचे स्तर, और नीचे-से-नीचे स्तर के लिए अनिवार्य है। वैज्ञानिको ने इस प्रकार वाणी के प्रयोग को अक्षुण्ण बनाने के लिए भागीरथ प्रयत्न किया है, उधर प्राकृतिक अनुराग से विरक्त परम वैराग्यवान योगी भी स्थूल वाणी का सयम द्वारा प्रयोग बन्द कर सूक्ष्म वाणी के प्रयोग को इतना विकसित कर लेता है, कि हजारो मील की दूरी पर भी बिना किसी प्रकार के बाह्य सम्बन्ध के अपने हार्द-भावों को भेज सकता है। अपने शिष्य का मार्ग प्रदर्शन कर सकता है। जिसको चाहे अन्य समाचार भेज सकता है। आज के विज्ञान ने वाणी का ही सम्बन्ध सदा बनाये रखने के लिए टेलीफून, वायरलेस, टेलीप्रिन्टर आदि की व्यवस्था की हुई है। मानव [illegible] भोगवाद मे तो वाणी को एक क्षण के लिए भी पृथक् नहीं किया जा सकता। [illegible] का भोगात्मक रसास्वादन करने के लिए फोनोग्राफ, रेडियो, माइक्रोफोन [illegible]

आदि का आविष्कार किया गया। एक ने एक बार बढ़िया गाना गाया उसे ही प्लेट पर चढ़ा सदा के लिए सुरक्षित कर लिया। राष्ट्रपिता गाधी आज नही, पर उनकी वाणी आज भी आकाशवाणी से कभी कभी प्रसारित की जाती है। विदेश स्वदेश के राष्ट्र नताओ की वाणी आज सुरक्षित कर ली गयी है।

इस वाणी का मानव जीवन से अविच्छेद्य सम्बन्ध है। स्कूल, गुरुकुल, पाठशाला विद्यालय, महाविद्यालय कालिज, यूनिवर्सिटियॉं इस वाणी के प्रचार केन्द्र है। जहाँ ससार भर मे वाणी के परिणामो का प्रशिक्षण होता है, और साथ ही उसी वाणी द्वारा हजारो प्रकार के विषयो का प्रशिक्षण होता है। मानव विज्ञान की कोई सीमा नही। ससार भर के देशो मे एक से एक बढकर विद्वान् हुआ है। उन्होने अपनी विद्या का प्रकाश अपने देश की वाणी मे किया है। सब देश सब विद्वानो के विचारो एव विज्ञान से लाभ उठाने के लिए अपनी अपनी वाणी से अनुवाद करना चाह रहे है। उसके लिए यन्त्रो का भी आविष्कार किया है। एक ही यन्त्र कई-कई भाषाओ मे एक साथ ही वाणी का अनुवाद कर सके। इस प्रकार वाणी की अर्थवत्ता दिन प्रतिदिन अधिक अनुभव की जाने लगी है। इसके लिए भौतिक विज्ञान का तो उपयोग किया जा रहा है, पर सर्वकामधुक्, वाणी के मूल का ज्ञाक कराने वाली योग-प्रक्रिया को क्रियात्मक रूप देने की ओर ससार का ध्यान नही है। भारतीय योगियो पर यह भार है, कि स्वल्प मे आत्म-सन्तुष्टि प्राप्त कर परमवैराग्य के नाम पर विज्ञान के आविष्कार से विमुख न हो। परम्परागत योग विद्या बराबर विकसित करते जाय, विज्ञान को भी चकित करने वाले रहस्यो का उदघाटन कर ससार के समक्ष उपस्थित कर।

वाणी की यह सब अर्थवत्ता समष्टि वाग् इन्द्रिय मण्डल मे निहित है उसी से व्यष्टि मे आयी है। समष्टि वाग् इन्द्रिय का मण्डल तन्मात्राओ के मण्डल से भी सूक्ष्म है। उनमे ओत प्रोत है, और उनसे ऊपर भी है। शेष कर्मेन्द्रियो के मण्डल से सूक्ष्म है, उनमे भी है और उनसे ऊपर भी है, क्योकि यह रज प्रधान अहकार का कार्य है, और सर्व प्रथम कार्य है। यह उपादान कारण के रूप मे सदा सूक्ष्म आकाश मण्डल मे ठहरा है। व्यष्टि वाक् को उत्पन्न करता रहता है। भोग और मोक्ष का साधन बना हुआ है। वास्तव मे इतना सूक्ष्म मण्डल होते हुए भी एक प्रकार से ब्रह्म की सूक्ष्मता का आवरण किये हुए है। इस आवरण को भेदन करके ही ब्रह्म की सूक्ष्मता का अनुभव कर सकते हैं। जैसे राजा अपनी रक्षा के लिए किला बनाता है, और उसके चारो तरफ कई-कई कोट बनाया करता है। प्रत्येक कोट मे दरवाजे रखता है। इसी प्रकार ब्रह्म के ऊपर भी प्रकृति के कार्यों के अनेक कोट बने हुए हैं। अपनी स्थूलता के कारण सूक्ष्म से सूक्ष्म ब्रह्म को आच्छादित किये हुए है। यही कारण है कि उसके अन्वेषण और विज्ञान मे देरी लगती है। सर्वसाधारण की वहाँ प्रगति नही होती है। गीता मे कहा भी है—'मनुष्याणा सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये'—सहस्रो लोखो मनुष्यो मे कोई विरला ही उसकी प्राप्ति कर पाता है। यत्न तो बहुत करते है। परन्तु सफलता किसी विरले को ही मिलती है क्योकि गुरु की कृपा भी होनी चाहिए, कोई बाधा भी उपस्थित न हो, और कटिबद्ध होकर योगी लग जाये, तब ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है।

समष्टि वाग् इन्द्रिय मण्डल की इस अर्थवत्ता मे भी ब्रह्म का अनुभव करना है। ब्रह्म के सन्निधान से ही इस मण्डल मे यह अर्थवत्ता व्यापी है। इस अर्थवत्त्व रूप के

साथ ही योगी को ब्रह्म का प्रत्यक्ष होता है। यह वाणी स्वर्ग और नरक दोनो का निमित्त बनती है। अत. इस वाणी के आकर्षण और प्रलोभन मे योगी को फँसना नही चाहिये। वाणी-निमित्तक ससार के भोगो से परम वैराग्य प्राप्त कर ब्रह्म-ज्ञान मे लगा रहना चाहिए।

इति समष्टि वाग् इन्द्रिय मण्डलम्।

इति द्वितीयाध्याये दशमः खण्ड।

इत्येकोनविंशमावरणम्॥

एकादश खण्ड

१८ वा प्रकरण

सात्त्विकाहंकारिक सृष्टि अन्ववतरणिका

पाचो ज्ञानेद्रियो के पाच मण्डल

योगिन् ! आपने द्वितीय अध्याय के दशम खण्ड तक प्रदर्शित आत्मा और भगवान् के बीच पडे हुए पन्द्रह आवरणो के स्वरूप को समझ लिया है। इनके वास्तविक स्वरूप को हृदयगम करना अत्यन्त आवश्यक है। आत्मा या परमात्मा की सजातीयता इन मे तनिक भी नही है। चित्त और अहकार परिवेष्टित आत्मा अपने आपको शरीरा भिन्न समझ बैठता है। शरीर के व्यामोह से यह प्रकृति की रग रलियो मे रम जाता है। स्वरूप से सुख मय प्रतीयमान क्षणो के लिए अनन्त दु ख राशि के खारे ससार सागर म गोते खाता रहता है। पौन पुन्येन दारुण दु ख-दानव के विकराल अहर्निश खुले जबाडे मे गिरता है। त्राहि-त्राहि कर उससे निकलना चाहता है पर अज्ञान वश बचने के लिये भी पुन उसी मे जा फसता है। अज्ञानवृत जीव के लिये यह सृष्टि रचना विकराल जवाडा बन जाती है। ज्ञानी तत्त्व वेत्ता जब तत्त्व को भली भान्ति समझ लेता है तो इसी प्रकृति को अज्ञान भवर से पार होने के लिये नौका के रूप मे प्रयोग करता है, और पार उतर जाता है।

पाचो ज्ञानेन्द्रियो के मण्डल सात्त्विक अहकार के परिणाम हैं। सात्त्विक होने से ज्ञान युक्त और प्रकाशमय है। अन्दर का प्रकाश दिव्य ज्योति भगवान् तक पहुचने के लिए टार्च का काम देती है। पर यही टार्च यदि डाकू या चोर के हाथ मे पड जाये तो डाके और चोरी मे सहायक होती है। इन्ही मण्डलो के परिणाम व्यक्त धर्मा, व्यष्टि ज्ञानेन्द्रियो से वर्तमान युग का वैज्ञानिक प्रकृति नटी के मोहिनी रूप मे फसता जा रहा है। उन की आविष्कृत सुख-सुविधाओ से ससार विलासिता के गहरे गढे मे गिर गया है। जहाँ आचार अनाचार और शिष्टता के विवेक को भी खो बैठा है। 'भोगार्थंहिदृश्य केवल को शत प्रतिशत अपना लिया गया है। भोगे रोग-भय, और भोग भावी नारकीय योनियो के निमित्त हैं, इस बात को भुला दिया है। भावी की क्या बात इसी जीवन मे यह भोग तृष्णा, डाह, असहिष्णुता, राग, द्वेष और पापाचार का मूल बन मानव की मानवता को ही समूल उखाड रहे है। सर्व सहारक विश्व युद्ध की विभीषिका मानव मात्र को त्रस्त किये है। योगिन् ! इस भयावह अन्धकार मय समय मे तुम्हे यह अध्यात्म पाँच जन्य नाद गुञ्जाना है सावधान और सतर्क हो आगे बढो !

पाचो ज्ञानेन्द्रियो के मण्डल पहले पन्द्रह मण्डलो से अधिक रहस्यमय जटिल और पत्तीदार हैं। तनिक असावधानी इनके व्यवहार मे हुई तो स्वर्ग से पाताल मे गिराने वाली सिद्ध होगी। सभल कर चलते रहेतो विजय श्री तुम्हारे हाथ है। भोगवाद से त्रस्त विश्व मानव आज भी पुरातन भारत की ओर निहार रहा है। जहाँ आप इसमे सफल हो भूले भटके ससार का मार्ग प्रदर्शन करेंगे, वहाँ आत्मकल्याण होगा। उस पर ब्रह्म

की झाकी और अखण्ड दर्शन का असीम सुख का लाभ भी होगा, जिसके लिये आप की यह मानव जीवन की साध है।

घ्राण, रसना, आख, त्वचा और कर्ण यह पाच ज्ञानेन्द्रियो के समष्टि मण्डल हैं। जिनका आपने इन खण्डो मे अध्ययन करना है। और अपनी योग-समाधि मे साक्षात्कार करना है। इन्ही मण्डला से पाचो ज्ञानेन्द्रियाँ व्यष्टि रूप मे प्रत्येक देही को प्राप्त होती हैं। वह देही चाहे भोग योनि मे रहे, चाहे कर्म योनि मे, चाह उभय योनि मे। सात्त्विक, राजस, तामस, तीनो अहकारो के यह मण्डल परिणाम हैं। सात्त्विक अहकार तीनो मे प्रधान रहता है, कर्मेन्द्रिय और तन्मात्राओ की अपेक्षा सात्त्विक अहकार की मात्रा अधिक होती है। यह मण्डल भी आकाश मे ही स्थित हैं। पहले १५ मण्डलो से ऊपर हैं। और उन पन्द्रह मे भी सूक्ष्म होने से व्याप्त हैं। आपस मे भी रचना क्रम से व्याप्त हैं। घ्राण मे चारो, रसना मे अगले तीनो, आख मे अगले दोनो त्वचा म केवल कर्ण, कर्ण सब मे, पर अपने मे अब तक वर्णित १६ की अपेक्षा अकेला ही रहता है। हा इन से पहले निर्मित आगामी प्रकरणो मे आने वाले मण्डल इसी तारतम्य से सब मे व्याप्त हैं।

अहकारिक सृष्टि मे इन मे सत्त्व की अधिकता होने से जड होते हुए भी चेतन सी भासती है। भले बुरे का विवेचन कराती हैं। बुद्धि से इनका सम्पर्क अधिक होता है। व्यष्टि सूक्ष्म ज्ञानेन्द्रिया रहती भी बुद्धि मण्डल मे ही हैं। राजस अहकार के सहयोग से ज्ञान सम्पादन मे बहुत तीव्रता दिखाती हैं। तमोगुण इनका नियन्त्रित रखता है। इन तीनो अहकारो का जा तारतम्य ध्यान दृष्टि मे आया है, वह निम्न प्रकार है—

समष्टि अहंकारो का भाग

समष्टि ज्ञानेन्द्रिय	१ स० सात्त्विकाहार	२ समष्टि राजसाहकार	३ समष्टि तामसाहकार
१ समष्टि घ्राण	११	९	१०=३०
२ ,, रसना	१२	१०	८=३०
३ ,, नेत्र	१३	११	६=३०
४ ,, स्पर्श	१४	१२	४=३०
५ ,, श्रोत्र	१५	१३	२=३०

इन मे कर्मेन्द्रियो की अपेक्षा सात्त्विक अहकार की मात्रा अधिक है। अत यह ज्ञान प्रधान हैं। यह पाचो ज्ञानेन्द्रिया प्रत्येक देही को व्यष्टि रूप मे व्यक्तिगत मिली हैं। यही मोक्ष पर्यन्त सूक्ष्म शरीर मे जीव के साथ रहती हैं। आत्मा का मोक्ष हो जाने पर यह अपने-अपने समष्टि मण्डल मे सम्मिलित हो जाती हैं।

अहकार-त्रय के न्यूनाधिक मिश्रण से ज्ञानेन्द्रियो के मण्डल परिणाम भाव को प्राप्त हुए हैं। समष्टि मण्डल से यह व्यष्टि परिणत हुए हैं। जो गुण धर्म-कर्म समष्टि मे हैं वे ही व्यष्टि मे आये हैं, क्योकि कार्य मे कारण के गुण ही अनुस्यूत होते हैं। समष्टि मे यह धर्म व्यवहार भाव के कारण, दृष्टि गोचर नही होते, व्यष्टि मे तो स्पष्ट रूप से मिलते ही हैं। इसी लिये समष्टि मण्डला की व्याख्या कुछ व्यष्टि के सहारे भी करनी

पडती है। चित्र स० ६ मे देखें।

ज्ञानेन्द्रिया भी भोग और अपवर्ग दोनो का साधन है। मिली तो वास्तव मे प्रकृति का विवेक कर उस से उपरत होने के लिये है। पर प्रकृति का विकार होने से प्रकृति के चक्कर मे फस जाती है और प्राकृतिक विकारो के निर्माण और विविधता मे सारा समय नष्ट हो जाता है। फिर उस मे ऐसा लगाव हो जाता है कि इन सब के दु ख वहुल होते हुए भी उन मे सुख की अभिलाषा मे फसा रहता है। सुख की उपलब्धि न होने पर भी उन मे फसा ही रहता है। यही अज्ञान है, यही मोह है। विवेक द्वारा इसे दूर किया जा सकता है। इस मोह के दूर हो जाने पर यह इन्द्रिया अपवर्ग की साधिका वन जाती है। तथ्य ज्ञान उत्पन्न कर बहुत शीघ्र वैराग्य के प्राङ्गण मे लाकर खडा कर देती है। उस समय समष्टि का भी साक्षात् होने लगता है। और इन सब का अपवर्ग साधकत्व ही सिद्ध हो जाता है। समष्टि ज्ञानेन्द्रियो मे ब्रह्मोपासना का यह क्रम इन्ही का निर्देशक है। ब्रह्म साक्षात्कार की पूर्णोपलब्धि पर वैराग्य से ही सम्पन्न होगी। बिना वैराग्य तो यह केवल इन्द्रजालिक का छलावा है। गुरु की कृपा से गुरु के सान्निध्य मे तो सफलता ही सफलता दिखती है। दूर हटे कि दीवा गुल। बिना वैराग्य के तो यही होना है और क्या हो सकता है। यह विद्या तो वैरागियो की है, रागियो मे वितरण करना तो भीलनी के आगे मोतियो का बखेरना है। वह मोतियो को क्या जाने। उसे तो अपनी कण्ठी के लिये मू गा ही चाहिए। इस लिये यदि वास्तव भगवान् के लिये तडप है तो उसी के हो कर रहिये। प्रकृति नटी के राग रग से अपने को दूर हटाइये।

समष्टि ज्ञानेन्द्रियो के मण्डलो का उपभोग भी समष्टि कर्मेन्द्रियो के मण्डलो की भान्ति ही होता है। अब पाँचो समष्टि ज्ञानेन्द्रियो के मण्डलो का भी पाचो रूपो मे क्रमश साक्षात्कार कीजिये। जिस से स्पष्ट हो जायेगा कि यह सब पसारा आनन्द रहित जड प्रकृति का ही है, और वह भी भगवान् के सन्निधान से। इस प्राकृतिक लीला के प्रत्यक्ष मे उस लीला के सूत्रधार भगवान् के सन्निधान का भी प्रत्यक्ष हो जायेगा। -

समष्टि घ्राणइन्द्रिय मण्डल

पाँचो रूपो में ब्रह्मविज्ञान

समिष्टि घ्राणेन्द्रिय मण्डल सात्त्विक अहकार-प्रधान है। समष्टि कर्मेन्द्रि मण्डलो के ऊपर यह ज्ञानेन्द्रियो के समिष्ट-मण्डल है। समष्टि ज्ञानेन्द्रिय मण्डल मे घ्राणेन्द्रिय समष्टि मण्डल सबसे पहला है। इस मण्डल की अपनी पृथक् सत्ता भी है। यह मण्डल

चित्र स० ६ मे न० १ समष्टि सत्व प्रधान अहकार अपने सहकारी कारण रज तम अहकार के साथ मिलकर क्षोभ को प्राप्त होकर बडी बडी विशाल तरङ्गें उत्पन्न करते हुए व्यष्टि ज्ञानेन्द्रियो की उत्पत्ति कर रहा है।

न० २ मे प्रशान्त क्रिया रहित व्यष्टि ज्ञानेन्द्रियो को दिखाया गया है।

न० ३ म क्रिया शील भोग और मोक्ष प्रदान करने मे समर्थ सूक्ष्म दिव्य ज्ञानेन्द्रियों को दिखाया गया है। जो कि स्थूल और सूक्ष्म शरीरो म रहकर भोग और मोक्ष प्रदान करती हैं।

इस चित्र म से केवल एक ही समष्टि ज्ञानेन्द्रिय को उत्पन्न होते हुए दिखाया गया है शेष चारो को भी इसी प्रकार समझ लना चाहिये।

चित्र संख्या ६

समष्टि सत्व अहंकार से व्यष्टि ज्ञानेन्द्रियों की उत्पत्ति

पडती है। चित्र स० ६ मे देखें।

ज्ञानेन्द्रिया भी भोग और अपवर्ग दोनो का साधन है। मिली तो वास्तव मे प्रकृति का विवेक कर उस से उपरत होने के लिये है। पर प्रकृति का विकार होने से प्रकृति के चक्कर मे फस जाती है और प्राकृतिक विकारो के निर्माण और विविधता मे सारा समय नष्ट हो जाता है। फिर उस मे ऐसा लगाव हो जाता है कि इन सब के दु ख-बहुल होते हुए भी उन मे सुख की अभिलाषा मे फसा रहता है। सुख की उपलब्धि न होने पर भी उन मे फसा ही रहता है। यही अज्ञान है, यही मोह है। विवेक द्वारा इसे दूर किया जा सकता है। इस मोह के दूर हो जाने पर यह इन्द्रिया अपवर्ग की साधिका बन जाती है। तथ्य ज्ञान उत्पन्न कर बहुत शीघ्र वैराग्य के प्राङ्गण मे लाकर खडा कर देती हैं। उस समय समष्टि का भी साक्षात् होने लगता है। और इन सब का अपवर्ग-साधकत्व ही सिद्ध हो जाता है। समष्टि ज्ञानेन्द्रियो मे ब्रह्मोपासना का यह क्रम इन्ही का निर्देशक है। ब्रह्म साक्षात्कार की पूर्णोपलब्धि पर वैराग्य से ही सम्पन्न होगी। बिना वैराग्य तो यह केवल इन्द्रजालिक का छलावा है। गुरु की कृपा से गुरु के सान्निध्य मे तो सफलता ही सफलता दिखती है। दूर हटे कि दीवा गुल। बिना वैराग्य के तो यही होना है और क्या हो सकता है। यह विद्या तो वैरागियों की है, रागियो मे वितरण करना तो भीलनी के आगे मोतियों का बखेरना है। वह मोतियो को क्या जाने। उसे तो अपनी कण्ठी के लिये मू गा ही चाहिए। इस लिये यदि वास्तव भगवान् के लिये तडप है तो उसी के हो कर रहिये। प्रकृति नटी के राग रग से अपने को दूर हटाइये।

समष्टि ज्ञानेन्द्रियो के मण्डलो का उपभोग भी समष्टि कर्मेन्द्रियो के मण्डलो की भान्ति ही होता है। अब पाँचो समष्टि ज्ञानेन्द्रियो के मण्डलो का भी पाचो रूपो मे क्रमश साक्षात्कार कीजिये। जिस से स्पष्ट हो जायेगा कि यह सब पसारा आनन्द रहित जड प्रकृति का ही है, और वह भी भगवान् के सन्निधान से। इस प्राकृतिक लीला के प्रत्यक्ष मे उस लीला के सूत्रधार भगवान् के सन्निधान का भी प्रत्यक्ष हो जायेगा। -

समष्टि घ्रणाइन्द्रिय मण्डल

पाँचो रूपो में ब्रह्मविज्ञान

समिष्टि घ्राणेन्द्रिय मण्डल सात्त्विक अहकार-प्रधान है। समष्टि कर्मेन्द्रि मण्डलो के ऊपर यह ज्ञानेन्द्रियो के समिष्ट-मण्डल है। समष्टि ज्ञानेन्द्रिय मण्डल मे घ्राणेन्द्रिय समष्टि मण्डल सबसे पहला है। इस मण्डल की अपनी पृथक् सत्ता भी है। यह मण्डल

चित्र स० ६ मे न० १ समष्टि सत्व प्रधान अहकार अपने सहकारी कारण रज. तम अहकार के साथ मिलकर क्षोभ को प्राप्त होकर बडी बडी विशाल तरङ्गें उत्पन्न करते हुए व्यष्टि ज्ञानेन्द्रियो की उत्पत्ति कर रहा है।

न० २ मे प्रशान्त क्रिया रहित व्यष्टि ज्ञानेन्द्रियो को दिखाया गया है।

न० ३ मे क्रिया शील भोग और मोक्ष प्रदान करने मे समर्थ सूक्ष्म दिव्य ज्ञानेन्द्रियों को दिखाया गया है। जो कि स्थूल और सूक्ष्म शरीरो मे रहकर भोग और मोक्ष प्रदान करती हैं।

इस चित्र मे से केवल एक ही समष्टि ज्ञानेन्द्रिय को उत्पन्न होते हुए दिखाया गया है, शेष चारो को भी इसी प्रकार समझ लेना चाहिये।

चित्र संख्या ६

समष्टि सत्व अहंकार से व्यष्टि ज्ञानेन्द्रियों की उत्पत्ति

चमकदार श्वेतिमा से युक्त हल्के लाल रग का पीत कालिमा सी लिये हुए प्रतीत होता है। वाणी के मण्डल से विभिन्नता है। इसमे प्रकाश और चमक उसकी अपेक्षा अधिक है। लालिमा हल्की पर पीत कलौंच कुछ थोडी सूक्ष्म सी अधिक ध्यान से देखने पर प्रतीत होगी। सत्त्व की मात्रा अधिक होने से चेतना सी अधिक है।

योगिन् यह अठारवां आवरण है। अब इसका पार करना कठिन न होगा। यह ज्ञानेन्द्रियों मे सर्व प्रथम है। इसे ज्ञान की मात्रा से सरलता से विजय किया जा सकता है। इस मण्डल का धर्म है 'गन्ध को जानना'। यह मौलिक पाँच ज्ञानो मे से एक है। पाँचो ज्ञानेन्द्रियों के पाँच ज्ञान मौलिक हैं ससार के समस्त ज्ञान का विस्तार इन्ही मूल भूत पाँच ज्ञानो का विस्तार है। यह घ्राणेन्द्रिय के गन्ध और गन्ध के परिणामो को जानने की मौलिकता का प्रधान केन्द्र है। गन्ध को जानने का तत्त्व इस स्तर मे निहित है। अब तक के १५ तत्त्वों मे जानने का धर्म नही था। वे सर्वथा जड़ थे, सत्त्व की उनमे अत्यन्त न्यूनता थी, उसके कारण वे ज्ञान का विषय बने। इस घ्राणेन्द्रिय मण्डल मे सत्त्व और रज की अधिकता आरंभ हुई तो इस मे जानने अर्थात् अन्य को जताने का धर्म प्रादुर्भूत हुआ। चेतन के सम्पर्क से चेतन को जताने मे समर्थ हुआ। स्वय तो इसको कोई बोध नही होता। पर चेतन के सम्पर्क मे आते ही इसका जानना धर्म सार्थक हो जाता है। हम सब व्यवहार करते हैं, आँख देखती है, कान सुनते हैं, आदि, क्या वास्तव मे आँख देखती है। आँख खुली है, ध्यान कही, और कुछ नही दीखता, क्यो? आँख का धर्म देखना है, तो आँख को दिखना ही चाहिये। नही दिखता, क्योकि देखने वाला कही और लगा है। आँख तो देखने का साधन-मात्र है, इसी प्रकार यहाँ भी यह मण्डल जानने की, या कहिये जनाने की, जताने की सामर्थ्य वाला है। इस मण्डल से परिणत हुई घ्राणेन्द्रिय मे ही गंध जानने की—सूंघने की शक्ति होती है। यह शक्ति ही धर्म है, जो मण्डल मे विद्यमान थी और व्यष्टि मे आयी है। मण्डल के इस धर्म का प्रत्यक्ष योगी ही समाधि द्वारा कर सकते है। योगिन यही आपकी साधना की परीक्षा है।

ब्रह्म के सन्निधान से चेतन सी बनी इस प्रकृति देवी का विधान-चक्र आगे बढता है। समष्टि घ्राणेन्द्रिय मण्डल के पाँच रूप या स्थितियाँ भी इसी विधान का अवयव हैं। उन पाँचो रूपो मे वैराग्य से पवित्र हो ब्रह्म का दर्शन कीजिये।

समष्टि घ्राण् इन्द्रिय मण्डल

प्रथम रूप में ब्रह्म विज्ञान

(घ्राण इन्द्रिय का प्रथम रूप)

१. समष्टि घ्राण इद्रिय के स्थूल-रूप में—

समष्टि घ्राणेन्द्रिय मण्डल का एक ही धर्म है—'गन्ध का ज्ञान' अर्थात् गन्ध को जानने का सामर्थ्य। गन्ध धर्म स्थूल पृथिवी का है। स्थूल पृथिवी गन्ध-तन्मात्रा का परिणाम है। यह गन्ध तन्मात्रा और उसके परिणाम समस्त पार्थिव परिणामो में विद्यमान है, इनके जानने का एक मात्र साधन समष्टि घ्राणेन्द्रिय मण्डल मे ही निहित है। कोठार मे सैकड़ो प्रकार के पदार्थ रखे हैं, घोर अन्धकार है। उनके जानने का एक मात्र साधन प्रकाश है। दीपक आया और सब दिखने लगा। दीप नही तो होते हुए भी नही दिखता। इसी प्रकार गन्ध, गन्ध-तन्मात्रा या उसके परिणामो के रूप मे है तो

पर उसके जानने का साधन जब तक न हो वह जानी नही जा सकती। 'इस गन्ध के ज्ञान' धर्म वाला यह समष्टि घ्राणेन्द्रिय मण्डल है। 'गन्ध का ज्ञान' ही इस मण्डल का रूप है। 'प्रकाशक सत्'-सत्त्व गुण प्रकाशक है। विद्यमान को प्रकट करता है। गन्ध है, या होगी उसका प्रकाशक-ज्ञान कराने वाला सत्त्व की प्रधानता से यह मण्डल है।

'घ्रा' धातु 'गन्धोपादाने' अर्थ मे है। गन्ध को ले लेती है। गन्ध को जान लेती है। बिना लिये, या बिना सम्बन्ध के तो कोई वस्तु ली नही जा सकती। 'लेना' भी यहाँ केवल सम्बन्ध मात्र का ही द्योतक है, क्योकि अन्य वस्तु का लेना—उससे सम्बन्ध जोडना ही होता है। उपादाने मे इस भाव को 'उप' द्योतित कर रहा है। उप का अर्थ है 'समीप लाना' अर्थात् सयोग सम्बन्ध का होना। इस समष्टि घ्राण मण्डल का सम्बन्ध गन्ध और उसके परिणामा से होता है, उनको जान लेती है। प्रकृति का अपना स्वरूप स्थिति है। ज्ञान और क्रिया गुण है। जो भगवान् के सन्निधान से अभिव्यक्त होते हैं, परिणत होते हैं। प्रकृति का प्रथम परिणाम महत् सत्त्व ज्ञान रूप ही तो है। उसी सत्त्व के अश को लेकर सत्त्वाहकार परिणत हुआ। जिसका परिणाम यह घ्राणमण्डल है। इसी लिये इसमे गन्ध को जानने का सामर्थ्य है।

यह गुण व्यष्टि घ्राण मे अभिव्यक्त होता है। समष्टि मे तो व्यवहाराभाव के कारण ज्ञात नही होता। जब कोई पदार्थ सूक्ष्म अवस्था मे प्रतीति का विषय नही होता तो उसे स्थूल-दर्शक के आगे रख कर देखते है। दाढी बनाने मे भी इस शीशे का प्रयोग करते है। छोटे से बाल को बहुत बडा दिखाता है। खुर्दबीन भी छोटे को बडा कर के दिखाती है। इसी प्रकार व्यष्टि घ्राण समिष्टि का कार्य है। 'कारण गुणपूर्वक., कार्य गुणो दृष्ट. ।' कार्य मे कारण के ही गुण तो आते है। स्थूल घ्राण इन्द्रिय के पास किसी गन्ध को रखो तत्काल बता देगी। इस मे गन्ध शक्ति अपने कारण समष्टि गन्ध मण्डल की ही है।

प्रत्येक पदार्थ का हर समय चय अपचय होता रहता है। वृक्ष पर फूल फल लगे हैं। पादप के साथ सम्बन्ध होने से वह हर समय आहार का आहरण कर रहा है। उसका बराबर चय हो रहा है। कुछ-कुछ गन्ध भी बाहर फेंकता रहता है, वह उसका अपचय है। पर अपचय की अपेक्षा चय अधिक है। जब वृक्ष से फल टूट जाता है, उसका अपचय ही होता है। जलादि के सम्बन्ध से नाममात्र का चय दिखाई देता है। इस अपचय द्वारा गन्ध निकल कर घ्राण से सम्बन्धित होती है। घ्राण जान लेती है, गन्ध है। उसके परिणाम पर जाती है बुद्धि द्वारा बता देती है, अमुक गन्ध है। यह सब बता रही प्रतीत होती है, बाह्य नासिका। पर वास्तव मे यह नासिका तो गोलक मात्र है, उस सूक्ष्म घ्राण इन्द्रिय का उपकरण है, जो ब्रह्मरन्ध्र मे स्थित है। ब्रह्मरन्ध्रस्थ घ्राण वास्तविक घ्राण है क्योकि वह केवल गन्ध के जानने का काम करती है। यह बाहर की नासिका तो उसकी सहायक मात्र है। गन्ध को प्रवेशार्थ मार्ग प्रदान करती है, जानती कुछ नही। यह तो केवल मार्ग है, इस से गन्ध भी जाती है, श्वास भी जाता है। प्रश्वास निकलता भी है। सिंघाणक मल के निकलने का भी यह मार्ग है। प्रतिश्याय का भी यही राजमार्ग है। अधिक उष्णता या शीतता या चोट से कोई शिरा फट जाये रक्त स्राव इसी से होता है। अन्त. पाक हो जाये तो पीव भी इसी से निकलती है। यह तो इतने काम करती है।

वास्तविक घ्राण तो केवल एक ही काम 'गन्ध ज्ञान' का करती है। अन्य काम वह कर ही नही सकती वह ही वास्तव मे घ्राण इन्द्रिय है। यह बाह्य नासिका तो शरीर का ही भाग है। प्रति शरीर मे इसकी आकृति भी भिन्न होती है। मानव की नासिका ही अनेक प्रकार की है, लम्बी, मोटी, चौडी, फूली, नोकीली, चपटी, छित्ती, भिञ्ची, उठी हुई, बैठी हुई, आदि न जाने कितने प्रकार की है। प्रकार के अतिरिक्त व्यक्तिगत नासिका भी सब की अलग अलग है। सब मे समानता होते हुए भी निराली है। फिर अन्य योनिया की नासिकाओ को देखिये, भैंस की, घोडे की, ऊँट की, बकरे की, सिंह की, सियार की, कुत्ते की बिल्ली की, हाथी आदि सब की ही निराली हैं। पक्षियो, सरीसृपो, मक्खी, मच्छर, कीट पतग सब की अनोखी है। किन्ही की नासिका का पता ही नही चलता। भौरे मक्खी, पतगा की नाक का कुछ पता चलता है, कैसी है। सुगन्ध के लिए मीना से उडे चले आते हैं। पर यह बाह्य नासिक तो घ्राण नही है। घ्राण तो सब की एक सी है। *अत्यन्त सूक्ष्म, जो ब्रह्मरन्ध्र मे सूक्ष्म शरीर मे वास करती है। वही सूक्ष्म घ्राणेन्द्रिय,* घ्राणेन्द्रिय समष्टि मण्डल से परिणत हुई है, वही उसका कार्य है। उस कार्य के धर्म से ही कारण का धर्म जाना जाता है।

यह गन्धोपादान ही पदार्थों और उन की अवस्था के भेदक है। घ्राणेद्रिय का बाह्य उपकरण यह मुख पास मे इसीलिये रखा गया है कि खाते पीते भी गन्ध से भोज्य अभोज्य का परीक्षण हो जाये। पर्युषित पूतिगन्ध वाला भोजन नही करना चाहिए। ऐसा भोजन बाह्य रूप से न भी पहचाना जाये तो घ्राण उसे तत्काल पहचान लेती हैं। *योग मार्ग मे तामसिक भोजन वर्जित है।* प्याज, लहसुन, हींग आदि तामसिक है। इन की गन्ध इतनी तीखी होती है, कि इनके पास रक्खी होम्योपैथिक औषधियाँ सर्वथा नष्ट हो जाती हैं। जो इन्हे नही खाते, इनके तनिक से स्पर्श को ग्रास के नासिका के पास आते ही पहचान लते है, कि अमुक गन्ध मिली है और छोड देते हैं। हाँ जीरा, घृत, धनिया आदि की ऐसी गन्ध है कि नासिकाग्र मे पहुँचते ही भूख को बढा देती है। ताजे फलो और बासी फलो की गन्ध मे बडा भारी अन्तर होता है। तत्काल ही फल पहचाने जाते हैं। काष्ठादि औषधो की गन्ध भी वर्षा काल मे औषधि के खराब होने से पलट जाती है। उसी गन्ध के आधार उन्हे फैंक देना चाहिए। जब अपनी वास्तविक गन्ध न रहे, *अन्य प्रकार की आने लगे तो समझ लेना चाहिए खराब हो गयी। वन्य पशु तो गन्ध मे* ही अपना आहार ढूँढते हैं। इस प्रकार समष्टि घ्राणेन्द्रिय मण्डल का यह गन्ध ज्ञान धर्म बडे बडे कार्य सिद्ध करता है।

इस घ्राण का जो विषयाकार रूप परिणाम है यह इसका भोग है। जब यह सात्विक अहकार से परिणाम भाव को प्राप्त हो रही होती है तब ही इसमे गन्ध ग्रहण रूप धर्म की उत्पत्ति होती है। इस उत्पत्ति को ही स्थूल रूप दिया गया है क्योकि कारण से कार्य भाव को प्राप्त होती है। इस उत्पत्ति काल मे इसका साक्षात्कार और इसमे ब्रह्म का विज्ञान भी करना चाहिए। देखना चाहिए ब्रह्म का वहा क्या सम्बन्ध है। वास्तव मे हमारा प्रयोजन यहाँ व्यष्टि इन्द्रिय से नही है किन्तु समष्टि मे तात्पर्य है। किस प्रकार से समष्टि ही व्यष्टि भाव को प्राप्त हो जाती है और जानना है कि समष्टि का वास्तव मे क्या स्वरूप है। समष्टि पदार्थों की उत्पत्ति के साथ सर्वत्र ब्रह्म का सम्बन्ध

है। इसका ही विज्ञान साथ साथ करना है। इन पदार्थों मे ईश्वर का अध्यारोप करके उपासना और ज्ञान को समुज्जवल बनाना है। इन सब पदार्थों के साथ ब्रह्म का विज्ञान होना आवश्यक है। बिना वैराग्य भावना के यह दृढ होने वाला नहीं इस समष्टि गन्ध तन्मात्रा के मौलिक धर्म गन्धोपादान के स्वरूप को समझ इस से आसक्ति परे हटा परमवैराग्य को सिद्ध करना होगा, तब ही ब्रह्म साक्षात्कार अक्षुण्ण होगा।

समष्टि घ्राणेन्द्रिय मण्डल

द्वितीय रूप मे ब्रह्म-विज्ञान

(घ्राणेन्द्रिय का द्वितीय रूप)

२ समष्टि घ्राणेन्द्रिय के स्वरूप मे—

'गन्ध ज्ञान घ्राणेन्द्रिय मण्डल मे सदा वर्त्तमान रहता है। कभी उस से अलग नही होता। यह धम ही इस मण्डल का स्वरूप है, क्योकि गन्ध ज्ञान और घ्राणेन्द्रिय मण्डल का अभेद है इस मण्डल के परिणाम काल मे उत्पन्न हुई हुई यह शक्ति विशेष है। जो गन्ध को जान लगी। इसे ही सू घना कहते है। इसी को स्वरूप सम्बन्ध कहते है।

घ्राण के इस परिणत होते हुए दूसरे स्वरूप रूप मे भी ब्रह्म की अनुभूति करनी चाहिए। ब्रह्म का इसके साथ व्याप्य व्यापक भाव सम्बन्ध है। इस हेतु सदा इसमे वर्त्तमान रहता है। योगिन्! यह ब्रह्मानुभूति वैराग्य और उसकी भी परिपक्व अवस्था पर वैराग्य की दृढ आधार शिला पर टिक सकेगी। यदि ब्रह्म की एक ही झाकी लेनी हो तब तो सम्भव है वैराग्य की एक झपकी से ब्रह्म की क्षणिक झाकी मिल जाये है तो यह भी कठिन। पर उस क्षणिक झाकी से तो अत्यन्त विमोक्ष होना नही। वह तो पूर्णतया वशीकार सज्ञा वैराग्य से भी होना नही, वह गुण वैतृष्ण्य परवैराग्य से ही सम्भव होगा। अत इस परवैराग्य को लक्ष्य म सदा रखिए और क्रमश आगे बढते जाइये।

(प्रश्न) शरीर के अन्दर रुधिर मास, मज्जा आदि पूतिगन्ध वाले पदार्थ है सूक्ष्म घ्राणेन्द्रिय का इन की दुर्गन्ध या सुगन्ध क्यो नही आती ?

(उत्तर) वर्षा होती है प्रकृति पर निखार आ जाता है। जी चाहता है प्रकृति को एक टक निहारे जायें नित नया स्नान प्रकृति वर्षा जल मे करती है नित्य नया रूप पाती है। शिशिर आता है सारी सुषमा मारी जाती है एक एक पत्ता पक पक कर झडने लगता है। जैसे जरठ के सिर के सफेद बाल झड झड कर गिरते हैं। जहाँ ताजा वायु का सचार है और जीवनी शक्ति से सम्बन्ध जुडा है वहा दुर्गन्ध उत्पन्न नही होती। प्रकृति नयी वर्षा और हवा से ताजी बनी रहती है। टूट कर गिर जाये जीवनी शक्ति से सम्बन्ध न रहे वही जल उसे सडा देता है दुर्गन्धित कर देता है। नदी कुएँ और सोते का जल बहता रहता है, ताजा बना रहता है। रुक जाये सड जाता है। जिन तालाबो म सोते का जल होता हो, ताजा रहता है। बिना सोते के तालाब सड उठने है। शरीर क रुधि मास मज्जा सब का ही सम्बन्ध जीवनी शक्ति से है, श्वास से हर समय ताजी हवा लगती है। फुफुस हर ३ सैकिण्ड म शरीर भर म रक्त का सञ्चार करत रहते है। इनम दुर्गन्ध कहाँ ? पार्थिव होने से सामान्य गन्ध होती है, उसका प्रश्न

नही उठना वहाँ तो सर्वत्र ही है, पर प्रतीत नही होती क्योकि मन सदा परिणाम गन्धो का ही अभ्यासी हो गया। यही कारण है दूसरे के जीवित शरीर मे किसी को भी दुर्गन्ध नही आती और मृत शरीर मे से सब को ही दुर्गन्ध आती है, इसीलिए उस पर चन्दन केसर कपूर आदि मल देते हैं, फूल लाद देते है, विलायती सेन्ट आदि डाल देते है। मृत का सम्मान भी हो गया, और उठाने वाले दुर्गन्ध मे बच गए। यदि यह सुगन्ध आदि न लगाई जाए तो लाश पर च्यूंटियाँ ही बहुत जल्दी हमला बोल देती हैं। जीवित शरीर पर कभी च्यूंटियाँ इस प्रकार नही आती। हाँ पायरिया आदि दुर्गन्ध वाला बगल गन्ध आदि रोग हो तो अपने को भी दुर्गन्ध आती है औरो को भी। स्वस्थ शरीर के मास आदि मे दुर्गन्ध नही होती। इसलिए सूक्ष्मेन्द्रिय को भी उस का अनुभव नही होता। मुरदा मास आदि मे दुर्गन्ध होती है। और अभ्यास की उच्चावस्था मे तो शौचात् स्वागजुगुप्सा हो ही जाती है।

(प्रश्न) यह मास आदि तो सजीव होने से दुर्गन्ध रहित है, पर मल मूत्र तो सजीव नही उनकी दुर्गन्ध क्यो नही आती ? अभ्यास काल मे भी नहीं आती जब ध्यान वही केन्द्रित होता है ?

(उत्तर) क्यो जी ! भूगर्भ गत सीवरो से, पटे गन्दे नालो मे दुर्गन्ध क्यो नही आती। शीशे की बोतलो मे रखी औषधियो की सुगन्ध या दुर्गन्ध क्या नही आती। गान्धि की दुकान पर तो सब शीशिया मे गन्धसार होता है, फिर सुगन्ध फैलाने के लिये इतर को रुई के फाये मे क्यो लगाता है ? इसीलिये कि तीव्र गन्ध भी उन परदो से ढकी थी। ऐसे ही शरीर के मल मूत्र भी ऐसी खाल की थैलियो मे बन्द हैं, जिन से दुर्गन्ध बाहर नही निकल सकती। यदि यह खालें निर्बल होती तो दुर्गन्ध आने की तो क्या बात सारा शरीर ही सड जाता और जीवन दुर्भर हो जाता। इस लिये मल मूत्र को ऐसी थैलियो मे रखा गया है, जहा से दुर्गन्ध बाहर नही निकलती। शरीर की रचना बडी विचित्र है। शरीर की रचना भी भगवान् के सन्निधान मे हुई है। उसकी सत्ता का भी इस वैचित्र्य मे दर्शन करना चाहिये।

समष्टि घ्राणेन्द्रिय मण्डल
तृतीय रूप मे ब्रह्म-विज्ञान
(घ्राणेन्द्रिय का तृतीय रूप)

३. समष्टि घ्राणेन्द्रिय के सूक्ष्म रूप मे—

समष्टि सात्विक, राजस, तामस तीनो अहकारो के आनुपातिक सम्मिश्रण से समष्टि घ्राणेन्द्रिय मण्डल का परिणाम हुआ है अब तक प्रदर्शित आहकारिक सृष्टि मे इसी मण्डल मे सत्त्व की प्रधानता है। तन्मात्रा के मण्डल तामस प्रधान थ, और कर्मेन्द्रियो के मण्डल राजस प्रधान। ज्ञानेन्द्रिय मण्डल सत्त्व प्रधान है। अत सब ज्ञानेन्द्रिया का वह सामान्य रूप से कारण है। समष्टि सत्त्व प्रधान अहकार अन्य दोनो अहकारो से मिश्रित तो यहाँ सामान्य है, और समष्टि घ्राणेन्द्रिय मण्डल यहा विशेष है व्यष्टि घ्राण के प्रति समष्टि घ्राण मण्डल सामान्य है, और व्यष्टि घ्राण विशेष है। इस प्रकार सामान्य विशेष का समुदाय ही यहा अयुत सिद्ध द्रव्य या पदार्थ समझना चाहिये। यहा कारण से कार्य मे परिणाम ही कारण स पदार्थ की सूक्ष्मता है। यही घ्राणेन्द्रिय मण्डल तथा व्यष्टि घ्राण तीसरी अवस्था सूक्ष्म रूप है।

यहा समष्टि घ्राणेन्द्रिय मण्डल तीनो अहकारो के भेदरूप से अभेद को प्राप्त एक द्रव्य है। इस मण्डल के निर्माण मे तीनो अहकारो का अनुपात इस प्रकार साक्षात् किया गया है। समष्टि सत्त्वाहकार ११ भाग + समष्टि राजस अहकार १० भाग + समष्टि तामस अहकार ६ भाग = ३०। इस मण्डल मे सात्त्विक अश के प्राधन होने से ज्ञान की प्रधानता है। वही ज्ञान की प्रधानता व्यष्टि मे आयी है। व्यष्टि घ्राणेन्द्रिय का ही सर्वप्रथम प्रयोग होता है। आमो की खोज मे निकले। सहसा गन्ध आयी। यह तो दशहरी की गन्ध है। वहुत वढिया। इधर ही चलो, उधर ही चल पडते है, और वढिया आम हाथ लग जाते है। खरवूजो का ढेर लगा है। भाव खुला है। खरवूजे लेने है। एक एक खरवूजे को उठा रहे है और नाक से लगा रहे है। खाने मुख ने हैं। रस जिह्वा बतायेगी। खरीदने से पहले मुख और जिह्वा का प्रयोग किया नही जा सकता, इस लिये घ्राण पर ही इनका वोझ आ पडा। सुगन्ध भी सूघे, और सुगन्ध से स्वाद का अनुमान कराये। इस प्रकार घ्राण का यह सत्त्व प्रधान भाग अपना कार्य नैपुण्य दिखाता है। वैद्य के घृतादि तथा अन्य औषधि आदि प्रमाणता इस घ्राणेन्द्रिय के ज्ञानाश पर ही प्रधानतया आधारित रहती है।

हा, अभ्यास से दिव्य घ्राण की उपलब्धि कर ली जाये तो अन्य वात है। स्थूल गोलक का उसमे चारा ही क्या है और यह तो वेचारी वैसे ही शरीरवयव मात्र होने से सूक्ष्म घ्राण की आदेश पालिका है। वाहर की गन्ध को सूक्ष्म तक पहुचाने का माग मात्र माध्य ही तो है। ज्योतिर्मय सूक्ष्म घ्राणेन्द्रिय ही वास्तविक घ्राणेन्द्रिय है। इसका ज्योतिर्मय रूप भी समष्टि मण्डल से ही उपलब्ध हुआ है, क्योकि वह भी तो ज्योतिर्मय है।

(शका) आप का सिद्धान्त विचित्र है। ज्ञानेन्द्रिया भी चमकती हैं, कर्मेन्द्रिया भी चमकती है, यह भी चमकता है, वह भी चमकता है। यह सव आपको ही दिखता है, वैज्ञानिक तो कोई मानता ही नही, उन्हे शरीर काटने पर कोई चमकता पदार्थ मिला ही नही ?

(समाधान) यह सारी चमक सत्त्व की है। क्योकि सत्त्व प्रकाशमय है। हम ही नही मानते, साख्य योग के सव ही आचार्यो ने माना है। 'प्रकाशक सत् प्रकाश क्रिया स्थितिशील भूतेन्द्रियात्मकम्' (योग० २ १८)। यदि सत् न होता तो न कोई वस्तु दिखाई देती न कोई दिखाने वाला होता सव तमस् से आवृत होते। जहा सत् है वहा २ चमक है। सव मे ही तीनो गुण है, इसी लिये त्र्यीकरण है। हा सत् के तारतम्य से चमक मे भेद है। ज्ञानेन्द्रियो की चमक शुक्लता लिये है। कर्मेन्द्रियो की पीतरङ्ग नारञ्जी सी। तन्मात्राओ मे चमक कम है। स्थूल भूतो मे दर्शन का विषय वनने मात्र की चमक है। हम कहते हे या लिखते हैं, इसलिये मानने की कोई बात नही है। यह तो प्रत्यक्ष का विषय है। महीना दो महीना अभ्यास कीजिये और देख लीजिये। जिस जिस ने अभ्यास किया उस उस ने देखा। रही वैज्ञानिको की वात, हम पहले भी लिख चुके हैं वे अभी वहा तक पहुच नही पाये है। वे मन की सत्ता को तो स्वीकार करते है परउसे भी जान नही सके है। वे भौतिकवादी है, अपनी स्थूल इन्द्रियो पर ही विश्वास रखते हैं। वे इन आध्यात्मिक पदार्थो के देखने मे असमर्थ है। इनको देखने के अभी कोई साधन नही वने है। सभव है कभी वन जाव। जीवित शरीर को अन्दर से देखने के ऐसे यन्त्र

बने है, पर अधूरे हैं। विशेष भागो को ही स्क्रीन पर लाते हैं। यह एक्सरे भी प्रकाश ही है। अन्दर के अस्थि स्थूल भाग का ही चित्र लेती है। प्रकाश का चित्र नही ले सकती। जब चान्दनी, धूप, अग्नि, विजली मोमबत्ती, दीवे आदि के प्रकाशो की विभिन्नता दिखाने वाला चित्र सभव हो जायेगा। जब खरे खोटे सोने, असली नकली मोती का चित्र गत भेद वहाँ की चमक से ही प्रतीति का विषय बन सकेगा, तब सभव है आन्तरिक प्रकाश का चित्र भी हड्डी मास आदि की ओट से सभव है लिया जाना सभव हो। अन इन वैज्ञानिको की बात मे अभी कैसे विश्वास किया जा सकता है। इनके भौतिक निर्णय भी तो अस्थिर है। दस वर्ष पूर्व कुछ थे, आज कुछ हैं। इन को अन्तिम निर्णय पर पहुचने दीजिये, अभी इनकी प्रयोग शाला को चलने दीजिये। सैकडो बात अज्ञात है, उन्ह ही जान लेने दीजिए। आप सत्य के अन्वेषी है, तो शब्द प्रमाण की बात ही क्यो करते हैं। आइये थोडा काल पूर्वजो का अनुकरण कीजिये और सब स्वय प्रत्यक्ष कर लीजिये।

तीनो अहकार अनुपात से मिलकर जब समष्टि घ्राणेन्द्रि मण्डल मे परिणत होते हैं, वह भी एक देखने योग्य ही घटना होती है। इस अवसर पर ब्राह्मी चेतन सत्ता प्रेरिका होती है। उसके सन्निधान से ही यह तीनो जड अहकार चेतन से बने परिमित मात्रा मे, परिमित दिशा मे *परिमित गति कर इस घ्राण रूप मण्डल मे परिणत हो जाते* है। यहा कारण से कार्य रूप मे परिणाम ही कारण मे पदार्थ की सूक्ष्मता है। यही इसका सूक्ष्म रूप तीसरी अवस्था है। सत्व प्रधान अहकारत्रय से समष्टि घ्राणेन्द्रिय *मण्डल की उत्पत्ति होती है, और समष्टि घ्राणमण्डल से व्यष्टि घ्राणेन्द्रिय की समष्टि* घ्राण मण्डल व्यष्टि का लक्ष्य रूप है। इस कारण से कार्य के परिणाम काल मे घ्राण मण्डल की ओर उस मे ब्रह्म की अनुभूति होनी चाहिये क्योकि इस साधना का ब्रह्मानुभूति *ही मुख्य लक्ष्य है। हा! गौण रूप से पदार्थ का विश्लेषण और कारण काय का* विज्ञान भी है, क्यो कि इस विज्ञान के पश्चात् ही परम वैराग्य प्राप्त हो सकता है वास्तव मे यह परम वैराग्य ही मोक्ष का हेतु है। यह अभ्यास और साधन तो इस *वैराग्य के ही साधक है। इसे दूसरे क्रम से ऐसे समझ।*

योगी को चाहिये कि सर्व प्रकार से चित्त को शान्त और समाहित कर ध्यान की सूक्ष्म दृष्टि द्वारा सविचार और निर्विचार सम्प्रज्ञात समाधि मे प्रवेश करके सत्व *प्रधान अहकार से उत्पन्न होते हुए घ्राण के समष्टि मण्डल और इसमे उत्पन्न होती* हुई व्यष्टि घ्राण इन्द्रिय का साक्षात्कार करें यहा दोनो मे कार्य कारण का जो सम्बन्ध है यह कारण ही सूक्ष्म अवस्था है इसी मे ब्रह्म का साक्षात्कार कर। इसके अनन्तर परम *वैराग्य द्वारा कैवल्य भाव प्राप्त होगा।*

समष्टि घ्राणेन्दिय मण्डल

चतुर्थ रूप मे ब्रह्मविज्ञान

(घ्राणेन्द्रिय का चतुर्थ रूप)

४ समष्टि घ्राणेन्द्रिय के अन्वय रूप में —

समष्टि घ्राणेन्द्रिय मण्डल का परिणाम समष्टि सत्व, रजस्, तमस् तीना अहकारो के आनुपातिक सम्मिश्रण से हुआ है। तीनो समष्टि अहकार महत्तमस् से परिणत हुये हैं। महत्तमस् मूलप्रकृति का परिणाम है। अर्थात् समष्टि घ्राणमण्डल

प्रकृति की चौथी पीढी, या पुश्त मे है। इस चौथी पीढी मे भी मूल प्रकृति के गुण धर्म विकसित रूप मे विद्यमान हैं। प्रकृति के स्थिति रूप धर्म से घ्राण मण्डल में स्थिति धर्म विद्यमान है ही। भगवान् के सन्निधान से जो दो गुण ज्ञान और क्रिया प्रकृति मे हैं, वह घ्राण मण्डल में चतुर्गुण हो गये है। वही ज्ञान यहां गन्ध ज्ञान मे परिणत हो गया है। स्थिति शील तमस् का अहकारत्रय परिणाम भी स्थिति शीलता लिये हुए है, पर उनमे सत्त्व की पुट घ्राण मण्डल मे आकर गन्ध-ज्ञान के रूप मे व्यक्त हो गयी है। गन्धज्ञान, अर्थात् जानने की सामर्थ्य मण्डल मे विद्यमान है तभी तो व्यष्टि घ्राण मे आयी। इसी से व्यष्टि घ्राण गन्ध को जान लेती है। सूक्ष्मरूप को अभिवृद्ध कर लेने पर तो न जाने कैसी २ दूर तक की गन्ध का अनुभव कर लेती है। मीलो दूर की गन्ध को छोटे-छोटे कीट पतग कर लेते है। इतनी दूर की गन्ध की अनु- भूति मूल प्रकृति से आयी क्रिया का ही परिणाम है। यह दिव्य सूक्ष्म घ्राणेन्द्रिय सिद्ध योगी की मीलो-सैङ्कडो मीलो का समाचार ले आती है। इसी सूक्ष्म घ्राण की इस दिव्य शक्ति से स्वर्गस्थ आत्माये दूर-दूर की दिव्य गन्ध का उपभोग करती है

इस प्रकार मूल प्रकृति अपने धर्म और गुणो के साथ इस समष्टि-घ्राण-मण्डल और व्यष्टि मे अनुपतित हुई है। यही इस मण्डल का अन्वय है। इस मण्डल को प्रत्यक्ष करते समय इस समस्त परिणति के निमित्त ब्राह्मी चेतन सत्ता की विद्यमानता का भी अनुभव करना चाहिये, जिसकी सन्निधानता से इस मण्डल का 'गन्ध ज्ञान' धर्म इस अद्भुत रीति से व्यक्त हुआ है।

इस गन्ध से जहा भ्रमर कीट आदि बौराय फिरते है, वहाँ यह ज्ञानवान् सर्व-श्रेष्ट मानव भी गन्ध के चक्र मे कम नही फसा। तैल फुलेल मे गन्ध, साबुन मे गन्ध, क्रीम मे गन्ध। पाउडर मे गन्ध। इतर मे गन्ध। आइस क्रीम मे गन्ध। मस्टर्ड मे गन्ध। फिरनी मे गन्ध। चाकलेट मे गन्ध। मिठाई मे गन्ध। शेम्पू मे गन्ध। जिस,मे देखो गन्ध। इस गन्ध के मोह मे भगवान्-भजन के अमूल्य समय को यह मानव नष्ट करता है। बिना गन्ध से वैराग्य-भाव प्राप्त किये गन्धमण्डल और उसमे भगवान् की भाकी से विशेष लाभ नही होना है। यदि शाश्वत मोक्ष धाम की अभिलाषा है तो पर वैराग्य को अहर्निश, क्षण-क्षण मे और कण-कण मे धारण कर तभी तेरी साध पूरी होगी।

समष्टि घ्राणेन्द्रिय मण्डल

पञ्चम रूप में ब्रह्म-विज्ञान

(घ्राणेन्द्रिय का पचम रूप)

५. समष्टि घ्राणेन्द्रिय के अर्थवत्त्व रूप मे—

वास्तव में घ्राणमण्डल मे जो अर्थवत्ता है, वह प्रकृति से ही आयी हुई है। योग दर्शन ने कहा है—

'प्रकाश-क्रिया स्थिति शीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यम्' (योग ०२।१८)—

—प्रकृति और तीनो गुणो से उत्पन्न हुआ जो कार्यात्मक दृश्य जगत् है, यह सब भोग और अपवर्ग के लिये है।

वास्तव मे प्रकृति और तीनो गुणो मे ही भोग और अपवर्ग दान करने की स्वाभाविक शक्ति है। अत. इस घ्राण-मण्डल मे भी भोग और अपवर्ग की शक्ति इन्ही से आयी है। इनका उपभोग दोनो लोको मे होता है। इस लोक मे स्थूल पदार्थों की

गन्ध का प्राणीमात्र उपयोग करते है। प्रत्येक प्राणी को विशेष प्रकार की गन्ध रुचिकर है। मुसलमान को प्याज लहशुन की गन्ध बहुत अच्छी जान पडती है। हिन्दू उस से भागता है। ईसाई सिगरेट सिगार खूब पीता है। सिख उससे कोसो दूर भागता है। इसी प्रकार भोग योनियों मे भिन्न-भिन्न गन्ध रुचिकर है। गाये भैंस खल की गन्ध को पसन्द करती है। उससे भीगे चारे को बडी रुचि से खाती है। घोडी हरी हरी शाद्वल को पसन्द करती है। बकरी पत्तो को तो ऊँट काटेदार शाखाओ को। सबकी गन्ध निराली है। सिंह चीता आदि हिंस्रक जानवर अपने शिकार की गन्ध दूर से ही ले लेते हैं। कुत्ते को बिल्ली की और बिल्ली को चूहे की गन्ध भाती है और दूर से आ जाती है। मानव मानव की गन्ध निराली होती है, हम न पहचान पाये, पर कुत्ते इस गन्ध को खूब पहिचानते है। अपने पराये की, चोर डाकू की पहचान वे गन्ध से ही करते हैं। नये आदमी के आते ही सूघते हैं, और पहिचान कर फिर भूकते हैं। गुप्तचर कुत्ते गन्ध से ही अपराधी को पहचानते है, और गन्ध से ही चोरी किये माल को बरामद करा देते हैं। सहराओ, और बरफीले टण्डराओ मे यह गन्ध ज्ञान ही खोये मानव की खोज निकालता है। दैनिक व्यवहार मे भी तो गन्ध ही अच्छे बुरे, ताजी-बासी, कडवे मीठे की पहचान कराती है। यह गन्ध ज्ञान न हो तो बडा सकट उपस्थित हो जाये। पुराने नये, सडे, अच्छे अन्न की पहचान हो न हो। अण्ट-शण्ट सब खाया जाये, तो कौन स्वस्थ रहेगा। बुसी मिठाइया, सडे फलो, और विकृत औषधियो की पहचान कैसे होगी। फिर तो सरकार के स्वास्थ्य विभाग बेकार हो जायेंगे। जब सुगन्ध और दुर्गन्ध का विवेक नही होगा तो सफाई के दारोगा क्या करेंगे। शहरो की नालिया, नाले, पाखाने, सीवर सब सडा करेंगे। रोग के कीटाणु खूब पलेंगे, खूब महामारी फैला करेगी। मलेरिया विभाग जिस का बडा भारी महकमा है, गन्ध के अभाव मे बन्द करना पडेगा। पोखरा, तालाबों, गड्ढा, झीलो, आदि मे मच्छर खूब पलेंगे, फिर तो मलेरिया का ही बोल-बाला होगा। इन सब आधि व्याधि और उपद्रवो को रोकने का समष्टि मण्डल और व्यष्टि का गन्धज्ञान ही तो एक प्रधान साधन है। यह समष्टि व्यष्टि घ्राण मण्डल मानव जीवन का रक्षक है। घ्राण-मण्डल के गन्ध-ज्ञान के आधार पर ही (D D T) डी० डी० टी, फिनाइल, टिटोल, फिलिट, लाल दवा, क्लोरोन आदि का आविष्कार किया गया है। इनके गन्ध-ज्ञान मे विपाक्त कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। पर मानव को भी इनकी दुर्गन्ध हानि ही पहुचाती है, चाहे अल्पमात्रा म सही, क्योकि इन की दुर्गन्ध से सिर मे पीडा हो जाती है, और चक्कर आते देखा गया है। इस समष्टि गन्ध मण्डल के कारण ही, बाम, क्रीम, चन्दन, केसर, इतर आदि की गन्धो का ज्ञान सिर की पीडा एव सिर मे चक्कर आदि के आने को रोक देता है। इस गन्ध ज्ञान के कारण ही गुलाब, चम्पा, गेन्दा चमेली की गन्ध मस्तिष्क को प्रफुल्लित कर देती है। मिठाइयो की गन्ध बिना खाये ही हलवाई की तृप्ति कर देती है। मन्दिरो, देवालयो मे, कपूर चन्दन, केसर, धूप अगर तगर आदि की गन्ध देवताओ की तृप्ति के लिये जलाई जाती है। खेतो मे फसो को कीडे के डर मे बचाने के लिये लोबान आदि का धूआ दिया जाता है। आर्य हिन्दुओ मे प्रत्येक पर्व सुगन्धित भोज्य पदार्थ एव घृत दीप आदि की सुगन्धि से अपनी और इष्ट देवताओ की प्रसन्नता के लिये मनाया जाता है। गगा, यमुना, आदि पवित्र नदियो, एव पुष्कर, कुरुक्षेत्र आदि तीर्थो का सम्मान पुष्पाञ्जली से भेंट कर किया जाता है। विवाह अवसर पर वधू भी सुगन्धित फूलमाला

से वर का वरण एव स्वागत करती है। इस नये वैज्ञानिक युग के उच्च शिक्षित एव उच्चतम पदाधिकारी, यहा तक कि देश विदेश के राष्ट्रपति एव प्रधान मन्त्री भी सुगन्धित मानव परिमाण के सुगन्धित पुष्पो के हारो से दिवगत नेताओ के सम्मानार्थ उनकी समाधियो, मकबरो पर चढाते है। मूर्तिपूजा के शत्रु कहे जाने वाले ईसाई मुसलमान भाई भी कबरो पर फूल, हार, मालाय चढाते है, और मुश्क की महक बनाये रखते है। आर्य हिन्दुओ मे बालक के जन्म से लेकर मरण पर्यन्त १६। २४। या ३२ सब ही सस्कारो मे सुगन्धित सामग्री एव घृत तथा चन्दन से बडा हवन मुख्य अङ्ग है। विवाह सस्कार भी तीन चार घन्टे तक हवन के द्वारा सम्पन्न होता है। मृतक दाह भी मना चन्दन, घृत, सामग्री, केसर कस्तूरी, कपूर आदि से ही किया जाता है। निर्धन थोडा सुगन्धित शाकल्य डालता है पर डालता अवश्य है। बिना सुगन्धि के हिन्दू दाह सस्कार अनाथ का ही होता है।

प्राचीन काल मे आर्य हिन्दूओ मे तो गन्ध-मण्डल के गन्ध ज्ञान का पुष्कल मात्रा मे यज्ञो द्वारा प्रयोग किया जाता था। प्रत्येक फसल पर नवसस्येष्टि यज्ञ द्वारा नये अन्न को देश भर मे एक तिथि और एक ही समय मे होली दिवाली के अवसर पर बडे बडे यज्ञ करके विशुद्ध, कीटाणु रहित बनाया जाता था। जिस का छोटे रूप मे अब भी चलन है। महामारियो के अवसर पर अब भी भारत मे बडे बडे यज्ञो का आयोजन होता है और उनकी सुगन्ध मे महामारी दूर हाती देखी गयी है। जो प्लेग दवाइया और इन्जेक्शनो से न हटी वह एक दिन सार्वनिक यज्ञ से दूर हो गयी। प्राचीन काल मे तो महामारी आदि रोगो की घटना कहीं इतिहास मे नही मिलती, इस का कारण था, उस समय मे लगातार १००। १०० वर्ष के यज्ञ किये जाते थे। उनमे घृत की गोमुखी धारा पडती थी। ऐसे यज्ञो का उल्लेख अनेक ऐतिहासिक एव याज्ञिक ग्रन्थो मे मिलता है। महर्षि पतन्जली ने भी शातवार्षिक सहस्रवार्षिक यज्ञो का उल्लेख अपने व्याकरण महाभाष्य मे किया है। चित्तौड गढ के किले मे आज भी ऐसे यज्ञो का यज्ञ कुण्ड और घृत भरने के तालाब का अवशेष मौजूद है। इस कलि काल मे सन्नयास लेने के अवसर ८ सहस्र रुपया व्यय करके हमने भी रुद्र याग किया था। देहली मे करपात्री जी ने भी लाखो रुपया व्ययकर शतमख यज्ञ किया था। इतने बडे भूमण्डल पर इस प्रकार के आजकल के यज्ञ कितना प्रभाव डाल सकते है। प्राचीन काल मे तो ऐसी परम्परायें चलती थीं, जिससे वायु मण्डल शुद्ध रहता, महामारी आदि रोगो का नाम भी नही था। इस यज्ञ प्रक्रिया से समष्टि गन्ध मण्डल ही प्रभावित हो उठता था। गन्ध ज्ञान के विस्तार से देश सुखी और सम्पन्न था।

इस प्रकार यह गन्ध समष्टि मानव जीवन के लिये अर्थवान है, और वैयक्तिक जीवन मे भी यह गन्ध भोजन, आच्छादन औषधि आदि मे सर्वत्र प्रयुक्त होती है। महाराजा नल का पाक शास्त्र तो इस गन्ध ज्ञान की क्रियात्मक प्रयोग शाला ही है। विदेशो मे इस गन्ध ज्ञान का पाक विद्या के साथ इतना ताल मेल नही है, पर भारत के प्रान्त प्रान्त की शाला इस गन्ध ज्ञान का भरपूर प्रयोग करती है। जिस से स्वाद और स्वास्थ्य दोनो की तृप्ति होती है।

तन्मात्रा के लोक मे तो स्वर्गस्थ आत्मा या देवता तो सूक्ष्म घ्राणेन्द्रिय द्वारा सूक्ष्म दिव्य गन्ध का ही उपभोग करते हैं। वहा इस मर्त्यलोक की भान्ति स्थूल पदार्थ

नही होते, वहां तो केवल पदार्थों की विभिन्न दिव्य गन्धेंही तृप्ति का हेतु होती हैं। उन्ही गन्धों से उनका भोग सम्पन्न होता है। यही इस की अर्थवत्ता है।

इस लोक मे मनुष्य गन्ध युक्त पदार्थो का निर्माण करके भोगते हैं। विशेप प्रयत्नों और परिश्रमों के द्वारा उपार्जन करते है दिव्य लोक मे ऐसी वात नही है। वहाँ किसी प्रयत्न या परिश्रम विशेप के करने की नौवत नही आती। वहाँ तो केवल संकल्प मात्र से ही सब प्राप्त हो जाता है, जैसे-योगी स्थूल और सूक्ष्म भूतों का साक्षात् करके उन पर विजय पा लेता है, और अपने संकल्प वल से ही अनेक सूक्ष्म पदार्थों का पञ्च-तन्मात्राओं से निर्माण कर लिया करता है।

(शंका) स्थूल सूक्ष्म भूतों पर योगी का अधिकार हो जाना, उन को यथेच्छ प्रयोग में लाना, पदार्थों का निर्माण करके स्वयं भोगना या दूसरो को भोग के लिये देना तो ईश्वर के अधिकार को छीन लेने वाली वात है।

(समाधान) इन साधारण कार्यो से ईश्वर का अधिकार नही छीना जा सकता। इस लोक में भी तो नाना प्रकार के कला कौशल का निर्माण करके मनुष्य नाना प्रकार से भूतों का उपभोग करते है। योगी ने कर लिया तो आपत्ति क्यों? ये सूक्ष्म और स्थूल भूत जीवों के भोग के लिये उत्पन्न हुए हैं भगवान् के मुख्य अधिकार की वात तो सर्व-प्रथम सृष्टि की रचना है, जिस को अनेक योगी भी मिल कर नही कर सकते हैं।

इस प्रकार आपने परखा कि समष्टि और व्यष्टि घ्राण मण्डल का गन्ध ज्ञान प्राणी मात्र के लिये कितनी अर्थवत्ता से भरा है। इसकी अर्थवत्ता का समाधि मे साक्षात् करे और साथ ही निमित्त कारण भूत उस ब्राह्मी चेतना का भी साक्षात् करे जिस की चेतना के सन्निधान से चेतन सा बना यह समष्टि व्यष्टि गन्ध मण्डल मानव के भोग और अपवर्ग सम्पादन करने में समर्थ हुआ है। आप के वैराग्य की भावना तीव्रतम है तो यह ब्रह्म के साक्षात्कार के साथ-साथ अपवर्ग का हेतु भी वनेगा। अन्यथा भोग का निमित्त बन जन्म जन्मान्तर तक भटकाता रहेगा। अतः अभ्यास के साथ पर वैराग्य की निष्ठा अनिवार्य है। अनिवार्य है।

इति समष्टि घ्राण् इन्द्रिय मण्डलम्

इति द्वितीयाध्याये एकादशः खण्डः।

इत्यष्टादशमावरणम्।

द्वादश खण्ड

१७वा आवरण

समष्टि रसना इन्द्रिय मण्डल

पाँचो रूपो मे ब्रह्म-विज्ञान

समष्टि रसना मण्डल तीनो समष्टि अहकारो से परिणत हुआ है, जिनमे सात्त्विक अहकार की प्रधानता है। समष्टि घ्राण मण्डल के ऊपर यह मण्डल व्यवस्थित है। समष्टि ज्ञानेन्द्रिय मण्डलो मे यह दूसरा मण्डल है। यह मण्डल पहले से अधिक चमकदार सफेद रग का है। इसमे लाली पहले से कम है। मैला पीलापन पहले से अधिक है। नासिका मण्डल की अपेक्षा इसमे चेतना सी अधिक है तमोगुण रजस् के सहयोग से प्राणी को अपने वशीभूत कर व्यामोह मे डालने की शक्ति इसमे अधिक है।

योगिन्! यह १७वा आवरण है। आवरणो को विदीर्ण करने का आपको पर्याप्त अभ्यास हो गया है। पर इस विजय मे आपको पूरी शक्ति लगानी पडेगी। कर्मेन्द्रिय मण्डल मे जैसे शिश्न मण्डल पर विजय पाना सरल नही, वैसे ही ज्ञानेन्द्रिय मण्डल मे रसना पर विजय पाना अति दुष्कर है। सावधान हो वैराग्य की तीखी दुधारी को लिये आप जागरूक रहे, तो यह नत मस्तक हो सदा के लिये शीघ्र ही हार मान लेगी।

यह रसना मण्डल रस और रस के परिणामो के आस्वादन शक्ति का केन्द्र है। रस का चखना इसी मण्डल मे निहित है। इसी मण्डल की देन है जो जीवमात्र किसी भी योनि मे रहता है, रसास्वादन कर लेता है। पूर्व वर्णित महाभूतो, तन्मात्राओ और कर्मेन्द्रियो मे सत्त्व था पर स्वल्प मात्रा मे। इसीलिये उन मे ज्ञान गुण केवल ज्ञेय मात्रा मे था। ज्ञानेन्द्रिय मण्डल सत्त्व की प्रचुरता से चेतन सा प्रतीत होता है और प्रत्येक ज्ञानेन्द्रिय अपने अपने विषय को जानने मे समर्थ है। ज्ञानेन्द्रिया मे भी ज्ञानमात्रा उत्तरोत्तर वढती जाती है। सत्त्व के इतना बढ जाने पर भी रसना स्वय तो जड ही है। बुद्धि के सम्पर्क से इस मे स्वाद का ज्ञान कराने की शक्ति आती है। यदि बुद्धि का सम्बन्ध रसना के साथ है तो वह स्वाद बता देगी किसका स्वाद है और यदि चखने वाला गप्पा मे लगा है, तो यह रसना कुछ ही चखे जाये उसे पता ही नही चलेगा। ज्ञान का अधिकरण तो कोई और है, रसना तो केवल स्वाद बताने वाली है। परन्तु यह नहीं बता सकती कि किसका स्वाद है वह निर्णय बुद्धि करती है। जिस से यह व्यष्टि रसना बनी है उस मण्डल से ही रसना ने यह गुण लिया है। रसना मण्डल मे ही तो रसास्वादन निहित है। यह मण्डल ही रसास्वाद को बताने की सामर्थ्य वाला है। यह रसास्वाद ही इस मण्डल का धर्म है। मण्डल के इस धर्म का प्रत्यक्ष योग समाधि मे होता है।

यह मन्डल आकाश मे १७वी तह है। यह तह सदा आकाश म बनी रहती है। हाँ! प्रलय मे अवश्य अपने कारण मे लय हो जाती है और सब ही अपने कारण म लय हो जाते हैं, इस लिये तो वह प्रलय कहलाती है। सृष्टि के रचना काल मे इस मण्डल

का भी उपयोग सूक्ष्म शरीरो के निर्माण, उनकी क्षति-पूर्ति, और उनके भाग रसना इन्द्रियो के सुरक्षित करने मे होता है।

इस रसना मण्डल के भी पाच रूप हैं। उन पाँचो रूपो मे ब्रह्म का साक्षात्कार कीजिये। रसना रानी के चक्कर मे न फस वैराग्य को अक्षुण्ण बनाये रखिये, जिसमे ब्राह्मी स्थिति दृढ हो।

समष्टि रसना इन्द्रिय मण्डल

प्रथम रूप में ब्रह्म-विज्ञान

(रसना इन्द्रिय का प्रथम रूप)

१ समष्टि रसना इन्द्रिय के स्थूल रूप में—

समष्टि रसना मण्डल का एक ही धर्म है। "रसास्वादन" अर्थात् रस को या स्वाद को चखने की सामर्थ्य। रस धर्म स्थूल भूत जल का है, और स्थूल जल रस-तन्मात्रा का परिणाम है। यह रस-तन्मात्रा और उसके परिणाम सब ही जल के विभिन्न परिणामो मे विद्यमान हैं। पर रस को जानने या चखने की एक मात्र सामर्थ्य रसना मण्डल मे ही है। स्वाद तो सब मे है, पर चखने की शक्ति वाला नहीं, तो सब बेकार। किसी को गुड-मार बूटी पिला दीजिये, फिर किसी भी मिठाई के भण्डार मे ले जाइये। सब मिठाईयाँ उठा-उठा कर देते जाइये। मिठाई की शक्ल देख कर बडे चाव से मुख मे रखेगा। पर सब को ही एक-एक करके, थू-थू करके थूकता जायेगा। सब ही बेस्वाद मानो गारा की गोली हो। मिठाइयो मे तो स्वाद है, कोई भी खाये उसे स्वाद आता है, पर गुड मार ने तो रसस्वाद को ही मार दिया। जब स्वाद चखने की सामर्थ्य ही मारी गयी तो स्वाद के होते हुए भी स्वाद चखे कौन ? इसी प्रकार यदि रसना मण्डल न हो तो न व्यष्टि रसनायें बन सकें न स्वाद लेने वाला ही कोई रहे।

रस का आस्वादन ही इस मण्डल का रूप है। रसा स्वाद ही इस मण्डल का धर्म है। सत्त्व अहकार का परिणाम होने से इसमे सत्त्व की प्रधानता है। सत् प्रकाशक है। वर्त्तमान का प्रकाश करता है। बिना प्रकाश के विद्यमान वस्तु भी नहीं दीखती। रस आस्वादन कराने की सामर्थ्य वाले मण्डल का निर्माण हो गया। अब आगे जो रस-गुणाभिन्न रस-तन्मात्रा या उसके परिणाम सृष्टि रचना क्रम मे होंगे उनका यह रसास्वादन करा उनके रसवत्त्व को प्रमाणित करेगा।

रसास्वादन रसना मण्डल मे सदा रहता है। पर मण्डल अवस्था मे इस गुण का कोई व्यवहार नही। न तो समूचा मण्डल ही किसी का स्वाद लेता है, न इस समष्टि मण्डल के द्वारा कोई स्वाद लेने वाला है। जीव तो प्रकृति मे फसा हुआ, व्यष्टि रसना से स्वाद लेता है, पर ब्रह्म तो प्रकृति मे लिप्त नही जो इस समष्टि रसना-मण्डल का उपभोग कर रसो का आस्वाद ले। इसलिये रसना-मण्डल मे यह 'रसास्वाद' होते हुए भी व्यवहार मे नही आता। पर जब यह व्यष्टि-रसनाओं का निर्माण कर देता है तो इसका यह धर्म उनमे उग्र रूप मे प्रकट होता है। गुरु की योग्यता और पाण्डित्य शिष्य मे ही प्रकट होता है। आचार्य द्रोण ही तो अर्जुन और ऐकलव्य मे चमकने थे। दूध में घी है पर दीखता नहीं। दूध का दही और उससे तक्र मे परिणाम हुआ तो घी अलग साफ दिखाई देता है। इसी प्रकार इस समष्टि का 'रसास्वादन' व्यष्टि मे व्यक्त हो

गया है। जिह्वा पर कोई पदार्थ रखो तत्काल उसके रस को बतायेगी। पीसा सोडा नमक और फिटकरी पास-पास रखे है, बिलकुल सफेद। तीनो एक से लग रहे है। घ्राण ने सब को अपने पास रखा, पर कुछ पता नही चलता सब बेकार। रसना आगे बढी तनिक सी चुटकी जिह्वा पर रखी, बुद्धि ने निर्णय दिया तत्काल बोल उठी अरे यह तो नमक है। यह फिटकरी है और यह सोडा है। रसना की यह सामर्थ्य रसना-मण्डल की है क्योकि मण्डल ही इस का कारण है। इस मे प्रकाशक सत्व की प्रधानता है रसो का भेदक-ज्ञान बुद्धि द्वारा ही होता है।

इस व्यष्टि रसास्वाद ने ससार मे उथल-पुथल मचाई हुई है। भारत की नारी चाहे शिक्षित चाहे अशिक्षित रसास्वादन उनका पुराना चस्का है। चूल्हा इनका प्रिय-स्थान है, और कढाई प्रिय पात्र। पहले ही एक रस के छ रस परिणाम है उन छ रसो के नित्य प्रति रसोई घर मे बैठकर नित्य ३६ रस वाले ३६ व्यञ्जन तैयार करती हैं। उन्हे दिनरात इन्ही का कार्य क्रम बनाने मे बीतता है। प्रात ब्रह्म मूहूर्त मे उठेंगी पर भगवान् भजन को नही, भोजन-भजन को। आज गाजर का हलवा है, तो कल पिस्ते की लाज, परसो बादाम की बरफी। नित्य नया पुरोग्राम। यह स्वास्थ्य या रोग-निवारण के लिये नही। केवल रसास्वाद के लिये। एक-एक तोले की ३६ कटोरियो के व्यञ्जनो का आस्वादन कोई होम्योपेथिक का मल्टीप्लीकेशन (शक्ति सवर्धन) तो तैयार करेगी नही, और न ही कोई युन्नानीतिब की कोई माजून बनेगी क्योकि इन पोथियो से उन देवियो का कोई लगाव नही। यह तो सब रसास्वादाविष्कर्त्री है, और जो कुछ कर रही रसास्वाद के लिये।

शिक्षित महिलायें चौका चूल्हा नही सभालती। वह तो रसोईयो के सर्वथा आधीन हो गयी है, जैसे मिल जाता है, उसमे और उसके साथ बाजार के अलम-गलम के साथ रसास्वाद की हविस पूरी कर लेती है। परन्तु इनकी यह हविस पार्टियो मे, सम्मान भोजो मे और पिकनिक मे गुल खिलाती है। दिल खोल कर माल उडते है। आधे पेट मे आधे प्लेट मे। इन्हे तो बिल पर हस्ताक्षर ही करने है, पेमन्ट जिसे करना पडे करता रहे। यह है निराली करतूतें रसास्वाद की।

किसी महानुभाव मिनिस्टर महोदय को पान खाने की आदत थी। जेबी पान-दानी कही रह गयी। देहात का मुआयना। पान कहाँ से आये। फरमाइश तो कर ही दी गयी। फिर क्या था, कार दौडी। चार पैसे का पान ले कर आयी परञ्च चालीस रुपये पर पानी फिर गया। परवाह नही पान तो मिला। बान की आन तो रही। ऐसे-ऐसे रग दिखाता है यह रसास्वाद।

वैद्य जी का प्रसिद्ध औषधालय है। नाम बिकता है। हजारो की औषधियाँ नित्य बिकती हैं। च्यवनप्राश तैयार करना है। सब अशेष डाले, घोट-घाट कर तैयार हुआ। मालिक ने आकर चखा। क्या बनाया है? बडा बेस्वाद है? "महाराज! शास्त्रोक्ति विधि से बनाया है। एक-एक वस्तु तोलकर डाली है। अन्दाजे का काम नही। तैयार करने मे पूरा समय लगाया। पूरा लाभ करेगा महराज।" "लाभ करेगा, यह तो ठीक। पर कोई खायेगा तब ही तो। देखते नही और कम्पनियो के कितने स्वाद हैं।" "उनमे गुण क्या है महाराज।" "चूल्हे मे गया गुण। एक मन चीनी और डाल दो।

मूर्खों ! स्वाद वन जायेगा। स्वाद। रुपये सेर की चीनी १० रुपये सेर बिकेगी। ३६० का नेट लाभ होगा। वाह-वाही अलग मिलेगी।" देखा। श्रीमान् यह करामात है रसास्वाद की।

दही भल्ले वाले का दही खट्टा हो गया। वे स्वाद खाओ, तो पित्त उभाड कर विरेचन लगा दे। नौकर ने मालिक से पूछा, 'फेंक दू?' आश्चर्य से—'क्या?' 'खट्टा जो हो गया है।' पागल कही का। ला चीनी, और थोडा दूध। अभी ठीक होता है। अरे लोग स्वाद को चखते हैं स्वाद को। स्वाद के आगे स्वास्थ्य की नही चलती। यूँ दही फेंकना तो शहर मे यूँही दो हवेली वालो से बन जाती।" यह स्वाद है रसास्वाद का।

देसी घी की जलेबी का नाम चल निकला। बस और क्या चाहिये था। जलने लगा देसी के नाम पर बनास्पति। लोगो को चाहिये स्वाद। स्वाद मे कोई अन्तर नही। थोडा असली भी जो साथ है। लस्सी वाले की दुकान चल निकली। चार आने का गिलास आठ आने मे, बडी गाढी लस्सी, बडी मोटी मलाई। लेने वालो की लाइन की लाइन हर समय लगी रहे। ट्रैफिक पुलिस भी हैरान। शिकायत पहुँची। पुलिस ने छापा मारा। बढ़िया ब्लाटिंग पेपर का बण्डल दुकान से बरामद। इसी की तो मलाई बनती थी अरारोट के साथ। जो मीठा छिडकते ही लाजवाब हो जाती थी। यह करतूतें हैं रसास्वाद की।

इस प्रकार रसास्वद के मिथ्या चक्कर मे पडकर यह मानव अपना स्वास्थ्य, धर्म कर्म सब बरबाद कर देता है। रसनामण्डल की रचना हुई सब योनिया की व्यष्टि रसना के लिये। जिस से वे परिणामो का रसास्वादन कर अपने भोगो को सम्पन्न कर और मानव योनि मे इस रसास्वाद के द्वारा रसनामण्डल तक पहुँचें। रसना से अनुकूल प्रतिकूल का बोध कर स्वास्थ्य को ठीक रखें, और विवेक के मार्ग पर लग कर भगवान् को पहचानें। रसना मण्डल का निर्माण इसलिये तो नही हुआ कि उसकी कार्य रूप व्यष्टि रसना के परिणामो के विकारो मे फस कर स्वास्थ्य रक्षा के योग्य भी न छोडा जावे। इस रसास्वाद के पीछे मानव ने भक्ष्य अभक्ष्य का विचार भी छोड दिया। सात्त्विक को तामस बना कर खाने की आदत पड गयी। अगूर और जौ कितना सात्त्विक। पर इन्ह और ऐसी ही अन्य वस्तुओ को सडा-सडा कर उत्तजक अगूरी और वारले जैसी सैकडो प्रकार की शराब बना डाली। केवल रसास्वाद के पीछे। जिन्हे पी आदमी प्रमत्त हो जाता है। अन्न आदि के खाने से तो पट ही नही भरता। इस शराब के पाचन के लिये चाहिये मास। वह भी थोडा नही प्रमत्तता ही जा ठहरी। आरम्भ हो गया शिकार। पहले जगली जानवरो मे बहादूरी की शेखी बघारी, नागरिका का बना जगलों तक पहुँचना कठिन। ग्राम्य पशुओ की मौत आयी न बकरी छोडी न भैंस, न गाय न ऊँट। इनसे भी पेट न भरा तो निरीह कबूतरा मुर्गो, चिडियो, अण्डा पर नजर गयी। इस रसास्वाद के चस्के कब्रिस्तान बना यह पेट।

इस रसास्वाद के चस्के ने क्या अनर्थ नही किये इस मानव ने या दानव ने। मैंडको, चूहो, टिड्डो, केंकडो न जाने किस किस निरीह प्राणी का आचार बना इस रसा स्वाद की तृप्ति के लिये। केंचुए, बीर बहोटी, लाल चीन्टी तक भी खाने से नही बची। रसास्वाद की दृष्टि मे पहला मानवा आकार था, यह भारतीय था। यह है दानवाकार,

जो है हिंसक राक्षसो का जिसे अब अभागा भारत भी अपनाता जा रहा है। अपनी प्राचीन ऋषियो की सस्कृति को मिटाने पर उतारु हो गाया।

लोग इसे रसास्वाद का भोग कहते है। यह भोग नही मानसिक रोग है, ससार की रक्षा के लिए जिसका राजकीय उपचार आवश्यक है। यह तो मानव की उच्छ खलता है, उद्दण्डता है। और नृशसता। अध्यात्मिक तत्त्व की दृष्टि से यह असह्य है।

रसास्वादन तो मनुष्य, देव, दानव, और भोग योनिया सब ही करते हैं। बिल्ली दूध और दूध की मलाई को नही छोडती। न जाने कहाँ से कब आकर खा जाती है कुत्ता घी नही छोडता, चाहे हजम न हो। चूहे कपडे और कागज नही छोडते। चीन्टिया मीठा नही छोडती, कोई रसास्वाद ही है न। भोग योनियाँ तो प्रकृति वशात् अपना भोग सम्पादन करती हैं। भोग कर फिर कर्म योनि मे आ केवल्य के लिये यत्न करगी। देव दिव्य भोगो को भोग मानव जन्म ले भोगो से तृप्त हुए शीघ्र कैवल्याधिकारी बनेगे। मानव योनि ही कैवल्य का पडाव है। मानव योनि मे आकर जो रसास्वाद के पीछे दानव बन गये है, उनसे बढकर अज्ञानी और मूर्ख कौन होगा। ८४ लाख योनियो की मजिल पार कर, बडे लम्बे समय की प्रतीक्षा के पीछे लाखो कष्ट पाकर कैवल्य साधन का समय आया तो दानव रूप धारण कर फिर अध पतन के नारकीय गर्त से गिरने के लिये पाप के पत्थर गले मे बान्ध लिये। इसे ही तो कहते है दैव विडम्बना।

मानव तो वे ही है जो अपने विवेक से काम ले, रसास्वाद पर सयम कर हिंसा रहित स्थूल भूतो से बने पदार्थो द्वारा अपना भोग सम्पादन करते है कैवल्य की आर अग्रसर होने के लिये। देवता भी दिव्य भोग सम्पादन करने के लिये सूक्ष्म तन्मात्राओ से निर्मित पदार्थो का उपभोग करते है। पुन मानव जीवन मे आ कैवल्य साधते है। अज्ञानी मनुष्य रसना के दास बन जाते हैं। इस प्रकार आसक्ति पूर्वक रसास्वाद बन्ध का हेतु बन जाता है और निरासक्ति पूर्वक भोग मोक्ष का हेतु बनता है।

इस प्रकार समष्टि व्यष्टि रसना-मण्डल बन्ध-भोग-मोक्ष साधक रसास्वाद धर्म के लिये है। यह रसना-मण्डल कर्मेन्द्रिय मण्डल से ऊपर है और सूक्ष्म भी है। ब्रह्म की अन्वेषणा मे यह १७वा आवरण है। अत अपने ध्यान समाधि का इसे विषय बनाकर ब्रह्म की खोज इस मे करनी चाहिये। वैराग्य आपका उग्र और तीव्र बना रहे जिस से यह रसास्वाद विषय का विकराल व्याल डस न ले। ज्ञानेन्द्रियो मे इसी रसना पर अधिकार पाना सब से कठिन है। पर वैराग्य की वीणा इसे भी वशवद बना लेती है। वैराग्य की नौका ही आपको इन व्यामोहक भ्रमरो से पार ले जायेगी। वैराग्य के रग को गहरा करने चलिये, विजय ही विजय है। बिना ज्ञान के कोरा वैराग्य भी कुछ नही। ज्ञान वैराग्य और अभ्यास तीनों से ही सिद्धि होगी।

समष्टि रसना इन्द्रिय मण्डल

द्वितीय रूप मे ब्रह्म-विज्ञान

(रसना इन्द्रिय का द्वितीय रूप)

२. समष्टि रसना इन्द्रिय के स्वरूप में—

'रस आस्वाद' रसना मण्डल मे सदा रहता है। रसास्वाद कभी भी रसना मण्डल से अलग नही होता। रसास्वाद और रसनामन्डल का अभेद है। यह आस्वाद

इस मण्डल के परिणाम काल मे उत्पन्न हुआ है। यह इस की विशेषता है, इसके निर्माण मे समष्टि सत्त्वाहकार आदि तीनो का सम्मिश्रण तो सामान्य है, और विशेष है यह रसना मण्डल । व्यष्टि रसना के प्रति समष्टि रसना मण्डल सामान्य और व्यष्टि विशेष है। अत. इन सामान्य और विशेष का समुदाय ही यहा अयुत सिद्ध एक द्रव्य है। इसी को रसना मण्डल तथा व्यष्टि रसना का स्वरूप कहते है।

रसना इन्द्रिय मे जो रस आस्वादन की सामर्थ्य है वह इस का ही परिणाम होने से इस मे आयी है। व्यष्टि रसना इन्द्रिय रसना मण्डल से ही परिणत हुई है। व्यष्टि रसना इन्द्रिय का रसास्वाद स्वरूप ही इसका वोधक है। रसास्वाद-स्वरूप की प्रत्यक्ष प्रतीति रसना इन्द्रिय मे ही होती है। जैसे व्यष्टि रसना इन्द्रिय और रसास्वाद धर्म का अभेद है ऐसे रसना मण्डल और रसास्वाद का अभेद है। व्यष्टि रसना ही इस अभेद की साधिका है। यहाँ भी धर्म-धर्मी का परस्पर सम्वाय सम्बन्ध है। इसको ही स्वरूप सम्वन्ध कहते हैं।

रसना-मण्डल की इस परिणत होती हुई दूसरी स्वरूप अवस्था मे, इस सम्वाय सम्बन्ध मे, और व्यष्टि के भी स्वरूप सम्बन्ध मे, इसके अन्दर ब्रह्म की भी अनुभूति करनी चाहिये। ब्रह्म यहाँ भी व्यापक है। सदा इस मे रहता है। यह स्वरूप अवस्था की ब्रह्मानुभूति भी पर वैराग्य की परम पुनीत भूमि मे ही बद्ध मूल हो सकेगी। अत. वैराग्य की भूमि मे ही स्थिर हो कर अनुभव कीजिये, जिससे यह अनुभव स्थायी हो सके।

(प्रश्न) सूक्ष्म रसना इन्द्रिय ब्रह्मरन्ध्र मे ठहरी है। वहाँ सब ओर रुधिर मास मज्जा है, उसका रसास्वाद सूक्ष्म रसना से क्यो नही होता ? हमे तो यह सब स्थूल मे सूक्ष्म आदि की ही कल्पना मालूम होती है।

(उत्तर) अच्छा मान लो सूक्ष्म-इन्द्रिय की कल्पना ही है। पर यह तो बताओ स्थूल रसना मे भी तो रक्त है, यह उसका स्वाद क्यो नही बताती ? यह तो प्रत्यक्ष की बात है, यहाँ तो कोई कल्पना नही। देखो छलनी मे छिद्र होते है। अन्दर बाहर दोनो ओर दिखाई देते है। छिद्रो की चौडाई मे भी कोई अन्तर नही। पर क्या छलनी मे को उलटा कर छान सकते हैं। या घिया कस को उलटा रख घिया कस सकते है। जब आप इतना सा व्यतिक्रम कर अपने उद्देश्य मे असफल हो जाते हैं। यह शरीर रचना तो ज्ञानमय भगवान् के सन्निधान से हुई है। उसे समझने का प्रयास कीजिये, ऊपर की व्यर्थ की शकाओ से कुछ पल्ले नही पडेगा। देखो ! सूक्ष्म रसो का ही आस्वाद सूक्ष्म रसना लेती है। यह स्थूल रसना स्थूलो का ही स्वाद लेती है। इसका स्थूल सम्वेदन सूक्ष्म रसना तक पहुचते पहुचते सूक्ष्म बन जाता है। उसीका वह आस्वादन करती है। ब्रह्म रन्ध्र मे तो सब स्थूल ही स्थूल भरा है। उसका रसास्वादन उसकी परिधि से परे है। शिक्षक छात्रो मे घूमता है, पर इस से वह पढने वाला छात्र नही बन जाता। अपना ही अधिकार पूर्ण कार्य वहा भी करता है। स्थूल रसना मे भी जिस प्रकार स्वाद या अनुभव होता है वैसे ही होगा। उलटी छलनी से आटा छनना नही। जिह्वा कट जाती है। उसे कटे पर नमक डालो तो चिर मराहट ही होगा, स्वाद नही आयेगा। जिस प्रकार जिह्वा के कोष रस लेते है उसी प्रकार लेंगे। विपरीत नही। अब आपने भली भान्ति समझ लिया होगा, यह वैज्ञानिक तत्त्व है, कोरी कल्पना नही। स्थूल सूक्ष्म और मण्डल तीनो का होना आवश्यक

है। तीनो का अपना-अपना क्षेत्र और कार्य नियत है। उसमे व्यतिक्रम होते ही सब उ
पलट हो जायेगी। कोई भी व्यवहारिक व्यवस्था न चल सकेगी। यह सब रसना बु
पूर्वक है। सर्वज्ञ के सन्निधान से हुई है।

(प्रश्न) यह जिह्वा चखने का भी काम करती है और बोलने का भी।
ज्ञानेन्द्रिया एक-एक काम करती है, यह दो क्यो ?

(समाधान) जिह्वा का भी एक ही काम रसास्वादन है। बोलना इसका क
नही, वाग् इन्द्रिय का काम है। वाक् के काम मे जिह्वा भी सहयोगी है, जैसे दान्त, त
कण्ठ आदि अन्य भाग सहायक है। हा! वाग् इन्द्रिय का जिह्वा करण है जिह्वा से ही वि
स्थानो का स्पर्श होने से ही वर्णो का उच्चारण होता है। जिह्वा न हो तो स्थानो के स
के अभाव मे उच्चारण नही हो पाता। जैसे भक्त देवी पर जिह्वा चढा कर गूगे हो ज
हैं। इससे धोखा हो जाता है कि जिह्वा ही बोलती है। दान्त टूट जाने पर तवर्ग अ
दन्त्य अक्षरो का उच्चारण नही होता। होठ कट जाने पर ओष्ठ्य अक्षरो का उच्चा
नही होता। तोतले बच्चो को स्थान की भ्रान्ति होती है। वे भिन्न स्थान से उच्चा
करते है उच्चारण विगड जाता है। रोटी को लोटी, मोरी को मोली आदि बोल
है। 'र' का उच्चार मूर्धा से करना था, कर जाते हैं दान्त से। इसी प्रकार जिह्वा क
है। बोलने मे सहायक है। बोलना जिह्वा का धर्म नही। स्वरूप सम्बन्ध की परि
होती हुई अवस्था मे अर्थात् जब धर्मी धर्मान्तर के रूप मे परिणत हो उस अवस
सर्व व्यापक चेतन ब्रह्म का भी अनुभव होना चाहिये और धर्म-धर्मी का भी साक्षात्
होना चाहिये।

समष्टि रसना इन्द्रिय मण्डल

तृतीय रूप मे ब्रह्म-विज्ञान

(रसना इन्द्रिय का तृतीय रूप)

३ समष्टि रसना इन्द्रिय के सूक्ष्म रूप मे—

इस समष्टि रसना मण्डल का सूक्ष्म रूप उपादान कारण सात्विक अह
प्रधान रूप से और दोनो अहकार सहायक रूप से है। यह अहकार सब ज्ञानेन्द्रिय म
के प्रति सामान्य कारण है और इन्द्रिय विशेष हैं। यहाँ भी सामान्य और विशे
समुदाय ही रसना इन्द्रिय मण्डल है। यह समष्टि रसना मण्डल ही व्यष्टि रसना इ
का सूक्ष्म रूप या उपादान कारण है। रसना मण्डल सामान्य और व्यष्टि रसना इ
विशेष है। यह सामान्य विशेष का समुदाय ही यहा अयुत सिद्ध द्रव्य है। यहा कार
कार्य मे परिणाम ही कारण मे पदार्थ की सूक्ष्मता है। यही रसना मण्डल
व्यष्टि रसना की तीसरी अवस्था है। यही सूक्ष्म रूप है।

तीनो अहकारो के भेद रूप से अभेद को प्राप्त यह रसना मण्डल एक द्रव्य
इसकी रचना मे तीनो अहकारो का अनुपात इस प्रकार है—

समष्टि सात्विकाहकार १२ भाग + समष्टि राजसाहकार १० + स
तामस-अहकार ०८ = ३० यह मण्डल भी सत्त्व की पूर्वापेक्षा अधिक मात्रा होने से ज्ञा
प्रधानता है। यही ज्ञान की प्रधानता इस मण्डल के कार्य रसना इन्द्रिय मे आयी है।
की प्रधानता के कारण रसना का महत्त्व अधिक है। जहाँ अन्य इन्द्रिय मौन धारण

लेती है, उन्हें कुछ पता नही चलता वहाँ रसना ही आगे बढ उलझी समस्या को सुलझाती है। लेवल लगा-लगाकर ओषधियाँ रखी, वर्षा हवा से स्याही बिगड़ गयी। पढा नही जाता क्या नाम है। जो रग से पहचानी जा सकी उन्हे अलग कर लिया। उनमें भी जिनके रंग और आकृति एक-सी थी। पता नहीं था कौन-कौन-सी ओषधि है। जिह्वा की नोक पर रख-रखकर चखा बुद्धि ने निर्णय किया और सबका पता लगा लिया। नये लेवल लगा दिये इस प्रकार ज्ञानेन्द्रियों में खाद्य तथा पेय पदार्थों के निश्चय में बुद्धि द्वारा यही निर्णायक होती है। घ्राण का निर्णय अनुमान पर होता है, रसना का प्रत्यक्ष। स्वाद के निर्णय को रसना का ही अन्तिम निर्णय बुद्धि द्वारा प्रमाणित करता है। इस प्रकार रसना का सत्त्व प्रधान भाग अपना कार्य करता है। रसना मे भी तामस-भाग है। यह भी राजस समान है। इसलिए रसना मे चल धर्म बहुत कम है। कही जाती आती नही। मुख तक ही इसकी गति सीमित है। तामस की अधिकता बढ़ जाने के कारण अल्पप्राण भी है। कोई अधिक तीव्र स्वाद वाला पदार्थ खाया जाये, या अधिक शीत या अत्यन्त शीत पदार्थ खाया जाये तो थोडे काल के लिये तामस के बढ जाने से अपनी स्वाद लेने की चेतना ही खो बैठती है। हाँ! दिव्य रसना सदा जागरूक बनी रहती है, उस पर किसी की उग्रता का प्रभाव नही पड़ता। जब स्थूल स्वाद सूक्ष्म होकर उसके पास पहुँचता है तभी वह अपना कार्य प्रारम्भ करती है। स्वतन्त्र रूप से योगियों और स्वर्गस्थ आत्माओं को दिव्य रसों का आस्वादन स्थूल के बिना किसी प्रकार के सहयोग के चखाती है। वे दिव्य रस तो देवताओं का भोग हैं। आप का दिव्य रसास्वादन की इच्छा हो आयी है, तो अच्छा ही है आप भी योगाभ्यास की पुनीत 'विशोकाज्योतिष्मती' पद्धति का अभ्यास कर सूक्ष्म चमकती ब्रह्मरन्ध्रस्थ दिव्य रसना इन्द्रिय का पहले साक्षात् कर और फिर उस पर अधिकार पा इस मानव शरीर मे ही देवताओ के भोगों को भोग सकते है।

सूक्ष्म रसना का ज्योतिर्मय स्वरूप, ज्योतिर्मय समष्टि रसना मण्डल से ही प्राप्त हुआ है। समष्टि मण्डल से ही तो यह व्यष्टि परिणत हुई है। जब यह समष्टि रसना मण्डल तीनो अहंकारो के परिणामस्वरूप अपने रूप मे परिणत होता है। अथवा जब यह रसना मण्डल व्यष्टि रसना इन्द्रिय मे परिणाम को प्राप्त होता है वह भी एक अनोखा परिणाम होता है। यह परिणाम उस चेतन भगवान् के सन्निधान के निमित्त से ही होता है। भगवान् का सन्निधान ही इन कारणों की मात्रा, दिशा, परिणाम आदि का नियामक है। यहा कारण से कार्य में परिणाम ही कारण में रसना मण्डल और रसना इन्द्रिय की सूक्ष्मता है। यही इस मण्डल का सूक्ष्म रूप तीसरी अवस्था है। इस कारण से कार्य परिणाम काल में ब्रह्मानुभूति करनी होती है। यही मुख्य लक्ष्य साधना का है। गौण रूप से पदार्थों के तत्त्व का भी बोध हो जाता है। 'ज्ञानस्य पराकाष्ठा वैराग्यम्' ज्ञान की अन्तिम सीमा यही है कि रसना मण्डल और उसके परिणाम व्यष्टि रसना इन्द्रिय से भी वैराग्य हो जाये। अभ्यासपूर्वक वैराग्य ही मोक्ष का हेतु है। अभ्यास से भी वैराग्य ही पुष्ट होता है। अतः साधनों में वैराग्य ही परम साध्य है। इसको ही उपासना अभीष्ट उद्देश्य तक पहुँचायेगी।

समष्टि रसना इन्द्रिय मण्डल
चतुर्थ रूप मे ब्रह्म-विज्ञान
(रसना इन्द्रिय का चतुर्थ रूप)

४ समष्टि रसना इन्द्रिय के अन्वय रूप मे—

इस रसना इन्द्रिय का प्रकृति के साथ परम्परागत अन्वय रूप सम्बन्ध है, क्योकि यह अपने प्रत्येक कार्य मे अनुपतन होती हुई रसना मण्डल मे और उसके परिणाम रसना मे पहुँची है। समष्टि रसना मण्डल प्रकृति की चौथी पीढी मे है। प्रकृति के गुण और धर्म ही रसना मन्डल और रसना मे विद्यमान् है। प्रकृति के स्थिति धर्म से ही समष्टि और व्यष्टि रसना की स्थिति है। प्रकृति का सत्व ही रसना मे 'आस्वाद' रूप मे परिणत हुआ है। रसास्वादन समष्टि रसना मण्डल मे था, वही व्यष्टि रसना इन्द्रिय मे आया है। सूक्ष्म रसना इन्द्रिय तो आकाश मण्डल मे वर्त्तमान सामान्य रस के परिणामो को भी यथेच्छ रूप मे उपभोग कर लेती है। इस प्रकार मूल प्रकृति अपने धर्म और पदार्थो के साथ इस रसना मण्डल और रसना इन्द्रिय मे अनुपति हुई है। यही इस मण्डल और रसना का अन्वय रूप है। इस अन्वय रूप का प्रत्यक्ष समाधि मे कीजिए। समस्त परिणति के निमित्त भगवान् की सन्निधानता का भी प्रत्यक्ष कीजिए। जिस के कारण इन मण्डलो मे अन्वय रूप मे प्रकृति का धर्म पहुँचा है।

प्रकृति का यह सब परिणाम भोग और अपवर्ग के सम्पादनार्थ है। यदि भोग मे रति है तो ८४ लाख योनिया भी आपकी नीरस भ्रमण स्थली के लिए उपस्थित है। सूअर, कुत्ता, बिल्ली, कीडा-मकोडा जिस योनि मे भी चाहे जाइये। यदि इन योनियो की दीनता-हीनता को देख भोग से वैराग्य हो गया तो अवश्य ही इच्छा कीजिए। बिना रसना और रसना मण्डल से वैराग्य प्राप्त किये मोक्ष की साधना पूरी नही होती।

समष्टि रसना इन्द्रिय मण्डल
पञ्चम रूप मे ब्रह्म-विज्ञान
(रसना इन्द्रिय का पञ्चम रूप)

५ समष्टि रसना इन्द्रिय के अर्थवत्व रूप मे—

ससार मे अर्थात् इस लोक और परलोक मे जितने भी स्वाद है, वे सब इस जिह्वा के विषय है। यदि इसकी रस ग्रहण करने की शक्ति खतम हो जाये, तो ससार के सब रस बेकार हैं। एक बार गलत दवाई खाने से मेरी जिह्वा की रस ग्रहण करने की शक्ति कुछ मास के लिए जाती रही थी। ऐसा मालूम होता था, कि ससार मे कोई रस ही नही है। मिट्टी मे भी कुछ-न-कुछ स्वाद होता ही है, परन्तु जैसे रेत का कोई स्वाद नही होता इसी प्रकार चीनी और नमक का स्वाद प्रतीत होता था। यह रसना इन्द्रिय ही रसास्वादन रूप आसक्ति का विषय होती है। यदि इस पर विजय पा लिया जाये तो ससार के एक बडे भारी बन्धन से मुक्ति हो जाय। यह रसना भोग और मोक्ष मे सहायक है। यही इसमे अर्थवत्ता है।

रसना पर विजय के लिए घोर तप

यह इन्द्रिय ज्ञानेन्द्रियो मे अत्यन्त बलवान् है। मानव दिन भर नाना प्रकार के व्यञ्जन बना बनाकर खाने मे कई-कई घन्टे नष्ट कर देता हैं। ४-५ अगुली की जिह्वा की

तृप्ति के लिए अनेक व्यञ्जन बनाता है। गृह देवियाँ तो प्रायः अधिक समय पाकशाला में इसी की तृप्ति के लिए खर्च कर देती हैं। परन्तु फिर भी इस जिह्वा की तृप्ति के अनुकूल भोजन नहीं बनता है। ४-५ अंगुल कण्ठ से नीचे उतर कर सब रसों का एकीकरण हो जाता है। बहुत से महात्मा इसको वश मे करने के लिए भोजन करने के समय मे सब खाद्य पदार्थों को एक ही बरतन में मिला लेते हैं। एक बार कश्मीर वैरीनाग मे मेरे साथ एक महात्मा भोजन करने गये। जिस परिवार मे भोजन करने गये थे, उसमे माता ने बडी श्रद्धा भक्ति से नाना प्रकार के स्वादिष्ठ खाद्य पदार्थ बनाये थे। महात्मा के पास खप्पर था। उसने थाली से कटोरियाँ उठा-उठाकर सब सब्जी तथा अन्य खाद्य पदार्थ अपने खप्पर मे डालने शुरू कर दिये। माता ने महात्मा जी को रोकते हुए कहा[1] यह आप क्या करने लगे है। मैं तो सारा दिन पका-पकाकर मर रही। आप सब अच्छी चीजें इस कुण्डे मे एक ही करने लगे है। आपने पहले ही कहना था, "मैं इतना परिश्रम न करती।

सन्त शरमिन्दा से होकर कहने लगे "मैंने सब स्वादों पर विजय पाने के लिए कई वर्ष से ऐसा ही आचरण किया हुआ है।"

माता बोली, "तो क्या सब पर विजय पा लिया है।"

"हाँ! मुझे कोई ऐसा स्वाद अनुभव नही होता है, सब एक समान से ही हो गये हैं।"

माता ने थाली उठा ली और कहा—"आपके लिए एक ही सब्जी लाती हूँ। सब क्यो खराब करती हैं।"

माता एक बडे कटोरे में घीया की सब्जी डालकर और ऊपर से एक मुट्ठी नमक डालकर मिला लाई, और महात्मा के खप्पर मे डाल दिया। महात्मा तो २-३ फुल्के खाकर हट गये, मैंने खूब पेट भर खाया।

मैंने पूछा—"क्या बात है? आज तो आपने बहुत ही कम भोजन किया?"

चुपकर के आहिस्ता से कहने लगे—"माई ने नमक बहुत डाल दिया है।"

मैंने कहा—"आपने तो सब रसों पर विजय पा ली है। फिर कैसे मालूम हो गया नमक अधिक है?"

मैंने पुनः माता को बुलाकर कहा—"सन्त आपकी परीक्षा मे फेल हो गये हैं। पुन. अच्छा और स्वादिष्ट भोजन पहले जैसा ले आवें।"

माता मुस्कराते हुए बोली—"इसमे क्या नुक्स था?"

मैंने कहा—"आपको पता तो है, अब क्या पूछती हैं। सन्त भूखे रह जायेंगे। आपके घर से सन्त भूखा नही जाना चाहिए। आप गृहस्थ है, यह अतिथि सेवा है।"

माता ने उत्तर दिया—"अतिथि के सामने तो जो भिक्षा आ जाये, चुप करके खा लेनी चाहिए। मैंने बहुत बडे महात्मा समझकर बहुत अच्छा भोजन बनाया था। इन्होने मेरे सामने मेरी मेहनत, श्रद्धा एव प्रेम को इस खप्पर मे गडमड कर दिया। मुझे बहुत बुरा मालूम हुआ, और क्रोध आ गया; अतः एक बडी मुट्ठी नमक की सब्जी मे डालकर ले आई थी।"

१. यह माता सेठ तुलसीराम बम्बई निवासी की धर्मपत्नी मनसा देई जी थी जो अपने पति के साथ अभ्यागार्थ आई थीं।

सब परिवार वाले खूब हसे। उस दिन से सन्त जी ने नियम कर लिया ऐसा नही करूगा।

इसका भाव यह है कि रसना इन्द्रिय पर विजय पाना अत्यन्त कठिन है। यह रसना ज्ञानेन्द्रियो मे अत्यन्त बलवान् है। यह तो एक व्यष्टि इन्द्रिय की बात है। यह उस समष्टि इन्द्रिय का विषय है जो कि इसका भी उपादान कारण है। जिसका कि हम विज्ञान करना है। एक एक इन्द्रिय को विजय करने मे अनेक वर्ष और अनेक जन्म भी लग जाते हैं।

अमृतसर मे एक सन्त थे। उन्होने २६ वर्ष तक रसना इन्द्रिय को विजय करने मे कठिन तपस्या की थी परन्तु फिर भी वह वश मे न हुई। २६ वर्ष तक कोई भी मीठी वस्तु खाने को नही ली थी। परन्तु २६ वर्ष के पश्चात् भी इसने जलेबी खाने म जबरदस्ती प्रवृत्त कर दिया था। गीता मे कहा है—

इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभ मन ॥६०॥
वशे हि यस्येन्द्रियाणि, तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥६१॥
इन्द्रियाणा हि चरता, यन्मनोऽनु विधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञा, वायुर्नावमिवाम्भसि ॥' (६७ अ० २०)

—'इन्द्रिय अत्यन्त बलवान है। यह बहुत शीघ्र मन को बहका लेती है। हरण कर लेती हैं। जिसकी इन्द्रिया वश मे है, उसकी बुद्धि स्थिर रहती है। चलायमान या चञ्चल नही होती है। इन्द्रियो को विषय मे गमन करने से यदि रोका नही जाता है, और मन भी उनके पीछे चल देता है तो इसकी बुद्धि को ऐसे हरण कर लेती है, जैसे अत्यन्त तीव्र वायु जलाशय, नदी, या समुद्र मे नाव को इधर उधर अपने वेग से उडा ले जाती है।'

अत योगी को इन्द्रियो का निरोध अवश्य करना चाहिये। यह सब रसना इन्द्रिय की अर्थवत्ता का वर्णन किया गया है। क्योकि यह भोग और अपवर्ग मे सहायक होती है। इसका विजय और विज्ञान प्राप्त करना अत्यन्त ही आवश्यक है। इसके विज्ञान और अर्थवत्ता मे ब्रह्म का भी विज्ञान अत्यन्त ही आवश्यक है। इसके आवरण का भेदन करके ही ब्रह्म लोक मे गमन होना है। यह ब्रह्म के ऊपर १७वा आवरण है। वैराग्य से ही इन्द्रियो पर जय लाभ होगा, अत वैराग्य भावना को अधिकाधिक दृढ करना है।

इति समष्टि रसना इन्द्रिय मण्डलम्।

इति द्वितीयाध्याये द्वादश खण्ड ।

इति सप्त-दशमावरणम्॥

त्रयो दश खण्ड

१६ वा आवरण

समष्टि नेत्र इन्द्रिय मण्डल

(पाँचो रूपो मे ब्रह्म विज्ञान)

समष्टि कर्मेन्द्रियो के मण्डलो के पश्चात् ज्ञानेन्द्रियों के मण्डल है। समष्टि नेत्र मण्डल उन मे तीसरा है यह मण्डल सफेद तीव्र चमक वाला अधिक गहरे लाल रग का है। पीतकालिमा कम है। रसना मण्डल से भिन्न प्रतीत होता है। प्रकाश और चमक उसकी अपेक्षा तीव्र है। सत्वगुण और रजोगुण की माना अधिक है, इसीलिये चेतना और जागरुकता अधिक है। ज्ञान उपार्जन मे यही सर्वाधिक उपयोगी है।

योगिन् ! यह १६वा आवरण है। यह मण्डल स्वय प्रकाश प्रधान है। ज्ञान के द्वारा इस पर और इसके कार्य व्यष्टि इन्द्रिय पर विजय पाना कठिन न होगा। दृढता के साथ आगे बढते चलो। इसका धर्म है, 'रूप दिखाना। ससार के समस्त ज्ञानो के मूल-भूत ५ ज्ञानो मे से यह एक है। यह नेत्र रूप और रूप के परिणामो को जानने, पहचानने का केन्द्र है। रूप और रूप के परिणामो को पहचानने का सार-भूत तत्व इस मण्डल के स्तर मे निहित है। इस स्तर मे भी इस धर्म का व्यवहार नही है। व्यष्टि नेत्रेन्द्रिय मे यह व्यक्त होता है। तत्व से तो यह मण्डल और व्यष्टि नेत्र दोनो जड हैं स्वय अपने आप देखने की इनमे कोई सामर्थ्य नही, पर चेतन जीव के सम्पर्क से नेत्र मे और परब्रह्म के सम्पर्क से नेत्र मण्डल मे दिखाने की सामर्थ्य आ जाती है। यदि मन बुद्धि का सम्बन्ध किसी अन्य इन्द्रिय से जुडा है तो आँख देखते हुए भी नही देख सकेगी। यह नेत्र मण्डल 'रूप दिखाने' की सामर्थ्य वाला है। इसीलिये इस उत्पन्न हुई व्यष्टि नेनेन्द्रिय जीव को दिखाने मे समर्थ होती है। यह सामर्थ्य भी मण्डल से परिणत सूक्ष्म नेनेन्द्रिय मे है। जो अनादि काल से सूक्ष्म शरीर के साथ है। प्रत्येक योनि मे साथ रहती है। यह बाहर का आँख का गोलक तो इस शरीर के साथ उत्पन्न होता है। नवजात शिशु की आँख छोटी सी होती है। युवा होने तक पूर्ण रूप से विकसित हो जाती है। शिशु तो आरम्भ मे कुछ देख ही नही पाता। कई मास मे प्रकाश को पूर्णतया पकड पाता है, और दृष्टि स्थिर होती है। पुन शनै शनै सूक्ष्म विषयो को भी ग्रहण करने लगती है, और शरीरान्त समय मे यह आँख शरीर के साथ ही चली जाती है। परन्तु सूक्ष्म आँख इस प्रकार से उत्पत्ति विनाश वाली नही। लाखो, करोडो, अरबो वर्ष तक एक ही सूक्ष्मशरीर मे बनी रहती है। जीव का मोक्ष होने पर या प्रलय अवस्था मे अपने कारण मे लय हो जाती है। इतने वर्षों का अनुभव है देखने का इस आँख का। ऐसा अति दीर्घ काल स्थायी देखने का धर्म इसमे आया है इस नेत्र मण्डल से। जो प्रत्येक योनि के छोडने के अवसर इसकी क्षति पूर्ति करता रहता है। नेत्र मण्डल म इस रूपधर्म का प्रत्यक्ष योगी को समाधि मे करना होता है।

नेत्र मण्डल भी अन्य मण्डलो की भांति सदा आकाश मे रहता है। प्रलयकाल मे अपने मूल प्रकृति मे लीन रहता है। सृष्टिकाल मे इसका उपयोग व्यष्टि नेनेन्द्रिय के

निर्माण तथा सूक्ष्म शरीरस्थ नेत्रेन्द्रिय की क्षति पूर्ति एव प्रत्यावर्तित नेत्रेन्द्रियो के आत्मसात् करने मे होता रहता है।

इस प्रकार ब्रह्म के सन्निधान से यह प्रकृति निर्माणोन्मुख करती रहती है। नेत्र-मण्डल के पाँचो रूप भी इसी निर्माण का एक अश है। उन पाँचो रूपो का समाधि मे प्रत्यक्ष कीजिये। वैराग्य की पुनीत भट्टी मे तपाये हुए सोने की भाँति कुन्दन बन सर्वव्यापक ब्रह्म का दर्शन कीजिये।

समष्टि नेत्र-इन्द्रिय मण्डल

प्रथम रूप मे ब्रह्म-विज्ञान

(नेत्र इन्द्रिय का प्रथम रूप)

१ समष्टि नेत्र इन्द्रिय के स्थूल रूप मे—

समष्टि-नेत्र-मण्डल का एक ही धर्म है "रूप को दिखाने का सामर्थ्य' अर्थात् रूप उपलब्ध करना। रूप धर्म स्थूल अग्नि का है। और स्थूल अग्नि रूप-तन्मात्रा का परिणाम है। यह रूप-तन्मात्रा और उसके परिणाम समस्त अग्नि परिणामो मे वर्तमान है। इनको देखने का एक मात्र साधन समष्टि-नेत्र-मण्डल मे निहित है। ससार मे रूप के मूल-रूप तीन या सात रग है। उनके आनुपातिक रासायिनिक विभिन्न मिश्रणो से परिणाम रूप सहस्रो रग बन जाते है। सातो रग तो इन्द्र धनुप मे रवि-रश्मियो के विभक्त होने से बन जाते है। यही रवि-किरणो के रग सहस्रो परिणामो के रूप मे प्रकृति के विभिन्न फूलो, कीट पतगो पशु पक्षियो की रगीन झाकियो, और उनकी ही अनुकृति के विभिन्न मिश्रणो से मानव रचना मे जो रग-बिरगे बहुरगे मनोरम दृश्य एव रूप दिखाई देते हैं, यदि देखने का उपकरण आँख न हो तो सब बेकार। यह सारे रग रूप अन्धकार मे परिणत हो जाये। यह आख इसी नेत्र-मण्डल का तो परिणाम है। यह 'रूप दिखाने की सामर्थ्य' इस नेत्र मण्डल मे ही निहित है। नेत्र मण्डल कारण है और आख कार्य। कारण से ही कार्य मे यह धर्म आया है। मण्डल से ही यह धर्म व्यष्टि-नेत्र मे आया है। 'देखना' धर्म नेत्र-मण्डल मे है। पर मण्डल न स्वय देखता है, न साक्षात् रूप मे स्वय किसी को दिखाता है। अत व्यापक से नेत्र मण्डल मे 'रूप दिखाने' का धर्म मूल रूप मे सुरक्षित रहता है। जो व्यष्टि नेत्रो मे कार्य रूप मे परिणत होता है।

'णीञ्' धातु 'प्रापणे' अर्थ मे है। नयति प्रापयति इति नेत्रम्। जो ले जाती है या प्राप्त कराती है वह नेत्र है। आखे ही सब को ले जाती है। आखें न हो या फूट जायें तो एक पग चलना भी दूभर हो जाये। यह दूसरी बात है कि आखे न रहने पर अन्ध व्यक्ति की स्पर्श शक्ति बढ जाती है। वह हाथ पैर से टटोल-टटाल कर आखो का काम निकालता है। गुन्जान आबादी और बीहड जगल मे वह नही चल सकता। ऐसे स्थानो पर तो चलने मे आँख ही सहायक है। गुन्जान आबादी मे भी आग वाले कैसी सरपट साइकिल दौडाते है। एक साइकिल ही क्या, जितनी भी रेल, मोटर, हवाई जहाज, टागा टमटम, बग्घी जो भी ले जाने वाली सवारियाँ है। सब ही आखो से ले जायी जाती हैं, और सुरक्षित उद्दिष्ट स्थान पर पहुचाई जाती हैं। यदि आख वाले पाइलेट या ड्राइवर तनिक सी असावधानी से आखो के काम मे चूक जायें तो बस सारी ही यात्रा ठप, और यात्रियो की दुर्दशा का तो कहना ही क्या। अत इन आखो का काम

ही ले जाना, या पहुचाना है। इस ले जाने या पहुचाने के साधन तो पैर है, आख उठाकर नही ले जाती। आख तो अपना काम रूपोलब्धि का ही करती है। बुद्धि वृत्ति आख के द्वारा बाहर निकल कर प्रकाश रश्मियो द्वारा दृश्य के साथ सम्बन्ध करती है। इस सम्बन्ध के उपरान्त उस दृश्य का प्रतिबिम्ब प्रत्यावृत्त मन की वृत्ति द्वारा बुद्धि पर पडता है, और दृश्य का बोध कराता है। ले जाने या पहुचाने मे आख यही तो काम करती है। पग के उठने से पहले, जहा पग पडना है, उस स्थान के दृश्य की सम्पूर्ण उपलब्धि करा देती है। बुद्धि मण्डल के निर्णय दे देने पर पग उठता है, और ठीक निर्णीत स्थान पर रखा जाता है। यात्रा सुख पूर्वक सम्पन्न हो जाती है। पर यदि यह चञ्चल मन असावधानी कर जाये। आख का साथ छोड दे, या मार्ग को छोड अन्य कुछ निहारने लगे, या कही और अटक जाये, तो तत्काल ठोकर लगती है, और बुद्धि सावधानी से चलने के लिये सचेत कर देती है। यदि अधिक असावधानी बरती गयी तो ऐसी ठोकर लगती है, कि चलने वाला चारो खाने चित्त आ पडता है।

यह सब दिखाने का काम स्थूल नेत्र करता प्रतीत होता है। यदि कोई स्थूल नेत्रो को बन्द कर दे, तो दिखना बन्द। यह तो सही, पर जब मरणासन्न व्यक्ति पर लोक यात्रा के लिये प्रयाण को तत्पर है, और परलोक की ओर अपनी अन्दर की सूक्ष्म आखो को फेर लेता है, तो यह आखे खुली की खुली रह जाती हैं। जिस अत्यन्त स्नेहपात्र प्रियतम व्यक्ति के बिना एक क्षण भी नही रह सकता था, अभी कुछ क्षण पूर्व जिस से घनिष्ट आत्मीयता की बात कर रहा था, जिसे अपने पास से उठने ही नही देता था, जिसकी आखो मे आखें डाल सर्वस्व न्योछावर सा कर रहा था, खुली आखो के सामने वह ही व्यक्ति खडा है, प्यार से बुला रहा है, ढाहे मार २ कर बुला रहा है। वही प्यार भरी आखें खुली है पर देख नही रही। देखने वाली सूक्ष्म आख तो सूक्ष्म शरीर के साथ चली गयी। अब देखे कौन। यह स्थूल आखें तो उन सूक्ष्म आखो के जाने आने का ही मार्ग थी। माईक खडा है। बैटरी चालू है। पर बोलने वाला ही नही। माईक क्या बोले। देखने वाली सूक्ष्म आखें नही तो यह आखें क्या देखें। वास्तविक नेत्र तो ब्रह्म रन्ध्रस्थ सूक्ष्म आखे हैं। यह बाहर के डेले तो उसके सहायक मात्र मार्ग रूप हैं। आख का धर्म तो केवल रूप का देखना है, जो इस मे कारण भूत नेत्र मण्डल से आया है। यह बाह्य स्थूल नेत्र तो समष्टि नेत्र मण्डल का परिणाम नही। मण्डल का परिणाम तो सूक्ष्म नेत्र है, । वही देखती है, उसी का धर्म देखना है। वह देखती मात्र है। अन्य कुछ भी नही करती। पर यह स्थूल आख तो आसू भी बहाती है, कीट भी निकालती है, पाण्डु रोग मे पीली हो जाती है। आखे दुखनी आ जायें तो लाल भी हो जाती है, विकारवान् हैं, नाना प्रकार के रोग हो जाते है। स्थूल शरीर के साथ ही उत्पन्न होती है, स्थूल के साथ ही नष्ट हो जाती है। सूक्ष्म तो ऐसी नही, लाखो अरबो वर्ष उसकी आयु की अवधि है। मुक्तावस्था मे ही कारण मे लय होती है। या प्रलय समय मे। सृष्टि काल मे तो बनी ही रहती है। ऐसी है यह वास्तविक सूक्ष्म नेत्र। बाह्य स्थूल आख तो शरीर का अवयव है। शरीर की आकृति के साथ इसकी भी आकृति पलट जाती है। मनुष्य, बिल्ली, ऊट, हाथी, कव्वा, तोता, साप, सबकी अपनी ही आखे निराली है। किसी की लम्बी, किसी की गोल, किसी की छोटी, किसी की मोटी, किसी की सुकडी, किसी की चौडी यह सब शरीरो के भेद से

हैं। पर सूक्ष्म नेत्र सब एक से हैं समान है उनमे कोई भेद नही। चाहे किसी भी योनि मे हो, क्या कि सूक्ष्म शरीर सकोच विकास धर्मवाला है। सूक्ष्म नेत्र ही नेत्र मण्डल से परिणत हुआ है। सूक्ष्म नेत्र के 'रूप दिखाना' धर्म से ही कारण रूप नेत्र मण्डल का धर्म जाना जाता है। फलो से ही वृक्ष पहचाना जाता है।

यह रूपोपलब्धि ही पदार्थों की भेदिका है। यह नेत्र ही रूप को पहचानता है। हजारो गौओ की आकृति समान है, गोत्व रूप ही तो सब मे है, पर प्रत्येक गौ मे व्यष्टि गात्व रूप भी है, जिसके आधार पर गवाला प्रत्येक गाय को पहचानता है, यह अमुक स्वामी की है। इतनी सूक्ष्मता से रूपोपलब्धि करना नेत्र का ही स्थूल रूप है।

इस नेत्र का जो विषयाकार रूप परिणाम है वही इसका भोग है। जिस समय सात्त्विक अहकार से परिणाम भाव को प्राप्त होता है, उसी समय नेत्र मण्डल मे 'रूप को दिखाने के धर्म का प्रादुर्भाव होता है और जब व्यष्टि नेत्र समष्टि से उत्पन्न होता है तब वह भी अपने रूप धर्म को साथ मे लेकर उत्पन्न होता है। इस काल मे ही समाधि मे इनका साक्षात्कार करना चाहिये। इसके साथ ही साथ सब के निमित्त ब्रह्म के सन्निधान का भी साक्षात् करना चाहिये। समष्टि पदार्थों की उत्पत्ति के साथ सर्वत्र ब्रह्म का सम्बन्ध है। इसलिये व्यष्टि से समष्टि और समष्टि से ब्रह्म का साक्षात्कार करना चाहिये। बिना वैराग्य की पूर्णपुट के यह ब्रह्म ज्ञान अक्षुण्ण होने वाला नही, अत वैराग्य और पुन परम वैराग्य को सिद्ध करते चलिये। तभी शाश्वत ब्रह्म का शाश्वत दर्शन होगा और मोक्ष प्राप्त होगा।

(शका) क्या बाहर के गोलको के विकृत हो जाने पर, या टूट फूट जाने पर अन्दर के गोलक भी टूट फूट जाते है?

(समाधान) अन्दर के सूक्ष्म नेत्र टूटने फूटने वाले नही हैं। उन का सम्बन्ध सूक्ष्म शरीर के साथ है। यदि बाहर के गोलक विकृत हो जाते हैं, तो इनका इलाज करने से बहुधा ठीक भी हो जाते है। यदि बिलकुल ही खराब हो जाव, तो उसका उपाय भी किया गया है। साइन्सदानो ने एक छोटे से यन्त्र का आविष्कार किया है, आँखो के नष्ट होने पर उससे पढने आदि का काम ले लेते हैं। इससे सिद्ध होता है कि अन्दर वाले सूक्ष्म नेत्र खराब नही होते है। इनका सम्बन्ध सूक्ष्म शरीर से है, उसका विनाश होने पर ही वे समाप्त होगे। उससे पूर्व ये न खराब होते है, न अकेले नष्ट होते हैं अर्थात् सूक्ष्म शरीर कभी अन्धा नही होता। ये सूक्ष्म तन्मात्रा के लोक मे भी दर्शन का काम करते है, और इस स्थूल शरीर मे भी। समष्टि नेत्र मण्डल कारण है, और व्यष्टि नेत्र कार्य। समष्टि मण्डल से ही व्यष्टि नेत्रो की उत्पत्ति होती है। समष्टि मण्डल की उत्पत्ति सत्त्वप्रधान समष्टि अहकारो से होती है और व्यष्टि इन्द्रिय की उत्पत्ति समष्टि मण्डल से होती है। इस प्रकार क्रम पूवक इन का निर्माण होता रहता है और जीवो के साथ मिल कर भोग और मोक्ष का हेतु बनती रहती है।

(शका) पहले आप कथन कर चुके है कि सत्त्व प्रधान अहकार से इन्द्रियो की उत्पत्ति होती है, और अब कहते है कि समष्टि नेत्र मण्डल से व्यष्टि नेत्रो की उत्पत्ति हुई है?

(समाधान) जब ब्राह्मी सृष्टि उत्पन्न होती है, तब सब पदार्थों की उत्पत्ति समष्टि के रूप मे ही होती है। तत्पश्चात् जब प्राणियो की उत्पत्ति होती है उस समय

एक-एक समष्टि मण्डल से उसके कार्यों की अनेक रूपो मे उत्पत्ति होती है, अर्थात् समष्टि नेत्र-मण्डल कारण रूप है और वह व्यष्टि इन्द्रियों को उत्पन्न करता रहता है। जैसे वर्तमान मे हमारी पृथिवी अपने अनेक कार्यों का सृजन करती रहती है, धातुओं, पाषाण भेदो, तेल और गैसो के रूप मे जो भी इससे सम्भावित कार्य हो सकते हैं उनकी रचना करती रहती है। इसी प्रकार ये इन्द्रियो आदि के समष्टि मण्डल भी अपने-अपने कार्यों को उत्पन्न करते रहते हैं। वैसे सब का उपादान कारण प्रकृति है और निमित्त कारण सर्वत्र भगवान् हैं। इस उपरोक्त क्रम मे भगवान का भी अनुसन्धान करना चाहिए, अथवा नेत्र-मण्डल मे ब्रह्म का आरोप करके, कि इसमे यह अन्दर स्थिर है—ऐसी भावना से इसे विज्ञान का विषय बनाना चाहिये। व्यष्टि चक्षु इन्द्रिय मे ब्रह्म की उपासना का प्रकार इस तरह वर्णन किया है यथा—

"यश्चक्षुषि तिष्ठँ चक्षुषोऽन्तरो,
य चक्षुर्नवेद, यस्य चक्षु शरीर,
यश्चक्षुरतरो यमयति,
एष त आत्मान्तर्याम्यमृत ॥"

बृहत्रा० अ० ३। ब्रा० ७। म० १८॥

— जो ब्रह्म व्यापक रूप से नेत्र मे ठहरा हुआ है जिसको चक्षु नही जानती, जिसका नेत्र ही शरीर है, जो नेत्र को अन्तर्यामी रूप से सञ्चालन करता है, वह आत्मा ब्रह्म है। वह मोक्ष रूप है। वह अमृत रूप है।

(शका) स्थूल नेत्र के नष्ट हो जाने पर भी सूक्ष्म नेत्र तो बना ही रहता है, उससे ही मनुष्य देख लिया करे, क्योंकि वही तो दिखाने का मुख्य कारण है। माइक के न रहने पर भी तो वक्ता बोलता ही है?

(समाधान) दृष्टान्त विषम है। माइक बोलने की ध्वनि को दूर तक फेंक देता है। माइक बोलता नही है, न ही बोलने वाले के बोलने मे निमित्त है। स्थूल नेत्र-इन्द्रिय तो सूक्ष्म नेत्र का उपकरण है। बाहर के स्थूल रूप को, सूक्ष्मरूप-तन्मात्रा मे परिवर्तित कर सूक्ष्म-नेत्र तक पहुँचाती है। सूक्ष्म नेत्र तो सूक्ष्म रूप को ही देख सकता है, स्थूल मे उसकी गति नही। जब तक कि योगी अपनी साधना से सूक्ष्म नेत्र को इस प्रकार न बना ले। साधारण व्यक्ति का सूक्ष्म नेत्र तो सूक्ष्म रूप को ही देखता है। स्थूल को नही देख सकता। यदि सूक्ष्म नेत्र स्थूल रूप को देखने लग जाये तो ८४ लाख योनियाँ ही न बन सकेंगी। सब योनियों के स्थूल नेत्र भिन्न-भिन्न प्रकार है। बिल्ली रात मे भी और दिन मे भी देखती है। उल्लू केवल रात को देखता है दिन मे नहीं। मनुष्य प्रकाश मे ही देखता है, अन्धेरे मे नहीं। मछली पानी मे भी देखती है। हाथी की आँख छोटे को बडा देखती है। चील और गिद्ध की आँख बहुत दूर का देखती है, मीलो दूर का। अजगर की आँख पक्षियो को बेहोश कर खींच लेती हैं। जितनी योनियाँ हैं उतना ही आँखो का प्रकार भेद है। उतने ही विभिन्न प्रकारो से उन योनियों का काम चलता है। उतने ही विभिन्न प्रकारो से उनकी आँखो की रचना हुई है यदि सूक्ष्म-नेत्र को भी देख लेता तो सब का दर्शन समान ही प्रकार का होता। योनिकृत भेद न हो पाता। जैसे आँख देखने वाली है, जैसे रग की ऐनक लगाता है उसी रग का देखने लगती है। पर पाण्डु

रोगी की आँख तो पीला ही पीला देखती है। ऐनक के शीशे का उस पर प्रभाव नही पडता। इसी प्रकार स्थूल नत्रो की विभिनता से विभिन्न यानियो मे सूक्ष्म नेत्र विभिन्न प्रकार से देखने मे समथ होता है। बिना स्थूल गोलक के सूक्ष्म नेत्र काय नही करता।

इस नेत्र का जो विषयाकार परिणाम है यह इसका भोग है। जब यह परिणाम भाव को प्राप्त हो रही हाती है तब ही इसम 'रूप ग्रहण रूप धर्म की उत्पत्ति होती है। इस जन्म समय म ही इस का साक्षात्कार करना चाहिए और निमित्त कारण भगवान् का भी बोध करना चाहिए। क्योकि व्यष्टि समष्टि की उत्पत्ति के साथ ब्रह्म का सम्बन्ध है। प्रकृति का अध्यास छूट जाये और ब्रह्म का ही साक्षात्कार हो—यह बिना वैराग्य के धारणा पक्की होने वाली नही। अत वैराग्य को ही अपना प्रधान अवलम्ब बनाइये। बिना वैराग्य के सब तृष्णाओ व सर्व कामनाओ का अभाव नही हाता ये कामनायें भोगो की वासनाओ को दृढ करती है वैराग्य ही भागो से चित्त का विरक्त बनाता है उपराम करता है अत चित्त निमल होकर इसम आत्मा और ब्रह्म का आभास ठीक रूप मे प्रतीत होने लगता है। अत योगी को परम वैराग्य की तीक्षण धारा से हृदय से कामनाओ का सवथा उच्छेद कर देना चाहिए। यथाच उपनिषत् यदा सर्वे प्रमुच्यन्तेकामायेऽस्यहृदिश्रिता। अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते॥ प्रश्नोपनिषत् अ० २ च ३ म० १४॥ जब योगी की सर्वकामनाय जाती रहती है जा कि इसके चित्त मे वतमान थी तब यह योगी अमृत रूप होकर मोक्ष को प्राप्त कर ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।

समष्टि नेत्र इन्द्रिय मण्डल
द्वितीय रूप मे ब्रह्म विज्ञान
(नेत्र इन्द्रिय का द्वितीय रूप)

२ समष्टि नेत्र इन्द्रिय के स्थूल रूप मे—

रूप का देखना समष्टि नेत्र मण्डल म सदा व्यक्त रूप से वर्तमान रहता है। यह धम ही इसका स्वरूप है। गुण गुणी भाव से इनका अभिन्न सम्बन्ध है। नेत्र मण्डल के परिणाम काल म रूप का देखने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है। अत धम धर्मी अभेद से अयुत सिद्ध एक द्रव्य है। इसी को स्वरूप सम्बन्ध भी कहते हैं।

(शका) पहिले रूप तन्मात्रा का स्वरूप सम्बन्ध इस रूप से बताया था, अब यहा नेत्र मण्डल और रूप का भी उसी प्रकार स्वरूप सम्बन्ध प्रतिपादन कर रहे हैं यह क्या ?

(समाधान) वहाँ जब अग्नि तन्मात्रा का निर्माण हो रहा था, तब उस के परिणाम काल मे रूप धम प्रकट हुआ था। वह रूप धम किसी अर्थ भी तो आना था। अग्नि ने तो उसका भोग करना नही था। उसका प्रादुर्भाव नेत्रेन्द्रिय के लिए ही हुआ था। जब नेत्रेन्द्रिय भोग देने के काय क्षेत्र मे उतरी तब यह भी अपने साथ रूप धर्म को लेकर ही परिणत हुई क्योकि यह तो अग्नि तन्मात्रा से समष्टि रूप मे पहिले ही उत्पन्न हो चुकी थी। अत इसके अन्दर अपना अनुद्भूत रूप प्रकाश परिणत होते हुए प्रकट हुआ। इसने बाह्य अग्नि तन्मात्रा के रूप के द्वारा या उसकी सहायता से अग्नि तन्मात्रा के रूप धर्म को भोग का विषय बनाया। जैसे स्थूल शरीर म नेत्रो मे भी प्रकाश

धर्म है, परन्तु फिर भी वे बाहर के प्रकाश सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, विद्युत, लालटेन आदि की अपेक्षा करती है। इसी प्रकार दोनो प्रकाश रूप धर्म अपने-अपने कारण रूप द्रव्य मे ही प्रकट हुए। अग्नि-तन्मात्रा का रूप धर्म अलग और नेत्र मण्डल का रूप धर्म अलग अनुद्भूत रूप प्रकाश के रूप मे प्रकट हुआ। परिणाम भाव को प्राप्त होकर स्वरूप सम्बन्ध से वर्तमान हुआ। यह है दोनों रूपो मे अन्तर।

इसी प्रकार व्यष्टि चक्षु इन्द्रिय और इस के धर्म अनुद्भूत-रूप प्रकाश का धर्म धर्मी भाव से सम्बन्ध है और इन का परस्पर अभेद है। इसी को स्वरूप सम्बन्ध कहते है। इसका विषय रूप-तन्मात्रा कारण-कार्य रूप मे है। योगी इसी इन्द्रिय की दिव्य दृष्टि द्वारा रूपवान् स्थूल और सूक्ष्म पदार्थों को बहुत दूर तक देखने की सामर्थ्य रखता है। प्रकृति के जितने भी कार्यात्मक पदार्थ है, उन सब का दर्शन इसी दिव्य दृष्टि द्वारा होता है। मन रूपी दूरवीक्षण इसके साथ लगा देने से असख्य मीलो की दूरी तक सूक्ष्म से सूक्ष्म और महान् से महान् पदार्थों को देखने लगता है।

अमृतसर स्वाक मण्डी मे चौधरी रामशरण जी के मकान पर बैठक मे एक बडा भारी सिद्ध महात्मा रहा करता था। उसने अपने पैर रस्सियों से बान्धकर रक्खे हुए थे, ताकि इधर-उधर जाने-आने के बन्धन से छूट जाऊँ। एक दिन चौधरी इनके पास बैठे थे, जोर से कहने लगा वह महात्मा—"अरे रामशरण! ओ रामशरण! फ्रास का बादशाह तख्त से गिर गया।" कुछ घन्टे पश्चात् ही खबर आ गयी कि फ्रास का बादशाह मर गया है। इस महात्मा की दिव्य दृष्टि बहुत दूर तक कार्य करती थी। अनेक सिद्धियाँ इस मे थी। योग दर्शन के भाष्यकार का कथन है कि "तालुनि रूप सवित्।" जिह्वा के ऊपरी भाग तालु मे दीर्घ काल तक अभ्यास करने से दिव्य रूप का विज्ञान होने लगता है। इस पर सयम के परिपक्व हो जाने पर दूर के दर्शन होने लगते है।

तिब्बत तकला कोट के एक महात्मा अपनी दिव्य दृष्टि और मनोबल से दूर-दूर तक की वर्षा, ओले, बर्फ और आन्धी को बन्द कर दिया करते थे। यह विद्या वर्तमान मे लुप्त सी हो गयी है। इस पर विशेष यत्न नही करते हैं।

अत्यन्त आश्चर्यजनक और मनोरञ्जक सूक्ष्म तन्मात्राओ पर अधिकार की बात है। जो योगी युवावस्था मे कटिबद्ध होकर इस ओर लग जाते हैं। उनको अवश्य सफलता होती है। बाह्य मुख-वृत्ति का अभाव करके, सर्व सम्बन्धो को त्याग कर, एकान्त मे रहकर, श्रद्धा भक्ति पूर्वक इस सूक्ष्म जगत् मे दीर्घ काल तक अभ्यास करने से तन्मात्राओ और सूक्ष्म इन्द्रियो पर अधिकार हो जाता है। तब जो कार्य चाहो इन से ले सकते है।

इस समष्टि नेत्र-मण्डल के परिणत होते हुए दूसरे रूप मे ब्रह्म की अनुभूति करनी चाहिए। ब्रह्म की सर्व व्यापकता ही इस परिणाम का निमित्त है। योगिन! यह ब्रह्मानुभूति वैराग्य के परिपक्व हिम शृंग पर ही स्थिर रह सकेगी। यदि थोडा ही चलकर देखना है तो ताजे हिम पात पर थोड़ा चल सकोगे, फिर हिम मे ऐसे धस जाओगे कि निकलना ही कठिन हो जायेगा। इस लिए दूध के उफान जैसी वैराग्य भावना से शाश्वत ब्रह्म-सन्निध्य उपलब्ध नही होगा। इस के लिए तो

परिपक्क वैराग्य की दृढ शिला अडिग होनी चाहिए । तब ही यथार्थ रूप मे कैवल्य भाव को प्राप्त कर सकेंगे ।

समष्टि नेत्र इन्द्रिय मण्डल

तृतीय रूप मे ब्रह्म-विज्ञान

(नेत्र इन्द्रिय का तृतीय रूप)

३ समष्टि नेत्र इन्द्रिय के सूक्ष्म रूप मे—

समष्टि तीनो अहकारो के अनुपातिक सम्मिश्रण से जिसमे सत्व अहकार की प्रधानता होती है—यह समष्टि नेत्र मण्डल उत्पन्न हुआ । अत सामान्य अहकार-त्रय है, और विशेष नेत्र-मण्डल है, इन का समुदाय ही यहाँ अयुत सिद्ध द्रव्य है, जो कि भेद मे अनुगत है, यही इस नेत्र मण्डल की सूक्ष्म अवस्था है, इस नेत्र-मण्डल से ही व्यष्टि नेत्र उत्पन्न हुए है । वास्तव मे यहाँ कार्य-कारण भाव की परिणत होती हुई सूक्ष्म अवस्था का सम्बन्ध दिखाया है कि किस प्रकार कारण कार्य के रूप मे परिणाम भाव को प्राप्त होता है । समष्टि नेत्रेन्द्रिय का सूक्ष्म और बृहद् मण्डल इस प्रकार का है, जैसे असख्य तारिकाओ का एक महान् समुदाय हो । वास्तव मे यहाँ परमाणुओ से भी अत्यन्त सूक्ष्म और पतला समुदाय व्यापक आकाश सा है जिसको छोटे-छोटे टुकडे काटकर विभक्त कर दिया गया हो । इसी प्रकार यह समष्टि व्यष्टि भाव को प्राप्त होती है। इस व्यष्टि मे सकोच और विकास धर्म होता है । जब ब्राह्मी सृष्टि मे और वह भी समष्टि नेत्र इन्द्रिय के मण्डल मे महान् क्षोभात्मक एक सूक्ष्म क्रिया उत्पन्न होती है, उस समय इस मण्डल के कारण से कार्य-भाव को प्राप्त होते समय व्यष्टि स्वरूप छोटी-छोटी दिव्य तारिकाओ के रूप मे असख्य ही सूक्ष्म इन्द्रियो का कार्य रूप मे प्रादुर्भाव होता है । इस परिणाम-काल मे इन्द्रियो के परिणत होते हुए ऐसी दशा भी आती है, जब कि इनमे अनुद्भूत रूप दिव्य प्रकाश उत्पन्न होता है । यह इसकी सूक्ष्म रूप अवस्था का वर्णन हुआ ।

यह जो अनुद्भूत रूप है, इसमे प्रकाश तो होता है, किन्तु दाह नही होता, जैसे कि सूर्य अग्नि आदि के प्रकाश मे दाह होता है । अत इसके लिए कोई बाहर के पदार्थ के प्रकाश के साथ मिलता हुआ दृष्टान्त प्रतीत नही होता । यह अनुद्भूत प्रकाश तरलता को, जीवन को, सरलता को और सौम्यता को लिए हुए होता है । यह आकर्षण, मोहकता, मादकता, मधुरता लावण्यता आदि धर्मो के लिए हुए स्नेह से भरा हुआ होता है । इस प्रकार के धर्म पूर्ण रूपेण चान्दनी मे भी नही है । इस अनुद्भूत रूप प्रकाश मे ध्यान और समाधि की सूक्ष्मता से इस ब्रह्म का प्रत्यक्ष विज्ञान प्राप्त करना चाहिए, जो कि इस मे व्याप्त होकर इसके समान धर्मो वाला सा बना हुआ है और वैराग्य से उस ज्ञान को दृढ करना चाहिए ।

वास्तव मे ससार के लोगो ने यथार्थ रूप से ब्रह्म को समझने का यत्न समाधि योग की सूक्ष्म दृष्टि से बहुत कम किया है । केवल छोटे-छोटे स्थूल पदार्थो—जो इन चर्म-चक्षुओ से देखने मे आते है -मे ही अध्यारोप करके जानने का यत्न किया है, परन्तु आगे सूक्ष्मता की ओर बढने का प्रयत्न ही नही किया । वह चेतन ब्रह्म दीर्घ कालीन जाप आदि का विषय नही है । किन्तु सर्व वृत्तियो का निरोध करके, समाधि की

सूक्ष्म दृष्टि से बुद्धि द्वारा या चित्त द्वारा, समझने या अनुभव करने का, 'इदमस्ति' के रूप मे व्याप्य व्यापक भाव से प्रत्यक्ष करने का विषय है। जितने सूक्ष्मातिसूक्ष्म पदार्थों का ज्ञान होता जाएगा, उतनी-उतनी ही ब्रह्म की सूक्ष्मता की भी अनुभूति होती जायेगी। वास्तव मे उसका दर्शन तो प्रकृति के कार्यात्मक पदार्थो मे और वह भी समष्टियो मे ही हो सकता है। क्योकि जैसे समष्टि पदार्थ महान् है वैसे ही ब्रह्म भी महान् से महान् है। ब्रह्म इन पदार्थो को छोडकर अलग या अकेला कही वास नही करता, तब ही तो उसका नाम सर्वव्यापक बना है। ससार और इसके पदार्थो का अभाव नही होना है। अब कार्य रूप मे है, प्रलय काल मे कारण रूप मे हो जायेंगे। अत किसी भी काल मे ब्रह्म, प्रकृति और इसके कार्यों से पृथक् न हुआ है, न होगा ही और न भूत काल मे ही पृथक था। तब तो अन्यत्र खोजने का यत्न बेकार है। जिस योगी ने प्रकृति के कार्य आत्मक स्वरूपा को समझ लिया है, उसने मानो ब्रह्म को भी समझ लिया है, जान लिया है, देख लिया है, अनुभव कर लिया है, या प्रत्यक्ष देख लिया है। इसकी ठीक कसौटी तो तब भी उतरी समझा, जब वह अपने स्वरूप के साथ मिलता जुलता हो। केवल अन्तर इतना ही हो कि अपना स्वरूप अणु है, और उस ब्रह्म का स्वरूप महान् है, अनन्त है, सर्वत्र देखने मे आता है।

समष्टि नेत्र इन्द्रिय मण्डल

चतुर्थ रूप मे ब्रह्म विज्ञान

(नेत्र इन्द्रिय का चतुर्थ रूप)

४ समष्टि नेत्र इन्द्रिय के अन्वय रूप में—

इस नेत्र मण्डल और इसके परिणाम व्यष्टि नेत्र का परम्परागत सम्बन्ध प्रकृति मे जाकर समाविष्ट होता है। इस मूल प्रकृति का कार्य परम्परा मे अनुपतन होते हुए इनमे पहुँचता है। यही इसका अन्वय रूप है, और चौथी अवस्था है। इस प्रकार समझना चाहिये, प्रकृति के तीनो गुण महत्त्व रूप से परिणत होकर अहकारभाव को प्राप्त हुए। अहकार इन्द्रियो का कारण बना। अत इन्द्रियाँ परिणाम भाव को प्राप्त होकर अन्वय रूप हुई। प्रकृति का स्थिति रूप धर्म नेत्र की सत्ता मे विद्यमान है। ज्ञान गुण 'रूप दिखाने मे विकसित हुआ है और क्रिया चाक्षुप वृत्ति मे दिखाई देती है। जो साधारणतया बाह्य पदार्थों से सयुक्त होती है, और दिव्य नेत्र के रूप मे हजारो मील का प्रत्यक्ष करा देती है। यह सब धर्म मण्डल मे वर्तमान है, तभी तो व्यष्टि नेत्र मे आये है। इसी दिव्य नेत्र की सामर्थ्य से सूक्ष्म शरीराभिमानी स्वर्गस्थ आत्माये दूर-दूर का प्रत्यक्ष करती है।

इस मण्डल का प्रत्यक्ष करते समय इस सारी परिणति की निमित्त ग्राही चेतन सत्ता की विद्यमानता का भी अनुभव करना चाहिये जिस की सन्निधानता से इस मण्डल का 'रूप दर्शन' धर्म इस रीति से अभिव्यक्त हुआ है।

इस रूप के वशीभूत पतग जहाँ दीपक पर अपनी जान झोक देना है, वहाँ रूप पर सर्वस्व न्योछावर करने वाले मानव दीवाने कम नही हैं। पतग तो एक बार साहस कर दीपक की लौ मे, या तेल मे पडकर समाप्त हो जाता है। पर यह रूप का दीवाना सर्वश्रेष्ठ प्राणी मानव वर्षों और कोई-कोई तो जीवन भर इसी रूप के पागल-

पन मे तडप तडप कर जान दे देता है। पर यह रूपोपासना का भयकर असाध्य रोग है। इसकी एक ही महौषध है, जो अचूक है, वह है ज्ञान पूर्वक पर-वैराग्य। योगिन्! जब आप के मानस के कण कण मे यह व्याप्त हो जायेगा तभी साध पूरी होगी। तब ही यह मानुष्य जीवन की सफलता समझी जायगी।

समष्टि नेत्र इन्द्रिय मण्डल

पञ्चम रूप मे ब्रह्म-विज्ञान
(नेत्र इन्द्रिय का पचम रूप)

५ समष्टि नेत्र इन्द्रिय के अर्थवत्त्व रूप म—

प्रकृति और इसके कार्य भोग और अपवर्ग के साधक होते है। अत भोग और मोक्ष के लिये इन्ही की मुख्यता है। प्रकृति के मुख्य होने से इसके कार्यों मे भी गौण रूप से भोग और मुख्य रूप से अपवर्ग की सामर्थ्य हो जाती है। अत नेत्रेन्द्रिय सब पदार्थों के दर्शन का हेतु होने से भोग और मोक्ष मे सहायक होता है। यह समष्टि नेत्रेन्द्रिय का सूक्ष्म मण्डल १८ वा है। यह भी ब्रह्म को आवरण किये हुए है। परिणाम भाव को प्राप्त होकर स्थूल और सूक्ष्म जगत् के दर्शन का हेतु बन जाता है। यही इस म अर्थवत्ता है।

(शका) इन पाँचो ज्ञानेन्द्रिया मे जब एक ही सत्त्व प्रधान अहकार मुख्य कारण है तब भिन्न मण्डल या उपादान कारण मानने की क्या आवश्यकता है?

(समाधान) सब का उपदान कारण तो अवश्य एक ही है। परन्तु एक ही उपादान कारण ने भिन्न भिन्न कार्यों को भिन्नभिन्न गुण या धर्म वाला उत्पन्न किया है। रज और तम भी न्यूनाधिक रूप मे सहकारी कारण होते है। नासिका गन्ध ही ग्रहण करती है, रूप को नही। रसना रस को ग्रहण करती है, अन्य को नही। नत्र इन्द्रिय रूप को ही ग्रहण करती है, शब्द को नही। प्रत्येक इन्द्रिय का स्वरूप और धर्म भिन्न है। अत पदार्थ रूप से भी भिन्न भिन्न होने चाहियें। एक धातु है, उस से नाना प्रकार के बरतन बनते है। और भिन्न भिन्न कार्यों मे आते है। गुण भी भिन्न भिन्न ही हाते है। एक पृथिवी है, नाना प्रकार के पदार्थो को उत्पन्न करती है। अत पाँचो इन्द्रियो का एक ही उपादानकारण होने मे कोई भी आपत्ति या हानि नही है। कार्य तो अनेक भी हो सकते है। यही तो कारण रूप पदार्थ की विशेपता है। जो अनेक कार्यो को उत्पन्न करता है, और अनेक प्रकार से भोग और मोक्ष का हेतु बना हुआ है। इस सत्त्व प्रधान अहकार के सहकारी राजस और तामस भी बने हुए है। इस समष्टि नेत्रेन्द्रिय के मण्डल मे ब्रह्म का अध्यारोप कर के उपासना करनी चाहिये। क्योंकि यह मण्डल अत्यन्त सूक्ष्म निर्मल, पवित्र, स्वच्छ उदात्त, अनुद्भूत प्रकाश रूप है। इसकी सूक्ष्मता म ब्रह्म की सूक्ष्मता को समाधि की सूक्ष्म दृष्टि से देखना चाहिये। अपनी ध्यान की दिव्य दृष्टि को आकाश मण्डल मे फेंक कर प्रथम नेत्रेन्द्रिय मण्डल के अनुद्भूत प्रकाश को अपने दर्शन का विषय बनाना चाहिये। इसके दर्शन के पश्चात् इसी के प्रकाश मे उस विलक्षण अनिर्वचनीय ब्रह्म की दिव्य ज्योति को अनुभव करना चाहिये अर्थात् दर्शन करना चाहिये। इसी के रूप के समान ही तदाकार रूप दर्शन का विषय बनेगा। भगवान् बिलौर के काच के समान स्वच्छ श्वेतवत् निर्मल है। जिस रग का पानी शीशे

के गिलास मे डाल दो, गिलास वैसे ही रग का प्रतीत होने लगता है, क्योकि उसका अपना कोई रग नही । इसी प्रकार ब्रह्म का रग-रूप भी उसी पदार्थ के समान भासने लगता है । जिसमे उसका आरोप किया है ।

इति समष्टि नेत्र इन्द्रिय मण्डल ।

इति द्वितीयाध्याये त्रयोदश खण्डः ।

इति षोडशमावरणम् ॥

चतुर्दश खण्ड

१५वाँ आवरण

समष्टि स्पर्श इन्द्रिय मण्डल

। पाचो रूपो मे ब्रह्म विज्ञान

समष्टि स्पर्श मण्डल सात्विक अहकार प्रधान है। समष्टि ज्ञानेन्द्रिय मण्डलो मे यह चौथा है। इस मण्डल का अपना पृथक् स्तर है। यह मण्डल बहुत ही चमक वाली श्वेतिमा लिये है। लाली नेत्र मण्डल जैसी ही है। पीतिमा उससे हलकी है। सत्त्व गुण और रजो गुण की मात्रा अधिक होने से चेतना और क्रिया अधिक है।

इस मण्डल का धर्म 'स्पशन है। यह भी पाँच मौलिक ज्ञानो मे से एक है। स्पर्श मण्डल का परिणाम त्वचा है, जो प्रत्येक व्यष्टि स्पर्शन का माध्यम है। स्पर्श और स्पर्श के परिणामो को जताने की सामर्थ्य इसी मे है। स्पर्शानुभव का सार इसी स्तर मे है। चेतन के सम्पर्क से चेतन को स्पर्श का अनुभव कराता है। स्पर्श मण्डल तथा त्वचा को स्वय तो कोई बोध नही होता। पर चेतन के सपर्क के साथ ही इसकी सत्त्व परिणामता सार्थक हो जाती है। इस मण्डल से परिणत हुई स्पर्श इन्द्रिय स्पर्श का अनुभव कराने मे समर्थ हो जाती है। यह 'स्पर्शन मण्डल म वर्त्तमान था जो स्पर्शेन्द्रिय म आया है। मण्डल के इस धर्म का प्रत्यक्ष समाधि द्वारा करना है।

यह मण्डल सदा आकाश म रहता है। प्रलय समय मे मूल कारण प्रकृति मे लीन हो जाता है। सृष्टि के समय इसका उपयोग भी अन्य मण्डलो की भाँति सूक्ष्म शरीरो के निर्माण, उनकी क्षति पूर्ति एव सूक्ष्म शरीर के अश स्पर्शइन्द्रिय के सुरक्षित करने मे होता है।

इस प्रकार यह प्रकृति ब्रह्म के सम्पर्क से चेतन सी बनी अपने निर्माण काय मे लगी रहती है। स्पर्श मण्डल की पाँचो स्थितियाँ भी इसी निर्माण की एक कडी है। उन पाँचो अवस्थाओ और उनमे वैराग्य से पूत अन्त करण से ब्रह्म का दर्शन कीजिये।

समष्टि स्पर्श इन्द्रिय मण्डल

प्रथम रूप मे ब्रह्म विज्ञान

(स्पर्श इन्द्रिय का प्रथम रूप)

१ समष्टि स्पर्श इद्रिय के स्थूल रूप मे—

समष्टि स्पर्श मण्डल का ही एक धर्म है "स्पर्शन' अर्थात् स्पर्श को अनुभव करने की शक्ति। स्पर्श धर्म स्थूल भूत वायु का है। स्थूल भूत वायु स्पर्श-तन्मात्रा का परिणाम है। यह स्पर्श तन्मात्रा और उसके परिणाम सारे ही वायु परिणामो मे वर्त्तमान है। इनके अनुभव का साधन समष्टि स्पर्श मण्डल मे निहित है। वन म सब प्रकार वृक्ष वनस्पति, औषधि, लता गुल्म, पशु पक्षी आदि होते है पर बिना सूर्योदय के कुछ दिखाई नही देता। इसी प्रकार स्पर्श स्पर्श तन्मात्रा या उसके परिणामो के रूप मे है तो पर उस के अनुभव का साधन जब तक न हो जाना नही जा सकता। बस इस स्पर्श का अनुभव करने की शक्ति वाला यह समष्टि स्पर्श मण्डल है जिसके परिणामात्मक क्षोभ के समय अनन्त व्यष्टि इन्द्रिया अनेक प्रकार के स्पर्श को करने के धम

को साथ लिये हुए उत्पन्न होती है। 'स्पर्श करने की शक्ति' ही इस मण्डल का रूप है। जो भी स्पर्श है या होगा उसका ज्ञान कराने वाला सत्त्व की प्रधानता से यह मण्डल है। इस मण्डल से परिणत व्यष्टि स्पर्श इन्द्रिय सूक्ष्म शरीर के साथ विभक्त और सगठित होकर भोग देने के लिये प्रस्तुत हो जाती है। शीतोष्ण, कोमल कठोर कर्कश का अनुभव कराने लगती है। इसमे यह स्पर्शानुभूति अपने कारण स्पर्श मण्डल से ही आयी है। यद्यपि स्पर्श मण्डल मे कार्याभाव के कारण स्पर्श का अनुभव नही होता, पर उसमे है अवश्य क्योकि उसके परिणाम व्यष्टियो मे व्यक्त हो रहा है।

व्यष्टि स्पर्शेन्द्रिय जो सूक्ष्म रूप से इस मण्डल से परिणत हुई है वह ब्रह्म-रन्ध्रवासी सूक्ष्म शरीर मे रहती है। यह स्पर्शानुभूति उसी का कार्य है। उसकी इस स्पर्शानुभूति को कराने वाली इसकी उपकरण भूत त्वचा है। जो समस्त शरीर व्यापिनी है। त्वचा स्थूल स्पर्श को सूक्ष्मेन्द्रिय के पास भेजती है। सूक्ष्मेन्द्रिय के पास पहुँचते-पहुँचते वह स्थूल सूक्ष्म रूप मे परिणत हो जाती है और सूक्ष्मेन्द्रिय उसको जानकर बुद्धि मण्डल के पास निर्णयार्थ भेज देती है। उससे ठीक-ठीक स्पर्श का अनुभव होता है। इस प्रकार वस्तुतः स्पर्शानुभूति करने वाली तो सूक्ष्म स्पर्शेन्द्रिय है, जो ब्रह्मरन्ध्र रूपी राज भवन मे वास करती है। यह स्थूल स्पर्शेन्द्रिय त्वचा तो उसकी चेरी मात्र है। जो सूक्ष्म स्पर्शेन्द्रिय को स्थूल स्पर्श का समाचार भेज देती है। स्वेद प्रस्रावण रक्त सरक्षण आदि का कार्य भी करती रहती है। स्पर्शानुभूति केवल अकेला सूक्ष्म स्पर्शेन्द्रिय का काम है। त्वचा का तो यह आनुषङ्गिक काम है। यह त्वचा तो वस्तुतः बाह्य स्थूल शरीर का ही एक भाग है। यह स्थूल शरीर के काम भी करती है। मास मज्जा तथा सूक्ष्म रक्त वाहिनी शिराओ की रक्षा करती है। यदि त्वचा का आवरण हटा लिया जाये तो रक्त बाहर को फूट पड़ेगा। कही शरीर बिखर सा जायेगा, विशीर्ण हो जायेगा। त्वचा ही इस को आवेष्टित किये है। शरीर के विषाक्त अंश को स्वेद के रूप मे शरीर से बाहर यही निकालती है। रोम राजि द्वारा भी अनुपयुक्त अश को यही बाहर निकालती है। परन्तु स्पर्शेन्द्रिय का काम तो केवल स्पर्शन है, अन्य कुछ नही, यह धर्म ब्रह्म-रन्ध्रस्थ सूक्ष्म स्पर्श इन्द्रिय मे है, अतः वह ही वास्तविक स्पर्शेन्द्रिय है और समष्टि स्पर्शेन्द्रिय मण्डल से परिणत हुई है। यह स्थूल त्वचा तो विभिन्न शरीरो मे विभिन्न प्रकार की है। हाथी, भैंसा, गेण्डा भिन्न भिन्न प्रकार की अत्यन्त स्थूल होती है। हाथी और गेन्डे को तो कुशाघास भी पुष्पवृष्टि सी लगती है। इनको अनुभव कराने के लिये नोकदार अंकुश या बल्लम की आवश्यकता पड़ती है। बकरी और हरिण आदि की कितनी कोमल होती है। बकरी और बकरे की खाल की ध्वनि मे भी अन्तर होता है। बकरी की खाल मीठी मधुर बारीक ध्वनि निकालती है, बकरे की मोटी। दाये तबले पर बकरे की और बायें पर बकरी की खाल मण्ढी जाती है। ऊंट के कर्कश स्पर्श के कारण घी तैल के कुप्पे बनते है। दृढ स्पर्श के कारण बैल की खाल के चरस बनते हैं खरगोश की खाल के दस्ताने, लोमडी आदि की खाल के कालर, तथा बुरदार कोट बनते हैं। यह सब विभिन्न प्रकार के उपयोग इसीलिये है कि यह वास्तविक स्पर्शेन्द्रिय नही है। वास्तविक सूक्ष्म स्पर्शेन्द्रिय का तो सिवाये स्पर्श के और कोई काम नही।

सूक्ष्म स्पर्श इन्द्रिय के उपकरण त्वचा की मानव शरीर मे स्थान भेद से ही स्पर्शानुभूति मे भेद होता है। हाथ, पैर के तलवे, होंठ आदि की स्पर्शानुभूति मे अत्यन्त

तारतम्य है। यह स्पर्श योनि और लिङ्ग आदि स्थानो की त्वचा मे अत्यन्त उग्र हो गया है, जिसके उत्तेजित होने पर सयम करने मे बडी कठिनाई होती है। तीव्र वैराग्य की भावना, और स्पर्श तत्त्वज्ञान ही इसके नियन्त्रण के अमोघ अस्त्र है।

शरीर प्रत्येक समय हर परिस्थिति मे स्पर्शानुभूति कर सके इस लिये इस सूक्ष्मेन्द्रिय के उपकरण त्वचा को समस्त शरीरव्यापी रखा गया है। आखो से विहीन हो जाने पर शरीर व्यापी स्पर्श ही अन्धो के काम आता है। इसकी प्रवृद्ध शक्ति से वे अधिकतर काम निकालते हैं।

सृष्टि-काल मे यह सूक्ष्मेन्द्रिय सूक्ष्म शरीर के साथ विभक्त और सगठित होकर भोग देने के लिये प्रस्तुत हो जाती है। यह समष्टि स्पर्श मण्डल ब्रह्म के ऊपर १६ वा मण्डल है। यह भी ब्रह्म को आच्छादित करके रहता है। इस मण्डल को भेदन कर के ही ब्रह्म का अगला साक्षात्कार का द्वार खुलता है। जैसे जीवात्मा के ऊपर कोश हैं, उसी प्रकार ब्रह्म के ऊपर यह भी कोष के रूप मे हैं। चित्त को समाहित करके समाधि द्वारा इस स्पर्शेन्द्रिय के मन्डल मे प्रवेश करके इसका साक्षात करे और फिर इसी की सूक्ष्मता मे ब्रह्म का साक्षात् करे, और पर वैराग्य की तीव्र भावना से इस साक्षात्कार को स्थिर रखें।

समष्टि स्पर्श इन्द्रिय मण्डल
द्वितीय रूप मे ब्रह्म विज्ञान
(स्पर्श इन्द्रिय का द्वितीय रूप)

२ समष्टि स्पर्श इन्द्रिय के स्वरूप मे—

स्पर्शेन्द्रिय मण्डल का धर्म केवल स्पर्श ही है। इस मण्डल मे यह धर्म इसके साथ ही उत्पन्न होता है। इस स्पर्श का बोध इस मण्डल के परिणाम सूक्ष्म शरीर की सूक्ष्म स्पर्शेन्द्रिय द्वारा, और उसके उपकरण भूत स्थूल शरीर की त्वचा द्वारा होता है। यहा मण्डल और सूक्ष्मेन्द्रय धर्मी है, और स्पर्श धर्म है। इनका परस्पर अभेद है। भेद के होते हुए भी द्रव्य और गुण का भेदानुगत जो सम्बन्ध है इसे ही स्वरूप सम्बन्ध कहते हैं।

इस स्वरूप सम्बन्ध मे ब्रह्म के विज्ञान को भी प्राप्त करना चाहिये, क्योकि पदार्थ की प्रत्येक परिणत होती हुई अवस्था मे भी ब्रह्मानुभूति होनी चाहिये।

इस स्पर्शमण्डल की देन कोमल, मसृण, आनन्ददायक शीतोष्णस्पर्शानुभूति के केन्द्र मखमली गद्दे, रेशमी वस्त्र, फर, और ललना तथा लला का स्पर्श कही अपने चक्कर मे न फसाले, और ब्रह्म की झाकी कही सदा के लिये विलीन न हो जाये, अत उद्‌बुद्ध जागरूक हो सदा वैराग्य को हृदय से चिपटाये रहो। वैराग्य का पक्का रग ही स्पर्शानुराग के रग से बचायेगा। 'सर्व वस्तु-जात भयान्वितम्। वैराग्यमेवाभयम्।' का सदा जाप करते रहो। यही ब्रह्मपद प्राप्ति और अमर जीवन की सञ्जीवनी है।

समष्टि स्पर्श इन्द्रिय मण्डल
तृतीय रूप मे ब्रह्म विज्ञान
(स्पर्श इन्द्रिय का तृतीय रूप)

३ समष्टि स्पश इन्द्रिय के सूक्ष्म रूप मे—

समष्टि तीनो अहकारो के आनुपातिक सम्मिश्रण से समष्टि स्पर्श मण्डल की उत्पत्ति हुई है। इस मे सत्त्व की प्रधानता है। इस मे सत्त्व १४ अश+राजस १२ अश

+तामस ०·४ अंश है। तीनों समष्टि अहंकारो का सम्मिश्रण तो यहां सामान्य है, और समष्टि स्पर्शमण्डल यहा विशेष है, और सूक्ष्मेन्द्रिय स्पर्श की उत्पत्ति मे स्पर्श मण्डल सामान्य और सूक्ष्म स्पर्शेन्द्रिय विशेष है। इस प्रकार इनका कारण कार्यात्मिक सम्बन्ध है, और यह सामान्य विशेष का समुदाय ही अयुत सिद्ध द्रव्य समझना चाहिये। कारण से कार्य मे परिणाम ही कारण मे पदार्थ की सूक्ष्मता है। यही समष्टि स्पर्श मण्डल की तीसरी अवस्था सूक्ष्म रूप है।

यहा यह मण्डल तीनों अहंकारो के भेदरूप से अभेद को प्राप्त एक द्रव्य है। इस मण्डल मे भी सत्व प्रधान होने से ज्ञान की प्रधानता है। वही ज्ञान की प्रधानता व्यष्टि स्पर्शेन्द्रिय में आयी है। राजस की मात्रा अधिक होने से स्पर्शानुभूति से चञ्चलता मन में बडी जल्दी आती है। तामस की मात्रा कुछ कम है, पर जब रजोगुण का प्रभाव बढ़ जाता है तो तमोगुण भी सहायक हो जाता है और दोनों मिलकर सत्त्व के ज्ञान को तिरोहित कर देते है।

यह सूक्ष्म स्पर्शेन्द्रिय भी अपने मण्डल के समान ही शुभ्र वर्ण की है। चमकती तारिका के समान ब्रह्मरन्ध्र मे स्थित है। इसका सूक्ष्म रूप यह स्पर्श मण्डल है।

जब समष्टि स्पर्श-मण्डल का परिणाम तीनों अहंकारों के आनुपातिक मिश्रण से होता है, उस समय इनकी प्रेरिका ब्राह्मी चेतन सत्ता की भी अनुभूति का अवसर होता है। उसके सन्निधान से ही तीनों अहंकार जड़ होते हुए भी चेतन से बने परिमित मात्रा मे, परिमित दिशा मे, परिमित गति कर इस स्पर्श-मण्डल मे परिणत हो जाते हैं। यही ब्रह्मानुभूति काल है। इस साधना का लक्ष्य भी ब्रह्मानुभूति ही हैं। पदार्थानुभूति एवं कारण कार्य विज्ञान गौण है। स्पर्श-मण्डल की इस कारण कार्य अवस्था को देख कर तत्वो का वास्तविक ज्ञान हो जाने पर स्पर्शानुरक्ति, या स्पर्श की सुख सावन मान्यता बनी नही रह सकती। हाँ! यदि सिनेमा की रील के समान इस योग साधना को भी मनोरञ्जन; या समय यापन साधन मात्र बना रखा हो तो दूसरी बात है। पर अमूल्य मानव जीवन के साथ आप से ऐसे खिलवाड़ की सम्भावना नही। अतः वैराग्य की ध्रुव अटल साधना को लेकर ब्रह्म साधना मे अडिग हो जाइये, और अग्रिम पथ प्रशस्त कीजिये।

समष्टि स्पर्श इन्द्रिय मण्डल
चतुर्थ रूप में ब्रह्म-विज्ञान
(स्पर्श इन्द्रिय का चतुर्थ रूप)

४. समष्टि स्पर्श इन्द्रिय के अन्वय रूप में—

समष्टि स्पर्श-मण्डल तीनो समष्टि अहंकारो के मिलने से उत्पन्न हुआ। यह मिलान पूर्व प्रदर्शित अनुपात मे होता है। यह चौथी पीढी है। यह तीनों समष्टि अहंकार महत्तम से उत्पन्न हुए। यह तीसरी पीढी हुई। महत्तम मूल प्रकृति से उत्पन्न हुआ। यह दूसरी पीढी है। पहली मूल भूत पीढी प्रकृति है। इस चौथी पीढी मे भी मूल प्रकृति के धर्म और गुण विद्यमान हैं। प्रकृति की स्थिति से ही स्पर्श-मण्डल सत्तावान् है। वही स्थिति धर्म इसमें भी विद्यमान है। चेतन के सन्निधान से उत्पन्न ज्ञान और क्रिया

परिणत हुए हुए स्पर्श-मण्डल मे 'स्पर्शन रूप' मे प्रतीत हो रही है। यह क्रिया ही स्पर्श को सर्व शरीर व्यापी बनाये है। दिव्य स्पर्श के रूप में सूक्ष्माति सूक्ष्म स्पर्श का भी अनुभव कराती है। इसी सूक्ष्म त्वगिन्द्रिय से स्वर्गस्थ आत्मायें दिव्य स्पर्श का उपभोग करती है। यह परिणामिनी प्रकृति अपने धर्म और गुणो को साथ लेकर गमन करती हुई स्पर्श-मण्डल और उसके परिणाम स्पर्शेन्द्रिय मे अनुगत हुई है। यही इसकी अन्वय अवस्था कहलाती है। प्रकृति की इस अनुपतन होती हुई अवस्था मे ब्रह्म-विज्ञान प्राप्त करना चाहिये, यह इस की चौथी अवस्था है। इस स्पर्श के चक्कर मे फसे हुए कुत्ते, घोडे, हाथी, सर्प, और सब ही पशु-पक्षी कीट-पतग इस भोग योनि मे भी परेशान हैं, प्रकृति से नियन्त्रित धर्मशास्त्राध्ययन से रहित होते हुए भी ऋतु-धर्म का पालन करते है, पर यह मानव वेद-शास्त्र कण्ठस्थ करते भी, सन्तो का उपदेश दिन-रात सुनते भी इस स्पर्श मे फस कर ऐसा पतन कर वैठता है कि अनैतिकता अनाचार मे फस ऋतु की तो क्या, किसी भी समय असमय की सुध-बुध भुला वैठता है। स्पर्श के चक्कर मे जितना यह सर्व श्रेष्ठ प्राणी फसा इतना ससार का कोई भी प्राणी नही। अत योगिन्। पूरी सावधानी के साथ वैराग्य की सजीवनी को पीते रहना। जिससे यह स्पर्श आपको कही वौरा न दे। इस वैराग्य के सूक्ष्मेक्षण को लगा सदा ब्राह्मी चेतना का दर्शन कर करते रहो।

समष्टि स्पर्श इन्द्रिय मण्डल

पंचम रूप में ब्रह्म-विज्ञान

(स्पर्श इन्द्रिय का पचम रूप)

५ समष्टि स्पर्श इन्द्रिय के अर्थवत्व रूप मे—

इस समष्टि स्पर्शेन्द्रिय से देव और मनुष्य कारण कार्य रूप से भोग और अपवर्ग प्राप्त करते रहते है। देव स्वर्ग मे सूक्ष्म-स्पर्श का उपभोग करते है सूक्ष्म शरीर के द्वारा। इस मर्त्यलोक मे मानव स्थूल शरीर के द्वारा नाना प्रकार के स्पर्शो का उपभोग करते हैं। यह धर्म सात्विक अहकार मे सूक्ष्म-तन्मात्रा के रूप मे विद्यमान था। जब अहकार परिणाम भाव को प्राप्त हुआ, तव यह धर्म इन्द्रियो के साथ मे प्रकट हुआ, और इसका यह स्वाभाविक ही धर्म वन गया, जो कि देवो और मनुष्यो के भोग का साधन बना है। यह अर्थवत्ता इन्द्रिय मे प्रकृति से आई है, क्योकि जव प्रकृति का सर्व-प्रथम परिणाम हो कर, तीनो गुण उत्पन्न हुए तव सर्वप्रथम इन्ही मे यह अर्थवत्ता आयी। इसके पश्चात् सब कार्यो मे अनुपतन होती हुई चली गयी।

इस स्पर्श इन्द्रिय की अर्थवत्ता मे भोग और अपवर्ग प्रदान करने की शक्ति वर्त्तमान है। इस की शक्ति मे ब्रह्म की अनुभूति करनी चाहिये और ब्रह्म के स्वरूप को देखना चाहिये। जहा-जहा और जिस-जिस पदार्थ मे सुखद, आनन्द प्रद, शान्तिदायक आह्लाद-प्रद स्पर्श की अनुभूति हो, वहाँ-वहाँ ब्रह्म की चेतन सत्ता की भी प्रतीति होनी चाहिये। मानो इनमे ही मिला हुआ भगवान् का भी मधुर-सुखद स्पर्श प्रतीत हो रहा है, क्योकि भगवान् ओत-प्रोत होकर ठहरा हुआ है। प्रत्येक प्रकार के स्पर्श मे उसका आवास है। जैसे सम्पूर्ण शरीर मे त्वक् इन्द्रिय व्याप्त है, और सर्व शरीर मे सर्वत्र स्पर्श की प्रतीति होती है, इसी प्रकार ब्रह्म भी सर्व प्रकार के स्पर्शो मे व्यापक हो कर ठहरा हुआ है। अत. स्पर्शेन्द्रिय और स्पर्श मे उस ब्रह्म का आरोप करके उसकी उपासना और

विज्ञान प्राप्त करना चाहिये। स्पर्श इन्द्रिय का जो समष्टि मण्डल है, इस मे भी ब्रह्म का अध्यारोप करके आनन्दप्रद स्पर्श की अनुभूति करनी चाहिये। जैसे ब्रह्म ही स्पर्श रूप बन कर प्रत्यक्ष रूप से दर्शन दे रहा है। पर यह सब, तब ही संभव होगा जब ज्ञान और वैराग्य की भावना तीव्रतम होगी। दलदल मे फसा हुआ फूलो की सुगन्धि क्या लेगा। असगरूप जल कमल वत् वास करता हुआ ही स्पर्शानुभूति मे ब्रह्मानुभूति कर सकता है अत. वैराग्य-निष्ठा अपरिहार्य है, अपरिहार्य है।

इति समष्टि स्पर्श इन्द्रिय मण्डलम।

इति द्वितीयाध्याये चतुर्दश. खण्ड:।

इति पञ्चदशमावरणम् ॥

पञ्चदश खण्ड

१४वा आवरण

समष्टि श्रोत्र इन्द्रिय मण्डल

पाचो रूपों मे ब्रह्म-विज्ञान

समष्टि कर्मेन्द्रिय मण्डल के ऊपर यह ज्ञानेन्द्रियों का समष्टि मण्डल है। इस मण्डल मे समष्टि श्रोत्र मण्डल अन्तिम स्तर है। यह सात्विक अहकार प्रधान है। इस मण्डल की अपनी सत्ता स्तर रूप मे है। अब तक प्रदर्शित सब ही मण्डलो मे व्याप्त है। यह उन सब से सुक्ष्म है। अगले मण्डल इसकी भी अपेक्षा सूक्ष्मतर है, अत उनमे यह प्रवेश नही कर सकता। यह मण्डल अब तक के मण्डलो से अत्यन्त श्वेत है। चान्दी की चद्दर के समान चमकता है। मैलापन लिये लालिमा की झलक रजोगुण और तमोगुण के कारण से है। सत्त्व गुण की अधिकता के कारण चेतना सी सर्वाधिक है। क्रिया तमोगुण के कारण दब सी गयी है।

इस मण्डल का धर्म 'शब्द का सुनना' है। मौलिक पांच ज्ञानो में से अन्तिम है। यह मण्डल अपने व्यष्टि श्रोत्रेन्द्रिय के शब्द और शब्दो के परिणामो के सुनने की मौलिकता का केन्द्र है। शब्द को सुनने की सामर्थ्य इस मण्डल मे निहित है। अब तक के तत्त्वो मे सुनने का धर्म नही था। या तो उनमे सत्त्व की न्यूनता थी, या इतनी सत्त्व की मात्रा न थी कि सुनने की सामर्थ्य उत्पन्न होती। इस मण्डल मे सत्व की प्रधानता से शब्द श्रवण की सामर्थ्य आयी। यह मण्डल स्वयं तो कुछ नही सुनता, पर चेतन के सम्पर्क मे आने पर शब्द-श्रवण व्यक्त हो उठता है। इसकी परिणामभूत व्यष्टि इन्द्रिय सुनने लगती है। उस व्यष्टि का उपकरण कर्णशष्कुली भी सुनता सा प्रतीत होता है। यद्यपि मौलिक रूप से श्रवण-सामर्थ्य ब्रह्मरन्ध्रस्थ श्रोत्रेन्द्रिय में ही है। मण्डल की श्रवण सामर्थ्य ही व्यष्टि मे अभिव्यक्त हुई है।

मण्डल के इस धर्म का प्रत्यक्ष योगी समाधि मे कर सकते है। आप भी कीजिये यह मण्डल भी अन्यो की भान्ति सदा आकाश मे रहता है। प्रलय काल मे इसका भी लय मूल प्रकृति मे हो जाता है। सृष्टि काल मे इसका उपयोग विभिन्न प्रकार से होता रहता है। इस से परिणत व्यष्टि श्रोत्रेन्द्रियो से सूक्ष्म शरीर की परिपूर्णता होती है। मुक्त आत्माओ की श्रोत्र इन्द्रियो को सुरक्षित रखता है। आवागमन के फेर मे पडी आत्माओ के सूक्ष्म शरीरो की क्षति-पूर्ति करता है। सूक्ष्म श्रोत्रेन्द्रिय कारण रूप से इसमें सुरक्षित रहती हैं, जब व्यष्टियो के निर्माण की आवश्यकता होती है, निर्माण कर ली जाती हैं।

ब्राह्मी चेतना से चेतन सी बनी प्रकृति कारण कार्य कलाप को चलाती रहती है। समष्टि श्रोत्र मण्डल के पांच रूप भी इसी के अंग हैं; ज्ञान वैराग्य से पूत आत्मा ही उन रूपों और उन रूपो मे ब्रह्म का दर्शन कर सकता है।

समष्टि श्रोत्र इन्द्रिय मण्डल

प्रथम रूप में ब्रह्म-विज्ञान

(श्रोत्र इन्द्रिय का प्रथम रूप)

१. समष्टि श्रोत्र इन्द्रिय के स्थूल रूप में—

समष्टि श्रोत्रेन्द्रिय की जब समष्टि अहंकार प्रधान से उत्पत्ति होती है, तब यह पुनः परिणाम भाव को प्राप्त होकर अपने 'धर्म' शब्द को लिये हुए असख्य व्यष्टि इन्द्रियो के रूप मे प्रकट होती है। इसमे शब्द ग्रहण करने की शक्ति अपने उपादान कारण से ही आती है; क्योंकि इसने शब्द के रूप मे देवों और मनुष्यो को भोग और मोक्ष-प्रदान करना है। यह सत्त्व प्रधान अहकार का सर्वप्रथम परिणाम रूप कार्य है। अन्य ज्ञानेन्द्रियों की अपेक्षा यही स्थूल और सूक्ष्म शब्द की प्रतीति का हेतु बनी है। उपनिषद् मे इसी शब्द मे ब्रह्म का आरोप करके उपासना का साधन बताया है। यह श्रोत्रेन्द्रिय का विषय बन जाता है, यद्यपि यह आकाश का धर्म है, परन्तु इस धर्म की अनुभूति भी श्रोत्रेन्द्रिय के द्वारा ही होती है। इसके द्वारा ही विज्ञान या पदार्थ की प्रतीति होती है। यह इस श्रोत्रेन्द्रिय का विषय होते हुए भी वेद के रूप मे प्रकट हुआ है। सर्व प्रकार से विज्ञान का हेतु यह शब्द ही बनता है। इसके दो भेद हैं। १. सूक्ष्म २. स्थूल।

१. सूक्ष्म—सूक्ष्म तन्मात्राओं से उत्पन्न होता है।

२. स्थूल—भूतो से उत्पन्न होता है।

'सूक्ष्म' स्वर्ग-वासी देवों के भोग का कारण बनता है, और स्थूल मनुष्यो के भोग का और मोक्ष का साधन बनता है। इसकी सार्थकता इसी श्रोत्रेन्द्रिय से होती है। श्रोत्रेन्द्रिय दो प्रकार की है। सूक्ष्म देवों मे और स्थूल तथा सूक्ष्म मनुष्यों मे पशु आदि मे सूक्ष्म और स्थूल मे उन इन्द्रियों से अभिप्राय है जो दोनो शरीरो की रचना के काल मे सूक्ष्म और स्थूल गोलक कर्णशष्कुली के रूप मे बनती हैं। स्थूल के द्वारा सूक्ष्म इन्द्रिय अपने कार्यों का सम्पादन करती हैं। वैसे सूक्ष्म दिव्य कर्ण इन्द्रिय एक ही प्रकार की है जो स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीरो मे भोग और मोक्ष का हेतु बनती है।

इस समष्टि मण्डल का गुण 'शब्द' है। यद्यपि मण्डल के रूप मे व्यवहार का विषय नही। पर सृष्टि आरम्भ काल मे वेदो का शब्द रूप मे प्रादुर्भाव इसी से हुआ। इसी से प्राणी को ध्वनि और शब्द की परम्परा चलाने का सौकर्य प्राप्त हुआ। यह शब्द सुनना धर्म व्यष्टि श्रोत मे अभिव्यक्त हुआ।

"श्रोत्रोपलब्धि बुद्धि-निर्ग्राह्यः शब्द.।

व्याकरणमहाभाष्य

—जो कानो से सुना जाये, और बुद्धि जिसका निर्णय करे वह शब्द है।

शब्द किसी भाषा के हो, सबका सुनना धर्म एक ही है। इसीलिये तो सब देशों के मनुष्य सब देशो के शब्द को सुन लेते हैं। उनके स्वरूप को समझ लेते है। यह बाह्य कर्ण शष्कुली तो स्थूल शब्द के अन्दर प्रवेश का स्थूल मार्ग है, अन्दर सूक्ष्म मार्गों से जाता हुआ यह शब्द सूक्ष्म श्रोत्रेन्द्रिय के सम्पर्क मे सूक्ष्म होकर ही जाता है। यह सूक्ष्म श्रोत्रेन्द्रिय ही वास्तविक श्रोत्रेन्द्रिय है। कर्ण शष्कुली तो उपकरण-मात्र है। सूक्ष्म इन्द्रिय तो प्राणीमात्र की समान है, जो ब्रह्मरन्ध्र मे वास करती हैं। सूक्ष्म श्रोत्र ही इस मण्डल

सुनने की शक्ति का और इन्द्रिय के सम्बन्ध को भी तादात्म्य सम्बन्ध कहते हैं। इनके तादात्म्य सम्बन्ध मे व्यापक होने से ब्रह्म का विज्ञान भी हो जाता है। जैसे धर्मी मे धर्म अनुस्यूत है, इसी प्रकार ब्रह्म भी सर्व-व्यापक रूप से अनुस्यूत है। अत स्वरूप सम्बन्ध के विज्ञान मे ब्रह्म भी उपासना और विज्ञान का विषय बन जाता है। पर वह वैराग्य से परमपुनीत अन्त करण का ही स्थिर विषय बनता है। अत वैराग्य की भावना को उच्चैस्तम और पवित्रतम बना आत्मसात् करते जाइये।

समष्टि श्रोत्र इन्द्रिय मण्डल

तृतीय रूप में ब्रह्म-विज्ञान

(श्रोत्र इन्द्रिय का तृतीय रूप)

३. समष्टि श्रोत्र इन्द्रिय के सूक्ष्म रूप मे—

सत्त्व प्रधान अहकार अन्यो दोनो अहकारो का सहकारी होते हुए ज्ञानेन्द्रिय मण्डल का उपादान कारण है। अत यह सामान्य कारण हुआ। और विशेष हुआ श्रोत्रेन्द्रिय मण्डल। *इन दोनो का समुदाय ही यह अयुत सिद्ध द्रव्य होता है।* इसका भावर्थ यह है कि सत्त्व-प्रधान अहकार से श्रोत्रेन्द्रिय मण्डल की उत्पत्ति होती है। और श्रोत्र मण्डल से व्यष्टि श्रोत्र की उत्पत्ति होती है। अपने सूक्ष्म कारण से उत्पन्न होना ही सूक्ष्म अवस्था का द्योतक है। यहाँ कारण से अपने समीप-वर्त्ती सहकारी कारण का बोध होता है। यही श्रोत्रेन्द्रिय मण्डल का सूक्ष्म रूप सिद्ध होता है।

यहाँ समष्टि श्रोत्रेन्द्रिय मण्डल तीनो अहकारो के भेद रूप से अभेद को प्राप्त एक द्रव्य है। इस मण्डल के निर्माण मे तीनो अहकारो का अनुपात इस प्रकार साक्षात् किया गया है। समष्टि सत्त्वाहकार-१ ५ भाग+समष्टि राजसाहकार १ ३ भाग+समष्टि तामसाहकार ० २ भाग=३ ०। इस मण्डल मे सत्त्व के प्रधान होने से ज्ञान की प्रधानता है। इसीलिये जितना ज्ञान विषय हैं इसी मे अन्तर्निहित हो गया है। तमोगुण की अपेक्षा रजोगुण की मात्रा अधिक होने से बहुत तीव्र गति से व्यापार रत होती है। इस मण्डल के कारण ही शब्द सुनने की गति अति तीव्र है।

यहाँ कारण और कार्य के सूक्ष्म सम्बन्ध मे सूक्ष्म ब्रह्म का भी विज्ञान प्राप्त करना चाहिये। यह सूक्ष्म समष्टि श्रोत्र मण्डल ब्रह्म के ऊपर २०वा आवरण या कोश है इसका भेदन या विज्ञान करके योगी को आगे बढना है। क्योंकि अभी और इससे भी सूक्ष्म अत्यन्त सूक्ष्म आवरण हैं इन सबका भेदन करते हुए विशुद्ध ब्रह्म मे या निरावरण मे प्रवेश करना है। यह प्रवेश तभी सभव होगा, जब आप प्रकृति से सर्वथा अलिप्त, असक्त, असग एव विरक्त होगे। बिना वैराग्य के यह धारणा सफल नही होगी।

समष्टि श्रोत्र इन्द्रिय मण्डल

चतुर्थ रूप मे ब्रह्म विज्ञान

(श्रोत्र इन्द्रिय का चतुर्थ रूप)

४ समष्टि श्रोत्र इन्द्रिय के अन्वय रूप मे—

प्रकाश, क्रिया, स्थिति रूप स्वभाव वाली प्रकृति का सब कार्यो मे अनुगमन या अनुपतन होता आया है। इस समष्टि श्रोत्र मण्डल मे भी समष्टि सत्त्व, रजस्, तमस्

का परिणाम है। सब योनियो के सूक्ष्म श्रोत्रो की आकृति समान है। यह सूक्ष्म श्रोत्र सिवाये 'शब्द सुनने के अन्य काम नही कर सकता। इन स्थूल कर्ण शष्कुलियो की तो आकृति भी एक नही, मनुष्य का कान कैसा है। कुत्ते, घोडे, गधे, बन्दर, हाथी, ऊट, बिल्ली का कैसा है। सब पशु पक्षियो कीट पतगो के कान मे भेद है। सर्वथा भिन्न भिन्न आकृति है। यह कान सुनने के अतिरिक्त अन्य व्यापार भी करता है। कान से कीट निकलता है, जो मारक विष है। कानो से पीप रक्त आदि स्राव भी होता है। यह शरीर का अवयव है, शरीर की पुष्टि से इसकी पुष्टि होती है। उमीसे इसकी रचना हुई। समष्टि श्रोत्र मण्डल से इसका कोई सम्बन्ध नही। समष्टि से तो सूक्ष्म श्रोत की ही उत्पत्ति हुई है। वही स्थूल और सूक्ष्म का भोग प्रधानतया सम्पादन करता है।

इस शब्द धर्म से ही विश्व भर मे विद्या ग्रहण, प्रदान, बोल चाल आदि के समस्त व्यवहार चल रहे है। सुनने की शक्ति मारे जाने पर आधा जीवन बेकार और नीरस हो जाता है। इस श्रोत्र का विषयाकार परिणाम ही इसका भोग है। जब यह सात्विक अहकार से परिणाम भाव को प्राप्त होता है तभी इस मण्डल मे शब्द सुनना' धर्म उत्पन्न होता है। इस समष्टि श्रोत मण्डल मे ही ब्रह्म का अध्यारोप करके उपासना करनी चाहिये। और इन ही दोनो का साक्षात्कार भी करना चाहिये।

इसको इस प्रकार अध्यारोप कर उपासना और ज्ञान का विषय बनावे—

"य श्रोत्रेतिष्ठञ्छ्रोत्रादन्तरो, य श्रोत्र न वेद।
यस्य श्रोत्र शरीर, य श्रोत्रमन्तरो यमयति।
एष त आत्मान्तर्याम्यमृत ॥"

बृहदा० अ० ३। ब्रा० ६। म० १६।

— जो भगवान् श्रोत्र के अन्दर निवास करता है। जिसको श्रोत्र नही जानता है। जिसका श्रोत्र ही शरीर है। जो श्रोत्र को शब्द आदि सुनने के लिये अन्दरसे ही सचालन करता है। शब्द आदि सुनने के लिए प्रवृत्त करता है। वह तेरा अन्तर्यामी भगवान् है। उसकी उपासना और विज्ञान प्राप्त करना चाहिये। क्योकि वह अमृत रूप है।"

तपस्विन्। ध्यान रखना, यह साधना वैराग्य से ही सफल होगी। यदि शब्द के राग-रग मे फस गये तो मृग और सर्पवत् मारे जाओगे। योग किया है, तो इन पर शासन करो, इनसे शासित मत होओ यह विरक्ति ही ध्येय तक पहुँचायेगी।

समष्टि श्रोत्र इन्द्रिय मण्डल

द्वितीय रूप मे ब्रह्म-विज्ञान

(श्रोत्र इन्द्रिय का द्वितीय रूप)

२ समष्टि श्रोत्र इन्द्रिय के स्वरूप मे—

समष्टि श्रोत्र मण्डल मे जो 'शब्द सुनने' की शक्ति है, इसका और मण्डल का धर्म-धर्मी भाव सम्बन्ध है, और भेद होते हुए भी धर्मी से धर्म का अभेद है। इसको स्वरूप सम्बन्ध कहते हैं। कर्णेन्द्रिय मे जो शब्द सुनने की शक्ति है, वह मण्डल से आयी है, वही सदा इस मण्डल मे वर्तमान रहती है। कभी भी अलग नही होती। व्यष्टि कर्णेन्द्रिय समष्टि श्रोत मण्डल का परिणाम है। सुनने की शक्ति मण्डल से आयी है।

सुनने की शक्ति का और इन्द्रिय के सम्बन्ध को भी तादात्म्य सम्बन्ध कहते हैं। इनके तादात्म्य सम्बन्ध में व्यापक होने से ब्रह्म का विज्ञान भी हो जाता है। जैसे धर्मी में धर्म अनुस्यूत है, इसी प्रकार ब्रह्म भी सर्व-व्यापक रूप से अनुस्यूत है। अतः स्वरूप सम्बन्ध के विज्ञान में ब्रह्म भी उपासना और विज्ञान का विषय बन जाता है। पर वह वैराग्य से परमपुनीत अन्तःकरण का ही स्थिर विषय बनता है। अतः वैराग्य की भावना को उच्चतम और पवित्रतम बना आत्मसात् करते जाइये।

समष्टि श्रोत्र इन्द्रिय मण्डल

तृतीय रूप मे ब्रह्म-विज्ञान

(श्रोत्र इन्द्रिय का तृतीय रूप)

३. समष्टि श्रोत्र इन्द्रिय के सूक्ष्म रूप में—

सत्त्व प्रधान अहंकार अन्यों दोनो अहंकारों का सहकारी होते हुए ज्ञानेन्द्रिय मण्डल का उपादान कारण है। अतः यह सामान्य कारण हुआ। और विशेष हुआ श्रोत्रेन्द्रिय मण्डल। इन दोनों का समुदाय ही यह अयुत-सिद्ध द्रव्य होता है। इसका भावर्थ यह है कि सत्त्व-प्रधान अहंकार से श्रोत्रेन्द्रिय मण्डल की उत्पत्ति होती है। और श्रोत्र मण्डल से व्यष्टि श्रोत्र की उत्पत्ति होती है। अपने सूक्ष्म कारण से उत्पन्न होना ही सूक्ष्म अवस्था का द्योतक है। यहां कारण से अपने समीप-वर्ती सहकारी कारण का बोध होता है। यही श्रोत्रेन्द्रिय मण्डल का सूक्ष्म रूप सिद्ध होता है।

यहाँ समष्टि श्रोत्रेन्द्रिय मण्डल तीनों अहकारों के भेद रूप से अभेद को प्राप्त एक द्रव्य है। इस मण्डल के निर्माण में तीनो अहंकारों का अनुपात इस प्रकार साक्षात् किया गया है। समष्टि सत्त्वाहंकार-१.५ भाग+समष्टि राजसाहकार १.३ भाग+समष्टि तामसाहंकार ०.२ भाग=३.०। इस मण्डल मे सत्त्व के प्रधान होने से ज्ञान की प्रधानता है। इसीलिये जितना ज्ञान विषय है इसी में अन्तर्निहित हो गया है। तमोगुण की अपेक्षा रजोगुण की माना अधिक होने से बहुत तीव्र गति से व्यापार रत होती है। इस मण्डल के कारण ही शब्द सुनने की गति अति तीव्र है।

यहाँ कारण और कार्य के सूक्ष्म सम्बन्ध में सूक्ष्म ब्रह्म का भी विज्ञान प्राप्त करना चाहिये। यह सूक्ष्म समष्टि श्रोत्र मण्डल ब्रह्म के ऊपर २०वां आवरण या कोश है इसका भेदन या विज्ञान करके योगी को आगे बढना है। क्योंकि अभी और इससे भी सूक्ष्म अत्यन्त सूक्ष्म आवरण हैं इन सबका भेदन करते हुए विशुद्ध ब्रह्म में या निरावरण में प्रवेश करना है। यह प्रवेश तभी संभव होगा, जब आप प्रकृति से सर्वथा अलिप्त, असक्त, असंग एवं विरक्त होंगे। बिना वैराग्य के यह धारणा सफल नही होगी।

समष्टि श्रोत्र इन्द्रिय मण्डल

चतुर्थ रूप में ब्रह्म-विज्ञान

(श्रोत्र इन्द्रिय का चतुर्थ रूप)

४. समष्टि श्रोत्र इन्द्रिय के अन्वय रूप में—

प्रकाश, क्रिया, स्थिति रूप स्वभाव वाली प्रकृति का सब कार्यों में अनुगमन या अनुपतन होता आया है। इस समष्टि श्रोत्र मण्डल मे भी समष्टि सत्त्व, रजस्, तमस्

महतः परमव्यक्तम्, ब्यक्तात्पुरुषः परः ।
पुरुषान्न परं किंचित्, सा काष्ठा सा परागतिः ॥ ११ ॥
एप सर्वेषु भूतेषु, गूढोत्मा न प्रकाशते ।
दृश्यते त्वग्रया बुद्धया, सूक्ष्मया सूक्ष्म दर्शिभिः ॥ १२ ॥
उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य, वरान्ति बोधत ।
क्षुरस्य धारा निशिता, दुरत्या, दुर्गपथस्तत्कवयो वदन्ति ॥ १४ ॥
कठो० अ० १ । वल्ली ३ । म० ३-१२, १४ ॥

भावार्थ—जीवात्मा रथ में सवार होने वाला है । शरीर को रथ समझना चाहिये । बुद्धि सारथि और मन लगाम है ॥ ३ ॥

इन्द्रियाँ घोड़े है । विषय रूपी सडक पर गमन करते हैं । शरीर इन्द्रिय एवं मन से युक्त आत्मा को बुद्धिमान लोग भोक्ता कहते है ॥ ४ ॥

जो अज्ञानी होता है, जिसका मन वश में नही रहता, वह बेलगाम के घोड़े के समान होता है । उसकी इन्द्रियां वश मे नही रह सकती हैं। जैसे शैतान, उद्धत, दुष्ट घोड़े सारथि (कोचवान) के वश मे नही रहते है ॥ ५ ॥

जो बुद्धिमान, समझदार विद्वान् समाहित चित्त होता है, और जिसका मन भी वश मे होता है । उसकी इन्द्रियाँ भी वश मे रहती हैं। उसका सदा इन्द्रियों पर अधिकार रहता है । विना आज्ञा के किसी भी ज्ञान या कर्म में प्रवृत्त नही होने देता है । जैसे सधे हुए अच्छे घोडों को सारथि कुमार्ग पर नही जाने देता है ॥ ६ ॥

जो अज्ञानी है, मूर्ख हैं । जिनका मन पर बिलकुल अधिकार नही है । सदा विषय-गामी बना रहता है । बुद्धि जिसकी निर्मल नही है । वह उस आत्म-ज्ञान, या ब्रह्म-ज्ञान के पद को प्राप्त नही हो सकता । पुनः जन्म मरण के चक्कर मे पड़ कर संसार मे भोग भोगने के लिये आता रहता है ॥ ७ ॥

जो विद्वान् योगी और ज्ञानी है । जिसका मन पवित्र है, और वश मे है । बुद्धि ऋतभरा हो गयी हैं । वह महापुरुष ही आत्म-ज्ञान और ब्रह्म ज्ञान प्राप्त कर सकता हैं । वही अपवर्ग का सच्चा अधिकारी है । वह फिर मर कर कभी उत्पन्न नही होता है उसको सीधा मोक्ष प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

जिस शरीर रूपी रथ का बुद्धिमान् सारथि है अर्थात् जिसकी बुद्धिधर्म मेघ समाधि मे उज्जवल हो गयी है । मन पर जिसने पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया है । इन्द्रियों पर सर्वथा विजय प्राप्त कर ली है, वह योगी उस मोक्ष मार्ग पर चलकर संसार रूपी समुद्र को पार कर के विष्णु भगवान् के सर्व-व्यापक परम पद को प्राप्त कर लेता है ॥ ९ ॥

अब आगे इस मोक्ष-मार्ग के क्रम या आत्मा और परमात्मा के पास कहां-कहां हो कर पहुंच जाता है, इसे कहते है—'इन्द्रियों से परम श्रेष्ठ विषय, और विषयों से परे सूक्ष्म मन और मन से सुक्ष्म बुद्धि, और बुद्धि से परे सूक्ष्म महान् है ॥ १० ॥

महान् या महत् से परे अत्यन्त सूक्ष्म अव्यक्त प्रकृति है, और अव्यक्त से परे सूक्ष्म पुरुष है । पुरुष से यहां जीवात्मा और ईश्वर का ग्रहण है । पुरुष से परे सूक्ष्म, या आगे परे कुछ नही है । वह ही पराकाष्ठा है और वह पुरुष ही उत्कृष्ट परागति है ।११।

तीनो अहकारो का अनुपतिक सम्मिश्रण के रूप मे अनुपतन हुआ है। तीनो समष्टि अहकारा मे महत्तमम् का अनुपतन हुआ। महत्तमस् मे मूल प्रकृति अनुपतित हुई। इस प्रकार समष्टि श्रोत्र मण्डल चौथी अनुपतन अवस्था है। अनुपतन होते होते यह चौथा अनुपतन परिणाम है। इस अनुपतन म मूल प्रकृति ही अन्वय रूप है। अत यह श्रोत्र इन्द्रिय की अन्वय अवस्था कहलाती है।

प्रकृति के ज्ञान और क्रिया गुण ही श्रोत्र-मण्डल मे विकसित हो उठे हैं। प्रकृति की सत्ता से ही श्रोत्र मण्डल की सत्ता है। इस प्रकार मूल प्रकृति अपने धर्म और गुणो सहित इस श्रोत्र मण्डल में अनुपतित हुई है। इस क्रमपूर्वक प्राप्त अन्वय मे भी ब्रह्म का विज्ञान प्राप्त करना चाहिये। यदि मोक्ष की आकाक्षा है, तो पर वैराग्य को सिद्ध कीजिए। सावधान रहिये शब्दाडम्बर की मोहिनी आप को पथ भ्रष्ट न कर पाये।

समष्टि श्रोत्र इन्द्रिय मण्डल

पञ्चम रूपो मे ब्रह्म विज्ञान

(श्रोत्र इन्द्रिय का पञ्चम रूप)

५. समष्टि श्रोत्र इन्द्रिय के अर्थवत्त्व रूप मे —

यह श्रोत्रेन्द्रिय समष्टि और व्यष्टि रूप मे भुक्ति और मुक्ति दोनो ही प्रदान करती है। समस्त ज्ञानेन्द्रियाँ शरीर मे सघात को प्राप्त होकर भोग और मोक्ष का हेतु बनी हुई हैं। मानव का महान् उपकार भी करती है और अपकार भी करती हैं। यदि इन की साथी मन और बुद्धि सुशिक्षित हो तो सदा कल्याण के पथ पर ही ले जाती है। वरना नरक के पथ मे फकने वाली भी हो जाती हैं। कठोपनिषद् मे निम्न प्रकार का वर्णन इस विषय म आता है। यथा—

आत्मान रथिनविद्धि, शरीर रथमेवतु।
बुद्धि तु सारथि विद्धि, मन प्रग्रहमेवच ।।३।।
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयान्स्तेषु गोचरान् ।।
आत्मेन्द्रिय मनोयुक्त, भोक्तेत्याहुर्मनीषिण ।।४।।
यस्त्वविज्ञानवान् भवत्य युक्तेन मनसा सदा ।
तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथे ।। ५ ।।
यस्तु विज्ञानवान भवति, युक्तेन मनसा सदा ।
तस्येन्द्रियाणिवश्यानि, सदश्वा इव सारथे ।। ६ ।।
यस्त्वविज्ञानवान् भवत्यमनस्क सदाऽशुचि ।
न स तत्प दमाप्नोति, ससारञ्चाधिगच्छति ।। ७ ।।
यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्क सदा शुचि ।
सतु तत्पदमाप्नोति, यस्मा द्भूयो न जायते ।। ८ ।।
विज्ञान सारथिर्यस्तु, मन प्रग्रहवान्नर ।
सोऽध्वन परमाप्नोति, तद्विष्णो परम पदम् ।। ९ ।।
इन्द्रियेभ्य पराह्यर्था, अर्थेभ्यश्च परमन ।
मनसस्तु परा बुद्धि, बुद्धेरात्मा महान् पर ।। १० ।।

महतः परमव्यक्तम्, व्यक्तात्पुरुषः परः ।
पुरुषान्न परं किंचित्, सा काष्ठा सा परागतिः ॥ ११ ॥
एष सर्वेषु भूतेषु, गूढोत्मा न प्रकाशते ।
दृश्यते त्वग्रया बुद्धया, सूक्ष्मया सूक्ष्म दर्शिभिः ॥ १२ ॥
उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य, वरान्ति बोधत ।
क्षुरस्य धारा निशिता, दुरत्या, दुर्गंपथस्तत्कवयो वदन्ति ॥ १४ ॥
कठो० अ० १ । वल्ली ३ । म० ३-१२, १४ ॥

भावार्थ—जीवात्मा रथ मे सवार होने वाला है। शरीर को रथ समझना चाहिये। बुद्धि सारथि और मन लगाम है ॥ ३ ॥

इन्द्रियाँ घोडे हैं। विषय रूपी सड़क पर गमन करते हैं। शरीर इन्द्रिय एवं मन से युक्त आत्मा को बुद्धिमान लोग भोक्ता कहते हैं ॥ ४ ॥

जो अज्ञानी होता है, जिसका मन वश मे नही रहता, वह बेलगाम के घोडे के समान होता है। उसकी इन्द्रिया वश मे नही रह सकती हैं। जैसे शैतान, उद्धत, दुष्ट घोड़े सारथि (कोचवान) के वश मे नही रहते है ॥ ५ ॥

जो बुद्धिमान, समझदार विद्वान् समाहित चित्त होता है, और जिसका मन भी वश मे होता है। उसकी इन्द्रियाँ भी वश मे रहती हैं। उसका सदा इन्द्रियो पर अधिकार रहता है। बिना आज्ञा के किसी भी ज्ञान या कर्म मे प्रवृत्त नही होने देता है। जैसे सधे हुए अच्छे घोडो को सारथि कुमार्ग पर नही जाने देता है ॥ ६ ॥

जो अज्ञानी हैं, मूर्ख हैं। जिनका मन पर बिलकुल अधिकार नही है। सदा विषय-गामी बना रहता है। बुद्धि जिसकी निर्मल नहीं है। वह उस आत्म-ज्ञान, या ब्रह्म-ज्ञान के पद को प्राप्त नही हो सकता। पुन. जन्म मरण के चक्कर मे पड़ कर ससार मे भोग भोगने के लिये आता रहता है ॥ ७ ॥

जो विद्वान् योगी और ज्ञानी है। जिसका मन पवित्र है, और वश मे है। बुद्धि ऋतंभरा हो गयी हैं। वह महापुरुष ही आत्म-ज्ञान और ब्रह्म ज्ञान प्राप्त कर सकता है। वही अपवर्ग का सच्चा अधिकारी है। वह फिर मर कर कभी उत्पन्न नहीं होता है उसको सीधा मोक्ष प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

जिस शरीर रूपी रथ का बुद्धिमान् सारथि है अर्थात् जिसकी बुद्धिधर्म मेघ समाधि मे उज्जवल हो गयी है। मन पर जिसने पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया है। इन्द्रियो पर सर्वथा विजय प्राप्त कर ली है, वह योगी उस मोक्ष मार्ग पर चलकर ससार रूपी समुद्र को पार कर के विष्णु भगवान् के सर्व-व्यापक परम पद को प्राप्त कर लेता है ॥ ९ ॥

अब आगे इस मोक्ष-मार्ग के क्रम या आत्मा और परमात्मा के पास कहाँ-कहा हो कर पहुच जाता है, इसे कहते है—'इन्द्रियो से परम श्रेष्ठ विषय, और विषयो से परे सूक्ष्म मन और मन से सुक्ष्म बुद्धि, और बुद्धि से परे सूक्ष्म महान् है ॥ १० ॥

महान् या महत् से परे अत्यन्त सूक्ष्म अव्यक्त प्रकृति है, और अव्यक्त से परे सूक्ष्म पुरुष है। पुरुष से यहा जीवात्मा और ईश्वर का ग्रहण है। पुरुष से परे सूक्ष्म, या आगे परे कुछ नही है। वह ही पराकाष्ठा है और वह पुरुष ही उत्कृष्ट परागति है। ११।

यह पुरुष सब भूतों या प्राणियो मे सूक्ष्म रूप से छिपा हुआ है। दृष्टिगोचर नही होता है। अत्यन्त सूक्ष्म बुद्धि वाले ऋतभरा प्रज्ञा से युक्त होकर समाधि द्वारा उसे प्राप्त कर सकते है ॥ १२ ॥

अन्त मे आचार्य ने नचिकेता को उपदेश देते हुए कहा है "हे मनुष्यो ! उठो ! जागो !! सावधान होकर आत्मज्ञानी और ब्रह्म-ज्ञानी गुरु के पास पहुँचो। आत्म-ज्ञान को प्राप्त करो। यह आत्म-विज्ञान प्राप्ति का मार्ग अत्यन्त दुस्तर है तेज छुरे या तलवार की धार पर चलना तो आसान है, पर इस पर चलना अत्यन्त कठिन है। विद्वान् योगी लोग इसको अत्यन्त कठिन और दुस्तर कहते है।

यह समष्टि श्रोत-मण्डल की अर्थवत्ता का वर्णन हुआ। आगे मन के पाँच रूपों का वर्णन होगा। वैराग्य की तीव्रगामिनी गगा ही सब बाधाओ को हरेगी, इसको सदा ध्यान मे रखिये।

इति समष्टि श्रोत्र इन्द्रिय मण्डलम् ।

इति द्वितीयाध्याये पञ्चदश. खण्ड. ।

इति चतुर्दशमावरणम् ॥

षोडश खण्ड

१३वा आवरण

सात्त्विक-राजसाहकारिक सृष्टि

अन्ववतरणिका

समष्टि मनोमण्डल

पाचो रूपो मे ब्रह्म-विज्ञान

समष्टि मनो मण्डल सात्त्विक तथा राजस अहकारो की प्रधानता से परिणाम भाव को प्राप्त हुआ है। तमोगुण स्वल्प मात्रा मे है। सत्त्व का परिणाम होने से प्रकाशमय है। ज्ञानेन्द्रियो की अपेक्षा इसका प्रकाश महान् है। इन्द्रियो का प्रकाश तो चमकती छोटी छोटी तारिकाओ जैसा है। मन तो शुक्र तारे के समान समुज्ज्वल है। इन्द्रिया दसो मिलकर भी जितना कार्य नही कर पाती, जितना यह अकेला करता है। यह स्वय बुद्धि से भी कार्य करता है, अपने भी और दसो इन्द्रियो को काम मे लगाना, उनके आये ज्ञान को बुद्धि के पास भेजना, और उनमे ज्ञान साकर्य न होने देना आदि मन के कार्य है। यह सब रजस् परिणाम के कारण हैं। यही सब गुण धर्म इस मनोमण्डल मे हैं। मन इतना तीव्रगति से ज्ञान और क्रिया सम्पादन करता है, कि बुद्धि चित्त अहकार सब को ही मन समझ लिया इसी लिये उपनिषद् ने भी लिख मारा' मन एव कारण बन्ध मोक्षयो ' इसी दार्शनिक विवाद को यहा न उठाकर इतना ही अभिप्रेत है कि मन की गति अतर्कित है। ससार के गति शील पदार्थो मे यह सब से अधिक वेगवान् है।

मनोमण्डल का निर्माण भी तीनो समष्टि अहकारो से हुआ है। सत्त्व और रजस् समान भाग हैं। यही कारण है कि ज्ञान और क्रिया दोनो का सम्पादन अतर्कित द्रुत गति से करना है। दस इन्द्रियो से विषय ग्रहण करता है, चाह कितनी ही तीव्र गति से ग्रहण करना पडे, करेगा एक एक ही इन्द्रिय के विषय को, वह काल चाहे कितना ही छोटा क्यो न हो। चाहे क्षण का १०० वा भाग ही क्यो न हो। इन्द्रिया कितनी ही तीव्रगति से ज्ञान सग्रह कर, यह उतनी ही तीव्र गति से क्रमश ज्ञानो को ले लेकर बुद्धि को अर्पित करता जायेगा, बुद्धि के तत्काल निर्णय को मन उसे भी उसी तीव्रगति से ग्रहण करेगा, और उसके अनुसार इन्द्रियो को आदेश देता जायेगा। यह आदान प्रदान इतनी तीव्रतम गति से होता है, कि साधारण व्यक्ति के लिये कल्पना म लाना भी कठिन है। यही धर्म इस समष्टि मनोमण्डल मे निहित है, जो व्यष्टियो मे अभिव्यक्त हुआ है।

मनोमण्डल के इस धर्म का प्रत्यक्ष योगी समाधि मे कर सकते है। आप भी आगे बढिये। साक्षात् कीजिये। यह समष्टि मण्डल भी अब तक वर्णित सब मण्डलो के ऊपर आकाश मे वर्तमान है। प्रलय काल म ही इसका भी लय मूल प्रकृति मे हो जाता है। सृष्टि काल मे सूक्ष्म शरीर रचना तथा क्षतिपूर्ति मे इसका उपयोग होता है। मुक्तात्माओ के मन भी इसमे सुरक्षित रहते है। योगी भी इसी से आकृष्ट कर शरीरो का निर्माण कर सकता है।

अब आगे इस मण्डल की पाँचो अवस्थाओ तथा उनमे ब्रह्मानुभूति के पथ पर वैराग्य का आश्रय ले अग्रसर हूजिये।

समष्टि मनोमण्डल

प्रथम रूप में ब्रह्म-विज्ञान

(समष्टि मन का प्रथम रूप)

१ समष्टि मन के स्थूल रूप मे—

समष्टि मन की उत्पत्ति सात्विक राजस अहकारो की प्रधानता से हुई है। इसमे समष्टि सात्विक अहकार १४ भाग+समष्टि राजस अहकार १४ भाग+समष्टि तामसाहकार २ भाग = ३० भाग सम्मिलित है। प्रधानतया दोनो सत्त्व और रज ही मिल कर समष्टि मनोमण्डल को उत्पन्न करते है। जब समष्टि मण्डल मे परिणाम भाव पैदा होता है, तब असख्यात व्यष्टि मन अपने-अपने धर्मो सहित उत्पन्न हो जाते है। इन मनो की सज्ञा व्यष्टि है, यह समष्टि अपने व्यष्टियो का उपादान कारण होता है। इस व्यष्टि मन के धर्म ग्रहण और त्याग, अथवा आदान, प्रदान, और नियोजन ये धर्म मुख्य है। इन्ही धर्मो के कारण यह अन्त करण का एक भाग होता है। जिसको हम अन्त करण चतुष्टय नाम से प्रतिपादन करते है। मुख्यत दो पदार्थ इसके समान रूप मे उपादान कारण होने से ही इसमे दोनो गुण आये है। कर्म और ज्ञानेन्द्रियो को विषयो मे नियोजन करना, जोड देना, लगा देना, अथवा उदासीन होकर निवृत्त कर देना, या विषयो के साथ सम्बन्ध करा देना, या वहा से हटा देना, या चित्त मण्डल से प्राप्त सस्कारो को अहकार लेकर, या उठा कर, या धक्का देकर बुद्धि मण्डल की ओर फेंक देता है, उन सस्कारो को लेकर बुद्धि मे निर्णय करा कर कर्म के रूप मे इन्द्रियो को कर्म कराने मे प्रवृत्त करा देना। यह आदान-प्रदान रूप कर्म इस व्यष्टि मन का होता है। कई आचार्यो ने इस समष्टि मन को अध्यारोप करके ईश्वर का मन भी कह दिया है। ईश्वर इस मन को लेकर इस से आगे के स्थूल पदार्थो की रचना करता है। इससे ही करण का कार्य लेता है। सत्त्वाहकारोत्पन्न ज्ञानेन्द्रियो से विषयो का ज्ञानोपार्जन करा देना इसी की सामर्थ्य है, और राजसाहकारोत्पन्न कर्मेन्द्रियो से कर्म कराने की सामर्थ्य भी इसी मे है।

मन की आवश्यकता

(शका) मन की आवश्यकता क्या है ? बुद्धि ही स्वय इन्द्रियो को प्रवृत्त या निवृत्त करा लेगी।

(समाधान) बुद्धि का कार्य केवल निर्णय करने का है। धर्म है या अधर्म, पाप है या पुण्य, अच्छा है या बुरा, यह कर्म करना चाहिये या नही। राजा को एक मन्त्री की आवश्यकता होती है, सब कार्य करने मे वह समर्थ नही होता है। दफ्तर मे एक चपरासी की आवश्यकता होती है, फाइलें इधर-उधर पहुचाने के लिये। इसी प्रकार मन भी बुद्धि की फाइलें पहुचाने या लाने का कार्य करता है। बुद्धि से आज्ञा मिली और झट इन्द्रियो को सावधान करके ज्ञान या कर्म मे प्रवृत्त करा दिया। इन्द्रियो ने विषयो के रूप मे जो कर्म या भोग द्वारा उपार्जन किया, उसी को लेकर निर्णयार्थ बुद्धि मे प्रदान कर दिया। जो वहाँ निश्चय हुआ, वह सस्कार के रूप मे अहकार को भेज दिया। अत्यन्त

चित्र स० १०
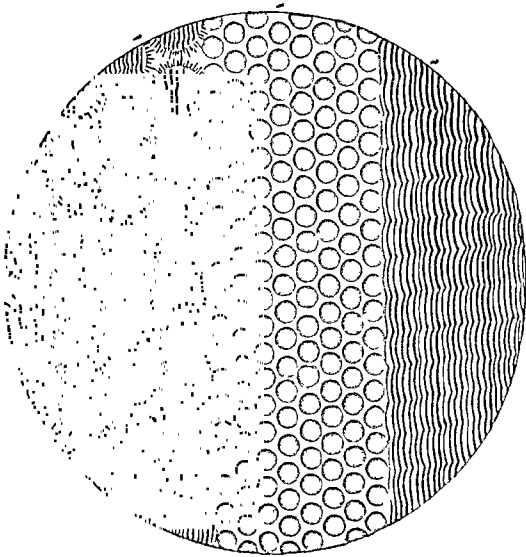
ही तीव्रगति इस मन की है। मालूम होता है कि जैसे यह एक-कालावच्छेदेन सब इन्द्रियों से कर्म करा रहा हो, और बुद्धि के भी सब काम एक ही समय मे कर रहा है। परन्तु होता प्रत्येक कार्य क्रम पूर्वक ही है। अत बुद्धि को भी अपना कार्य कराने के लिये एक करण की आवश्यकता थी। वह करण इस का मन है। इसके बिना बुद्धि का कार्य चल नही सकता। इस व्यष्टि मन का विस्तार-पूर्वक वर्णन पूर्व प्रकाशित हमारे ग्रन्थ 'आत्म-विज्ञान' मे किया गया है। यहा हमारा ध्येय तो केवल समष्टि मन के वर्णन का है। इसके स्वरूप का दर्शन चित्र न० १० मे करे।*

समष्टि मनोमण्डल अत्यन्त सूक्ष्म है। इसने अपने से पूर्व के सब मण्डलो को आच्छादित किया हुआ है। जब इस मे समष्टि सृष्टि सृजन करने की क्रिया दैवात् उत्पन्न होती है तो सारा सूक्ष्म आकाश मण्डल कम्पायमान हो जाता है। बहुत काल तक कम्पायमान रहने के कारण इसमे सूक्ष्म क्रिया बनी रहती है। व्यष्टि मनो का निर्माण अपने अपने गुणो को साथ लिये हुए होने लगता है। ये व्यष्टि मन सूक्ष्म सूक्ष्म तारिकाओ के समान देदीप्यमान हो कर चमकते हुए आकाश-मण्डल मे विभक्त हो जाते हैं। आकाश मण्डल कोई इस मनोमण्डल से अलग नही होता है, किन्तु वह अपने गर्भ मे व्यष्टि मनो के ठहरने के लिये अवकाश पैदा कर देता है। सम्पूर्ण विश्व मे मानो मनो का ही राज्य हो। यह समष्टि मनोमण्डल २१वा आवरण या कोश भगवान् के ऊपर समझना चाहिये। यह अपनी स्थूलता के कारण ब्रह्म को आच्छादित किये हुए होता है, और सारे विश्व के अन्दर स्वय अपनी सूक्ष्मता से व्याप्त भी होता है। इसकी इस महान् सूक्ष्मता मे उस भगवान् की अन्वेषणा करती है।

उपनिषद् इस विषय मे ऐसा कहती है। यथा—

यन्मनसा न मनुते, येनाहुर्मनो मतम्।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि, नेदं यदिदमुपासते॥

केन० प्रथम खण्ड। मन्त्र ५।

— जो मन के द्वारा मनन नही किया जा सकता है। जाना नही जा सकता है। उसके द्वारा मन को जान सकते हैं। उसको ही तुम्हे ब्रह्म समझना चाहिये। और जो तुम अन्य या इस प्रकार की उपासना कर रहे हो, यह ठीक नही है।

वह ब्रह्म तो ऐसा है जो तुम्हारे मन का विषय ही नही बन सकता है। क्यो कि अभी इसमे इतनी सूक्ष्म-दर्शिता नही आयी है कि जो बुद्धि द्वारा ठीक निर्णय करा दे कि वास्तव मे ब्रह्म क्या है और कैसा है?

उपनिषत्कार ने और भी कहा है। यथा—

---

* चित्र न० १० का विवरण—न० १ मे समष्टि मन को परिणत होते हुए मन्द मन्द तरङ्गें उत्पन्न करते हुए दिखाया गया है।

न० २ मे उत्पन्न हुए हुए मनो की प्रशान्त अवस्था को क्रिया रहित दिखाया गया है।

न० ३ मे इन्द्रियो के विषयो से प्रतिबिम्बित व्यष्टि मनो मे उत्पन्न होती हुई लहरो या कम्पनों को क्रिया शील होते हुए दिखाया गया है। प्रत्येक व्यष्टि मन भोग और मोक्ष का हेतु होता है।

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहित ।
नाशान्तमनसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ॥

कठ० अध्याय १ । वल्ली २ । मन्त्र २४ ।

— जो वैराग्यवान नही है । जिसका मन विषयो से विरक्त नही हुआ है । उपरत नही हुआ है । जो दुश्चरित्र है । जिस का मन चञ्चल है । जिसका मन समाहित नही है । एकाग्र नही है । जिसका मन विक्षिप्त है, बिलकुल अशान्त रहता है, इनको वह ब्रह्म प्राप्त नही हो सकता है । प्राप्त उन ही को होता है जिन मे उपरोक्त दोष नही ह । जो वैराग्य वान् है, सचरित्र है, जितेन्द्रिय है, जिनके मन मे चञ्चलता का अभाव है जिनके मन समाहित हो चुके है, कभी भी भूल कर विषयो मे नही जाते है, जिन की सब प्रकार की विक्षिप्ततायें जाती रही है । इस प्रकार के जितेन्द्रिय योगियो को विशेष विज्ञान के द्वारा, या सम्प्रज्ञात समाधि द्वारा ब्रह्म प्राप्त होता है ।

यह मन समष्टि मण्डल विश्व मे व्याप्त है । कार्य रूप मे व्यष्टि भाव को प्राप्त होता है । तब एक अणु के समान हो जाता है और वह व्यष्टि भी महान् बन जाता है । जब हाथी या ह्वेल मत्स आदि जन्तुओ के शरीर मे प्रवेश करता है । अत इसमे सङ्कोच और विकास धर्म बना ही रहता है । इसी प्रकार इसके अभिमानी सूक्ष्म शरीर का भी सकोच विकास धर्म बना ही रहता है । इसके लिये योग दर्शन के भाष्यकार ने कहा है "महाश्च भवत्यणुश्च भवति महान् हो जाता है और अणु भी हो जाता है ।

इस समष्टि मन के मण्डल मे ब्रह्म का आरोप करके उपासना और विज्ञान प्राप्त करना चाहिये । यह समष्टि मन भी ब्रह्म के ऊपर कोश या आवरण के रूप मे है । अत इस आवरण को हटा कर ही ब्रह्म का प्रत्यक्ष हो सकता है । यद्यपि यह मण्डल अत्यन्त सूक्ष्म है, परन्तु ब्रह्म की सूक्ष्मता इससे भी अधिक है । जो मन को ही ब्रह्म समझ कर उपासना करते है, उन का मोक्ष इसी मण्डल मे होता है । परन्तु योगी को इस से भी आगे बढकर, इस आवरण को हटा कर यथार्थ मे ब्रह्म-विज्ञान प्राप्त करना है, क्योकि यह भी अहकार का कार्य होने से बन्धन का हेतु है ।

मानव शरीर मे यद्यपि इसका आवास ब्रह्मरन्ध्र मे मनोमय कोश मे वर्तमान है परन्च यह अपनी रश्मियो द्वारा अन्नमय, प्राणमय, मनोमय कोशो को आच्छादित कर के रखता है । इसकी किरणें सम्पूर्ण शरीर को व्याप्त करके रखती है । जैसे कोई मनुष्य खडा हो और उसके सिर पर एक बिजली का बल्ब जल रहा हो, जैसे उस बल्ब से निकली हुई प्रकाश की किरणें शरीर को आच्छादित कर लेती हैं । इस प्रकार इस मन की रश्मियें भी सब शरीर के कोशो को आच्छादित करके रखती हैं । वैसे इसका कार्य क्षेत्र ब्रह्मरन्ध्र मे ही होता है जहां इसका आवासस्थान है । इसी प्रकार से ब्रह्म-रन्ध्र से कर्म और ज्ञान इन्द्रिया की ज्योतियां निकल कर शरीर को व्याप्त करती है ।

समष्टि मनोमण्डल
द्वितीय रूप मे ब्रह्म विज्ञान
(समष्टि मन का द्वितीय रूप)

२ समष्टि मन के स्वरूप मे—

मन और इसके धर्मो का समवायसम्बन्ध है । मन का परिणाम विशेष आदान प्रदान और नियोजन ही इसके धर्म हैं, जो कभी इस से पृथक् नही होते, क्योकि धर्म और

धर्मी का अथवा अवयव और अवयवी का अभेद है। जैसे—शरीर और हाथ पैर। शरीर धर्मी है, और हाथ पैर आदि इसके धर्म हैं। सो शरीर से हाथ पैर कोई अलग पदार्थ नहीं हैं। केवल व्यवहार में भेद रूप से कथन किया जाता है। यहां अभेद में भेद का आरोप किया गया है। भिन्न पदार्थ न होने पर भी, पदार्थ का भेद रूप से वर्णन करना, विकल्प ज्ञान के अन्तर्गत हो जाता है। अतः मन के धर्मों को मन से अलग नहीं मानना चाहिये। इसी का नाम स्वरूप सम्बन्ध है। मन के इस स्वरूप सम्बन्ध में ब्रह्म का विज्ञान करना चाहिये। समष्टि मन में ब्रह्म का आरोप करके इसकी उपासना और विज्ञान प्राप्त करना चाहिये।

उपनिषद ने कहा है। यथा—

"मनसैवेदमाप्तव्य नेह नानास्ति किञ्चन।
मृत्यो स मृत्युं गच्छति, य इह नानेव पश्यति।"

कठो०अध्याय २ ' वल्ली १। मन्त्र ११।

— वह ब्रह्म मन (बुद्धि) के द्वारा ही प्राप्त होना चाहिये। इसके विज्ञान के विषय में भिन्न भिन्न रूप में कुछ भी अवयव आदि या अंश आदि के भेद भाव से दिखना नहीं है। जो व्यक्ति इस ब्रह्म को नाना रूप से या अनेक रूप में देखता है, जानता है, वह मृत्यु में फिर मृत्यु को प्राप्त होता है। पुनः-पुनः जन्म धारण करता है।

समष्टि मनोमण्डल

तृतीय रूप में ब्रह्म विज्ञान
(समष्टि मन का तृतीय रूप)

३ समष्टि मन के सूक्ष्म रूप में—

समष्टि मनोमण्डल का मुख्य उपादान कारण सत्त्वरज प्रधान अहंकार है। व्यष्टि मनों का यह समष्टिमण्डल उपादान कारण है। यही यहां मन की सूक्ष्मता का कारण है। यहाँ अहंकार नय सामान्य और मनोमण्डल विशेष का ही समुदाय है। कार्य का कारण के साथ जो सूक्ष्म सम्बन्ध है यही तीसरी सूक्ष्म अवस्था है। कारण से कार्य भाव को प्राप्त होते हुए समाधि द्वारा पदार्थ का प्रत्यक्ष करना और ब्रह्म की व्यापकता का भी साक्षात्कार करना है। सब ओर से वृत्तियों को रोक कर समष्टि मनोमण्डल और ब्रह्म की सूक्ष्मता में प्रवेश करके इनके व्याप्य व्यापक भाव को देखें। पर वैराग्य को सदा दृढ बनाये रखें, जिससे मन पथ भ्रष्ट न होने पाये।

मन की एकाग्रता

मन की एकाग्रता अत्यन्त ही आवश्यक है, क्योंकि यह बहुत ही नटखट है। तीव्र गति वाला होने से झट बाहर भाग जाता है। वैराग्य की कमी होने से यह स्थिर नहीं रहता है। वैराग्य से तो अनायास ही स्थिर हो जाता है।

महोपनिषद् में वैराग्य के विषय में कहा है।—यथा

'वैराग्यात पूर्णतामेति, मनो नाश-दशानुगम्।
आशया रक्तता मेति, शरदीव सरोमलम् ॥म० ७५॥

तमेव भुक्तिविरस, व्यापारौघ पुन. पुन ।
दिवसे दिवसे कुर्वन, प्राज्ञ कस्मान्न लज्जते ।।७६।।
महोपनिषद अध्याय ६ । म० ७५।७६ ।।

—वैराग्य से ही मन का दमन होता है। आशा तृष्णा से राग युक्त होता है। वैराग्य से मन की शुद्धि ऐसे हो जाती है, जैसे शीत काल मे सरोवर निर्मल हो जाता है। ससार के व्यवहारो को पुन पुन करता है, नीरस पाता है पुन करता है, प्रतिदिन करते करते भी लज्जित नही होता है। इसी आसक्ति न मुक्ति को भी नीरस बनाया हुआ है। ऐसे व्यक्ति को ब्रह्म ज्ञान मे भी आनन्द की अनुभूति नही होती है। जो रात दिन ससार के धन्धा मे लगा रहता है, उसको ईश्वर की भक्ति या मार्ग अच्छा नही लगता है।'

अन्यत्र भी कहा है। यथा—

रज्जुबद्धा विमुच्यन्ते तृष्णाबद्धा न केनचित् ।'
महो० अ० ६। मन० ३६।

रस्मियो से बन्धा हुआ मनुष्य तो छूट सकता है, परन्तु तृष्णा से बधा हुआ कोई विरला ही मुक्त हो सकता है।

' जिसके सब सकल्प शान्त हो गये है, और जिस की सब तृष्णा समाप्त हो चुकी है। जिसका मन बिलकुल स्थिर हो गया है। वही इस ब्रह्म विज्ञान को प्राप्त कर सकता है। वही सब प्रकार के दु खो और क्लेशा से मुक्त हो सकता है। ब्रह्म के विज्ञान और दर्शन मे मन का निरोध होना अत्यन्त ही आवश्यक है। इसके निरुद्ध होने पर इन्द्रियो के सब व्यापार समाप्त हो जाते हैं। इन्द्रियो मे इसकी प्रवृत्ति ही बन्ध का हेतु बन जाती है। अत इसको इसके व्यापारो से मुक्त करना चाहिये। तब ही यह बुद्धि द्वारा ब्रह्म चिन्तन म सहायक हो सकता है।

मुक्तिकोपनिषद् मे कहा है। यथा—

'ब्रह्माकार-मनोवृत्ति प्रवाहोऽहकृति विना ।
सप्रज्ञात समाधि स्याद्धयानाभ्यास प्रकर्षत ।।५३।।
प्रशान्त वृत्तिक चित्त परमानन्ददायकम् ।
असप्रज्ञातानामय समाधि योगिना प्रिय ।।५४।।
मुक्तिकोपनिषद् अध्याय २। मत्र ५३,५४।

—मन की वृत्ति ब्रह्माकार हो। जिस मे अहकार का अभिमान न रहे। जिसमे अहकार के द्वारा अपना भान भी न हो। अपनी भी विस्मृति हो कर ब्रह्माकर वृत्ति हो जाये। अस्ति का साक्षात्पूर्वक निरन्तर प्रवाह चलता रहे। ध्यान के अभ्यास की प्रकर्षता से यह सप्रज्ञात समाधि की अवस्था होती है।५३।।

इस अवसर मे मन बुद्धि, अहकार चित्त की सब वतिया शान्त हो जाती है। परमानन्द दायक अवस्था प्राप्त होती है। इसका नाम असप्रज्ञात समाधि है। यह ब्रह्माकार स्थिति या ब्रह्म मे लीनता योगियो को अत्यन्त प्रिय है ।।५४।।'

यह है समष्टि मनोमण्डल की सूक्ष्मता मे उस परम सूक्ष्म ब्रह्म का सप्रज्ञात समाधि द्वारा साक्षात्कार।

समष्टि मनोमण्डल

चतुर्थ रूप मे ब्रह्म-विज्ञान
(समष्टि मन का चतुर्थ रूप)

समष्टि मन के अन्वय रूप में—

प्रकृति के सर्व प्रथम गुण ज्ञान और क्रिया है। इनके साथ प्रकृति का सब र्यों मे अनुपतन होता है। समष्टि मनोमय मण्डल मे भी गुणो सहित प्रकृति का नुपतन हुआ है यही इसकी अन्वय रूप चौथी अवस्था है।

(शका) सत्त्व प्रधान अहंकार की मुख्यता से ज्ञानेन्द्रियों की उत्पत्ति हुई है, सलिये उनको ज्ञान-प्रधान माना है; और रज. प्रधान अहंकार की मुख्यता से कर्मेन्द्रियो उत्पत्ति हुई है, इसलिये उन्हे कर्म प्रधान कहा है; इन्ही दोनो अहकारो की प्रधानता मन की उत्पत्ति हुई है, तो इसको ज्ञान और कर्म प्रधान क्यो न माना जाये, केवल कर्म क्यो माना है ?

(समाधान) इन्द्रियो में ज्ञान और कर्म की प्रधानता का तो यह तात्पर्य है कर्मेन्द्रिय केवल आटोमैटिक रूप से कर्म ही करती हैं, उनको यह पता नही होता हम क्या कर्म कर रही हैं। इसका परिणाम यह है कि कर्म करना ही उनका व्य है 'इस कर्म का क्या फल है ? यह पाप युक्त है या पुण्य युक्त है ? यह र्मात्मक है या अधर्मात्मक ?'—यह कुछ वे नही विचारती। ज्ञानेन्द्रियाँ भी केवल न का साधन हैं। पुण्यापुण्य या विशेष विवेचन का नही। जैसे- ज्ञानेन्द्रिय नेत्र केवल को ही दिखाता है। रूप को देखना, है तो वहाँ ज्ञान ही, परन्तु नेत्र यह नहीं ताता है कि यह रूप काला, पीला, नीला, सफेद, लाल हरा इत्यादि किस प्रकार का । इसी प्रकार घ्राणेन्द्रिय भी यह नही बताती कि किस की गन्ध है, जायफल, जावित्री, र, कस्तूरी या अन्य किसी पुष्प आदि की ? केवल गन्ध ग्रहण करना इसका कार्य । यह भी एक प्रकार से है तो ज्ञानात्मक ही परन्तु विवेचनात्मक ज्ञान नहीं है। इस कार का विज्ञान पूर्वक यथार्थ निर्णय करना यह बुद्धि का धर्म है। ज्ञानेन्द्रियो का र्य केवल रूप या गन्ध को ग्रहण करना ही है। इसको हम सामान्य ज्ञान कह सकते ; जिससे हमारा कोई विशेष प्रयोजन सिद्ध नही होता है। जब तक बुद्धि का निर्ण-त्मक विज्ञान अपनी निश्चायक मोहर न लगा दे, कि अमुक रूप है या अमुक गन्ध है, तक नेत्र रूप को देखते हुए भी रूप का निश्चयात्मक ज्ञान नही करा सकते है। : निर्णयात्मक विज्ञान बुद्धि का ही होता है। गन्ध या रूप को सू घना, देखना, है तो द्ध ज्ञान ही, परन्तु व्यर्थ सिद्ध होता है, जब तक बुद्धि अपना निर्णय न दे दे। मन को ी लिये कर्म प्रधान कहा है कि यह नेत्र को कर्म करने मे नियोजित तो कर देता है। े सामान्य रूप से नेत्र रूप को देख रहा है, वैसे मन भी सामान्य रूप से साथ मिला ा देख रहा है, परन्तु मन भी यह तो निर्णय नही कर सका कि रूप कैसा है, किसका काला है या पीला इत्यादि, ऐसे ही गन्ध कैसी है, किस की है। यह निर्णय न देने इसे कर्म प्रधान ही कहा गया है। यदि यही रस रूप गन्ध आदि का निर्णय कर देता, तो बुद्धि की भी आवश्यकता न रहती। परन्तु यह तो निर्णय देता ही नही है। र्णय तो बुद्धि ही देती है। इसीलिये बुद्धि को ज्ञान प्रधान कहा है। अतः ज्ञानेन्द्रियों

ान का यह अभिप्राय नही है कि वे रूपादि को देखती हैं, और बता दें कि अमुक रूप है। देखो ! यदि बुद्धि किसी चिन्तन मे लगी हो और नेत्र खुले हो, तो उस समय देखते हुए भी नही देखते हैं। अथवा नासिका का यह न बता सकना कि अमुक (की गन्ध है, उसका एक प्रकार से कर्म सा होकर रह जाना है। हाँ ! कर्मेन्द्रियो ामान कम नही हैं। बुद्धि के समान ज्ञान भी नहीं है। दोनों की बीच की अवस्था ज्ञानेन्द्रिया हैं। बुद्धि इनके प्रेषित ज्ञान के बिना गन्धरस, रूप का निर्णय नहीं दे ती है। अत बुद्धि के विज्ञानात्मक निर्णय मे ज्ञानेन्द्रियाँ सहायक हैं साक्षात् रूप से ज्ञान करने म समर्थ नही है। मन तो केवल बुद्धि का सन्देश-वाहक है। कर्म और न्द्रियो को प्रवृत्त करने मे मददगार है। कुछ थोडा सा ज्ञानेन्द्रियो के समान ज्ञान इसे है। कर्म करने की प्रवृत्ति इसकी ही है। इसीलिये इसको उभयात्मक कहा है ण भी इसके मुख्यतया सत्त्व-रज प्रधान अहकार हैं। और कार्य भी इसके ज्ञानेन्द्रिय, न्द्रिय के प्रेरणात्मक ही है, अत बुद्धि की अपेक्षा इसे कर्म प्रधान कहना ही उचित है। ण और कार्यात्मक समष्टि व्यष्टि मनो की इस अन्वय अवस्था का प्रत्यक्ष करते हुए, अवस्था के निमित्त भगवान् के सन्निधान का भी प्रत्यक्ष करना चाहिये। वैराग्य से त्र आत्मा ही इस ब्रह्म दर्शक को स्थिर रख सकेगी। मल रहित पात्र मे ही दूध- अविकृत रहता है। अत आत्मा को वैराग्य से पवित्र बनाये रखिये, अत्यन्त सावधान ये कही मन का मैल इसे मैला न कर दे।

समष्टि मनोमण्डल

पञ्चम रूप मे ब्रह्म-विज्ञान

(समष्टि मन का पञ्चम रूप)

समष्टि मन के अर्थवत्त्व रूप मे—

यह समष्टि मनोमण्डल जीवा को भोग कर्म और मोक्ष प्रदान करने के लिये ा ब्राह्मी चेतन सत्ता के निमित्त से सूक्ष्म क्रिया द्वारा क्षोभ को प्राप्त होकर व्यष्टि मनो निर्माण करता है। परिणाम भाव को प्राप्त हुए व्यष्टि मन अपने धर्मो के सहित त्पन्न होते है। तत्पश्चात् पूर्व उत्पन्न हुए चित, अहकार और बुद्धि के साथ सघान को प्त होकर अन्त करण चतुष्टय के रूप म पूर्व धर्माधर्म सस्कारो से युक्त होकर जीवात्मा भोग और मोक्ष प्रदान करने के लिये उसके साथ प्रस्तुत होते है। यह इस मन की र्थवत्ता का मुख्य हेतु है।

(शका) समष्टि मनोमण्डल क्या सारे का सारा एक दम व्यष्टि मनो के रूप मे रिणाम भाव को प्राप्त होकर खतम हो जाता है, या उसका कुछ अश कारण रूप में ना भी रहता है ?

(समाधान) उस समय जितने मनो की आवश्यकता होती है, उतने ही अश ा परिणाम होता है। शेष कारण रूप मे पडा रहता है। आवश्यकता होने पर पुन ृजन कर देता है। जैसे मिट्टी का पहाड के अन्त पडा है, कुम्हार को अपने बरतनों के लये जितनी मिट्टी की आवश्यकता होती है उतनी ही उस पहाड से लेकर बनाता है। एक दम सारे पहाड की मिट्टी को लेकर तो बनाने नही लगता है। ऐसे ही वैज्ञानिको ो जितनी धातुओ की जरूरत होती है, उतनी ही निकाल कर अपने कार्यो मे लाते हैं, शेष धातुए पृथिवी के गर्भ मे पडी रहती हैं।

योगियों का अभाव

योग दर्शनकार ने एक सूत्र दिया है, जिसमे योगी का प्रकृति या उसके कार्यो पर अधिकार बताया है। यथा—

'निर्माण चित्तान्यस्मिता-मात्रात् ।'

योग० पाद ४। सू० ४।

—भाष्यकार ने शंका उठाई थी, कि जब योगी भूतों पर अधिकार हो जाने से बहुत से शरीरो का स्वय निर्माण कर लेता है तो वे शरीर एक मन वाले होते हैं या अनेक मन वाले। इसके उत्तर मे यह सूत्र है। भाष्यकार व्यास महर्षि ने इसका अर्थ किया है—

"अस्मिता-मात्र जो चित्त का उपादान कारण है, योगी उसको ग्रहण कर बहुत से चित्तों का निर्माण कर लेता है। इस लिये प्रत्येक शरीर चित्त वाला होता है।

इसके आगे एक और सूत्र दिया है। यथा

प्रवृत्ति भेदे प्रयोजकं चित्तमेकमनेकेषाम् ।

योग० पा० ४। सू० ५॥

प्रवृत्ति के भेद से सब चित्तों का प्रयोजक-नियामक एक ही चित्त होता है, जो कि सब का नायक होता है।"

यहाँ यह दिखाना अभीष्ट है कि यदि उपादान रूप मे समष्टि मनोमण्डल का शेष न रहा होता, तो योगी चित्तों को कहाँ से बनाता। अतः सम्पूर्ण मण्डलों का कारण के रूप मे रहना आवश्यक ही है। जितनी आवश्यकता होती है उतना ही अंश उपादान कारण से ले लिया जाता है।

इस प्रकार के योगियों का वर्त्तमान में अभाव है। जो इस प्रकार शरीरों और अन्तः करणो का निर्माण करले। यदि हमें इस प्रकार का अधिकार प्राप्त नही हुआ तो यह तो हमारी कमजोरी की बात है। शास्त्र को हम मिथ्या नही कह सकते। आज से ५० वर्ष पूर्व हवाई जहाजों, परमाणु बम्बो, राकेटों, रेडियों आदि अनेक यन्त्रो का अभाव था। अब सामने वर्त्तमान है। सब प्रकार की विद्याओ का कभी २ युग होता है। कभी काल वशात् नष्ट हो जाती है। संसार में कोई भी बात या कार्य असभव नही है। समय समय पर सब ही संभव होते रहते हैं।

इसी प्रकार की योग दर्शन में और भी सिद्धियां हैं, जैसे पर काया प्रवेश या अणिमादि सिद्धियां। इन विद्याओं का वर्तमान मे अभाव सा ही है। योगी इन के विषय मे आलस्यवान्, प्रमादी, या अकर्मण्य होकर रह जाते हैं। विशेष यत्न नही करते हैं। वरना असंभव तो कोई बात भी नही है। भूत-काल में किसी युग में इन विद्याओं की और सिद्धियों की प्रधानता रही है। इसी कारण योग दर्शन ने उनका उल्लेख किया है, जो सब ही यथार्थ है। उसमे से बहुतो का हमने भी क्रियात्मक अनुभव करके देखा है।

यह मन की अर्थवत्ता का वर्णन हुआ। इस समष्टि मनोमण्डल मे ब्रह्म का अध्यारोप करके इसकी उपासना और विज्ञान प्राप्त करना चाहिये।

इस समष्टि और व्यष्टि मन के साक्षात्कार का एक अन्य वर्णन उपनिषद् के आधार पर करते हैं। जो इस उपासना और विज्ञान का बहुत ही अच्छा साधन है। यथा—

"यो मनसि तिष्ठन्, मनसोऽन्तरो,
यं मनो न वेद, यस्य मनः शरीरम्
यो मनोऽन्तरो यमयति,
एष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥
बृहदारण्यक० अ० ३ । ब्रा० ७ । म० २० ॥

योगी को चाहिये कि जो ईश्वर मन के अन्दर अपनी सूक्ष्मता और व्यापकता के कारण निवास कर रहा है, जिसको यह मन नही जानता है, परन्तु जिस ईश्वर का यह मन ही शरीर बना हुआ है, इस मन रूपी शरीर मे भगवान् का आरोप करके आलकारिक रूप से इसको शरीरी के रूप मे कथन किया गया है । इस प्रकार इस मन रूपी शरीर को भगवान् का मन्दिर या निवास स्थान मान कर उपासना और विज्ञान का बहुत सुन्दर वर्णन किया गया है । कितना हृदय ग्राही साधन है । इससे भगवान् को मिलने या प्राप्त करने के लिये योगी को, भक्त को, इतस्तत भटकना नही पडता है । वह अपने अन्दर ही भगवान् का साक्षात् कर लेता है ।

शरीर के वर्णन करने के पश्चात् बताया है कि वह भगवान् इस मन को अन्दर से ही क्रिया कराता है और कार्य मे नियोजन का हेतु चेतनत्वेन होता है । यही तेरा अन्तर्यामी भगवान् है जो तेरे सब पाप पुण्यो एव धर्माधर्मों का ज्ञाता है । वह ही अमृत रूप है । अन इस अमृत का पान समाधि द्वारा करना चाहिये, जिससे परमानन्द की प्राप्ति होगी ।

विपरीत क्रम क्यो ?

इस दूसरे अध्याय मे अहकारिक समष्टि सृष्टि की उत्पत्ति और उसके कार्यो का वर्णन किया गया है । इन सब पदार्थों मे ब्रह्म को व्यापक मानकर इनमे उपासना और ब्रह्म-विज्ञान का भी विधान किया है । इन पदार्थो की उत्पत्ति अहकारो से हुई है । यह सब ब्राह्मी सृष्टि है । इसको ब्रह्म ही निर्माण करता है ।

वास्तव मे तो सृष्टि का क्रम तो ऊपर से अर्थात् मूल-प्रकृति से आरम्भ होता है । वही से ग्रन्थ आरम्भ होना चाहिये था । परन्तु इस क्रम मे अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थो का आरम्भ मे ही वर्णन होने से सर्व साधारण की समझ मे आना कठिन हो जाता । इसलिये हमने स्थूल भूतो से उपासना और विज्ञान को प्रारम्भ किया, जो कि सर्व साधारण की समझ मे भी आ सकता है क्योकि सब के प्रत्यक्ष का विषय है । पञ्चभूत प्रत्यक्ष है । इन मे या इनके द्वारा उपासना और विज्ञान की बात शीघ्र ही समझ मे आ जाती है । विज्ञान के विषय को स्थूल से सूक्ष्म की ओर ले जाने से पदार्थ सरलता एव सुगमता से समझ मे आ सकते हैं, और इस क्रम से विज्ञान भी प्राप्त हो जाता है । अत विपरीत क्रम पूर्वक अब तक २१ पदार्थो का वर्णन किया गया है । प्रत्येक मे उपासना और विज्ञान का क्रम है । ये पदार्थ एक प्रकार से ब्रह्म के ऊपर आवरण या कोश के रूप मे हैं और हैं ये प्रकृति के कार्य । इन कोशो का सभेदन ध्यान समाधि द्वारा करना होता है । इस प्रकार उनमे ब्रह्म का साक्षात्कार भी होता जाता है ।

यही क्रम पदार्थो और ब्रह्म विज्ञान का सर्वश्रेष्ट साधन है, क्योकि भगवान् किसी देश विशेष मे तो बैठा ही नही है । ये समष्टि पदार्थ ही वास्तव मे उस ब्रह्म के घर या

निवास स्थान हैं, और भगवान् इन सब का निवास स्थान है । यदि किसी मार्ग पर ही चल कर वह प्राप्त होना है तो उसके मिलने का मार्ग और क्रम यही यथार्थ प्रतीत होता है भगवान् सर्व देशी हैं । अन यह पदार्थ ही उसका देश हो सकते हैं । इन्ही देशो मे उस की गवेषणा करनी है । इन्ही मे उसे प्राप्त करना है ।

वह अत्यन्त सूक्ष्म से सूक्ष्म है । तभी तो हम स्थूल से सूक्ष्म पदार्थो मे गमन करते हुए उसे प्राप्त कर सकते हैं । जब वह सर्वत्र विद्यमान है, तो उसकी अनुभूति प्रत्येक पदार्थ म होनी चाहिये । इसीलिये इस क्रम और साधना को अपनाया गया है ।

उन २१ पदार्थों म से प्रत्येक पदाथ की पाच-पाँच अवस्थाओ मे और प्रत्येक के परिणाम क्रम मे ब्रह्म की अनुभूति का उल्लेख किया है । जिस से पदार्थ के स्वरूप और साथ-साथ ब्रह्म के स्वरूप का भी साक्षात्कार हो जाता है । साथ-साथ परवैराग्य की अनिवार्यता का भी प्रतिपादन किया है क्योकि मोक्ष के प्रति परवैराग्य की ही मुख्य कारणता है ।

अहंकारिक सृष्टि

व्यष्टि अहकार

व्यष्टि अहकार अहकारिक सृष्टि का अतिम चरण है । व्यष्टि अहकार की उत्पत्ति अहकारो की समष्टि के निम्न अनुपात से हुई है । समष्टि सात्विक अहकार ० ८ भाग + समष्टि राजस अहकार ० ६ भाग + समष्टि तामस अहकार १ ३ भाग = ३ ० । समष्टि तीनो अहकारो के मण्डल पृथक्-पृथक् हैं ही, इसलिये पृथक समष्टि अहकार मण्डल की कोई तुक नही । इन तीना के अनुपातिक सम्मिश्रण से यह उत्पन्न हुआ है जैसे चित्त बुद्धि महत् सत्व, महत्रज से उत्पन्न होकर अपने अपने व्यष्टि रूप रखते हैं, ऐसे ही तीना अहकारिक मण्डल भी व्यष्टि अहकारो को उत्पन्न करते है । यह व्यष्टि अहकार अपने साथ सब धर्मो को ले कर उत्पन्न होते हैं । चित्र स० ११ मे देखें ।

अभिमान, ममेदम्, अनुद्भूत प्रकाश, आदान-प्रदान, अभिमानात्मक कर्म तथा सस्कारो को उलट-पलट करना, सस्कारो का चित्त और बुद्धि मे आदान-प्रदान करना इस अहकार के गुण हैं । इसके ये अभिमानात्मक कर्म ज्ञान पूर्वक नही होते है । इसको तो यह भी पता नही होता कि मे अभिमान कर रहा हूँ । ज्ञान प्रधान चित्त ही इसकी अभिमानात्मक वृत्ति द्वारा सब काय करा रहा है । यह अहकार तो चित्त का सन्देश-

---

चित्र सख्या ११ में न०१ मे समष्टि अहकारो मे विशेष क्षोभ के उत्पन्न होने पर परिणाम द्वारा व्यष्टि अहकारों की उत्पत्ति दिखाई गई है । न० २ मे तीना अहकारों ने मिलकर विशेष क्रिया द्वारा व्यष्टि अहँकारो को उत्पन्न किया है । जिनकी अवस्था शान्त और स्थिर है व प्रत्येक व्यक्ति म सयुक्त होकर भोग और अपवर्ग के हेतु बनने जा रहे हैं । न० ३ मे प्रत्येक मानव मे प्रवश करके अथवा स्थूल/सूक्ष्म शरीर मे क्रियाशील हो कर ममेदम या अहमस्मि का बोध कराने में या भोग अपवर्ग सम्पादन करन म प्रवृत हुए हुए हैं । यहा तीनों अहकारो के कारण कार्य सर्व रूप न दिखाकर केवल मात्रा एक ही स्वरूप दिखाया गया है । चित्र सख्या अधिक न हो जाने के कारण स । यहाँ तीनो अहकारो ने मिलकर व्यष्टि अहकारो को उत्पन्न किया है ।

वाहक है। चित्त का इसके बिना कोई भी कार्य सिद्ध नही होता। यह चित्त का अत्यन्त ही समीपस्थ अनुचर के समान है। अहकार जहा बन्ध का हेतु है, वहाँ आत्म साक्षात्कार का भी कारण है। इसके द्वारा ही तो आत्मा को अहमस्मि का बोध होता है। आत्मा को एतद्विशिष्ट होने पर ही स्वरूप का बोध होता है। अन्यथा आत्मा स्वरूप का बोध नही कर सकता। इसीलिये यह आत्मा के बन्ध और मोक्ष दोनो का हेतु है।

स्वर्गवासी आकाशगामी देवता भी इसके आधार पर स्वर्ग के सुखा का उपभोग करते है। पृथिवी मण्डल पर वास करने वाले सब प्राणी भी इसी के आधार पर इस लोक के सुख भोगते है। सब प्राणियो को देह का अध्यास इसी के द्वारा बना हुआ है। इसने सब जीवो को अपना दास बना रखा है। सब क्लेशो की जडो को यह दृढ बनाये रखता है। छ प्रकार के स्थूल और सूक्ष्म दु खा को यही दृढ बनाता है। इनकी नीव को मजबूत करता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह इसी की उपज है। अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश को यही दृढ करता है। सदा इनका पोषण भी करता रहता है। स्वय जड होते हुए भी चेतन आत्मा से बलवान् बना हुआ है। इसी कारण आत्मा को बान्ध कर रखा हुआ है। यथाच—

'कस्तरति ? कस्तरति मायाम् ? य सङ्गान्स्त्यजति,
यो महानुभाव सेवते, निर्ममो भवति ॥

नारद भक्ति सूत्र। सूत्र ४६ ॥

— सूत्रकार स्वय ही शका उठाकर समाधान करते है। 'कौन माया को, अविद्या को, प्रकृति को, या भव सागर को पार कर सकता है ?

दो बार इस प्रश्न को बल पूवक दोहराया गया है। उत्तर देते हैं—

जो सासारिक प्रवृत्त्यात्मक सर्व प्रकार के सगो को त्याग करता है, और योग वित् आत्म ज्ञानी महानुभाव का सग करता है, उसकी सेवा करता है। जो सब प्रकार की ममता को छोड अहकार रहित होता है, वह भी भवसागर को पार करता है।'

श्रीमद् भगवद् गीता मे भी इस प्रकार कहा है। यथा—

अद्वेष्टा सर्वभूताना, मैत्रकरुण एवच।
निर्ममो निरहकार समदु खसुख क्षमी ॥

अध्याय १२। श्लोक १३।

अहकारबल दर्प, कामक्रोधपरिग्रहम् ।
विमुच्य निर्मम शान्तो, ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥

अध्याय १८। श्लोक ५३।

— जो योगी सर्व प्राणियो के साथ वैर भाव को त्याग कर मित्र भाव से, दया भाव से व्यवहार करता है। सर्व प्रकार की ममता छोड, सब प्रकार के अभिमान अहकार से रहित हो, सुख दु ख को समान समझ, सदा क्षमावान् होता है, अहकार, बल, दर्प, काम क्रोध, परिग्रह, ममता को छोड सदा शान्त रहता है वह ही ब्रह्म को प्राप्त कर सकता है।

इन दोनो श्लोकों मे मुख्य रूप मे अहंकार का ही त्याग बताया है। अतः योगी को चाहिये कि अहंकार के कारण और उस मे व्यापक ब्रह्म का साक्षात् करे।

इस व्यष्टि अहकार के कारण समस्तविश्व मे ठहरे हुए है सर्व प्रथम यह बीज रूप से प्रकृति के गर्भ मे थे। तभी तो यह प्रकृति देवी 'एको ह, वहुस्याम' की भावना को लेकर परिणामोन्मुख हुई और इस श्रुति को भी चरितार्थ किया—

'अजामेकां' लोहित कृष्ण शुक्लां,
बह्वीः प्रजाः सृजमाना स्वरूपाः।'

—उत्पन्न न होने वाली, सदा नित्य अकेली,—लोहित=रजोगुण शुक्ल=सत्व गुण कृष्ण=तमोगुण—इन तीनो गुणो वाली मैं अनेक प्रजाओ को अपने समान रूप मे सृजन करू'' इस भावना वाली' इत्यादि अनेक उद्धरणो से स्पष्ट है कि कारण रूप प्रकृति मे ही यह अहकार मौजूद था। सर्वपदार्थो का उपादान मूल कारण यह प्रकृति देवी अपने कार्यो को साथ मे लेकर पुरुष को भोग और अपवर्ग प्रदान करती है। इस विषय मे साख्य ने कहा है—

'संहत-परार्थत्वात् पुरुपस्य'

साख्य० अ० १। सूत्र ६६।

—प्रकृति अपने सब कार्यो को साथ मे लेकर पुरुष के प्रयोजन को सिद्ध करने के लिये प्रवृत्त होती है। पुरुप का प्रयोजन है भोग और अपवर्ग।' अन्यच्च—

'रूपैः सप्तभिरात्मानं बध्नाति प्रधानं कोशकारवद्विमोचयति एकरूपेण॥

साख्य० अ० ३। सू० ७३।

—प्रधान-प्रकृति अपने सात रूपो से आत्मा को बान्धती है। सात रूप ये हैं+१. धर्म, २ वैराग्य ३. ऐश्वर्य ४ अधर्म ५ अज्ञान ६, अवैराग्य ७. अनैश्वर्य। इन अपने गुणो से आत्मा को बान्धकर रखती है। जैसे रेशम की कीडा कोश से बन्ध जाता है। केवल एक गुण इस मे आत्मा को मुक्त करने का है। वह है तत्व-ज्ञान। इस विषय मे यह सूत्र दिया है—

'विवेकान्नि:शेषदुःख-निवृत्तौकृतकृत्यो नेतरान्नेतरात्।'

साख्य० अ. ३। सू० ८४॥

—विवेक से सम्पूर्ण दु ख की निवृत्ति होती है, और पुरुप कृतकृत्य हो जाता है। इस से भिन्न और कोई उपाय नही है। इससे भिन्न और उपाय नही है।'

अहंकार और उसके कारण ही आत्मा के भोग और अपवर्ग का हेतु है। इस अहकार के अनेक गुण रूप दोष बन्ध के हेतु होते हैं। 'अहमस्मि' के द्वारा आत्मा को स्वरूप का बोध कराना' केवल यही इस मे एक गुण है। जीवात्मा चित्त रूपी दर्पन मे अहम् वृत्ति से जब अपने स्वरूप को प्रतिबिम्बित देखता है, तब ही इसे अहकार विशिष्ट अपने स्वरूप का बोध होता है। यह अस्मिता वृत्ति ही आत्मा के साक्षात्कार का हेतु बन जाती है। अन्यथा आत्मा के पास स्वरूप साक्षात्कार का और कोई साधन नही है। प्रारम्भ मे बन्ध का कारण भी यही हुआ, और अन्त मे भी यही अहकार मोक्ष का कारण हुआ। इस अस्मिता रूप अहकार मे ही आत्म दर्शन की योग्यता है।

(शका) 'निर्माणचित्तान्यस्मिता मात्रात्' योग दर्शन पा० ४। सू० ४। इस सूत्र के आधार पर अस्मिता से चित्तों की उत्पत्ति योगी कर लेता है, परन्तु आप कहते हैं, व्यष्टि चित्त का उपादान कारण समष्टि चित्त मण्डल है ?

(समाधान) साख्य दर्शन कार ने 'प्रकृते महान्, महतो हकार ०' अ० १। सूत्र ६१ ॥ इस सूत्र मे महत् से अहकार की उत्पत्ति कही है। ये बुद्धि और चित्त को एक ही मानते है। इसलिये इनके मत मे अन्त करण तीन ही है। महत् ही इनके मत मे बुद्धि और चित्त भी है। यही महत् अहकार का कारण है।

हमारे विचार मे तो अस्मिता रूप अहकार चित्त का कारण नही है। व्यास भाष्यकार ने इस सूत्र का अर्थ यह किया है—'अस्मिता-मात्रचित्तमुपादायनिर्माणचित्तानि करोति तत सचित्तानि भवन्ति।' इस भाष्य की पक्ति मे चित्त का विशेषण 'अस्मिता मात्रम्' है। यहाँ भी अस्मितामात्र ही चित्त का उपादान कारण गृहीत हुआ है। बालक राम ने भी 'अस्मितामात्रात् का अर्थ अहकार ही किया है। टीकाकारो ने भी अस्मिता =अहकार को ही उपादान कारण माना है। परन्तु हमारे सिद्धान्त मे चित्त का कारण महत्त्व या महत्सत्त्व ही है। अस्मिता मात्र को अभिमान वृत्ति मान कर अर्थ कर लिया जाये तब ठीक है। वास्तव मे जिस का जो कारण है उसी से कार्य की उत्पत्ति होनी चाहिये। कारणाभावात् कार्याभाव। योगसूत्र—'विशेषाविशेष लिङ्गमात्रालिङ्गानिगुण-पर्वाणि। (पाद० २। सूत्र० १६) मे भी १६ विशेष कार्य माने हैं। और ६ अविशेष कार्य माने हैं। यहाँ भी ६ अविशेषो मे अहकार महत्त्व का कार्य है। और साख्य ने भी 'महतो ऽहकार' कहा है। व्यास भाष्यकार ने शका उठाते हुए कहा है, 'यदा तु योगी बहून कायान् निर्मिमिते तदा किमेकमनस्कास्ते भवन्ति अथानेकमनस्का इति।'—जो योगी योग बल से बहुत शरीरो का निर्माण करता है, तब वे शरीर एक मन वाले होते है या अनेक मनवाले।' यहाँ शका मन के विषय मे ही है। तब सूत्र मे जो चित्त पाठ है इस चित्त का अर्थ मन ही करना चाहिये। तब कोई भी शका नही हो सकती है। मन का उपादान कारण तो है ही अहकार। परन्तु चित्त शब्द के विषय मे किसी ने भी शका नही उठाई है। अत हमारे विचार मे चित्त शब्द का अर्थ मन ही करना चाहिये। क्योकि साख्य और योग के भाष्यकारो ने अनेक स्थानो मे चित्त बुद्धि का अर्थ मन ही किया है, अर्थात् अस्मिता रूप वृत्ति से मन का निर्माण करता है। अत यहाँ चित्त का अर्थ मन ही ग्रहण करना चाहिये। तब सूत्र की सगति ठीक बैठ जाती है। और कोई भी शका उपस्थित नहीं होती है।

इति व्यष्टि अहंकार प्रकरणम।

इति द्वितीयाध्याये षोडश खण्ड।

इति त्रयोदशमावरणम्।

द्वितीयो ऽध्याय समाप्त ॥

तृतीय अध्याय

समष्टि महत् त्रिगुणात्मक सृष्टि

योगिन् ! द्वितीय अध्याय मे व्याख्यात अहकारिक सृष्टि के समष्टि मण्डलो का साक्षात्कार कर लिया है, और जिसके सन्निधान से यह परिणाम चक्र चलायमान है उस पर ब्रह्म की भी परदो मे से झाकी ले ली है। अन्य आवरणो के व्यवधान को भी हटाने के लिये अब समष्टि त्रिगुणात्मक सृष्टि मे भी प्रवेश कीजिये।

समष्टि महत्सत्त्व, समष्टि महत् रजस् और समष्टि महत्तमस् के समष्टि मण्डलो के आनुपातिक सम्मिश्रण से यह समष्टि त्रिगुणात्मक सृष्टि हुई है। सृष्टि क्रमानुसार इस का क्रम इस प्रकार है—

१ समष्टि चित्त मण्डल २ समष्टि बुद्धि मण्डल ३ समष्टि सात्त्विकाहकार मण्डल ४ समष्टि राजसाहकार मण्डल ५ समष्टि तामसाहकार मण्डल। स्थूल से सूक्ष्म की ओर चलने के कारण पहले ५ वें समष्टि तामसाहकार मडण्ल आदि के क्रम से व्याख्यान किया जायेगा। इन पाचो का उपादान कारण समष्टि महत् तीनो गुण हैं। इस लिये यह समष्टि महत् त्रिगुणात्मक सृष्टि कहलाती है।

५ ४ ३ सख्या वाले समष्टि तीना अहकार मण्डल हैं। इन तीना के आनुपातिक त्रयी-करण से दूसरे अध्याय में वर्णित १६ समष्टि मण्डलो की उत्पत्ति हुई है, और १७ वे व्यष्टि अहकारो की भी इन्ही से उत्पत्ति हुई है। अब इस तीसरे अध्याय मे इन तीनो अहकारो का सुस्पष्ट वर्णन होगा, जो इनके गुण, धर्म, कार्य, भोग और अपवर्ग की निमित्तता दर्शायेगा। इसी प्रकार समष्टि बुद्धि मण्डल और समष्टि चित्त मण्डल का भी ऊहापोह किया जायेगा। इन पाचो के पाचा रूपो का भी दिग्दर्शन कराया जायेगा। इन पच्चीसो अवस्थाओ को हृदयगम कराते हुए इन सबके निमित्त, सन्निधान मात्र से प्रेरक सर्वव्यापक परब्रह्म का भी साथ-साथ साक्षात्कार कराया जायेगा। अब आप ब्रह्म विज्ञान के उपोत्तम चरण मे पहुच गये है। यह सब अदृष्टचर अननुभूतपूर्व अपूर्व दर्शन तो मिलेगा ही पर इसको स्थिर रखने के लिये अपने परमप्रिय अभ्हस्तचर पर वैराग्य को दृढतम करना होगा। कही तनिक सी चञ्चलता से सब किये कराये पर पानी न फिर जाये। अब आप शिखर के समीप ही हैं, सावधानी से परवैराग्य को अपनाये रहिये।

समष्टि महत् त्रिगुणात्मक सृष्टि

त्रयीकरणम्

	महत्सत्त्व	महत्रजस्	महत्तमस्	
१ समष्टि चित्त—	१८	११	१	=३०
२ समष्टि बुद्धि—	१४	१५	१	=३०
३ समष्टि सत्त्वाहकार—	८	९	१३	=३०
४ समष्टि राजसाहकार—	६	१०	१४	=३०
५ समष्टि तामसाहकार—	५	७	१८	=३०

महत् तीना गुणो के इस आनुपातिक भेद से पाचो त्रिगुणात्मक परिणामो मे मे भेद हो गया है। यह समष्टि ही अपने व्यष्टिया के कारण हैं। अब क्रमश इन के पाचो रूपो का अध्ययन कर पाचो मे ही ब्रह्मानुभूति कीजिये।

समष्टि महत् त्रिगुणात्मक सृष्टि

प्रथम खण्ड

१२वाँ आवरण

समष्टि तामस् अहंकार मण्डल

प्रथम रूप मे ब्रह्म विज्ञान

(तामस अहकार का प्रथम रूप)

१ समष्टि तामस् अहकार के स्थूल रूप मे—

समष्टि तामस अहकार की उत्पत्ति उपरि काष्टक निर्दिष्ट अनुपात से महत् तीनो गुणो से हुई है। यहा प्रकरण समष्टि पदार्थो का है, अत प्रत्येक पदार्थ यहाँ समष्टि रूप वाला ही दिखाया गया है। अत प्रत्येक पदाथ के साथ समष्टि का प्रयोग समझ लेना चाहिए। यह समष्टि तम अहकार अपने गुणो को साथ लेकर ही उत्पन्न होता है, और अपने सब कार्यो को अपने गुणविभक्त कर देता है। इसके कार्य हैं, पञ्चतन्मात्राय, जो तम प्रधान होने से सर्वथा ही जडवत् सी बन गयी हैं। यह तम प्रधान अहकार यहाँ से आगे की सूक्ष्म और स्थूल भूतो की सृष्टि का हेतु बन गया है। इसका ही प्रसार आगे होगा। इसके साथ महाकाश, महाकाल, महादिशा भी सहकारी होंगे। ये तीना प्रकृति के सर्वप्रथम कार्य है। सब पदार्थो के साथ परिणत होते आ रहे है। अब यह आगे स्थूल भाव को प्राप्त हो जायेंगे।

तम अहकार के गुण—जडतामय अहभाव, शरीर मे ममता का होना, तामसिक वृत्तियो के प्रति अहन्ता भाव का होना, मोह अज्ञान मे अधिक ममता भाव का बन जाना। क्रूर कर्मो म अभिमान का होना, हिंसा, व्यभिचार, चोरी आदि म पापकर्मो मे अहन्ता का भाव। दु ख रूप मे भी सुख रूप का अभिमान होना इत्यादि तम प्रधान अहकार के गुण हैं। यह गुण समष्टि मे अव्यक्त है, व्यष्टि अहकार म इन की अभिव्यक्ति होती है।

यह अहकार ही बन्ध और मोक्ष का हेतु है। इसका बना रहना बन्ध का हेतु होता है और इस की निवृत्ति मोक्ष का हेतु बन जाती है। यह भोग और आवागमन की जडो का दृढ करता है। बुद्धि और चित्त पर अपना आवरण डाले रहता है। ज्ञान वैराग्य को दबाये रखता है। जडता को दृढ करता है। पापयुक्त कर्मो की वृद्धि करता है। इसकी प्रधानता से श्रेय कर्मो मे प्रवृत्ति नही होती है। भोग और अधम की मात्रा को बढाता है। तमोगुणी पुरुषो मे इसका विशेष रूप से राज्य रहता है। वैराग्य वान् और ज्ञानिया के चित्तो मे इसको स्थान नही मिलता है। मूढो मे इसका वास रहता है।

इस तमः अहंकार के मण्डल में और इसके परिणत होते हुए गुणों में ब्रह्म की चेतनत्वेन प्रत्यक्ष रूप से अनुभूति होनी चाहिये। इस ब्रह्म के स्वरूप मे और अह के स्वरूप मे क्या अन्तर है—ब्रह्म के एक रूप से स्थिर बने रहने पर भी यह किस प्रकार परिणाम भाव को प्राप्त होकर अपने गुणों को उत्पन्न करता है, इन दोनों का ध्यान की अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से यथार्थ रूप में विज्ञान प्राप्त करें। इस अहंकार को बन्ध का हेतु जानकर इससे वैराग्य प्राप्त करे।

समष्टि तामस् अहंकार मण्डल
द्वितीय रूप में ब्रह्म-विज्ञान
(तामस् अहंकार का द्वितीय रूप)

२. समष्टि-तामस् अहंकार के स्वरूप में—

समष्टि तमः अहंकार और इसके गुणों का स्वरूप सम्बन्ध है। ये गुण इसके स्वरूप से अलग नही होते हैं। इसमें उत्पन्न होकर, इसी के आश्रय रहते हुए भोग प्रदान करते है। अतः इनका परस्पर गुण गुणी भाव सम्बन्ध है। यही सम्वाय सम्बन्ध भी है।

इस गुण गुणी के सम्बन्ध मे ब्रह्म भी सूक्ष्म रूप से वर्तमान होकर ठहरा हूआ है परन्तु यह अहकार जड होने से इसे नही जानता है। यह ब्रह्म ही अन्तर्यामी रूप से इसे गति करा रहा है। इसे क्रिया शील किये हुए है, यही इस ब्रह्म की महत्ता है, इसका ही इस द्वितीय रूप में प्रत्यक्ष करना है। साथ ही वैराग्य की भावना को परिपक्व करना है, जिससे यह अहंकार बन्ध का हेतु न बनकर मोक्ष का ही साधक सिद्ध हो।

समष्टि तामस् अहंकार मण्डल
तृतीय रूप में ब्रह्म-विज्ञान
(तामस् अहकार का तृतीय रूप)

३. समष्टि तामस् अहंकार के सूक्ष्म रूप में—

महत्सत्त्व, महत् रजस् और महत्तमस् द्रव्य इस अहकार का कारण होने से सामान्य हैं, और अहंकार विशेष है, अतएव सामान्य विशेष का समुदाय ही आयुत सिद्ध द्रव्य समष्टि तामस अहकार है। इस कारण मे ही कार्य की सूक्ष्मता है। इस कारण और कार्य में ब्रह्म भी स्थित है। इस चेतना से प्रेरित होकर यह कारण अपने कार्य को किस प्रकार उत्पन्न करता है, और परिणाम काल मे स्वगुणों का प्रादुर्भाव भी किस प्रकार और कैसे करता है, इत्यादि प्रत्येक परिणत होती हुई अवस्था मे ब्रह्म की प्रतीति होनी चाहिये। ब्रह्म से व्याप्त इस अहंकार के स्वरूप को समझ कर इसका त्याग और इससे वैराग्य प्राप्त करना चाहिये। जब तक योगी इस अभिमान का त्याग नही करता है, तब तक कर्तापन की भावना बनी ही रहती है। भगवद्गीता इस के कर्तापन की पुष्टि इस प्रकार करती है—

'अहंकार-विमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते।'

गीता० अ० ३। श्लोक २७॥

—अहंकार के द्वारा मूढता को प्राप्त होकर कर्तापन की भावना पुरुष अपने अन्दर कर बैठता है। निष्क्रिय होते हुए भी क्रियावान् बन जाता है।'

इसलिये यह अहकार ही इस के बन्धन का हेतु बन जाता है। तथा च उपनिषद्—

"अक्षुब्धा निरहंकारा, द्वन्द्वेष्वननुपातिनी।
प्रोक्ता समाधिशब्देन, मेरो स्थिरतरा स्थिति ॥
अन्नपूर्णोपनिषत् अ० १। म० ४६॥

—जब मुमुक्षु योगी इस अहकार का परित्याग कर देता है, तब चित्त के सब प्रकार के क्षोभ शान्त हो जाते हैं। सब क्षोभो का कारण चित्त मे यह अहकार ही बना हुआ था, यही सस्कारो को कुरेद कुरेद कर जाग्रन करता रहता था। इसके शान्त हो जाने पर सर्व द्वन्द्वो को शान्त करने वाली समाधि की प्राप्ति होती है। जिसमे किसी भी प्रकार के द्वन्द्व भाव—भूख, प्यास, सरदी, गरमी आदि दुखो की उपज नही होती है। इस प्रकार की शान्त निर्विकल्प-समाधि होती है। जैसे सुमेरु पर्वत अडोल, निश्चेष्ट निष्क्रिय होकर ठहरा हुआ है, इस प्रकार शरीर इन्द्रिय और अन्त करण निश्चेष्ट हो कर स्थिर हो जाते हैं।'

अत योगी को इस समाधि की स्थिति मे ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है। इस समय सर्व प्रकार के हेय और उपादेय आदि कर्तव्य परि-समाप्त हो जाते हैं। पूर्णरूप से मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। सर्व दृश्य और दर्शन समाप्त हो जाते हैं। वासनायें अपने कारण समष्टि चित्त के गर्भ मे प्रवेश करने के लिये दौडने लगती हैं। परम वैराग्य से आत्मा की मोक्ष मे स्थिरता हो जाती है।

समष्टि तामस् अहकार मण्डल
चतुर्थ रूप में ब्रह्म-विज्ञान
(तामस् अहकार का चतुर्थ रूप)

४ समष्टि तामस् अहंकार के अन्वय रूप मे—

इस तम प्रधान समष्टि अहकार मण्डल मे परार्थरूपा प्रकृति अपने ज्ञान क्रिया रूप गुणो को साथ लेकर सब पदार्थो मे अनुगत होती हुई आकर अनुपतित हुई है। प्रकृति का परिणाम महत्तम, महत्तम का परिणाम समष्टि तामस् अहकार मण्डल और इस समष्टि का परिणाम व्यष्टि अहकार है। इस प्रकार प्रकृति की परम्परा मे यह तीसरी पक्ति मे है। यह इस मण्डल की चौथी अन्वय रूप अवस्था है। इस अहकार की अन्वय रूप अवस्था के साक्षात्कार क्षण मे इस अवस्था के निमित्त कारण भगवान् का भी साक्षात् करना चाहिये। परवैराग्य की भावना को दृढ करना चाहिये जो प्रकृति पुरुष विवेक का प्रधान निमित्त है और मोक्ष का हेतु है। केवल वैराग्य या केवल विवेक से मोक्ष असभव है। यह दो पहियो की गाडी है, दोना पहिये होगे तो मोक्ष की ओर बढेगी। अन्यथा वही मध्य मे ही ठप होकर सड जायेगी। इस लोक को भी बिगाडेगी परलोक तो हाथ से गया ही। अत सावधानी के साथ दोनो का सन्तुलन कर ले चलिये। कहीं अज्ञान मे फस अविवेक से ही वैराग्य मत ले बैठना, फिर तो वैराग्य तामस् तप रह जायेगा। जो दुःख ही दुःख देने वाला होगा। यह दुधारी अत्यन्त सावधानी से उठानी होगी। तनिक सी असावधानी से अपने पर ही वार कर जाती है।

समष्टि तामस् अहंकार मण्डल

पञ्चम रूप मे ब्रह्म-विज्ञान

(तामस् अहकार का पञ्चम रूप)

५ समष्टि तामस् अहकार के अर्थवत्तव रूप मे—

यह तम प्रधान अहकार पच तन्मात्राओ को उत्पन्न करके ससार का महान् उपकार करता है। यह इन तन्मात्राओ मे अनेक रूप से प्रकट हुआ है। इसी के अभिमान से मदमस्त हुई समस्त भोग योनियाँ इसी के द्वारा कर्म-भोग भोगती हैं। यह अपने प्रभाव से इन सब की बुद्धियो को जड बनाये रखता है। सब भोग योनियो की बुद्धि पर इसी का शासन बना रहता है। इन्द्रियो के भोग के सिवाये इन योनियो को और कुछ पता ही नही होता है। जब तक यह प्रधान बना रहता है तब तक भोग योनियो का जन्म मरण होता ही रहता है इसकी प्रधानता के रहते भोग योनियो का आवागमन कभी समाप्त नही होता है। यह भोग और कर्म का पोषण करता है। मूढता को दृढ करता है। सत्त्व और रज को दबाये रखता है। उभरने ही नही देता है।

मोक्ष के जिज्ञासु को सावधान होकर इस तामस अहकार पर विजय प्राप्त करनी चाहिये। इसके स्वरूप को समझकर इसको दमन करना चाहिये। एकान्त शान्त स्थान मे रहकर इस अहकार की गति विधि को देखते हुए मौन रहकर इसको दमन करने का प्रयत्न करता रहे। सब पदार्थों और उनकी भावनाओ से भी ममता रहित होकर इस तम की जडता को दूर करके सात्विक भावनाओ का उदय करे क्योकि सात्विक भावनाय भी सात्विक अहकार को उत्पन्न करती हैं जो अहमस्मि का बोधक होता है। वास्तव मे अहमस्मि वृत्ति भी पन स्मृति वृत्ति को उत्पन्न करती है। जो कि रागात्मक ही होती है। इससे सिद्ध होता है कि राग अत्यन्त ही सूक्ष्म है जो कि पुन पुन अहमस्मि द्वारा स्वस्वरूप का बोध कराता है, और स्मृति वृत्ति को बनाये रखता है। अत अहकार का अभाव या नाश ही राग और स्मृति का अभाव कर सकता है। अहकार अत्यन्त ही दुर्गम दुस्तर है। इस मे ब्रह्म का आरोप करके ब्रह्म को उपासना और ज्ञान का विषय बनाकर ब्रह्म के स्वरूप को समझने और उसको साक्षात्कार करने का प्रयत्न करे। ब्रह्म की सूक्ष्मता सब पदार्थों की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म है। इसका विज्ञान प्राप्त करना ही यहाँ मुख्य ध्येय है।

इस प्रकार प्रकृति पुरुष के विवेक के अनन्तर ही परम पुनीत दुर्लभ वैराग्य की आधार शिला पर आरूढ होकर ही योगी मोक्ष को प्राप्त होता है। अत पर वैराग्य को प्रतिक्षण दृढ बनाये रखे।

इति समष्टि तामस् अहंकार मण्डलम्।

इति तृतीयाध्याये प्रथम खण्ड।

इति द्वादशम् आवरणम्॥

समष्टि महत् त्रिगुणात्मक सृष्टि

द्वितीय खण्ड

११ वाँ आवरण

समष्टि राजस् अहंकार मण्डल

प्रथम रूप मे ब्रह्म-विज्ञान

(राजस् अहकार का प्रथम रूप)

१. समष्टि राजस् अहंकार के स्थूल रूप मे—

समष्टि राजस् अहकार मण्डल जव मिलकर व्यष्टि भाव को प्राप्त होता है, तव इस मण्डल के निम्न गुणो का प्रकाश रूप सामने आता है—

रजोगुण अहकार के धर्म—अभिमान, मेरे पन की भावना, धन वल, जन वल, राज्य वल, विद्या बल का अभिमान, कर्म करने मे अभिमान, शत्रु को दमन करने, कुचल देने, प्रतिकार लेने की अभिमान पूर्वक भावना, इत्यादि अमर्ष सूचक अनेक धर्म हैं। यह धर्म यहाँ अव्यक्त रहते हैं। व्यष्टि अहकार मे यह व्यक्त होते हैं। व्यवहार दशा मे व्यष्टि ही आता है।

यह राजस अहकार रजोगुण प्रधान होता है। यह मुख्य रूप से कर्मेन्द्रियो का उपादान कारण है। यह कर्म और भोग की जडो को मजवूत वनाता है। जव यह महत्तम तत्त्व से उत्पन्न होना है तो अपने रजोगुणात्मक धर्मों के साथ ही परिणत होता हुआ उत्पन्न होता है। यह सत्त्व प्रधान और तम प्रधान अहकार का सहकारी वनकर पदार्थो के निर्माण मे सहायक होता है। और कर्मेन्द्रियो के प्रति मुख्य रूप से उपादान कारण वनता है।

इस रज अहकार के अन्दर ब्रह्म की खोज करनी चाहिये। ब्रह्म का इसके साथ किस प्रकार से सम्वन्ध है, किस प्रकार यह इसे क्रियाशील अथवा क्षोभयुक्त करता है, इस अहकार के परिणामकाल मे ब्रह्म मे भी कोई परिवर्तन होता है या नही? इस अहकार के विशेष क्षोभकाल मे वाह्य पदार्थ मुख्य कारण होते है, अथवा ब्राह्मी चेतना ही इन क्षोभो का कारण होती है। इस अहकार के विशेष परिवर्तन मे ब्रह्म की स्थिति किस प्रकार रहती है? इस अहकार की गति मे उपादान कारण मुख्य हेतु होता है या कि निमित्त कारण? ब्रह्म साक्षात् रूप से उपादान मे क्रिया का हेतु है या कि कार्य मे? इत्यादि विज्ञान को तर्क वितर्क पूर्वक निश्चय करते हुए इस राजस अहकार और ब्रह्म के स्वरूप का यथार्थ रूप से ऋतभरा वुद्धि द्वारा साक्षात् करें। विवेचन से विवेक की धारा को निर्मल करे। उस विवेक द्वारा प्रकृति के व्यामोहरू वन्धनो की निस्सारता को हृदयगम कर पर वैराग्य को दृढ कर मोक्ष के पथिक वनें। वैराग्य और विवेक ही मोक्ष तक ले जायेंगे।

समष्टि राजस् अहंकार मण्डल
द्वितीय रूप मे ब्रह्म-विज्ञान
(राजस् अहकार का द्वितीय रूप)

२. समष्टि राजस् अहंकार के स्वरूप में—

समष्टि राजस् अहंकार मण्डल का अपने गुणो के साथ अभिन्न रूप से स्वरूप सवन्ध है। वास्तव में ये धर्म इस अहकार रूपी धर्मी को परिवर्तन होती हुई ही अवस्थायें हैं। अतः इनको पृथक् रूप नही दिया जा सकता जैसे एक मनुष्य शरीर को शिशु, किशोर, युवा, वृद्धा परिवर्तन होती हुई अवस्थायें ही हैं, इन्हे पृथक्-पृथक् नही किया जा सकता, नहीं पृथक् रूप दिया जा सकता है। यह तो अवस्थाओं में परिवर्तन होना है। यह धर्मी का धर्मों के रूप में परिणाम है। इसलिये इस अवस्थारूप परिणाम को स्वरूप सम्बन्ध के नाम से प्रतिपादन किया गया है।

इस समष्टि राजस अहंकार के स्वरूप में अर्थात् इसके परिवर्तन होते हुए धर्मो में इनके ज्ञान के साथ-साथ ब्रह्म का विज्ञान भी होना चाहिये। इसी हेतु से पदार्थो का विश्लेषण भी किया गया है। और अवस्थाओ का भेद दिखाया गया है कि इन पदार्थों के बोध के साथ ब्रह्म का बोध भी होता जाये, क्योकि ब्रह्म-विज्ञान मे वास्तव मे यह पदार्थ ही निमित्त बनते हैं। वरना इनके बिना ब्रह्म-विज्ञान ही प्राप्त होना असम्भव हो जाये। निराधार ब्रह्म का कोई आधार मान कर ही विज्ञान का विषय बनाया जा सकता है, तब ही प्रत्यक्ष ज्ञान का विषय ब्रह्म बनता है।

समष्टि राजस् अहंकार मण्डल
तृतीय रूप में ब्रह्म-विज्ञान
(राजस् अहंकार का तृतीय रूप)

३. समष्टि राजस् अहंकार के सूक्ष्म रूप में—

समष्टि राजस अहंकार मण्डल का कारण महत्सत्त्व, महन्रजम् और महत्तमन् का पूर्व प्रदर्शित आनुपातिक मिश्रण है। ये ही इस के सूक्ष्म रूप हैं। ये तीनों ही सामान्य और समष्टि राजस अहंकार मण्डल यहां विशेष है और इसकी अपेक्षा व्यष्टि अहकार विशेष है अत एव सामान्य विशेष का समुदाय ही यहां अयुतसिद्ध द्रव्य है। द्रव्य का अर्थ यहां पदार्थ समझना चाहिये, क्योंकि पदार्थ ही द्रव्य है।

इस की और सूक्ष्म कारण की अवस्था मे भी ब्रह्म का प्रत्यक्ष करें। हमने ब्रह्म को सर्व पदार्थों में सर्वत्र ही वर्तमान हुए को असङ्ग ही स्वीकार किया है। जो कुछ परिणाम माने गये है, वे प्रकृति मे ही इस ब्रह्म के सामीप्य या सन्निधान से ही माने गये हैं। इस सान्निध्य से ब्रह्म में भी अनेक स्थानो पर इस प्रकृति के कर्मो और गुणों का आरोप किया गया है। यह केवल पाठकों को समझाने के लिये किया गया है। साधकों के लिये भी उपाधि रूप से उल्लेख किया है। अन्यथा हमारे विचार मे तो ब्रह्म सदा सर्वत्र निर्गुण ही था, है, और रहेगा। यह स्वयं असङ्ग है। परन्तु इसके सङ्ग से ही प्रकृति में ही सर्व कार्य-व्यवहार, बन्ध मोक्ष आदि धर्म उत्पन्न होते हैं। यही प्रकृति के

धर्म जीवात्मा मे भी आरोपित कर दिये है। इन आरोपो के कारण ही आत्मा का बन्ध और मोक्ष मान लिया गया है। क्योकि वह एक देशी है, और इस के साथ अनादि काल से सम्बद्ध है। अन्यथा हम तो आत्मा को असग ही मानते हैं।

समष्टि राजस अहंकार मण्डल
चतुर्थ रूप में ब्रह्म-विज्ञान
(राजस् अहकार का चतुर्थ रूप)

४ समष्टि राजस् अहंकार के अन्वय रूप मे—

इस समष्टि राजस अहकार मण्डल का अन्वय परिणाम प्रकृति मे ही होता है। यह प्रकृति अपने वास्तविक ज्ञान और क्रिया गुणो को लेकर परिणत होती हुई सर्वत्र कार्यात्मक पदार्थो मे अन्वयी रूप से वर्त्तमान रहती है। प्रकृति से महत्तम और महत्तम से यह समष्टि राजस अहकार मण्डल परिणत हुआ और इस समष्टि के गुणो को लेकर इस से व्यष्टि अहकार उत्पन्न हुआ सब देहो मे वर्तमान है। इस प्रकार यह प्रकृति से तीसरा अन्वय-चरण हुआ। यही इस अहकार का अन्वय है।

इस अन्वय अवस्था मे भी इस के प्रत्यक्ष के साथ-साथ ब्रह्म का भी प्रत्यक्ष करें। दोनो के ही स्वरूप का साक्षात् करे। अहकार और ब्रह्म का साक्षात् विभिन्न रूप से विवेचन हो जाने पर आप को कर्म मे आबद्ध न कर सकेगा। इस राजस अहकार की कर्म-कार्य शीलता को ही आत्मा अपनी कार्य-कुशलता मान असङ्ग होते हुए भी आवद्ध हो बैठता है। इस प्रकृति पुरुष के तथ्यात्मक विवेचन से ही अन्धतामिस्र का परदा फटता है। इस साक्षात् विवेकज ज्ञान से अनासक्ति रूप पर, वैराग्य की जडे दृढ होगा, इस पर वैराग्य के सुन्दर पुष्पक विमान पर आरूढ हो आप मोक्ष के अधिकारी वन मोक्ष की ओर अग्रसर होगे। अत. इस अभ्यास के साथ-साथ परवैराग्य साधना को परिपक्व करते चलिये। अभ्यास की अपेक्षा वैराग्य साधना जटिल, है। कष्ट साध्य है। ससार रोग के नाश के लिये यह कटु औषधि सेवन करनी ही होगी। यह भी पहले पहल ही कडवी लगती है, फिर तो इसका स्वाद स्वत. ही आकृष्ट करता चला जायेगा। इस के बार-बार आस्वादन से ससार के सब स्वाद इसके आगे फीके पड जाते हैं। जब वैराग्य का स्वाद अपना स्वाद हो जायेगा तो विवेक भी साथ-साथ चला जायेगा। इस लिये योगिवृन्द विवेक और वैराग्य के जोडे को बनाये रखो।

समष्टि राजस् अहंकार मण्डल
पञ्चम रूप मे ब्रह्म-विज्ञान
(राजस् अहकार का पञ्चम रूप)

५. समष्टि राजस् अहंकार के अर्थवत्त्व-रूप में—

समष्टि राजस् अहकार कार्य और कारण रूप से भोग और अपवर्ग का हेतु होता है। यह अपने गुणो के रूप मे परिवर्तित होकर भी भोग का हेतु होता है। कार्य रूप मे उत्पन्न हो कर या परिणाम भाव को प्राप्त हो कर कर्मेन्द्रिय की उत्पत्ति या हेतु होता है। अथवा सत्त्व अहकार और तम. प्रधान अहकार के साथ मिल कर भी पदार्थो की उत्पत्ति मे सहकारी होकर भोग और मोक्ष मे सहायक होता है। राज्य कार्यो मे,

लोक व्यवहार मे सर्वत्र इसकी ही प्रधानता होती है। इस के प्रभाव मे आकर मनुष्य अनेक प्रकार से लोक सग्रह करता है। इसी के प्रभाव मे आकर तो वडे वीर योद्धा रणभूमि मे मातृ-भूमि पर बलिदान हो जाते हैं। इसी अहकार को उद्बुद्ध करके ही तो भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को महाभारत सग्राम का वीर विजेता बनाया था। 'रणा दुपरत त्वा मस्यन्ते महारथा'—महारथी तुझे रण से भागा हुआ कहेंगे ऐसी बातें सुना सुना कर अर्जुन के अहकार को जगाया था। जब अर्जुन का अहकार जाग उठा तो 'करिष्येवचन तव'—तुम्हारी बात मानू गा कह कर अर्जुन गाण्डीव सभाल कर खडा ही तो हो गया। ऐसा है यह राजस् अहकार।

लोक व्यवहार मे मानव इसके द्वारा अपने बन्धना को दृढ कर लेता है। बेटा-बेटी, पोता-पोती, धन वैभव, शान-शौकत के मोह मे पड कर अहकार के बन्धनो को अत्यन्त दृढ कर लेता है। ये बन्ध सभवत कभी भी मोक्ष के समीप न पहुँचने देंगे। यदि मानव मननशीलता से इसमे छुटकारा पा जाये तो इसकी निवृत्ति मोक्ष का साधन बन जाती है। अत इसकी अर्थवत्ता मे भी सर्वत्र ब्रह्म का अनुसन्धान करके प्रत्यक्ष करना चाहिये। विवेकज वैराग्य से अपने मोक्ष की ओर अग्रसर होना चाहिये।

इति समष्टि राजस् अहकार मण्डलम्

इति तृतीयाध्ये द्वितीय खण्ड ।

इत्येकादशमावरणम् ॥

महत् त्रिगुणात्मक सृष्टि

तृतीय खण्ड

१०वाँ आवरण

समष्टि सात्त्विक अहंकार मण्डल

प्रथम रूप मे ब्रह्म विज्ञान

(सात्त्विक अहकार का प्रथम रूप)

१ समष्टि सात्त्विक अह कार के स्थूल रूप मे—

समष्टि सात्त्विक अहकार मण्डल का उपादान कारण तीनो महत् सत्त्व, महत् रजस् एव महत् तमस् द्रव्य है, परन्तु मुख्य रूप से महत्तम है, शेष दोनो सहकारी हैं। समष्टि-सात्त्विक अहकार के सम्मिश्रण से जब व्यष्टि अहकार की उत्पत्ति होती है, तब उसके गुणो का आविर्भाव इस प्रकार से होता है।

सत्त्व अहकार के गुण—अनुद्भूतरूप प्रकाश, अभिमान, आदान, प्रदान, आत्मा मे 'अहमस्मि'—मैं हूँ—के बोध मे अहवृत्ति को पैदा करना, या 'अहमस्मि' के बोध का हेतु बनना। चित्त म सात्त्विक भावनाओ को पैदा करना। आत्मा के मुक्त होने मे सहायक होना। चित्त के शुद्ध स्वरूप होने मे सहायक होना। चित्त मे सात्त्विकता उत्पन्न करने मे सहायक होना। चित्त के सात्त्विक सस्कारो को क्रियान्वित करके बुद्धि मे प्रक्षेपण करना। चित्त के सात्त्विक सस्कारो को उत्तेजित करके अपवर्ग की ओर ले जाना, या बुद्धि मे प्रेषित कर देना, इत्यादि अनेक गुण इस सत्त्व अहकार के हैं। समष्टि मे ये सब गुण अव्यक्त दशा मे होते हैं। इसके ये गुण इस उत्पन्न व्यष्टि मे व्यवहार दशा मे व्यक्त होते है।

इस अहकार की परिणत होती हुई अवस्था के रूप मे सविचार और निर्विचार समाधि द्वारा इसका साक्षात्कार करना चाहिये, कि किस प्रकार यह गुणो के रूप मे परिणाम भाव को प्राप्त हो रही है। किस प्रकार से इसमे गुणो का प्रादुर्भाव हो रहा है। एक-एक गुण के क्रमपूर्वक प्रकट होने मे इस अहकार की कैसी अवस्था होती है। इससे पूर्व के स्वरूप मे और इस स्वरूप मे क्या अन्तर हुआ है। इसके पहले स्वरूप और इस स्वरूप के कर्म और व्यापार मे क्या भेद या क्या परिवर्त्तन होगा। इन सब विज्ञानों का अनुभव होना चाहिये।

इन सब विज्ञानों की परिवर्तन होती हुई अवस्था मे साथ साथ मे चेतन ब्रह्म की भी अनुभूति होनी चाहिये। अनुभव करना चाहिये कि किस प्रकार इस चेतना शक्ति के व्यापक रूप से परिणाम धर्म मे क्रिया हो रही है। यह चेतना इसमे विकार करके भी स्वय निर्विकार रूप मे, निष्क्रिय हो असग रूप से वर्त्तमान है। योगिन्! इसी प्रकार आप भी असग हो मोक्ष के साधन वैराग्य को दृढतम कीजिये।

समष्टि सत्त्व अहंकार मण्डल
द्वितीय रूप में ब्रह्म-विज्ञान
(सत्त्व अहंकार का द्वितीय रूप)

२. समष्टि सत्त्व अहंकार के स्वरूप में—

सत्त्व अहंकार और इसके गुण जो ऊपर वर्णन किये गये हैं, इन का अङ्गाङ्गी रूप में या धर्म-धर्मी के रूप में परस्पर अभेद है। इसी को स्वरूप सम्बन्ध कहते हैं। इस स्वरूप सम्बन्ध में ब्रह्म की भावना करके ब्रह्म का विज्ञान प्राप्त करना चाहिये। इस स्वरूप सम्बन्ध की दोनों अवस्थाओं में अर्थात् गुण-गुणी में ब्रह्म की अनुभूति होनी चाहिये। साथ ही मोक्ष के साधक विवेकज वैराग्य की पुट परिपक्व होना चाहिये।

समष्टि सत्त्व अहंकार मण्डल
तृतीय रूप में ब्रह्म-विज्ञान
(सत्त्व अहंकार का तृतीय रूप)

३. समष्टि सत्त्व अहंकार के सूक्ष्म रूप में—

समष्टि सत्त्व अहंकार के उपादान कारण तीनों महत् सत्त्व, महत् रजः और महत्तम द्रव्य हैं। इनमें महत्तम प्रधान है, शेष दोनों सहकारी है। अत एव इस सत्त्व अहंकार की सूक्ष्म अवस्था इन गुणों में ही होती है। यहाँ इनका कारण कार्य भाव सम्बन्ध होने से ही सूक्ष्म अवस्था सिद्ध होती है। इन दोनों का समुदाय ही यहाँ अयुत-सिद्ध द्रव्य होता है।

इस कारण और कार्य की सूक्ष्म अवस्था में इनका विज्ञान करना चाहिये। इन की दोनों अवस्थाओं के सूक्ष्म रूप में भी ब्रह्म के दर्शन करने चाहियें क्योंकि ब्रह्म का और इनका अत्यन्त समीपवर्त्ती सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध को प्रत्यक्ष रूप में अनुभूति होनी चाहिये। विवेकज पर वैराग्य की दृढ धारणा से मोक्ष के पन्था को प्रशस्त करना है।

समष्टि सत्त्व अहंकार मण्डल
चतुर्थ रूप में ब्रह्म-विज्ञान
(सत्त्व अहंकार का चतुर्थ रूप)

४. समष्टि सत्त्व अहंकार के अन्वय रूप में—

इस सत्त्व अहंकार का अन्वय कारण रूप प्रकृति में होता है। कारण रूप प्रकृति अपने गुणों सहित परिणाम भाव को प्राप्त होती हुई, सब कार्यों में अनुपतित होती हुई अन्वय रूप से अहंकार में आई है। स्थिति वाली और ज्ञान क्रिया धर्म वाली मूल प्रकृति से महत्तम परिणत हुआ। महत्तम से यह समष्टि सत्त्व अहंकार परिणत हुआ। समष्टि से समष्टि के गुण धर्मों को लेकर प्रत्येक देहवर्त्ती व्यष्टि अहंकार उत्पन्न हुआ। इस प्रकार यह अहंकार प्रकृति की तीसरी परम्परा है। यही इसका अन्वय है। यही अन्वय रूप है।

इस अनुपतन होती हुई अन्वय रूप अवस्था में भी ब्रह्म का साक्षात्कार करना चाहिये क्योंकि ब्रह्म का सम्बन्ध प्रत्येक पदार्थ की प्रत्येक अवस्था से बना हुआ है। इस विवेक के आधार पर ही पर वैराग्य को दृढकर मोक्ष की ओर अग्रसर होना चाहिये।

समष्टि सत्व अहंकार मण्डल

पञ्चम रूप में ब्रह्म-विज्ञान

(सत्व अहकार का पञ्चम रूप)

५. समष्टि सत्व अहंकार के अर्थवत्व रूप मे—

यह सत्व प्रधान अहकार समस्त व्यष्टि अहकारो के निर्माण मे सहायक होकर भोग और अपवर्ग का हेतु होता है। इसने रज और तम अहकार के साथ मिलकर व्यष्टि मनो को उत्पन्न करके प्राणियो का महान् कल्याण किया है। अहकार से बनने वाले सभी पदार्थो मे उपादान और सहकारी कारण के रूप मे प्रवृत्त हुआ है। यह इसकी महान् अर्थवत्ता है।

आत्मा के भोग और अपवर्ग मे महान् सहायक होता है। ससार के सब प्राणियो मे इसका गौण या मुख्य रूप से अर्थात् न्यूनाधिक रूप मे वास है। बुद्धि और चित्त के सब कार्यो मे यह सहकारी रूप से अत्यन्त ही सहायक होता है। ज्ञानेन्द्रियों के प्रति यही मुख्य रूप मे उपादान कारण है।

इसकी अर्थवत्ता मे ब्रह्म का विज्ञान भी करना अत्यन्त आवश्यक है। ब्रह्म इसके अन्दर सूक्ष्म रूप से वर्तमान होकर इसे क्रियाशील बनाये रखता है। योगिन् ! इस विवेक से वैराग्य को दृढ करो। यदि इस अहकार का पूर्णतया दमन न हो सका तो देवराज इन्द्र की पदवी पाकर भी इस अहकारमयदर्प के कारण फिर कही योनि-चक्कर मे फँसकर भोगी सर्प की योनि मे पड सारे विवेक और वैराग्य पर पानी न फिर जाये। इस लिये इस अहकार की मार से बचना। भगवान् शकर की तरह इस अहकार रूपी सर्प को वशीभूत कर अपने कण्ठ का हार बनाना और अहंकार विशिष्ट चित्त मे आत्मदर्शन कर प्रकृति पुरुष के विवेक द्वारा परम विरक्त हो परमहंस बन मोक्ष का द्वार खटखटाना। यह साध जागरूक परवैराग्य से ही पूर्ण होगी।

इति समष्टि सत्वाहंकार मण्डलम्।

इति तृतीयाध्याये तृतीयः खण्डः।

इतिदशममावरणम्॥
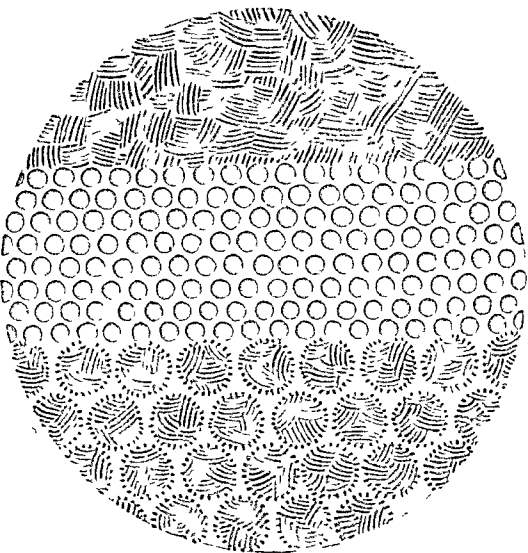
चित्र सं० १२

समष्टि बुद्धि से व्यष्टि बुद्धियों की उत्पत्ति दिखाई गई है।

महत त्रिगुणात्मक सृष्टि

चतुर्थ खण्ड

६ वाँ आवरण

समष्टि बुद्धि मण्डल

प्रथम रूप में ब्रह्म-विज्ञान

(समष्टि बुद्धि का प्रथम रूप)

१. समष्टि बुद्धि के स्थूल रूप में—

भोग और अपवर्ग देने के लिए समष्टि बुद्धि का मण्डल परिणाम भाव को प्राप्त होता है, तब उस मे ये धर्म उत्पन्न होते हैं :—समष्टि बुद्धि मे ये धर्म सूक्ष्म रूप से वर्त्तमान रहते हैं, पर उस अवस्था मे कोई भोगात्मक व्यापार न होने से ये व्यक्त नही होते। इनकी अभिव्यक्ति व्यष्टि बुद्धि के भोग और अपवर्ग काल मे ही होती है—चित्र न० १२ में देखें।

१. परिज्ञातहेया	२ क्षीणहेयहेतुका	३. साक्षात्कृतहाना	४ भावितहानोपाया
५. चरिताधिकारा	६. गुणप्रयोजनाभावा	७. गुणसम्बन्धालीता	८ ऋतभरा प्रज्ञा
६. प्रातिभज्ञानम्	१०. प्रज्ञालोक	११. ज्योतिष्मती	१२. आनन्द
१३. सुख	१४. ज्ञान	१५. मेधा	१६. गति
१७ शम	१८ हर्ष	१६ शान्ति	२०. धर्म
२१. बल	२२. क्षोभ	२३. तर्क	२४. वैराग्य
२५. सन्तोष	२६. अपरिग्रह	२७. ईशप्रणिधान	२८. निर्णय
२६. प्रमाण	३०. ऐश्वर्य	३१. नम्रता	३२. उदय
३३ तितीक्षा	३४. श्रद्धा	३५. भक्ति	३६. एकाग्रता
३७. आह्लाद	३८. प्रसन्नता	३६. वात्सल्य	४०. स्नेह
४१. चिन्तन	४२. मनन	४३. निदिध्यासन	४४. निष्कामता
४५. धृति	४६. लज्जा	४६. अहिंसाभाव	४८ न्याय

चित्र संख्या १२ का वृतान्त—न० १ मे समष्टि बुद्धि की कारण रूप अवस्था को दिखाकर इसमे क्रिया के छोटे-छोटे कम्पन्न दिखाए गए हैं। यह समष्टि बुद्धि मण्डल क्रिया शील होकर कारण से कार्य रूप मे परिणत होने जा रहा है। न० २ मे व्यष्टि मे बुद्धि उत्पन्न होकर आकाश मण्डल मे शान्त रूप से स्थिर होकर ठहर गई है। न० ३ मे प्रत्येक प्राणी मे प्रवेश करके क्रियाशील होकर भोग और अपवर्ग करने में प्रवृत हो चुकी है। जब इसके साथ मन का सयोग होता है तब इसमे ये तरगें उत्पन्न होती हैं और विद्युत की तरह ज्योति के रूप मे कौंध सी आ जाती है। नाना प्रकार की तरगें उत्पन्न होने लगती हैं कार्यात्मक व्यष्टि बुद्धि की व्यापार अवस्था को दिखाया गया है।

४६. स्मरणशक्ति	५०. धारणा	५१. ध्यान	५२. समाधि
५३. अविद्या	५४. राग	५५. द्वेष	५६. अभिनिवेश
५७. तृष्णा	५८. विपर्य्यय	५६. विकल्प	६०. स्वार्थपरता
६१. सशय	६२. विचिकित्सा	६३. सकल्प	६४. विकल्प
६५. शोक	६६. मोह	६७. लोभ	६८. काम
६६. विषाद	७०. चपलता	७१. ईर्ष्या	७२. स्पर्धा
७३. क्रोध	७४. दमन	७५. शत्रुता	७६ निन्दा
७७ भय	७८. शासन	७६. प्रतिशोध	८०. निर्लज्जता
८१. चिन्ता	८२. विषयभोगलिप्सा	८३. लोक सग्रह	८४. सम्मानेच्छा
८५. अपमान का भय	८६. उद्यम	८७. साहस	८८. धैर्य
८६. पराक्रम	६०. उद्वेग	६१. मिथ्याचार	६२. छल
६३. कपट	६४. क्रूरता	६५. प्राणतृप्ति	६६. धूर्तता
६७. लिप्सा	६८. विलासिता	६६. दुरभिमानिता	१००. असह्यता
१०१. अज्ञान	१०२. पापरति	१०३. दम्भ	१०४. दुराचार
१०५. व्यभिचार	१०६. चौर्यभावना	१०७. हिंसाभाव	१०८. रुदन
१०६ मासमद्यरुचि	११०. आलस्य	१११. विषयलम्पटता	११२. नास्तिकता
११३. मूढता	११४. मद	११५. अवैराग्य	११६ विस्मृति
११७. बलात्कार	११८. आततायिता	११६. अशौच	१२०. दुर्जनता
१२१. अविवेक	१२२. अधर्म	१२३. अकर्म	१२४. तामस पदार्थ रुचि
१२५. जडता			

इन धर्मों से युक्त व्यष्टि बुद्धियें जीवों के भोग और मोक्ष प्रदान करने मे समर्थ होती है।

सम्प्रज्ञात समाधियों का फल

प्रान्त-भूमि प्रज्ञा सात प्रकार की उत्पन्न होती है :

१. (परिज्ञातं हेयम्) जितने कारण कार्यात्मक पदार्थ हैं, इन से उत्पन्न होने वाले जितने आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक परिणाम, ताप, सस्कार दु.ख है ये सब क्लेश के ही हेतु है। इसलिए हेय हैं, त्यागने योग्य हैं। इसके पश्चात् फिर कुछ जानने योग्य नही रहता है। सम्पूर्ण कार्य कारण के ज्ञान का कर्त्तव्य समाप्त हो जाता है।

२. (क्षीण हेय हेतवः) त्याग या हेय. के जो जो हेतु थे, वे सब क्षीण हो गये है; अब क्षीण होने योग्य कुछ नही रहा है।

३. (साक्षात्कृतम्) मैं ने प्रत्यक्ष के द्वारा निश्चय कर लिया है कि सम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था मे निरोध समाधि द्वारा ही यह साध्य है, इसलिए यह हान है। अब पुनः कुछ और निश्चय करने योग्य नही है।

४. (भावितो विवेक-ख्यातिरूपो हानोपायः) विवेक ख्याति का रूप जो हानोपाय है वह मैं ने प्राप्त कर लिया है। अब इस से परे और कुछ भी भावनीय नही है। इसे कार्य-विमुक्ति प्रज्ञा कहते हैं। क्योंकि प्रकृति के कार्यों से मुक्ति समझनी चाहिए।

इसे चार प्रकार की प्रान्त भूमि प्रज्ञा कहते हैं। अब आगे बुद्धि की विमुक्ति कहते है। यह तीन प्रकार की है।

५ (चरिताधिकारा बुद्धि) जिस बुद्धि का भोग का अधिकार समाप्त हो गया है। अर्थात् जिस बुद्धि के भोग और अपवर्ग रूप कर्त्तव्य समाप्त हो गए है।

६ (न चैपा गुणाना विप्रलीनाना पुरस्युत्पाद प्रयोजना भावादिति) जैसे पर्वत के शिखर से गिरा हुआ पर्वत लुढकते-लुढकते चूर्ण-चूर्ण होकर अपने कारण मे लीन हो जाता है। इस प्रकार ये तीनो गुण अपने कारण प्रकृति की साम्यावस्था मे विलीन हो जाते है।

७ (एतस्यामवस्थाया गुण-सम्बधातीत स्वरूपमात्र-ज्योतिरमल केवली पुरुष इति) गुणो से अतीत होकर, सर्व मलो के बन्धनो से मुक्त होकर प्रकाश स्वरूप पुरुष (जीवात्मा) केवल्य भाव को प्राप्त होता है। मुक्त हो जाता है।

इस सात प्रकार की प्रान्त-भूमि प्रज्ञा द्वारा क्रम पूर्वक देखता हुआ पुरुष कुशल कहाता है। फिर इसका पुनर्जन्म या चित्त के साथ सम्बन्ध एक पर्यान्त काल तक नही होता है। अब दूसरे परिणामो का क्रम-पूर्वक वर्णन करते है—

१ ऋतभरा प्रज्ञा—इसके अनन्तर ऋतभरा प्रज्ञा की उत्पत्ति होती है। जिस समाहित बुद्धि से विज्ञान उत्पन्न होता है, उसको ऋतभरा कहते है। यह यथार्थ ज्ञान का ही बोध कराती है। पदार्थ के सत्यासत्य का यथार्थ निर्णय करती है। शब्द प्रमाण और अनुमान प्रमाण जिस विज्ञान को कराते है वह तो सामान्य ज्ञान होता है। एक प्रकार से ये परोक्ष का ही बोध कराते हैं, यह नही बताते कि यह आत्मा है। यह ब्रह्म है। ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञान नही करा सकते। समाधि की अवस्था मे जो विशेष ज्ञान होता है उसे तो यह ऋतभरा बुद्धि ही कराती है। प्रत्यक्ष रूप से उसकी अनुभूति कराती है। यह आत्मा है, यह ब्रह्म है। अत विशेष ज्ञान की बोधक यह ऋतभरा प्रज्ञा ही होती है।

(शका) यहाँ तो आप प्रतिपादन कर रहे हैं कि समाहित बुद्धि से ऋतभरा की उत्पत्ति होती है, और पहिले लिख आये हैं कि समष्टि बुद्धि के परिणाम काल मे ये धर्म उत्पन्न होते है?

(समाधान)—वास्तव मे उत्पन्न तो होते हैं समष्टि के परिणाम काल मे ही, परन्तु मल, विक्षेप, आवरण या तामस राजस गुणो के प्रभाव से या अधिकता से ये ऋतभरा आदि गुण दबे रहते हैं। इन्हे उभारने या पनपाने का अवसर ही नही मिलता। जब सत्त्व गुण प्रधान होता है, और बुद्धि समाहित एव एकाग्र होकर सम्प्रज्ञात अवस्था मे पहुँची होती है, तब ऋतभरा को प्रकट होने का अवसर प्राप्त होता है। इन सब धर्मों को साथ मे लेकर ही बुद्धि उत्पन्न होती है। जब कार्य-क्षेत्र मे उतरती है और जैसा-जैसा गुण या धर्म वर्तन का अवसर आता है, अथवा जैसा भोग और कर्म होता है, वैसे वैसे ही धर्म उस काल मे प्रगट हो भोग देने लगते हैं, या ज्ञान की वृद्धि करने लगते हैं।

२ प्रातिभ ज्ञान—ब्रह्मरन्ध्र मे जब योगी सयम करता है तब वहाँ एक दिव्य ज्योति प्रकट होती है। इस ज्योति मे ही प्रातिभ नाम की बुद्धि, या विज्ञान अथवा प्रज्ञा उत्पन्न होती है। इस की ज्योति इस प्रकार की होती है, जैसा कि प्रात काल के उदय

कालीन सूर्य का प्रकाश होता है। इस प्रातिभ विज्ञान के प्रकट होने पर योगी सब कुछ जानने मे समर्थ हो जाता है। यह प्रातिभ बुद्धि ब्रह्मरन्ध्र और हृदय के सब पदार्थों का विज्ञान कराने मे समर्थ हो जाती है।

३ प्रज्ञालोक—जब योगी का संयम सिद्ध होता है अर्थात् जिस पदार्थ पर योगी ने धारणा की हो, उसी पर ध्यान किया, और फिर उसी पदार्थ को समाधि का विषय बनाया, इस का नाम सयम है। इस सयम के जय हो जाने पर समाधि प्रज्ञा के द्वारा आलोक प्रकट होता है। इस को प्रज्ञालोक या बुद्धि का प्रकाश या विज्ञान कहते हैं। यह अभ्यास द्वारा ज्यो ज्यो बढ़ता जाता है त्यो त्यो समाधि मे पदार्थों का विज्ञान कराने की योग्यता बढती जाती है। यह भी योग की भूमियो को पार करता चला जाता है। इस आलोक के प्राप्त होने पर सूक्ष्म पदार्थों के दर्शन मे सफलता प्राप्त होती जाती है।

४. ज्योतिष्मती—इसका दूसरा नाम विशोका है। जब योगी को पञ्च-तन्मात्रो का विज्ञान या अधिकार हो जाता है, तब इसको ही मन की स्थिति के लिये अभ्यास मे प्रयुक्त करने लगता है। इस अवस्था मे इस बुद्धि का प्रादुर्भाव होता है। यदि इसके द्वारा हृदय मे प्रवेश कर के चित्त का प्रत्यक्ष करना चाहे तो कर सकता है। विशोका का अर्थ है जो बुद्धि विज्ञान के प्रकट हो जाने पर शोक रहित हो जाये। इस ज्योतिष्मती का रग या प्रकाश सूर्य, चन्द्रमा, मणि, आदि के समान भास्वर होता है।

५ आनन्द—यह धर्म सब को ही विदित है। यह बुद्धि का परिणाम विशेष है। जिस को सब मनुष्य सुख के रूप मे अनुभव करते हैं। एकाग्रता मे अनुभव करते हैं। आत्मा और परमात्मा के साथ बुद्धि को जोड़कर विशेष प्रकार से अनुभव करते हैं। यह स्वय ही सब का ज्ञात है।

६. सुख—यह भी सबको ज्ञात है, विषयो के सयोग से और आत्म सयोग से प्राप्त होता है।

७ हर्ष—इसमे रोमाच हो जाता है। मुख पर मुस्कान आजाती है। नेत्रो से अश्रु बहने लगते है। अपार सुख या आनन्द की अनुभूति होने लगती है।

८ शान्ति—इस धर्म की अनुभूति विषयो से उपराम हो कर अथवा एकाग्रता मे विशेष होती है।

९. तर्क—यह बुद्धि का धर्म है। प्रत्येक विषय तथा पदार्थ का निर्णय तथा बोध कराने मे सर्वत्र सहायक होता है। यथा—'यस्तर्केणानुसधत्ते स. धर्मं वेद'—जो विज्ञान तर्क के द्वारा अनुसन्धान करके या परख कर निश्चित किया जाता है, वही यथार्थ ज्ञान होता है।

१०. वैराग्य—यह भी बुद्धि का परिणाम विशेष है। सर्व भोगो से बुद्धि का उपराम या विरक्त हो जाना वैराग्य है। यह सब धर्म मोक्ष का हेतु होते हैं।

११. सन्तोष—यह धर्म भी बुद्धि का ही परिणाम है। यह सब प्रकार से तृप्ति या उपराम का हेतु बनता है। योगी को मोक्ष पथ पर दृढ बनाये रखता है।

१६. अपरिग्रह—इन्द्रियों को विषयों मे गमन करते हुए रोकना, विषयो का सेवन न करना, बिना जरूरत के पदार्थो या भोगो का सग्रह न करना। यह धर्म भी अपवर्ग की ओर ले जाने वाला है। भोगो से तृप्ति करने वाला है।

२०. ईश्वर प्रणिधान—भगवान के प्रति बुद्धि मे विशेष भक्ति या प्रेम हो जाना अपने सर्व कर्म फलो को भगवान् के अर्पण कर देना। यह धर्म तो इस लोक और परलोक को पावन करने वाला है। अनन्त सुख शान्ति और आनन्द को देने वाला है।

अब हम धर्मो की अधिक व्याख्या नही करते। बुद्धि के परिणाम धर्मो की संज्ञा मात्र आरभ मे ही लिख चुके है जो वास्तव मे भोग और अपवर्ग का हेतु है। विस्तार भय और सर्वविदित होने से व्याख्या उपयोगी नही।

समष्टि बुद्धि के परिणामो के आधार पर ही विश्व के सर्व कार्य चलते हैं। यह ब्राह्मी सृष्टि चेतन ब्रह्म के सयोग से ही क्रिया शील रह कर भोग और अपवर्ग के लिये पदार्थो को उत्पन्न करती रहती है। इस बुद्धि मण्डल मे क्रिया उत्पन्न कर व्यष्टि बुद्धि के रूप मे परिणत करना, और संयोग करना इस चेतना के आधार पर ही होता है।

ज्ञान गुण किस का ?

शंका—यह विज्ञान चेतन का धर्म है या जड प्रकृति का ?

समाधान—यदि ज्ञान को चेतन का धर्म मान लें तो वह विकारी हो जायेगा। यदि केवल प्रकृति का ही कार्य या परिणाम धर्म मान ले तो प्रकृति जड नही रहती। अतः ब्रह्म के सन्निधान से प्रकृति मे ही यह विज्ञान रूप धर्म या कार्य उत्पन्न होता है। बिना ब्रह्म के संयोग के यह धर्म इस मे नही हो सकता है। जैसे लोहा चुम्बक पत्थर के साथ सयोग मे आकर क्रिया शील हो जाता है, इसी प्रकार प्रकृति ब्रह्म के सन्निधान मे रह कर क्रिया शील हो जाती है। अब इस क्रिया को हम प्रकृति की ही क्रिया शीलता कहेगे क्योकि ब्रह्म तो कूटस्थ है। अचल है। क्रिया रहित है। निरवयव है। इसका यह धर्म नही हो सकता है। इसको निमित्त कारण मान कर ही प्रकृति मे क्रिया मानी गयी है। वैसे प्रकृति परिणाम धर्म वाली है। परन्तु इसमे परिणाम भी ब्रह्म के सयोग से ही होता है, स्वय नही होता है। मोटर मे चलने की शक्ति है, परन्तु चलाने के लिये ड्राइवर की आवश्यकता पडती है। इसी प्रकार प्रकृति मे परिणाम रूप धर्म है, परन्तु वह चेतन ब्रह्म की अपेक्षा रखती है। इस की ही चेतना से सञ्चालित होती है। अत. यह समष्टि विज्ञानात्मक बुद्धि इसी भगवती प्रकृति देवी का ही एक परिणत हुआ कार्य है। इसी से यह परिणाम रूप गुण इस बुद्धि मे आया है। जब यह भोग देने के लिये समष्टि बुद्धि का मण्डल परिणाम भाव को प्राप्त होता है तब व्यष्टि रूप मे असख्य बुद्धियें अपने अपने गुणो के साथ उत्पन्न होती हैं। फिर करण के रूप मे प्रत्येक प्राणी के साथ भोग देने के लिये प्रस्तुत हो जाती हैं। इस समष्टि बुद्धि का परिणाम महत्सत्व तथा रज की प्रधानता से हुआ है। तम भी गौण रूप से सहकारी रहता है। इसी हेतु इसमे ज्ञान के साथ क्रिया शीलता अधिक है। सब इन्द्रियो के भोगो का सम्पादन और इनके ज्ञान का निर्णय, और मन को आज्ञा प्रदान करना आदि इसके अनेक कार्य हैं। जाग्रत् और समाधि

काल के सब निर्णय इसी के द्वारा होते हैं। महत्रज का कार्य होने से क्रियाशील भी अधिक बनी रहती है। वैसे महत्तम का कार्य तो अहंकार ही है, परन्तु तम की अधिक प्रधानता से इसकी ज्ञानात्मक शक्ति खतम सी हो गयी है। केवल कर्म प्रधान ही रह गयी है। इसी लिये इसने मन, ज्ञान, कर्मेन्द्रियों और पञ्चतन्मात्राओं के निर्माण मे कही भी ज्ञान की अधिकता पैदा नही की है। केवल सामान्य ज्ञान सा ही ज्ञानेन्द्रियों और मनो मे किया है। जैसे नेत्र रूप को तो जरूर दिखाता है, है तो वास्तव मे यह भी ज्ञान ही परन्तु कैसा रूप है, किस का रूप है इत्यादि यह तो बताती नही। अत केवल सामान्य रूप से ही बता सकती है। मन भी इसी का अनुकरण करता है। बुद्धि की तरह विशेष ज्ञान को यह भी नही कह सकता है। अत बुद्धि का ही धर्म ज्ञान विज्ञान है।

बुद्धि और चित्त मे भेद

शंका—आपने बुद्धि को चित्त से क्यो अलग कर दिया जब कि दोनो ज्ञान प्रधान है, और ज्ञान का ही उपार्जन करते हैं।

समाधान—चित्त बिलकुल सत्त्व प्रधान होने से भोग देने के लिये जीवात्मा को अपना सहयोगी बनाता है, क्योकि इसकी स्वच्छता कुछ आत्मा के साथ मिलती जुलती है। सुख और दुःख का अहसास भी चित्त ही करने मे समर्थ होता है। प्राय स्वाभाविक ही हृदय पर हाथ रख कर कहते है, और अहसास कर के साक्षी के रूप मे कहते हैं, हृदय या चित्त इस बात को स्वीकार नही करता है। जब कोई बात विचारने की होती है, तब मस्तिष्क को पकड कर सोचता है। विचार करता है। यह हृदय की अपेक्षा कुछ अलग ही बात है। निद्राकाल के सुख की अनुभूति भी चित्त मे ही होती है। वहाँ सोच विचार का काम नही होता है, क्योकि यह कार्य तो बुद्धि का ही होता है। इन्द्रियों के विषय सम्बन्धी जो सोच विचार होता है, या जाग्रत् काल मे, अथवा विपर्यय विकल्प ज्ञान मे जो सोच विचार करना होता है, इस को बुद्धि ही करती है। स्मृति का कार्य, निद्राकालीन सुख दुःख की अनुभूति चित्त मे होती है। स्वप्न मे स्मरण रूप कार्य चित का होता है। इन्द्रियो द्वारा जो कार्य होते है उनको कुछ अस्तव्यस्तरूप म बुद्धि कर देती है, अर्थात् इस अवसर म दोना अपना अपना कार्य करते है। निद्रा और समाधि काल मे केवल चित्त ही कार्य करता है। समाधि का अभिप्राय यहाँ असप्रज्ञात समाधि से है, जिस काल म अहमस्मि या अस्ति का बोध धारा प्रवाह से होता रहता है, अथवा केवल सस्कार निरोध मात्र ही होता रहता है। इसीलिये बुद्धि से इसका भेद किया है।

सम्प्रज्ञात समाधि मे जितना भी विज्ञान होता है पुरुष, प्रकृति तथा इसके कार्यों का विवेक यह सब बुद्धि मे ही होता है। यह सविचार अवस्था है। इसमे विज्ञान प्राप्त करने के समय, पदार्थ के स्वरूप और विज्ञान काल म ऊहापोह तर्क वितर्कपूर्वक निर्णय करना होता है, यह बुद्धि का ही व्यापार है। चित्त के विज्ञान मे तर्क वितर्क, ऊहापोह विशेष नही होता है। बुद्धि जिस पदार्थ का निर्णय कर के दे देती है, केवल उस को निर्विचार अवस्था म पुन अस्ति अस्ति या अस्मि अस्मि का दृढ़तर के रखता है। इसमे ननु न च नही करता है। ये कर्म चित्त के हैं—

१ आत्मा के प्रतिविम्बो को ग्रहण करना।
२ सुख दु ख का अहसास (अनुभव) करना।
३ सस्कारो को धारण करना।
४ सस्कारो को स्मृति और अहकार द्वारा उथल पुथल करना।
५ निर्विचार अवस्था मे अस्ति अस्ति, अस्मि अस्मि कह कर दुहराना।
६ सस्कारो का निरोध करना।

ये ६ कर्म इस के मुख्य हैं। अहकार इन कर्मों मे सामान्य रूप से सहयोग देता रहता है, और विशेप रूप मे बुद्धि को सहयोग देता है। क्योकि सङ्गी, सहकारी और समीपवर्ती है। इन्ही हेतुओ से चित्त को बुद्धि से अलग माना है।

शेष सब कर्म बुद्धि के हैं। इन्द्रियो के जितने भी व्यापार ह—स्थूल और सूक्ष्म, इन सबको बुद्धि ही करती है। मन के भी सब व्यापार बुद्धि द्वारा होते हैं। इन सब का सञ्चालन बुद्धि ही करती है, जाग्रत् के सब व्यापार बुद्धि द्वारा ही होते है। प्रमाण वृत्ति के व्यापार भी। प्रमाणो से अभिप्राय तीनो प्रमाणो से है। इन्द्रिय और मन के सन्निकर्ष, प्रत्यक्ष अनुमान, और शब्द प्रमाण से जो कर्म और ज्ञान प्राप्न होता है वह सब बुद्धि द्वारा होता है। विपर्यय ज्ञान=मिथ्याज्ञान, विकल्प ज्ञान=पदार्थ न होने पर भी पदार्थ का व्यवहार करना, जैसे मेरा मस्तिष्क, मस्तिष्क मुझ से अलग नही है, परन्तु नित्य ही ऐसा व्यवहार होता है। ये सब ज्ञान, विज्ञान, अज्ञान इस बुद्धि के ही धर्म कर्म है। प्रकृति के यावत् कार्यो का वोध भी बुद्धि द्वारा ही होता है। प्रकृति, आत्मा, और परमात्मा के स्वरूप का साक्षात्कार भी इसी के द्वारा होता है। इन्ही उपरोक्त धर्मो से चित्त और बुद्धि का भेद किया गया है।

समष्टि चित्त के पश्चात् समष्टि बुद्धि ज्ञानात्मक अनेक धर्मो को लेकर उत्पन्न होती है। समस्त ब्रह्माण्ड के भोग और अपवर्ग का यह हेतु बनेगी, इसी के आधार पर व्यवस्था चलेगी। जड से पशु, पशु से मानव, मानव से देवता यही बनाती हैं। सांख्य योग तो प्रकृति का सर्वप्रथम परिणाम इसी को मानते हैं। परन्तु हमारे अनुभव के आधार पर और भी कई प्रकृति के परिणाम है। जिनका वर्णन आगे आयेगा।

ज्ञान रूप इस समष्टि बुद्धि तत्त्व मे ब्रह्म को व्यापक समझकर विज्ञानरूप भावना से ब्रह्म का प्रत्यक्ष करें, क्योकि ब्रह्म भी ज्ञान रूप ही है। केवल अन्तर इतना ही है कि यह जड होते हुए ब्रह्म की चेतना से चेतनवत् सी बनी हुई है। जैसे अग्नि मे लोहे का डला अग्नि सा ही बन जाता है। यह विज्ञान रूपता ब्रह्म से ही प्राप्त हुई है। ब्रह्म विज्ञान के लिये यह सर्वश्रेष्ठ साधन है। इस ब्रह्म के विज्ञान से मानव के सब कर्तव्य समाप्त हो जाते हैं। परम शान्ति की उपलब्धि होती है। यथा च उपनिषद्—

'तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा आनन्दरूपममृत यद्विभाति।'

—विद्वान् योगी धीर पुरुष उस ब्रह्म के विज्ञान से आनन्दरूप अमृत मोक्ष को प्राप्त करते हैं। तथा च—

'भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसशया।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥

मुण्डको० मु० २। खण्ड २। मन्त्र ८।

—उस पर ब्रह्म के दर्शन हो जाने पर हृदय की सर्व ग्रन्थियें, उलझनें छिन्न भिन्न हो जाती हैं। सर्व प्रकार के संशय मिट जाते हैं। सब प्रकार के पाप पुण्यमय कर्म क्षीण हो जाते हैं। अपनी प्रकृति मे विलीन हो जाते हैं। सर्व प्रकार के अविद्यात्मक संशयो का अभाव हो जाने पर, और कर्म क्षय होने पर मोक्ष प्राप्त हो जाता है। यथा च—

'तदभावे संयोगाभावोऽप्रादुर्भावश्च मोक्ष ।'

वैशेषिक दर्शन० अ० ५। सू० १८।

—कर्म, संशय, अविद्या, भोगवासना का अभाव होने पर शरीर के संयोग का अभाव होकर, पुनर्जन्म अभावरूप मोक्ष हो जाता है।'

समष्टि बुद्धि मण्डल

द्वितीय रूप मे ब्रह्म विज्ञान

(समष्टि बुद्धि का द्वितीय रूप)

२ समष्टि बुद्धि के स्वरूप मे —

बुद्धि के जितने भी धर्म है, प्रत्येक की भिन्नता प्रतीत होती है। इस भेद मे भी यह अभेद रूप से रहते है। इन्ही के द्वारा बुद्धि की सत्ता का भी बोध होता है। ये बुद्धि रूपी धर्मी को छोड कर अलग नही होते है। अत इनका परस्पर स्वरूप सम्बन्ध है। यही तादात्म्य सम्बन्ध है। इस प्रकार इसके स्वरूप को समझकर इसम वर्तमान ब्रह्म भी भेद और अभेदरूप से दोनो तरह की अनुभूति का विषय बन जाता है। भिन्न पदार्थ है, इसलिये भेद है। व्यापक है इसलिये अभेद है। अत दोनो प्रकार से ब्रह्म का साक्षात्कार करना चाहिये। तथा चोपनिषद्—

'सर्वभूतस्थमात्मान, सर्वभूतानि चात्मनि ।
सपश्यन्ब्रह्म परम याति नान्येन हेतुना ।। कैवल्यो० म० १०।

—आत्मा—ब्रह्म को सब भूतो वा पदार्थों मे व्यापक समझे, और सब पदार्थों को ब्रह्म मे स्थित समझे। इस प्रकार ब्रह्म को अच्छी तरह देखकर परम मोक्ष को प्राप्त होता है। इस से भिन्न और कोई कारण नही है और न मोक्ष का मार्ग ही है।'

ब्रह्म की उपासना और विज्ञान के विषय मे वह बृहदारण्यकोपनिषद् के उद्दालक और याज्ञवल्क्य सवाद मे याज्ञवल्क्य ने समाधान करते हुए यह कहा है—यथा

'यो विज्ञाने तिष्ठन् विज्ञानादन्तरो,
य विज्ञान न वेद, यस्य विज्ञान शरीरम्,
यो विज्ञानमन्तरो यमयति,
एष त अन्तर्याम्यमृत ।।

बृहदारण्यको० अध्याय ३। ब्राह्मण ७। म० २२।।

—जो ब्रह्म, विज्ञान मे व्यापक रूप से ठहरा हुआ है। जो विज्ञान से भिन्न है। जिसको विज्ञान नही जानता है। जिस ब्रह्म का विज्ञान ही शरीर है। जो विज्ञान को अन्दर से सञ्चालन करता है। वह तेरा आत्मा अन्तर्यामीरूप अमृत है।'

यहाँ जीव और ब्रह्म दोनो का ग्रहण होता है। यह विज्ञान 'विज्ञानस्य पराकाष्ठा वैराग्यम्' के अनुसार वैराग्य की पराकाष्ठा पर दृढता से खडा कर दे। वैराग्य ही मोक्ष का अनन्य साधन है।

समष्टि बुद्धि मण्डल

तृतीय रूप मे ब्रह्म-विज्ञान

(समष्टि बुद्धि का तृतीय रूप)

३. समष्टि बुद्धि के सूक्ष्म रूप मे—

इस समष्टि बुद्धि का सूक्ष्म रूप महत् सत्त्व, महत् रज तथा महत्तम है। यही इसवा उपादान कारण है। इन्ही से इसका प्रादुर्भाव होता है। यहां तीना गुण सामान्य हैं और समष्टि बुद्धि विशेष है। व्यष्टि बुद्धियाँ समष्टि मण्डल से उत्पन्न होती हैं। यह समष्टि मण्डल ही व्यष्टि बुद्धियो का उपादान कारण है। समष्टि से ही व्यष्टि का प्रादुर्भाव होता है। यहाँ समष्टि मण्डल सामान्य और व्यष्टि बुद्धि विशेष है। सामान्य और विशेष का समुदाय ही भेद मे अनुगत अयुत सिद्ध द्रव्य सिद्ध होता है। यही इसकी सूक्ष्म अवस्था है।

इस सूक्ष्म अवस्था मे ब्रह्म का साक्षात्कार करना चाहिये। योगी को इस, समष्टि बुद्धि के मण्डल मे ध्यान द्वारा अपनी सूक्ष्म बुद्धि से इसके स्वरूप का और ब्रह्म के स्वरूप दोनो का ही साक्षात् करना चाहिये। यथा उपनिपद्—

'ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्ततस्तु,
त पश्यते निष्कल ध्यायमान ॥

मुण्डको० मुण्डक ३। खण्ड १। म० ८

—सात्त्विक शुद्ध बुद्धि से ज्ञान रूपी प्रसाद के द्वारा उस निष्कल पवित्र ब्रह्म को ध्याना-वस्थित होकर देखें।

'प्रमादो ब्रह्म-निष्ठायां, न कर्तव्य कदाचन।
प्रमादो मृत्युरित्याहु विद्यायां ब्रह्मवादिन ॥

अध्यात्मो० मन्त्र १४।

—ब्रह्म की निष्ठा या प्राप्ति मे कभी प्रमाद नही करना चाहिये। क्योकि ब्रह्मवादियो ने प्रमाद को मृत्यु कहा है।'

तैत्तिरीयोपनिषद् मे विज्ञान की बहुत प्रशसा की है। यथा—

'विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्।
विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ॥

—विज्ञान ही ब्रह्म है। अत विज्ञान को ही ब्रह्म जाने। विज्ञानात्मक ब्रह्म से ही निश्चय पूर्वक सब भूत उत्पन्न होते है, और अन्त मे प्रलय काल मे विज्ञान रूप ब्रह्म मे ही प्रवेश करते है। यह विज्ञान बुद्धि का भी धर्म है। इसी द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति या विज्ञान होता है। इसी के द्वारा परवैराग्य के तत्त्व को समझ धारण करें।

समष्टि बुद्धि मण्डल

चतुर्थ रूप मे ब्रह्म विज्ञान

(समष्टि बुद्धि का चतुर्थ रूप)

४. समष्टि बुद्धि के अन्वय रूप मे—

प्रकृति पदार्थ होने से ज्ञान और क्रिया अपने गुणो को लेकर अनुगत होते हुए इस समष्टि बुद्धि मण्डल और व्यष्टि मे भी कारणरूप से अनुपतित हुई है। अत इसमे

अन्वयरूप धर्म प्रकृति से आया है। इसमे भी ब्रह्म का साक्षात्कार करना चाहिये। विवेक के साथ वशीकारोत्तरवर्त्ती पर वैराग्य को दृढता के साथ धारण करता जाये।

समष्टि बुद्धि मण्डल

पञ्चम रूप मे ब्रह्म विज्ञान

(समष्टि बुद्धि का पञ्चम रूप)

५ समष्टि बुद्धि के अर्थवत्त्व रूप मे—

समष्टि बुद्धि मे प्रत्येक प्राणी के लिये अर्थवत्ता है। यह कार्य भाव को प्राप्त होकर सर्व जीवो के लिये भोग और मोक्ष का हेतु होती है। योगी के लिये यह ऋतंभरा के रूप मे आत्म साक्षात्कार का हेतु बनती है। सशय, विपर्यय, विकल्प के रूप मे यह अज्ञान और बन्ध का हेतु भी होती है। स्थूल से सूक्ष्म की ओर गमन करने मे और विज्ञान प्राप्ति मे यह २८वा पदार्थ है। जीवात्मा को मोक्ष प्रदान करने मे मुख्य कारण यही है। ब्रह्म का विज्ञान कराने और सब पदार्थो के बोध मे यही मुख्य साधन है। सम्प्रज्ञात समाधि मे जो भी अनुभव होते है, वे इसी के द्वारा होते हैं। विज्ञान मे जो उस काल मे सवृद्धि होती है वह भी इस का परिणाम विशेष या धर्म विशेष होता है। जीवात्मा और ब्रह्म के ऊपर जो मलविक्षेप आवरण माने गये है —

१ मल—इन्द्रियो के द्वारा जो पाप होते है, इन्हे मल कहते है।

२ विक्षेप—विषयो के भोग से जो बुद्धि या मन मे चञ्चलता आती है, इसे विक्षेप कहते है।

३ आवरण—आत्मा के ऊपर जो अज्ञान या अविद्या से परदा पडा है उसे आवरण कहते हैं।

इनका विध्वस करने मे भी यही मुख्य कारण होती है। जीवात्मा के बन्ध का कारण भी यही अज्ञान या अविद्या के रूप मे होती है। इसमे ये दो गुण ही मुख्य हैं, बन्ध और मोक्ष। इसके दो रूप हैं १ विद्या २ अविद्या। इस विषय मे यजुर्वेद म यह श्रुति पढी गयी है। यथा—

'विद्याञ्चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयसह।
अविद्यया मृत्यु तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ।।
यजुर्वेद० अ० ४० । म० ११ ।

—जो योगी इस बुद्धि रूपी विद्या अविद्या के वास्तविक स्वरूप को समझ लेता है, जान लेता है। यह प्रकृति का कार्य होने से जडात्मक है बन्ध का हेतु होने से अविद्या ही है। जब यह अविद्या परिणत होते हुए ऋतंभरा के रूप म जा पहुँचती है, उस समय यह जन्ममरण के बन्धन से मुक्त कर देती है। यह अर्थ हुआ 'अविद्यया मृत्यु तीर्त्वा का, और विद्ययामृतमश्नुत का अर्थ हुआ कि यह ज्ञान का रूप बन कर, समाधि द्वारा उज्ज्वल हो कर प्रान्त भूमि प्रज्ञा के रूप म मोक्ष या अमृत को प्राप्त कराने मे समर्थ होती है।'

इसी की पुष्टि मे उपनिषद् मे और भी कहा है। यथा—

'दूरमेते विपरीते विपूची अविद्या या च विद्येति ज्ञाता।
विद्याभीप्सिनं नचिकेतसं मन्ये, न त्वा कामा बहवोऽलोलुपन्त ॥४॥
अविद्यायामन्तरे वर्तमाना : स्वयं धीरा: पण्डितंमन्यमाना:।
दन्द्रम्यमाणा: परियन्तिमूढ़ा: अन्धेनैव नीयमाना यथान्धा: ॥५॥
कठ० अ० १। वल्ली २। मं० ४। ५॥

—यह अविद्या और विद्या दोनो विपरीत स्वभाव वाली हैं। अविद्या संसार में ले जाकर बान्धने वाली है, और विद्या मोक्ष प्रदान करने वाली है। हे नचिकेता : तूने विद्या की ही अभिलापा की है, ऐसा मैं समझता हूँ। तुझ को बहुत प्रकार के लोभो ने भी लुभायमान नही किया है। जो अविद्या के अन्दर फमे हुए हैं ; वे अज्ञानवश अपने को स्वयं ही धीर-बुद्धिमान् और पण्डित मानने वाले दुरभिमानी बने हुए हैं। जैसे मूढ पुरुप अन्धे के पीछे चलकर, भटकते हुए किसी गर्त में गिर जाते है, ऐसी ही स्थिति अविद्या के मार्ग में चलने वाले संसारी पुरुषों की होती है।

बुद्धि की इस पंचम अवस्था का साक्षात्कार करते हुए ब्रह्म का भी साक्षात्कार करे, और व्यप्टि बुद्धि के सहारे पर वैराग्य को संभाले रहे। जिस से विवेकोत्तर मोक्ष प्राप्ति मे कोई बाधा न हो।

इति समष्टि बुद्धि मण्डलम्।

इति तृतीयाध्याये चतुर्थ: खण्ड:।

इति नवममावरणम्॥

महत् त्रिगुणात्मक सृष्टि

पञ्चम खण्ड

८वाँ आवरण

समष्टि चित्त मण्डलम्

प्रथम रूप मे ब्रह्म विज्ञान

(समष्टि चित्त का प्रथम रूप)

१ समष्टि चित्त के स्थूल रूप मे—

यह समष्टि चित्त मण्डल महत्तत्त्व प्रधान त्रिगुणात्मक है। यह अन्त करण चतुष्ठय के उपादान कारण मे सर्वप्रथम है। इसी मे सम्पूर्ण सस्कार ठहरते है। ससार मे जितने भी जीव है, इन सबके धर्मा धर्म सस्कार इसी समष्टि चित्त मण्डल के विश्व-गर्भ मे ठहरते हैं। सृष्टि काल मे अनन्त जीवो के अनन्त सस्कारो को यही धारण करता है। प्रलय काल की अवस्था मे यही समस्त प्राणियो के सस्कारो को धारण करके अपने कारण प्रकृति मे लीन हो जाता है।

समष्टि चित्त—सर्वप्रथम जब यह मण्डल कार्य रूप मे परिणत होता है तो असख्य व्यष्टि चित्तो मे इसका परिणाम हो जाता है। चित्र स० १३ मे देख वे व्यष्टिचित्त ही सचित और प्रारब्धोन्मुख सस्कारो को लेकर भोग और अपवर्ग प्रदान करने के लिए प्रस्तुत होते हैं। यह ही जीवात्मा के साथ सयुक्त होकर इसके बन्धन का हेतु बनता है। अनादि काल से इसके साथ बन्ध और मोक्ष का सम्बन्ध चला आता है। यथा—

'चित्त कारणमर्थाना, तस्मिन् सति जगत्त्रयम्।
तस्मिन् क्षीणे जगत् क्षीण, तच्चिकित्स्य प्रयत्नत ॥

महोपनिषत् अ० ३। म० २१।

—सब प्रकार के भोगो का मूल यह चित्त है। इसी समष्टि चित्त मे सम्पूर्ण जगत् ठहरा हुआ है। इसके क्षीण होने पर जगत् का नाश होगा। अत प्रयत्नपूर्वक कटिबद्ध होकर इसके नाश का उपाय करना चाहिये।

समष्टि पदार्थों को भगवान् ही निर्माण करता है। व्यष्टियो को योगी भी निर्माण कर सकता है, समष्टियो को नही। इसलिए समष्टि और व्यष्टि दोनो का मानना

चित्र सख्या १३ के विवरण मे न० १ समष्टि चित्त जब परिणाम भाव को प्राप्त होकर व्यष्टि चित्तो को उत्पन्न करने चला है उस अवसर मे इसमे अत्यन्त तीव्र रूप मे क्षोभ होकर य तरगें उत्पन्न होती है। तब व्यष्टि चित्तों की उत्पत्ति होती है। उस ब्रह्म की चेतन सत्ता के सन्निध्य से यह समष्टि चित्त मण्डल गतिशील होकर व्यष्टि चित्तो को उत्पन्न करने लगता है।

न० २ मे सम्पूर्ण व्यष्टि चित्त उत्पन्न होकर प्रशान्त अवस्था मे आकाश मण्डल में स्थिर हो गये हैं। अब ये सूक्ष्म शरीरो मे भोग और अपवर्ग सम्पादन करने जा रहे हैं।

न० ३ मे स्थूल और सूक्ष्म शरीरों मे इनकी कार्यशीलता दिखाई गई है। इनके अन्दर मे जो श्वेतिमा स्थान है इसमे जीवात्मा का वास होता है।
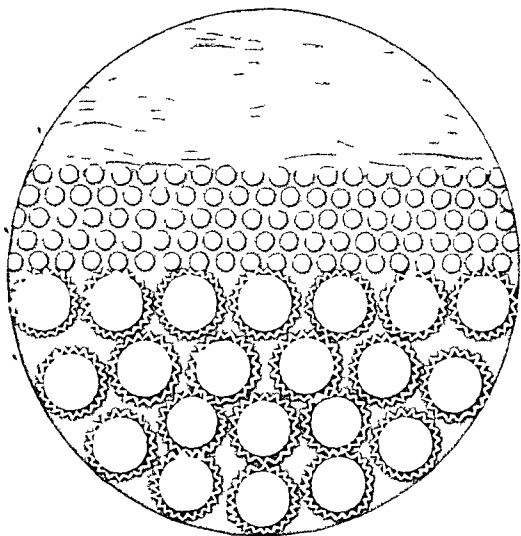
चित्र स० १३

समष्टि चित्त से व्यष्टि चित्तों की उत्पत्ति

आवश्यक है। समष्टि सृष्टि साक्षात् रूप से जीव को भोग प्रदान करने मे समर्थ नही होती। व्यष्टि सृष्टि ही भाग देने मे समर्थ है। अत व्यष्टि की ही विशेष व्याख्या की गयी है।

वास्तव मे यह कारण कार्यात्मक चित्त ही बन्ध का हेतु है। यथा—

'चित्तमेव हि ससारो, रागादिक्लेशदूषितम्।
तदेव तं विनिर्मुक्त, भवान्त इति कथ्यते॥'

महोपनिषद् अ० ४। म० ६६॥

—यह चित्त ही ससार मे राग द्वेष अभिनिवेश आदि दोषो को पैदा करता है। जब तक इनसे मुक्त नही होता तब तक ससार का अन्त नही होगा। दु ख क्लेश आदि बन ही रहगे। सर्ववासनाओ का क्षेत्र यही है। इसी मे वासनाय अकुरित होकर पनपती हैं। फलती फूलती रहती है। इस विषय म उपनिषद् कथन करती है। यथा—

'यावन्न वित्तोपशमो, नतावत्तत्त्ववेदनम्।
यावन्न वासनानाशस्तावत्तत्त्वागम श्रुत॥
यावन्न तत्त्व सप्राप्ति नंतावद्वासनाक्षय॥

अन्नपूर्णोपिनिषद् अ० ५। म० ८०॥

—जब तक चित्त शान्त नही होता है, तब तक तत्त्व ज्ञान नही होता है। क्योकि वासनाय (सस्कार) इसे शान्त होकर नही बैठने देती। जब तक वासनाओ का नाश नही होता है, तब तक आत्म साक्षात्कार और मोक्ष भी नही होता है। ये जन्म मरण के हेतु बने ही रहेगे।

जब यह महत् सत्त्व प्रधान समष्टि चित्त मण्डल भोग प्रदान करने के लिए विकार भाव को प्राप्त होता है अपने सब धर्मो सहित अनन्त चित्तो का उत्पादन करता है। चित्त के धर्म ये हैं—

१ ज्ञान	२ क्रिया	३ जीवन	४ शक्ति
५ परिणाम	६ सकोच	७ विकास	८ धर्म
९ सस्कार	१० निरोध	११ स्मृति	१२ परिज्ञात हेया
१३ क्षीणहेयहेतुका	१४ साक्षात्कृतहाना	१५ भावितहानोपाया	१६ चरिताविकारा
१७ गुण प्रयोजना भावा	१८ गुण सम्बन्धा तीता	१९ ऋतभरा	२० विशोका
२१ विम्बीभाव	२२ अनुद्भूत प्रकाश रूप	२३ शुभ्रता	२४ आनन्द
२५ शान्ति	२६ सुख	२७ प्रणिधान	२८ हर्ष
२९ आह्लाद	३० वैराग्य	३१ अविद्या	३२ अस्मिता
३३ राग	३४ द्वेष	३५ अभिनिवेश	३६ मोह
३७ सवेद	३८ इच्छा	३९ चिन्तन	४० सकल्प
४१ शोक	४२ भय	४३ चिन्ता	४४ तृष्णा
४५ सयोग	४६ क्षोभ	४७ व्युत्थान	४८ जाग्रत
४९ स्वप्न	५० निद्रा	५१ तन्द्रा	५२ प्रमाद
५३ दु ख	५४ बन्ध	५५ मोक्ष	

इन धर्मों को साथ लेकर परिणत होता है ।

१ ज्ञान—चित्त का सर्वप्रथम धर्म ज्ञान रूप मे प्रकट होता है । जोकि मुख्य रूप से मोक्ष का हेतु बनता है । जीवात्मा को सब प्रकार के बन्धनो से मुक्त कराने वाला है । इस लोक और परलोक को सुखी, शान्त सर्व उपद्रवो से रहित, और आनन्दयुक्त बनाने वाला है ।

आत्मा भी ज्ञान स्वरूप है

(शका) यदि जीवात्मा ही ज्ञान स्वरूप है तब चित्त को ज्ञान वाला मानने की क्या आवश्यकता है । क्या जीवात्मा की ज्ञानरूपता मे कुछ कमी रह गयी जिसको यह चित्त पूरा करता है ?

(समाधान) जीवात्मा ज्ञान स्वरूप होते हुए भी अपने को अज्ञानी समझता है, इस भ्रान्ति को दूर करने के लिए चित्त के ज्ञान रूपी धर्म की जरूरत पडती है । यदि यह भ्रान्ति न होती तो कोई आवश्यकता न होती ।

(शका) जीवात्मा तो अल्पज्ञ है, क्या इस अल्पज्ञता को दूर करने के लिए चित्त के विज्ञान धर्म को मानना पडा ।

(समाधान) अल्पज्ञता का अर्थ है थोडा ज्ञान । अल्प=थोडा, ज्ञता=ज्ञान । ब्रह्म की सर्वज्ञता की अपेक्षा जीव को अल्पज्ञ कहा गया है । क्योकि आत्मा भी अत्यन्त सूक्ष्म है, जिसके विभाग नही हो सकते, अत्यन्त सूक्ष्म । अत इसका ज्ञान भी अल्प ही होना चाहिए । अणु होने के कारण इस का ज्ञान अल्प है । ज्ञानाभाव तो नही कहा है । यदि ज्ञान का सर्वथा अभाव कहते तब तो चित्त के ज्ञान की इसे आवश्यकता होती है । अत ब्रह्म की सर्वज्ञता की अपेक्षा अल्पज्ञता कही गयी है ।

(शका) तब तो चित्त का ज्ञान व्यर्थ हो जाता है ।

(समाधान) व्यर्थ सिद्ध नही होता । आप ससार के प्राणियो को प्रत्यक्ष देख रहे है, ज्ञान स्वरूप होते हुए भी भ्रान्त है । इस भ्रान्ति की निवृत्ति यही करेगा ।

(शका) यदि जीवात्मा को ज्ञान स्वरूप न माना जाये और चित्त के सयोग से ज्ञानोत्पत्ति मान ली जाये तो ?

(समाधान) यदि जीव को ज्ञान स्वरूप नही मानोगे तो जड मानना पडेगा । जड होने से चित्त के समान ही हो जायेगा ।

(शका) इस जीवात्मा को ज्ञान स्वरूप होते हुए भी यह भ्रान्ति कहाँ से उत्पन्न हुई है, जिसे आप दूर करना चाहते हैं ?

(समाधान) जो बद्ध है, वह मुक्त भी होगा । जीवात्मा एक देशी है अत प्रकृति के जाल मे फँस जाता है और भ्रान्त हो जाता है, फिर इससे अलग होने का यत्न करता है । इस प्रकार इसका अनादिकाल से बद्ध मोक्ष का सिलसिला चला आता है, और चलता रहेगा । जब ब्रह्म इस माया के जाल मे फँसा हुआ है, तब यह बेचारा जीव कैसे अलग रह सकता है । ब्रह्म के चक्र से तात्पर्य है प्रकृति के सहार और उत्पत्ति का । यह निमित्त कारण बन कर प्रकृति के अनेक कार्य करता है ।

(शंका) तो क्या आप जीवात्मा के समान ईश्वर भी बद्ध होना मानते हैं ?

(समाधान) ईश्वर एक देशी नही है। एक देशी का ही बन्ध हो सकता है। ईश्वर अनन्त है, सर्व देशी है, अतः किस देश मे कैसे प्रकृति बांधेगी।

चित्त के ज्ञान रूप धर्म की व्याख्या चल रही थी।

२. क्रिया—क्रिया का अर्थ है गति, चेष्टा। क्योकि इसने जीवात्मा के कारण बुद्धि, अहंकार, मन, इन्द्रिय आदि को गति देनी है, अतः इसमे क्रिया धर्म है।

(शंका) जब सर्वप्रथम ईश्वर के सन्निधान से प्रकृति में ज्ञान, क्रिया, धर्म उत्पन्न हो चुके है तब यहाँ चित्त मे वर्णन की क्या आवश्यकता है ?

(समाधान) वहाँ प्रकृति की ज्ञान क्रिया ने समष्टि पदार्थो मे कार्य करना है। यहाँ व्यष्टि पदार्थो के रूप में जीवो को भोग देने का कार्य चित्त ने करना है और इनके करण बनकर सब कार्य करने हैं। इसलिए यहाँ विशेष रूप से कथन की जरूरत पड़ी।

(शंका) जैसे ब्रह्म के संयोग से प्रकृति में ज्ञान और क्रिया पैदा हो गयी, ऐसे ही जीवात्मा के संयोग से चित्त मे भी ज्ञान और क्रिया पैदा हो जायेंगी। अलग वर्णन करने की क्या आवश्यकता ?

(समाधान) कारण के गुण कार्य मे आते है, अतः सूक्ष्म रूप से ज्ञान क्रिया चित्त मे भी आती हैं, परन्तु यह सामान्य रूप मे ही होती है। जीवात्मा के सयोग से भोगात्मक विशेष ज्ञान और क्रिया का प्रादुर्भाव होता है। ज्ञान से चित्त और बुद्धि में विलक्षण भोगात्मक और ज्ञानात्मक शक्ति पैदा हो जाती है। और क्रिया से सूक्ष्म प्राणात्मक जीवनी शक्ति बनकर तीनों शरीरों मे जीवन का सञ्चार करती है। जीवात्मा के संयोग से यहाँ क्रिया मे जीवन-सा भर जाता है। कुछ चेतना-सी आ जाती है, क्योकि इसने जीवात्मा को भोग प्रदान करना है। इसी प्रकार ज्ञान से भी जीवन मे चेतना-सी भर जाती है। जोकि चेतनवत् बनकर चित्त, बुद्धि और जीवात्मा के करण के रूप में भोग और मोक्ष प्रदान करते है।

३. जीवन—जीवन का अर्थ है प्राणधारण, जो कि शरीर मे देखने मे आता है। यह श्वास प्रश्वास रूप में है। वैसे तो श्वास प्रश्वास वायु भूत का ही कार्य है, परन्तु श्वास प्रश्वास बाहर की वायु के समान नही है। इनमें जीवन सा, चेतना सी भरी हुई है, जो सूक्ष्म प्राण से आयी है। जब जीवात्मा और चित्त का सयोग होता है, तब सूक्ष्म प्राण की उत्पत्ति होती है। यह इस जीवन रूप गुण को लेकर शरीर में सर्वत्र जीवन का सञ्चार करता है।

४ शक्ति—अर्थात् तीनों शरीरों के कार्य करने की सामर्थ्य या बल। यह स्थूल शरीर मे प्रत्यक्ष, और सूक्ष्म मे अनुमान से जानी जाती है। यह शक्ति ही उद्भूत रूप से तीनों में कार्य कर रही है।

५. परिणाम—विशुद्ध महत्तत्त्व का कार्य होने से प्रतिक्षण, धर्म, लक्षण अवस्था रूप से चित्त मे सदा परिणाम होता रहता है। प्रथम कारण रूप समष्टि चित्त से कार्य रूप व्यष्टि चित्त मे आना धर्म परिणाम है। अनागत अवस्था को छोड़ वर्तमान अवस्था मे आया। धर्मो मे अतीत अनागत अवस्था यह लक्षण परिणाम है। दिन प्रति-

दिन इसमे पुराणता आ रही है एक दिन प्रलय अवस्था मे जाएगा, यह इस मे अवस्था परिणाम समझना चाहिए। यहाँ तीनो परिणामो मे धर्म धर्मी का अभेद है।

६ सकोच—मच्छर आदि जन्तुओ के शरीर मे जब जाता है तो वहाँ सकुचित होकर प्रवेश करता है, अत सुकड जाना इस का धर्म है।

७ विकास—मनुष्य, हाथी या ह्वेल मछली के शरीर मे जब प्रवेश करता है तो वहाँ विस्तार को प्राप्त होकर बडे आकार का हो जाता है, क्योकि प्रत्येक शरीर को इस ने व्याप्त करके ठहरना है। आप इस दृष्टान्त से समझ—यदि दीपक को एक घडे मे रख दिया जाये तो घडे को ही प्रकाशित करता है। यदि बडे हाल मे रख दिया जाए तो हाल को प्रकाशित कर देता है। दीपक मे दीप शिखा बहुत छोटी सी होती है। अधिक-से अधिक एक इन्च लम्बी चौथाई इन्च मोटी या चौडी होती है। परन्तु मैदान मे रखने से अपनी किरणो द्वारा बहुत दूर तक प्रकाश फैंकती है। इसी प्रकार चित्त हृदय प्रदेश मे एक बहुत छोटा सा अणु सा होता है, परन्तु अपनी रश्मियो द्वारा सम्पूर्ण शरीर मे प्रकाश को फैंकता रहता है। जिस से तीनो शरीरो के कार्य चलते रहते हैं।

८ धर्म—धर्म से अभिप्राय पाप पुण्य का है। पाप पुण्य के आधार से कर्म मे प्रवृत्ति होती है। फिर इससे सुख दु ख का भोग होता है। इस गुण के द्वारा पूर्व जन्म का अनुमान हो जाता है कि इसका कर्म पुण्यात्मक था या पापात्मक। पुण्यकर्म से अच्छे कुल मे अच्छे माँ बाप के यहाँ जन्म होता है। जहाँ सब प्रकार के आराम और सुख के साधन प्राप्त होते हैं। पुन जीवन मे शीघ्र ही उन्नति करने का अवसर प्राप्त हो जाता है। यदि पापात्मक होता है तो अत्यन्त छोटे नीचे खानदान मे माता पिता के यहा जन्म होता है। जहा पेट भर खाने को अन्न और पहनने को वस्त्र भी प्राप्त नही होते हैं। अच्छी तरह शिक्षा प्राप्त करने का भी अवसर भी नही मिलता है। साधनो का अभाव होता है।

९ सस्कार—इन्हे वासना भी कहते हैं। ये ही वास्तव मे जन्म का हेतु बनते है। इन्हे लेकर चित्त गमन करता है। ये कारण और कार्य रूप चित्त मे सदा ओत प्रोत होकर रहते है। स्मृति सदा इनको उथल-पुथल कर जगाती रहती है। क्रिया शील बनाये रखती है। इन सस्कारो को सयम द्वारा साक्षात कर लेने पर योगी को पूर्व जन्म की जाति का भी ज्ञान हो जाता है, कि मैं मनुष्य, पशु पक्षी इत्यादि किस जाति मे था। यथा योग दर्शने—

'सस्कारसाक्षात्करणात पूर्वजातिज्ञानम्।

योग० विभूतिपाद० सूत्र १८॥

महर्षि जैगीषव्य ने अपने सैकडो जन्मो का पता लगाया था।

आवट्यस्तनुवर मुनि ने इनसे पूछा—इतने जन्मो का साक्षात्कार करके आपने क्या देखा?'

तब ऋषि ने उत्तर दिया—मैं जितने भी पशु पक्षी तथा अन्य जन्तुओ के शरीर मे रहा फिर मनुष्य देवादि शरीरो मे भी रहा, सब का मुझे ज्ञान है। बार-बार उत्पन्न होकर जो कुछ मुझे अनुभव हुआ है—"तत्सर्वं दु खमेव प्रत्यवमि।" वह सब दु ख रूप ही देखने मे आया है।

पुन. तनुधर ने पूछा—"इस समय जो आप सुख सन्तोष और आनन्द-पूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे है, क्या इसे भी आपने दु ख रूप ही समझा है ?"

श्री महाराज जी ने उत्तर दिया– "विषय के सुखो की अपेक्षा यह सन्तोष सुख बहुत उत्तम है। परन्तु कैवल्य मोक्ष की अपेक्षा यह भी दु ख रूप ही है।"

व्यास भाष्य सूत्र ८। विभूति पाद।

१०. निरोध—यह धर्म साक्षात् रूप से मोक्ष प्रदान करने वाला है। यही श्रेष्ठ धर्म असम्प्रज्ञात समाधि को उत्पन्न करने वाला है। यही सस्कारो का निरोध करके व्युत्थान को उत्पन्न नही होने देता है जो वृत्तियो के समान ही चित्त को वना देता है। सब वृत्तियो का निरोध इसी के द्वारा होता है। आत्म-दर्शन की योग्यता मुख्यरूप से इसी मे है। यह आत्म-दर्शन और ब्रह्म-दर्शन को दृढ बनाता है। अस्मि और अस्ति के रूप मे दृढी भूत कर देता है। धर्म मेघ समाधि को भी यही पैदा करता है। योग दर्शन कार ने 'योगानुशासनम्' इस सूत्र के द्वारा योग की शिक्षा को प्रारम्भ करके दूसरा सूत्र "योगश्चित्त वृत्ति निरोध" दिया है। जितने भी धर्मो का वर्णन हो चुका है और होगा। यह सब चित्त वृत्तियाँ ही है। ये सब चित्त के ही धर्म है। अत. इन सब धर्मो और वृत्तियो का निरोध करने के लिए चित्त का निरोध धर्म ही है। जो जीव और ब्रह्म के स्वरूप को साक्षात्कार करा देता है।

११. स्मृति—स्मृतिधर्म हर समय सस्कारो को उलट-पलट कर क्षोभ बनाए रखती है। सब वृत्तियो मे यह मुख्य वृत्ति है। इसी के आधार पर सब अपना-अपना कार्य करती हैं। स्वप्न भी इसी के द्वारा आते है। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तीनो अवस्थाओ मे यही कार्य करती है। सात प्रकार की 'प्रान्त भूमि प्रज्ञा' भी इसी के धर्म है। इनका व्याख्यान समष्टि बुद्धि के स्थूल रूप मे देखें। चित्त और बुद्धि ज्ञान प्रधान हैं। अत. प्रान्त-भूमि प्रज्ञा दोनो के ही धर्म है। इसी प्रकार और भी बहुत से धर्म समान ही है।

१६. ऋतंभरा—और विशोका ज्योतिष्मती—ये भी चित्त के धर्म हैं। आत्म दर्शन मे दोनो सहायक है।

२० बिम्ब भाव—चित्त मे आभास पड़ने का धर्म है। आत्मा के बिम्ब को ग्रहण करता है।

शेष धर्मो की व्याख्या की आवश्यकता नही। नाम से बोध हो जाता है। इन धर्मो को लेकर ही चित्त जीवात्मा के साथ भोग और अपवर्ग देने के लिए सयुक्त होता है। जीवात्मा को अपने अन्दर धारण कर लेता है, क्योकि जीवात्मा इससे सूक्ष्म है। इसके दूसरे अहकार बुद्धि आदि करणो का सयोग होता है। यह सब मिल कर आत्मा को भोग और मोक्ष प्रदान करने मे प्रयुक्त हो जाते है। इनके साथ मिला हुआ जीवात्मा अपने को बद्ध समझ लेता है, और फिर मुक्त होने के उपाय करता रहता है। इसी प्रकार का क्रम अनादि काल से चला आ रहा है, और अनन्त काल तक चलता रहेगा।

सब चित्तो के उपादान कारण इस समष्टि चित्त मे भगवान् को व्यापक समझ कर उसकी उपासना करनी चाहिये क्योकि इस विज्ञानात्मक पदार्थ का बहुत कुछ सादृश्य है, केवल अन्तर इतना ही है कि यह ईश्वर की अपेक्षा स्थूल है। अत. स्थूल मे सूक्ष्म का

अनुभव करना चाहिये। मुण्डकोपनिषद् मे परा विद्या का वर्णन आता है। वह इसी चित्त का धर्म विशेष है जो कि असप्रज्ञात समाधि मे उत्पन्न होती है। यथा —'परायया तद क्षरमधिगम्यते।'—इस परा विद्या के द्वारा अक्षर नाश रहित ब्रह्म की प्राप्ति होती है। इस चित्त का परिणाम विशेष यह परा विद्या है। इसके द्वारा ही भगवान के दर्शन होते है। यथा—

'यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षु श्रोत्रं,
तदपाणिपादंयद् नित्यं विभुं सर्वगत सुसूक्ष्मं,
तदव्ययंयद भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीरा ।। मुण्डक०ख० १। म० ६ ॥

—वह ब्रह्म न देखा जा सकता है, न पकड़ा, और न ग्रहण किया जा सकता है, क्योकि वह मनुष्य के समान शरीर धारी नही है जिसका कोई गोत्र या ब्राह्मण आदि वर्ण हो। न उसके नेत्र है, न श्रोत्र, न हाथ, न पैर। वह नित्य है। विभु है। सब मे व्यापक अत्यन्त सूक्ष्म और नाश रहित है। जो सब पञ्चभूत आदि की योनि है, कारण है। जिसको धीर विद्वान् योगी देखते हैं। दर्शन करते है। चित्त के द्वारा अनुभव और प्रत्यक्ष रूप से साक्षात्कार करते है।'

अत यह ब्रह्म इसी विशुद्ध चित्त सत्त्व के साक्षात्कार का विषय है। योगियो को ऋतभरा प्रज्ञा द्वारा असप्रज्ञात समाधि मे इसका साक्षात्कार होता है। इसके उपरान्त ही पर वैराग्य से मोक्ष प्राप्त होता है। वास्तव मे ब्रह्म यहाँ दोनो समाधियो का विषय बन जाता है। जब इसका विज्ञान उहा पोह तर्क वितर्क से करते है, तब यह सम्प्रज्ञात समाधि का विषय होता है। वह सविचार अवस्था मे होता है, जहाँ केवल ब्रह्म के अस्ति-अस्ति का बोध होता है तब यह निर्विचार का विषय हो जाता है। जब इस निर्विचार मे इसके साक्षात्कार के अनुराग का अभाव करने लगता है क्योकि यहाँ भी रागात्मक सस्कार है, तब असम्प्रज्ञात का विषय बन जाता है।

समष्टि चित्त-मण्डल

द्वितीय रूप मे ब्रह्म विज्ञान

(समष्टि चित्त का द्वितीय रूप)

२. समष्टि चित्त के स्वरूप मे—

व्यष्टि चित्त के जिन क्रिया आदि अनेक धर्मो का वर्णन पहिले किया गया है, इन सब धर्मो का समष्टि और व्यष्टि चित्त के साथ धर्म धर्मी-भाव सम्बन्ध है। भेद होते हुए भी स्वरूप से अभेद है। अत दोनो का परस्पर स्वरूप सम्बन्ध या तादात्म्य सम्बन्ध है। इस तादात्म्य सम्बन्धमे भी ब्रह्म सूक्ष्म रूप से इन दोनो के अन्दर वर्तमान है। तथाचोपनिषद्—

'ओमित्येवध्यायथथ आत्मानं,
स्वस्ति वः परास्यय तमस॰ परस्तात् ॥

मुण्डक॰ मुण्डक २। ख० २। म० ६।

ओम् नाम से इस ब्रह्म का इस विशुद्ध चित्त सत्त्व मे ध्यान करे जोकि आत्मा रूप है, अन्धकार से रहित है, और कल्याण करने वाला यह ब्रह्म है।' अत इस समष्टि व्यष्टि चित्त मे इसका साक्षात्कार करना चाहिये। और भी कहा है। यथा—

'ज्ञानप्रसादेन विशुद्ध सत्वस्ततस्तु,
तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः ॥
मुण्डक० मुण्डक ३ । खं० १ । मं० ८॥

—जिस विशुद्ध चित्त सत्व का हम वर्णन कर रहे हैं इसी के ज्ञान रूपी गुण के द्वारा ध्यान योगी सर्वक्लेशों से मुक्त विशुद्ध ब्रह्म को देखते हैं।' इस ब्रह्म की सवत्र महिमा वर्णन की गयी है। और भी उपनिषद् ने कहा है। यथा—

'यथाऽग्निः दारुमध्यस्थो नोत्तिष्ठेन्मथनं विना ।
विना चाभ्यासयोगेन ज्ञानदीपस्तथा नहि ॥
योगशिखोपनिषद्० अ० ६ । मं० ७६॥

—जैसे लकड़ियों में अग्नि होती है पर वह विना मन्थन के रगड़ के प्रज्वलित नही होती है, इसी प्रकार विना योगाभ्यास के वह ज्ञान रूपी दीप या ब्रह्म विद्यारूपी सूक्ष्म मेधा, अथवा ऋतभरा प्रज्ञा उत्पन्न होकर ब्रह्म दर्शन कराने में समर्थ नही होती है। अतः योगी को समष्टि व्यष्टि चित्त के धर्म विशेष, सम्प्रज्ञात असम्प्रज्ञात ज्ञात समाधि में उत्पन्न प्रान्त भूमि प्रज्ञा द्वारा इस समष्टि व्यष्टि चित्त में ही ब्रह्म साक्षात्कार करना चाहिये। यह व्यष्टि समष्टि चित्त तत्त्व ब्रह्म के साक्षात्कार का सर्व श्रेष्ठ साधन है। इस विज्ञान घन में ही ज्ञान स्वरूप चेतन ब्रह्म के दर्शन ठीक रूप में हो सकते हैं। इस समष्टि चित्त के विज्ञान की अवस्था में पहुंचकर बहुत से योगियों को भ्रान्ति हो जाया करती है। वे इस तत्त्व को ही ब्रह्म समझकर उपासना किया करते है, क्योकि यह महान् भी ब्रह्म की व्यापकता में चेतनवत् सा बना हुआ है। जैसे सम्पूर्ण विश्व को इसी महत् सत्त्व के विज्ञान ने आच्छादित किया हुआ है। यह सूक्ष्म होने से आकारावत् अन्दर और वाहर व्यापक होकर ठहरा हुआ है। इस को ही ब्रह्म मान कर जिन योगियों का मोक्ष हो जाता है वे दस हजार मन्वन्तर तक इसी में निवास करते हुए इसके आनन्द का उपभोग करते है। अतः इसको ब्रह्म न समझकर इसकी महान् सूक्ष्मता में इसके प्रेरक ब्रह्म की खोज करनी चाहिये, क्योकि वह चेतन ब्रह्म इस से विलक्षण और अत्यन्त सूक्ष्म है। यह परिणामी है और ब्रह्म अपरिणामी, नित्य सदा एक रूप, सर्व विकारों से रहित विशुद्ध सत् चित् आनन्द स्वरूप है।

समष्टि चित्त मण्डल

तृतीय रूप में ब्रह्म-विज्ञान

(समष्टि चित्त का तृतीय रूप)

३. समष्टि चित्त के सूक्ष्म रूप में—

इस समष्टि चित्त को समष्टि विशुद्ध सत्त्व प्रधान भी कहते हैं। यह तीनों गुणों का कार्य-विशेष है। यही समष्टि चित्त की सूक्ष्म अवस्था है। व्यष्टि चित्त इस समष्टि का कार्य है। यही व्यष्टि चित्त की सूक्ष्म अवस्था है। इस प्रकार सामान्य तीनों गुण और विशेष समष्टि चित्त सत्त्व, और समष्टि चित्त सामान्य तथा व्यष्टि चित्त विशेष संघात को प्राप्त होकर भेदानुगत समुदाय ही अयुत सिद्ध द्रव्य बनता है।

अनुभव करना चाहिये। मुण्डकोपनिषद् मे परा विद्या का वर्णन आता है।
का धर्म विशेष है जो कि असप्रज्ञात समाधि मे उत्पन्न होती है। यथा -
क्षरमधिगम्यते।'—इस परा विद्या के द्वारा अक्षर नाश रहित ब्रह्म की प्र
इस चित्त का परिणाम विशेष यह परा विद्या है। इसके द्वारा ही भगवान
यथा—

'यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षु श्रोत्र,
तदपाणिपादयद् नित्यं विभुं सर्वगत सुसूक्ष्मं,
तदव्ययमद् भूतयोनि परिपश्यन्ति धीरा ॥ मुण्डक०

—वह ब्रह्म न देखा जा सकता है, न पकड़ा, और न ग्रहण किया जा
वह मनुष्य के समान शरीर धारी नही है जिसका कोई गोत्र या ब्राह्मण
न उसके नेत्र है, न श्रोत्र, न हाथ, न पैर। वह नित्य है। विभु है। सब
सूक्ष्म और नाश रहित है। जो सब पञ्चभूत आदि की योनि है, व
धीर विद्वान् योगी देखते है। दर्शन करते है। चित्त के द्वारा अनुभव
साक्षात्कार करते है।'

अत यह ब्रह्म इसी विशुद्ध चित्त सत्त्व के साक्षात्कार का
को ऋतभरा प्रज्ञा द्वारा असप्रज्ञात समाधि मे इसका साक्षात्का
उपरान्त ही पर वैराग्य से मोक्ष प्राप्त होता है। वास्तव मे ब्रह्म
का विषय बन जाता है। जब इसका विज्ञान उहा पोह तर्क वितर्क
सम्प्रज्ञात समाधि का विषय होता है। वह सविचार अवस्था
ब्रह्म के अस्ति अस्ति का बोध होता है तब यह निर्विचार का वि
इस निर्विचार मे इसके साक्षात्कार के अनुराग का अभाव कर
भी रागात्मक सस्कार है, तब असम्प्रज्ञात का विषय बन जाता।

समष्टि चित्त-मण्डल
द्वितीय रूप मे ब्रह्म विज्ञान
(समष्टि चित्त का द्वितीय रूप)

२ समष्टि चित्त के स्वरूप मे—

व्यष्टि चित्त के जिन क्रिया आदि अनेक धर्मो का
इन सब धर्मो का समष्टि और व्यष्टि चित्त के साथ धर्म धर्मी
हुए भी स्वरूप से अभेद है। अत दोनो का परस्पर स्वरूप
है। इस तादात्म्य सम्बन्धमे भी ब्रह्म सूक्ष्म रूप से इन दो
तथाचोपनिषद्—

'ओमित्येवध्यायथय
स्वस्ति व परास्यय तमस'

ओम् नाम से इस ब्रह्म का इस विशुद्ध चित्त स
अन्धकार से रहित है, और कल्याण करने वाला
चित्त मे इसका साक्षात्कार करना चाहिये। और

भगवती प्रकृति देवी परार्थकरी है। ये अपने गुणों और कार्यों को साथ लेकर पुरुष के लिये भोग प्रदान करती है। प्रत्येक पदार्थ में इसका अनुपतन होता है। इस लिये यहाँ समष्टि और व्यष्टि चित्र मे अनुपतन हुआ है। यही चित्त का अन्वय रूप है।

हमने सत्वरज तम तीनों पदार्थों में अन्वय इस लिये स्वीकार नही किया है, क्योंकि वास्तव में साक्षात् रूप से प्रकृति ही परिणामिनी और कार्य वाली होने से पुरुष के लिये स्वयं ही भोग और अपवर्ग प्रदान करने के लिये उपस्थित हुई है। यथा—

'प्रधानस्य सृष्टिः परार्थं स्वयमप्यभोक्तृत्वा दुष्ट्रकुङ्कुमवहनवत्

सांख्य दर्शन अ० ३। सू० ५८॥

—प्रकृति की सृष्टि दूसरे के लिये है, क्योंकि जड होने से इस में भोक्तृत्व धर्म नही। जैसे ऊण्ट केसर के भार को उठा कर ले जाता है, पर उसे उसकी गन्ध का लाभ नही।

समष्टि चित्तमण्डल

पंचम रूप में ब्रह्म विज्ञान

(समष्टि चित्त का पचम रूप)

५. समष्टि चित्त के अर्थवत्त्व रूप में—

इस चित्त में सबसे महती अर्थवत्ता यह है कि—

द्रष्टृदृश्योपरक्तं चित्तं सर्वार्थम्

योग० कैल्यपाद० सू० २३।

—इस चित्त मे प्रत्येक पदार्थ के प्रतिविम्व (आभास) को ग्रहण करने की योग्यता है। जब विषय इसके पास आता है, विषय का प्रतिविम्व इसमें पड़ता है, और जब आत्मा का इसके साथ संयोग होता हैं तब आत्मा का प्रतिविम्ब इसमे पडता है। यह स्फटिक मणि के समान है। इसके पास कई प्रकार के पुष्प रख दिये जाये, तो वह उतने ही रंग रूपो मे भासने लगती है। यही दशा चित्त की है। यह अपने को ग्रहीतृ-ग्रहण-ग्राह्यात्मक समझने लगता है क्योंकि इसमें एक काल में ही आत्मा का आभास पड़ जाता, विषय और इन्द्रियों का भी। इस लिये इसमें सर्वार्थता का विशेष धर्म है।

प्रकृति अपने सब कार्यों को साथ लेकर प्रयोजन सिद्ध करने वाली अर्थवती बनी। इसका कार्य होने से चित्त सत्त्व मे भी यह धर्म आया। अतः समस्त प्राणियो के भोग और अपवर्ग के लिये यह समष्टि चित्ततत्त्व बना है। यह विज्ञान का सर्वप्रथम भण्डार है। इसके द्वारा ही सर्व प्राणी तृप्त होते हैं। यही वास्तव मे सबके जीवन का श्रेष्ठतम आधार है। यही प्राणियो को प्रकाश की ओर ले जाता है। यह अनित्य होते हुए भी नित्य के समान बना हुआ है। सर्व संसार के मानव इस विज्ञानात्मक चित्त की ही महत्ता वर्णन करते हैं। यह अन्धों के लिए नेत्र है और और अज्ञानियों के लिए ज्ञान रूप प्रकाश है। यथा—

'अज्ञानादेव संसारो ज्ञानादेव विमुच्यते।
ज्ञानस्वरूपमेवादौ ज्ञानं ज्ञेयैकसाधनम्॥'

योग तत्त्वोपनिषद्। मं० १६॥

इस सूक्ष्मावस्था मे भी ब्रह्मानुभूति करनी चाहिये, क्योकि यह ब्रह्म इससे भी अति सूक्ष्म है। उपनिषद् ने भी कहा है—सूक्ष्मात् सूक्ष्मतर विभाति।'—वह ब्रह्म सूक्ष्म से भी सूक्ष्म होकर प्रकाशमान हो रहा है। ध्यान विन्दूपनिषद् मे कहा है। यथा—

पुष्पमध्ये यथा गन्ध, पयोमध्ये यथाघृतम्।
तिलमध्ये तथा तैलम्, पाषाणेष्विव काञ्चनम् ॥५॥
एव सर्वाणि भूतानि, मणौसूत्रमिवात्मनि।
स्थिर-बुद्धिरसमूढो, ब्रह्मविद्ब्रह्मणि स्थित ॥६॥

—जैसे पुष्प मे गन्ध व्याप्त है, दूध मे घृत व्याप्त है, तिलो मे तैल व्याप्त है, और पत्थर मे सोना। इसी प्रकार सब भूतो मे, माला के मणको मे पिरोये हुए सूत्र के समान वह भगवान् ओत प्रोत होकर ठहरा हुआ है। इसी प्रकार समष्टि चित्त के अन्दर भी सूक्ष्म-रूप से वह ब्रह्म ओत प्रति होकर ठहरा हुआ है। योगी को चाहिये कि समाहित चित्त होकर सम्प्रज्ञात समाधि द्वारा इस तत्त्व के मध्य मे अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से ब्रह्म का साक्षात् करे। तथा च उपनिषद्—

'आत्मा वारे द्रष्टव्य श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो
मैत्रेय्यात्मनो वारे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेद सर्वविदितम्''

बृहदारण्यकोपनिषद् ० अ० २। ब्रा० ४। म० ५।

—याज्ञवल्क्य मैत्रेयी को उपदेश देते हैं— हे देवि! यह आत्मा देखने योग्य है। देखना चाहिये। श्रवण करना चाहिये। तदनन्तर मनन करना चाहिये, और निदिध्यासन से हृदयगम करना चाहिये। हे मैत्रेयी! 'आत्मा-दर्शन, श्रवण और मनन से विज्ञान के द्वारा जानने योग्य है।'

अत योगी को इस विज्ञानात्मक व्यष्टि चित्त से, इसके कारण समष्टि चित्त की सूक्ष्मता मे प्रवेश करके इसके भी स्वरूप को जानना चाहिये और ब्रह्म के स्वरूप का भी साक्षात् करना चाहिये। अत्यन्त ही सूक्ष्म यह विज्ञान है।

विज्ञानवादी बौद्धो ने तो इस समष्टि महत् सत्त्व पर आकर अपने विज्ञान को समाप्त कर दिया। इसके आगे अन्य कोई पदार्थ नही है। ऐसी भावना उनकी सदा के लिये हो गई जगत् को भी उन्होने विज्ञानात्मक माना है। इस अवस्था मे आकर बडे बडे भ्रान्त हो जाते है। अत योगी को चाहिये कि सूक्ष्म रूप से ब्रह्म की चेतना का साक्षात करे, क्योकि इस समष्टि सत्त्व मे या इस अनन्त समष्टि चित्त मे वे अन्त ब्रह्म का अनुभव करना है।

समष्टि चित्त मण्डल

चतुर्थ रूप मे ब्रह्म-विज्ञान

(समष्टि चित्त का चतुर्थ रूप)

४ समष्टि चित्त के अन्वय रूप मे—

इस विशुद्ध समष्टि चित्त का उपादान कारण तीनो गुण हैं। अन्वय इसका प्रकृति मे होता है। सबका उपादान कारण तो प्रकृति ही है। इस चतुर्थ अवस्था का अन्वय प्रकृति मे होता है।

भगवती प्रकृति देवी परार्थकरी है। ये अपने गुणों और कार्यों को साथ लेकर पुरुष के लिये भोग प्रदान करती है। प्रत्येक पदार्थ मे इसका अनुपतन होता है। इस लिये यहाँ समष्टि और व्यष्टि चित्र में अनुपतन हुआ है। यही चित्त का अन्वय रूप है।

हमने सत्वरज तम तीनों पदार्थों में अन्वय इस लिये स्वीकार नहीं किया है, क्योंकि वास्तव मे साक्षात् रूप से प्रकृति ही परिणामिनी और कार्य वाली होने से पुरुष के लिये स्वयं ही भोग और अपवर्ग प्रदान करने के लिये उपस्थित हुई है। यथा—

'प्रधानस्य सृष्टिः परार्थं स्वयमप्यभोक्तृत्वा दुष्ट्रकुङ्कुमवहनवत्

सांख्य दर्शन अ० ३। सू० ५८॥

—प्रकृति की सृष्टि दूसरे के लिये है, क्योंकि जड़ होने मे इस मे भोक्तृत्व धर्म नहीं। जैसे ऊण्ट केसर के भार को उठा कर ले जाता है, पर उसे उसकी गन्ध का लाभ नहीं।

समष्टि चित्तमण्डल

पंचम रूप में ब्रह्म विज्ञान

(समष्टि चित्त का पंचम रूप)

५. समष्टि चित्त के अर्थवत्त्व रूप में—

इस चित्त मे सबसे महती अर्थवत्ता यह है कि—

द्रष्टृदृश्योपरक्तं चित्तं सर्वार्थम्

योग० कैवल्यपाद० सू० २३।

—इस चित्त में प्रत्येक पदार्थ के प्रतिबिम्ब (आभास) को ग्रहण करने की योग्यता है। जब विषय इसके पास आता है, विषय का प्रतिबिम्ब इसमें पडता है, और जब आत्मा का इसके साथ संयोग होता हैं तब आत्मा का प्रतिबिम्ब इसमे पड़ता है। यह स्फटिक मणि के समान है। इसके पास कई प्रकार के पुष्प रख दिये जाये, तो वह उतने ही रंग रूपों में भासने लगती है। यही दशा चित्त की है। यह अपने को ग्रहीतृ-ग्रहण-ग्रह्यात्मक समझने लगता है क्योंकि इसमें एक काल में ही आत्मा का आभास पड़ जाता, विषय और इन्द्रियों का भी। इस लिये इसमे सर्वार्थता का विशेष धर्म है।

प्रकृति अपने सब कार्यों को साथ लेकर प्रयोजन सिद्ध करने वाली अर्थवती बनी। इसका कार्य होने से चित्त सत्त्व मे भी यह धर्म आया। अतः समस्त प्राणियों के भोग और अपवर्ग के लिये यह समष्टि चित्ततत्त्व बना है। यह विज्ञान का सर्वप्रथम भण्डार है। इसके द्वारा ही सर्व प्राणी तृप्त होते हैं। यही वास्तव मे सबके जीवन का श्रेष्ठतम आधार है। यही प्राणियों को प्रकाश की ओर ले जाता है। यह अनित्य होते हुए भी नित्य के समान बना हुआ है। सर्व संसार के मानव इस विज्ञानात्मक चित्त की ही महत्ता वर्णन करते है। यह अन्धों के लिए नेत्र है और और अज्ञानियो के लिए ज्ञान रूप प्रकाश है। यथा—

'अज्ञानादेव संसारो ज्ञानादेव विमुच्यते।
ज्ञानस्वरूपमेवादौ ज्ञानं ज्ञेयैकसाधनम्॥'

योग तत्त्वोपनिषद्। मं० १६॥

—अज्ञान से ससार मे प्रवृत्ति होती है, और ज्ञान से मोक्ष प्राप्त होता है। यह जीवात्मा पहले ज्ञानस्वरूप ही है इस ज्ञेय के लिये ज्ञान ही साधन बनता है। इस जीवात्मा की भ्रान्ति दूर करने के लिये क्योंकि यह ज्ञानी होते हुए भी अपने को अज्ञानी समझने लगा है।'

यह २६वा पदार्थ है, अब तक जितने भी पदार्थों का वर्णन किया गया है, ये सब समष्टि और व्यष्टि रूप से देव, मनुष्यो, और इतर प्राणियो के भोग और मोक्ष के साधन सिद्ध हुए हैं। वास्तव मे सब पदार्थों की रचना ही इनके लिये हुई है। यही मुख्य प्रयोजन सृष्टि रचना का है।

इस समष्टि चित्त के अर्थवत्त्व मे ब्रह्म का आरोप कर के इसकी उपासना और ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। यह समष्टि चित्त हिरण्यगर्भ के रूप मे सब व्यष्टि चित्तो का उपादान कारण है। अत इसकी कार्य कारण दोनो अवस्थाओ मे ब्रह्म का साक्षात्कार करना चाहिये। ब्रह्म इन दोनो की प्रत्येक अवस्था मे अपनी सर्वव्यापक रूपता से ओत-प्रोत होकर ठहरा हुआ है। अपने साक्षी रूप से प्रत्येक अवस्था को देख रहा है। जान रहा है चित्त सत्त्व अपनी कारण रूप प्रकृति से ज्ञान के रूप मे उत्पन्न होकर सारे विश्व मे ज्ञान का प्रसार कर रहा है। सर्वत्र सब चेतनाओ को तर्पण कर रहा है। इसके साथ मिली हुई ब्रह्म की चेतना इसे विशेष रूप से चेतनवत् सा बनाये हुए है। इसको सदा अपनी चेतना से तर्पण करती रहती है। इसमे जो विशेष आलोक है वह इस चेतन ब्रह्म के ही सम्पर्क से आया है। तथा चोपनिषद्—

'एको देव सर्वभूतेषु गूढ , सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्ष सर्वभूताधिवास साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च॥
श्वेतश्वतरो० अ० ६। म० ११॥

—वह ब्रह्म एक देव के रूप मे सब भूतो मे छिपा हुआ है, अत्यन्त गहन है, गूढ है। सर्व व्यापी है। सर्व भूतो का अन्तरात्मा है। सब प्राणियो के कर्मो का स्वामी है। कर्म-फल विभक्त कराने मे सहायक है। चेतनत्वेन सब जीवो को साक्षी रूप से देखता रहता है। चेतन है, ज्ञानस्वरूप है—क्योंकि जहाँ चेतना है वहाँ ज्ञान भी है। अकेला है। मोक्ष रूप है। गुणो से रहित है। गुणो का आरोप इस मे किया जाता है। वास्तव मे निर्गुण है। तथा च—

'नित्योनित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां योविदधाति कामान्।
तत्कारण साख्ययोगाधिगम्य, ज्ञात्वा देवमुच्यते सर्वपाशै ॥'
श्वेताश्वतरो ० अ० ६। म० १३॥

—नित्य पदार्थो मे यह भी नित्य है। नित्यो का भी नित्य है। चेतनो का चेतन स्वामी है। अनेको मे एक है। जो सब जीवो के कर्मो को विभक्त कराता है। निमित्त कारण ब्रह्म है। साख्य और योग ज्ञान के द्वारा प्राप्त किया जाता है। साख्य ज्ञान और योग-समाधि द्वारा जाना जाता है इस पूज्य देव सर्व वन्दनीय भगवान् को योगिजन जान कर सब पापो, दु खो, और क्लेशो से मुक्त हो जाते है।'

इस विज्ञान और विज्ञानात्मक ब्रह्म की उपनिषद् ने बहुत प्रशसा की है। यथा—'विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात् ।'—विज्ञान को ही ब्रह्म जाने। अर्थात् विज्ञान रूप ही ब्रह्म है। अन्यच्च—

'ब्रह्मविदाप्नोति परमम् ।' ब्रह्म का जानने वाला मोक्ष को प्राप्त होता है।

इति समष्टि चित्त मण्डलम् ।

इति तृतीयाध्याये पञ्चमः खण्डः।

इत्यष्टममावरणम् ॥

तृतीयध्याय : समाप्त. ॥

चतुर्थाध्याय

प्रकृति की सृष्टि

उपासना और ज्ञान

योगिन् ! तृतीय अध्याय मे व्याख्यात त्रिगुणात्मक सृष्टि के समष्टि मण्डलो का आपने साक्षात्कार कर लिया है। जिस महाचेतन सत्ता के सन्निधान से चेतन से बने यह मण्डल अपने कारण कार्यात्मक चक्र को चला रहे है, उस सर्वव्यापक भगवान् का भी मण्डलो के साक्षात्कार के साथ विज्ञान एव दर्शन प्राप्त हो गया है। ज्ञान की तीक्ष्ण दुधारी से अन्तिम आवरणो को विदीर्ण करने के लिये प्रकृति की सृष्टि मे प्रवेश कीजिये।

मूल प्रकृति प्रभु के सान्निध्य से चेतन सी बनी जब परिणाम भाव को प्राप्त होती है, तब सर्वप्रथम क्रमश आकाश, दिशा, काल, महत्सत्त्व, महत् रजस् और महत्तमस् कार्य रूप मे परिणत होते है। ये सब प्रकृति के कार्य हैं। प्रकृति से ही परिणाम भाव को प्राप्त होते है। ये स्वतन्त्र पदार्थ या गुण नही है। ये सब प्रकृति के ही परिणाम है। इनके विवेचन तथा तर्क-प्रमाण-सहित ऊहापोह तत्तत् प्रकरण मे दिया जायेगा।

स्थूल से सूक्ष्मता की ओर चलने के कारण विपरीत क्रम से इस अध्याय मे ६ खण्डो मे इन छ पदार्थों का व्याख्यान एव उनमे ब्रह्म के साक्षात्कार का विस्तृत वर्णन रहेगा, जिसमे इन पदार्थो के गुण, धर्म, कार्य, भोग और अपवर्ग की निमित्तता दर्शायी जायेगी।

इनको गुण या स्वतन्त्रपदार्थ स्वीकार न करके प्रकृति का कार्य सिद्ध करना, यह हमारा केवल शास्त्रीय ऊहापोह ही नही है, हमारा योगज साक्षात्कार इसी तथ्य को सिद्ध करता है। इसलिये हमे इस योगज साक्षात्कार को अन्य शास्त्रकारो का अभिमत न होते हुए भी रखना पडा, हम किसी का खण्डन या मण्डन अभिप्रेत नही है। अनुभूत सत्य का प्रकाशन ही मानव स्वीकार करते है। इसलिये इन तथ्यो का प्रकाश करना हमने अपना कर्त्तव्य समझा है। अनेक वर्षो तक हिमालय के हिमाछन्न परम पुनीत प्रागण मे सम्प्रज्ञात समाधि मे हमने इनका निर्णय किया है। इसीलिये इनको प्रकाशित करना मानव मात्र की दृष्टि से उपयोगी समझा है। यदि कोई साक्षात्कृत् धर्मा इस पर विचार विमर्श उपस्थित करेगे तो उस पर अवश्य ध्यान दिया जायेगा। केवल शाब्दिक आडम्बर एव विद्वत्ता प्रदर्शन मे हम विश्वास नही रखते हैं। योगज साक्षात्कार अक्षर-पण्डित्य गम्य नही है। भारवि के शब्दो मे कह सकते हैं—

> अस्ति भविष्यति वा कोऽपि मम समान धर्मा,
> विपुला च पृथिवी निरवधिश्च काल ॥'

—हमारे विचार वाले आज भी हो सकते है, अथवा भविष्यन्काल मे उत्पन्न हो सकते हैं। पृथिवी विशाल है, और समय की कोई परिधि नही।'

अब आप साधना के शिखर अन्तिम खण्ड पर आ पहुँचे हैं। साधना मे एकनिष्ठा से डटे रहिये। इसको सफल करने के लिये अपने चिर अभ्यस्त, परीक्षित परम वैराग्य को दृढ़तम बनाये रखिये। यही आपको अभिप्रेत लक्ष्य तक पहुँचायेगा।
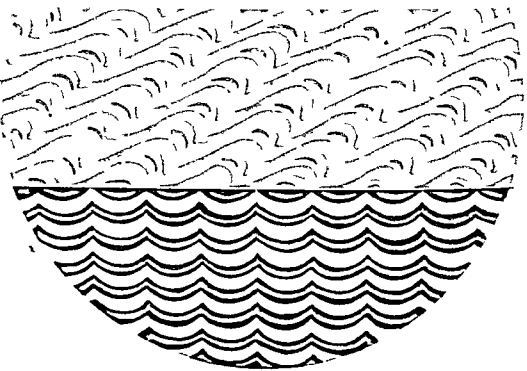
चित्र सं० १४
प्रकृति से उत्पन्न होते हुए सत्व रज तम पदार्थ।

प्रकृति की सृष्टि

प्रथम खण्ड

७ वा आवरण

समष्टि महत् तमस् मण्डल

प्रथम रूप मे ब्रह्म-विज्ञान

(समष्टि महत्तमस् का प्रथम रूप)

१. समष्टि महत्तमस् के स्थूल रूप मे—

समष्टि महत् तमस् प्रकृति का कार्य है। यह एक पदार्थ या द्रव्य ही है। यह समष्टि अहंकार का मुख्य रूप से कारण है। इसको शास्त्रो मे गुण नाम से लिखा गया है कई आचार्यों ने इन्हे प्रकृति का गुण विशेष ही माना है परन्तु यह प्रकृति का इस प्रकार का गुण नही है जैसे कि अग्नि का प्रकाश गुण है या वायु का स्पर्श है गुण गुणी का अभेद होने से सभवत इनको गुण कह दिया हो। हैं यह द्रव्यात्मक ही, ऐसा सर्वस्वीकृत सिद्धान्त है। इसके गुणो की व्याख्या न करते हुए केवल शब्द ही दे रहे हैं। क्योकि शब्द सरल हैं।

समष्टि महत् तमस् के गुण—

१. स्थिति	२ अज्ञान	३ बल	४. गुरुत्व
५ मोह	६. अप्रवृत्ति	७ स्तब्धता	८ निद्रा
९ आलस्य	१० प्रमाद	११. मद	१२ विषाद
१३ दीर्घ सूत्रता	१४ शठता	१५ भय	१६ विप्रलभ
१७ नास्तिक्य	१८ कौटिल्य	१९ कार्पण्य	२०. विस्मृति
२१ जडता	२२. अवष्टम्भकत्व		

इनमे से स्थिति, बल, अवष्टम्भकत्व, गुरुत्व, जडता, अज्ञान गुणो के लिये हुए मण्डल उत्पन्न होता है, शेष गुणो को व्यवहार दशा मे अन्यो का सहकारी होकर प्रकट करता है। जिन जिन पदार्थों के निर्माण मे यह उपादान या सहकारी कारण होता जायेगा उन उन पदार्थो मे यह गुण प्रकट होते जायेगे।

हम भी इन तीनो को द्रव्य मानते हैं, और अलग-अलग पदार्थ मानते है। जब इनकी प्रकृति से उत्पत्ति हुई है, तो ये कार्य ही हैं। कार्य होने से द्रव्य है। द्रव्य के रूप मे ही इन्होने आगे सर्व पदार्थों का निर्माण करना है। चित्र सख्या १४ मे इन तीनो के स्वरूप का दर्शन करें।

चित्र स० १४ में महत् सत्व महत् रजस् महत् तमस् तीनो पदार्थों के स्वरूप का दिखाकर इनमे विशेष क्रिया द्वारा लहरें या कम्पन दिखाए गए हैं, क्योंकि ये गति शील होकर अपने कार्यों को उत्पन्न करने जा रहे हैं।

न० १ मे महत् सत्व परिणाम भाव को प्राप्त होकर समष्टि चित्त को उत्पन्न करने जा रहा है। जो सर्व व्यष्टि चित्तों का उपादान कारण बनेगा।

न० २ म महत् रज ब्रह्म के सयोग मे कम्पायमान होकर समष्टि बुद्धि तत्व को उत्पन्न करेगा, जाकि सम्पूर्ण विश्व के प्राणियो की व्यष्टि बुद्धियो का उपादान कारण होगा।

(शेष पृष्ट १७२ पर)

तीनो गुण द्रव्य हैं

साख्य दर्शन मे एक सूत्र दिया है—'सत्त्व रजस्तमसा साम्यावस्था प्रकृति, प्रकृतेमहान्०' इत्यादि। सत्त्व रजस् तमस् की साम्यावस्था का नाम प्रकृति है। जब ये गुण परिणाम रूप विषमता को छोड समान भाव को प्राप्त हो जाते हैं इनकी साम्यावस्था का नाम ही प्रकृति है। अब शका होती है, कि जब ये गुण समान भाव को प्राप्त हो जाते हैं उस समय ये ही प्रकृति रूप हैं या प्रकृति इन से भिन्न द्रव्य है। इसका उत्तर स्पष्ट है, कि जब हम इनको कार्य मानते है तो प्रकृति को इनका उपादान कारण ही मानना पडेगा। अत इनका उपादान कारण इन से भिन्न प्रकृति ही है। साम्यावस्था का यहा यही तात्पर्य है, कि जब ये तीनो पदार्थ प्रलय काल की अवस्था मे स्थूल रूप से परिणत होकर सूक्ष्म रूप मे अपने कारण प्रकृति मे जाकर ठहर जाते है तब कारण रूप ही हो जाते है। कार्य रूप विषमता वहाँ जाकर समाप्त हो जाती है। समान भाव को प्राप्त हो जाते हैं। इस साम्यावस्था का नाम प्रकृति है। इस अवस्था म प्रकृति में किसी भी प्रकार की कार्यरूप विषमता नही रहती है। सब प्रकार के कार्यात्मक क्षोभ या परिणाम समाप्त हो जाते है। अत प्रकृति तीनो सत्त्व रज तम पदार्थों से भिन्न ही कारण रूप पदार्थ है और ये इसके काय है। यदि इनको गुण ही मान लिया जाये जैसे पृथिवी का गुण गन्ध है तब ये किसी भी पदार्थ के आरम्भक नही हो सकते। क्योकि द्रव्य ही अपने कायरूप पदार्थ् का आरभक होता है। जब इनमे सयोग, विभाग, लघुत्व चलत्व, गुरुत्वादि धम है तब तो यह द्रव्य ही सिद्ध होते है। पुरुष के बन्ध का हेतु होने से औपचारिक रूप से इनके लिये गुण शब्द का प्रयोग कर दिया है, वास्तव म है ये द्रव्य ही।

इनका प्रकृति के साथ कार्य कारण भाव सम्बन्ध है। यह समष्टि तम अपने सहयोगी अपने सत्त्व रजस द्रव्य के साथ मिलकर उपादान और सहकारी कारण रूप म कार्यो का आरभक होता है। हमने प्रकृति के ६ पदार्थ जो इसके मुख्य साक्षात् रूप से कार्य हैं—का विस्तार पूवक वणन किया है। ये है १ तम २ रज ३ सत्त्व ४ काल ५ दिशा ६ आकाश। इन ६ पदार्थो मे चतुर्थ अन्वयरूप नही होता है, क्योकि प्रकृति से ऊपर और कोई उपादान कारण के रूप मे पदार्थ नही है। यही अन्तिम उपादान कारण है। इसमे तीसरी सूक्ष्म अवस्था ही सिद्ध होती है। चौथी अन्वयरूप अवस्था नही बनती है। यदि इस प्रकृति को ही अन्वयी मानकर अन्वयरूप को सिद्ध किया जाये तब सूक्ष्म रूप तीसरी और अन्वय रूप चौथी मे कोई भेद नही रहता। अत इनकी अन्वय अवस्था सिद्ध नही होती।

न० ३ म महत्तम जो कि तीनो प्रकार के अहकारों को उत्पन्न करने जा रहा है ये तीनो अहकार ही १७ पदार्थों के उपादान कारण बनेंगे। यह सम्पूण अहकारी सृष्टि होगी। इस महत् तम मे ब्रह्म के सान्निध्य से महान् क्षोभ उत्पन्न होकर महान् तरगें उत्पन्न हो रही हैं जो कि सम्पूण विश्व को कम्पायमान बनाए हुए हैं यह कारण रूप से काय भाव को प्राप्त होकर तीनो प्रकार के अहकारो को उत्पन्न करेगा चित्रो की सख्या अधिक हो जाने के भय से तीनो पदार्थों को एक ही चित्र में दिखाया गया है।

(शका) जैसे एक स्त्री किसी के लिये बहिन, किसी के लिए पत्नी, अन्य की लडकी और किसी की भूआ के रूप मे सिद्ध होती है, इसी प्रकार क्या प्रकृति सूक्ष्म रूप और अन्वयी रूप मे नही हो सकती है ?

(समाधान) यहाँ एक प्रकृति का ही सम्बन्ध सूक्ष्म और अन्वय रूप मे है। जो कि दोनो अवस्थाओ मे उपादान कारण के रूप मे सिद्ध होता है। परन्तु स्त्री तो सब के प्रति उपादान कारण नही। भाई, पति, भतीजे के प्रति स्त्री तो उपादान कारण नही है। स्त्री मे तो एक रिश्ता सिद्ध किया जा रहा है। न कि कार्य कारण भाव सिद्ध कर रहे है। सूक्ष्म रूप और अन्वय रूप तो कार्य कारण भाव सिद्ध कर रहे हैं, सूक्ष्म रूप तो प्रत्यक्ष ही कारण है, अन्वयरूप परम्परा से कारण है। अतः स्त्री का दृष्टान्त दृष्टान्ताभास है। इन छ पदार्थों के प्रति केवल प्रकृति ही मुख्य रूप से उपादान कारण है। अन्य कोई सहकारी कारण भी नही है। केवल ब्रह्म निमित्त कारण सहकारी है। प्रकृति सर्वगुण सम्पन्ना है। इसे किसी भी सहकारी कारण की आवश्यकता नही।

सब पदार्थों मे स्थिति, बल, गुरुत्व आदि धर्म हैं वे सब इस तम द्रव्य के ही है। प्रलयकाल मे प्रकृति मे विशेष क्रिया का अभाव हो जाता है। उस समय यह तम ही अपने कारण मे विलीन होकर स्थिति का हेतु बना रहता है। प्राणियो मे जो अज्ञान आदि धर्म वर्तमान हैं, वे सब इसी के धर्म हैं। अत. यह तम. द्रव्य सब मे अनुपतित हुआ है।

इस तम का धर्म स्थिति है या यह स्वयं स्थिति या बल शील है, इसमे भगवान् का आरोप करके या इसी को भगवान् का मन्दिर समझकर या इसमे ईश्वर का व्याप्य व्यापक भाव समझ कर उपासना और विज्ञान करना चाहिये। इसके अन्दर व्याप्त होकर भगवान् सबल बना हुआ है अन्यथा भगवान् तो निर्गुण है। उसमे जो बल रूप धर्म आया है वह इस तम का ही बल आरोपित किया गया है। ईश्वर मे जो निष्क्रिय रूप गुण का प्रयोग किया गया है, वह भी इस तम के आरोप से हुआ है, क्योकि तम भी निष्क्रिय है, अत. योगी को समाधि द्वारा इस तम पदार्थ के अन्दर ब्रह्म का आरोप करके इसी को ब्रह्म की मूर्ति समझकर इसकी उपासना करनी चाहिये। इसका विज्ञान प्राप्त करना चाहिये, क्योकि मूर्तिमान् ब्रह्म ही दर्शन और प्रत्यक्ष का विषय बन सकता है। उपनिषदो मे जैसे सूर्य, आकाश आदि, मे ब्रह्म का आरोप करके उपासना और विज्ञान का वर्णन किया गया है, इसी प्रकार यहाँ भी इन तीनो गुणो मे आरोप करके ब्रह्म की उपासना और विज्ञान का वर्णन समझें। यह उपासना और विज्ञान उससे सूक्ष्म और महान् है।

समष्टि महत्तमस् मण्डल

द्वितीय रूप मे ब्रह्म-विज्ञान

(समष्टि महत्तमस् का द्वितीय रूप)

२. समष्टि महत्तमस् के स्वरूप में—

समष्टि तम और इसके गुणो का परस्पर धर्म धर्मी भाव सम्बन्ध है। जब इस की उत्पत्ति होती है, अपने अनेक गुणो को साथ लिये उत्पन्न होता है। इसके उत्पत्ति-

काल मे इसके ये सब गुण या धर्म क्रम पूर्वक प्रकट होते है। एक क्षण मे तो यह उत्पन्न नही होता है, उत्पन्न होने मे भी समय लगता है। इस अवसर पर ये शनै -शनै क्रमपूर्व प्रकट होते रहते हैं। इन सब धर्मो का इसके साथ स्वरूप सम्वन्ध वना रहता है। ये इससे कभी अलग नही होते है। दोनो का परस्पर अभेद है। इस अभेद से ही हम इसको सम्वाय सम्वन्ध भी कहते हैं।

इस स्वरूप सम्बन्ध मे अर्थात् परिवर्तन होते हुए धर्मो के काल मे ब्रह्म की सत्ता और वर्त्तमानता का अनुभव करना चाहिये। इस विषय मे महोपनिषत् का यह मन्त्र प्रमाण है। यथा च—

'एकं ब्रह्म चिदाकाश, सर्वात्मकमखण्डितम्।
इति भावय यत्नेन, चेतश्चाञ्चल्यशान्तये॥ अ० ५। म० ५६॥

—ब्रह्म एक है। चेतन है। आकाश के समान व्यापक है। सब पदार्थो मे स्वरूप से अखण्डित होकर ठहरा हुआ है। अपने चेतस् की चञ्चलता की शान्ति के लिये—विक्षिप्ता को दूर करने के लिये सर्व व्यापक भगवान् की उपासना और आराधना करनी चाहिये।

ब्रह्म विज्ञान के विषय मे और भी कहा है यथा—

'एषा ब्राह्मी स्थिति स्वच्छा निष्कामा विगतामया।
आदाय विहरन्नेव, सकटेषु न मुह्यति॥
महोपनिषद् अ० ६। म० ७३॥

—जिसकी सब कामनायें शान्त हो गयी हैं, जो निष्काम भाव से ब्रह्म मे सदा अपनी स्थिति को वनाये रखता है, जो सब रोगो से मुक्त हो गया है, जिसके सब क्लेश दूर हो गये हैं, वह पुन जन्म मरण के सकट मे नही पडता है, दुनियावी सकटो मे नही फसता है।'

अत निष्काम भाव से ब्रह्म की उपासना और विज्ञान प्राप्त करना चाहिये। तव ही जन्म मरण के वन्ध से मुक्त होकर ब्रह्म मे स्थिति हो जाती है। सदा के लिये मुक्त हो जाता है।

समष्टि महत्तमस् मण्डल

तृतीय रूप मे ब्रह्म विज्ञान

(समष्टि महत्तमस् का तृतीय रूप)

३. समष्टि महत्तमस् के सूक्ष्म रूप मे—

इस समष्टि तमस् मण्डल का कारण प्रकृति है। अत इसी मे इसकी सूक्ष्मता की परिसमाप्ति होती है। प्रकृति सामान्य है, और यह तम विशेष है। अत सामान्य विशेष का समुदाय ही अयुत सिद्ध द्रव्य वनता है। यह तम का तीसरा सूक्ष्म रूप है।

इस कार्य कारण मे और इसके सूक्ष्म सम्बन्ध मे ब्रह्म की अनुभूति होनी चाहिए। इस तम की सूक्ष्म अवस्था मे ब्रह्म का आरोप करके इसकी उपासना करनी चाहिए। इसमे इस वेद वाक्य के आधार पर ब्रह्म का साक्षात्कार होगा। यथा—

आदित्यवर्णं तमस परस्तात् ।'—वह भगवान् इस तम मे आरोप किया हुआ जब उपासना और विज्ञान का विषय बनता है । तब इस तम से भी परे अर्थात् इस अन्धकार से परे, इन के आगे सूर्य के समान प्रकाशमान वह ब्रह्म प्रतीत होगा । इस ज्योतिर्मय भगवान् का साक्षात्कार होने पर योगी मृत्यु पर विजय पा लेता है । जन्म मरण के चक्र से छूट जाता है यह आदित्यवर्ण ही योगी या मानव मात्र की परागति है । परमधाम है । उपनिषद् ने इस वेद वाक्य की इस प्रकार पुष्टि की है । यथा—

'यथानद्य स्यन्दमाना समुद्रेऽस्त गच्छन्ति नामरूपे विहाय ।
तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्त, परात्पर पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥
मुण्डको० मुण्डक ३ । ख० २ । म० ८ ॥

—जैसे नदियाँ हिमालय आदि से निकल कर बहते-बहते समुद्र मे जा मिलती हैं, *क्योंकि पृथवी और हिमालय की अपेक्षा समुद्र नीचे के भाग मे है, भूमि की ऊँचाई समुद्र* से ही गिनी जाती है । सब नदियाँ सब देशो मे प्राय समुद्र मे ही जा गिरती है, जब यह नदियाँ समुद्र मे जा पहुँचती हैं, तो इन नदियो के नाम और रूप समाप्त हो जाते हैं । न गगा गगा रहती है, न जमना-जमना । इनके जल की मधुरता भी समुद्र जल मे जा विलीन हो जाती है । इसी प्रकार विद्वान योगी भी नाम, रूप, क्लेशो, दु खो से मुक्त हो कर पर मे पर दिव्य प्रकाश स्वरूप ब्रह्म को प्राप्त करता है ।'

योगी के कार्य कारण रूप इस सूक्ष्म अवस्था मे ब्रह्म का साक्षात्कार करना चाहिए, क्योंकि प्रत्येक पदार्थ की परिणत होती हुई अवस्था मे ब्रह्म वर्त्तमान है । यह ब्रह्म सदा एक रूप ही रहता है । प्रत्येक पदार्थ के कारण से कार्य मे पलटते हुए इसमें कोई भी विकृति नहीं होती तथा च उपनिषद्—

'स ब्रह्मा स शिव सेन्द्र सोक्षर परम स्वराट् ।
स एव विष्णु स प्राण स कालोऽग्नि स चन्द्रमा ॥ ८ ॥
स एव सर्व यद्भूत यच्च भाव्यम् सनातनम ।
ज्ञात्वा त मृत्युमत्येति नान्य पन्था विमुक्तये ॥ ९ ॥
कैवल्योपनिषद् ख० १ ॥

—वह ईश्वर ही ब्रह्मा है । सबसे बडा है । सृष्टि की रचना का निमित्त है । वही शिव है । कल्याणकारी है । सहार कर्ता है । वह ही इन्द्र है । प्रकाशमान है । समष्टि इन्द्रियो का स्वामी है । वही अक्षर-नाशरहित ब्रह्म है । स्वय प्रकाशमान है । स्वय सम्पूर्ण ससार मे शासन करता है । सब को अपने अधिकार मे चलाता है । वह ही विष्णु रूप मे सब का पालक है । पोशक है । रक्षक है । वह ही प्राण रूप है । अन्तर्यामी होकर प्राण का, जीवन का सचार करता है । अपनी चेतन सत्ता के द्वारा पदार्थों का गति प्रदान करता है । वह ही काल रूप अग्नि है । मृत्यु मे भी व्याप्त होकर ठहरा है । वह ईश्वर ही चन्द्रमा के समान प्रकाशमान है । प्रत्येक प्राणी को प्रकाश प्रदान करता है । वह ईश्वर भूत, वर्तमान, भविष्यत् तीनो कालो मे वर्त्तमान है । काल रूप है । *सनातन है । सदा से वर्त्तमान है ।* अनादि और अनन्त है । उसको जान कर मृत्यु को लाघा जाता है उस पर विजय पाता है । मोक्ष प्राप्त कर लेता है । उस ज्ञानी को मौत का भय नही रहता है । ससार मे मृत्यु से भयानक और कोई वस्तु नही है । सब प्राणी

सदा इससे कम्पायमान रहते हैं। कदम-कदम पर इसका भय बना रहता है। प्रत्येक प्राणी को इसके भय से ही सदा जीने की अभिलाषा बनी रहती है। यदि इसका भय दूर हो जाए तो जानो मानो मानव मुक्त हो गया। इसके भय से ही रोगो का उपाय करते हैं। मृत्युञ्जय मन्त्र का पाठ करते हैं। सर्वत्र और सर्वदा इससे बचने के अनेक उपाय करते है। यह सबसे बडा, बलवान और भयावह शत्रु मानव और प्राणियो का है। कोई विरला ही इस ससार मे इस पर विजय पाता है। योग दर्शन कार ने भी मरणत्रास को ही अन्तिम क्लेश बताया है। इसका नाम अभिनिवेश क्लेश रखा है। सब ही प्राणियो की यही इच्छा बनी रहती है 'मैं कभी न मरूँ।' सदा जीवित रहूँ ?' इस मृत्यु दु ख को यह प्राणी पूर्व जन्म मे देख आया है, अनुभव कर आया है। अत कोई भी प्राणी मरना नही चाहता है।

इस मरण-त्रास से बचने के लिए इस मिथ्या ज्ञान का अभाव करना चाहिए। यह हृदयगम कर लेना चाहिए, 'आत्मा कभी मरता नही है। यह सदा ही अजर, अमर नाश रहित, एक रस, एक रूप और असग है। यदि इसके मरने की भ्रान्ति दूर हो जाए तब समझो मृत्यु पर विजय पा ली। इस पर अधिकार कर लिया। अब रही शरीर की बात, यह तो जन्म लेने वाला है। इसका मरण अवश्यभावी है। इसके प्रति भी मोह ममता भयादि त्याग देना चाहिए। इन दोनो प्रकार के भयो की निवृत्ति आत्म-विज्ञान और ब्रह्म विज्ञान से होती है। इस तमस् की सूक्ष्म अवस्था मे ब्रह्म-विज्ञान करना चाहिए। पर वैराग्य को दृढतम कर मोक्ष के लिए अग्रसर होना चाहिए।

४ अन्वय रूप—इस समष्टि तम की चतुर्थ अवस्था नही होती, क्योकि प्रकृति से परे और कारण रूप पदार्थ नही है।

समष्टि महत्तमस् मण्डल

पञ्चम रूप मे ब्रह्म-विज्ञान

(समष्टि महत्तमस् का पचम रूप)

५ समष्टि महत्तमस् के अर्थवत्त्व रूप मे—

ससार मे विशेष रूप से इस तम का ही राज्य है। जितनी भी जगत् मे भोग-योनियाँ हैं उनकी सख्या ८४ लाख बतायी गयी है। देव और मनुष्य इस मे सम्मिलित नही हैं। इनसे भिन्न सब योनियो पर यह तम ही शासन करता है। सब प्राणी इसके दास बने हुए है। मनुष्यो मे भी बहुत कम व्यक्ति है, जिनके शरीर और अन्त करण तमस् के प्रभाव से बचे हैं। वे बहुत ऊँचे दर्जे के ज्ञानी, योगी, वीतराग, आत्मदर्शी, और ब्रह्मवित् है। अन्यथा सारा जगत् इस तम की लपेट मे ही आया हुआ है। इसके इशारे पर ही सब प्राणी कर्म और भोग कर रहे हैं। इसमे यही गुण है कि सब प्राणियो को बाँध कर रखता है।

सब भोगो का मूलाधार तमस्।

मल, विक्षेप, आवरण इसी के धर्म हैं। जो सदा जीवात्मा और ब्रह्म के स्वरूप को आच्छादित किये रहते हैं। अपने पाश से निकलने ही नही देते हैं। जहा-जहा इसका विशेष प्रभाव है, वहाँ अज्ञान, जडता मूढता, विषय लोलुपता, दीर्घ सूत्रता, पाप

की प्रधानता और नास्तिकता का राज्य रहता है। इस विषय मे उपनिषत् का कथन है। यथा—

न साम्परायः प्रतिभाति वालं प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम्।
अयं लोको नास्ति पर इति मानी पुनः पुनर्वशमापद्यते मे॥

कठ० अ० १। व० २ म० ६॥

भोग योनि की बात तो जाने दीजिए, वे तो अपने इस जन्म मे इस तम के पाश मे मुक्त नही हो सकते। उन्हे फिर अनेक योनियो मे भटक-भटक कर जब भी मनुष्य योनि प्राप्त होगी, तब भी विरले को ही इसके पाश से मुक्त होने का अवसर सभव है मिल सके। परन्तु हम तो वर्तमान के मनुष्यो का वर्णन कर रहे हैं—जिनको अनेक पुण्यो के प्रभाव से यह मानव देह प्राप्त हुआ है। इस अमूल्य जीवन को प्राप्त करके यदि इस तम के बन्धन से मुक्त न हुए तब तो यह मनुष्य जीवन व्यर्थ ही खोया। जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह शरीर प्राप्त हुआ था, वह तो पूरा न हुआ। यह तो मुख्य रूप मे आत्म ज्ञान और ब्रह्मज्ञान के लिए प्राप्त हुआ था। इस अमूल्य ऐश्वर्य से वञ्चित ही रहे। तम के बन्धन मे न छूट सके। संसार के मोह जाल मे और भोगो मे यह अमूल्य जीवन व्यर्थ मे खोया। इस प्रकार के मनुष्यो के लिए ही उपनिषद् ने कहा है—"न साम्पराय. आदि।

इन मूर्खो को—अज्ञानियो को—बालक के समान बुद्धि वालो को ईश्वर-भक्ति का मार्ग अच्छा नही लगता। रात-दिन भोगो और विषयो मे आसक्त रहते हैं। प्रमादी बन कर वित्त के मोह या राग मे फसे रहते हैं। इसी उपार्जन और रक्षण करते रहते हैं। इस प्रकार के जो मूढ नर पशु हैं। वह यही समझ बैठे हैं, बस इस लोक से परे और कोई लोक नही है। इस जन्म के पश्चात् और कोई जन्म नही होना है। इसलिये खाओ, पीओ और खूब भोग विलास करो। इससे बढ कर और कोई सुख नही है। इस प्रकार मूढ नर पशु पुन. जन्म मरण के चक्कर मे पडकर अनेक दु खो का भोग करते रहते हैं और अनेक जन्मो मे भी इस तम के पाश से छूट नही सकेंगे। यह इस तम की ही अर्थवत्ता है। यह भोग तो प्रदान करता ही है, परन्तु मोक्ष का हेतु भी यही बन सकता है। जब कभी यह अपने बन्धन से छोड़ देगा।

इसलिये गीता मे कहा है। यथा—

अयुक्तः प्राकृत· स्तब्धः शठोऽनैष्कृतिकोऽलस.।
विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते॥

अ० १८। श्लोक २८॥

—जब इस तामस की मनुष्यो मे प्रधानता हो जाती है। तब उन्हे यह अच्छे श्रेष्ट श्रेय.—कार्यों मे नही लगने देता है। बुद्धि को जडवत् बना देता है। अच्छे कार्यो मे रुकावट डालता है। मानव स्तब्ध-सा हो जाता है। मूर्खता छा जाती है। मूढवत् बन जाता है। पापो से छुटकारा नही होने देता है। निष्कृति होने नही पाती है। सदा आलसी बना रहता है। किसी अच्छे कर्म मे प्रवृत्ति ही नही होती। सदा विषादी दु खी चिन्तित बना रहता है। दीर्घ सूत्री बनकर सोचता रहता है। अच्छा' कल करूँगा। परसो कर लूँगा। आज प्रातः भजन अभ्यास के लिये नही उठा तो कल जरूर उठूँगा। इसी तरह दिन

मास और वर्ष व्यतीत कर देता है। श्रेय मार्ग के लिए सोचता रहता है। कल नही परसो इसी प्रकार करते करते महीनो गुजार देता है। धर्म के कार्यो के विषय मे सोचता ही रहता है, परन्तु करता कुछ नही है। यह दीर्घ सूत्री होना इस तमोगुण का ही प्रभाव है। अन उपरोक्त दुर्गुणो से मानव को बचना चाहिये। इस मानव जीवन को सफल बनाने के लिए इस तमोगुण पर भी विजय प्राप्त करनी चाहिये। यही इस तम की अर्थवत्ता है। यदि तमोगुण पर अधिकार नही किया जायेगा तो मानव सदा इसका दास बना रहेगा। उसम यह अधर्म उत्पन्न होते रहेगे। यथा—

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन ॥
गीता अ० १४। श्लोक १३॥

—भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र जी महाराज अपने शिष्य और मित्र अर्जुन को उपदेश देते हुए यह कह रहे हैं, हे अर्जुन ! जब मानव मे तमोगुण की प्रधानता हो जाती है। तब ये अवगुण उसम आजाते हैं और उस मानव को पतन की ओर ले जाते है। उस मानव के हृदय और ब्रह्म रन्ध्र मे अन्धकार-सा छाया हुआ प्रतीत होने लगता है। सदा अपने को अन्धकार मे देखता है। कोई धर्म का कार्य करने की सूझती ही नही। सत्यासत्य का निर्णय ही नही कर पाता है। बुद्धि जडवत्-सी बनी रहती है। भले और बुरे की परख ही नही होती है। किसी भी अच्छे या धर्म के कार्य मे उसको सफलता की झलक भी प्रतीत नही होती। अप्रवृत्ति—शुभ कर्मो मे प्रवृत्ति नही होती। उत्साह और उद्यम का अभाव सा हो जाता है। आत्मचिन्तन और भगवत् भजन की ओर बिलकुल झुकाव नही होता है। लोक सेवा पर उपकार का चित्त मे भाव ही नही आता है। सत्सग, महापुरुषो के दर्शन मे रुचि ही नही होती। प्रमाद—चित्त मे कर्म करने का उत्साह ही नही होता है। अकर्मण्यता छाई रहती है। अच्छे कर्म करने के लिए उद्यम नही होता है। आलसियो की तरह पडा रहता है। कर्म करने के मनसूबे तो बनाता है परन्तु करने की हिम्मत कम होती है। मोह—स्त्री पुत्र आदि मे अत्यन्त अनुराग हो जाता है। इनके मोह म फसकर अनेक प्रकार के पाप कर्म करने लगता है। इस के मन मे अविद्या का घर बन जाता है। विवेक की बात सूझती ही नही। सदा परिवार का ध्यान बना रहता है। इनके पालन पोषण म ही रात दिन प्रवृत्त रहता है। यह तम का ही परिणाम मोह है। जो सदा बान्ध कर रखता है। ममता को बलवती बना देता है। पुन पुन जन्म मरण के बन्धन को मजबूत बनाता है। प्राणियो मे ममता पैदा करता है। इसके बन्धन को तोडना अत्यन्त कठिन हो जाता है। विशेषत उस व्यक्ति के लिए जो गृहस्थाश्रम मे एक बार प्रवेश कर गया है। सन्यास और वानप्रस्थ मे जाने नही देता है। आश्रमो की मर्यादा को भी भग कर देता है। स्वार्थ पैदा करके अनेक पाप कर्मो मे प्रवृत्त कर देता है।

मोह की महिमा

यह मोह बडे बडे योगियो को भी बान्ध कर रखता है। इस विषय मे वाचस्पति मिश्र के यह वाक्य हैं। यथा—

'योगिनामष्टस्वणिमादिकैश्वर्येष्वश्रेयस्सुश्रेयोबुद्धिरष्टविधो मोह ।'

—योगी का आठ अणिमा, महिमा, लघिमा इत्यादि सिद्धयो मे अनुराग हो जाता है, इन को ही श्रेय मानने लगता है। परन्तु ये इसके लिए कल्याणकारिणी नही होती हैं, बन्ध का ही हेतु होती हैं। यह आठ सिद्धियाँ योगी के लिए आठ प्रकार का माह हैं।" यह सब इस तमोगुण की ही उपज है। मोह का एक और अर्थ भी है, 'मोहोऽविद्येत्युच्यते मोह को अविद्या भी कहते हैं, और तम का अर्थ भी अविद्या किया जाता है। यथा—

"अव्यक्त-महदहंकार पचतन्मात्रेष्वष्टस्वनात्मस्वात्मबुद्धिरविद्यातम"

योग० स० पा० सू० ८ । टीका ॥

—प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार, पञ्चतन्मात्रा ये आठो अनात्म पदार्थ हैं। इनमे आत्म बुद्धि रखना यह अविद्या रूपी तम है।' यह मोह जब अपना वस्तु-विस्तार करता है, तब १८ प्रकार का हो जाता है। इसकी सज्ञा उस समय महामोह हो जाती है। तब योगी भी इसमे दृढता से बन्ध जाता है। अणिमा आदि ८ प्रकार की सिद्धियाँ+इस लोक के ५ (पाँच) अदिव्य विषय+और स्वर्ग लोक के ५ दिव्य विषय=इन १८ म जो राग हो जाता है, इसका नाम महामोह है। यह सब तमोगुण की ही सृष्टि है। यह सब जगत् पर छाया हुआ है। सर्वत्र इसका प्रभाव है। सर्व प्राणी इसकी मुट्ठी मे बँधे हैं। योगी तक बन्ध जाते है, फिर सासारिक पुरुषा का तो क्या कहना। कोई विरला ही महान् पुरुष इसके बन्ध से मुक्त हो सकता है। लाखो करोडो मे कोई बिरला ही इस बन्ध से मुक्त होने का यत्न करता है। अन्यथा सब इसके दास बनकर जन्म मरण, सुख दु ख, राग मोह द्वेष आदि के चक्र मे पडकर अनन्त काल तक नाना प्रकार के क्लेश और दु ख भोगते रहते है। यह तम की अर्थवत्ता और इसके द्वारा भोग का दिग्दर्शन है।

तमोगुण के अन्धकार मे ब्रह्म

योगी अपनी सब वृत्तियो को शान्त करके और बुद्धि को समाहित करके आकाश मण्डल मे अपनी ध्यान की दृष्टि को ले जाये। और फिर सूक्ष्म ऋतभरा बुद्धि द्वारा इस तमोगुण के मण्डल मे प्रवेश करे। पहले सर्वत्र अन्धकार ही अधकार प्रतीत होगा, परन्तु जैसे रात्रि के अन्धकार मे दीपक पदार्थ या मार्ग के दर्शन का हेतु होता है, इसी प्रकार योगी की सूक्ष्म ऋतभरा बुद्धि प्रकाश का कार्य करेगी। जिस ओर भी ध्यान की दिव्य दृष्टि जायेगी, उस ओर तम ही तम प्रतीत होगा। इस तम ने ऊपर के सब पदार्थो को आच्छादित किया हुआ है ऐसा प्रतीत होगा। मानो इस अन्धकार के सिवाय ससार मे और कोई वस्तु ही नही है। अमावस्या की रात्रि है और आसमान मे घनघोर घटायें छायी हो। कोई भी पदार्थ दिखाई नही देता है। जहाँ हम ब्रह्म की ज्योतियो के अन्दर देखना चाहते हैं, वहाँ गाढ अन्धकार के अन्दर भी तो देखना चाहिये। बाहर चाहे अन्धकार हो या आलोक, देखना तुम्हारी आँखो ने ही है। यदि आँखें नही हैं, और निपट अन्धा है, तो न प्रकाश दीखेगा न अन्धकार ही। देखने वाली तो वास्तव मे आँख ही है। नेत्रो की अपेक्षा से अन्धकार और प्रकाश प्रतीत होता है। योगी के अन्दर भी तो देखने वाले दिव्य चक्षु ही है। जिस योगी के दिव्य चक्षु खुल गये हैं, और बुद्धि जिस की ऋतभरा या प्रान्तभूमि प्रज्ञा बन गयी है, वह योगी ही ब्रह्म दर्शन करने मे समर्थ हो सकता है। यदि अन्धकार मे पदार्थ को देखने के लिए लैम्प तो हो परन्तु पदार्थ को समझने की बुद्धि न हो, तब लैम्प भी विशेष उपयोगी सिद्ध नही होता। केवल सामान्य ज्ञान-सा हो

जाता है कि कोई वस्तु है। क्या पदार्थ है यह ज्ञान नही होता। कैसा है? क्या इसके लाभ है, किस काम यह आता है, यह सब ज्ञान तो तब ही होगा जब बुद्धि भी प्रखर हो। सुलझी हुई हो। इन दोनो साधनो से पदार्थ का बोध होता है। योगी को अपने दिव्य चक्षुओ को उस महान् अन्धकार मे प्रविष्ट करना चाहिए, और वहाँ देखना चाहिए, कि यह तम प्रकाश का अभाव है, या इससे भिन्न पदार्थ। अभाव तो कोई पदार्थ है नही, उस देश मे केवल वस्तु की अनुपस्थिति का ही बोध होता है। अत एव तम को उस काल मे पदार्थ ही समझना चाहिये। रही अन्धकार और प्रकाश की बात, ये दोनो नेत्र के ही विषय हैं। जो पदार्थ आकार वाला है, उसका कुछ न-कुछ रूप मानना ही पडेगा। रूपो का भेद भी बुद्धि की अपेक्षा से ही होता है। काले, पीले, लाल, नीले, हरे, गोरे, भूरे, सब्ज इत्यादि अनेक रग रूप वाले पदार्थ ससार मे है। अन्धकार का रग हम काला कह सकते है। यह तो पदार्थ का गुण होगा। जैसे अग्नि के अनेक रूप हैं, इसी प्रकार तम के भी अनेक रूप है। सो अन्धकार भी तम का एक गुण ही मानना पडेगा। जैसे मोह, जडता, अज्ञान, निद्रा इत्यादि तम पदार्थ के गुण मान लिये है। इसी प्रकार अन्धकार भी तम का एक गुण विशेष मानकर इसके धर्मी तम पदार्थ के स्वरूप को समझना चाहिये।

सर्वप्रथम योगी की दिव्य दृष्टि के सामने तम के गुण ही क्रमपूर्वक आवेगे, क्योकि परिवर्तनशील हैं। अत सब गुणो की उपेक्षा करते हुए योगी को अपनी दिव्य बुद्धि ऋतभरा से छान-बीन करनी चाहिये कि वास्तव मे तम क्या पदार्थ है? वैसे तो धर्म धर्मी के बोध कराने मे मुख्य हेतु होते हैं, परन्तु ये धर्म ही धर्मी तम के परिणाम विशेष है। जिस अवसर मे इन परिणामो का अभाव हो जाये, और तम निष्क्रिय-सा होकर ठहर जाये, और इसके ये सब गुणो के परिवर्तन बन्द हो जायें, तब दिव्य चक्षु औण ऋतभरा के द्वारा इस सूक्ष्म और विभु तम पदार्थ मे प्रवेश कर के देखे। तब एक अत्यन्त सूक्ष्म क्रिया का इस मे अनुभव होगा। जो उस चेतन ब्रह्म के कारण आयी है। या वह चेतना इस मे रली मिली घुली सी भिन्न होते हुए भी अभिन्न— एतद्रूप ही अनुभव मे आयेगी। जिस को लेखनी से नही लिखा जा सकता। स्वय ही उस काल मे अनुभववेदनीय होती है। वह अकथनीय है। अवर्णनीय है। अलेखनीय है।

इस प्रकार तम द्रव्य मे ब्रह्म का साक्षात्कार करना चाहिये।

(शका) वैसे प्रत्यक्ष रूप तम का वर्णन नही किया गया केवल इसके गुणो का ही विशेष रूप से वर्णन किया गया है?

(समाधान) हम गुण का और गुणी का अभेद मानते है। दृष्टान्त के रूप मे मनुष्य शरीर है। इस शरीर मे हाथ, जाँघ, पेट, छाती, ग्रीवा, सिर प्रत्येक अग का विस्तार पूर्वक वर्णन किया जाता है। इन अग प्रत्यगो से तो शरीर अलग नही। इस शरीर के ही तो यह सब अग प्रत्यग हैं। इनसे भिन्न अलग शरीर क्या है। कुछ नही। इन अग प्रत्यग के समुदाय का नाम ही तो शरीर है। इसी प्रकार तम द्रव्य के जो अनेक गुण या धर्मों का वर्णन किया गया है, इस सब समुदाय का नाम ही तमद्रव्य है। इनका परस्पर अभेद है। धर्मो से धर्मी अलग नही रहता। अत इस धर्म-धर्मी समुदाय मे ही ब्रह्म का प्रत्यक्ष करना चाहिये। इन धर्मों और धर्मी को व्याप्त करके ब्रह्म ठहरा हुआ

है। बृहदारण्यकोपनिषद् में इस तम और ब्रह्म के विज्ञान का इस प्रकार उल्लेख किया गया है यथा—

'यस्तमसि तिष्ठन् तमसो ऽन्तरोयं तमो न वेद,
यस्यतमः शरीरं यस्तमोऽन्तरो यमयति,
एष त आत्मान्तर्याम्यमृतः॥ अ० ३। ब्र० ३। मं० १२॥

—जो ब्रह्म सूक्ष्म और व्यापक होने से तमो गुण के अन्दर वर्तमान है। जिसको यह तम नही जानता, और जिसका यह तम शरीर है, जो इस तम को अन्दर से ही सञ्चालित करता है। यह ब्रह्म ही तेरा अन्तर आत्मा ब्रह्म रूप में अमृत है। ध्यान द्वारा इस अमृत रूप ब्रह्म का आनन्द प्राप्त करना चाहिये।

इस विषय में अन्यत्र भी आया है। यथा—

"ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमः पारे प्रतिष्ठितम्॥
योगशिखोपनिषद्० अ० ४। मं० २२॥

—वह ब्रह्म ज्योतियों की भी ज्योतिः है। इस तम के आगे या पार उस ब्रह्म की प्रतिष्ठा है। यह ब्रह्म तम से भी परे अत्यन्त सूक्ष्म प्रकाश स्वरुप है।" इस तम मे ब्रह्म की भावना करनी चाहिये। इसको ही ध्यान का विषय बना कर अत्यन्त सूक्ष्म बुद्धि से ब्रह्म को इस मे ओत-प्रोत हुआ देखे। वह इसी के रूप में अनुभव का विषय बन जायेगा, क्योंकि उसका अपना कोई रूप नही है जिस रूप में उसको देखा जाता है, उसी रूप में वह दर्शन का विषय बन जाता है। जैसे कांच के श्वेत गिलास में जिस रंग का जल डालो, गिलास उसी रंग का प्रतीत होने लगता है। इसी प्रकार ब्रह्म भी पदार्थ के ही रूप वाला अनुभव होने लगता है। जिस योगी ने एक बार अपने स्वरूप को देख लिया है, उसको किसी भी पदार्थ मे ब्रह्म के रूप को देखने में कोई भी बाधा या भ्रान्ति नही, क्योंकि स्व-रूप के साथ भगवान् का स्वरूप मिलता-जुलता है। तब ही योगी को यह ज्ञान होता है। यथा—

"योऽसौ, सोहमस्मि"—

जैसा वह भगवान् है वैसा ही मैं भी हूँ। मेरे रूप मे और भगवान् के रूप में कोई अन्तर नही है।"

ब्रह्म भी आधार और आधेय रूप मे प्रत्यक्ष का विषय बनता है। बिना आधार के उसकी सत्ता कभी देखने में आती नहीं है। अतः इसी रूप मे यह ब्रह्म प्रत्यक्ष का विषय बनता है। प्रत्यक्ष का विषय होने से सब प्रमाणों का विषय बन जाता है। कई आचार्यों ने ब्रह्म को प्रमाणों का विषय नहीं माना है। ऐसा ब्रह्म न कभी हुआ, न है ही। और न कभी होगा ही क्योकि प्रकृति भी अनादि और नित्य है। अतः दोनो का सदा ही व्याप्य व्यापक, भाव बना ही रहता है, और बनता ही रहेगा। जैसे एक पुरुष को ज्वर है। परन्तु आंखो से देखने पर ज्वर प्रतीत नही होता। जब नाडी पकड़ कर देखते है, तब बुखार का पता लगता है। इसी प्रकार जब हम अन्तःकरण को सूक्ष्म-समाधि युक्त दृष्टि से ईश्वर को देखते हैं तब वह अनुभूति का विषय बन जाता है क्योंकि जिस पदार्थ में वह व्याप्त है, उसको हमने दर्शन का लक्ष्य बनाया है। उस पदार्थ के प्रत्यक्ष होने पर उसमें व्याप्त ब्रह्म का भी प्रत्यक्ष होगा। जैसे दुःख है। दुःख का कोई आकार-

प्रकार शक्ल सूरत, लम्बा-चौडा, गोल-चोकौण, लाल-पीला आदि कुछ भी प्रतीत नही होता है, दश इन्द्रियो से भी इसकी प्रतीति नही होती है। पर फिर भी हम दु ख को अनुभव करते है। यह दु ख इन्द्रिया का प्रत्यक्ष न बन कर चित्त या बुद्धि के प्रत्यक्ष का विषय बनता है। इसी प्रकार ब्रह्म भी किसी इन्द्रिय का विषय न बन कर अन्त करण का विषय बन सकता है। भले ही उसका रग रूप आकार प्रकार कुछ भी न हो। केवल पदार्थ मात्रा ही सत्ता होनी चाहिये। उसकी सत्ता सर्वत्र मानव के अनुमान या शब्द प्रमाण का विषय बनी हुई है, और योगियो को प्रत्यक्ष का विषय भी बनती है।

इति समष्टि महत् तमोमण्डलम्।

इति चतुर्थाध्याये प्रथम खण्ड ।

इति सप्तममावरणम्॥

द्वितीय खण्ड

६ वा प्रकरण

समष्टि महत् रजोगुण मण्डलम्

प्रथम रूप मे ब्रह्म विज्ञान

(समष्टि महत् रजोगुण का प्रथम रूप)

१ समष्टि महत् रजोगुण स्थूल रूप मे—

यह रज (गुण) प्रकृति का कार्य होने से द्रव्य या पदार्थ है। इस प्रकार का गुण नही है, जिस प्रकार शब्द आकाश का गुण है और स्पर्श वायु का गुण है। रज प्रकृति का कार्य होने से स्वतन्त्र, भिन्न पदार्थ ही है, जो समष्टि बुद्धि का उपादान कारण है। इस द्रव्य के अनेक गुण हैं। सक्षेप से इन गुणो का उल्लेख करेंगे। समष्टि महत् रज के गुण—

१ क्रिया	२ प्रवृत्ति	३ कर्म	४ दुःख
५ तृष्णा	६ लोभ	७ ईर्ष्या	८ हर्ष
९. शोक	१० हिंसा	११ चञ्चलता	१२ द्वेष
१३ द्रोह	१४ मत्सरता	१५ निन्दा	१६ पराभव
१७ मान	१८ दर्प	१९ विलासिता	२० काम
२१ क्रोध	२२ भय	२३ उद्वेग	२४ सघर्ष
२५ स्पर्धा	२६ प्रतिकार	२७ दमन	२८ कम्पन

यह क्रिया, प्रवृत्ति, कर्म, चञ्चलता, कम्पन गुणो को लेते हुए परिणाम भाव को प्राप्त होता है। शेष गुणो को अन्यो का सहकारी होकर व्यवहार दशा मे प्रकट करता है। यह पदार्थ सदा ही क्रिया शील बना रहता है। यह इसका स्वभाविक धर्म है। जब यह तम के साथ मिलता है, तो उसे भी गतिशील बना देता है। इसके सयोग से जितने भी पदार्थ उत्पन्न होंगे, उनको सर्वप्रथम यह गतिशील करेगा। पश्चात् अपने अन्य गुणो से उसे प्रभावित करेगा। यह अपने सयोगी तम और सत्व के साथ मिलकर सम्पूर्ण सूक्ष्म और स्थूल सृष्टि का आरम्भक बनेगा। यह सदा सर्व प्राणियो को दुःख, प्रवृत्ति और कर्म मे प्रवृत्त करता रहेगा। तृष्णा की जडो को बहुत बलवान् बना देगा। सदा इसकी जडो को तर्पण करता रहेगा। ससार मे लडाई झगडा का सदा कारण बनता रहेगा। लोक सग्रह और उपार्जन मे लगाये रखेगा। लोभ के वशीभूत बनाकर अनेक कर्मों म प्रवृत्ति बनाये रखेगा। आशा को सदा बलवती बनाये रखेगा। ईर्ष्या और सघर्ष इसके मुख्य कार्य होंगे। जो कि बुद्धि को सदा अशान्त बनाये रहेंगे। अहर्निश भोगो के उपार्जन मे लगाये रखना इसका धर्म तथा कर्म होगा। प्राप्ति और कार्य सिद्धि म हर्ष और विनाश मे शोक को जन्म देता रहेगा। रजोगुणी पुरुष और स्त्रिया सदा इसके दास रहेंगे। रात दिन उन्हे नचाता रहेगा। युद्ध मे चर्म मास के लोभ मे, स्वार्थ सिद्धि मे, अथवा द्वेष क्रोध की भावना से सदा हिंसा कर्म कराता रहेगा। अन्त करण, इन्द्रियो और शरीर को सदा

चञ्चल बनाता रहेगा। भोगो मे सदा प्रवृत्त रखेगा। ध्यान, समाधि और ईश्वर भक्ति मे बुद्धि और चित्त को सदा चञ्चल बनाता रहेगा। एकाग्रता और निरोध को कभी पैदा ही नही होने देगा। द्वेष और द्रोह की अग्नि से सन्तप्त करना, दूसरो की उन्नति को देखकर जलना, डाह मारना, इसका नित्य का कार्य होगा। सदा प्रतिकार भावना को उद्दीप्त करना, उसके लिये नाना प्रकार के उपाय सोचना, दूसरो को दबाना, दमन करना कुचल देना, इस प्रकार के सस्कारो को उत्तेजित करते रहना, शत्रुओ या अन्यो को ही परास्त करने मे सुख मानना, इस का कर्म होगा। दूसरो की बुराई करना, अपने सम्मान की इच्छा करना, अभिमान पूर्वक छाती ठोकना, सदा विलासी जीवन बनाना, काम भोग के उत्तेजक रसायन आदिक का सेवन करना, काम भोग मे अत्यन्त आसक्त रहना, अनेक स्त्रियो का सेवन करना, विषय लोलुप होना इसका कार्य होगा।

क्रोध के वशीभूत होकर अनेक पाप कर्मो को करना, शत्रुओ से भय भीत होना मृत्यु से डरना, प्रवृत्ति के कार्य करना, धन और ऐश्वर्य का सग्रह करना आदि अनेक कार्यो का हेतु यह रजोगुण होगा। इस विषय मे भगवान् श्री कृष्ण चन्द्र जी अर्जुन को उपदेश देते हुए कहते है, यथा—

'रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम्।
तन्निबध्नाति कौन्तेय, कर्म संगेन देहिनम ॥

गीता० अ० १४। श्लोक ७॥

—रजोगुण को राग का हेतु जान, यह जड और चेतन मे राग को दृढ बनाये रहता है। तृष्णा को पैदा करता है। इसको जीवित बनाये रखने के लिये, इसका पालन पोषण करता है। एक कम समाप्त नही होता है, दूसरे की तृष्णा और जाग उठती है। इसका अङ्कुर जन्म जन्मान्तरो तक चलता रहता है। यह मानव शरीर भी खतम हो जाता है, परन्तु तृष्णा मरने ही नही पाती है। यह मानव को अनेक सकटो मे नियोजित कर देती है। अनेक आपत्तियो को जन्म दे देती है। मानव इसका दास बनकर अहर्निश चक्र की तरह घूमता रहता है। सन्तोष को यह ठहरने ही नही देती है। सदा से सन्तोष के साथ इसका सघर्ष चला आ रहा है। यह बेचारा सदा इससे परास्त होकर भागता रहता है। भगवान् विष्णु को भी इस ने वामन रूप धारण करने पर विवश कर दिया। भगवान् राम को इसने उस स्वर्णमृग को पकडने के लिये विवश कर दिया, जो स्वर्ण मृग कभी देखा, सुना या हुआ भी न था। भगवान् श्री कृष्ण चन्द्र जी महाराज को रथ का सारथी बनाकर रख दिया। शकर भगवान् को पार्वती के वरण करने के लिए मजबूर कर दिया। समस्त राज्य को त्याग परम विरक्त हुए महाराज भर्तृहरि को भी पान की पीक को लाल समझ कर उठाने के लिये प्रवृत्त कर दिया। शकराचार्य को काम-सुख का अनुभव करने के लिये राजा के शरीर मे प्रवेश करना पडा। लोकवन्द्य त्यागमूर्ति महात्मा गान्धी को अपने हस्ताक्षरो के बदले १०) रु० फीस हरिजनोद्धार के लिए लेने पर मजबूर कर दिया।

अनेक प्रकार के सकटो मे इसने बडे-बडे महापुरुषो को बलात् अनाचार के लिये प्रवृत्त कर दिया। इसके पाश से कोई बिरला ही मुक्त हो पाया है। ऐसी प्रबल यह रजोगुण की पुत्री तृष्णा है। यह तृष्णा ही कर्म के साथ मिल कर उसे अपना सङ्गी

वना, मनुष्य के बन्धनो को अत्यन्त दृढ कर देती है। कभी जीवन मे विश्राम ही नही लेने देती। मनुष्य के लिये नाना प्रकार के कर्तव्यो का निर्माण करती रहती है। कर्मों के सिलसिले को कभी समाप्त ही नही होने देती। यह सब रजोगुण का प्रपञ्च है।

तीनो गुणो के विशेष धर्म

रजोगुण मनुष्य को आगामी दूसरा जन्म मनुष्य का ही प्राप्त हो, इस प्रकार के कर्मों का सग्रह करता है। तमोगुण भोग योनि पशु पक्षी, जन्तु इत्यादि का शरीर प्राप्त हो इस प्रकार के कर्मों का सग्रह करता है। सत्त्व गुण देव योनि मोक्ष, या मुक्ति प्राप्त हो' इस प्रकार के कर्मों का सञ्चय करता है। इन तीनो द्रव्यो की महिमा अपरपार है। इसका ही ससार मे सब विस्तार है। ये ही मिलकर वास्तव मे सृष्टि के आरम्भक होते हैं' जिसमे प्राणियो को भोग और मोक्ष प्राप्त हो। विद्वान् पुरुष ज्ञानवान् योगी को इन गुणो के स्वरूप को जानकर—कि ये वास्तव मे मनुष्य के बन्ध के हेतु हैं, दुःख और क्लेश का हेतु है—इनसे विरक्त होना चाहिये। इन के सब धर्मो से ममता का त्याग करना चाहिये। इनसे उपराम होना चाहिये। इनसे परम वैराग्य करना चाहिये। तब ही इस मानव जीवन का लक्ष्य पूरा हो सकेगा, जिसके लिये यह मानव देह प्राप्त हुआ है वह लक्ष्य है—मुक्ति, मोक्ष या अपवर्ग।

ब्रह्म के ऊपर यह २८ वा आवरण है। इसका विज्ञान या भेदन करके ही ब्रह्म का साक्षात्कार किया जा सकता है। यदि वैज्ञानिक सूक्ष्म दृष्टि से बुद्धि को समाहित करके समाधि द्वारा देखा जाये, तो इस द्रव्य मे एक अत्यन्त सूक्ष्म क्रिया होती हुई अनुभव मे आयेगी। ऐसा प्रतीत होगा, कि माना सारे सूक्ष्म ब्रह्माण्ड मे सूक्ष्म कम्पन हो रहा है। स्थिरता कभी भी देखने मे नही आती है। यह सूक्ष्म क्रिया इस रजोगुण की स्वाभाविक ही है। या यह इस का स्वरूप है। इसी से आगे होने वाले समस्त पदार्थों को गति प्राप्त होगी। यह रज अत्यन्त सूक्ष्म, समस्त आकाश मण्डल मे व्यापक, अनेक धर्मो से युक्त, कम्पायमान अपनी रक्त पीत गुलाबी स्वर्णिम आभा से युक्त, अत्यन्त सूक्ष्म द्रव्य है। इसको हम ब्रह्म का आवास कहगे, अथवा ब्रह्म का मन्दिर भी कह सकत हैं। इस मे भगवान् का अध्यारोप करके इस को उपासना और विज्ञान का विषय बनाना चाहिये, क्योकि इस म कम्पन रूप धर्म ईश्वर के सयोग से हो रहा है। माना सर्वव्यापक ब्रह्म साकार भाव को प्राप्त हुआ है। यह ब्रह्म की साकार रूप से उपासना और विज्ञा है। निराकार होते हुए भी यह ब्रह्म साकार भाव को प्राप्त हो गया है। तब यह दर्शन और प्रत्यक्ष अनुभूति का विषय बना है। इस समाधि काल मे योगी के लिये ब्रह्म साकार रूप से प्रत्यक्ष वर्तमान होकर कम्पायमान सा हुआ हुआ है। जैसे समुद्र मे वायु के वेग से सूक्ष्म सूक्ष्म मन्द मन्द तरङ्गें उठा करती हैं, इस प्रकार रजोगुण मे स्थित ईश्वर भी तरंगित हुआ है। वास्तव मे ब्रह्माण्ड के सभी पदार्थ गतिशील हैं। अत इन मे ओत प्रोत ब्रह्म भी गतिशील सा बना हुआ है। जैसे मनुष्य के शरीर मे हृदय मे चित्त के अन्दर स्थित जीवात्मा मे गतिशील कम्पायमान शरीर के साथ चलना फिरना आदि सब कुच्छ होता रहता है। ये सब धर्म अन्तःकरण या शरीर के हैं, परन्तु सब का आरोप जीवात्मा मे ही किया जाता है हालाकि आत्मा कूटस्थ, असङ्ग, निष्क्रिय है। इस प्रकार यह गति

आदि सर्व धर्म इन पदार्थों के ही है। परन्तु अध्यारोप ब्रह्म मे ही किया जाता है, जोकि निष्क्रिय कूटस्थ, अचल, असङ्ग है। तथा चोपनिषद्—

"अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं-रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्व-भुतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥
कठो० वल्ली० ५। म० ९।

—ब्रह्माण्ड मे एक अग्नि ही रूपवान् पदार्थ है। सब पदार्थो मे जितने भी नाना प्रकार के रूप देखने मे आते है वे सब इस अग्नि भूत के ही रूप है। अथवा सर्वत्र जो प्रकाश देखने मे आता है, या ऊष्णता अनुभव मे आती है यह सब अग्नि के ही धर्म है। एक अग्नि ही प्रत्येक पदार्थ मे नाना रूप-वाली प्रतीत हो रही है। इसी प्रकार एक ईश्वर है वह प्रत्येक पदार्थ मे उस के अनुरूप होकर दर्शन या विज्ञान का विषय बना हुआ है। प्रत्येक पदार्थ मे उसकी उपासना और विज्ञान करना चाहिये।" अन्यच्च—

"सर्वगं सच्चिदानन्द ज्ञान चक्षुर्निरीक्षते।
अज्ञान चुक्षुर्नेक्षेत, भास्वन्त भानुसन्धवत् ॥
महोपनिषद्० अ० ४। म० ८०॥

—सब पदार्थो मे पहुचा हुआ सत्, चित्, आनन्द रूप भगवान्—(सत्=सदा वर्तमान रहने वाला, जिसका परिवर्तन या विनाश कभी नही होता, भूत, वर्तमान, भविष्य मे सदा रहने वाला, चित्=चेतन ज्ञान स्वरूप, जीवन से भरपूर, जड पदार्थों को भी चेतनवत् वना देने वाला, क्रिया या गतिशील करने वाला, आनन्द=यह तो स्वय अनुभव का विषय है।) आनन्द शब्द का सुन्दर अच्छा पर्यायवाचक शब्द नही है। परन्तु हम साधारण रूप मे शान्ति, सुख, मोद, प्रमोद, आह्लाद, हर्ष, सन्तोषादि को ही वता सकते हैं। इस प्रकार के ब्रह्म को ज्ञान के चक्षुओ से देख सकते हैं। ज्ञान चक्षु से अभिप्राय ऋत-भरा या प्रान्त भूमि प्रज्ञा से है। इनके द्वारा ही ब्रह्म-दर्शन होता है। अज्ञान के नेत्रो से ब्रह्म दर्शन नही हो सकता है। जैसे अन्धा आदमी सूर्य को नही देख सकता।

समष्टि महत् रजोगुण

द्वितीय रूप मे ब्रह्म-विज्ञान

(समष्टि महत् रजोगुण का द्वितीय रूप)

२. समष्टि महत् रजोगुण के स्वरूप मे—

रजोगुण के जिन धर्मो का स्थूल रूप मे वर्णन किया गया है, इन का और रजोगुण का परस्पर धर्म-धर्मी भाव सम्बन्ध है। ये धर्म कभी अपने धर्मी से पृथक् नही होते है। इसलिए इसको स्वरूप सम्बन्ध नाम से प्रतिपादन किया गया है। यहाँ गुण-गुणी का अभेद कथन किया गया है। ये गुण या धर्म ही अपने धर्म पदार्थ के बोधक हैं। इन के द्वारा ही पदार्थ के स्वरूप का और परिवर्तनशील होने का बोध होता है। जिस-जिस अवसर मे जिस-जिस धर्म का प्रादुर्भाव होता है, उस अवसर मे धर्मी की अवस्था मे पूर्व की अवस्था से कुछ परिवर्तन प्रतीत होता है। जैसे एक बालक का शरीर है, जब यह कौमार अवस्था मे आता है, २-३ वर्ष की बाल्यावस्था की अपेक्षा १४-१५ वर्ष

की अवस्था मे अन्तर देखने में आता है। जब यह २५-३० वर्ष का हो जाता है। तब तीसरा परिवर्तन देखने मे आता है। ५०-६० वर्ष का होता है, तब और अन्तर हो जाता है। १०० वर्ष की अवस्था मे और ही भेद हो जाता है। इन अवस्थाओ का परिवर्तन ही धर्म और गुणों का भेद कर देता है। धर्मी एक ही होता है। परन्तु धर्मों का परिवर्तन होता रहता है। इसी प्रकार रजोगुण मे भी समय-समय पर इसके धर्मों का परिणाम होना रहता है, और अवस्था का भी। अतः यह गुण गुणी का स्वरूप सम्बन्ध या तादात्म्य सम्बन्ध पदार्थ की दूसरी अवस्था सिद्ध होती है।

इस स्वरूप सम्बन्ध मे ब्रह्म का भी साक्षात्कार करना है। कि किस प्रकार इस चेतन सत्ता के सम्बन्ध से पदार्थ मे या धर्म में परिणाम धर्म उत्पन्न हो रहा है। एक के पश्चात् एक गुण उत्पन्न हो रहा है।

(शका) जब एक धर्म के पश्चात् दूसरे धर्म का प्रादुर्भाव होता है, क्या उस समय दूसरा खतम हो जाता है?

(समाधान) हमारे सिद्धान्त मे नष्ट होने वाला कोई भी पदार्थ या गुण नही है। प्रत्येक पदार्थ कारण रूप से नित्य है, और कार्य रूप से अनित्य है। पहिला जो धर्म उत्पन्न हुआ था, वह भी धर्मी मे वर्तमान है, अब उस की आवश्यकता नहीं है। वह धर्मी के गर्भ मे अस्त हुआ हुआ है। जब पुनः उस धर्म की आवश्यकता होगी प्रकट हो जायेगा। जो वस्तु पहले उत्पन्न हुई है, वह फिर भी हो सकती है। ब्रह्म इन सब धर्मों के उत्पत्ति काल मे अन्तर्यामी रूप से अपनी चेतना के द्वारा इन परिणामों को कर रहा होता है। इसका भाव यह है कि इन परिवर्तनो मे केवल ब्रह्म का सन्निधान मात्र ही काफी है। इस सन्निधान से पदार्थ स्वय क्रियाशील होकर परिणत होता रहता है। जैसे शरीर में जीवात्मा की सत्ता मौजूद है, इसकी सत्ता से शरीर स्वयं ही बाल, युवा, वृद्ध अवस्था को प्राप्त हो जाता है। परन्तु आत्मा मे कोई परिवर्तन नहीं होता है, क्योंकि स्वयं आत्मा द्वारा कहता है, जो मैं बाल्यकाल मे था, वही अब वृद्ध अवस्था में भी हूँ। इसी प्रकार पदार्थ के परिणामकाल मे ब्रह्म एक ही रूप मे रहता है। इसमें कोई भी परिणाम या विकृति नही होती है। प्रत्येक पदार्थ में इसका होना आवश्यक है, अन्यथा पदार्थ में परिवर्तन का अपना स्वाभाविक धर्म होते हुए भी वह परिणाम नहीं होगा। अतः चेतन की अपेक्षा रहेगी ही। जैसे मोटर या यन्त्र अपने चलने में ड्राइवर की अपेक्षा रखता है। इसी प्रकार प्रकृति को भी परिणत होने तथा कार्यों के उत्पादन मे ईश्वर की चेतना की अपेक्षा है, यद्यपि प्रकृति का परिणाम धर्म स्वाभाविक ही है। परन्तु वह भी किसी निमित्त की अपेक्षा ही करती है।

सृष्टि के निर्माण में ईश्वर निमित्त

(शका) हम ईश्वर को निमित्त न मान कर सर्व जीवों के कर्मों [illegible]
मान ले, वे ही भोग प्रदान करने के लिए प्रकृति को परिणाम क्रम मे प्रवृत्त [illegible]

(समाधान) अच्छा, विचारो! कर्म जड़ है, या चेतन? यदि [illegible]
तो जड को जड गति नही दे सकता, क्रियाशील नहीं कर सकता है। [illegible]
के समान ही होगा। यदि कर्म को चेतन मानते हो, तब तो वह ईश्वर [illegible]
जैसे कुम्हार बर्तन बनाता है। पर उस को चाक घुमाने मे दण्ड की [illegible]

है। अत दण्ड भी यहाँ निमित्त कारण सिद्ध होता है। परन्तु वह जड दण्ड भी चेतन कुम्हार की अपेक्षा करता है। स्वय ही चाक को चलाने मे असमर्थ है। इसी प्रकार ब्रह्म भी ससार की रचना मे कम रूपी निमित्त का भी प्रयोग करता है। अत केवल कर्म ही प्रकृति निर्माण काल मे निमित्त नही है किन्तु मुख्य रूप से ब्रह्म ही निमित्त कारण है। कर्म सहकारी और गौण निमित्त कारण है। इस से सिद्ध होता है कि केवल कर्म सृष्टि के निर्माण मे निमित्त कारण नही हो सकता है। वह भी चेतन की अपेक्षा करता है। वह तो चेतन, सर्व-व्यापक ब्रह्म ही निमित्त कारण मुख्य रूप से हो सकता है।

(शका) मुक्तात्माय भी तो सर्व समर्थ होती हैं, अनेक मुक्त आत्मायें मिलकर सृष्टि की रचना कर लेंगी। अत सृष्टि रचना के लिए ब्रह्म की आवश्यकता नही ?

(समाधान) वे मुक्त आत्मायें अणु हैं या विभु—यदि अणु हैं तब उनमे इतनी शक्ति नही हो सकती कि वे इतनी बडी विशाल सृष्टि की रचना कर द। यदि वे अनन्त हैं, तो भी इन अणुओ का ज्ञान सीमित ही होगा। इन की चेतना भी एक एक देशी होगी। और फिर हर सृष्टिकाल मे मुक्तात्माओ की वृद्धि होती रहती है वहा सघर्ष होने की भी सभावना हो सकती है। कौन किस कार्य को करे और कौन किसको। अत असख्य अणु मुक्त आत्माओ मे यह सामर्थ्य नही हो सकता है, कि वे मिलकर प्रकृति मे कर्म करने, या निर्माण करने म निमित्त वन सकें। यदि मुक्तात्माओ को विभु—सर्व व्यापक मानते हो तव अनक विभु नही हो सकते हैं, विभु एक ही होता है। अनेक व्यापक एक दूसरे को भी व्या न करगे, फिर परस्पर स्थूल सूक्ष्म मानने पडगे, क्योकि स्थूल को ही सूक्ष्म व्याप्त कर सकता है। फिर वे सव परिणामी भी मानने पडगे, और परिणामी होने से प्रकृति के समान ही हो जायेंगे।

(शका) आपने भी तो आकाश और प्रकृति को विभु माना है ?

(समाधान) हमने जो आकाश को विभु माना है चार भूतो की अपेक्षा से माना है। आकाश इन चारा से सूक्ष्म है अत इनमे व्यापक है। अपेक्षाकृत विभु है। उत्पन्न होने वाला सब मे विभु नही हो सकता है। इसी प्रकार प्रकृति को भी विभु इसके कार्यो की अपेक्षा माना है। ब्रह्म की अपेक्षा नही। ब्रह्म की अपेक्षा मे यह व्याप्य है, और ब्रह्म व्यापक है। वास्तव मे साक्षात् रूप से सवव्यापक तो ब्रह्म ही हो सकता है। प्रकृति नही। परिणाम धर्म वाला तो नितान्त विभु नही हो सकता है। अपरिणामी और अनन्त पदार्थ ही सव व्यापक हो सकता है। ऐसा तो ब्रह्म ही है। अत मुक्तात्मायें अणु और विभु रूप से मिल कर सृष्टि का निर्माण करने मे सवथा ही असमथ हैं। केवल ब्रह्म ही सृष्टि को उत्पन्न करा सकता है और वह ही निमित्त कारण भी हो सकता है वह ही सर्व व्यापक भी है। एक ब्रह्म ही ऐसा पदाथ है जो सर्व व्यापक है, जिसके सन्निधान म रहकर प्रकृति परिणत होती है। सन्निधान शब्द का प्रयोग हम इसलिए करते हैं, कि स्वरूप से प्रकृति और ब्रह्म भिन्न भिन्न हैं। व्याप्य व्यापक शब्द का प्रयोग इसलिए करते हैं, कि ब्रह्म प्रकृति की अपेक्षा सूक्ष्म और महान् है। तव ही व्यापक भाव सम्बन्ध बनता है। इन दोनो का सन्निधान या सामीप्य नित्य है। अनित्य नही है।

समष्टि महत् रजोगुण
तृतीय रूप मे ब्रह्म विज्ञान
(समष्टि महत् रजोगुण का तृतीय रूप)

३. समष्टि महत् रजोगुण के सूक्ष्म रूप मे—

समष्टि महत् रजोगुण की उत्पत्ति प्रकृति से होती है। अत दोनो का कार्य कारणात्मक सम्बन्ध है। प्रकृति मे ही इसके सूक्ष्म रूप की परि-समाप्ति होती है। इससे परे कोई पदार्थ या कारण भी नही है। जगत् के प्रति यह प्रकृति ही अन्तिम मूल कारण है। तथा च साम्य सूत्रम्—"मूले मूला भावादमूल मूलम्।" १।६७॥ प्रधान प्रकृति मूल से और कोई मूलान्तर नही है, अर्थात् मूल कारण मे मूल का अभाव होने से और कोई अन्य मूल नही है। प्रकृति ही अन्तिम मूल कारण है। सर्व पदार्थों का अवसान इस मूल प्रकृति मे ही होता है। यह प्रकृति रजोगुण की सूक्ष्म अवस्था है। इन दोनो के कार्य कारणात्मक सम्बन्ध मे ब्रह्म के सम्बन्ध की भी अनुभूति होनी चाहिये कि इन दोनो मे ब्रह्म किस प्रकार व्याप्त है, और किस प्रकार यह प्रकृति अपने कार्य का निर्माण करती है। स्वय अपनी शक्ति से ही करती है। किंवा किसी सत्ता की अपेक्षा करती है। यदि करती है तो वह कौन सी ऐसी सत्ता है, उसके स्वरूप को भी प्रत्यक्ष करना चाहिये। इस विषय मे उपनिषद् भी साक्षी है—

> 'माया तु प्रकृति विद्यान्मायिन तु महेश्वरम्।
> तस्यावयव भूतैस्तु व्याप्त सर्वमिद जगत्॥
>
> श्वेताश्वतर० अ० ४। म० १०॥

—प्रकृति को माया जानो, और मायी को ईश्वर या महेश्वर समझो। इस माया के अवयवों से यह सारा जगत् भरा हुआ है। कोई स्थान ऐसा नही है, जहाँ इस प्रकृति-माया के कार्य रूप पदार्थ न हो। सब ब्रह्माण्ड इसके कार्य रूप पदार्थों से भरा हुआ है।"

इससे पहले मन्त्र मे यह शब्द आते है—'अस्मान्मायी सृजते'—इस माया से मायी महेश्वर जगत् की रचना करता है।' इस सर्वाधार सर्वेश्वर भगवान् की उपासना और भक्ति कल्याण का हेतु बन जाती है। अत श्रद्धा भक्ति से इसका साक्षात् करें। इस विषय मे गीता का कथन है। यथा—

> 'तमेव शरण गच्छ सर्व भावेन भारत।
> तत्प्रसादात् परा शान्ति स्थान प्राप्स्यसिशाश्वतम्॥
>
> अ० १८। श्लो० ६२॥

—हे अर्जुन! श्रद्धा भक्ति की पूर्ण भावना से उस भगवान् की शरण मे ही जा। उसी की कृपा, दया, अनुग्रह से परमशान्ति के स्थान मोक्ष को प्राप्त करेगा। जो अनन्तकाल तक रहनेवाला और सर्व दु खो से रहित है। वह ब्रह्म ही वास्तव मे मोक्ष का स्थान है क्योकि वह निर्विकार है। सत् चित् आनन्द रूप है। उसमे ही परम पद को प्राप्त करके ससार के दु:खों और आवागमन से अनन्त काल के लिये छुटकारा हो जायेगा। इस सूक्ष्म अवस्था मे ब्रह्म का साक्षात्कार करें क्योकि वह दोनो कारण कार्यात्मक अवस्थाओ मे व्यापक रूप से वर्तमान होकर ठहरा हुआ है। ब्रह्म के सन्निधान से ही उपादान

कारणरूप प्रकृति रजोगुण का सृजन करती है। पर वैराग्य धारण कर उस ब्रह्म का प्रत्यक्ष करना है। जिससे मोक्ष की ओर शीघ्रता से बढ सकें।

ईश्वर और आत्मा में कर्तृत्व का आरोप ?

प्रकृति ही वास्तव मे मुख्य रूप से भोग और अपवर्ग के लिये है। सर्व भोगो और अपवर्ग का मूल-कारण यही है। इसी के सन्निधान से ब्रह्म मे कर्तापन का आरोप होता है, और इसके कार्यों के सन्निधान से जीवात्मा मे कर्तापन का आरोप होता है। इस आशय की पुष्टि के लिये सांख्या दर्शन का सूत्र है—

"तत्सन्निधानादधिष्ठातृत्व मणिवत् ।" सा० अ० १। सू० ६६॥

—इस प्रकृति के सन्निधान से ईश्वर मे अधिष्ठातृत्व धर्म माना गया है। जैसे लोहे की कील या सूई ने पैर आदि मे लग जाने पर, चुम्बक को पास मे रखने से वह स्वयमेव बाहर निकल आती है। यहा चुम्बक सन्निधानमात्र से लोहे का प्रेरक हो जाता है। इसी प्रकार यहाँ भी उपाधि रूप से ईश्वर मे अधिष्ठातृत्व धर्म मान लिया गया है, अथवा स्व स्वामीभाव सम्बन्ध मान लिया गया है। यहाँ सयोग सम्बन्ध से या समवाय सम्बन्ध से अधिष्ठातृत्व धर्म नही है। केवल ब्रह्म मे अध्यारोपमात्र से अधिष्ठातृत्व कह दिया है, क्योंकि ब्रह्म तो नित्य शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, असग और निष्क्रिय है। तथा च सांख्य सूत्रम्—

'असगोऽयं पुरुष इति।' सा० अ० १। सू० १५॥

—यह ब्रह्म और आत्मा दोनो ही असग है। केवल प्रकृति के सन्निधान-मात्र से कर्तृत्व धर्म का इन मे आरोप हो जाता है। तथा चोपनिषद्

'निरिच्छे सस्थिते रत्ने, यथा लोक प्रवर्त्तते।
सत्तामात्रे परे तत्त्वे, तथैवाय जगद्गण '१३॥
अतश्चात्मनिकर्तृत्वमकर्तृत्व च वै मुने।
निरिच्छत्वादकर्तासौ, कर्ता सन्निधिमात्रत १४॥
ते द्वे ब्रह्मणि विन्देत कर्तृताकर्तृता मुने।
यत्रैवेष चमत्कारस्तमाश्रित्य स्थिरोभव ॥१५॥ महो० अ० ४॥

—निदाघ मुनि को ऋभु महर्षि ने उपदेश देते हुए ब्रह्म और आत्मा के विषय मे समझा रहे हैं—"जैसे खान या दुकान मे पडे हुए हीरे की कोई इच्छा नही होती है, कि कोई मुझे ग्रहण करे या धारण करे, परन्तु ससारी लोग स्वय ही इसको धारण, अथवा व्यापार के लिये ढूढते फिरते हैं, इसी प्रकार परम तत्त्व चेतन ब्रह्म की प्राप्ति, खोज, अथवा ज्ञान के लिये स्वय ही ससार के लोग प्रवृत्त होते हैं, अथवा जगत् का कारण प्रकृति स्वय ही इसकी सन्निधि मात्र से कार्य मे प्रवृत्त हो जाती है। ईश्वर की कोई इच्छा नही होती, क्योंकि ईश्वर मे इच्छा तो तब हो जब उसका कोई प्रयोजन या स्वार्थ हो। इच्छा किसी कारण से होती है। ऐसा कोई कारण भी नही। अत ईश्वर मे इच्छा पूर्वक कर्तृत्व धर्म नही है। ब्रह्म म जो कर्तृत्व और अकर्तृत्व धर्म माने गये हैं—'निरिच्छत्वादकर्तासौ, कर्ता सन्निधिमात्रत ।' इन कारणों मे माने गये हैं। किसी भी प्रकार की इच्छा न होने से ईश्वर अकर्ता है, क्योंकि बिना इच्छा के कोई भी कर्म नही हो सकता है। पाणिनी का एक सूत्र है—'कर्तुरीप्सिततमं कर्म।' कर्ता को जो इच्छित हो वही कर्म

करता है अर्थात् कर्ता की इच्छा से ही ईप्सित—इच्छित कर्म किया जाता है। जब ब्रह्म मे इच्छा ही कोई नही है। तब कर्म भी कैसे करेगा। कर्म करने से ही कर्ता भी होता है। अत ईश्वर मे कर्तृत्व धर्म नही है। जब कर्तृत्व धर्म माना गया है, वह प्रकृति या माया की सन्निधिमात्र से माना गया है। वास्तव मे इसमे कर्ता धर्म नही है क्योकि धर्म रूप परिणाम विकारवान् म होता है। जैसे बुद्धि चित्त मे ज्ञानादि के परिणाम होते हैं। अत कर्तापन का धर्म ब्रह्म मे उत्पन्न नही होता है। केवल सन्निधिमात्र से ब्रह्म मे कर्तृत्व धर्म का आरोप कर दिया जाता है। वास्तव मे इसमे यह धर्म उत्पन्न नही होता है।

इसी आधार पर दो प्रकार का ब्रह्म इस तीसरे मन्त्र मे मान लिया गया है। एक अनिच्छा से अकर्तृत्व धर्म कहा है और दूसरा सन्निधिमान से कर्तापन आरोप कर दिया है। वास्तव मे ब्रह्म के सन्निधान से प्रकृति मे ही कर्तृत्व धर्म पैदा होता है, क्योकि यह परिणामिनी कार्यरूपा है। जीवात्मा के सन्निधान से चित्त बुद्धि मे ज्ञान आदि धर्म पैदा होते हैं, तब ब्रह्म के सन्निधान से प्रकृति मे ज्ञानादि धर्म का उत्पन्न होना कोई भी आपत्ति की बात नही। हम तो भगवान् को सर्वथा ही निष्क्रिय और असग रखना चाहते हैं। असङ्ग होने से कोई भी दोष नही आता है और सङ्गदोष से अनेक दोष उत्पन्न हो जाते हैं। सर्व धर्म प्रकृति मे ही पैदा होते हैं। भगवान् के व्यापक सम्बन्ध से, उनका ही भगवान् मे आरोप कर दिया जाता है।

इस प्रकार के सम्बन्ध से रजोगुण मे ब्रह्म का साक्षात्कार करना चाहिये क्योकि वह प्रत्येक वस्तु मे दर्शन का विषय बन जाता है। उसकी व्यापक भाव से अनुभूति होती है। अन्तर्यामी सूक्ष्म रूप से पदार्थ मे गति का हेतु बना हुआ है। इस सूक्ष्म प्रेरणा के सहारे ही सर्व पदार्थ क्रियाशील बने रहते हैं। अन्यथा जड पदार्थ मे चेतन सत्ता के बिना स्वय गति नही हो सकती है। यदि प्रौढीवाद से किसी जड पदार्थ मे स्वाभाविक ही क्रिया मान लें, तो बुद्धि आदि जड पदार्थो मे ज्ञान कहाँ से आया। अत मानना पडता है कि चेतन के सम्बन्ध से ही वह प्रकट हुआ है। यदि बुद्धि का ही ज्ञान मान लें, तब यही आत्मा के समान चेतन हो जायेगी।

४ **अन्वय रूप**—समष्टि महत् रजोगुण का चतुर्थ अन्वय रूप नही होता है। इसलिये पञ्चम अर्थवत्त्व का वर्णन करते है।

समष्टि महत् रजोगुण
पञ्चम रूप मे ब्रह्म विज्ञान
(समष्टि महत् रजोगुण का पञ्चम रूप)

५ समष्टि महत् रजोगुण के अर्थवत्त्व रूप मे—

यह रजोगुण मुख्य रूप से मनुष्यो के भोग का हेतु होता है। गौण रूप से अन्य प्राणियो के भोग का भी हेतु होता है। राग आदि धर्म लोक मे इसके ही हैं। राग द्वारा मनुष्य और पशु दोनो उपभोग करते है। इसी प्रकार द्वेष आदि भी दोनो के भोग और दुख का हेतु होता है। अत यह भोग प्रधान ही है। परन्तु सत्व गुण के साथ मिलकर गौण रूप से सहकारी होकर मोक्ष का भी हेतु होता है। पर मुख्य रूप से तो दु ख भोग का ही हेतु सिद्ध होता है। इस विषय मे गीता के ये वचन है। यथा—

रजसस्तु फल दु खमज्ञान तमस फलम् ।
अ० १४ । श्लो० १६ ॥

—रजोगुण का फल दु ख, और तमोगुण का फल अज्ञान है । ये दु ख और अज्ञान अनेक अनर्थो और बन्धनो का हेतु होकर पुन जन्म देते रहते हैं । समार का आवागमन समाप्त ही नही होने देते है । ये दोनो गुण आसुरी सम्पत्ति का ही सग्रह करने मे मानव को लगाये रखते हैं । अपवर्ग की ओर प्रवृत्ति ही नही होने देते है । वर्तमान युग मे रजोगुण अत्यन्त प्रधान बना हुआ है । सुख और शान्ति को पास नही आने देता है । न दिन को चैन और न रात को नीन्द ही आती है । रात दिन भोग सग्रह मे प्रवृत्ति बनी रहती है । जिसका फल दु ख और क्लेश ही होता है । भोग और ऐश्वर्य मे लगी हुई बुद्धि अध्यात्म विज्ञान से भी विमुख हो जाती है । मानव यथार्थ सुख शान्ति से ही वञ्चित रहता है । यह है इस रजोगुण की भोगात्मक अर्थवत्ता ।

जितना भौतिक विज्ञान उन्नति कर रहा है, उतनी ही परेशानियाँ अधिक बढती जा रही है । अध्यात्म विज्ञान का साथ मे न होना ही परेशानियो का कारण है । भौतिक विज्ञान भी तब ही सुख भोग और सरस सुख शान्ति देने वाला हो सकता है, जबकि उसके साथ अध्यात्मवाद का पुट लगा हो । अन्यथा, कोरा भौतिक विज्ञान तो विनाश की ओर ले जाता है । इसमे सब देशो का प्राचीन इतिहास प्रमाण है यह सब रजोगुण का ही प्रभाव है । रजोगुण भी तब ही सुख का हेतु होता है, जब उसके सम भाग मे सत्व गुण भी हो । दोनो की प्रधानता समान हो, तब ही यह लोक भी स्वर्ग के समान सुखदायक अनुभूत लगता है । अकेला रजोगुण प्रधान होकर मन को दुख और क्लेशो मे धकेलता है । अनेक परेशानिया उत्पन्न करता है । हम समष्टि रजोगुण का वर्णन कर रहे हैं । जब यह अपने सहयोगी सत्व तम द्रव्यो के साथ मिलकर परिणाम भाव को प्राप्त होता है, और कार्यो को उत्पन्न करता है, तब इसके ये धर्म जिन का हम स्थूल रूप मे वर्णन कर चुके हैं, उन कार्यो मे परिणाम होकर चले जाते है । सब प्राणियो के भोग का हेतु बन जाते है, व्यष्टि भाव को प्राप्त होकर । यह है इस रजोगुण की अर्थवत्ता और प्राणियो के लिये उपकारिता, क्योकि भोग और अपवर्ग के लिये यह प्राप्त हुआ है । अपवर्ग का हेतु यह सत्व गुण के साथ मिल कर होता है । जवकि इसकी अपेक्षा सत्व गुण प्रधान होना है, और यह सहकारी रूप से होता है । तब यह ससार स्वर्ग के समान सुखद होकर मोक्ष का देने वाला भी होता है । भुक्ति और मुक्ति दोनो ही प्रदान करता है ।

ब्रह्म की उपासना और ज्ञान

इस मे ब्रह्म का आह्वान करके इसको भगवान् का मन्दिर समझ । इसका मुख्य धर्म क्रिया शीलता है । अत ऐसी भावना करे कि इस मे सूक्ष्म रूप मे जो चेतन ब्रह्म वर्त्तमान है, उसी के सम्बन्ध से इसमे यह क्रिया शीलता हो रही है । फिर ध्यान समाधि की दृष्टि से ब्रह्म की चेतना की अनुभूति कर । भेद रूप से भी और अभेद रूप से भी । इस उपासना और ज्ञान से बुद्धि शान्त होगी क्योकि ब्रह्म शान्त है । ब्रह्म अडोल है, अत बुद्धि भी अडोल हो जायेगी । ब्रह्म चेतन है, अत बुद्धि मे भी चेतना सी आ जायेगी । ब्रह्म ज्ञान स्वरूप है, अत बुद्धि का भी ज्ञान बढेगा । ब्रह्म दयावान् है, अत बुद्धि म भी दया भावना बढेगी । ब्रह्म सर्वोपकारी है, बुद्धि मे भी उपकार की भावना पैदा होगी ।

भगवान् मुक्त है, बुद्धि में भी मुक्ति की भावना पैदा होगी। भगवान् अनेक गुण सम्पन्न हैं, बुद्धि मे भी अनेक गुण उत्पन्न होंगे। यह है फल भगवान् की भक्ति और उपासना का। जो मानव के लिये कल्याण का हेतु होता है। जितना-जितना भगवान् का सम्पर्क बढता जायेगा उतने-उतने ही गुण योगी मे आते जायेगे। यह बुद्धि दर्पण के समान है, जैसा-जैसा पदार्थ इसके सामने आता जायेगा, वैसा-वैसा ही आभास इस पर पडता जायेगा ससारी, भोगी, विलासी, या विषयो के साथ जितना सम्पर्क बढेगा, वैसा ही आभास इस पर पड़ेगा। बुद्धि रजोगुणी होकर विषयो और ससार की ओर अधिक दौडने लगेगी। अध्यात्मवाद से विमुख हो जायेगी। भगवान् के सम्पर्क से अलग हो जायेगी। तमोगुण और रजोगुण का राज्य हो जायेगा। नाना प्रकार के दु ख क्लेश उत्पन्न होकर जीवन को कलुषित बना देगे। अत मानव को भगवान् की शरण लेनी चाहिये। इसके मिलने के पथ पर ही चलना चाहिये। जोकि निष्कण्टक निर्भय, सरल, सुगम, शान्ति का पथ है। जो मानव को यथार्थ सुख धाम मे ले जायेगा। जहा दुख, शोक, चिन्ता, भय, ईर्ष्या, द्वेष, अभिमान, क्लेश आदि कुछ भी न होंगे। जो अनन्त काल तक अक्षय, सुख, शान्ति और आनन्द का स्थान होगा। हमने बहुत जगह अपवर्ग के लिये अनन्त काल का प्रयोग किया है। हमारा अनन्त से अभिप्राय एक परान्त काल से है जिम की संख्या बहुत ही बडी है उसमे अनेक वर्ष होते है, अत. उन अनेक वर्षो के लिये अनन्त शब्द का प्रयोग कर दिया है। अन्यथा हम तो मुक्ति से पुनरागमन मानते हैं। क्योकि जो प्राप्त होने वाली वस्तु है, वह सदा नित्य नही रह सकती। साख्या दर्शन ने इस के लिये सूत्र मे अनावृत्ति शब्द दिया है, परन्तु हमारी समझ में यह बात नही आती है। जो एक बार उत्पन्न होकर फिर सदा नित्य बना रहे यह कुछ युक्ति सगत सिद्धान्त नही है, और न बुद्धि ही इस बात को मानती है।

इति समष्टि महत् रजोगुण मण्डलम्।

इति चतुर्थाध्याये द्वितीयः खण्ड.।

इति षष्ठमावरणम्॥

तृतीय खण्ड

५वा आवरण

समष्टि महत्सत्त्व मण्डल

प्रथम रूप मे ब्रह्म साक्षात्कार

(समष्टि महत्सत्व का प्रथम रूप)

१—समष्टि महत्सत्व के स्थूल रूप मे—

सत्त्व गुण—यह गुण नही है। द्रव्य है। तम रज से पूर्व यह उत्पन्न होता है। इनके साथ मिलकर समष्टि चित्त आदि कार्यो के प्रति उपादान कारण और सहकारी बनता है। अपने धर्मो गुणो को साथ लिए हुए कार्य भाव को प्राप्त होकर समष्टि चित्त के रूप मे परिणित होकर, पुन व्यष्टि चित्त के रूप मे परिणाम भाव को प्राप्त होकर अपने गुणो को प्रकट करता है। इसका कारण दूसरा नाम 'हिरण्यगर्भ अवस्था' भी है। वेद मे कहा है—'हिरण्यगर्भ समवर्त्तताग्रे'—हिरण्य गर्भ अर्थात् सत्त्व सर्व प्रथम कार्य रूप मे आया। व्यष्टि भाव को प्राप्त होकर जिन-जिन गुणो के द्वारा मनुष्यो, देवो तथा अन्य प्राणियो को भोग और मोक्ष प्रदान करता है, उनका वर्णन करते है।

समष्टि महत्सत्त्व के गुणो का परिणाम क्रम—

१ ज्ञान	२ प्रकाश	३ अनुद्भूत प्रकाश	४ सन्तोष
५ सुख	६ आनन्द	७ लघुत्व	८ शान्त
९ प्रीति	१० प्रसाद	११ निर्विकारता	१२ अनभिष्वग
१३ अनहङ्कार	१४ आर्जव	१५ श्रद्धा	१६ भक्ति
१७ शम्	१८ तितिक्षा	१९ आर्द्रता	२० विनम्रता
२१ वैराग्य	२२ उदासीनता	२३ क्षमा	२४ दम
२५ लज्जा	२६ अनुकम्पा	२७ धृति	२८ उत्साह
२९ उदारता	३० परोपकार	३१ निष्कामता	३२ धर्माचरण
३३ वैराग्य	३४ ऐश्वर्य	३५ ईश्वर प्रणिधान	

इत्यादि अनेक धर्मो को साथ लेकर उत्पन्न होता है।

सत्त्व द्रव्य मे सर्व प्रथम ज्ञान रूप धर्म उत्पन्न होता है। जो योगियो और स्वर्गवासी देवताओ को अदिव्य और दिव्य भोगा को प्रदान करता है। इसकी प्रधानता मे दोनो लोको के भोग सुखदायक होते है। मनुष्यो का जीवन सुखी शान्त रहता है। यथार्थ कर्त्तव्य का पालन होता है।गुणो की वृद्धि होती है। धम, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य का सग्रह होता है। ज्ञान द्वारा प्रकृति के कार्यो और उनके कारणो का विज्ञान होकर इनसे परम वैराग्य की उत्पत्ति भी होती है। यह ज्ञान प्रज्ञालोक, ऋतभरा और प्रान्त भूमि प्रज्ञा के रूप मे प्रकट होकर प्रकृति और पुरुष के यथार्थ निश्चयात्मक ज्ञान का हेतु बन कर मोक्ष प्रदान करता है। इसमे भगवद्गीता भी प्रमाण है। यथा—

'मुक्तसंगोऽनहंवादी, धृत्युत्साह-समन्वितः ।
सिद्धयसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्ता सात्विक उच्यते ।।

अ० १८ । श्लो० २६ ।।

—जब भक्त या योगी मे ज्ञान के कारण सत्त्व की प्रधानता हो जाती है। सब प्रकार के कुसंगो का त्याग कर देता है, किसी मे भी अनुराग नही रखता है। जन समुदाय मे इधर-उधर व्यर्थ कालक्षेप नही करता है। आत्म-चिन्तन, ब्रह्म चिन्तन या जन कल्याण मे ही अधिक समय व्यतीत करता है। परिवार, देश, जाति अथवा किसी भी प्राणी मे ममता नही रहती है, सर्व प्रकार के ऐश्वर्यो से चित्त विरक्त हो जाता है। चित्त मे लोक से उदासीनता हो जाती है। सर्व प्रकार की इच्छायें निवृत्त हो जाती है, सर्व ओर से पूर्ण सन्तोष हो जाता है। प्रकृति के साथ अनादि काल के सम्बन्ध से राग के सस्कारो का असम्प्रज्ञात समाधि द्वारा अभाव करने मे सदा तत्पर रहता है, क्योकि यही मुख्य रूप से जन्म मरण के हेतु बने हुए है। इन सस्कारो के निरोध तथा अभाव मे बहुत काल पर्यन्त निरन्तर अभ्यास की आवश्यकता होती है। इनके निरोध से ही मोक्ष होना है।

ज्ञान—अनहंवादी हो जाता है। लोक और परलोक सम्बन्धी किसी भी कर्म को करते हुए उसको अभिमान ही नही होता है। निष्काम भाव से सदा पर उपकार के कार्य करता है। ममेद की भावना जाती रहती है। कभी अभिमान का वचन नही बोलता है। मेरे पन की भावना खत्म हो जाती है। देह अध्यास समाप्त हो जाता है। धैर्य और उत्साह से श्रेय के सब कार्य करता है। इन दोनो गुणो को परोपकार और जन कल्याण के उपयोग मे लाता है। सिद्धि, असिद्धि, हानि, लाभ मे हर्ष या शोक नही करता है। किसी प्रकार का बुद्धि या चित्त मे विकार पैदा नही होता है। सफलता और निष्फलता में सदा समान रहता है। केवल मात्र निष्काम कर्म करता रहता है। मोक्ष के हेतु सत्त्व प्रधान ज्ञान का यह लक्षण है।

प्रकाश—अनुद्भूत प्रकाश—यह दोनो ज्ञान के ही पर्य्याय वाचक है। सत्त्व प्रधान अवस्था मे ऋतंभरा और विशोका ज्योतिष्मती से ज्ञान का प्रादुर्भाव होता है। वह प्रकाश को लिए हुए होता है। वह पदार्थ के रूप को दिखाने वाला होता है। वह पदार्थ के स्वरूप को स्पष्ट और प्रत्यक्ष कर देता है। वह अग्नि के समान दाह नही करता है। जलाता नही है। पदार्थ के रूप को ही दिखाता है। अग्नि के समान जलन नहीं करता। वह प्रकाश चर्म चक्षुओ से छिपा हुआ, चकाचौन्ध न करने वाला, शान्ति तरलता, और लावण्य को लिए हुए होता है। तदनन्तर सन्तोष धर्म का प्रादुर्भाव होना है। इस धर्म के उदय होने पर तृष्णात्मक प्रवृत्ति शान्त होने लगती है। सन्तोष भी ज्ञान का परिणाम है। क्योकि वह बुद्धि और चित्त का ही धर्म है। इन्हीं मे उत्पन्न होता है। इस सन्तोष को मोक्ष का द्वारपाल कहा गया है। जब बुद्धि और चित्त इससे प्रभावित होते हैं, तब यह तमोगुण और रजोगुण की प्रवृत्तियों और वृत्तियो को शान्त कर देता है।

मोक्ष के चार द्वारपाल

महोपनिषद् अपवर्ग के द्वारपालो का वर्णन करती है। यथा—

'मोक्षद्वारे द्वारपालाश्चत्वारः परिकीर्तिता.।
शमो विचार. सन्तोषश्चतुर्थः साधु संगम ॥
अ० ४। म० २॥

—मोक्ष के चार द्वारपाल कथन किये हैं। जो सदा मोक्ष द्वार की रक्षा करते हैं। जिस द्वार मे विशुद्ध अन्त करण विशिष्ट आत्मा का ही प्रवेश होता है।

पहला द्वारपाल— बताया है शम्'। इसका अर्थ है—मन बुद्धि की शान्ति—जिस अवस्था मे इन्द्रिय और उनके विपयो के सम्बन्ध का नितान्त अभाव हो जाये, बुद्धि और मन विलकुल उदासीन हो जाये, यह भी विज्ञान की या सत्त्व प्रधान बुद्धि की ही अवस्था है। यह द्वारपाल काम क्रोध आदि को अन्दर प्रविष्ट नही होने देता है। बहुत सावधान होकर स्थिर रहता है। मर्व इन्द्रियो का दमन करता रहता है। बुद्धि और चित्त को बिल्कुल शान्त रखता है।

दूसरा द्वारपाल है— विचार। यह भी बुद्धि का ही धर्म है बिना विचारे, बिना निर्णय किये कोई भी कर्म बुद्धि मे नही होने देता। सत्यासत्य, धर्मा धर्म, पाप-पुन्य का यथार्थ निर्णय कर के सत्य, धर्म, और पुण्य युक्त कर्म मे प्रवृत्त करता है। विचार के विपय मे एक दृष्टान्त उपस्थित करते हैं—

गौतम को अपनी पत्नी पर सन्देह हो गया कि दुश्चरित्रा हो गयी है। उसने अपने पुत्र चिरकारी को आज्ञा दी कि जाओ, तलवार से अपनी माता का वध कर दो। जब वह पिता की आज्ञा से वध करने गया तो वहाँ जाकर विचार करने लगा, कि—'माता ने भी मेरे ऊपर अनेक उपकार किये है। स्त्री का वध भी पाप कर्म है। उधर पिता की आज्ञा है। उधर माता के अगणित उपकारो का ध्यान आता है।' इस प्रकार बहुत देर तक हाथ मे तलवार लिए दोष गुणो का विचार करते-करते बहुत समय बीत गया।

तब तक गौतम को स्मरण आया, कि पत्नि का इस मे दोप नही है। इन्द्र ने वेश बदल कर, मेरा रूप धारण करके उसके साथ छल किया है। उसको ठगा है। अत वह वध करने योग्य नही है।"

वह दौडकर घर गये। चिरकारी को जा कर देखा। वह नगी तलवार हाथ मे लिए विचार कर रहा था। पुत्र को देखकर गौतम ने कहा—"बेटा ! जैसा तेरा नाम है, वैसे ही तेरे मे गुण भी है। तू सोच विचार कर ही कर्म करने वाला है। अच्छा किया, जो तुमने माता का वध नही किया। वह निरपराध है।"

इस दृष्टान्त से सिद्ध होता है कि अच्छी तरह विचार कर ही प्रत्येक कार्य करना चाहिए। यह बुद्धि या ज्ञान का ही धर्म है।

तीसरा द्वारपाल है सन्तोष—योग दर्शन—'सन्तोपादनुत्तमसुखलाभ' सन्तोप से अत्युत्तम सुख का लाभ होता है।' तथान—'न सन्तोपात्पर पुण्य, न सन्तोपात् पर सुखम्'—सन्तोप से बढ कर कोई पुण्य नही, और सन्तोप से बढकर कोई सुख नही।

क्योंकि सन्तोष सब प्रवृत्तियों को शान्त कर देता है। इससे सब कामनायें शान्त हो जाती है। यह सर्व आरंभों को समाप्त कर देता है। सन्तोष ज्ञान और वैराग्य को दृढ करता है। भोगों और विषयों से निवृत्त करता है। तृष्णा का अभाव करता है। मोक्ष द्वार के अन्दर प्रवेश करा देता है।

चौथा द्वारपाल है, साधु संग—किसी महापुरुष का कथन है—

'साधूनां दर्शनं पुण्य, तीर्थं भूताहि साधवः।
तीर्थः फलति कालेन, सद्यः साधु समागमः॥

—आत्मवित् ब्रह्म ज्ञानी महापुरुषों का दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है। पुण्य से ही ऐसा दर्शन प्राप्त होता है। महापुरुषों का दर्शन तीर्थ समान है। ये तीर्थ रूप ही होते है। इनके सत्संग, उपदेश, सेवा, दर्शन, सहवास आशीर्वाद, दया विशेष से जन्म जन्मान्तरों के बन्धन से मनुष्य मुक्त हो जाता है। ये साकार रूप से भगवान् का रूप होते हैं, क्योंकि इन्होंने भगवान् का साक्षात्कार किया होता है। अपने स्वरूप को पहचाना होता है। अत. इनके रूप में भगवान् साक्षात्कार रूप से प्रकट होता है। ये महान् आत्मा ही भव सागर को पार कराने में मल्लाह और किश्ती के रूप में होते हैं। जब भी जितने संसार सागर के तरण की इच्छा की या भगवान् के मिलन की, या दर्शन की जिज्ञासा की, तब ये सन्त, महात्मा, साधु ही निमित्त बने। गुरुजनों द्वारा यथार्थ आलोक मिला। इनके द्वारा ही श्रेय मार्ग के पथिक होकर भव सागर को पार किया, और भगवान् के दर्शन भी किये। भगवान् इन्हीं गुरुजनों के रूप में साकार रूप से प्रकट होता है।

माता-पिता जन्म देने वाले हैं, भाई बन्धु आदि इस लोक के सहायक होते हैं, पर साथ ही ससार के बन्धनों को और अधिक दृढ करने वाले होते हैं, परन्तु आत्म ज्ञानी साधू गुरुजनों के रूप में इस लोक के बन्धनों से मुक्त करते हैं। इस लोक को सुन्दर, मधुर, सुखद, आनन्दप्रद, शान्तिदायक, निर्भय, पवित्र, सुफल और मोक्षदायक बनाते है। परलोक को भी अनन्त सुख अनन्त शान्ति, अनन्त आनन्दयुक्त बना देते है यह है सच्चे आत्म-ज्ञानी साधुओं के सत्संग का फल, जो कि इस लोक और परलोक को सुधारने वाला और पावन करने वाला है। अत. महापुरुषों सन्तों, साधुओं का सत्संग आवश्य करना चाहिये।

सुख—इसकी अनुभूति सत्त्व द्रव्य के परिणाम भूत समष्टि चित्त के कार्य व्यष्टि चित्त में होती है। यह इस चित्त के परिणाम की ही अवस्था विशेष है। इसके परिणाम काल में सुख और दुःख का क्रम चलता रहता है। अभिलषित वस्तु के उपभोग के समय जो चित्त की अवस्था होती है, यह चित्त का परिणाम ही है। विषय भोग के काल में जो एक प्रकार की प्रसन्नता होती है, इसका नाम भी सुख है, अथवा अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति में जो हर्ष होता है, उसको भी सुख ही कहते हैं।

न्याय दर्शन में कहा है :—

'इच्छा-द्वेष-प्रयत्न-सुख-दुःख-ज्ञानान्यात्मनोलिंगम्।'
न्याय० अ० १। आ० १। सू० १०॥

—इच्छा द्वेष प्रयत्न सुख-दु ख और ज्ञान ये आत्मा के जानने के चिह्न है। इनसे आत्मा की पहिचान होती है। अत यहा आत्मा की पहिचान का हेतु सुख बताया है। सब प्राणी इस सुख की अभिलाषा करते है। इसी लिए कर्म करते है। चाहे पापात्मक कर्म हो या पुण्यात्मक दोनो मे मुख्य हेतु सुखाभिलाषा ही होती है। शरीर द्वारा जितने भी कर्म किये जाते हैं, सब सुख की इच्छा से ही किये जाते है। यह सुख चित्त का एक धर्म, परिणाम अथवा अवस्था विशेष है। इसकी उपज हर्ष आह्लाद प्रसन्नता इत्यादि है। अभीष्ट भोगो के पश्चात् जब भोगो का स्मरण आता है, तब भी सुख की अनुभूति होती है। किसी अन्य इन्द्रिय का विषय न बनकर यह चित्त का ही विषय बनता है। अत यह चित का ही परिणाम विशेष है। चित्त का अनेक धर्मो के रूप मे हर समय परिणाम होता रहता है।

सुख और आनन्द का भेद

(शका)—सुख और आनन्द मे क्या अन्तर है ?

(समाधान) इन्द्रियो द्वारा विषयो के उपभोग से जो एक अनुभूति होती है, उस को सुख कहते हैं। आनन्द बिना इन्द्रिय और विषयो के उपभोग के भी होता है। इन्द्रियाँ जब विषयो से उपराम होकर या थककर शान्त हो जाती हैं, उस काल मे चित्त की जो एक अनिर्वचनीय-सी अवस्था होती है, उस का नाम आनन्द है। अत्यन्त सात्त्विक निद्रा से जिस समय सब इन्द्रियो और मन के सब व्यापार शान्त हो जाते हैं, उस काल मे भी आनन्द की उपलब्धि होती है। तब निद्रा समाप्त होने के पश्चात् भी मनुष्य अनुमान करते हुए कहता है—"आज वह आनन्द निद्रा मे आया।" यह किसी विषयजन्य नही होता है। यह निद्रा काल के उत्पन्न हुए चित्त का ही धर्म होता है। समाधि की अवस्था मे भी जब सब वृत्तियाँ शान्त होती हैं, तब भी विशेष आनन्द की अनुभूति होती है यह भी चित्त का एक परिणाम विशेष है।

(शका) यदि इस आनन्द को आत्मा का और सुख को चित्त का धर्म मान लें तो इसमे क्या आपत्ति है।

(समाधान) यदि यह आनन्द धर्म अब आत्मा मे उत्पन्न हुआ है और पहले नही था, तब तो आत्मा को भी चित्त के समान परिणामी मानना पडेगा, क्योकि चित्त मे भी इसी प्रकार के परिणाम होते रहते है। आत्मा मे इस प्रकार का कोई परिवर्तन नही आना चाहिये कि जो पहले न हो और बाद मे आजाये, अथवा पहले हो और पीछे नष्ट हो जाये। जहाँ उत्पन्न और विनष्ट होने वाला कोई गुण होता है। वह पदार्थ परिणामी होता है। अत यह जो आनन्द की अभिव्यक्ति होती है, यह चित्त का ही धर्म है। विषय-सम्बन्धाभाव मे चित्त की स्वरूप मे स्थिति होने से उस मे आनन्द की अभिव्यक्ति होती है। जहाँ ज्ञान उत्पन्न होता है, वहाँ ही आनन्द भी उत्पन्न हो सकता है। यदि आनन्द को आत्मा मे उत्पन्न हुआ मान ले और आत्मा का ही धर्म मान लें, तो धर्मी ही तो धर्मो के रूप मे परिणत होता है। चाहे धर्म धर्मी का अभेद ही क्यो न हो। फिर भी धर्मो का परिणाम धर्मी मे ही होता है। अत यह भी चित्त के समान परिणामी हो जायेगा क्योंकि इस मे आनन्द रूप धर्म पहले नही था, बाद मे आया है।

आनन्द चित्त में ही है !

(शंका) जब आप आत्मा मे भी आनन्द की अभिव्यक्ति ही नही मानते हो तो फिर आत्मा क्या पदार्थ है ?

- (समाधान) आनन्द की अभिव्यक्ति सयोग से उत्पन्न होती है । जब चित्त का सम्बन्ध विषय, इन्द्रिय, मन, आदि के साथ नही होता है, तब इस का सम्बन्ध जीवात्मा के साथ होता है । तब आत्मा के सम्बन्ध विशेष से चित्त मे आनन्द की अभिव्यक्ति होती है क्योकि आत्मा चेतन है, और चेतन आत्मा के सम्बन्ध विशेष से चित्त मे आनन्द उत्पन्न होता है । आत्मा मे नहीं होता है, क्योकि चित्त तो परिणामी है । विषय सेवन काल मे सुख रूप धर्म उत्पन्न हुआ था । आत्मा के सेवन काल मे आनन्द उत्पन्न हुआ है । अतः आनन्द चित्त का ही परिणाम विशेष है । यदि कहो कि आत्मा को फिर क्या प्राप्त हुआ, जब सुख और आनन्द चित्त के ही धर्म हो गये । आत्मा ने कुछ खोया या गँवाया नही है जो उसने प्राप्त करना है । इस अणु चेतन सत्ता के सयोग के चित्त मे ही सब धर्मों की अभिव्यक्ति होती हैं । ज्ञान क्रिया आनन्द इत्यादि की । आत्मा मे किसी भी गुण की अभिव्यक्ति नही होती है । वह सदा ही एक रस रहता है क्योकि निर्विकार है, अपरिणामी है। स्वय निष्क्रिय है। चित्त को क्रिया प्रदान करता है। आत्मा के सम्बन्ध मात्र से ही चित्त मे सब धर्म स्वय ही उत्पन्न होते रहते हैं । बन्ध और मोक्ष भी इस चित्त का ही होता है । क्योकि आत्मा तो सदा मुक्त ही है। मैं सुखी, मै दुःखी आदि का जो इसमे व्यवहार होता है, यह चित्त की अज्ञानता का ही कारण है, न कि आत्मा की अज्ञानता का । आत्मा अज्ञान रूप कभी हुआ ही नही, जो अब ज्ञान की प्राप्ति मानें । इस विषय मे सांख्य शास्त्र का यह प्रमाण है—अ० ६ । सू० १० । 'निर्गुणत्वमात्मनोऽसंगत्वादिश्रुते:' —आत्मा जब निर्गुण है असग है, तब आनन्द धर्म की कैसे उत्पत्ति हो सकती है ।

चेतन आत्मा के सम्बन्ध से ज्ञान आदि धर्म चित्त मे ही होने हैं । इस चेतना शक्ति का ही यह प्रभाव है । जो चित्त मे अनेक धर्म उत्पन्न होने लगते हैं । वैसे चित्त मे पहले से ही यह धर्म वर्तमान थे, जो अपने कारण से ही आये थे। आत्मा केवल अभिव्यक्ति में हेतु हुआ है । हेतु से अभिप्राय—निमित्त कारण बना है । उपादान कारण नही । उपादान तो वहाँ चित्त ही है । आत्मा निमित्त कारण है ।

सुख और आनन्द की मीमांसा हो चुकी । इनके भेद का वर्णन करने के पश्चात् चित्त के अन्य धर्मों का वर्णन करते हैं । यद्यपि ये सब धर्म सत्त्व गुण के ही हैं। परन्तु इनका भोग व्यष्टि चित्त और बुद्धि मे ही जाकर होता है । अत इनकी व्याख्या चित्त के भोग और अपवर्ग के आधार पर ही की जा रही है । वास्तव मे परिणत होते हुए गुण जब व्यष्टि चित्त और बुद्धि मे पहुँचते हैं तब ही ये भोग और अपवर्ग का हेतु बनते हैं ।

लघुत्व—हलकापन, सूक्ष्मता, स्वच्छता, प्रकाशता, सात्विकता आदि इसके कई अर्थ होते हैं । यह भी चित्त का धर्म है ।

प्रीति—यह लोक और परलोक के लिए अत्यन्य सहायक है । इस लोक मे परिवार, इष्ट मित्र, समाज, देश, गुरु के प्रति व्यवहार मे अत्यन्त उपयोगी है । परलोक के लिए भगवान् मे प्रेम के रूप मे उपयुक्त होती है । यह श्रद्धा विश्वास को उत्पन्न करती है । परिवार, समाज, देश, विश्व को एकसूत्र मे बान्ध कर रखती है । इस लोक के लिए —

भी कल्याण का हेतु है, और परलोक के लिए भी। दूसरे के क्रोध को शमन करने मे यही सरलतम उपाय है।

प्रसाद – चित्त या बुद्धि की प्रसन्नता।

निर्विकारता—बुद्धि और चित्त मे कोई भी दोष उत्पन्न न होना। चित्त का समाहित बने रहना। चित्त मे शान्ति का बना रहना। बुद्धि मे सकल्प विकल्प का पैदा न होना। यह सब इस निर्विकारता का ही प्रभाव है। सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात समाधि मे भूमिका तैय्यार करती है। ज्ञान विज्ञान के कार्य मे अत्यन्त सहायक होकर एक-रसता को यह निर्विकार धर्म पैदा करता है।

तम और रज द्रव्य के गुण जहाँ मुख्य रूप से भोग के हेतु है, वहाँ सत्त्व प्रभ के गुण मुख्य रूप से अपवर्ग के ही हेतु होते हैं, गौण रूप से भोग के भी कारण हैं। योगी और भक्त लोग अनेक वर्ष ही नही किन्तु अनेक जन्मो को इस सत्त्व के गुणो को प्राप्त या उत्पन्न करने मे लगा देते है क्योकि इनके बिना मोक्ष का प्राप्त होना सर्वथा असम्भव है।

अनहकार—राहित्य—निरभिमानिता का होना अत्यन्त आवश्यक है। योगी मे अपने किसी गुण का अभिमान ही नही होना चाहिए। श्रद्धा भक्त और योगी के लिए माता के समान कल्याणकारिणी होती है। 'श्रद्धा वान् लभते ज्ञानम्।'—श्रद्धावान् ही ज्ञान को प्राप्त कर सकता है। अत श्रद्धा का होना अत्यन्त ही आवश्यक है। भगवान् का दर्शन अथवा मिलन भी श्रद्धापूर्वक ही होता है। श्रद्धावान् पुरुष ही भक्तिमान हो सकता है। श्रद्धा भक्ति के बिना शुष्क हृदय मे न तो विज्ञान का अकुर ही उत्पन्न होता है, न ईश्वर आराधना और ध्यान ही हो सकता है। भज् सेवाया धातु से 'स्त्रिया क्तिन्' इस अष्टाध्यायी के सूत्र से क्तिन् प्रत्यय होकर भक्ति शब्द की सिद्धि होती है। इस का अर्थ सेवा, पूजा, आराधना इत्यादि होता है। अत यह भक्ति शब्द प्रथम ईश्वर के लिए, फिर गुरु, माता पिता तथा अन्य वृद्ध जना के लिए प्रयुक्त होता है। अत योगी और भक्त मे इस भक्ति धर्म का होना अत्यन्त ही आवश्यक है। यह भक्ति सात्त्विकता का उदय करती है। ज्ञान की वृद्धि करती है। भगवान् और गुरु का समीपवर्त्ती बनाती है। इसी प्रकार शम, दम, तितिक्षा, आर्जव, आर्द्रता, नम्रता आदि धर्म हैं। जो भक्त और योगी के भूषण हैं, अन्त करण को निर्मल बनाते है। इन्द्रियो के दमन करने मे सहायक होते हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहकार पर विजय प्राप्त करने की सामर्थ्य पैदा करते है। मोक्ष के द्वार को खोलते हैं। इसी प्रकार दूसरे धर्म क्षमा, लज्जा, अनुकम्पा, धृति, उत्साह, उदार भाव, उपकार, निष्कामता, धर्माचरण आदि गुण हैं। जो सात्त्विक बुद्धि और चित्त म ही उत्पन्न होते है। जो भोग और मोक्ष मे अत्यन्त ही सहायक होते हैं। मानव के जीवन को सुन्दर और पवित्र बना देते है। साथ ही सुगन्धित और कीर्तिवाला बनाकर ससार मे आदर्श उपस्थित करते हैं। इन गुणो से युक्त होने पर भक्त और योगी के भोग भी त्याग और वैराग्य की भावना को लिये हुए होते हैं।

वैराग्य का महत्त्व

वैराग्य और उदासीनता भक्त और योगी के सासारिक बन्धनो को शिथिल करते हैं। राग पूर्वक प्रवृत्ति का अभाव करते हैं। बुद्धि और चित्त को निर्विकार बनाते हैं। सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात समाधि को दृढ करते हैं। महापुरुष ही आत्म ज्ञान और

ब्रह्म ज्ञान को प्राप्त कर सकते हैं। मोक्ष के भागी बन सकते हैं। जिन के बुद्धि और चित्त संसार के भोगों से विरक्त होकर उदासीन हो गये हैं। वैराग्यवान् और उदासीन हृदय मे विशेष ज्ञान का प्रादुर्भाव होता है। जो आत्म-ज्ञान और ब्रह्म-ज्ञान का हेतु होकर मोक्ष को प्रदान करता है। इस वैराग्य की प्रशंसा अथवा महिमा का वर्णन करते हुए उपनिषद् ने कहा है। यथा—

"परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायान्,
नास्त्यकृतः कृतेन। तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभि-
गच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्॥

मुण्डक० खं० २। म १२॥

—ब्रह्म-विज्ञान का जिज्ञासु ब्राह्मण इस लोक के सर्व कर्मों को अच्छी तरह सोच समझ ले। अच्छी तरह परीक्षा कर ले। किसी कर्म या भोग मे मेरी ममता या आसक्ति तो नहीं रही है। लौकिक कार्यों के प्रति मेरे सब कर्तव्य तो समाप्त हो गये हैं। कोई शेष नही रहा है और कृत और अकृत=जो कर चुके हैं, जो करने शेष रह गये है। या जो करने या न करने योग्य कर्म हैं, इन सब से ही जब वैराग्य प्राप्त हो जाये तब वह श्रद्धा भक्ति पूर्वक भेंट पूजा के लिये कुछ सामग्री लेकर वेद के विद्वान्, ब्रह्म-ज्ञानी, ब्रह्म में निष्ठा रखने वाले, आत्मवित्, योगी गुरु की शरण मे जाये। आत्म-विज्ञान और ब्रह्म-विज्ञान प्राप्त करे।"

इस अध्यात्म विज्ञान के लिये वैराग्य को ही प्रधान कहा है। जब तक इस लोक और परलोक के आदिव्य और दिव्य विषयों से वैराग्य नहीं होता है तब तक आत्म-विज्ञान होना कठिन ही है। यदि विज्ञान प्राप्त भी हो जाए, और परम वैराग्य न हो तो मोक्ष होना नितान्त असंभव है। अतः योगी को वैराग्य की धारणा दृढ़ करनी चाहिये। देह का अध्यास छोड़ना चाहिये और इस प्रकार की भावना दृढ़ करनी चाहिये। यथा

'संसार एव दुःखानां सीमान्त इति कथ्यते।
तस्मिन्मध्ये पतिते देहे सुखमासाद्यते कथम्॥

महो० अ० ६। मं० २३॥

—संसार मे दुःखो की सीमा ही अन्तिम सीमा है। इससे परे और दुःख नहीं हैं। इस संसार रूपी दुःख मे पड़ा हुआ देह कैसे सुखी हो सकता है। एक दुःख दूर नहीं होता, दूसरा और आकर उपस्थित हो जाता है। दुःखों का अन्त ही होने मे नहीं आता है। यथा च—

'एकस्य दुःखस्य च यावदन्तं, गच्छामि पारमिवार्णवस्य।
तावद्द्वितीयमुपस्थितं मे, छिद्रेष्वनर्थाः बहुलीभवन्ति॥

—संसार रूपी सागर को पार करना है। परन्तु किस प्रकार मैं पार कर सकता हूँ। एक दुःख की क्या बात कहूं, वह तो समाप्त ही नहीं होता। तब तक दूसरा और आ उपस्थित हो जाता है। जहाँ एक छिद्र होता है, वहाँ और भी अनेक छिद्र हो जाते हैं। इन दुःखों से ही छुटकारा नहीं होता है।' इस प्रकार की वैराग्य भावना को दृढ करे। तब ही शरीर से और संसार से वैराग्य होता है। ये दो ही तो बन्धन का हेतु हैं। राग के कारण

है। इनके कारण से राग पनपता है। अत आत्मविज्ञान के जिज्ञासु को वैराग्य की भावना दृढ करनी चाहिये। सर्व प्रकार की आशाओ का परित्याग करना चाहिये। सर्व सङ्कल्प और इच्छाओ को छोडना चाहिये, चित्त मे निर्विकल्पता और निष्क्रियता पैदा करनी चाहिये। बडे-बडे ऋषि मुनि, राजे महाराजे, इस जगत् मे न रहे फिर तेरी क्या गिनती है। अत जिस उद्देश्य के लिये यह मानव शरीर प्राप्त हुआ है, उसे अवश्य ही पूरा करना है और इसी जीवन मे पूरा करना है। इस प्रकार की भावना को दृढ करना चाहिये। इस वैराग्य की भावना द्वारा सर्व प्रकार की तृष्णा को शान्त करना चाहिये। यह तृष्णा मानव के बन्धन को दृढ करती है। रस्सी और लोहे की बेडियो से तो मनुष्य छूट सकता है, परन्तु तृष्णा से बधा हुआ पुरुष अत्यन्त कठिनता से छूटता है। निदाघ मुनि को वैराग्य का उपदेश देते हुए उनके गुरु ऋभु ऋषि ने बडा जोर देकर बलपूर्वक कहा यथा—

'रज्जुबद्धा विमुच्यन्ते, तृष्णाबद्धा न केनचित्।
तस्मान्निदाघतृष्णा त्व त्यज, सर्वसकल्पवर्जनात्॥

अ० ६। म० ३६॥

भावार्थ आ चुका है। अत तृष्णा को दूर करके वैराग्य को दृढ करे।

ईश्वर प्रणिधान—भगवान् के प्रति भक्ति विशेष, अर्थात् उसका ध्यान, उसकी आराधना, उसके प्रति अनन्य भक्ति, उसका विवेक, और उसका साक्षात्कार ईश्वर-प्रणिधान है। इस समष्टि सत्त्व द्रव्य के अन्दर उस भगवान् का आरोप करें। इसको लक्ष्य बना कर ध्यान की सूक्ष्म दृष्टि मे इस विज्ञानात्मक सत्त्व मे उस विज्ञान स्वरूप ब्रह्म का साक्षात्कार करे। यह पदार्थ ब्रह्म-विज्ञान के लिये और उसके साक्षात्कार . लिए सर्वश्रेष्ठ और अन्तिम है। ब्रह्म की चेतना से यह सत्त्व प्रकाशित हुआ है। ज्ञानरू हुआ २ है। ज्योतिरूप चेतनवत् सा बना हुआ है। प्रकृति का यह सर्वप्रथम ज्ञान रूप का है। ससार के विज्ञान का प्रसार इसी सत्त्व गुण के द्वारा हुआ है। ब्रह्म से सर्व प्रथ इसी ने विज्ञान को प्राप्त किया है। उसके ज्ञान रूप प्रकाश से यह ज्ञान रूप प्रकाश ब है। सृष्टि के निर्माण मे सर्वप्रथम इसी का मुख्य भाग है। यह रजस् तमस् को सा लेकर भोग और अपवर्ग का मुख्य हेतु हुआ है। अत ब्रह्म को इसमे व्याप्त समभक योगी को अपनी उपासना और विज्ञान का विषय बनाना चाहिये।

इस सत्त्व मे ब्रह्म से इस प्रकार की शक्ति आयी जो ज्ञान रूप मे प्रकट होक भोग और मोक्ष का कारण बनी है। जैसे प्रज्वलित अग्नि लोहे आदि धातुओ को अप रूप बना लेती है, इसी प्रकार ब्रह्म ने इसमे व्याप्त होकर इसे अपना रूप बनाया जीवो के कल्याण के लिए और भोग तथा मोक्ष के लिये। इस तत्त्व मे इसीलिये ज्ञान विशेषता आयी है। जैसे दर्पण मे स्वच्छ होने के कारण मुखादि को दिखाने की योग्य होती है, अन्य पदार्थों की अपेक्षा, इसी प्रकार इस समष्टि सत्त्व मे भी सर्व पदार्थों अपेक्षा निर्मल, शुद्ध, पवित्र, स्वच्छ होने से ब्रह्म दर्शन या साक्षात्कार कराने की योग है। ब्रह्म को सूक्ष्मता के कारण अपने अन्दर धारण करके ब्रह्म के समान चेतनवत् इ स्वरूप बना हुआ है। अत योगी सम्प्रज्ञात समाधि द्वारा इसमे ब्रह्म का साक्षात् करे।

समष्टि महत्सत्त्व मण्डल
द्वितीय रूप मे ब्रह्म-साक्षात्कार
(समष्टि महत्सत्त्व का द्वितीय रूप)

२ समष्टि महत्सत्त्व के स्वरूप मे—

सत्त्व गुण की प्रथम स्थूल अवस्था मे जो इसके अनेक धर्मों का वर्णन किया गया है। ये सब धर्म इस सत्त्व से अलग नही हैं। किन्तु इसी सत्त्व की परिणत होती हुई अवस्थायें है। जब यह समष्टि सत्त्व भोग और मोक्ष प्रदान करने के लिये अपने सहकारी कारणो के साथ मिल कर कार्य भाव को प्राप्त होता है, उस अवसर मे क्रमश इन धर्मों का प्रादुर्भाव होना है। ये सब समष्टि चित्त सत्त्व मे जाकर प्रकट होते हैं, और फिर व्यष्टि चित्त मे परिणाम भाव को प्राप्त होकर चले जाते हैं। तदन्तर मनुष्य के भोग और अपवर्ग का हेतु बनते हैं। इस सत्त्व धर्मी का अपने धर्मो से सदा अभेद ही रहता है, भले ही यह बाह्य रूप से भेद रूप मे प्रतीत हो, परन्तु वास्तव मे इनका अपने धर्मो से सदा अभेद ही रहता है। अत इस सत्त्व की धर्मों या गुणों सहित स्वरूप सज्ञा है। इसी को स्वरूप, समवाय या तादात्म्य सम्बन्ध कहते हैं।' धर्म धर्मी के स्वरूप सम्बन्ध मे ही ब्रह्म दर्शन करना चाहिये। जब योगी की बुद्धि इतनी सूक्ष्म ज्योतिष्मती के रूप मे हो जाये, कि इस सत्त्व गुण के यथार्थ स्वरूप का विज्ञान पूर्वक साक्षात्कार कर सके और इसके परिवर्तन होते हुए धर्मो का भी अनुभव कर सके तब ही इसमे ब्रह्म के व्यापक रूप और उसकी प्रेरिका चेतनाशक्ति का साक्षात्कार कर सकता है। अथवा इस सत्त्व के स्वरूप को ही ब्रह्म मानकर इसकी उपासना करें। जब इसके विज्ञान के क्रम मे परिणाम होते हुए अनुभव मे आवें तब इससे भिन्न अपरिणामी ब्रह्म की उसमे भावना कर, जहाँ परिणाम क्रम समाप्त हो जाये, केवल एक अनिर्वचनीय निष्क्रिय परिणाम रहित चेतन सत्ता की अनुभूति हो, उसको ही ब्रह्म समझना चाहिये। वह चेतन सत्ता भेदाभेद रूप से उसमे स्थिर है। अभेद रूप से इसलिये कि इसने इस सत्त्व को व्याप्त किया हुआ है, और भेद इसलिये कि दोनो स्वरूप मे भिन्न है। एक चेतन है और दूसरा जड है। एक व्यापक है दूसरा व्याप्य है। यह सत्त्व द्रव्य समष्टि सर्व पदार्थो मे २६वा द्रव्य है। और ब्रह्म ही सूक्ष्मता को आच्छादित करने मे यह २६वा आवरण है। इसमे पूर्व के पदार्थो को ही भेदन करके इस सत्त्व मे पहुचकर ब्रह्म की अनुभूति तथा साक्षात्कार होता है। अन्यथा सत्त्व भी इतना सूक्ष्म विज्ञानात्मक द्रव्य है कि इसको भी योगी ब्रह्म समझ सकता है, क्योकि यह अपनो से पहले पदार्थो मे अत्यन्त सूक्ष्म है। ज्ञान रूप एव चेतनवत सा है। यहाँ पहुचकर योगी भ्रान्त हो इसको ही ब्रह्म समझ बैठता है, क्योकि यह भी सारे ब्रह्माण्ड मे सूक्ष्म रूप से व्याप्त हुआ हुआ है। इस अवस्था मे ऋतभरा बुद्धि द्वारा ही यथार्थ निर्णय होता है कि यह सत्त्व वास्तव मे ब्रह्म नही है, ब्रह्म इससे भिन्न है।

भ्रान्ति दर्शन

जिन योगियो को अपने स्वरूप का तो साक्षात्कार हुआ नही, और ब्रह्म विज्ञान के लिये यत्नशील हैं, और इससे पहले सर्व पदार्थों का विज्ञान पूर्वक साक्षात्कार तो कर लिया है, परन्तु उसमे ब्रह्म दर्शन नही हुए हैं, विज्ञान करते-करते इस पदार्थ मे आ पहुचे

हैं, ऐसे योगी ही यहाँ आकर भ्रान्त हो सकते हैं। पर जिन्होने अपने आत्मा का साक्षात्कार कर लिया है, उनके पास तो एक कसौटी हो जाती है, वे अपने स्वरूप के समान ही निर्भ्रान्त होकर सब पदार्थो मे ब्रह्म के दर्शन करते है। स्वस्वरूप का साक्षात्कार न करके जो ब्रह्म का साक्षात्कार करने चलते है, उनको सदा ही प्रत्येक पदार्थ के दर्शन पर ब्रह्म दर्शन की भ्रान्ति हो सकती है, क्योकि सूक्ष्म पदार्थ के परिणाम भी वहुत होते है। जैसे चित्त के अनेक विज्ञान रूप मे परिणाम होते है, इस सत्त्व के भी अनेक विज्ञान के रूप मे परिणाम हुए हैं। इन विज्ञानात्मक परिणामो मे भी किसी विज्ञान के परिणाम को देखकर ही यह भ्रान्त्यात्मक निर्णय कर वैठता है कि यही ब्रह्म है। जब फिर कुछ काल के पश्चात् उस विज्ञान की अवस्था को भी परिणत होते हुए देखता है, तब फिर यह भावना वनती है, कि यह भी ब्रह्म नही। ब्रह्म इससे भिन्न ही परिणाम रहित निर्विकार निष्क्रिय है। फिर ब्रह्म की खोज मे आगे बढता है या निराश होकर थक कर वैठ जाता है। रह जाता है। इसलिये योगी को आवश्यक है कि पहले अपने स्वरूप का साक्षात्कार कर ले। इसके पास परख का ऐसा साधन हो जायेगा, कि पदार्थ के विज्ञान मे तो भले ही इसको देर लग जाये, परन्तु ब्रह्म-विज्ञान करने मे देर नही लगेगी। वह एक दम सूक्ष्म ऋतभरा बुद्धि से पदार्थ की सूक्ष्मता मे प्रवेश करके वहुत शीघ्र ब्रह्म का साक्षात्कार कर लेगा यदि अपने स्वरूप का साक्षात्कार किये विना ब्रह्म विज्ञान या ब्रह्म साक्षात्कार का यत्न करेगा तो उसका मार्ग वहुत लम्बा हो जायेगा। सर्वत्र भ्रान्ति का भय वनता रहेगा। मार्ग वहुत कठिन हो जायेगा। संभव है अनेक जन्म लग जायें, और निराश होकर भटक ही जाये। एक छोटे से जीवात्मा का तो पता ही नही लगा, और इतने बड़े महान् ब्रह्म का पता लगाने चले है। कितनी अज्ञानता, अनभिज्ञता और उपहास की यह बात है। यह तो ऐसी ही वात होगी कि एक बालक अनपढ है, उसके लिये काला अक्षर भैंस बराबर है, जिसको अ आ, इ ई का भी ज्ञान नही है, उसको शास्त्री, आचार्य, या एम० ए० की श्रेणी मे विठा दिया जाये। वह क्या खाक पढेगा। इसी प्रकार जिसने अपनी आत्मा की चेतनता या स्वरूप को तो पहचाना नही, जो एक अणु के समान है, जिसका जानना बहुत सुगम है, अपने अन्दर ही उसकी अनुभूति भी हो सकती है, छोटी वस्तु का प्राप्त करना तो सुगम है, और इतनी महान् विश्व व्यापी ब्रह्म की चेतना को समझने, जानने या प्रत्यक्ष करने चला है। ब्रह्म विज्ञान का यह क्रम या मार्ग ही गलत है।

मन आदि की शान्ति के लिये ईश्वर के नाम का जप तो पहले-पहले ठीक है, या उसके गुण का गायन करना भी ठीक है, इस से भी चित्त शान्त हो जाता है। प्रार्थना से भी बुद्धि को शान्ति और तसल्ली मिलती है। ये सब तो अन्तःकरण चतुष्टय की शुद्धि और शान्ति के साधन हैं। यह ब्रह्म साक्षात्कार के साक्षात् रूप मे साधन नहीं हैं। मन बुद्धि चित्त के शुद्ध और शान्त होने पर फिर सवाल पैदा होता है या जिज्ञासा होती है। आत्म विज्ञान की या ब्रह्म विज्ञान की। इसके साधन हैं धारणा, ध्यान और सम्प्रज्ञात, असम्प्रज्ञात समाधि। इनके द्वारा ही आत्म-विज्ञान और ब्रह्म-विज्ञान का विषय प्रारम्भ होता है। आत्म विज्ञान का वर्णन हमने आत्म-विज्ञान ग्रंथ मे कर दिया है। प्रकृति के समस्त समष्टि कार्यों, कारण रूपा प्रकृति, एवं इस से सम्बन्धित ब्रह्म-विज्ञान का वर्णन

हमने इस ग्रथ मे कर दिया है। मुख्य रूप से जीवात्मा, प्रकृति और ब्रह्म ये तीन पदार्थ ही विज्ञान और मोक्ष के हेतु हैं। इनके विज्ञान का क्रम और उपाय जो हमने दोनों ग्रन्थो मे किया है, वह हमारे अनुभव के आधार पर ही है। यह एक ही जन्म मे तीनों पदर्थों का साक्षात्कार और मोक्ष प्रदा न करेगा।

योगी का धर्म

जिस भक्त या योगी को विज्ञान के द्वारा आत्मविज्ञान और ब्रह्मविज्ञान की सच्ची जिज्ञासा है, ससार के सब कार्य छोडकर, एक दम विरक्त होकर, उसको किसी आत्मविज्ञानी महा पुरुष की शरण मे रह कर कटिबद्ध होकर योगाभ्यास मे लग जाना चाहिये। इसी को अपने जीवन का मुख्य कर्तव्य और परम धर्म समझना चाहिये। एकान्त स्थान मे गुरु के सम्पर्क मे रह कर कठिन तप और त्याग की भावना से आचार्य के आदेशानुसार, ध्यान-समाधि द्वारा इस विज्ञान को प्राप्त करें। अभ्यास और वैराग्य के द्वारा इस विज्ञान को दृढ करें। शम, दम, तितिक्षा, उपरति-साधन चतुष्टय सम्पन्न हो कर अहर्निश इस विज्ञान को प्राप्त करने मे लगे रहें। तीनों प्रकार की एषणाओं का सर्वथा परित्याग कर। श्रद्धा-भक्ति और प्रेमपूर्वक सम्प्रज्ञात समाधि द्वारा इस अध्यात्म विज्ञान का सम्पादन करें। सब प्रकार की लौकिक कामनाओं को बन्ध का हेतु समझ कर त्याग दें, क्योंकि यह कामनाये ही बन्ध का हेतु बन जाती हैं। उपनिषद् ने भी इस बात पर जोर दिया है। यथा—

> 'यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि स्थिता'।
> अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ॥
>
> मुण्डक०अ० २। व० ३। म० १४॥

—जब इस साधक योगी की कामनाये जो हृदय या चित्त को आश्रय कर ठहरती हैं, वैराग्य की दृढ भावना से सर्वथा शान्त हो जाती हैं। तब यह योगी अमृतरूप होकर —मुक्त होकर ब्रह्म को प्राप्त होता है।' उसके हृदय की जन्म-मरण की वासनाओं की सब ग्रथियाँ शिथिल हो जाती हैं। शेष सञ्चित वासनायें अपने चित्त के साथ स्वोपादान कारण मे लौट जाती हैं। तब यह योगी अमृत रूप हो कर मोक्ष मे स्थित हो जाता है। परन्तु वर्तमान के योगी भुक्ति और मुक्ति साथ-साथ ही चाहते हैं। किन्तु इन दोनों के साथ मेल नहीं खाता। जहाँ भोग है वहाँ योग नहीं। जहाँ योग नहीं वहा मुक्ति भी नहीं। अत वे दोनों से वञ्चित रह जाते हैं, क्योंकि यह मार्ग ही ठीक नहीं है। वहाँ वैराग्य ठहरता ही नहीं, बिना वैराग्य के चित्त भी स्थिर नहीं होता। बिना चित्त की स्थिरता के समाधि मे स्थिति ही नहीं होती है। बिना समाधि के तत्त्व-ज्ञान नहीं होता है। बिना तत्त्वज्ञान के आत्म-ज्ञान और ब्रह्म-ज्ञान नहीं होता है। अत. सर्व प्रकार के भोगों का तो त्याग करना ही होगा। जब पूर्व के अनेक जन्मों मे भोगों से तृप्ति नहीं हुई है, और इस जन्म मे भी अबतक नहीं हुई है, तब थोड से इस शेष जीवन मे पता नहीं कब प्राण निकल जावे, वृथा भोगों मे तृप्त होने की सभावना हो सकती है। अत एव मुक्ति की भुक्ति के साथ धारणा ही गलत है। अनुचित है। अत. साधक योगी को आत्म-ज्ञान और मोक्ष-प्राप्ति को ही लक्ष्य रखना चाहिये। भोग तो

स्वय ही प्राप्त होते हैं, विना किसी प्रयत्न के ही, क्योकि अन्त करण मे अनादिकाल के सञ्चित कर्म भोग देने के लिये, अनन्त पडे है, यदि उनको ही भोगना चाहे तो असख्य जन्मो मे भी उन्हे नही भोगा जा सकता। अत यह अत्यन्त ही भूल है, जो योग साधना काल मे भोगो की अभिलाषा करते हुए भोगो के साधनो का सग्रह करते हैं। वहाँ तो केवल तत्त्वज्ञान और वैराग्य का ही सग्रह करना चाहिये। इसीलिये वर्तमान मे योगी साधको को तत्त्वज्ञान मे सफलता कम मिलती है। इस मार्ग मे तो उसी जिज्ञासु को चलना चाहिये, जिसकी ससार के भोगो से तृप्ति हो चुकी हो, यदि तृप्ति नही हुई है तब तृप्ति के साधनो का ही सग्रह और लोक ऐश्वर्य का उपार्जन करना चाहिये, परन्तु इस भोग सग्रह और लोक सग्रह से भी हम तृप्ति नही देख रहे हैं। जिस के पास १००) रुपया है वह हजार की अभिलाषा करता है, हजार वाला लाख के लिये यत्न कर रहा है। लाख वाला करोडो के लिये, करोड वाला अरवो के लिये, कही भी इसका अन्त देखने मे नही आ रहा है, क्योकि धन को ही सर्व भोगो का साधन समझ लिया गया है। अत भोगो से आज तक किसी की भी तृप्ति नही हुई है, न भविष्य मे ही होगी। तब वर्तमान मे कैसे तृप्ति हो सकती है। इसी तृप्ति को मानव ने सुख माना है। परन्तु यह मानव की अत्यन्त वडी भूल है। यह उस कुत्ते के समान भूल है जो एक सूखी हड्डी को उठाकर एकान्त मे अलग बैठ कर खा रहा है। वर्षो की पडी उस सूख हड्डी मे कुछ भी तो रखा नही होता है, फिर भी वह उसको अज्ञानवश खाता है, उस सूखी हड्डी से उस श्वान का मुख और जवडे छिलकर रक्त निकलने लगता है। उस अपने ही रक्त के स्वाद को वह हड्डी से निकला हुआ समझता है। वास्तव मे सूखी हड्डी मे तो कुछ भी नही होता है। इसी प्रकार ससार के भोगो को भी इसी सूखी हड्डी के समान ही भगवान् के भक्तो और आत्मविज्ञान के जिज्ञासुओ को समझने चाहिये। जब भगवान् के साथ सच्ची प्रीति जोडनी है, और उसको ही अपना सर्वस्व मानना है तब हृदय रूपी मन्दिर उस भगवान् के लिये रिजर्व हो जाना चाहिये। फिर इस मन्दिर मे दूसरे के लिए स्थान कहाँ ? जिस पत्नी ने एक पति वरण कर लिया है और फिर वह परपुरुष के साथ अनुचित सम्बन्ध करना चाहती है, तब उसको व्यभिचारणी कहा जाता है। इसी प्रकार जिस योगी या योगिनी ने भगवान् के साथ सम्बन्ध जोड लिया है, और अपना हृदय रूपी मन्दिर उसके मिलन का स्थान नियत कर दिया है, तब वह और भोग जन्य सस्कारो का उस हृदय मे प्रवेश करता है, तब वह योगी भी व्यभिचारी ही सिद्ध होगा।

भोग रहित अन्तःकरण मे ब्रह्म दर्शन

(शका) एक गृह मे कई व्यक्ति रहते है, माता, पिता, पत्नी, पुत्र, वधू आदि इसी प्रकार एक चित्त मे अनेक सस्कार भी रहे और ईश्वर के मिलने का भी स्थान रहे तो आपत्ति क्यो ?

(समाधान) भगवान् का मिलना भी ऐसा ही होता है, जैसे एक पति और पत्नी का गर्भाधान के लिए एकान्त अलग कमरे मे। कोई भी मूर्ख से मूर्ख, निर्लज्ज से निर्लज्ज भी माता-पिता या अन्य के सामने पत्नी सहवास के कर्म को नही करता है।

जैसे उसको एकान्त की जरूरत है, ऐसे ही भगवान् के मिलने के लिए भी ऐसे ही हृदय रूपी कमरे, स्थान, या मन्दिर की जरूरत है, जिसमे किसी अन्य का वास न हो सके। अतएव उस भगवान् के मिलने के लिये उसी हृदय की आवश्यकता है, जहाँ भोगजन्य वासना या सस्कारो का निवास न हो। इस विषय मे उपनिषद् ने कहा है—

'वासनातन्तुबद्धोऽयं लोको विपरिवर्तते।
सा प्रसिद्धातिदुःखाय, सुखायोच्छेदमागता ॥

—मानव वासना रूपी तन्तुओ से बन्धा हुआ ससार मे सब कार्य करता है, परन्तु यह वासनायें तो दुःख के लिए ही प्रसिद्ध है। जब इन का उच्छेद होता है, तब ही वास्तव मे अक्षय सुख की प्राप्ति होती है। जिस हृदय म भोगजन्य वासनाओ का अभाव होता है, वहाँ ब्रह्म के दर्शन होते है, उस का मिलन होता है।

जिस भक्त योगी का चित्त सर्व विषयों के भोगो से उपराम हो गया है, जिसका मन शान्त हो गया है। वही ब्रह्म विज्ञान के सुख या आनन्द का उपभोग कर सकता है। इसकी पुष्टि गीता ने इस प्रकार की है—

'युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः।
सुखेन ब्रह्म-सस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते ॥
गीता० अ० ६। श्लोक २८ ॥

—जिस भक्त योगी के अन्तःकरण के सब पाप दूर हो गये हैं, अन्तःकरण स्वच्छ पवित्र हो गया है। भोगजन्य वासना क्षीण हो गयी हैं। वह योगी अपने चित्त को आत्मा मे नियोजित करे, अर्थात् सर्व-वृत्तियों का निरोध कर आत्मा को लक्ष्य बनावे। उस काल मे वह योगी आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध का सुखपूर्वक स्पर्श का या मिलन के सुख का उपभोग करता है। अथवा ब्रह्म दर्शन का पूर्ण सुख आनन्द प्राप्त करता है।'

इसलिए अन्तःकरण की शुद्धि अत्यन्त आवश्यक है। वास्तव मे आत्मा परमात्मा दोनो ही हृदय मे विराजमान हैं। परन्तु मल विक्षेप आवरण, और भोगजन्य वासनाओ के कूडे-कर्कट से ढके हुए हैं, जैसे किसी हीरे के ऊपर कूडे का ढेर डाल दिया जाये, इसी प्रकार अनेक जन्म जन्मान्तरो की मुख्यतः भोग प्रधान वासनाओ से ये आच्छादित हैं। एक घडा जल मे पूर्ण है, आप उस मे और जल डालना चाहते हैं, वह जल तो बेकार ही जायेगा, और वह घडे से बाहर ही गिरता रहेगा, इसी प्रकार जिनके अन्तःकरण अधर्म, भोग और पाप से पूर्ण हैं, उन हृदयों म कहा आत्म दर्शन या ब्रह्म दर्शन हो सकता है। उनका भजन पूजन, जाप, ध्यान आदि भी व्यर्थ ही सिद्ध होता है। अतः सर्वप्रथम अन्तःकरण की शुद्धि अत्यन्त आवश्यक है। भक्त योगी शम दम तितिक्षा उपरति से अन्तःकरण को शुद्ध करके वैराग्य की भावना को दृढ करता हुआ, ब्रह्म ज्ञान के लिये किसी उच्च कोटि के ब्रह्म ज्ञानी की शरण म जाकर ब्रह्म ज्ञान प्राप्त कर। बिना गुरु के ज्ञान भी तो प्राप्त नही होता है। जैसे बिना पाठशाला मे गये और बिना अध्यापक के पढाये बच्चे नही पढ सकते हैं, इसी प्रकार ब्रह्म ज्ञान भी गुरु की शरण मे गये बिना प्राप्त नही हो सकता है। आत्म ज्ञान और ब्रह्म ज्ञान के जिज्ञासु के लिये यह सब वर्णन किया गया है। परन्तु जिस विज्ञान का हम प्रतिपादन कर रहे थे उस विज्ञान के विषय मे तो यह २६वी श्रेणी है। इस श्रेणी के योगी तो बहुत ऊँचे आत्म ज्ञानी ब्रह्म ज्ञानी हैं,

क्योकि ब्रह्म ज्ञान की बहुत सी श्रेणियो को उत्तीर्ण कर चुके है। जिसने ब्रह्म के विषय मे नानाप्रकार से बहुत प्रकार का विज्ञान प्राप्त कर लिया है, और जो ब्रह्म तथा मोक्ष के बहुत समीपवर्ती हो गया है, जिसकी भोगजन्य वासनायें शान्त हो गई है, जो सर्व पदार्थों मे और उनकी प्रत्येक अवस्था म सर्वत्र ही ब्रह्म का साक्षात्कार कर चुका है, जो साक्षात्कार करते-करते सत्त्व गुण मे पहुँच गया है, और इसमे ब्रह्म की अनुभूति कर रहा है।

यह सत्त्व गुण विज्ञान का अन्तिम पदार्थ है। विज्ञानब्रह्मेत्युपास्ते उपनिषद् वचन के आधार पर ब्रह्म की उपासना और विज्ञान इस सत्त्व पदार्थ की दूसरी अवस्था मे ब्रह्म का साक्षात्कार कर। इस सत्त्व के नाना प्रकार के परिणत होते हुए इसके विज्ञाना और प्रत्येक धर्म मे ब्रह्म का साक्षात् कर, क्योकि इन धर्मों के भी अत्यन्त सूक्ष्म रूप है। प्रत्येक रूप म ब्रह्म की अनुभूति होनी चाहिये। ज्योतिष्मती प्रज्ञा, ऋतभरा प्रज्ञा प्रान्त भूमि प्रज्ञा, धर्म मेघ प्रज्ञा, ये विज्ञान की अत्यन्त ही सूक्ष्म अवस्थाय है। इनमे ही आत्मा और ब्रह्म की यथार्थ अनुभूति या प्रतीति होती है। इन विज्ञानो की अवस्थाओ मे ही आत्मा का यथार्थ निर्णय होता है। इनमे ब्रह्म का निर्भ्रान्त साक्षात्कार होता है, क्योकि इनके स्वरूप का आत्मा और ब्रह्म के साथ बहुत कुछ सादृश्य होता है। ये निर्मल दर्पण के समान होती है, इन विज्ञान की अवस्थाओ म पहुँच कर योगी को बहुत विवेक से काम लना होता है। हो सकता है, कि इन मे से किसी को आत्मा या ब्रह्म समझ ल। बहुत दीर्घकाल तक योगी को इन्ही अवस्थाओ का अभ्यास करना पडता है। दीर्घकाल के निरन्तर अभ्यास के निर्भ्रान्त रूप से आत्मा और परमात्मा के दर्शन योगी कर पाता है।

(शका) क्या इन अवस्थाओ मे दोना आत्माओ के दर्शन से मोक्ष हो जायेगा?

(समाधान) आत्मा और परमात्मा के दर्शन के पश्चात् भी प्रकृति और इस के कार्यो से परम वैराग्य प्राप्त करना होगा क्योकि अभी तो प्रकृति, आत्मा और ब्रह्म तीनो के दर्शन मात्र हुए है। अनेक जन्मा से इनके साथ भोगजन्य सम्बन्ध चला आ रहा था। इस सम्बन्ध का अनुराग शनै शनै समाप्त होगा। बहुत काल तक इसके राग युक्त सस्कारो का असम्प्रज्ञान समाधि द्वारा पुन पुन निरोध करना होगा। जब उनका व्युत्थान होना हट जायगा, वे दग्ध भून से हो जायेंगे। उनमे पुनर्जन्म व भोग की शक्ति नही रहेगी। योगी इनसे सर्वथा ही उदासीन हो जायेगा। पास होते हुए भी इनकी स्मृति नही आयेगी। सर्वथा ही अनुराग का अभाव हो जायेगा। इसको हम परमवैराग्य कहते हैं। तब आत्मा मुक्त होगा। उस मुक्तात्मा की क्या गति होती है, इसको उपनिषद् इस प्रकार वर्णन करती है—

'यदा पश्य पश्यते रुक्मवर्णं कर्तारमीश पुरुष ब्रह्मयोनिम्।
तदा विद्वान् पुण्य पापे विधूय निरञ्जन परम साम्यमुपैति ॥

मुण्डक० मु० २। ख० २। म० ३॥

—जब योगी प्रकाश स्वरूप विशुद्ध ब्रह्म को देखता है। साक्षात्कार कर लेता है। वह ब्रह्म सृष्टि का कर्ता पुरुष विशेष, सब से बडा और निमित्त कारण है। वह विद्वान् योगी सब पापो से छूटकर, शुद्ध पवित्र होकर ब्रह्म के साथ परम समतर भाव को प्राप्त हो जाता है। सत् चित् आनन्द रूप होकर मुक्त हो जाता है।

समष्टिमहत्तत्त्व मण्डल
तृतीय रूप मे ब्रह्म साक्षात्कार
(समष्टि महत्तत्त्व का तृतीय रूप)

समष्टि महत्तत्त्व के सूक्ष्म रूप मे—

सत्त्व गुण और प्रकृति का कार्य कारण आत्मक सम्बन्ध है, सत्त्व कार्य है, प्रकृति [कारण] है। कारण होने मे इसी मे इसकी सूक्ष्मता की परि समाप्ति होती है। प्रकृति सामान्य [सत्]त्व गुण विशेष है। इन दोनो का समुदाय ही यहा अयुत सिद्ध द्रव्य सिद्ध होता है। [इस]की सामान्य और विशेष अवस्था मे ब्रह्म का साक्षात्कार करना चाहिये। कारण किस कार्य को उत्पन्न करके उसमे समाविष्ट होकर रहता है इस सूक्ष्मता के अन्दर ब्रह्म [इस]मे व्यापक रूप से वर्तमान रहता है। अत वहा ब्रह्म की उपस्थिति का योगी को [इस]ा ज्ञान करना चाहिये, क्योकि कारण को कार्य रूप मे परिणत करने मे ब्रह्म की सत्ता ही प्रेरक होती है, और कार्य को कारण रूप मे परिणत करने मे भी वह [उस]ी चेतना ही गति और परिणति का हेतु बनती है। यदि चेतन सत्ता का सम्बन्ध [न हो] तो जैसे सारथी के बिना रथ और ड्राइवर के बिना गाडी स्वय नही चल सकती है, [इसी प्रक]ार कारण का कार्य रूप मे परिणत होना और कार्य का अपने कारण मे [लीन]त होकर जा मिलना दोनो ही कर्म बिना चेतन सत्ता के नही हो सकते हैं। [अ]त इनका जो परिणाम क्रमरूप कर्म है वह चेतन ब्रह्म के ही सम्बन्ध से होता है। इस []ा को वहा देखना और ब्रह्म का भी प्रत्यक्ष करना है। इस सत्त्व का सूक्ष्म रूप यह [य]ही है। योगी जब कारण को कार्य मे परिणत होते हुए देखता है, तब कारण का [ज्]ञान हो जाता है और उसके कार्य का भी एव उसके निमित्त कारण का भी साक्षात् [ह]ो जाता है। जैसे मनुष्य कपडा बुन रहा है, जब दूसरा पुरुष उसको जाकर देखता [है] वहाँ कपडे का उपादान कारण सूत भी वहा प्रत्यक्ष रूप से देखने मे आ रहा है [और इ]सका कार्य कपडा भी प्रत्यक्ष रूप मे दीख रहा है। बुनने वाला भी प्रत्यक्ष दीख [रहा है] इसके सहकारी खड्डी आदि का भी बोध हो रहा है। इसी प्रकार योगी जब समाधि[स्थ हो]म की सूक्ष्म दृष्टि से इस सत्त्व द्रव्य को उत्पन्न होते हुए देखता है तो उस सब का ही साक्षात्कार हो जाता है। उपादान का भी और कार्य का भी, साथ मे [नि]मित्त कारण ब्रह्म का भी।

(शका) योगी तो अब वर्तमान मे प्रत्यक्ष करना चाहता है, सब गुणो या [उन]की सृष्टि, सृष्टि निर्माण काल मे होती है।

(समाधान) उपादान कारण का अभाव नही होना चाहिये, फिर कार्य तो सदा उत्पन्न होते ही रहते है। सृष्टि अनन्त है अत हर समय ही इसमे कार्य []ा होते रहते हैं। सूत होना चाहिये कपडा चाहे जब भी बुना जा सकता है। ससार [मे]ा नित्य ही कपडा बुनते रहते हैं, प्रकृति जब कारण रूप से वर्तमान है, तब कार्य सदा ही और हर समय ही उत्पन्न होते रहते हैं। बहुत से पदार्थो का तो स्वय भी निर्माण कर लेता है। समष्टि सत्त्व द्रव्य अपने कार्यो को हर समय उत्पन्न [कर] रहता है। प्रकृति भी करती रहती है। अत दोनो का साक्षात्कार हो जाता है, [स]ाथ मे प्रेरक व्यापक ब्रह्म का भी अनुभव हो जाता है।

प्रकृति कारण रूप से सदा अपने कार्यों मे अनुगत होती है। जैसे सोना अपने सब भूषण रूप कार्यो मे साथ रहता है। या इसके निमित जितनी भी वस्तु होगी, उन सब मे ही स्वर्ण रहेगा। स्वर्ण का अभाव इन वस्तुओ मे नही कहा जा सकता। इसी प्रकार कारणरूप प्रकृति अपने सब कार्यों मे साथ ही रहती है। भागवान् के सम्पर्क से सदा कार्यो को उत्पन्न करती रहती है।

ब्रह्म प्रकृति का शाश्वत सम्बन्ध

(शका) ब्रह्म का सम्पर्क प्रकृति के साथ है, क्या एक बार गति देकर वह इसे छोड देता है। जैसे मनुष्य घडी मे चावी देकर छोड देते है। फिर वह स्वय ही घन्टो दिनो तक चलती रही है।

(समाधान) घडी और चावी देने वाला एक देशी है। अत मनुष्य का चाबी देकर अलग हो जाना तो यथाथ है। परन्तु ब्रह्म तो एक देशी नही है, वह तो सर्व देशी है। प्रकृति का कोई स्थान ऐसा नही है जहा वह इस से अलग हो जाये। प्रकृति सर्व देशी है और ब्रह्म इस से भी अधिक सव देशी है। इनका सम्बन्ध भी नित्य है। दोनो ही नित्य पदार्थ है। प्रकृति मे गति पैदा कर के पार्थक्य का प्रश्न ही उपस्थित नही होता। प्रकृति के कार्य रूप पदार्थ प्रकृति के अवकाश मे ही रहते हैं। प्रकृति के अन्दर ही रहते हैं, और प्रकृति ब्रह्म के अन्दर रहती है। प्रकृति के कार्य प्रकृति से अलग नही हैं। कारण और कार्य दोनो मे ही ब्रह्म का सम्बन्ध सिद्ध होता है। दोनो मे इस की चेतना से क्रिया भी।

(शका) ओटामैटिक घडी को चाबी नही देनी पडती। वह स्वय ही चलती रहती है। इसी प्रकार प्रकृति भी स्वय क्रिया धर्म वाली हो सकती है ?

(समाधान)—एक तो ओटोमैटिक घडी का कोई बनाने वाला है। दूसरे वह कभी-कभी हिल जानी चाहिये। वह हिलना रूप कर्म ही उस घडी मे चावी का हेतु बन जाता है। इसी प्रकार प्रकृति का कोई बनाने वाला तो नही है, जो इसमे इस प्राकार की मशीनरी फिट करता, जिसमे वह सदा चलती रहती। दूसरे इसको हिलाने वाला भी तो कोई होना चाहिये। वह हिलाने वाला ब्रह्म ही है। इन दोनो का सम्बन्ध नित्य है। अत ब्रह्म का नित्य सम्बन्ध होने से प्रकृति सदा ही हिलती रहती है। क्रिया करती रहती है।

इस समष्टि सत्त्व का यह उपादान कारण है। इसीलिये इसमे इसकी सूक्ष्म अवस्था परिसमाप्त होती है। इस कार्य अवस्था और सूक्ष्म कारण अवस्था मे ब्रह्म का साक्षात्कार करना चाहिये यह दोनो अवस्थाओ मे वतमान है।

४ अन्वय रूप—इस समष्टि सत्त्व का चतुर्थ अन्वय रूप नही होता। अत पञ्चम अर्थवत्त्व का वर्णन करते हैं।

समष्टि महत्सत्त्व मण्डल

पञ्चम रूप मे ब्रह्म-साक्षात्कार

(समष्टि महत्सत्त्व का पञ्चम रूप)

५ समष्टि महत्सत्त्व अर्थवत्त्व रूप मे—

सत्त्व अपने गुणो के साथ कार्य भाव को प्राप्त होकर सर्व प्राणियो के भोग और अपवर्ग का साधन बना [illegible] है। प्राणी [illegible] मे ज्ञान के प्रसार का

हेतु मुख्य रूप से यही हुआ है। तमोगुण और रजोगुण के साथ गौण रूप में सहकारी होकर भोग का सर्वत्र साधन ही बना है। योगियों के हृदय में प्रधान होकर मोक्ष का साधन भी यही बनता है। स्वर्गवासी आत्माओं के स्वर्ग में भोग का मुख्य रूप से यही कारण है। शेष तम और रज भी वहाँ गौण रूप से वर्त्तमान रहते हैं। समाधि की अवस्था में आत्म-आनन्द की अनुभूति में अपने गुणों द्वारा मुख्य रूप से यही सहायक बनता है। यही इसकी विशेष अर्थवत्ता है। गीता में इस रूप में अर्थवत्ता कही गयी है। यथा—

'तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात् प्रकाशकमनामयम्।
सुखसंगेन बध्नाति ज्ञानसंगेनचानघ ॥

अ० १४। श्लो० ६ ॥

—हे पाप रहित शुद्धान्त करण अर्जुन। सत्त्वगुण निर्मल, पवित्र, प्रकाश रूप, ज्ञान रूप, ज्योति रूप है। सब रोगों-पापों से रहित है। यह सुख और ज्ञान के संग से योगी के बन्धन का हेतु बनता है। यद्यपि यह तमोगुण या रजोगुण के समान कठिनतम बन्धन का हेतु नहीं है, परन्तु फिर भी कुछ न कुछ सुख और ज्ञान के रूप में बन्धन रूप तो है ही। बन्ध चाहे लोहे की बेडियों का हो चाहे सोने की बेडियों का, या कोमल-नरम रेशम के धागे का हो बन्धन तो बन्धन ही है। सत्त्व से उत्पन्न हुआ हुआ सुख, ज्ञान जहाँ बन्धन का हेतु है, वहाँ ऋतम्भरा प्रज्ञा से या धर्म मेघ समाधि से उत्पन्न हुआ-हुआ ज्ञान बन्धन को काट कर मोक्ष का हेतु भी बनता है। यही इसकी अर्थवत्ता है।

योगी को इन भोग और अपवर्ग प्रदान करने वाले गुणों से भी तो विरक्त होना है। वास्तव में प्रकृति ही अपने गुण और कर्म के द्वारा सब कार्य करती है। अहंकार के वशीभूत यह जीव अपने आप को कर्ता भोक्ता मान कर फल भोगता रहता है। परन्तु जब इसकी यह भ्रान्ति दूर हो जाती है, तब इसको ज्ञान होता है, अपने वास्तविक शुद्ध-बुद्ध मुक्त स्वरूप का। इसी भ्रान्ति को दूर करने के लिए वेद शास्त्र उपनिषद् योगी विद्वान् गुरु जन प्रवृत्त हुए हैं। इस विषय में उपनिषद् ऐसा कथन करती है। यथा—

'यावद्यावन्मुनिश्रेष्ठ स्वयमसत्यज्यतेऽखिलम्।
तावत्तावत् परालोक परमात्मैवावशिष्यते ॥४४॥
यावत्सर्वं न सत्यक्त, तावदात्मा न लभ्यते।
सर्ववस्तु परित्यागे शेषात्मेति कथ्यते ॥ ४५॥
आत्मावलोकनार्थं न्तु तस्मात् सर्वं परित्यजेत्।
सर्वं सन्त्यज्य दूरेण, यच्छिष्ट तन्मयो भव ॥४६॥

अन्नपूर्णा० अ० १

—हे प्रिय शिष्य निदाघ। जो-जो दृश्यमान पदार्थ हैं, इन सबको स्वयं त्यागता चला जाये। अन्त में जो शेष रहेगा वह परमात्मा ही रहेगा जब तक सब कुछ त्याग नहीं किया जाता तब तक आत्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती। सबके त्याग देने पर शेष आत्मा ही रह जाता है। इस लिये आत्म दर्शन के लिये सब कुछ त्याग देना चाहिये। 'आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्।' आत्मा, मोक्ष और कल्याण के लिये पृथिवी का भी त्याग कर देना चाहिये। सब कुछ त्याग कर जो शेष रह जाता है, उसमें तू तन्मय या समाधिस्थ होगा।'

उपनिषत्कार ने आत्मा, परमात्मा की प्राप्ति के लिये सब कुछ त्यागने पर जोर दिया है। इस से सिद्ध होता है, ये दोनों संसार के पदार्थों में सर्वश्रेष्ठ माने गये हैं। परन्तु मनुष्य ऐसा अनभिज्ञ और मूढ है, हीरों को छोड़कर कांच की मणियों ढूंढता-फिरता है। यह इसे ज्ञात भी है और प्रत्यक्ष रूप से देखता भी है।

कोई भी सर्वथा सुखी नहीं

किसी को कोई दुःख है, किसी को कुच्छ। परन्तु फिर भी इस दुःखमय जीवन को अजर-अमर बनाने की सदा सोचता रहता है। बड़े-बड़े करोड़ पतियों अरब-पतियों को भी देखा है, ऐसा ढूंढने से भी संसार में नही मिला है, जिसको शारीरिक या मानसिक कुछ भी दुःख न हो। भगवान् व्यास ने इस विषय में यह श्लोक पढ़ा है। यथा—

'नचेन्द्रस्य सुखंकिञ्चिन्न सुखं चक्रवर्तिनः।
सुखमस्ति विरक्तस्य मुनेरेकान्तजीविनः ॥

—संसार में न तो देवताओं के राजा इन्द्र को ही सुख है। और न ही पृथिवीमण्डल में चक्रवर्त्ती राजा को ही सुख है। फिर किस को सुख है। 'जो विरक्त हो कर एकान्त शान्त स्थान में रह कर आत्मचिन्तन और ईश्वर भजन करता है।

एक बार १९१८ में मैं श्रीनगर काश्मीर में निवास करते हुए श्री महाराज प्रतापसिंह जी से मिला था। केवल यह जानने के लिए कि ये तो सर्व प्रकार से सुखी होंगे। इनके पास तो सुखों के सर्व साधन है। परन्तु उन्होंने भी बड़े प्रेम से अपने वर्तमान जीवन के दो दुःख बतलाये थे। एक तो यह कि मेरे घर में सन्तान नहीं हुई है। पितृ ऋण से मैं मुक्त न हो सका गृहस्थ होकर भी। दूसरा दुःख उन्होंने बताया कि मेरे पश्चात् राजकुमार हरिसिंह राज्य का शासन नही चला सकेगा। राज्य को बर्वाद कर देगा। यह शासन करने योग्य ही नहीं है। ये दो चिन्तायें मुझे घुण की तरह खाती रहती है।

इन दुखों की निवृत्ति के लिए शास्त्र ने एक बहुत ही श्रेष्ठ साधन बताया है। यथा—

'संसार-सर्पदष्टानामेकमेव सुभेषजम् ।
सर्वदा सर्वकालेषु सर्वत्र हरिचिन्तनम् ॥

—संसार में दुःख रूपी सर्प से काटे हुए की केवल एक ही मख्य औषध है, कि सर्वदा सब काल में सब जगह हरि का चिन्तन करना। जो ही सर्व पापों का हरण करने वाला है, सर्व दुःखों से मुक्त कर देने वाला है वही परम धर्म है। वही परम गति है।'

जब प्रह्लाद की ईश्वर भक्ति की परीक्षा हो रही थी, तब उस की भूआ ने उस से कहा था—

'राम नाम जपतां कुतो भयं, सर्वतापशमनैकभेषजम् ।
पश्य तात ! मम गात्र-सन्निधौ पावकोऽपि सलिलायते ॥

—हे तात ! भगवान् के नाम के जाप करने वाले को कहीं भी भय नही, सर्व प्रकार के सन्तापों को शमन करने वाला यह भगवान् का नाम स्मरण है यही सब दुःखों की परम

औषध है । हे पुत्र ! देखो मेरे शरीर के पास यह अग्नि भी ठन्डी होती जा रही है । यह भगवान् के नाम स्मरण, उसकी भक्ति तथा विश्वास का ही फल है ।'

मानव रात-दिन ससार के पदार्थों और भोगो के सग्रह मे ही लगा रहता है । इसमे तो अच्छा भगवान् नाम स्मरण है । कम-से-कम उतने समय मे तो वृत्तियाँ विषयो मे नही जायेंगी । व्यर्थ का मनोराज्य न होगा । व्यर्थ की वासनाये जाग्रत नही होगी । बुद्धि अच्छी तरफ लगी रहेगी । मनुष्य को अच्छी तरह ज्ञात भी है, यह शरीर नाशवान है । सदा कोई ससार में रहा नही है । परन्तु फिर भी इसको अमर बनाने के उपाय सदा करता रहता है । रात-दिन इसी के पालन पोषण मे लगा रहता है । ऐसे अमूल्य जीवन को इसी के कार्य मे लगाये रहता है । इस विषय मे श्रीमद्भागवत् गीता मे कहा है । यथा—

'इदं शरीरं शतसन्धिजर्जरं पतत्यवश्यं परिणामपेशलम् ।
किमौषधैः क्लिश्यसि मूढ दुर्मते निरामय कृष्णरसायनं पिब ॥

—हे मानव ! यह शरीर अनेक सन्धियो से युक्त है । जीर्ण होता जा रहा है । यह परिणामी है । इसने एक दिन अवश्य मरना है । रोग निवृत्ति और बुढापे को दूर करने के लिए औषध क्या करेगी । हे मूर्ख ! सर्व रोगो और दु खो के निवारण करने वाली भगवान् की भक्ति, सेवा, पूजा, ध्यान, जाप, नाम स्मरण, समाधि मे उसकी अनुभूति रूप रसायन का सेवन कर । जो जन्म जन्मान्तरो के दु खो को भी दूर कर देगी ।'

भक्त में आठ प्रकार के सात्विक भाव

जब भक्त मे भगवान् के प्रति अनन्य भक्ति भाव उत्पन्न हो जाता है, तब उसमे सत्त्व गुण प्रधान होता है । इस सत्त्व गुण की प्रधानता से उस मे ये आठ प्रकार के सात्विक भाव उत्पन्न हुआ करते हैं :—

सात्विक भाव विकार

१ स्तम्भ—जब भगवान् का ध्यान करता है, तो उसका शरीर स्तब्ध हो जाता है । शून्य सा हो जाता है । शरीर मे चेष्टा नही होती है । हिलना-जुलना खाँसी खुजली इत्यादि कोई भी क्रिया शरीर की नही होती है । सब इन्द्रियों की चेष्टा का अभाव हो जाता है । भक्त को कुछ भी पता नही रहता, सुध-बुध सब जाती रहती है । एक प्रकार से शून्य समाधि हो जाती है । कभी-कभी कई-कई घन्टो तक ऐसी अवस्था हो जाया करती है, और कई-कई दिनो तक भी बनी रहती है ।

२. कम्प—कभी-कभी शरीर मे कम्प होने लगता है झूलने सा लगता है । शरीर मे अधिक हर्ष होने, या भगवान् के प्रति अधिक प्रेम होने से यह कम्प बहुत देर तक, घन्टो तक भी होता रहता है । साधक को इस कम्पन मे आनन्द की अनुभूति भी होने लगती है ।

३ स्वेद—शरीर मे पसीना आ जाना, उष्णता पैदा हो जाना । पसीने से वस्त्र गीले हो जाना । बहुत देर तक पसीना आते रहना । जब तक अभ्यास मे बैठे पसीना आता रहे, अथवा भक्ति भाव मे भी पसीना छूटने लगता है, अथवा भगवान् के विरह मे पसीने से तर होकर वस्त्र ढीले हो जाते हैं ।

४. अश्रु—अभ्यास काल मे भगवान् की स्तुति के समय, भगवान् से प्रार्थना करते समय अथवा ध्यान समाधि मे आनन्द की अभिव्यक्ति होने पर, उपदेश के समय

भगवान् के गुणो और उपकार का वर्णन करते समय हर्ष, शोक और विस्मय से नेत्रो से अश्रु धारा बहने लगती है। हर्ष प्रसन्नता या आनन्द से जो आँसू निकलते है वे कुछ शीतल होते है, और वे आँखो के कोरो से निकलते है। शोक के अवसर मे आँखो के बीच से और गरम अश्रु निकलते हैं।

शुष्क वैराग्य

मै वैराग्य की भावना से ऐसा कठोर सी तबियत का हो गया था कि २०-२५ वर्ष तक मुझे रोना नही आया था। यदि किसी स्त्री या पुरुष को रोते देखता था, तो समझता था ये मूर्ख हैं। अनभिज्ञ है जो रोते है। या कह देता था कि जान बूझ कर व्यर्थ ही झूठे ही रोते है। बच्चो के प्रति तो यह भावना नही होती थी, क्योकि इनकी तो आदत सी भी हो जाती है। मुझे भगवान् के प्रति प्रार्थना या उपासना करते भी रोना नही आता था। मैं कोरा विज्ञानवादी था। भगवान् को भी विज्ञान द्वारा ही समझना या देखना चाहता था। दु ख दर्द मे भी आँसू नही आते थे। न किसी से ऐसा स्नेह या प्यार अथवा अनुराग ही था जिससे हर्ष या शोक मे आँसू बहाता।

सिनेमा, थियेटर, नाच, गानो मे ब्रह्मचारी होने के नाते नही जाता था २०-२५ वर्ष तक मुझे रोने का अवसर ही प्राप्त नही हुआ था। मैं एक बार होलियो के अवसर पर फाल्गुन मास मे वृन्दावन गया एक मास ठहरने का प्रोग्राम था। बिहारी जी के मन्दिर के पास अपने विशेष परिचित अमृतसर के लाला देवीदास जी के मकान पर जा कर ठहरा। यह मकान खाली ही था। केवल एक महात्मा इसमे निवास करते थे। भोजन मैं स्वय ही बनाया करता था। इन दिनो मे यहाँ कृष्ण लीला बहुत होती है। छोटे-छोटे बालक भगवान् कृष्ण चन्द्र और राधा आदि का स्वरूप बनाकर श्री कृष्ण जी महाराज के बाल जीवन की लीलाओ को प्रदर्शन के रूप मे किया करते है। नृत्य, वाद्य और गायन भी साथ मे होता है। ब्रह्मचारी के लिए 'नर्तन गीत वादन' का मनुमहाराज ने निषेध किया है। मेरे साथ श्री लाला मूल राजकपूर भी थे। ये महात्मा मुझे नित्य ही कहते थे, 'आप भी लीला मे चलो।' मैं सदा इनकार करता रहता था। इनका मेरे साथ स्नेह भी बहुत हो गया था। एक दिन ये हठ कर बैठे, कि जब तक आप लीला देखने नही चलोगे, तब तक मैं भोजन नही करूँगा। इनको तीन दिन निराहार बीत गये। लाला मूल राज बोले—"आप यहाँ भजनाभ्यास और पुण्य कर्म करने आये है। ये महात्मा तीन दिन से अन्न नही खाते हैं, यह भी हठकर बैठे है। कही आप भी इनकी तरह हठ धर्म का पालन कर बैठे, और यह भूखे रह कर मर गये तो महान् पाप होगा। मैंने इनको बहुत कहा, समझाया, ये तो अत्यन्त हठ पर तुले हुए है, 'चाहे मेरे प्राण भी चले जायें, जब तक ब्रह्मचारी जी एक बार रास देखने नही जायेगे तब तक मैं अन्न नही खाऊँगा।

मूलराज जी ने फिर कहा—'आप का क्या बिगडता है। आप पढे-लिखे विद्वान् हैं। आप क्यो व्यर्थ मे हठ कर रहे है। वहाँ तो भगवान् के नाम का भजन कीर्तन गायन होता है, कोई वेश्या तो वहाँ आकर नाच करती नही। छोटे १०-१२-१५ वर्ष के बालक ही यह भगवान् की लील करते हैं, आप आज अवश्य चले। आज तो आप के वैराग्य की पुष्टि करने वाला ऊधव और गोपियो का सवाद है। वे भगवान् के ज्ञानयोग

का सन्देश लेकर गोपियों को सुनाने आयेंगे। लीला मे इससे बढकर ज्ञान वैराग्य और भक्ति नही है। सर्व लीलाओं म यही सर्व श्रेष्ठ लीला ज्ञान और भक्ति की है।"

मैं सायकाल उनके साथ जाने को तैयार हो गया। पर लीला लगभग ३-४ घन्टे मे समाप्त होती है। हम तीनो इसे देखने के लिए हरि बाबा और उडिया स्वामी के यहाँ गये। इनके बालको के स्वरूप भी बहुत अच्छे सुशिक्षित थे। अत उन्होंने बहुत सुन्दर मनोरजक ढग से रास प्रारम्भ किया। घर से निकलने के पश्चात् इस प्रकार तमाशा देखने का यह पहला ही अवसर था। जब गोपियो और ऊधव जी का सम्वाद प्रारम्भ हुआ, ऊधव योग और वैराग्य का उपदेश देने लगे, और गोपियाँ बने बालक भक्ति की प्रधानता बताते हुए रुदन करने लगे। उस अवसर पर आस पास बैठे हुए भक्त और भक्तिन फूट-फूट कर रोने लगे। इनको लगभग आधा घन्टा ही रुदन करते बीते होगा कि सैकडो की सख्या मे रुदन करने वाले भक्त भक्तिन हो गए। मैंने इधर उधर नजर डाल कर देखा, तो बहुत कम व्यक्ति मेरे जैसे कठोर से हृदय के नजर आये। प्राय सब ही ढायें मार-मारकर रो रहे थे। पहले तो मैं कुछ मिनट देखता रहा, कि ये ऐसे ही रो रहे हैं, इनके दिल कमजोर हैं। परन्तु जब आधा घन्टा बीत गया, तो देखा कि मेरे साथी भी आँसू पूछ रहे हैं। इन सब को देखकर मेरा हृदय भी कुछ द्रवित सा होने लगा। मैं अनुभव करने लगा, कि ये सब भक्त और भक्तिनें वास्तव मे भक्ति और प्रेम की भावना से रो रहे हैं। ये गोपियाँ भी भगवान् के प्रति सच्चा प्रेम प्रदर्शित कर रही हैं। मैं कैसा शुष्क हृदय का योगी बना हुआ हूँ कि जो कभी भी भगवान् के प्रति दो आँसू भी नही बहाये, भगवान् केवल विज्ञान का विषय ही नही होना चाहिए, श्रद्धा भक्ति और प्रेम का विषय भी होना चाहिए। केवल शुपक विज्ञान मानव को नास्तिकता की ओर भी ले जा सकता है। अत विज्ञान के साथ श्रद्धा भक्ति, और प्रेम का होना भी आवश्यक है। इस प्रकार नाना प्रकार के तर्क वितर्क, शका, समाधान मेरे अन्दर उत्पन्न होने लगे। यह विचार हुआ कि जिनको तू मूर्ख समझ रहा है, ये तेरी अपेक्षा भगवान् के वियोग मे या उसकी दूरी मे कितना दु ख और शोक अनुभव कर रहे हैं। भले ही इनका भगवान् शरीरधारी है और तुम्हारा निराकार, निर्विकार और सर्वज्ञ है। प्रेम तो भगवान् के प्रति इनका ही अधिक है, और सच्चा प्रतीत हो रहा है। इत्यादि नाना प्रकार के विचार आ-आकर मेरा हृदय अत्यन्त द्रवित हो गया। रोमान्च होने लगा। पसीना आ गया। नेत्र गीले हो गए। मैंने फिर इधर-उधर देखा, कि कोई मुझे क्या कहेगा, कि यह योगी होकर भी आँसू बहा रहा है। परन्तु अब मेरे वश से बाहर की बात होती जा रही थी। अत्यन्त प्रयत्न करने पर भी अश्रु रुक नही रहे थे। जैसे खरबूजे को देखकर खरबूजे का रग पलट जाता है, उसी प्रकार मेरे अन्दर भी परिवर्तन होने लगा। मुझे सर्वत्र भगवान् बरसता हुआ सा अनुभव होने लगा और जोर-जोर से अश्रुधारा बहने लगी। रूमाल भी गीला हो गया, अश्रु रोके भी नही रुकते थे। वहाँ आस पास मे सब भक्ति और प्रेम के वश मे जोर-जोर से रोते हुए चिल्लाह रहे थे, ढायें मार रहे थे, और आहे भर रहे थे। फिर मुझे किसने देखना था कि यह योगी भी हमारे साथी बन रो रहे हैं। इस प्रकार से मैंने कभी भी रुदन नहीं किया था। यहाँ यह अपने वश और अधिकार से बाहर की बात हो चली थी। ऐसा अनुभव हो रहा था,

कि भगवान् मेरे बहुत समीप आ गए है, और वह मेरा भक्ति-प्रेम अपने प्रति देख रहे है। लगभग २ घन्टे मेरी आँखो से आँसू बहते रहे, हिचकिये आने लगी। आँखे पूछ-पूछ कर भी तग आ गया। रास समाप्त होने तक रोता ही रहा। रात समाप्त होने पर हम तीनो घर लौटे। वह महात्मा मुस्कराते हुए बोले—'आप के ऊपर भगवान् की विशेष दया हुई है, जो इतने कठोर पाषाण हृदय को भी मोम की तरह पिघला दिया है। अब आपका ज्ञान सरस बन गया है। यह भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने दिव्य शरीर से उपस्थित होकर आप पर विशेष अनुकम्पा की है। तब इन महात्मा को बाजार से पूरी मँगा कर भोजन कराया। हृदह उनका आभार मान रहा था।

एक मास मैं यहाँ रहा था। जहाँ अच्छी-अच्छी लीलायें होती थी जाता था। कोई दिन ऐसा नही होता था, कि न जाऊँ। वृन्दावन भक्तो की भूमि है। हिमालय का उत्तराखण्ड योगियो और ज्ञानियो की भूमि है।

इस प्रकार यह सब बुद्धि और चित्त के ही परिणाम विशेष है। जो इस प्रकार की भावनायें है। एक मास तक वहाँ यह अवस्था रही जैसे कृष्ण भगवान् दिव्य शरीर मे जहा भी देखू वहाँ ही नजर आवे। जैसे सर्वत्र आकाश मण्डल चमकती हुई भगवान् कृष्ण की दिव्य मूर्तियो से भरा हो। ऐतिहासिक स्थानो मे जिधर देखता, चमकती हुई आकाश गामी दिव्य श्री कृष्ण जी की प्रतिमायें देखने मे आती थी। इन दिनो वैराग्य भी बहुत तीव्र हो गया था। भूख लगनी बन्द हो गयी थी। भक्ति की भावना बहुत तीव्र हो गई थी। इसके पश्चात् यह हो गया कि जहाँ भगवान् की चर्चा हो, या भक्ति विषय का कोई ग्रन्थ पढ़ू, या प्रेम सम्बन्धी कोई घटना पढ़ू, सुनू, या देखू, आँखो मे आँसू आ जाते थे। वृन्दावन के इस निवास के पश्चात् फिर चित्त मे विज्ञान और वैराग्य सम्बन्धी वह शुष्कता नही आयी। वह विज्ञान भक्ति और प्रेम से मिश्रित हो गया।

५. स्वर भंग—ईश्वर के भक्त मे जब विशेष रूप से श्रद्धा भक्ति और प्रेम भगवान् के प्रति हो जाता है, तो कथा, भजन और कीर्तन करते समय वाणी गदगद हो जाया करती है। कथा कीर्तन करते हुए आवाज अच्छी स्पष्ट नही निकला करती है। स्वर भग होना विशेष प्रेम के अवसर पर होता है।

६ वैवर्ण्य—उपरोक्त भावो के पश्चात् मुख पर एक प्रकार की उदासीनता छा जाती है। मुख पीलासा पड जाता है। आकृति कुछ बदल सी जाती है। मुख पर विवर्णता आ जाती है। अभ्यास के पश्चात् भी विवर्णता होती है।

७. पुलक—शरीर का रोम-रोम खडा हो जाना। जिसे रोमाञ्च या लोम-हर्षण भी कहते है। यह अभ्यास काल मे, ईश्वर के भक्ति, भजन, कीर्तन काल मे, ध्यान काल मे, भक्ति भावात्मक कथा श्रवण काल मे रोमाञ्च हुआ करता है।

८ प्रलय—अभ्यास, कथा, कीर्तन से ध्यानादि मे कुछ भी भले बुरे का ज्ञान न रहे, बेहोशी जैसी अवस्था आ जाये, अथवा असज्ञ अवस्था मे शरीर का भी भान न रहे, भूमि पर गिर जाये, चोट आदि लगने का भी पता न रहे, अपने आसन से गिर जाये या खडा खडा भजन कीर्तन करता हुआ गिर पडे, कोई होश न रहे, अथवा सुनते-सुनते बेसुध हो जाये। इसे प्रलय कहते हैं।

ये आठ प्रकार के सात्विक भाव विकार भक्तो मे हुआ करते है। ८

मुझे कई बार बंगाल में नवद्वीप (नदिया शान्ति) में रहने का अवसर हुआ। वहाँ कई भजनाश्रम हैं। जिनमें कई-कई सौ देवियाँ कीर्तन करती हैं। उनमें अनेक को नित्य प्रति इस प्रकार के सात्त्विक भाव विकार होते हुए ही देखने में आते थे। ये विकार भगवान् के प्रति अनन्य श्रद्धा, भक्ति, विश्वास, निष्ठा और प्रेम के सूचक हैं। उपनिषद् में कहा है—

भक्ति गम्यं परं तत्त्वमन्तर्लीनेन चेत सा।
भावनामात्रमेव कारणं पद्म-संभव ॥

योगशिखो० अ० ३। म० २३॥

—हिरण्यगर्भ को भगवान् शंकर उपदेश देते हुए कहते हैं—"हे प्रिय! भक्ति से प्राप्त करने योग्य ही परमतत्त्व है। जो चेतन अपने अन्दर ही लीन होकर ठहरा हुआ है, उसके अन्वेषण में भावना ही कारण है अर्थात् प्रेम और भक्ति की भावना ही कारण है।"

इस तत्त्व को लक्ष्य मानकर इसमें ब्रह्म का अध्यारोप करके श्रद्धा, भक्ति और प्रेम भावना से धर्म मेघ समाधि द्वारा ब्रह्म का साक्षात्कार करें।

एक और भी साक्षात्कार करने का साधन है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को भगवान् का शरीर मानकर अर्थात् इसको विराट् शरीर मानकर ब्रह्म की उपासना और ज्ञान का विषय बनावें। फिर सूक्ष्म जगत्, पञ्चतन्मात्रा से लेकर प्रकृति तक इस हिरण्यगर्भात्मक को इसका सूक्ष्म शरीर मानकर उपासना और ज्ञान का विषय बनावें। इसके पश्चात् कारण शरीर प्रकृति में व्याप्य व्यापक भाव सम्बन्ध से इस ब्रह्म के कारण शरीर या अव्याकृत शरीर की भावना करके उपासना और ज्ञान का विषय बना कर साक्षात्कार करें।

इसे इस प्रकार समझें, विराट् हिरण्यगर्भ और अव्याकृत में शरीरों की भावना करें। इनमें ब्रह्म का आरोप करके उपासना विज्ञान और साक्षात्कार का विषय बनावें। इन तीनों के अतिरिक्त ब्रह्म की प्राप्ति का और कोई स्थान नहीं है। इसमें विश्वव्यापी ध्यान की दृष्टि करने की आवश्यकता है। वैसे ब्रह्म कोई शरीर नहीं है, परन्तु किसी न किसी पदार्थ में उसका आरोप करके पदार्थ द्वारा ही उसका विज्ञान प्राप्त करना होगा क्योंकि उसका सर्व पदार्थों के साथ व्याप्य व्यापक भाव सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध में ही उसकी अनुभूति हो सकती है। भगवान् के भक्त की भगवान के प्रति इस प्रकार पुकार है। यथा—

'संसारकूपे पतितोह्यगाधे मोहान्धपूर्णे विषयातिसक्तः।
करवलम्ब माम देहि नाथ! गोविन्द! दामोदर! माधवेति॥

अन्यच्च—

तत्तेऽनुकम्पांसु समीक्षमाणो भुञ्जान एवात्मकृत विपाकम्।
हृद वाग्वपुर्भिर्दधत नमस्ते जीवेत मुक्ति पदे स दाय भाक्॥

'भागवत पुराण'

—हे भगवान्! मैं संसार कूप में पड़ा हूँ। यह कूआ अत्यन्त ही गहरा है जो मोहरूपी अन्धकार से भरा हुआ है। विषयों में आसक्त मुझे कृपा करके अपने हाथ का सहारा देकर हे नाथ! निकालने का यत्न करें। अपने किये कर्मों का फल तो अवश्य ही भोगना

है, क्योंकि हृदय, वाणी और शरीर स में आपको नमस्कार करता हू । जीवन धारण करते हुए मुक्ति के पद म हिस्सेदार बन जाता ह ।'

सत्व गुण का वर्णन करते हुए इसको भोग और अपवर्ग का साधन बताया है । इसम ब्रह्म का भी विस्तार पूवक वर्णन किया गया है । सब पदार्थो म ब्रह्म विज्ञान का मुख्य हेतु यही पदार्थ है, जो विज्ञान का भण्डार है जो मनुष्य के लोक और परलोक का सुधार करने वाला है । जीवात्मा को बन्धन से मुक्त करके मोक्ष प्रदान करने वाला है । यह है इसकी अर्थवत्ता ।

इति समष्टि महत्सत्व मण्डलम् ।

इति चतुर्थाध्याये तृतीय खण्ड ।

इति पञ्चमावरणम ॥

चतुर्थ खण्ड

चतुर्थमावरणम्

समष्टि काल मण्डलम्

प्रथम रूप मे ब्रह्म विज्ञान
(समष्टि काल का प्रथम रूप)

१. समष्टि काल के स्थूल रूप में—

काल को न्याय वैशेषिक आदि शास्त्रकार नित्य मानते है, परन्तु साख्य योग की दृष्टि मे केवल तीन ही पदार्थ नित्य है।

यथा—

'प्रकृति-पुरुषयोरन्यत् सर्वमनित्यम्।'

साख्य० अ० ५। सू० ७२॥

—'प्रकृति और पुरुष से भिन्न जो कुछ भी दृश्य और अदृश्य पदार्थ है सब ही अनित्य है। पुरुष शब्द से जीवात्मा और परमात्मा का ग्रहण होता ही है।' वास्तव मे प्रकृति, जीवात्मा और ब्रह्म तीन पदार्थ ही नित्य हैं। प्रकृति परिणामिनी कार्य रूपा है। जीवात्मा और परमात्मा अपरिणामी है। अत. काल को प्रकृति का ही कार्य मानना पडेगा। इसलिये यह अनित्य सिद्ध हो जाता है। जब इस काल की उत्पत्ति होती है, तो यह अपने सर्वगुणो को साथ लेकर ही उत्पन्न होता है।

काल के गुण—त्रुटि, लव, बोध, निमेष, क्षण, काष्ठा, लघु, घडी, मुहूर्त पहर, दिन, सप्ताह, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, वर्ष, युग, मन्वन्तर, कल्प, परान्त काल।

काल का सर्वप्रथम परिणाम भाव को प्राप्त हुआ गुण त्रुटि होता है। दो परमाणुओ का एक अणु होता है। ३ अणुओ का एक त्रसरेणु। झरोखे के सूर्य के प्रकाश के साथ जो अत्यन्त ही सूक्ष्म कण उडते हुए दीखा करते है ये त्रसरेणु, चतरेणु, पञ्चरेणु हुआ करते है, ये इतने हल्के होते है कि इनका पृथिवी पर गिरना सभव नहीं होता। ये सदा आकाश मे ही घूमते रहते हैं। जितनी देर मे सूर्य त्रसरेणु को उल्लघन करके आगे बढे उस समय का नाम त्रुटि है। काल का माप तीन सूर्य के द्वारा ही किया जाता है। इसी के आधार पर दिन रात आदि होते है। ऐसी तीन त्रुटियो का १ बोध होता है। ३ बोध का एक लव। ३ लव का १ निमेष। ३ निमेष का एक क्षण। ५ क्षण की एक काष्ठा। १५ काष्ठा का १ लघु। १५ लघु की १ घडी। २ घडी का १ मुहूर्त। ४ मुहूर्त का १ प्रहर। ८ प्रहर का एक दिन रात। ७ दिन का एक सप्ताह। २ सप्ताह या १५ दिन का पक्ष। २ पक्ष का १ मास। २ मास का १ ऋतु। ३ ऋतु का १ अयन। २ अयन का वर्ष होता है। एक वर्ष का दैवत दिन-रात। दक्षिणायन की दैवत रात्रि। उत्तरायणका दैवत दिन। ३६० दैवत दिनो का एक दैवत या दिव्य वर्ष। ४००० दिव्य वर्षो का सतयुग। ३००० दि० वर्ष का त्रेता। २००० दि० वर्ष का द्वापर। १००० दि० वर्ष का

कलि । एक युग बीतने के पश्चात् उसी समय दूसरा युग नही लगता है । प्रत्येक युग के आगे पीछे सन्धिकाल होता है । सत् युग का ८०० दिव्य वर्ष का सन्धि काल या अश । त्रेता का ६०० । द्वापर का ४०० । कलियुग का २०० दिव्य वर्ष का सन्धि अश होता है । चार युगो की चतुर्युगी या चौकडी होती है । देवताओ के १२००० वर्षो, अर्थात् मनुष्यों के ४३२०००० वर्ष की एक चतुर्युगी । ७१ चतुर्युगी का मन्वन्तर । एक मन्वन्तर के बीतने पर पहिले मनु आदि सप्त ऋषि बदल जाते है । फिर नये मनु, आदि बनते है । जब १४ मन्वन्तर बीत जाते है तब ब्रह्माजी का एक दिन होता है । इतनी ही बडी रात्रि होती है । ब्रह्मा दिन मे सृष्टि निर्माण का कार्य करते हैं । रात्रि मे सहार करते हैं । ब्रह्मा जी के ३६० दिन का एक ब्राह्म वर्ष होता है । ऐसे १०० वर्षो की ब्रह्माजी की आयु होती है । कल्प मे तीनो लोको की प्रलय होती है । परन्तु ब्रह्मा जी की १०० वर्ष की आयु के पश्चात् इस १४ भुवन वाले ब्रह्माण्ड की प्रलय हो जाती है । इसे महा प्रलय कहते हैं । तब ब्रह्मा जी ब्रह्मलोक के जीवो के साथ सर्वव्यापक ब्रह्म मे प्रवेश कर जाते है । इसके पश्चात नये ब्रह्मा होते है और नयी सृष्टि होती है । जिस प्रकार यह १४ लोको वाला ब्रह्माण्ड है, ऐसे असख्य ब्रह्माण्ड इस विश्व मे है ।

यह काल के परिणत होते हुए गुणो का वर्णन हुआ ।

काल के द्वारा आयु का बोध

यह काल ही मानव की आयु का बोध कराता है । मानव के सर्व व्यवहारो को सिद्ध करता है । भूत, वर्तमान और भविष्यत् का द्योतक है । मानव के भोगो के सम्पादन मे सहायक होता है । जीवन का अमूल्य समय बीता जा रहा है, इस प्रकार जीवन मे वैराग्य उत्पन्न करके मोक्ष मे भी सहायक होता है । इतनी आयु बीत गयी, इसका भी बोध कराता है । अत: मनुष्यो का अत्यन्त उपकार करता है ।

यह काल एक पल मे जीवन को खतम करके जीवन की निस्सारता और अनित्यता का बोध मनुष्य को कराता रहता है, परन्तु मनुष्य फिर भी सावधान नही होता है । यदि १०० वर्ष की आयु मान ली जाये, उसमे कम से-कम ६ घण्टे तो निन्द्रा मे व्यतीत होते है । इस प्रकार २५ वर्ष तो सोते-सोते निद्रा मे ही खतम हो जाते है । बाल्यकाल मे भी कोई विशेष सुध-बुध बच्चो को नही होती है । पिछली ८०-८५ वर्ष की आयु के बाद सर्व शक्तियां क्षीण होने के कारण कुछ करने योग्य नही रहता है । इन दोनो अवस्थाओं के भी ३५-४० वर्ष बेकार से ही जाते हैं । शेष ३०-३५ वर्ष ससार मे बाल बच्चे पैदा करने, पालन, पोषण, शिक्षण, व्यापार, नौकरी, भोग विलास आदि मे बीत जाते हैं ।

आयु का यह विभाग इस काल द्वारा किया गया है । इस १०० वर्ष की आयु मे आत्म-ज्ञान और ब्रह्म-ज्ञान मे तो कुछ समय नही लगाया । अपने आप को ही नहीं पहचाना । हम क्या हैं ? कहाँ से आये है ? कहाँ जाना है ? मरने के पीछे क्या गति होगी ? फिर कभी आना होगा या नही इस जीवन का वास्तविक लक्ष्य क्या है ? हम क्या कर रहे हैं ? क्या यही लक्ष्य था जो हमने १०० वर्ष मे किया है ? इससे भिन्न क्या कोई और लक्ष्य था ? वह क्या था ? उसको क्यो नही किया ? क्या वह गौण था ? क्या यह मुख्य है जो हमने १०० वर्ष मे किया है इत्यादि अनेक प्रश्न मानव जीवन के विषय मे होते हैं।

जिस अमूल्य जीवन को काल ग्रास बना रहा है, एक दिन उसकी 'राम नाम सत्य' हो जायेगी। अरे ! मानव अब भी चेत जा, सावधान हो जा। अब तक जो जीवन बीता है वह तो पशु के समान ही प्रतीत होता है। इनके मुकाबले मे कुछ भी विशेषता पैदा नहीं की है। इस प्रकार का अज्ञानता और भोग युक्त जीवन तो इस जीवन से पूर्व अनेक बार प्राप्त कर चुके हो। जब इन जन्मों मे तसल्ली, तृप्ति या सन्तोष नही हुआ, तो इस जीवन मे क्या आशा रखते हो ? क्या इसी प्रकार के जीवन मे रहना सुख, शान्ति आनन्द का हेतु साबित हुआ है। 'यदि हुआ है', तब तो न आप को अपने सुखा जीवन के विषय मे कोई शिकायत हो सकती है, न हमने ही कुछ कहना है। यदि पूर्ण रूप में सुख, शान्ति आनन्द प्राप्त नही हुआ है, तब तो यह आप का मार्ग ठीक नही है। अत आप उस मार्ग पर अब सावधान होकर चलें। जिसमे यथार्थ अक्षय सच्चा सुख, शान्ति और आनन्द प्राप्त हो। वह श्रेय का मार्ग है, जिसपर चलकर आप अपने मानव जीवन के यथार्थ उद्देश्य को पूरा कर सकेंगे। अपने असली स्वरूप को पहचान सकेंगे। जिसने यह ब्रह्माण्ड हमारे भोग और मोक्ष के लिये, हमारे सुख और आराम के लिये और इस मनुष्य जीवन के यथार्थ उद्देश्य की पूर्ति के लिए बनाया है, उसका भी ज्ञान हो जायेगा।

श्रेय मार्ग—न वहाँ कोई दु ख है न सुख है। न बुढापा है, न हानि लाभ है। न मृत्यु है न जन्म है। न किसी प्रकार की चिन्ता है, न हर्ष है, न शोक है। न राग है न द्वेष है। न कोई दर्द है न किसी प्रकार की वेदना है, न मोह है, न ममता है, न किसी वस्तु का अभिमान है, न कोई भय है। न कोई प्राप्त करने योग्य पदार्थ है। न किसी प्रकार की इच्छा है, न कोई कामना है। इस प्रकार का वह स्थान है, जहा श्रेय मार्ग पर चल कर पहुचना है। तथा च ऊपनिषत्—

> 'स्वर्गे लोके न भय किञ्चनास्ति न तत्र त्वं, न जरया बिभेति।
> उभे तीर्त्वाशनाया पिपासे, शोकाति गो मोदते स्वर्ग लोके॥
> कठ० वल्ली १। म० १२॥

—स्वर्ग लोक मे पहुच कर न वहा किसी प्रकार का भय है, न वहा बुढापा है, न मृत्यु का ही डर है। न वहाँ भूख है, न प्यास। सर्व प्रकार के शोकों से रहित हो कर आनन्द मे रमण करता है।'

यह काल कारण रूप से नित्य है, और कार्य रूप से अनित्य है। सर्व प्राणियों और जगत् की आयु का बोधक होकर अनेक उपकार कर रहा है। ब्रह्म का और इसका सम्बन्ध होने से यह उपासना और ज्ञान का विषय बनता है। इसमे ब्रह्म का साक्षात्कार करना चाहिये। भूत, वर्तमान और भविष्यत् मे ब्रह्म इसके अन्दर वर्तमान रहकर इसे कार्य रूप मे परिणत करता है। इसके गति शील होने पर भी ब्रह्म निष्क्रिय ही रहता है। परन्तु गतिमान् पदार्थो मे अज्ञानियो को ईश्वर भी साथ-साथ गति करता हुआ प्रतीत होता है। इस लिये श्रुति में कहा है 'ओ तदेजति, तन्नैजति' अज्ञानियो के लिये ब्रह्म चलायमान है। ज्ञानियो के लिये अडोल, स्थिर, निष्क्रिय अनुभव मे आता है। अत योगी को काल मे ब्रह्म का आरोप करके विज्ञान का विषय बनाना चाहिये। काल के प्रत्येक परिणाम मे इसका अनुभव करना चाहिये। ताकि यह सर्व परिवर्तनो मे एक रूप, एक रस, एक ही समान प्रतीत हो। सांख्य के आचार्योंने इसको अलग पदार्थ न मानकर प्रकृति

का गुण विशेष ही कह दिया है। परन्तु यह गुण विशेष नही, किन्तु पदार्थ विशेष और प्रकृति का कार्य है।

समष्टि काल मण्डल

द्वितीय रूप में ब्रह्म-विज्ञान

(समष्टि काल का द्वितीय रूप)

२. समष्टि काल के स्वरूप में—

काल के गुणों का जो स्थूल रूप मे वर्णन किया है, जब काल भोग और मोक्ष प्रदान करने के लिये परिणाम भाव को प्राप्त होता है, तब इस परिणाम मे इन गुणो का क्रम पूर्वक प्रादुर्भाव होना है। अत. काल के साथ इन गुणो का अभेद होने से गुण गुणी भाव सम्बन्ध है। हम नैयायिक के समान द्रव्य से गुण को अलग नही मानते हैं, किन्तु धर्म धर्मी का अभेद ही मानते है, अत परिणाम रूप मे काल की दूसरी अवस्था हो जाती है। इसी को हम स्वरूप सम्बन्ध कहते है। यद्यपि साख्य सूत्रकार ने 'दिक्कालावाकाशादिभ्य' यह सूत्र देकर दिशा और काल को आकाश के अन्तर्गत कर दिया है। परन्तु हम इनको आकाश से भिन्न पदार्थ ही मानते हैं और प्रकृति का कार्य मानते है। ये दोनो न तो आकाश के अन्तर्गत ही सिद्ध होते है, न प्रकृति के गुण विशेष ही सिद्ध होते हैं। जब आकाश तन्मात्रा से स्थूल आकाश की उत्पत्ति होती है, तो इससे पूर्व अहंकार महत् आदि के लिये क्या दिशा काल की जरूरत नही होती। इस से सिद्ध होता है दिशा और काल पहिले ही उत्पन्न हो चुके थे। अत सर्व प्रथम के ही प्रकृति के कार्य विशेष हैं। जब सर्वप्रथम प्रकृति प्रलय के पश्चात् परिणाम भाव को प्राप्त होती है, तब उसको सर्व प्रथम विकास भाव को—परिणाम भाव को प्राप्त होने के लिये अवकाश की जरूरत पडती है। अत सर्वप्रथम आकाश उत्पन्न होता है। फिर उसने जिस ओर को करवट लेनी है, या पलटा खाना है, उस ओर का नाम दिशा होगा। अत. दूसरा पदार्थ दिशा उत्पन्न होना है। इसके पश्चात् इतने अवसर मे पलटा खाया, इसमे समय लगता है। तदनन्तर काल रूप द्रव्य उत्पन्न होता है। अत ये तीन पदार्थ सर्वप्रथम क्रिया करने के अवसर मे ही उत्पन्न हो जाते है। यदि योग साख्य ने या अन्य दर्शन कार ने दिशा काल की उत्पत्ति नही कही है, तो इसका अभिप्राय यह नही कि ये पदार्थ उत्पन्न ही नही होते हैं। न्याय वैशेषिक ने तो दिशा काल आकाश को नित्य ही मान लिया है। परन्तु जब साख्य योग ने आकाश की उत्पत्ति मानी है, तो दिशा और काल की उत्पत्ति का भी तो उल्लेख करना चाहिये था। अत. सत्त्व रजस् तमस् इन तीनो पदार्थो के पूर्व ही आकाश दिशा और काल उत्पन्न होते हैं, क्यो कि इन पदार्थो को दिशा, काल, आकाश की आवश्यकता है। ये पदार्थ ही है, गुण नही हैं। इसी लिये तो उपनिषत् ने भी कहा है—'तस्मादात्मन सम्भूत, आकाशाद्वायुरिति' उसके पश्चात् आकाश उत्पन्न हुआ।

हम द्वितीय स्वरूप का उल्लेख कर रहे थे। काल के परिणत हुए इस रूप मे और इसके गुणों मे ब्रह्म की व्यापकता का अनुभव करें, कि इस के गर्भ मे यह काल किस प्रकार परिणाम भाव को प्राप्त होता है। किस प्रकार इसमें गुण प्रकट होते हैं।

समष्टि काल मण्डल
तृतीय रूप में ब्रह्म विज्ञान
(समष्टि काल का तृतीय रूप)

३ समष्टि काल के सूक्ष्म रूप में—

काल का उपादान कारण प्रकृति है। यह ही इसकी सूक्ष्म अवस्था है। प्रकृति सामान्य और काल विशेष, इन दोनों का समुदाय ही अयुत सिद्ध द्रव्य है। इसको हम काल की सूक्ष्म रूप अवस्था कहेंगे।

इस कारण और कार्य की सूक्ष्मावस्था में ब्रह्म का विज्ञान प्राप्त करना चाहिये। यही सर्व-उपास्य है। यही सर्वाधार है। यही सर्वाराध्य है। इसका विज्ञान हो जाने पर सर्व पदार्थों का विज्ञान हो जाता है, क्योंकि यह प्रत्येक में व्यापक होकर ठहरा हुआ है। इसकी सूक्ष्मता को जानने के लिये प्रत्येक पदार्थ को उल्लंघन करके ही जानना होगा। अत इसको काल की सूक्ष्म अवस्था में भी अनुभव करना है।

काल और मृत्यु में भेद

(शंका) जब कोई मरता है तो कहते हैं इसका काल आ गया है। क्या यह भी वही काल है ?

(समाधान) जन्म से लेकर मरण पर्यन्त जीवन की सरिता बहती रहती है। प्राणी के जीवन के दिन, मास वर्ष की गिनती या कहिये जीवन का माप इसी काल द्वारा होता है कि इतना समय बीत गया। जिसकी उत्पत्ति है, उसका विनाश भी है। अत प्राणी का भी विनाश होना है। प्राणी से अभिप्राय यहा शरीर से है जिसमे जीवात्मा निवास करता है। यह शरीर उत्पन्न हुआ है, इसने नष्ट भी होना है। अज्ञानी लोग इस शरीर के साथ ही आत्मा का भी जन्म और मरण मान लेते हैं। परन्तु हमारा अभिप्राय शरीर से है। शरीर का ही काल आता है। शरीर अब भाग देने योग्य नहीं रहा है। अब इसने खतम होना है। काल इसके जीवन का माप करता रहा। अब इसका घण्ट दिन मास वर्ष द्वारा इस शरीर का माप किया जाना बन्द हो रहा है। या बन्द हुआ चाहता है। इस प्रकार तो यहा अभिप्राय इसी काल से है, और काल से अभिप्राय मृत्यु का भी होता है। अर्थात् अब मृत्यु या काल वशात् यह शरीराभिमानी आत्मा शरीर से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर रहा है।

यह मानव ऐसा मूर्ख है, कि यह सब कुछ देखते हुए भी कि यह काल हमारे जीवन की एक-एक घडी समाप्त किये जा रहा है। एक दिन यह सम्बन्ध विच्छेद कर देगा। हमारा मरण हो जायेगा। जब तक यह शरीर है, जो कुछ जीवन का मुख्य उद्देश्य बनाया है, उसको शीघ्र ही पूरा कर लेना चाहिये। अन्यथा इस काल के एक थपेडे से ही यह बहता हुआ जीवन का स्रोत खतम हो जायेगा। यह सब संसार इसी तरह रहेगा, पर तू न रहेगा। जब तक यह शरीर स्वस्थ है, और इन्द्रियों की शक्ति का ह्रास नहीं होता है, मौत नहीं आती है, तब तक अपनी मञ्जिले मक्सूद मोक्ष तक पहुच जा। जिस यथार्थ उद्देश्य के लिये आया था, वह यही अपवर्ग है। तब ही तो भर्तृहरि ने कहा है—'कालो

नैव यातो वयमेव याता' काल को हम ने नही जीता, किन्तु काल ने हमको खा लिया।'

समष्टि काल की सूक्ष्म अवस्था मे ब्रह्म की सूक्ष्मता की अनुभूति करे। जिस समय यह परिणाम भाव को प्राप्त हो रहा होता है, क्योकि कार्य रूप मे तो यह महान् विस्तार को प्राप्त हो जाता है। अत कारण अवस्था मे ही ब्रह्म का साक्षात्कार होता है।

काल द्वारा सूर्य की गति की माप

(शका) दिन रात, मास वर्ष आदि का माप तो सूर्य द्वारा हो जाता है। अत इससे भिन्न काल के मानने की क्या आवश्यकता है ?

(समाधान) सूर्य की गति को माप करने वाला यह काल ही है। इतनी देर मे या इतने समय मे सूर्य ने इतने मील गति की, इसको काल ही वताता है। इतने घण्टे या मिनट की रात्रि हुई, इतने घण्टे मिनट का दिन हुआ। रात्रि कभी बडी होती है, कभी छोटी। कभी दिन बडा होता है, कभी छोटा। इस बात को तो काल ही वताता है। यह पदार्थ इतने समय मे उत्पन्न हुआ, इतने समय मे नष्ट हुआ, यह भी तो माप काल ही करता है। जब सूर्य उत्पन्न नही हुआ था, तब भी तो काल के द्वारा ही माप हुआ था कि अमुक पदार्थ को उत्पन्न होने म इतना काल लगा। पञ्च भूतो मे अग्नि का कार्य सूर्य है। अग्नि के कारण रूप पदार्थ जो अग्नि से पहले उत्पन्न हुए थे, जब अभी सूर्य भी उत्पन्न नही हुआ था, उन पदार्थों के उत्पन्न होने मे भी तो काल लगा होगा। उस काल को किस सूर्य ने मापा था। अत सूर्य की गति को माप करने वाला काल ही है। रात्रि को सूर्य नही होता है, तब भी तो मिनट घण्टे आदि द्वारा रात्रि का माप होता है। कि इतने घण्टे रात्रि बीत गयी। जहाँ सूर्य का प्रकाश नही जाता वहाँ भी तो पल घडी आदि के द्वारा समय का माप किया जाता है कि इतना समय हो गया। अत सूर्य से काल का निर्माण नही होता है। काल अलग पदार्थ है। सूर्य अलग पदार्थ है। सूर्य केवल प्रकाश देता है। काल को नही वताता है। प्रत्युत काल ही यह वताता है कि सूर्य का प्रकाश कितने काल तक रहा। सूर्य के प्रकाश का माप काल के पैमाने से होता है कि इतने पहर, घडी, पल, क्षण तक सूर्य का प्रकाश रहा। इतनी देर तक प्रकाश का अभाव रहा। अत काल को मानना अत्यन्त आवश्यक है। सर्व ससार के व्यवहार ठीक-ठीक समय पर इसी के द्वारा चलते है। सूर्य की गति का माप भी इसी काल से होता है। इतने काल मे सूर्य अमुक स्थान पर पहुचा। इतने काल मे अमुक पर पहुचा। इतने घण्टे तक यह हमारे देश मे चला इतने घण्टे अमुक देश मे रहा। अत काल का मानना अत्यन्त आवश्यक है और इस मे ब्रह्म की अनुभूति भी अत्यन्त आवश्यक है।

४ अन्वय रूप—इस काल का चतुर्थ अन्वय रूप नही होता है। अत इसके आगे अर्थवत्ता का वर्णन करते हैं।

समष्टि काल मण्डल

पञ्चम रूप मे ब्रह्म-विज्ञान

(समष्टि काल का पञ्चम रूप)

५ समष्टि काल के अर्थवत्व रूप मे—

काल की अर्थवत्ता मानव जीवन मे एक महान् सहायक है। बाल्य, कौमार, यौवन, वृद्धा अवस्था का यही तो द्योतक है। यह हर समय मानव को सावधान करता

रहता है। इतने समय मे इतने दिन, मास वर्ष आप के बीत गये हैं। अमुक समय मे यह कार्य किया था। अमुक समय मे वह कार्य करना है। इसीके द्वारा यह सब बोध होता है। मनुष्य के सब भोग और मोक्ष सम्बन्धी कार्य इसी के आधार पर होते हैं। जब कोई मुख्य कार्य करना होता है, तो उस समय की प्रतीक्षा मनुष्य करता है। इतना-काल बीत गया, इतना शेष है यह बोध इसी द्वारा होता है। किसी अपने अच्छे कार्य के लिये घड़ी, पहर, दिन, मास और वर्ष गिन गिन कर व्यतीत करता है। यदि काल न होता तो यह गिनती किस के द्वारा करता। वैराग्यवान् पुरुष को जीवन बीतने की चिन्ता होती है। मैंने इतना जीवन व्यर्थ मे ही खोया। अत. इस प्रकार यह काल वैराग्य को तीव्र करने मे महान् सहायक है। जब तक यह मानव शरीर है, तब तक शीघ्र ही आत्म-ज्ञान और ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर ले। इसकी पुष्टि भर्तृहरिजी महाराज ने इस प्रकार की है—

'यावत्स्वस्थमिदं शरीरमरुजं यावज्जरा दूरतो,
यावच्चेन्द्रिय शक्तिर प्रतिहता यवत्क्षयोनायुषः।
आत्म श्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्,
सदीप्ते भुवने तु कूप-खनन प्रत्युद्यमः को दृश.॥

—हे अज्ञानी मानव। जब तक शरीर स्वस्थ है, रोगी नही होता है, अर्थात् इन्द्रियें और शरीर सशक्त हैं, और मरण भी दूर है, तब तक आत्मज्ञान और ब्रह्मज्ञान के लिये प्रयत्न कर। इसी मे तेरी समझदारी और बुद्धिमत्ता है विद्वत्ता है। जब मृत्यु समीप होगी, कुछ भी न कर सकेगा। वह प्रयत्न ऐसा ही होगा, जैसे जब घर मे लग जावे तब आग बुझाने के लिये जल के वास्ते कुआ खोदने चलें। कुआँ खोदूँगा उससे जल निकालूँगा और अग्नि को बुझाऊँगा। 'इस मूर्खता को छोड कर आत्मज्ञान के लिये, कल्याण के लिये, शीघ्र से शीघ्र सावधान होकर लग जा! अन्यथा अन्त मे पश्चात्ताप करना पडेगा।

इसी बात की चेतावनी यह काल की अर्थवत्ता दे रही है। और मानव जीवन को वास्तविक उद्देश्य को बता रही है। मनुष्य उस मधुकर के समान विषय-भोगो मे फस कर अपने कर्तव्य को भूल जाता है। कहा है—

"रात्रिगमष्यति, भविष्यति सुप्रभातम्।
भास्वानुदेष्यति, हसिष्यति पंकज श्रीः।
इत्थं हन्त. विचिन्तयति, कोशगते द्विरेफे,
हा! हन्त! हन्त!! नलिनीं गज उज्जहार॥

—भौंरा किसी कुमुदनी के फूल मे बैठकर उसकी भीनी गन्ध पर मदमस्त हो गया। रात्रि आने पर कमल की पखडियाँ बन्द हो गयी। भौरा भी अन्दर ही बन्द हो गया। यदि वह चाहता तो उसको काटकर निकल सकता था। परन्तु गन्ध की रसिकता मे देर करते-करते रात्रि ही तो आगयी। वह सोचता ही रहा—रात्रि समाप्त होगी। सुन्दर प्रभात होगा। सूर्यउदय होगा। कमल खिलेगा। तब बाहर निकलूँगा। पर उधर रात्रि को

तालाब का जल पीने हाथी आया। उस कमल को भ्रमर सहित सूण्ड से तोड़ कर खा गया।

संसार के कार्यो और भोगों मे आसक्त मनुष्य की भी यही अवस्था होती है। एक दिन काल आयेगा और इस जीवन को अपने मुख का ग्रास बना कर समाप्त कर देगा। न जाने मानव जीवन फिर कब हाथ लगेगा। परन्तु जो समय बीत गया उसकी चिन्ता बेकार है, वर्त्तमान का आज भी बीत जायेगा, इसलिए आने वाले कल की चिन्ता कर। सावधान होकर यथार्थ उद्देश्य को पूरा कर। कम से कम अपने आप को तो समझले, 'मैं क्या हूँ' तब ही इस काल की अर्थवत्ता ठीक सिद्ध होगी।

यह काल भोग प्रधान होने से मानव के प्रत्येक कार्य मे सहायक होता है। भोजन अमुक समय मे करना है। बाहर अमुक समय जाना है। प्रत्येक कार्य को समय का सहारा लेकर ही करता है। इतने घण्टे, मिनट, दिन, मास, वर्ष मे यह कार्य कर लेना है। इस से सिद्ध है कि मनुष्य का कोई भी कार्य इस काल के बिना नहीं चल सकता। अपवर्ग के लिये भी इसकी प्रधानता है। इतने मिनट या घण्टे जाप करना है। इतने घण्टे ध्यान-समाधि करनी है। इतना समय नित्य प्रति आत्मचिन्तन मे या ईश्वर-भक्ति मे लगाना है। मोक्ष की प्राप्ति के लिये जितने भी कार्य और साधन हैं, इनकी सिद्धि के लिये समय ही अत्यन्त सहायक होता है। ईश्वर-भक्त व्यर्थ मे समय बीते तो पश्चात्ताप करने लगता है। अत ईश्वर आराधना मे काल अत्यन्त सहायक है। इस से सिद्ध होता है, कि भोग और अपवर्ग के लिये काल मानव का अत्यन्त उपकार करता है।

काल की सूक्ष्म अवस्था को इस प्रकार समझना चाहिये। जैसे एक सूक्ष्म से सूक्ष्म परमाणु है। वह एक स्थान मे निष्क्रय हो कर पड़ा है। जब किसी निमित्त विशेष से क्रियाशील होना प्रारम्भ करता है, एक देश से दूसरे देश मे वह करवट लेता है। जितना समय उसको करवट लेने मे लगेगा, या पलटने मे लगेगा उसको हम काल कहेंगे और जिस ओर को पलटा खायेगा उसे हम दिशा कहेगे। जिस स्थान मे पलटा खायेगा उसे हम आकाश के नाम से पुकारेंगे।

योगी को अपनी ध्यान की दृष्टि को आकाशमण्डल मे फेंक कर परमाणु के प्रगतिशील होने मे काल की सूक्ष्मता का अनुभव करना चाहिये। काल की उस सूक्ष्मता मे ब्रह्म की सूक्ष्मता को देखना चाहिये। दूसरा क्रम—ध्यान की सूक्ष्म दृष्टि से योगी को आकाश मण्डल मे प्रकृति की सूक्ष्म अवस्था मे प्रवेश करना चाहिए। उसकी भी कारण रूप सूक्ष्म अवस्था मे सूक्ष्म ऋतम्भरा बुद्धि से प्रवेश करना चाहिये जिसमे सूक्ष्मति-सूक्ष्म ब्रह्म का सम्बन्ध है। जो इसे अन्तर्यामी रूप से गतिशील कर रहा है। इस चेतन सत्ता की गति से इसमे एक विशेष गति प्रारम्भ होती है। उस देश के उस परिणाम क्रम मे कितना समय लगता है बस यहाँ ही काल का प्रादुर्भाव हो रहा है। उस सूक्ष्मतम गति के अन्दर प्रकृति के जिस देश मे यह काल उत्पन्न हो रहा है, काल की उत्पन्न होती हुई उस सूक्ष्म अवस्था मे ब्रह्म की सूक्ष्मातिसूक्ष्म व्यापक सत्ता की अनुभूति करे। इन प्रक्रियाओं से काल के अन्दर ब्रह्म-विज्ञान, और पदार्थ-विज्ञान के साथ-साथ इन दोनों का साक्षात्कार भी होगा।

इस प्रकार काल की अर्थवत्ता ब्रह्म ज्ञान का साधन बनती है और आत्मा के मोक्ष का साधन।

इति समष्टि काल मण्डलम्।

इति चतुर्थाध्याये चतुर्थ. खण्डः।

इति चतुर्थमावरणम्॥

पचम खण्ड

तृतीयमावरणम्

समष्टि दिङ् मण्डलम्

प्रथम रूप में ब्रह्म-विज्ञान

(समष्टि दिशा का प्रथम रूप)

१. समष्टि दिशा के स्थूल रूप में—

दिशा वास्तव मे एक ही है। पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, नीचे, ऊपर, और चारो कोण ये दश वास्तव मे दिशा के १० धर्म ही है। पूर्व पश्चिम आदि का इस लोक मे व्यवहार सूर्य के आधार पर किया जाता है। जिस ओर सूर्य उदय होता है, यदि उस ओर मुख कर खडे हो तो सामने वाली दिशा का नाम पूर्व दिशा होगा। पीठ पीछे दक्षिण दिशा, बाये हाथ की ओर उत्तर दिशा, और दायें हाथ की ओर दक्षिण दिशा मानी जाती है। पैरो के नीचे अध और सिर के ऊपर ऊर्ध्व दिशा मानी जाती है। चारो दिशाओ के बीच के कोने नैर्ऋत्य, वायव्य, ईशान, आग्नेयी नाम से पुकारे जाते है।

ये दिशा के धर्म ही है। परन्तु जिस काल मे सूर्य नही था, तब भी तो दिशा का व्यवहार दूसरे पदार्थो के लिये होना चाहिये। प्रलय काल के पश्चात् जब भगवान् के सन्निधान से सृष्टि का सृजन प्रारभ होता है। प्रकृति सर्व प्रथम परिणाम भाव को प्राप्त होती है, तब प्रथम क्रिया होते समय विकृत होना चाहती है। उस समय वह जिस ओर को पलटा खाती है, उस अवसर मे उस ओर दिशा की उत्पत्ति होती है। अत. यह दिशा प्रकृति का कार्य होने से द्रव्य ही है। उत्पत्ति वाली होने से अनित्य है। इसके पश्चात् प्रकृति के कार्यात्मक पदार्थों की अपेक्षा वह दिशा अपने पूर्व पश्चिम आदि धर्मो को उत्पन्न करती हुई परिणाम भाव को प्राप्त होती है।

(शका) जब दिशा की उत्पत्ति होती है, तब प्रकृति के एक देश मे परिणाम भाव को प्राप्त होता है या सर्व देश मे ?

(समाधान) इसके परिणाम का हेतु ईश्वर है। ईश्वर कोई इसके एक देश में तो रहता नही, क्योकि वह प्रकृति मे सर्वत्र विद्यमान है, अत प्रकृति मे सर्वत्र ही परिणाम होना चाहिये।

दिशा के पूर्व आदि धर्म सूर्य की अपेक्षा से ही उत्पन्न नही होते है। सृष्टि के सृजन काल मे जब दिशा की उत्पत्ति होती है, तब ही वह अपने धर्मो को लेकर उत्पन्न होती है। इन धर्मों का प्रादुर्भाव उस समय होता है जब दूसरे पदार्थों के साथ इनका व्यवहार आरंभ होता है।

(शका) आकाश को प्रथम न मानकर दिशा की उत्पत्ति को क्यों प्रथम न माना जाये ?

(समाधान) प्रकृति को अपने कार्यात्मक पदार्थ सृजन करने के लिये सर्व प्रथम अवकाश की आवश्यकता है विकृत होने के लिये, फैलने के लिये, और सकोच के लिये। अतः सर्व प्रथम आकाश का उत्पन्न होना ही ठीक है। फिर किस ओर को संकोच या विकास हुआ, पलटा खाया, या करवट ली। इन ही के लिए तो दिशा की आवश्यकता होती है। अत. दिशा की उत्पत्ति आकाश के पश्चात् ही होती है।

आकाश के दो भेद

(शका) आकाश की उत्पत्ति तो आकाश तन्मात्रा से मानी गयी है। पुनः सर्वप्रथम आकाश की उत्पत्ति भी क्यो मानते हो ?

(समाधान) वहाँ उत्पत्ति स्थूल आकाश की मानी गयी है। और यहाँ सूक्ष्म आकाश की, क्योकि तन्मात्रा आकाश से पूर्व भी तो अहकार-महत् आदि पदार्थ उत्पन्न हुए है, क्या उनको आकाश की आवश्यकता नही, उनकी स्थिति के लिए भी तो अवकाश चाहिये। अत. सर्व प्रथम आकाश की उत्पत्ति मानना ही ठीक है।

(शंका) यदि यह सूक्ष्म आकाश ही सब पदार्थों का कार्य सिद्ध कर दे, तो दूसरे आकाश को मानने की क्या जरूरत ?

(समाधान) वास्तव मे यह सूक्ष्म आकाश ही परिणाम भाव को प्राप्त होता हुआ सब पदार्थो के साथ चलता है, उनको अवकाश देता रहता है। अन्त मे स्थूल भूतो मे जाकर इसके कार्य की समाप्ति हो जाती है। इसी प्रकार दिशा और काल भी इसके साथ परिणत होते हुए और स्थूल भाव को प्राप्त होते हुए चलते हैं और अन्त मे स्थूल भूतो पर पहुँच कर ये भी आगे अपने परिणामात्मक कार्य बन्द कर देते हैं।

यह दिशा मनुष्य के लिये सर्व कार्यो मे सहायक और उपकारक होती है। इस से लोक के व्यवहार सिद्ध होते हैं। इसी के आधार पर पदार्थो और देशो का भी ज्ञान होता है। यदि दिशा न हो तो इस पदार्थ से यह पूर्व मे है, यह पश्चिम मे है, आदि ज्ञान कैसे हो। पूर्वापर का विज्ञान इसी के द्वारा होता है। जैसे—घनघोर घटाओं से भरा आसमान हो। रात्रि का समय हो। तारे तारिकायें भी न दीखते हो। बिलकुल अन्धकार हो। ऐसे समय मनुष्य को अज्ञात वन मे छोड दिया जाये, और कह दिया जाये, अब तुम अपने घर पहुच जाओ। दिशा का ज्ञान न होने से वह अपने घर नही पहुच सकता भटकता रहेगा। अत. देश और पदार्थ आदि के विज्ञान के लिए दिशा का होना अत्यन्त ही आवश्यक है। जैसे आकाश सूक्ष्म पदार्थ है, ऐसे ही दिशा भी सूक्ष्म पदार्थ है। जैसे आकाश सर्वत्र देखने मे आता है, इसी प्रकार दिशा भी सर्वत्र देखने मे आती है। सृष्टि मे कही भी किसी भी लोक मे चले जाओ, दिशा आपको सर्वत्र देखने में आयेगी। जैसे ससार का अन्त देखने मे नही आता है इसी प्रकार दिशा का भी अन्त देखने मे नही आवेगा।

इस दिशा मे भगवान् का आरोप करके उपासना और विज्ञान का विषय बनावें। वैसे तो ईश्वर सर्वत्र ही व्यापक है, परन्तु यहाँ आरोप करना इसलिए कहा है, कि इस आरोप से ईश्वर उपासना और ज्ञान का विषय बन जाता है। पदार्थ के आधार पर उसका विज्ञान हो सकता है। यदि पदार्थ से अलग हम उसको देखना चाहे तो वह

दर्शन का विषय नहीं बन सकेगा। जहाँ पदार्थ है ब्रह्म वहाँ अवश्य ही है। तब ही तो इसकी सर्व व्यापकता सिद्ध होती है। पदार्थ में आरोप करने से वह निराकार होते हुए भी साकार सा अनुभव होने लगता है, तब ही वह दर्शन का विषय बनता है।

समष्टि दिङ् मण्डल

द्वितीय रूप में ब्रह्म-विज्ञान

(समष्टि दिशा का द्वितीय रूप)

२. समष्टि दिशा के स्वरूप में—

दिशा के स्थूल रूप में जो दश प्रकार के धर्मों का वर्णन किया गया है। उन धर्मों का धर्मी दिशा के साथ अभेद है। इसका नाम स्वरूप सम्बन्ध है। इसको हम तादात्म्य सम्बन्ध भी कहते है। इसमे विज्ञान की यही बात है, कि किस प्रकार दिशा में परिणाम होकर इन धर्मों का प्रादुर्भाव होता है।

(शंका) यदि सूर्य न हो तो दिशा का ज्ञान मनुष्य को कैसे होगा ?

(समाधान) सूर्य, चन्द्र नक्षत्र आदि की उत्पत्ति के पश्चात् ही मनुष्यो की सृष्टि होती है। अत मनुष्य सूर्य के आधार पर ही पूर्व पश्चिम आदि का व्यवहार करने लगते हैं। वैसे दिशा तो पहले ही उत्पन्न हो चुकी थी। इससे कार्य लेने वाले पीछे उत्पन्न हुए। जिन-जिन लोकों मे मनुष्य की सृष्टि होती है। वहाँ सूर्य पहले से ही मौजूद होता है क्यो कि प्रत्येक लोक का सम्बन्ध सूर्य से ही होता है। सूर्य ही लोक को प्रकाश देता है। इसी के प्रकाश से सर्वत्र मनुष्यों के व्यवहार चलते हैं। इसलिये सूर्य के न होने का प्रश्न ही नही उठता।

(शंका) क्या स्वर्ग लोक आदि में भी सूर्य का प्रकाश है ?

(समाधान) इस सृष्टि मे असंख्य सूर्य हैं। अतः सर्व लोकों को ही सूर्य का प्रकाश प्राप्त होना चाहिये। यदि वह स्वर्ग लोक उन सूर्यो की परिधि से कहीं अलग हो तो दूसरी बात है। हाँ यह अवश्य होता है, कि किसी लोक में रात्रि और दिन बहुत छोटे होते हैं, और किसी मे बहुत बड़े। सबके दिन रात समान नही होते।

(शंका) सूक्ष्म शरीरों की सृष्टि तो सूर्य के उत्पन्न होने से पूर्व हो चुकती है, वे स्वर्गस्थ देव फिर किस प्रकार सूर्य के अभाव मे भोग भोगते हैं ?

(समाधान) स्वर्गस्थ देवों के दिव्य शरीर होते हैं; अतः उनके चक्षु भी दिव्य होते हैं, *उनको सूर्य के प्रकाश की जरूरत नही होती। वे दिव्य चक्षु सूर्य के बिना भी* देखने में समर्थ होते हैं। जैसे योगी समाधि में बैठा हुआ सूक्ष्म चक्षुओ से दूर के पदार्थ देखने मे समर्थ होता है। इसी प्रकार सूक्ष्म शरीराभिमानी अपने दिव्य नेत्रों से देखने में समर्थ होते हैं।

इस सूर्य के प्रकाश की आवश्यता तो स्थूल शरीराभिमानियों को ही है। मुक्तात्माओं को नहीं क्योंकि ये स्थूल शरीर पंच स्थूल भूतों से बने हैं, और सूर्य आदि भी पन्च भूतों से बने है। सूक्ष्म शरीराभिमानी आत्माये पन्चतन्मात्राओं के लोक मे निवास करती हैं, अतः वहाँ रूप तन्मात्रा का आलोक अवश्य होना चाहिये।

योगी को अपनी समाधि की सूक्ष्म दृष्टि से इस दिशा और इसके धर्मों में ब्रह्म का भी साक्षात्कार करना चाहिये। कारण कार्य और इन धर्मों में भी क्योंकि भगवान् सूक्ष्मातिसूक्ष्म होने से सर्वत्र प्रत्येक पदार्थ और उसकी प्रत्येक अवस्था में वर्तमान है।

समष्टि दिङ् मण्डल

तृतीय रूप में ब्रह्म-विज्ञान

(समष्टि दिशा का चतुर्थ रूप)

३ समष्टि दिशा के सूक्ष्म रूप में—

दिशा का सूक्ष्म रूप प्रकृति है। क्योंकि दिशा इसमें उत्पन्न हुई है। अत कार्य की सूक्ष्मावस्था अपने कारण में ही समाप्त होती है। कारण सामान्य और कार्य विशेष का समुदाय ही अयुतसिद्ध द्रव्य होता है।

इस कारण कार्य की सूक्ष्म अवस्था में ब्रह्म की अनुभूति करनी चाहिये। देखना चाहिये—किस प्रकार कारण से कार्य उत्पन्न होता है। और उस समय परिणामशील कारण में किस प्रकार की विकृति होती है। अत योगी को प्रान्त भूमि प्रज्ञा द्वारा कारण रूप प्रकृति के अन्दर प्रवेश करके इसकी विकृत होती हुई अवस्था को देखना चाहिए। यह दिशा को किस प्रकार कार्य रूप में सृजन कर रही है और किस प्रकार की क्रिया उस अवसर में इसमें होती है। इस अवसर पर ब्रह्म के सन्निधान से कैसे क्रिया उत्पन्न हो रही है। इसके साथ ब्रह्म का किस प्रकार सम्बन्ध बना हुआ है। इस प्रकार तीनों दिशा, ब्रह्म और प्रकृति का विज्ञान और साक्षात्कार करना चाहिये।

(शका)—सूर्य, अग्नि, जल, पृथिवी आदि पदार्थ जैसे देखने में आते हैं, इसी प्रकार दिशा भी तो देखने में आनी चाहिए?

(समाधान) सर्व साधारण को तो मन भी देखने में नहीं आता है। मन को मानकर व्यवहार सदा ही करते रहते हैं। इसी प्रकार मन की तरह दिशा भी सूक्ष्म है, और योगियों का ही प्रत्यक्ष का विषय है। अत योगी बनकर ही इसका साक्षात्कार हो सकता है। आकाश भी आँखों से देखने में नहीं आता है, परन्तु शब्द आदि से मनुष्य अनुमान कर लेता है। इसी प्रकार दिशा भी आँख से देखने में नहीं आती है। परन्तु पदार्थ के पूर्व पश्चिमादि धर्मों से दिशा का भी अनुमान कर लेता है। यह ठीक है, कि प्रत्यक्ष पूर्वक अनुमान होता है। सृष्टि को बना हुआ देखते हैं अत उसके कर्ता का अनुमान होता है कि इसका बनाने वाला अवश्य कोई है। जब किसी पदार्थ का बनाने वाला है, उसका प्रत्यक्ष भी अवश्य होना चाहिए। जो पदार्थ नेत्र, घ्राण स्पर्श, रसना आदि के द्वारा प्रत्यक्ष नहीं होता, उसका प्रत्यक्ष केवल बुद्धि और चित्त के द्वारा होना है जैसे चिन्ता, शोक, सुख, दुःख आदि है। इनका प्रत्यक्ष किसी भी ज्ञान या कर्म इन्द्रिय द्वारा नहीं होता। परन्तु चित्त और बुद्धि के द्वारा अनुभूति अवश्य होती है। जो पदार्थ स्थूल और सूक्ष्म इन्द्रियों का विषय नहीं होते, इनके द्वारा नहीं जाने जाते, वे पदार्थ अन्तःकरण के द्वारा ही साक्षात्कार का विषय बनते हैं। इन पदार्थों को अतीन्द्रिय कहते

है जिनको केवल अन्त करण द्वारा ही प्रत्यक्ष किया जाता है। अतीन्द्रिय पदार्थ दो तरह के होते है

१ जिनको स्थूलेन्द्रिय नही देख सकती और सूक्ष्मेन्द्रिय देखती है। जैसे मन, बुद्धि आदि।

२ जिनको सूक्ष्मेन्द्रिय भी नही देख सकती, परन्तु बुद्धि, चित्त देखते हैं जैसे आत्मा, परमात्मा।

४ अन्वय रूप—दिशा का चौथा अन्वय रूप नही होता है, अत अर्थवत्ता दर्शाते है।

समष्टि दिङ्मण्डल

पञ्चम रूप मे ब्रह्म विज्ञान

(समष्टि दिशा का पञ्चम रूप)

५ समष्टि दिश के अर्थवत्त्व रूप मे—

यह दिशा मनुष्य के भोग और अपवर्ग को सिद्ध करने मे अत्यन्त सहायक होती है। इसके बिना पदार्थ के पूर्ण पर का पता नही चलता। दिशा की भ्रान्ति हो जाने पर मनुष्य का यथार्थ लक्षित देश मे पहुचना ही कठिन हो जाता है। भटकता ही रहता है। *अत पदार्थ के विज्ञान मे दिशा अत्यन्त उपयोगी है।*

(शका) दिशा और काल को आकाश का ही गुण मानने मे क्या आपत्ति है?

(समाधान) ये स्वरूप से ही भिन्न पदार्थ है। आकाश केवल अवकाश प्रदान करता है। पदार्थ को एक दूसरे से अलग करता है। सब के अन्दर व्यापक है। यही तीन इसके गुण है। परन्तु यह पदार्थ इससे पूर्व है। यह उत्तर है। इधर करवट ली। यह बताना तो दिशा का ही धर्म है। आकाश दिशा का बोध नही कराता।

कितने समय तक गमन करता रहा। कितना समय जाने आने कर्म करने मे लगा, ये सब काल के ही धर्म है। न कि आकाश के। अत काल दिशा आकाश से भिन्न ही पदार्थ है। न्याय वैशेषिक ने भी इनको भिन्न पदार्थ ही माना है। तीनो को ही ये नित्य मानते हैं। परन्तु हम इनको कार्यात्मक मानते हैं और अनित्य मानते हैं। नित्य तो केवल प्रकृति जीवात्मा और ब्रह्म ही हैं। इनसे भिन्न अन्य सब पदार्थ अनित्य हैं। ये काल, दिशा आकाश सर्वप्रथम उत्पन्न होकर सृष्टि के सर्व पदार्थो के साथ मिलकर परिणत होते चले जाते हैं। इनको अवकाश देना, विभिन्न करना आकाश का काम होता है। दिशा का सकेत करना अमुक दिशा मे पदार्थ की गति हुई, या पदार्थ अमुक दिशा म विद्यमान है, यह दिशा का काम होता है। इतने समय मे पदार्थ का निर्माण हुआ, इतने काल मे प्रलय होगी, इतने मे उत्पत्ति होगी, यह बोध काल कराता है। अत आकाश, काल, दिशा भिन्न भिन्न ही पदार्थ है इनके व्यवहार और धर्म भी भिन्न हैं।

यह दिशा मनुष्य के भोग और मोक्ष म अत्यन्त सहायक होती है। मनुष्य के सब व्यवहार इससे चलते हैं। यदि दिशा न हो तो इस बात का पता चलना ही असभव हो जाये, कौन पदार्थ कहां है। उसको किस ओर जाकर प्राप्त करना है। किस ओर वह

मिल सकेगा। कौन कहाँ और किस ओर रहता है। इस दिशा को और इसके धर्मो को भी लक्ष्य बनाकर इनमे ब्रह्म की उपासना और ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। इससे सब दिशाओ मे ब्रह्म का वर्तमान होना अनुभव मे आयेगा।

इति समष्टि दिङ् मण्डलम्।

इति चतुर्थाध्याये पञ्चम खण्ड.।

इतितृतीयमावरणम्॥

षष्ठ खण्ड

द्वितीयमावरणम्

समष्टि महाकाशमण्डलम्

प्रथम रूप में ब्रह्म-विज्ञान

(समष्टि महाकाश का प्रथम रूप)

१. समष्टि महाकाश के स्थूल रूप में—

प्रथम ही आकाश का तो वर्णन कर चुके हैं। परन्तु महाकाश और उस आकाश में अन्तर है। यह ऐसा ही अन्तर है, जैसे पड़दादा और उसकी अवान्तर पीढ़ियों के पड़पोतों में अन्तर हो। जिस आकाश का पूर्व वर्णन आया है, वह इस महाकाश की अपेक्षा बहुत स्थूल है। वह आकाश तो तन्मात्रा का कार्य है। इस आकाश से पूर्व भी तो इन्द्रियाँ, अहंकार, बुद्धि, चित्त, सत्त्व, रजस्, तमस् उत्पन्न हो चुके हैं, क्या वे बिना आकाश के ही ठहरे हुए थे। इन सब पदार्थों को अवकाश देने के लिये सर्व प्रथम भगवती प्रकृति देवी ने महाकाश की उत्पत्ति की। यह इसका सर्व प्रथम कार्य है। जैसे किसी गृहस्थ का विवाह हो, या सन्तान उत्पन्न हो तो वह पहले घर बनाता है। या किसी ने व्यापार करना हो तो वह पहले दुकान या कारखाना बनाता है। तभी तो उसमें सामान रख सकेगा। इसी प्रकार भगवान् के सान्निध्य से क्रियाशील होकर इस प्रकृति देवी ने अपने सब कार्यात्मक पदार्थों को ठहराने के लिये अवकाश (घर) देना था। जिसमें इसकी कार्य रूप सन्तति निवास कर सके।

महाकाश की उत्पत्ति

महा प्रलय काल की अवस्था में जब यह प्रकृति देवी सुषुप्ति की अवस्था में सर्व प्रकार के विकार या परिणाम, भावों से रहित होकर साम्यावस्था में वर्तमान थी। उस समय में भी इसमें अपने ही अन्दर एक सामान्य क्रिया या कम्पन वर्तमान था, क्योंकि साम्यावस्था में ब्रह्म भी तो इसके अन्दर अपने सर्वव्यापक रूप से वर्तमान था। वह ब्रह्म ही तो चेतनत्वेन इसमें क्रिया का हेतु होता है। जब प्रलय काल में ब्रह्म का सम्बन्ध वर्तमान है, तो प्रकृति में क्रिया का अभाव कैसे हो सकता है। इस प्रकृति में क्रिया का अभाव होना तो ब्रह्म का अभाव हो जाना होगा। परन्तु ब्रह्म का अभाव तो उस प्रलय काल में भी इसके अन्दर नहीं है। अतः प्रलय काल की साम्यावस्था में भी इस कारण रूप प्रकृति में सामान्य क्रिया रहती है। केवल परिणामात्मक विशेष क्रिया, या विकृति रूप धर्म अथवा क्षोभ विशेष आदि का इस काल में अभाव होता है। कार्य की उत्पत्ति में ये विकार होते हैं साम्यावस्था में नहीं होते। साम्यावस्था से अभिप्राय है—सर्व कार्यात्मक विकारों का शान्त हो जाना। जैसे गाढ़ निद्रा में मनुष्य के जाग्रत् और स्वप्न, इन्द्रिय और शरीर के सर्व व्यापारों का अभाव हो जाता है। उस अचेत

अवस्था में केवल सामान्य रूप से प्राण का व्यापार होता रहता है। चित्त में उस काल में दुःख सुख दुःख की अनुभूति भी होती रहती है, क्योंकि चित्त तो सदा जागता रहता है। जीवात्मा का हर समय सम्बन्ध बने रहने से चित्त में सदा क्रियाशील सूक्ष्म गति बनी रहती है। जो निद्रा काल में भी उपलब्ध होती है। गाढ निद्रा को ही चित्त की साम्यावस्था समझना चाहिये। इस अवसर में ही सामान्य क्रिया की विद्यमानता समझनी चाहिये। क्रिया का सर्वथा अभाव तो चित्त में जीवात्मा का सम्बन्ध रहते न कभी हुआ है, न अब ही है, और न भविष्य में होगा। जैसे यहाँ जीवात्मा और चित्त का सम्बन्ध है ऐसे ही प्रकृति की साम्यावस्था में ब्रह्म का भी सम्बन्ध है। जब जड और चेतन का सम्बन्ध ही क्रिया का हेतु है, जैसे चित्त और जीवात्मा का, तब प्रकृति में क्यों साम्यावस्था में क्रिया का अभाव माना जावे, जब कि ब्रह्म का सम्बन्ध बना हुआ है। चित्त और जीवात्मा के गाढ निद्रा के दृष्टान्त से ही यहाँ प्रलय काल की अवस्था में भी सामान्य क्रिया की सिद्धि होती है। 'यत् पिण्डे तद् ब्रह्माण्डे।' जो इस शरीर में है, सो वहाँ प्रकृति में भी मानना चाहिये। अतः प्रकृति की साम्यावस्था में भी क्रिया माननी पड़ेगी।

प्रलय काल में ज्ञान, क्रिया जागरूक

प्रकृति की दो मुख्य शक्ति ज्ञान और क्रिया प्रलय काल में भी जाग्रत् रह कर अपना व्यापार करती रहती हैं। जैसे गाढनिद्रा में चित्त में ज्ञान और क्रिया काम करती रहती हैं। आत्मा के संयोग से चित्त में ये दो शक्तियां ज्ञान और क्रिया उत्पन्न होती हैं। जैसा सम्बन्ध चित्त का जीवात्मा के साथ है, ऐसा ही सम्बन्ध प्रकृति के साथ ब्रह्म का है। केवल अन्तर इतना ही है, कि यह सर्व देशी नही है, और ब्रह्म सर्वदेशी है। एक देशी होने से इसको बद्ध मान लिया है और ब्रह्म को बद्ध नही माना है। प्रकृति और ब्रह्म के सम्बन्ध में 'ज्ञान, क्रिया, बल' को दूसरे आचार्यों ने ब्रह्म में मान लिया है। हम इन्हें प्रकृति में मानते हैं। क्योंकि ये शक्तियां ब्रह्म के सम्बन्ध से प्रकृति में हो सकती हैं क्योंकि प्रकृति परिणामिनी है। परिणामिनी होने से इसमें धर्मों की उत्पत्ति होती है। क्योंकि धर्मों का उत्पन्न होना भी विकारात्मक है। जब यह विकार भाव को प्राप्त होती है, तब ही ये धर्म इसमें प्रकट होते हैं। यदि इन धर्मों की उत्पत्ति ब्रह्म में मान लें तो वह भी परिणामी हो जायेगा। एक के बाद एक धर्म का पैदा होना विकारवान् पदार्थ में ही हो सकता है। जिस काल में हम ब्रह्म को निष्क्रय मान रहे हैं उस काल में क्रियावान् या कर्ता भी मानें यह ठीक नही है। दो विपरीत धर्म एक पदार्थ में नही हो सकते और न दोनो कार्य कर सकते हैं। अत. इन धर्मों का प्रकृति में उत्पन्न होना मानना ठीक रहेगा। ब्रह्म में नही। उस प्रलय काल की अवस्था में प्रकृति के दोनो धर्म ज्ञान और क्रिया कोई ऐसा कर्म नही करते जिससे उसमें कोई विशेष व्यापार हो, या क्षोभ हो, या उस काल में परिणाम धर्म उत्पन्न हो जाये। जैसे सुषुप्ति काल में मनुष्य शान्त पडा रहता है, करवट भी नही लेता है, उसके किसी भी अंग में गति या कर्म नही होता है। न स्वप्न ही आता है। स्थूल रूप से शरीर में प्राण का गमनागमन होता है, और सूक्ष्म रूप में चित्त में सुख-दुःख का अनुभव होता है। इसी प्रकार प्रकृति में क्रिया प्राणरूप से (समष्टि प्राण में) बनी रहती है। यह भी तो सामान्य ज्ञान उसमें रहना

चाहिये कि व्युत्थान कब होगा। यदि कहो यह ज्ञान ब्रह्म को रहता है, कि सृष्टि का सृजन मेने कब करना है, तब इसको कर्ता मानना पडेगा। जब कर्ता मानते है, तो भोक्ता भी मानना पडेगा। तब यह भी जीवात्मा के समान हो जायेगा यदि आप यह कहे कि इन धर्मो को प्रकृति का मानने पर आपत्ति उपस्थित होगी, कि जब ज्ञान क्रिया स्वरुप वाली यह प्रकृति है, तो ब्रह्म को मानने की क्या जरूरत है। तब यह स्वय ही ससार की रचना मे प्रवृत्त हो जायेगी। परन्तु इन धर्मो की उत्पत्ति प्रकृति मे ब्रह्म के सन्निधान से मानते है। बिना ब्रह्म के सन्निधान के ये धर्म इसमे उत्पन्न नही हो सक्ते। ब्रह्म के सान्निध्य से प्रकृति मे ही धर्मो का परिणाम होता है न कि ब्रह्म मे, ब्रह्म तो अपरिणामी है। इसके सम्बन्ध से ब्रह्म मे गुणो या धर्मो की उत्पत्ति नही होती है, क्योकि हम ब्रह्म को निर्गुण मानते है। गुण या धर्म जितने भी है, ये सब प्रकृति मे ही परिणत होते है, और ब्रह्म मे आरोप कर दिये जाते है। आरोप किया हुआ धर्म उसका अपना नही होता है, वह दूसरे का होता है। विद्वानो ने जो ईश्वर मे अनन्त गुण माने है, वास्तव मे है, ये सब प्रकृति के, और ब्रह्म मे आरोप कर दिये गये है। यद्यपि हम गुणगुणी का अभेद मानते है, परन्तु जिन पदार्थो मे अभेद मानते है, वे सब परिणामी है। अपरिणामी पदार्थ अनन्त या बहुत गुण वाला नही हो सकता। जहाँ बहुत गुण मानते हैं वहाँ उस पदार्थ मे परिणाम मानना पडेगा, क्योकि एक गुण या धर्म के पश्चात् एक भोग देने के लिये आता है। अत ईश्वर मे अनेक गुण मानना ठीक न होगा। यदि आप कहे कि कोई एक गुण तो आप भी मानेगे, जिससे कि प्रकृति मे क्रिया इसके सन्निधान से प्रारम्भ होती है। चेतन रूप गुण तो आप मानेगे ही। ब्रह्म की चेतनता गुण नही है, अपितु चेतनता रूप ही ब्रह्म है। यह चेतनता कोई विकार भाव को प्राप्त होकर सयोग से इसमे उत्पन्न नही होती है, किन्तु चेतन रूप ही वह ब्रह्म है। चेतन रूप ही वह पदार्थ है। यह गुण या धर्म वाला नही है। किन्तु चेतन रूप ही वह है। गुणगुणी भाव परिणामी पदार्थ मे ही हो सकता है, अपरिणामी मे नही। यदि इस ब्रह्म के सयोग से इस ज्ञान धर्म की उत्पत्ति माने तब यह भी परिणामी हो जायेगा। हाँ यह अवश्य है कि इस चेतन ब्रह्म के सम्बन्ध से प्रकृति मे ज्ञान, क्रिया, विभुता, बल, शक्ति, पराक्रम आदि अनेक गुण उत्पन्न हो जाते है, क्योकि यह परिणाम धर्म वाली है। जैसे लोहपिण्ड अग्नि मे पड कर अग्नि के सम्बन्ध से अगारवत् बन जाता है। इसी प्रकार ब्रह्म के सन्निध्य से यह प्रकृति भी चेतनवत् सी बन जाती है। जैसे जीवात्मा के सयोग से यह जड शरीर चेतनवत् सा बना हुआ है, इसके कर्म और भोग चेतन के समान ही होते हैं। इसी प्रकार प्रकृति भी चेतन ब्रह्म के सन्निधान से चेतन सी बन कर सृष्टि की रचना स्वयं करने लगती है। परन्तु सब लोग आरोप ब्रह्म पर करते हैं कि ब्रह्म ही सृष्टि का कर्ता है। वास्तव मे ब्रह्म कर्ता नही है। यदि इसके सामीप्य से प्रकृति कोई कर्म करने मे प्रवृत्त हो जाती है, तो इस से ब्रह्म का कुछ नही बिगडता। उसमे कोई भी किञ्चन्मात्र भी तबदीली नही आती है। इसमे किसी भी गुण का प्रादुर्भाव नही होता, क्योकि यह अपरिणामी है। जो कुछ भी परिवर्तन होते हैं, वे प्रकृति मे होते है। यह प्रकृति उस अगहीन पुरुष के समान है, या उस नारी के समान है, जिसके न तो पैर है, न हाथ है। यह कही जा आ नही सकती। चल नहीं सकती। जडवत् पडी रहेगी। सो यह प्रकृति भी ब्रह्म के आश्रय मे ही चलने, फिरने, कर्म करने और ससार

की रचना मे समर्थ होती है। इसमे चेतनता का अभाव है, अत चेतन का आश्रय चाहती है। तब यह इस चेतन ब्रह्म से भी अधिक बलवती शक्तिशालिनी हो जाती है, क्योकि इसको चेतन ब्रह्म का सान्निध्य प्राप्त हो जाता है। इसमे चेतना रूप गुण और आ जाने से जड़त्व गुण की कार्य क्षमता बढ जाने से ब्रह्म से भी बलवती बन गयी है। इसने ब्रह्म को अपना लिया है, और अनेक गुणो और विकार वाली बन गयी है। परन्तु ब्रह्म इसका नही बना है, वह इसके सन्निधान से भी निर्विकार, निष्क्रिय, निरञ्जन, विशुद्ध और निर्गुण ही रहा, किञ्चित् भी परिवर्तन नही आया।

आकाश की उत्पत्ति चल रही थी। यह साम्यावस्था रूप प्रकृति जब ब्रह्म के सान्निध्य से विकार भाव को प्राप्त हुई तब इसमे सर्वप्रथम दो गुण उत्पन्न हुए, ज्ञान और क्रिया। ये इसके गुण ही है, पदार्थ नही। इन गुणो के प्रकट होने पर महाकाश की उत्पत्ति हुई। क्योकि इसने सब पदार्थो को अवकाश प्रदान करना है। अत अवकाश को लेकर यह आकाश उत्पन्न हुआ, क्योकि अवकाश धर्म से ही दूसरे पदार्थो का परस्पर विभेद होना है। प्रत्येक पदार्थ का भेद करने तथा अलग अलग रखने के लिए, अव्यूह धर्म उत्पन्न हुआ। तदन्तर इसने सब पदार्थो को अपने अन्दर धारण किया। इसमे भी पहले सर्वप्रथम व्यापक रूप धर्म उत्पन्न हुआ। इस प्रकार ये अपने तीना गुणा को लेकर उत्पन्न हुआ।

ये प्रकृति के ज्ञान और क्रिया गुण प्रकट होकर सर्व पदार्थो मे प्रसरित हुए। जितने पदार्थ ज्ञानात्मक हैं, उनमे जाकर ज्ञानात्मक गुण ओत-प्रोत हुआ। जितने कर्मात्मक पदार्थ हैं, क्रिया उनके अन्दर मुख्य रूप से ओत-प्रोत हुई और ज्ञानात्मक मे गौण रूप से।

क्रिया के अन्य नाम—इनको समष्टि प्राण भी कहते है, क्योकि सर्व पदार्थ इसी गुण से गतिशील हुए हैं। इसका नाम गति भी है। यह सब पदार्थो को गतिशील रखती है। एक क्षण भी ठहने नही देती। कर्म भी इसका नाम है, क्योकि सर्व प्रदार्थ कर्म कर रहे है। चाहे इनके अज्ञानपूर्वक ही कर्म हैं, परन्तु है तो कर्म ही। इन दो शक्तियो ज्ञान और कर्म को हिरण्य गर्भ अवस्था भी कहते हैं। क्यो वेद मे कहा है 'हिरण्यगर्भ समवर्तताग्रे' सर्वप्रथम इन्ही का प्रादुर्भाव हुआ है। ये ज्ञान और क्रिया प्रकृति के गुण सर्वत्र पदार्थो मे ओत-प्रोत होकर भोग और अपवर्ग का हेतु बनेंगे।

यह महा आकाश प्रथम और अन्तिम पदार्थ है। प्रकृति के सब कार्यात्मक पदार्थ जीवो के भोग और अपवर्ग का साधन बनते हैं। इन सब का कारण यह प्रकृति है। यह अपने कार्यो के साथ मिलकर सर्व प्राणिया को भोग और अपवर्ग प्रदान करती है। यह धर्म, वैराग्य, ऐश्वर्य, अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य, अनैश्वर्यो से जीवो का बान्ध कर रखती है। इन धर्मो के द्वारा भोग प्रदान करती है। जन्म मरण, सुख-दुख का क्रम प्रचलित रखती है। केवल एक ही गुण से मुक्त कर देती है—वह है विज्ञान या विवेक।

(शका) यह महाकाश उत्पन्न होकर क्या प्रकृति के गर्भ मे ही रहता है, या इस प्रकृति को भी अपने अन्दर धारण कर लेता है, क्योकि इस को भी तो अवकाश चाहिए।

(समाधान) प्रकृति स्वय आकाश रूप है। यह आकाश मे भी सूक्ष्म है। यह तो इसका बच्चा है। जो इसके गर्भ से ही पैदा हुआ है। वह अपने कारण को कैसे

धारण कर सकता है। यह आकाश प्रकृति के अन्य कार्यों को धारण करने के लिए ही उत्पन्न हुआ है। प्रकृति का आकाश ब्रह्म को ही कह सकते है, क्योकि वह इससे सूक्ष्म है और महान् भी, और इस मे व्यापक भी। प्रकृति अपने सब कार्यों की अपेक्षा विभु है। व्यापक है। अनन्त है। परन्तु ब्रह्म की अपेक्षा यह विभु या व्यापक नही है। सबसे बडा महान् विभु तो ब्रह्म ही है वह सर्व व्यापक एव अनन्त है।

समष्टि महाकाश मण्डल
द्वितीय रूप मे ब्रह्म विज्ञान
(समष्टि महाकाश का द्वितीय रूप)

२ समष्टि महाकाश के स्वरूप मे—

महाकाश के गुण हैं—१ सर्वतोगति, २ अव्यूह, अवकाश प्रदान। इनका आकाश के साथ गुण गुणी भाव सम्बन्ध है अत अभेद है। यही इसकी स्वरूप अवस्था है। इसम ब्रह्म की सूक्ष्मता की अनुभूति करनी चाहिये। इसके परिणाम धर्म का भी साक्षात्कार करना चाहिए। यह किस प्रकार अपने धर्मो को लेकर उत्पन्न होता है। इन धर्मो म भी ब्रह्म का साक्षात्कार करना चाहिये।

समष्टि महाकाश मण्डल
तृतीय रूप मे ब्रह्म-विज्ञान
(समष्टि महाकाश का तृतीय रूप)

३, समष्टि महाकाश के सूक्ष्म रूप मे—

इस महाकाश का उपादान कारण साक्षात् रूप से प्रकृति ही है। अत यही इसकी सूक्ष्म अवस्था है। प्रकृति सामान्य और महाकाश विशेष है। दोनो का समुदाय ही अयुतसिद्ध द्रव्य सिद्ध होता है। इसके उत्पत्ति काल मे अत्यन्त सूक्ष्म ज्योतिष्मती बुद्धि के द्वारा इसका विज्ञान प्राप्त करना चाहिए कि किस प्रकार क्रिया होकर परिणाम धर्म उत्पन्न होता है। इस परिणाम धर्म काल मे ब्रह्म की अनुभूति भी होनी चाहिये जोकि क्रिया का हेतु बना हुआ है। जो कार्य कारण से भी अत्यन्त सूक्ष्म होकर इनके अन्दर ठहरा हुआ है। अपनी चेतना शक्ति से गतिशील कर रहा है। परिणाम धर्म को उत्पन्न कर रहा है। उस निमित्त कारण ब्रह्म का भी इस सूक्ष्म अवस्था मे साक्षात् करे। पदार्थ *की उत्पत्ति के समय मे अत्यन्त सूक्ष्म समाधि की दिव्य दृष्टि से देखा जाये तो* पदार्थ, उसके उपादान कारण, और निमित्त कारण तीनो का ही विज्ञान और साक्षात्कार हो जाता है।

४ अन्वय रूप—महाकाश की चतुर्थ अन्वय अवस्था नही बनती, अत इससे आगे अर्थवत्ता का वर्णन करते है।

समष्टि महाकाश मण्डल
पञ्चम रूप मे ब्रह्म विज्ञान
(समष्टि महाकाश का पञ्चम रूप)

५ समष्टि महाकाश के अर्थवत्त्व रूप मे—

इस महाकाश मे सर्वप्रथम मुख्य रूप से यही अर्थवत्ता है, कि प्रकृति के जितने कार्यात्मक पदार्थ है, सब को यह अपने अन्दर धारण करता है। कारण रूप मे भी और
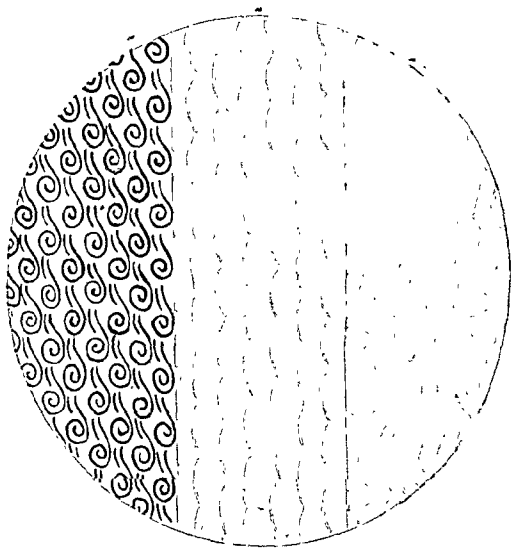
नता होती है और किसी मे क्रिया की । क्रिया एक ऐसा गुण है, जो प्रत्येक पदार्थ मे अपनी क्रिया को जारी रखता है, चाहे वह ज्ञान प्रधान हो या क्रिया प्रधान। प्रत्येक पदार्थ मे क्रिया इसी की है ।

(शका) ज्ञान और क्रिया जो प्रत्येक पदार्थ मे जाते है, क्या वे प्रकृति को छोड कर चले जाते है ?

(समाधान) हमारे सिद्धान्त मे गुण गुणी को छोडकर अलग नही होता है। जैसे सोने मे चमक या पीला रूप धर्म है। जब स्वर्ण भूषण मे परिणत होता है, तो उसकी चमक भी तो साथ ही चलती है। चमक स्वर्ण को छोडकर अलग नही रहती है। इसी प्रकार प्रकृति के धर्म ज्ञान और क्रिया भी इसके साथ ही रहते हैं। वास्तव मे सब पदार्थो का उपादान कारण तो प्रकृति ही है। जो गुण कारण म होते है वह कार्य मे भी जाते है। जैसे सैकडो भूषणो का उपादान कारण एक स्वर्ण ही है। स्वर्ण प्रत्येक भूषण मे गमन करता है। भेद भूषण का होता है न कि स्वर्ण का। स्वर्ण सब भूषणो मे उपादान कारण के रूप मे एक समान ही रहता है। इसी प्रकार यह प्रकृति देवी भी प्रत्येक कार्य मे उपादान कारण के रूप मे रहती है फिर ज्ञान और क्रिया के अलग होने की शका ही पैदा नही हो सकती ।

(शका) प्रकृति म ज्ञान धर्म प्रथम उत्पन्न होता है या क्रिया ?

(समाधान) ज्ञान प्रथम उत्पन्न होता है। क्रिया पश्चात् उत्पन्न होती है। बिना ज्ञान के ससार मे कोई कम ही नही होता है, अर्थात् कर्म ज्ञानपूवक ही होता है। चेतन होने से भगवान् ज्ञानस्वरूप ही है। इसके सान्निध्य से ज्ञान धर्म प्रकृति म प्रथम उत्पन्न होना चाहिये और क्रिया पश्चात्। मनुष्य जब कोई कर्म करता है, तो उसके विषय मे पहले सोचता है, विचारता है कि इसको किस प्रकार करना है, कितना समय इसम लगेगा, इसका फल क्या होगा। कर्म करने से पूर्व प्रथम उस का ज्ञान ही होता है। यद्यपि उसने अभी कर्म करना आरम्भ नही किया है। अत सर्वप्रथम ज्ञान ही उत्पन्न हुआ। पश्चात् क्रिया। क्रिया का अर्थ कर्म ही है, अर्थात् ज्ञान और कर्म दो गुण प्रकृति के ही है। लोक मे कर्म मे भी ज्ञान उत्पन्न होता है। जैसे योगी समाधि रूप कर्म द्वारा ज्ञान का उपार्जन या वृद्धि करता है। परन्तु समाधि रूप कर्म के पहले उसको समाधि रूप कर्म का ज्ञान तो था, कि इस समाधि से ज्ञान की वृद्धि होगी। अत कर्म का ज्ञान पूर्व ही होता है, और ज्ञान के पश्चात् ही कर्म होता है।

क्या ईश्वर मे ज्ञान, कर्म है ?

(शका) ज्ञान और कर्म ईश्वर के धर्म क्यो न मान ल, क्योकि चेतन मे ही ज्ञान और कर्म हो सकता है, जड मे नही ?

(समाधान) इन धर्मों या अन्य धर्मो को ब्रह्म मे मानने से वह भी प्रकृति के समान परिणामी हो जायगा। प्रकृति के परिणाम काल मे ही ये धर्म इसमे उत्पन्न होते है, और परिणत होते हुए सब पदार्थो म जाते है क्योकि प्रकृति कार्य रूप वाली है। ब्रह्म का तो इस प्रकार परिणाम होता नही है, जो इस के गुण सब कार्यो के साथ परिणत होते चले जावें। अत ब्रह्म के गुण मानने मे प्रकृति और ब्रह्म मे कोई अन्तर नही रहता है।

(शका) किसी आचार्य ने ब्रह्म के ही दो गुण माने है, चेतन और जड और प्रकृति नाम से भिन्न कोई पदार्थ ही नही माना है ?

(समाधान) यदि ब्रह्म के ही ये दो गुण मान लिए जाएँ, जडता और चेतनता, तो इन दोनो धर्मो मे अन्तर कैसे रहेगा ? जड और चेतन दोनो विरोधी धर्म है, अत. एक पदार्थ मे नही हो सकते हैं। यह वर्तमान ससार जो सामने देखने मे आ रहा है, नित्य ही इसमे उत्पत्ति और विनाश या परिणाम देखने मे आ रहे है। यदि इनको ब्रह्म का ही गुण मान लिया जाये, तब तो ब्रह्म को भी नाशवान् और परिणामी मानना पडेगा। तब प्रकृति के अलग मानने मे क्यो आपत्ति करते हो ? इसके ही ज्ञान और क्रिया धर्म होने, और कार्य रूप होने से सब व्यवस्था ठीक रहती है। इस प्रकार के सिद्धान्त मे कोई भी दोष उत्पन्न नही होता है। ब्रह्म का केवल सन्निधान मात्र मानने से ब्रह्म मे भी कोई दोष उत्पन्न नही होता है। वह कूटस्थ, निष्क्रिय, निर्विकार, निरवयव, अपरिणामी बना रहता है। प्रकृति का भी कार्य सिद्ध हो जाता है, और ससार की उत्पत्ति, विनाश और अन्य व्यवस्था भी ठीक बनी रहती है। यह प्रकृति और उसके कार्यो की अर्थवत्ता।

वास्तव मे प्रकृति मे ही अर्थवत्ता रूप है, इसी की अर्थवत्ता इसके सब कार्यो मे जाती है। भोग और अपवर्ग का हेतु भी यह है। यह अपने कार्यो के साथ मिलकर अर्थवत्ता वाली होने से मनुष्यो और सर्व प्राणियो को भोग और मोक्ष प्रदान करती है। प्रकृति और उस के कार्य का भेदाभेद रूप से सम्बन्ध है, जैसे अवयवी और अवयव का अभेद होता है। कार्य रूप से पदार्थ का भेद हुआ है, क्योकि कारण भी कार्य मे सूक्ष्म रूप से वर्त्तमान है, इसलिए अभेद भी है।

(शका) यदि प्रकृति के ही धर्म ज्ञान और क्रिया मान लिए जायें तो उपनिषद् का यह मन्त्र निरर्थक हो जाएगा—

'न तस्य कार्यं करण च विद्यते, न च तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।
परास्य शक्ति विविधैव श्रूयते, स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया च ॥

श्वेताश्वर० अ० ६। म० ८॥

—उस ब्रह्म का न कोई कार्य है, न उसका कोई करण ही है। न उसके कोई समान है। न उससे कोई अधिक ही है। इसकी पराशक्ति नाना प्रकार की सुनी जाती है। जो कि स्वाभाविक रूप से ज्ञान, बल और क्रिया है।'

(समाधान) वास्तव मे इस मन्त्र मे ज्ञान, बल, क्रिया से तात्पर्य है—ज्ञान से तात्पर्य प्रकृति के सत्त्वगुण का है। बल से तात्पर्य तमोगुण का है और क्रिया से अभिप्राय रजोगुण का है। इन तीनो पदार्थो के वास्तविक अर्थ भी यही है।

ईश्वर और प्रकृति का अनादि नित्य सम्बन्ध है। व्याप्य व्यापक भाव है। ये कभी अलग ही नही होते। स्व स्वामी भाव सम्बन्ध सदा बना ही रहता है। इस सनातन सम्बन्ध के नाते ही प्रकृति के इन गुणो को ब्रह्म के गुण कह दिया है। यह आरोप मात्र है। वास्तव मे तो यह गुण प्रकृति के ही है। इसके आगे ११वें मन्त्र मे 'साक्षी, चेता, केवलो निर्गुणश्च' कहा है। यहाँ निर्गुण कहने से सिद्ध है कि ज्ञान, बल, क्रिया ईश्वर के गुण नही है। ये प्रकृति के ही गुण या पदार्थ है। जिनको गुण रूप से ब्रह्म मे आरोप कर दिया है। स्वाभाविक शब्द साथ मे दिया है, क्योकि व्याप्य व्यापक भाव सम्बन्ध नित्य है, इसलिए वह स्वाभाविक सा ही हो जाता है।

(शका) जब ब्रह्म मे भी गुण नहीं हैं, और प्रकृति जड है तो ससार के ये सब पदार्थ जो नियम पूर्वक सब कर्म कर रहे है, ये बिना किसी चेतन सत्ता के नियन्त्रण के यह नही कर सकते हैं ?

(समाधान) जैसे किसी कारखाने मे बडी भारी मशीन लगी होती है। वह नाना प्रकार के पदार्थो के निर्माण करती है। उस मशीन मे विद्युत की तार का सम्बन्ध कर देने से वह गति शील होकर सब कार्य करना प्रारम्भ कर देती है। इसी प्रकार ब्रह्म का सम्बन्ध या सान्निध्य इस प्रकृति को गति करा देता है। अर्थात् ब्रह्म के सम्बन्ध मात्र से स्वय गति शील होकर सब कार्यो और पदार्थो का निर्माण प्रारम्भ हो जाता है। यहाँ तो केवल ब्रह्म के सम्बन्ध मात्र की जरूरत है। न कि ब्रह्म के कर्तृत्व की। यह सम्बन्ध सदा बना ही रहता है। यदि कहो कि जब सदा और नित्य सम्बन्ध है, तो एक ही समान प्रकृति मे कर्म होता रहना चाहिए। वह तो होता नही। सामान्य विशेष रूप मे और अनेक अवस्थाओ के रूप मे होता रहता है कभी प्रलय कभी सृष्टि सृजन आदि।

जीवात्मा और शरीर के सम्बन्ध के दृष्टान्त से यह ठीक समझ म आ जायेगा। जैसे एक मनुष्य की १०० वर्ष की आयु है। उसम बाल्य युवा वृद्धावस्था, भी आती है। जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाय भी होती हैं। ये क्यो होती है ? सुषुप्ति और जाग्रत का तो बहुत अन्तर है। जब एक जीवात्मा का सम्बन्ध १०० वर्ष तक निश्चय रूप से हो गया है तब जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति के अवस्थाओ के परिणाम क्या होत हैं। बाल्य युवा-वृद्धा अवस्थायें क्या आती ह ? ये विकृति और विषमतायें क्यो आती है ? आपके प्रश्न के आधार पर तो ये नही आनी चाहिये, परन्तु आती है। जैसे चेतन जीवात्मा के सम्बन्ध से शरीर मे ये विषमताये और परिवर्तन सौ वर्ष तक होते रहते है। इसी प्रकार प्रकृति मे भी ब्रह्म के सम्बन्ध से या सान्निध्य से परिवर्तन या परिणाम होते रहते है। ससार के सब कार्य यह प्रकृति चेतन सी बनकर करती रहती है। जैसे मनुष्य का यह जड शरीर चेतनवत् सा बनकर सब कार्य करता रहता है। यह प्रकृति ही सब जीवो के भोग और अपवर्ग के लिए परिणाम भाव को प्राप्त होकर सृष्टि की रचना करती है। इस रचना का श्वेताश्वतरोपनिषद् ने इस प्रकार से भी कथन किया है। ईश्वर मे व्याप्त इस परिणामिनी प्रकृति का कारण से कार्य रूप मे भोग और अपवर्ग के लिए ससार चक्र चलता रहता है। भोग और मोक्ष प्रदान करने के लिए निम्न प्रकार के कार्यो के रूप मे यह प्रकृति भगवती देवी प्रस्तुत होती हे। यथा—

'तमेकनेमिं त्रिवृतं षोडशान्तं शतार्धारं विंशति प्रत्यराभिः।
अष्टकैः षड्भिर्विश्वरूपैक पाशं त्रिमार्गभेदं द्विनिमित्तैकमोहम्॥ ४॥
पञ्च स्रोतोऽम्बुं पञ्चयोन्युग्रवक्रां पञ्चप्राणोर्मिं पञ्चबुद्ध्यादिमूलाम्।
पञ्चावर्तां पञ्चदुःखौघवेगां पञ्चाशद्भेदां पञ्चपर्वामधीमः॥ ५॥

श्वेताश्वतरोपनिषद् अ० १। म० ४,५॥

—एकनेमिम्=ईश्वर से व्याप्त प्रकृति, त्रिवृतम्=सत्त्व, रजस् तमस्, षोडशान्तम्=५ ज्ञानेन्द्रिय+५ कर्मेन्द्रिय, ५ तन्मात्राय, १ मन या १६ कला, शतार्धारम्=पचास अरे ५ प्रकार की अविद्या, अस्मिता राग, द्वेष, अभिनिवेश, २८ प्रकार की शक्ति, ९ प्रकार की तुष्टि, आठ प्रकार की अणिमा आदि सिद्धियाँ, ये ब्रह्माण्ड रूपी पहिये के पचास अरे

है। १० प्रकार की इन्द्रियो की शक्ति, और एक-एक तुष्टि की दो-दो शक्तियाँ भाव और अभाव रूप में ये २८ शक्ति कहलाती है। विंशति प्रत्याराभि =१० ज्ञान और कर्मेन्द्रियाँ, १० इनके विषय, ये २० आरा है। पच्चास अरो की पुष्टि करने वाली पच्चर है। अष्टकै षड्भि =आठ सख्या वाले ६ अष्टको से युक्त, पाँच तन्मात्रा, मन, अहकार, बुद्धि ये प्रकृति के अष्टक है। त्वचा, मास, रुधिर, मेद, अस्थि, मज्जा, वीर्य ये ८ धातु अष्टक। अणिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्रकाम्य, वशित्व, ईशित्व, कामावसायित्व, ये ऐश्वर्य अष्टक है। धर्म,ज्ञान,वैराग्य,ऐश्वर्य, अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य, अनैश्वर्य ये आठ अभावात्मक अष्टक है, क्षमा, दया,अनसूया,शौच, अनायास,मगल,उदारता, सन्तोष यह गुणो का अष्टक है। ब्रह्म, प्रजापति, देव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पितर पिशाच ये देव योनियो का अष्टक है। इन छ अष्टको से युक्त, विश्व रूपक पाशम्=स्वर्ग, नरक, पशु पक्षी, स्थावर आदि नाना रूप वाला, त्रिमार्गभेदम्=ससार की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयरूप, द्विनिमित्तक मोहम्=धर्मा धर्म या पाप पुण्य रूप और एक मोह रूप अविद्या से ढका हुआ, यह ससार चक्र है। जोकि प्राणिमात्र के बन्ध और मोक्ष का हेतु है।

पञ्चस्रोतोम्बुम्=पाँच ज्ञानेन्द्रियो के स्रोत इस शरीर में जलरूप से विद्यमान है। इनसे कुछ न-कुछ द्रव पदार्थ का स्राव होता रहता है। या इनके द्वारा विषयों के भोग रूप ज्ञान का स्राव होता रहता है। पञ्चयोन्युग्रवक्राम्=पाँच भूत इन स्थूल ज्ञानेन्द्रियो के उत्पत्ति स्थान है। या इनके उपादन कारण है। पञ्च प्राणोर्मिम्=शरीर रूपी नदी मे पाँच प्राण ही तरगें है। पञ्चबुद्ध्यादिमूलाम्=पाँच ज्ञानेन्द्रियों से उत्पन्न होने वाला ज्ञान, जिसका आदिमूल ही बुद्धि है। पञ्चावर्ताम्=पान्च विषय भवर हैं। जीव को दु ख देने वाले हैं। पञ्चदु खौघवेगाम्=गर्भवास, जन्म का समय, वृद्धावस्था, अत्यन्त ही अशक्त अवस्था, व्याधि इन पाँचों दु खो का प्रवाह इस नदी रूप शरीर मे बह रहा है। पञ्चाशद्भेदाम्=पचास भेदों वाला यह शरीर, अग प्रत्यग के रूप मे, अर्थात् इसमे ६ अग और ४४ प्रत्यग है। २ हाथ, २ पैर, १ सिर, १ भरण—मदरा ये मुख्य अग हैं। २० अगलियाँ, नसें, मस्तक, उदर, पीठ, नाभि, नासिका, ठोडी, वस्ति, गर्दन, कान, नेत्र, भोह, शख, कन्धा, टखना, आँख, स्तन, अण्डकोश, उपस्थ, पसलिया, कटिभाग, २ जानू, २ बाँह, २ जघायें, ४४ उपाग या प्रत्यग हैं। यह पाँच-पाँच प्रकार के विज्ञान से युक्त शरीर है। इसका अध्ययन करते हुए इसके द्वारा हम ब्रह्म वादी योगी ब्रह्म की उपासना और विज्ञान प्राप्त करते हैं। यही वास्तव मे हमारे भोग और मोक्ष का महान् हितकारी, सहायक, मुख्य कारण है। पहले मन्त्र मे प्रकृति के स्वरूप का कारण कार्यात्मक रूप से वर्णन करके भोग और अपवर्ग के साधन शरीर का वर्णन किया है। यह सब इस प्रकृति का ही विस्तार है। इन सब को लेकर यह मनुष्य के भोग और अपवर्ग के लिए प्रार्थ रूप से उपस्थित होता है।

इस सूक्ष्म महाकाश मे ब्रह्म का आरोप करके इसका विज्ञान और ब्रह्म की उपासना एव ब्रह्म का साक्षात्कार करना चाहिए। किस प्रकार इस प्रकृति मे क्रिया प्रारम्भ होकर आकाश की उत्पत्ति होती है। इस महाकाश का क्या स्वरूप है। इसमे और स्थूल आकाश मे क्या अन्तर है। प्रकृति और आकाश मे क्या अन्तर रहा। ब्रह्म

का किस प्रकार और कैसा सम्बन्ध है इत्यादि साक्षात्कार करना चाहिए। यहां तक प्रकृति के ३२ कार्यो का और इनमे ब्रह्म के विज्ञान का, तथा सब कार्यो के विज्ञान और उनमे ब्रह्म के साक्षात्कार का वर्णन किया गया है। अब प्रकृति का कोई कार्य शेष नही रहा है। अब एसके आगे प्रकृति मे ब्रह्म साक्षात्कार का वर्णन रहेगा।

इति समष्टि महाकाश मण्डलम्।

इति चतुर्थाध्याये षष्ठ खण्ड।

इतिद्वितीयमावरणम्॥
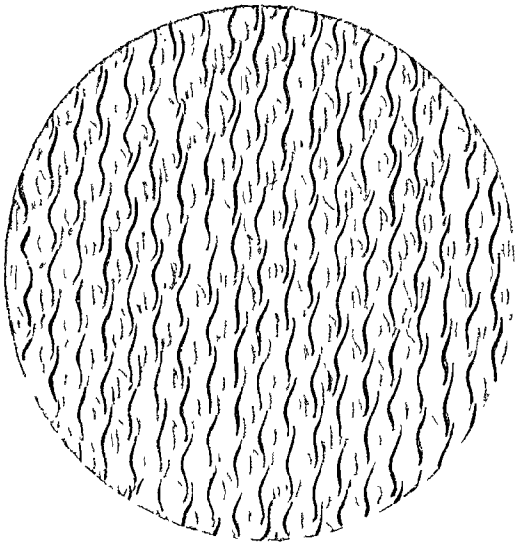
चित्र स० १६

सप्तमः खण्ड.

चरमावरणम्

समष्टि कारण प्रकृति

प्रथम रूप मे ब्रह्म-साक्षात्कार

(समष्टि कारण प्रकृति का प्रथम रूप)

१. समष्टि कारण प्रकृति के स्थूल रूप मे—

जब यह प्रकृति परिणाम भाव को प्राप्त होती है, तो सर्वप्रथम इस मे दो गुण का प्रादुर्भाव होता है। १ ज्ञान २ क्रिया। चित्र स० १६ मे देखें। ये दोनो गुण हैं द्रव्य नही। क्रिया का अर्थ गति, कर्म, प्राण, क्षोभ, विकार, परिणाम है। ये सब पर्यायवाचक हैं। इसी प्रकार ज्ञान के पर्यायवाची हैं विज्ञान, साक्षात्कार, सामान्य ज्ञान, विशेष ज्ञान आदि। जब यह कार्य को उत्पन्न करने के लिए प्रवृत्त होती है, तब सर्वप्रथम इसमे ये दो गुण उत्पन्न होते हैं। तत्पश्चात् महाकाश आदि द्रव्यों की उत्पत्ति होती है। इसमे गुणों का प्रादुर्भाव होना ही इस की स्थूल अवस्था है। ये गुण सर्वत्र इस के साथ सब कार्यों में गमन करेंगे। यह प्रकृति परिणाम भाव को प्राप्त होकर अपने सब कार्यो मे ज्ञान और कर्म का प्रसार करेगी। इसकी दोनो साम्यावस्था और परिणत होती हुई विकार अवस्था मे ब्रह्म का साक्षात्कार करना चाहिए। विकार भाव की अवस्था मे तो सर्वत्र ब्रह्म का दर्शन कर चुके हैं। कारण अवस्था मे अब करना है। इसकी एक ऐसी भी अवस्था है, जो सदा कारण रूप मे वर्तमान रहती है। जिस मे ब्रह्म का इसके साक्षात् रूप से सम्बन्ध रहता है। यह सम्बन्ध ही सृष्टि सृजन काल मे इसमे विशेष क्रिया का हेतु बन जाता है। परन्तु इस की साम्यावस्था म सामान्य क्रिया का हेतु बना रहता है। यह ही इस मे सदा नित्य क्रिया का हेतु बना रहता है। विशेष क्षोभ आदि कर्म प्रकृति के अपने स्वभाव से ही होते रहते हैं, विशेष परिवर्तन, कार्य और इनकी नियम व्यवस्था आदि इसका अपना धर्म है।

जीवो के कर्मफल की व्यवस्था

यह तो एक स्वाभाविक ही नियम है कि जैसे कोई कृषक गन्ना या मिर्च का बीज भूमि मे बोता है, तो उसमे वही गन्ना या मिर्च पैदा होते हैं। इस प्रकार कर्मफल—पाप पुण्य का नियम है। जैसा कर्म होता है, उस का वैसा ही परिणाम होता है। पाप का दुःख रूप और पुण्य का सुख रूप।

चित्र स १६—इस मण्डल मे सर्व प्रथम प्रकृति म ब्रह्म के सन्निधान से जो क्षोभ होकर ईक्षण या सृष्टि रचना प्रारम्भ होन जा रही है। इसम सर्वप्रथम प्रकृति के अत्यन्त क्षोभपूर्वक कम्पायमान हो जाने पर जो दो धर्म या गुण सबप्रथम उत्पन्न हुए हैं। इनका नाम है ज्ञान और क्रिया। इस मण्डल मे ये जो श्वेत तरगें या लहरें सी उत्पन्न हो रही हैं यह सर्वप्रथम ज्ञान धर्म की उत्पत्ति हो रही है। दूसरी जो पनि मे वरण की लहरें या तरगें उत्पन्न हो रही हैं ये क्रिया के रूप मे गुण या धर्म उत्पन्न हो रहा है। भगवान के ईक्षण से सर्वप्रथम प्रकृति की साम्य रूप अवस्था म जब परिणाम धर्म उत्पन्न हुआ। तब सबप्रथम गुणो के रूप मे ज्ञान और क्रिया ये दो शक्तियें उत्पन्न हुई।

प्रश्न—पाप पुण्य किसे कहते है ?

उत्तर—मानव समाज को—व्यक्ति या समष्टि को नियम और शासन मे रखने के लिए वेद, शास्त्र और विद्वान् विधि और निषेध आत्मक दो प्रकार के कर्मो का विधान बनाते है। ताकि ससार के लोग उच्छृ खल बनकर मनुष्यो या अन्य प्राणियो को दु खी न करें। चोर, डाकू, हिसक, दुराचारी, बलात्कारी, आततायी, स्वार्थी, मिथ्यावादी, किसी को हानि या दु ख न पहुँचाव। लडाई, झगडे कलह इत्यादि कर्मो से व्यक्ति और समाज को दु ख होता है। अत इनको पाप या निषेधात्मक कर्म कहत है। समाज के नियमो का पालन करना, डाका न मारना, चोरी न करना, हिसा से बचना पर स्त्री गमन या बलात्कार न करना, मिथ्या बोलकर छल या कपट से दूसरे के पदार्थ का हरण न करना, सर्व प्राणियो का सुखी बनाना, प्रम भाव पैदा करना, द्वेष न करना, आततायी न होना, मित्र भाव रखना, सब विश्व का अपना ही कुटुम्ब समझना, इत्यादि कर्मो को पुण्य या विध्यात्मक कम कहते ह। इस स मानव समाज सुव्यवस्थित, नियम तथा शासन मे रहकर सुखी रहता है। इन निषध और विध्यात्मक कर्मो के आधार पर व्यक्ति और समाज के पाप और पुण्यात्मक कर्मो का सग्रह होता है। इन्ही के आधार पर कम व्यवस्था चलती है।

इस कम का यह फल है, यह प्रकृति ही व्यवस्था करती है। जैसे हमारे शरीर मे बुद्धि ही ज्ञान अज्ञान, पाप पुण्य की व्यवस्था करती है, पर आरोप आत्मा पर कर दिया जाता है, इसी प्रकार कर्म की व्यवस्था प्रकृति की समष्टि बुद्धि द्वारा होती है, आरोप भगवान् पर कर दिया जाता है कि भगवान् कर्म फल का विधान करता है। यदि समष्टि बुद्धि या चित्त इस व्यवस्था को न कर, तब यह व्यर्थ हो जाते है, इनका कोई भी काम या कार्य नही रहता है। यह सब कम फल व्यवस्था इस प्रकार होती है ब्रह्म के सान्निध्य मे, परन्तु सब कुछ करती प्रकृति है। यदि कहो प्रकृति जड है। तो जड यह पत्थर की तरह तब तक रहती है, जब तक ब्रह्म का सान्निध्य इस को प्राप्त नही होता। ब्रह्म का सान्निध्य तो इसको प्राप्त है, अत इसकी जडता सर्वथा दूर हो जाती है। हा ? ब्रह्म की तरह चेतन तो नही बनती परन्तु चेतनवत सी बनकर सब कार्य करने लगती है। जैसे जीवात्मा के सान्निध्य स अन्त करण चेतनवत् सा बन कर सर्व कर्म करने मे समर्थ हो जाता है। आत्मा केवल शान्त भाव से निष्क्रिय और असग होकर कूटस्थ रहता है। इसके अपने अन्दर कोई भी हलचल, परिणाम, विकृति अथवा क्षोभ उत्पन्न नही होता है। जा कुछ हलचल, परिणाम, क्रिया, कम, व्यापार, क्षोभ, विकृति आदि होती है, वे सब चित्त म ही होती हैं। इसी प्रकार ब्रह्म भी शान्त, निष्क्रिय, क्षोभ तथा कर्तापन की भावना से रहित, असग, कूटस्थ होकर बना रहता है। प्रकृति म ही क्रिया, कम, क्षोभ परिणाम, काय सब होते है, सृष्टि रचना तथा कार्यो की सब व्यवस्था आदि प्रकृति ही करती रहती है। आरोप ब्रह्म पर कर दिया जाता है। पर ब्रह्म तो असग और निष्क्रिय है।

यदि कहो कि ज्ञान और क्रिया जब प्रकृति के अपने ही धर्म स.थ है, यह स्वय ही सब कुछ कर सकती है, ब्रह्म की क्या आवश्यकता है। देखो ! काष्ठ का बडा सा ढेर पडा है, परन्तु उसमे अग्नि उत्पन्न नही होती है। पर एक तीली दियासलाई जलाकर

उसमें लगाने से वह काष्ठ अग्नि रूप बन जाता है। इसी प्रकार इस प्रकृति में सब कुछ करने की सामर्थ्य है, पर इस सामर्थ्य का जाग्रत करने के लिए किसी निमित्त की अपेक्षा है। वह निमित्त चेतन ब्रह्म है। पर असंग और निष्क्रिय भाव से। यदि कहो प्रकृति की प्रवृत्ति या सृजन में जीवों के कर्म फल निमित्त बन जायेंगे। तो देखो ! जैसे प्रकृति जड है ऐसे ही जीवों के कर्म भी जड हैं, जड को जड क्या क्रियाशील करेगे। पत्थर को पत्थर क्या क्रियाशील करेगा। कहीं-कहीं जड को जड क्रियाशील करता है जैसे मशीन को बिजली, और लोहे को चुम्बक। परन्तु वहां भी बिजली का स्विच जोडने वाला मनुष्य ही होता है। चुम्बक के साथ संयोग करने वाला भी मनुष्य ही होता है। इन जडों को क्रियाशील करने में भी चेतन मनुष्य की जरूरत होती है। इसी प्रकार प्रकृति को भी क्रियाशील होने के लिए चेतन ब्रह्म की जरूरत है। वह चेतन इसके सदा अंग संग में रहता है। इसके सान्निध्य से सदा प्रकृति कार्योन्मुख प्रवृत्त रहती है।

ब्रह्म का महत्त्व

प्रश्न—आपने सब कुछ कर्म, धर्म, क्रिया, ज्ञान, सृजन, प्रलय आदि इस प्रकृति के ही विस्तार से वर्णन किये हैं, परन्तु ब्रह्म का तो कुछ भी नहीं किया, फिर ब्रह्म का क्या महत्त्व रहा ?

उत्तर—ब्रह्म का विशेष वर्णन तो तब होता जब वह भी प्रकृति की तरह परिणामी या विकार धर्मों वाला होता। इसके भी प्रकृति के समान अनन्त कार्य होते। इस में भी प्रकृति के ही समान विस्तार, क्षोभ, परिवर्तन, परिणाम होते, तब तो इसके भी गुणों के महत्त्व का प्रकृति से भी बढ चढ कर वर्णन करते, परन्तु जब वह कूटस्थ, निष्क्रिय, असंग, अपरिणामी, निर्विकार, निर्गुण है, क्या इसको आप थोडा महत्त्व समझते हैं, कि ऐसा होते हुए भी इसके निमित्त से प्रकृति सब कुछ करने में समर्थ हो जाती है। यह सब इसी की महिमा है, इसी का प्रताप है। इसका सब कार्यों के साथ सर्वत्र रहता है। यह आराध्य तो उस राजा के समान है, जो राजमहल में सुख आराम से बैठा है। परन्तु शत्रु के साथ सैनिक लड रहे हैं, मर रहे हैं, कष्ट उठा रहे हैं, दुःख भोग रहे हैं। परन्तु विजय पराजय राजा की मानी जाती है। राजा में इसका आरोप होता है, कि राजा की विजय हो गयी, या राजा हार गया। इसी प्रकार ब्रह्म को केवल निमित्त बना कर प्रकृति ही सब कुछ करती है। परन्तु आरोप ब्रह्म पर कर दिया जाता है। इस का यह बडा भारी महत्त्व है, कि असंग और निष्क्रिय होते हुए भी जड प्रकृति को चेतन की तरह चेतनवत बना दिया, जिसमें वह सब कुछ करने में समर्थ हो गयी, फिर इस को स्वयं कुछ करने की क्या जरूरत है। यदि इस का सान्निध्य न होता तो यह दृश्यमान संसार भी न होता। यह सब इसी ब्रह्म की महिमा और महत्त्व है।

धर्म मेघ समाधि के द्वारा सर्व वृत्ति निरोध करने ज्ञान जेय योगी को सर्व वन्दनीया भगवती मातृवत् उपकारिणी इस प्रकृति देवी के अन्दर इस ब्रह्म की उपासना और ज्ञान करना चाहिए। इस को उसका शरीर मानकर, अर्थात् इसमें इसका आरोप करके ब्रह्म की उपासना और विज्ञान प्राप्त करना चाहिये। इस भगवती के जिस भी देश में योगी का ध्यान जाये, वहां ही इस ब्रह्म की भी प्रतीति, अनुभूति हो। कोई भी ऐसा देश, कोई

भी ऐसा स्थान, कोई भी ऐसा पदार्थ देखने में न आवे जहाँ ब्रह्म न हो अर्थात् सर्व देशों में, सर्व पदार्थों में, सर्व लोकों में, सर्व कालों में, सर्व दिशाओं में ब्रह्म की अनुभूति हो, ब्रह्म का साक्षात्कार हो। इस ब्रह्म की महिमा उपनिषत् इस प्रकार वर्णन करती है। यथा—

'तत पर ब्रह्म पर बृहन्त यथा निकाय सर्व भूतेषु गूढम्।
विश्वस्यैक परिवेष्टितारमीश त ज्ञात्वाऽमृता भवन्ति॥

श्वेताश्वतर० अ० ३। म० ७॥

—इस प्रकृति से परे परब्रह्म है। जो अत्यन्त महान् है। जो सर्व भूतों और प्रकृति में सूक्ष्म होने से छिपा हुआ है। अकेले उस भगवान् ने ही सम्पूर्ण विश्व को अपने अन्दर लपेटा हुआ है। अपने अन्दर धारण किया हुआ है। उस सम्पूर्ण ऐश्वर्य और विश्व के मालिक भगवान् को जानकर सब मनुष्य और देव अमृत रूप हो जाते है। मोक्ष को प्राप्त कर आनन्द का उपभोग करते है।

निराकार ब्रह्म का दर्शन

प्रश्न—जब ब्रह्म निराकार है तो इसको बिना आकार के कैसे देखें ?

उत्तर—चिन्ता, शोक, दु ख हर्ष, सुख का क्या आकार है ? तुम्हारे देखने में आता है ? इनका आकार न होते हुए भी तुम्हें इनकी अनुभूति तो होती है। ये अन्दर प्रतीती का अनुभव का विषय तो बनते है, इसी प्रकार निराकार ब्रह्म भी तुम्हारी, प्रतीति, अनुभूति, प्रत्यक्ष और साक्षात्कार का विषय बन सकता है। यदि उस को अपने अन्दर देखना चाहो तो अन्दर भी अनुभव का विषय बन सकता है, और कारण रूप प्रकृति के अन्दर देखना चाहो तो उसमें भी अनुभव का विषय बन सकता है। उसमें व्याप्य व्यापक भाव सम्बन्ध से सर्वत्र व्यापक है। प्रकृति अनन्त है, जहाँ भी तुम्हारी दिव्य दृष्टि ध्यान की जायेगी वहा ही ब्रह्म भी दृष्टिगोचर होगा, क्योंकि ब्रह्म इस से भी महान् और अनन्त है। ब्रह्म प्रकृति की अपेक्षा अनन्त और सूक्ष्म है, तब ही इसका व्याप्य व्यापक भाव सम्बन्ध बनता है। यथा सांख्यसूत्रम्—

'सर्वत्र कार्य दर्शनाद्विभुत्वम्।' अ० ६। सू० ३६॥

—*सब जगत् संसार में प्रकृति के कार्य देखने में आते हैं। सब लोकों में, सब दिशाओं में,* सर्व कालों में इस के विकार देखने में आते है, *इसलिए इसे विभु माना गया है।*' परन्तु इस की यह विभुता सापेक्ष माननी चाहिये। वास्तव में निरपेक्ष विभुता तो ब्रह्म की ही है। इस प्रकृति को कार्यमय विकारवान् होने से भी इस की विभुता की, या मूल कारणत्व की हानि नहीं होती है। जैसे अनीश्वर वादी परमाणुओं को नित्य और अविकारी मानते हैं, और फिर वे संघात को प्राप्त होकर सृष्टि की रचना करते हैं उनकी मूल कारणता का विनाश नहीं होता है। इसी प्रकार इस की मूलकारणता का कभी भी विनाश नहीं होता है। इस में विभुता इसके कार्यों की अपेक्षा से है। न कि ब्रह्म की अपेक्षा से। ब्रह्म की विभुता निरपेक्ष है। इस विषय में उपनिषत् ब्रह्म की महत्ता और विभुता का वर्णन इस प्रकार करती है। यथा—

'महान्त विभुमात्मान मत्वा धीरो न शोचति।'

कठ० अ० २। व० १ म० ४॥

—सब से बड़े, सर्व व्यापक ब्रह्म का साक्षात्कार करके विद्वान् धीर योगी सर्व प्रकार के चिन्ता, शोक, दुःख आदि से रहित हो जाता है।' जैसे अग्नि प्रत्येक पदार्थ के अन्दर ठहरी हुई है और उस पदार्थ का ही रूप बनी हुई है। इस प्रकार वह ब्रह्म भी सर्व पदार्थो मे व्यापक भाव से रहकर उन्ही पदार्थो का रूप बना हुआ है, इसी कारण उस की अनुभूति सर्व पदार्थों मे होती है। उपनिषत् ने और भी कहा है। यथा—

'एकस्य हसो भुवनस्य मध्ये स एवाग्नि सलिले सन्निविष्टः।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्थाविद्यतेऽयनाय ॥

—एक शुद्ध पवित्र ब्रह्म संसार के मध्य मे ऐसे व्याप्त होकर ठहरा हुआ है, जैसे जल में अग्नि व्याप्त हो जाती है। इस व्याप्त ब्रह्म को योगी जानकर जन्म मरण के बन्धन से मुक्त हो जाता है।

योगी को चाहिए, कि कारण रूप प्रकृति को लक्ष्य बनाकर धर्म मेघ द्वारा ब्रह्म का साक्षात्कार करे, क्योकि पदार्थ सब से अन्तिम ब्रह्म के साक्षात्कार का है। इसमे निराकार होते हुए भी ब्रह्म साकार रूप मे अनुभव होगा। यहाँ साकार से अभिप्राय यह नही है, कि वह वास्तव मे आकार वाला है। यह तो केवल समझाने के लिए कल्पना के रूप मे साकार शब्द का प्रयोग किया गया है। वरना हम ब्रह्म को आकार वाला नही मानते हैं; इसे हम निराकार सर्व प्रकार की प्रतिमाओ से रहित ही मानते हैं। तथा च मन्त्र :—

'नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्चं न मध्ये परिजग्रभत्।
न तस्य प्रतिमास्ति यस्य नाम महद्यशः॥

श्वेताश्वतर० अ० ४। म० १९॥

—यह मन्त्र यजुर्वेद मे भी आता है।

—वह ब्रह्म या ईश्वर, न तो ऊपर की दिशा में है, न नीचे की दिशा मे, न मध्य मे वर्तमान है। अर्थात् न अन्तरिक्ष मे न भूमि के नीचे और न बीच में ही ठहरा हुआ है। न तस्य प्रतिमा अस्ति=उस ब्रह्म की कोई मूर्ति भी नही है। जिसमे हम कहीं स्थानविशेष मे, या मूर्ति विशेष मे उसकी आराधना करे। नीचे-ऊपर और मध्य मे भी उसका निषेध किया है। परन्तु उस ब्रह्म का यश बहुत बडा भारी बनाया है, क्योकि वह सर्वव्यापक, अनन्त और महान् है।'

यहा भेद होते हुए भी अभेद रूप से अनुभव होगा, क्योकि वह इससे अलग होकर अनुभूति का हेतु नही हो सकता, और इसमे अलग वह कभी होता भी नही है क्योकि सर्व व्यापक है। अत. इसी मे इसका अन्तिम साक्षात्कार होता है।

समष्टि कारण प्रकृति
द्वितीय रूप में ब्रह्म-विज्ञान
(समष्टि कारण प्रकृति का द्वितीय रूप)

२. समष्टि कारण प्रकृति के स्वरूप मे—

प्रकृति के दो धर्म ज्ञान और क्रिया इसमे कभी पृथक् नही होते हैं। अतः इनका धर्म धर्मी रूप से अभेद है। इसको स्वरूप सम्बन्ध कहते हैं। ये दोनो धर्म इसी के

सर्व प्रथम परिणाम मे प्रकट होते है । ये ही सूक्ष्म रूप से प्रलय काल मे भी इसके अन्दर वर्तमान रहकर सामान्य रूप मे सूक्ष्म क्रिया को करते रहते है । विशेष रूप से तो परिणाम काल मे इनका प्रादुर्भाव होता है। इन गुणो को लेकर प्रकृति अपने कार्यो की रचना करती है। कार्य रचना मे ये इसके सहायक होते है।

प्रकृति की इन दोनो अवस्थाओ मे—कारणरूप मे और जब ये ज्ञान क्रिया इसमे प्रकट हो उस परिणाम अवस्था मे ब्रह्म का और इन अवस्थाओ का विज्ञान करना चाहिए। ये ही अवस्थाये विज्ञान के लिए शेष रहती है। इनमे ब्रह्म की सूक्ष्म रूप से स्थिति का अनुभव करना चाहिए। यह भी प्रत्यक्ष करे कि ज्ञान और क्रिया किस प्रकार प्रारम्भ होती हैं, तथा प्रलय काल मे वर्तमान रहती हैं।

प्रश्न—यदि ज्ञान को भगवान् की देन मान ले, क्योकि वह है ही ज्ञान स्वरूप, और क्रिया धर्म प्रकृति का मान ले तब क्या आपत्ति है ?

उत्तर—भले ही आप अपने समझने के लिए ज्ञान को भगवान् की देन मान लें, परन्तु यह विना विकार या परिणाम के ब्रह्म का हो तो कोई हानि नही है। परन्तु यह ज्ञान रूप शक्ति उत्पन्न प्रकृति मे ही होती है। क्योकि प्रकृति के इस ज्ञान गुण ने ही ससार के सब कार्य सिद्ध करने हैं। प्राणियो को भोग और मोक्ष प्रदान करना है। अत ज्ञान और क्रिया दोनो ही प्रकृति के गुण विशेष हैं। ब्रह्म के नही। ब्रह्म के सन्निधान से प्रकृति मे प्रकट हुए हैं। ये गुण इसके स्वाभाविक ही हैं। ब्रह्म मे कोई गुण जाता आता नही है। हाँ इसके सम्बन्ध से प्रकृति मे अनेक गुण उत्पन्न हो जाते हैं क्योकि यह परिणामिनी है। विकार वाली है। कारण रूप से नित्य और कार्य रूप से अनित्य है।

प्रकृति की साम्यावस्था का प्रत्यक्ष

(शंका) साम्यावस्था को हम कैसे प्रत्यक्ष कर सकते है, प्रलय काल मे जब इसकी साम्यावस्था आयेगी, तब तो हम होगे ही नही।

(समाधान) यह प्रकृति दो अवस्था मे वर्त्तमान है।

१. एक अवस्था कार्यो के रूपो मे है, जो अनेक कार्य हैं, इन सब रूपो मे।

२ कारण रूप अवस्था है जो सदा रहती है।

प्रलयकाल की अवस्था मे तो केवल इसके कार्यो का ही तो अभाव होता है। कारण रूप यहाँ बना रहता है। वह कारण रूप अब भी है। आप कार्यो की ओर ध्यान न देकर, इनका अभाव समझकर केवल कारण अवस्था को ही देखे। यह कारण अवस्था प्रलय काल मे और सृष्टि काल मे एक समान ही रहती है। कार्यो के अभाव मे इस अवस्था को साम्य अवस्था कह देते हैं। अत आप इसकी वर्तमान कारण अवस्था को ही साक्षात् करें। यह प्रलय कालीन अवस्था के ही समान है। इसके कार्यो मे ऊपर उठकर सूक्ष्म कारण अवस्था मे पहुँचे, जहाँ केवल ब्रह्म से प्राप्त हुई सामान्य क्रिया ही इसमे देखने मे आवेगी। उसको ही आप साम्य अवस्था समझ लेना। चित्र सख्या १७ मे देखें।

चित्र सख्या १७ के विवरण मे प्रकृति की साम्य अवस्था को दिखाया गया है। इसमे ब्रह्म के सान्निध्य से या सन्निधान मे सूक्ष्म रूप से प्रलय काल की साम्य अवस्था मे भी सूक्ष्म सी क्रिया बनी

आगे पृष्ठ ४५१ पर

प्रश्न—जब साम्य अवस्था अब भी वर्त्तमान है तो सृष्टि और प्रलय में क्या अन्तर हुआ ?

उत्तर—अब कार्य रूपों वाली भी है, प्रलय काल मे कार्यों का अभाव हो जाता है। आप इसको इस दृष्टान्त से समझें। एक माता है, वह अनेक बच्चो को जन्म देकर भी आप मौजूद बनी रहती है। बच्चे पैदा कर के अपने स्वरूप को तो नही खो देती या समाप्त कर देती है। माता अपने स्वरूप को न मिटाकर भी वर्त्तमान रहती है। जैसे बालक पैदा होने से पहले वर्त्तमान थी। बालक पैदा कर के भी वर्तमान रहती है। इसी प्रकार भगवती प्रकृति देवी अनन्त कार्यो को उत्पन्न करके भी अपने स्वरूप को नष्ट नही करती। अपने आप को नही मिटाती। अपने स्वरूप से वर्तमान रहती है। वही स्वरूप इसका कारण रूप या साम्यावस्था है। समाहित चित्त योगी को सम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था मे इस कारण रूप सूक्ष्म साम्यावस्था मे प्रवेश करके इसके वास्तविक स्वरूप का साक्षात्कार करना चाहिए। इसकी सूक्ष्मता में ब्रह्म की सूक्ष्मता का भी प्रत्यक्ष करना चाहिए। पुन: यह भी प्रत्यक्ष करें कि यह सर्ववन्दनीय अन्तर्यामी भगवान् किस प्रकार इसकी सूक्ष्मता मे अपनी सूक्ष्मता से घुल मिलकर कैसे इसे जीवन सा प्रदान कर रहा है। चेतना सी दे रहा है। बल्कि क्रियावती बना रहा है और ज्ञान रूप वाली अपनी सहचरी बना रहा है। बस यह है अन्तिम विज्ञान जो प्रकृति पुरुष विवेक कहलाता है। जहाँ पहुँचकर जन्म जन्मान्तरो का पुरुषार्थ सफल होता है। यहाँ पहुँचकर कृत कृत्यता प्राप्त होती है। मनुष्य जन्म की सफलता उपलब्ध होती है। जन्म जन्मान्तरो की भटकना, तृष्णा शान्त हो जाती है। मानव जीवन का यथार्थ उद्देश्य पूर्ण हो जाता है। इनका साक्षात्कार हो जाने पर सब कर्त्तव्य समाप्त हो जाते है। आवागमन का चक्र समाप्त हो जाता है। ब्रह्म ज्ञान की अभिलाषा पूर्ण हो जाती है। सर्व कामनाये कुण्ठित होकर अपने कारण मे विलीन हो जाती है। आत्मा अनेक जन्मों के दुःखो और बन्धनो से मुक्त हो जाता है। यथा—

"अथ मर्त्योऽमृतो भवो भवत्येतावद्ध्येवानुशासनम्।"

—अपने प्रिय शिष्य नचिकेता को उपदेश देते हुए आचार्य श्रीयम ने यह वचन कहे थे—'हे प्रिय ! सौम्य ! ब्रह्मचारिन्। ब्रह्म-विज्ञान हो जाने के पश्चात् अमृत रूप हो जाता है। मुक्त हो जाता है। इतनी ही हमारी शिक्षा है। इतना ही उपदेश है।'

यह आत्म-विज्ञान और ब्रह्म-विज्ञान ही इस मानव जीवन का उद्देश्य है। इसीलिए यह मनुष्य शरीर प्राप्त होता है। इस मानव जीवन की सार्थकता सिद्ध होती है। उपनिषत् ने कहा है—

रहती है। अत्यन्त मन्दतम सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतम प्रकृति मे कम्पन होते रहते हैं। ब्राह्मी चेतनसत्ता का नित्य व्याप्य व्यापक भाव सम्बन्ध होने से। किञ्चित पति से वरण मे श्वेत कम्पन्न दिखाए गए है। इन श्वेत सूक्ष्म कम्पनो मे मानो ब्रह्म का ही साक्षात रूप मे प्रत्यक्ष हो रहा है। ब्रह्म की चेतन सत्ता की अनुभूति हो रही है। यहाँ पहुँचकर योगी की मंजिल समाप्त हो रही है प्रकृति पुरुष के साक्षात रूप मे दर्शन होकर कृत कृत्यता और मानव जीवन की पूर्ण सफलता प्राप्त हो रही है। अपने मञ्जिले मक्सूद पर योगी पहुँच गया है। सर्व दुखो और क्लेशो से मुक्त होकर मोक्ष मे स्थिति हो गई है।

'इह चेदवेदीयाथ सत्यमस्ति, न चेदिहावेदीन्महती विनष्टि ।०
केन० ख० २ । म० ५ ॥

—यह मानव शरीर प्राप्त करके ब्रह्म ज्ञान प्राप्त कर लिया तब तो बहुत श्रेष्ठ है । यदि नही किया तो महान् विनाश कर लिया । मानव जीवन को पशुतुल्य भोगात्मक व्यतीत करके इस लोक से गमन किया है । कितनी शर्म, लज्जा और खेद की बात है ।'

३. सूक्ष्म रूप—इस प्रकृति के तीन ही रूप बनते है । सूक्ष्म रूप इसलिए नही कि इसका कोई और उपादन कारण नही । यह स्वय ही अन्तिम मूल कारण है ।

४ चतुर्थ अन्वय रूप—भी सिद्ध नही होता इसके ऊपर या और कोई उपादान कारण शेष नही रहा है । जिसके धर्मो का इसमे अनुपतन होता । अत अर्थवत्ता का वर्णन करते है ।

समष्टि कारण प्रकृति

पञ्चम रूप में ब्रह्म-विज्ञान

(समष्टि कारण प्रकृति का पञ्चम रूप)

५ समष्टि कारण प्रकृति के अर्थवत्त्व रूप मे—

प्राणियो के भोग और अपवर्ग के लिए ही यह सृष्टि की रचना करती है । अपने कार्यों के द्वारा भोग और मोक्ष प्रदान करने के लिए, एव जीवो के महान् उपकार के लिए प्रवृत्त होती है । यही इसकी विशेष अर्थवत्ता है ।

योग भाष्यकार ने कारण रूप प्रकृति को अलिंग प्रकृति के रूप मे वर्णन किया है । साधन पाद सूत्र २० पर 'विशेषोऽणि शेष' इत्यादि के भाष्य मे लिखा है । 'अलिंग अवस्था मे पुरुषार्थता हेतु नही है । अत. त्रिगुण मे ही पुरुषार्थ हेतुता आती है । परन्तु साख्य दर्शनकार ने अलिङ्ग प्रकृति को भी पुरुषार्थ हेतुता के रूप मे स्वीकार किया है ।

'ततः प्रकृतेः' । अ० १ । सू० ६५ ॥
'संहत परार्थत्वात्पुरुषस्य' । अ० १ । सू० ६६ ॥
'मूले मूलाभावादमूल मूलम् ।' अ० १ । सू० ६७ ॥

ये ६६वें सूत्र पर वृत्तिकार और भाष्यकार ने लिखा है—'अलिङ्ग प्रकृति अपने कार्यों के साथ मिलकर पुरुषार्थता की हेतु होती है ।' अत हमे भी यह साख्य सिद्धान्त अभीष्ट है । क्योकि कारण रूप प्रकृति अपने कार्यो के साथ अवश्य रहती है । जैसे स्वर्ण भूषणो मे भी रहता है । इसी प्रकार कारण रूप प्रकृति अपने कार्यो के साथ भी रहकर पुरुषार्थ, परार्थ, अथवा अर्थवत्ता का हेतु होती है । हाँ ! जब प्रलय काल की अवस्था होती है, तब तो स्थूल शरीर ही नही होते है । तब भोग और अपवर्ग किसने प्राप्त करना है । यदि भाष्यकार व्यास का भी केवल इतना ही प्रलय काल का ही अभिप्राय हो तब इसका कथन भी सत्य हो सकता है ।

हरिप्रसाद वृत्तिकार का पाठ—'सहतपरार्थत्वात्'=परस्पर-मिलिताना प्रकृति तत्कार्याणा परार्थत्वात् । स्वेतर भोगापवर्ग प्रयोजन कत्व परार्थत्वम् । तस्मात पर—प्रयोजनकत्वात् पुरुषस्य=प्रकृत्यादिभ्य परस्य भोक्तु. पुरुषस्य इत्यादि ।

विज्ञान भिक्षु भाष्यकार—'सहननमारभक-सयोग। स चावयवावयव्य भेदात् प्रकृति-कार्य-साधारण तथा सहताना प्रकृति तत्कार्याणामिति भाष्यम्। वास्तव मे अर्थ-वत्ता प्रकृति मे ही है। इसके कार्यों मे तो होनी ही हुई। जो कारण मे गुण होते हैं, वे कार्यो मे भी होते है। यदि उपादन कारण मे कोई गुण न हो तो कार्य मे कहाँ से आयेगा। हम तो कारण का कार्य मे साथ होना भी तो अनिवार्य समझते है।

प्रकृति और पुरुष अर्थात् आत्मा और परमात्मा का विवेक हो जाने से पर भी मोक्ष के प्रति परम वैराग्य की आवश्यकता है। परम वैराग्य अनिवार्य तथा मुख्य हेतु है।

मुक्ति के लिये परम वैराग्य

अनादि काल से प्रकृति और आत्मा का सम्बन्ध भोक्तृत्व रूप चला आ रहा है। प्रकृति और पुरुष विवेक हो जाने पर भी जो प्रकृति के भोग के रागात्मक सस्कार चले आ रहे है, अभी पूर्ण रूप से उनका क्षय नही हुआ है केवल यह ज्ञान हुआ है कि यह प्रकृति है, और यह मेरा स्वरूप है। वास्तव मे इसको तुच्छ या हेय समझ कर इस से सदा के लिये उपराम होना, विरक्त होना या ब्रह्म के स्वरूप मे स्थित होना ही इस से सदा के लिए सम्बन्ध तोडना है। उस अवस्था म इस प्रकार के व्युत्थान और निरोधात्मक सस्कारो का प्रवाह नही चलता है। अभी तो कभी व्युत्थानात्मक प्रकृति के राग के सस्कार उदय होना चाहते हैं, उनका निरोध करना होता है। यहाँ भोग देने-लेने की कोई बात नही, केवल मात्र चित्त के व्युत्थान और निरोध सस्कार की बात है। अत अब अन्त मे असम्प्रज्ञात समाधि द्वारा इस प्रकार का अभ्यास करना है कि व्युत्थानात्मक ससकार कभी उत्पन्न न हो। अपने कारण मे विलीन हो जायें। प्रकृति का मान भी सर्वथा जाता रहे। केवल नितान्त स्वरूप मे स्थिति हो जाये अत सर्ववृत्ति का अभाव करना है। योग सूत्र। यथा

'विराम प्रत्ययाभ्यास पूर्वं सस्कार शेषोऽन्य ' स पाद० सू० १८॥

—सर्ववृत्ति के प्रत्यय (ज्ञान) के लय होने पर केवल सस्कारो का निरोध चित्त की समाधि है वह असप्रज्ञात समाधि है।' इसका परम वैराग्य उपाय है। इसे इस प्रकार समझें।

विराम वितर्कादि समाधि मे जो अनुभव किया था, उन सब वृत्तियो का जो अभाव वह है कारण जिसका—वह कारण है परम वैराग्य, इसका जो पुन -पुन अभ्यास इससे धर्म मेघ-समाधि होती है। जिसमे तम रज के मल और इनके विषय के त्याग से स्वरूप मे या ब्रह्म के स्वरूप मे प्रतिष्ठा हो जाती है। जोकि निरालम्ब होती है। केवल सस्कारमात्र ही शेष रहते हैं। आलम्बन रहित होने से, जिस से क्लेश कर्म का नाश होने से निर्बीज समाधि होती है। इसे ही निर्बीज असम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं। इसमे सर्व प्रकार की वृत्ति और सब सस्कारो का अभाव होकर स्वरूप म अथवा ब्रह्म मे स्थिति होती है। अत इससे सिद्ध होता है, परम वैराग्य ही अन्त मे मोक्ष का हेतु होता है। इस विषय मे उपनिषत् का कथन भी है। यथा—

'संसार वासना जाले, खगजाल इवा घुना।
त्रोटिते हृदय-ग्रन्थौ श्लथे वैराग्य रहंसा॥
म० अ० ५। मं० ६५॥

—यह संस्कार और वासनायें पक्षियो के जाल के समान जीवात्मा के लिये बने हुए हैं। परम वैराग्य द्वारा ही हृदय मे इनकी ग्रथिया टूट जाती हैं, और आत्मा मुक्त हो जाता है।'

अतः परम वैराग्य द्वारा प्रकृति और इसके कार्यमात्र के संस्कारो का अभाव करना चाहिये, जो वृत्त्यात्मक है अर्थात् वृत्तियो को पैदा करते है यह सारा दृश्यमान ससार ही वृत्तियो के अन्तर्गत आ जाता है। सर्व वृत्ति निरोध होने पर केवल संस्कार-मात्र ही शेप रह जाते है। इनको परम वैराग्य और अभ्यास से ही निरोध किया जाना है। इस पर उपनिषत् कहती है। यथा—

'जन्मान्तर शताभ्यस्ता मिथ्या संसारवासना।
सा चिराभ्यास योगेन विना न क्षीयते क्वचित्॥
मुक्तिक० अ० २। नं० १४।

—अनेक सैकडो जन्मों से ससार या जीवन के प्रति मिथ्या वासनाओं का अभ्यास हो गया है। बहुत काल पर्यान्त निरन्तर योगाभ्यास के द्वारा ही योगी इनका विनाश कर सकता है।'

ये वासनाये या संस्कार चित्त मे ही होते हैं, परन्तु आत्मा व्यर्थ मे अभिमान कर वैठता है, और इनसे अपने को वद्ध समझने लगता है। तथा च सांख्य सूत्र—

'जपास्फटिकयोरिव नो परागः किन्त्वभिमानः॥ अ० ६। सू० २८॥

—जपा फूल और मणि को पास-पास रखने से वह मणि भी फूल के रंग की भासने लगती है। इसी प्रकार चित्त के ससर्ग से पुरुष में वासनाओं का उपराग नहीं होता किन्तु अभिमान सा हो जाता है। इसलिये अगले सूत्र मे कहा है। यथा—

'धारणा ध्यानाभ्यास वैराग्यादिभिस्तन्निरोधः।' अ० ६। सू० २९॥

—इन वासना या-संस्कारों का निरोध धारणा, ध्यान, समाधि, अभ्यास, वैराग्य आदि साधनों से होता है।

दृष्ट विषय अर्थात् आदिव्य, वर्तमान स्थूल भूतों के विपय, और आनु श्रविक अर्थात् दिव्य स्वर्ग के भोग इन दोनो से वैराग्य हो जाने को वशीकार संज्ञा वैराग्य कहते है। इसके पश्चात् प्रकृति के सर्व प्रथम कार्यों से वैरग्य हो जाने को परम वैराग्य कहते है। यथा—

'तत्परं पुरुष ख्यातेर्गुण वैतृष्ण्यम्।' योग० स० पा० सूत्र० १६॥

—दिव्य अदिव्य विपयों में दोप देख कर विरक्त हुए पुरुप की बुद्धि पुरुप दर्शन के अभ्यास से विवेक द्वारा तृप्त हो जाती है और तीनों गुणों और इनके व्यक्त अव्यक्त धर्मों से विरक्त हो जाती है। ये दो प्रकार के वैराग्य है।

१. वशीकार संज्ञक अपर वैराग्य है।
२. तीनों गुणों से विरक्ति पर वैराग्य है।

इस पर वैराग्य से ज्ञान-प्रसाद उत्पन्न हो कर विवेक ख्याति पैदा होती है । अर्थात् प्रकृति पुरुष विवेक ख्याति के हो जाने पर यह विवेक ख्याति ही धर्म मेघ समाधि कहलाती है । तब योगी यह समझता है कि मैंने जो कुछ प्राप्त करना था, वह प्राप्त हो गया है । जो क्लेश क्षीण करने थे, वे भी नष्ट हो गये है । धर्माधर्म के द्वारा जन्म मरण का जो भव सक्रमण-ससार चक्र था वह भी छिन्न भिन्न हो गया । इस विच्छेद से जन्म लेकर मरना और मर कर फिर उत्पन्न होना यह भी समाप्त हो गया है । यथा—

'ज्ञानस्यैव पराकाष्ठा वैराग्यम् ।'

—ज्ञान की परा काष्ठा को ही पर वैराग्य कहा है । ज्ञान की पराकाष्ठा भी धर्म मेघ समाधि का भेद होने से परम-वैराग्य है, अन्य नही । तथा च सूत्रम्—

'प्रसख्याने प्यकुसीदस्य सर्वथा विवेकख्याते धर्ममेघ समाधि ॥'

योग० कैवल्यपाद० सूत्र २९ ॥

—प्रसख्यान कहते हैं विवेक को, इसके उत्पन्न होने पर इस से वैराग्य हो जाता है। अधिष्ठातृत्व आदि की भी इच्छा नही करता है, अर्थात् कुछ भी तो भगवान् से प्रार्थना नही करता । कुछ भी प्राप्त करने की इच्छा नही होती है । सर्व प्रकार से विरक्त हो जाता है । इस विरक्त हुए योगी को पूर्णतया विवेक ख्याति हो जाती है । सस्कारो के बीज के नाश होने पर फिर इसमे और किसी भी प्रकार के प्रत्यय उत्पन्न नही होते हैं, तब इस मे धर्म मेघ नाम की समाधि उत्पन्न होती है । यथा च—

'धर्म मेघमिम् प्राहु समाधि योग वित्तम. ।
वर्वत्येपयतो धर्मामृतधारा सहस्रश ॥

—योग मे पारगत योगी लोग उसको धर्म मेघ ममाधि कहते है । जिसमे धर्म को या भगवान् के आनन्द की हजारों धारायें बरसती है ।'

यह है परम वैराग्य का अन्तिम फल । जिसे प्राप्त कर योगी कृतकृत्य हो जाता है ।

(प्रश्न) क्या इस समाधि के पश्चात् यह स्थूल शरीर समाप्त हो जाता है । या वह योगी जीवन्मुक्त हो कर रहता है ?

(उत्तर) 'चक्र भ्रमणवद् धृत शरीरा ।' साख्य० अ० ३ । सू० ८२॥

इस ज्ञात ज्ञेय योगीश्वर का शरीर जिन प्रारब्ध कर्मों को लेकर उत्पन्न हुआ था, उनके समाप्त होने तक जीवनमुक्त होकर ठहरता है, क्योकि इसने उन प्रारब्ध भोगो के समाप्त होने से पूर्व ही विवेक और परम वैराग्य प्राप्त कर के मुक्ति प्राप्त कर ली है । यदि यह शरीर भोगवश रहता भी है तो इसके बन्ध का हेतु नही होता है । प्रारब्ध के सस्कारलेश से यह जीवन मुक्त होकर ठहरा रहता है । भोग द्वारा प्रारब्ध कर्म समाप्त होने पर विवेक द्वारा सम्पूर्ण दु खो की निवृत्ति होने पर कृतकृत्य होकर, शरीर को त्याग मोक्ष मे स्थिति हो जाती है ।

(शका) क्या यह मुक्त आत्मा किस लोक विशेष मे किसी विशेष मार्ग द्वारा जाकर ठहरता है, जैसा सूर्य चन्द्र आदि लोको का वर्णन आता है ?

(समाधान) इसके गमन का मार्ग हम ३३ पदार्थो मे कर चुके हैं। ३२ कार्यात्मिक पदार्थ और एक कारणात्मक प्रकृति, इनमे से होकर ही इसे जाना पड़ता है, अर्थात् ये ही ३३ लोक हैं जिनमे से होकर इस आत्मा को जाना पड़ता है। इन ३३ के पश्चात् एक ब्रह्म लोक ही अवशिष्ट रहता है। इस ब्रह्म लोक मे आकर मुक्त आत्माये वास करती हैं। ज्ञान द्वारा मोक्ष में गमन करने के ३३ लोक चित्र स० १८ मे देखें।

इन ३३ पदार्थो, इनके विज्ञान और इनमे ब्रह्म-विज्ञान का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। आत्म-विज्ञान का हमने 'आत्म-विज्ञान' ग्रथ मे विस्तार से वर्णन किया है। सामान्य रूप से इस ब्रह्म-विज्ञान ग्रन्थ मे भी कर दिया है।

(शका) आपने प्रकृति के कार्य, प्रकृति तथा ब्रह्म के साक्षात्कार के पश्चात् इनके विज्ञान की अपेक्षा परम वैराग्य को क्यो विशेष महत्त्व दिया है, जब कि सब विद्वान् इनके विज्ञान को ही मोक्ष कहते है ?

(सामाधान) जिस प्रकार प्रकृति और इसके कार्यो का अनुराग बन्धन का हेतु बना रहा, इसी प्रकार ब्रह्म मे अनुराग होने से ब्रह्म भी ब्रह्मलोक मे बन्धन का हेतु बना रहेगा। अत दोनो ही प्रकार के अनुराग इस परम वैराग्य द्वारा समाप्त कर के सब से मुक्त होना है। अब ब्रह्म का अनुराग भी बन्धन का हेतु अनुभव होता है। इस से भी मुक्त होना चाहते हैं। अत परम वैराग्य ही मोक्ष का मुख्य साधन है।

इति समष्टि कारण प्रकृति मण्डलम्।

इति चतुर्थाध्याये सप्तम. खण्डः।

इति चरममावरणम्।

इति चतुर्थाध्याय. समाप्तः॥

चि० स० १८—इस चित्र मे ब्रह्म से लेकर पृथिवी महाभूत तक ३४ पदार्थों के रंग-रूप दिखाए गए हैं बाहर का सर्व प्रथम मण्डल श्वेत रग का ब्रह्म का है और अन्त मे सब के मध्य में पृथिवी का है इन सब के नाम चित्र नबर एक के विवरण (पृष्ठ ४) मे लिख दिये हैं वहाँ पर देखलें। यहाँ पर सब के अन्दर गर्भ मे सूक्ष्मता के कारण ब्रह्म को दिखाया गया है। वहाँ सब से बाहर पृथिवी महाभूत फिर जल, अग्नि आदि के मण्डल क्रम पूर्वक दिए हैं प्रत्येक मण्डल का रग उसके अनुरूप है। एव प्रकार ये मोक्ष मे गमन करने के लोक हैं इन सब मे से होकर ब्रह्म लोक मे पहुँचता है।

चित्र सं० १८
ब्रह्म से समष्टि पृथिवी महाभूत पर्यन्त ३४ पदार्थों का स्वरूप

पञ्चम अध्याय
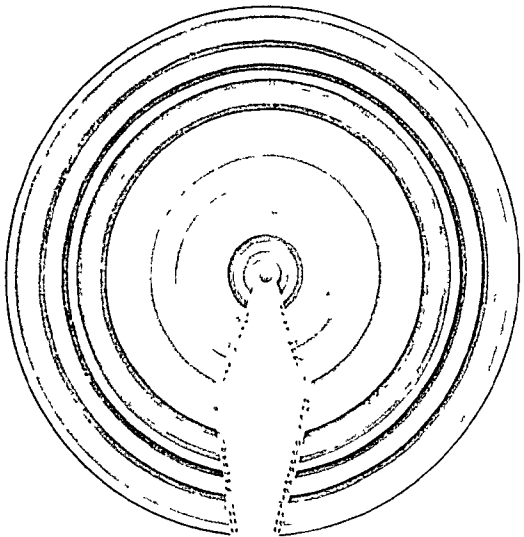
मोक्ष अथवा कैवल्य

मोक्ष और कैवल्य के विषय मे आचार्यों के भिन्न-भिन्न विचार एवं मान्यत हैं। इस विषय मे अनेक प्रकार वाद भी हैं। पर यह तो निर्विवाद है कि किसी ने मोक्ष का प्रत्यक्ष देखा समाचार इस लोक मे आकर नही बताया है। परोक्ष का वि होने से अनुमान के आधार पर भिन्न-भिन्न कल्पनायें ही की गयी है।

प्राचीनकाल के महापुरुष अपने ग्रंथो मे इस विषय मे बहुत कुछ लिख गये और वर्तमान के भी लिख रहे हैं, कुछ प्राचीनो के आधार पर कुछ अपने अनुभव आधार पर भविष्य मे भी लिखते रहेगे।

वर्तमान के प्रत्यक्ष भौतिक विज्ञानवादी चेतन आत्मा के होने से ही नक कर रहे हैं, क्योकि इन के सूक्ष्म या दूर किसी भी वीक्षण यन्त्र से आत्मा और परमात्म प्रत्यक्ष देखने मे नही आ रहे हैं। फिर इनके लिए तो मोक्ष या कैवल्य का प्रश्न ही उ स्थित नही होता है। अनात्म वाद के विषय मे बौद्धो के भी बहुत ग्रन्थ मिलते है। आत्म के विषय मे एकत्ववाद और नानात्ववाद के विषय मे भी बहुत से ग्रन्थ है। जिन से मो के विषय मे साधारण पुरुष की बुद्धि भ्रान्त सी हो जाती है। वे नही समझ पाते f कौन-सा सिद्धान्त यथार्थ है और किस को वे स्वीकार करें।

हमारे भूमण्डल पर अनेक प्रकार के सम्प्रदाय हैं। प्राय. देखने मे यही आत है कि जिस सम्प्रदाय के परिवार मे मनुष्य का जन्म होती है, उस को उसी के आधार प शिक्षा दीक्षा प्राप्त होती है। माता-पिता, इष्ट मित्रो और समाज के विचार और संस्कार भी उसी प्रकार के मिलते हैं। वह भी उन्ही को ठीक समझने लगता है। धारणा भी उस की वैसी ही बन जाती है। बुद्धि और कर्त्तव्य भी उसी के अनुसार निर्धारित हे जाते हैं।

बहुत कम व्यक्ति सब सम्प्रदायो मे ऐसे निकलते हैं, जो स्वतन्त्र बुद्धि से सत्या-सत्य का निर्णय करने के लिए दूसरे सम्प्रदायों के विचार या ग्रन्थों का अध्ययन करते हो। उनके साथ अपने विचारों और सिद्धान्तो का सन्तुलन करके यथार्थ निर्णय पर पहुँचते हो। प्राय. सब ही रूढीवाद को ही अपनाये रहते है।

प्राय सब ही सम्प्रदायो के आचार्यो ने अपने विचारों और सिद्धान्तो पर मोहर लगाकर घोषणा कर दी है, कि जो कुछ हमने समझा और लिखा है वह ही यथार्थ है। दूसरों के लिए उस से भिन्न सोचने, समझने, विचारने, या निर्णय करने के लिए अवसर ही नही छोडा है।

विज्ञान अनन्त है, परन्तु मानव ने अभिमान मे आकर इसको एक छोटी-सी एक देशी बुद्धि मे बन्द करने का महान् प्रयत्न किया है। मानो असीम समुद्र को एक क्षुद्र से लोटे मे बन्द कर दिया है। परन्तु ऐसे प्रयास निष्फल से ही सिद्ध हुए हैं।

ससार अनन्त है। उसके बनाने वाला भी अनन्त ही होना चाहिये। जानने वाला ज्ञाता एक देशी है। उसका ५-६ फुट का एक शरीर है। उसमे भी एक बहुत छोटी

सी बुद्धि है। उसके द्वारा उस अनन्त ब्रह्माण्ड का और उसके कर्त्ता का विज्ञान का अन्त या थाह लेना चाहता है। यह इसकी अज्ञता ही कहलायेगी, भूल ही कहलायेगी। इस विज्ञान के एक देश की बात करते तब तो ठीक भी होता, यथार्थ निर्णय भी माना जाता।

अब तक हमने कारण कार्यात्मक समस्त ससार और उसके कर्ता ब्रह्म का वर्णन किया है। प्रकृति और ब्रह्म-विज्ञान के पश्चात् मुक्ति विषयक प्रश्न रह जाता है, कि किस प्रकार की वह मुक्ति है जिसे निकट भविष्य मे प्राप्त करना है, जिसकी प्राप्ति के लिए इस जन्म या अनेक जन्मो से महान् प्रयास किया था।

अब तक हम मोक्ष, मुक्ति, अपवर्ग या कैवल्य का एक ही अर्थ करते आये हैं, परन्तु अब कुछ आचार्यो की मान्यता के आधार पर इसके दो विभाग कर उल्लेख करते है १ मोक्ष २ कैवल्य।

आचार्यो को मान्यतायें

मोक्ष का स्वरूप—मोक्ष के मानने वाले आचार्यगण ब्रह्म लोक मे सूक्ष्म शरीर, साकल्पिक शरीर, या कारण शरीर का होना मानते है। इन शरीरो के विषय मे भी भिन्न-भिन्न मान्यताये है। इनके द्वारा ब्रह्मानन्द का उपभोग मुक्त आत्माये करती हैं। इनमे कुछ आचार्य ब्रह्मानन्द के साथ दिव्य सूक्ष्मविषयो का भोग भी मानते है। भोक्ता जीवात्मा को मानते ह, जो स्थूल शरीर को त्याग कर आत्म सज्ञा या मुक्तात्मा सज्ञा को प्राप्त हो गया है।

मोक्ष की अवधि—कुछ आचार्य तो मानते हैं कि आत्मा को मोक्ष से पुनरावृत्ति होती है। परन्तु अधिकतर आचार्य मोक्ष से पुनरागमन नही मानते है। उनके मत मे वे आत्मायें सदा के लिए मुक्त हो जाती है। जब इन से यह प्रश्न किया जाता है, कि मुक्त होते-होते सब आत्मायें मोक्ष मे पहुँच जायेगी तब तो इस ससार का ही उच्छेद हो जायेगा। इस ससार मे जब भोग और अपवर्ग प्राप्त करने वाला नही रहेगा तब तो इस ससार का भी प्रयोजन न रहेगा। तब इनका समाधान होता है, कि जीव अनन्त हैं। उनकी समाप्ति नही हो सकती। ससार इसी तरह चलता रहेगा।

मोक्ष का स्थान ब्रह्म लोक को मानते है। ब्रह्म लोक के विषय मे भी विभिन्न मान्यतायें है —

एक मान्यता है कि प्रकृति के मण्डल को उल्लघन करके जहाँ केवल ब्रह्म का ही मण्डल शेष है, उसका नाम ब्रह्म लोक है। इसमे मुक्त आत्मायें रहकर ब्रह्म के आनन्द का भोग करती हैं।

२ मान्यता है कि ब्रह्म सर्वत्र है। इस का लोक विशेष मानने से यह एक देशी हो जायेगा, अत ब्रह्म-लोक किसी देश विशेष का नाम नही है।

३. मान्यता है कि ब्रह्म के जिस देश विशेष मे सूक्ष्म दिव्य पच तन्मात्राओ या सूक्ष्म भूतो का भोग हो वह सूक्ष्म दिव्य देश ही ब्रह्म लोक है। जहाँ दिव्य भोगो का उपभोग भी प्राप्त होता है, और ब्रह्मानन्द भी भोगने को मिलता है। वह स्थान इन स्थूल भूतो के प्रदेश से अलग है। दूर है। भिन्न है। केवल सूक्ष्म सृष्टि का ही वहाँ आवास है। वहाँ सूक्ष्म शरीराभिमानी ही निवास करते हैं। इस का नाम ब्रह्म लोक है। इसका दूसरा पारिभाषिक शब्द स्वर्ग भी बताते हैं।

इसके विषय में भी दो प्रकार की मान्यतायें हैं। एक तो इस स्वर्ग लोक या ब्रह्म लोक से पुनरागमन मानते है। दूसरे पुनरागमन नही मानते हैं।

ब्रह्म लोक में चार प्रकार की मुक्ति

यथा—

'मयि सर्वात्मके भावो मत्सामीप्यं भजत्ययम्।
सैव सालोक्य-सारूप्य-सामीप्य मुक्तिरिष्यते ॥ २३॥
गुरूपदिष्ट मार्गेण ध्यायन्मद्गुणम व्ययम्।
मत्सायुज्यं द्विजः समयग्भजेन्द्भ्रमर कीटवत् ॥ २४॥
सैव सायुज्य मुक्तिः स्याद्ब्रह्मानन्द करीशिवा।
चतुर्विधातु या मुक्तिर्मदुपासन या भवेत् ॥ २५॥

मुक्तिको० अ० १॥

१. सालोक्य—सर्वात्मक भगवान् में पवित्र भावना से भगवान् को समीप समझकर, या उसके अत्यन्त निकटवर्ती होकर भगवान् की पूजा, ध्यान या समाधि में दर्शन करना, यही सालोक्य मुक्ति है।

२. सारूप्य -भगवान् के समान रूप या भगवान् के रूप के तुल्य हो जाना सारूप्य मुक्ति है।

३. सामीप्य—भगवान् के अत्यन्त निकट मे वास करना, ठहर जाना इसे सामीप्य मुक्ति कहते हैं।

४. सायुज्य—गुरु के उपदिष्ट द्वारा, भगवान् के गुणों का ध्यान करते हुए भगवान् के साथ मिल जाना, जुड जाना, समाविस्थ हो जाना सायुज्य मुक्ति है।

यह सायुज्य मुक्ति ही ब्रह्मानन्द को देने वाली और कल्याणकारिणी है। ये चारों प्रकार की मुक्ति भगवान् की उपासना से ही प्राप्त होती है। आप इसे इस प्रकार समझ लें। १. सालोक्य—भगवान् के लोक ब्रह्मलोक मे वास करना, दिव्य शरीर के द्वारा उसके आनन्द का उपभोग करना। २. सारूप्य—भगवान् के समान गुण वाला हो जाना। जैसे ब्रह्म सत् चित् आनन्द रूप है वैसे ही मैं भी हूँ। सामीप्य—अपने को हर समय भगवान् के समीप मे समझना। यह भावना दृढ हो जानी कि भगवान् हर समय मेरे पास हैं। कभी दूर ही नही होते हैं। सदा भगवान् की समीपता का अनुभव करना। सायुज्य—भगवान् के साथ मिल जाना, संयुक्त हो जाना, इसके संयोग को अनुभव करना। दिव्य शरीर द्वारा इन मुक्तियों के आनन्द का उपभोग होता है।

जीवन मुक्त होने पर, स्थूल शरीर के रहते भी इन मुक्तियों का आनन्द भोगा जाता है। जब तक तत्वज्ञानी की इच्छा हो।

सालोक्य—ब्रह्म को सर्वत्र व्यापक समझे, और सब ओर से विरक्त होकर यह भावना करे कि मैं ब्रह्म के लोक मे ही स्थित हूँ। कोई ऐसा देश और स्थान नही है जहाँ ब्रह्म न हो। मेरे अन्दर बाहर सब जगह ब्रह्म वर्तमान है। सब जगह भगवान् का ही लोक है। सर्वत्र ब्रह्म की ही भावना हो। सर्वत्र ब्रह्म की अनुभूति हो। प्रत्येक कण-कण में और बड़े से बड़े पदार्थ मे भी ब्रह्म की अनुभूति हो। सर्वत्र सर्व देशों मे सर्व लोकों मे ब्रह्म का अनुभव हो। समस्त ब्रह्माण्ड को ब्रह्म का लोक समझें। जड़ चेतन सब में ब्रह्म की भावना करें।

सारूप्य—जैसे भगवान् चेतन है, सत् है, आनन्द रूप है, वैसे ही मैं भी सत् चित् आनन्द रूप हूँ। समान रूप से मित्र की भावना करे। जैसे ब्रह्म शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव है, वैसे ही मेरा आत्मा भी शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव है। इस प्रकार सारूप्य की भावना करे। जैसे ब्रह्म सब बन्धना से मुक्त है वैसे ही मैं भी सर्व बन्धनो से मुक्त हो चुका हूँ। अब मेरा प्रकृति से सर्वथा विच्छेद हो चुका है। अब मैं अपने आप को ब्रह्म के समान रूप वाला अनुभव कर रहा हूँ। सत् चित् आनन्द के रूप मे मुझे समानता प्राप्त हो गयी है। इस प्रकार की भावना अहर् निश, चलते फिरते, उठते बैठते, सोते जागते, व्यवहार करते हुए सच् चित् आनन्द रूपता की भावना बनी रहे। यही ईश्वर की सारूप्य भक्ति है।

सामीप्य—अज्ञान वश या भ्रम वश अब तक मैं ब्रह्म को बहुत दूर समझता रहा हूँ। अब मैंने ब्रह्म के स्वरूप को समझ लिया है। देख लिया है। अत अब मैं भगवान् को अपने इतना समीप समझ रहा हूँ कि इतना समीप और कोई पदार्थ नही है। मेरे और ब्रह्म के बीच कोई पदार्थ बाधा करने वाला या ओझल करने वाला नही है। इस प्रकार ब्रह्म की समीपता वर्तमानता और निकिटता का अनुभव होते रहना चाहिये। अपने और ब्रह्म के बीच कभी भी भूलकर भी किसी प्रकार के अन्तराय की प्रतीति न हो। जब भी जिधर भी दृष्टि जाये सर्वत्र ब्रह्म की अनुभूति हो। प्रत्येक काल मे प्रत्येक देश म, प्रत्येक अवस्था म अपने साथ म अग सग मे ब्रह्म की प्रतीति हो अनुभूति हो यही है वास्तव मे ब्रह्म का सामीप्य भाव।

सायुज्य—भगवान् के साथ मिलना। जब इच्छा हो उसी क्षण भगवान् मे समाधिस्थ हो जाना। भगवान् के ध्यान मे, भगवान् विषयक समाधि मे जब चाहे लग जाना। स्थिर हो जाना। उसम अपने को विलीन सा कर देना। अपने को खो सा देना। अपने को विस्मृत कर देना ध्येयाकार हो जाना। यह है भगवान् के साथ सायुज्य। भजन द्वारा, कीर्तन द्वारा, जाप द्वारा, आराधना द्वारा, प्रार्थना द्वारा, उपासना द्वारा भक्ति द्वारा, निष्ठा द्वारा, प्रेम द्वारा, ध्यान समाधि द्वारा, भगवान् मे मिल जाना। अपने आप को भूलकर भगवान् मे खो जाना तदाकार हो जाना। ब्रह्माकार सा हो जाना ब्रह्म का सायुज्य है।

४ मान्यता है—भगवान् समय समय पर अपने अश से मनुष्य के कल्याण के लिए अवतार लेता है। उसका शरीर मनुष्यो का सा ही होता है। जैसे—विष्णु भगवान्, शकर भगवान्, ब्रह्मा जी, भगवान् राम, भगवान् कृष्ण, नरसिह भगवान्, नारद इत्यादि रूप मे। कुछ काल जन कल्याण करके फिर अपने लोक को चले जाते हैं। इन की पूजा, उपासना, भक्ति करने वाले भक्तजन इनके दिव्य शरीरो को इनके लोक म अब भी विद्यमान मानते हैं। भक्ति के प्रभाव से वरदान देने के लिए दिव्य शरीर मे या कभी कभी स्थूल शरीर धारण करके इस मर्त्यलोक मे भी आ जाते है। इनके लोको म इन की पूजा दिव्य उपकरणो से मुक्त आत्मायें करती हैं। इनके अनन्य भक्तो का निवास दिव्य शरीरो से इनके लोक मे इनके समीप म ही होता है।

५ मान्यता—भोक्तृत्व जीवात्मा का स्वाभाविक ही धर्म है, इसकी चेतनता का भोक्तृत्व रूप म ही परिणाम होता है। यह भोक्तृत्व रूप मोक्ष मे भी साथ रहता

है । इस धर्म के द्वारा वैकुण्ठ में (ब्रह्म लोक मे) आनन्द का भोग करता हैं । शुद्ध सात्विक दिव्य शरीर के द्वारा ही वैकुण्ठ मे आनन्द का भोग आत्मा करता है । ये जीवात्मा का परिणाम होना मानते हैं ।

६. मान्यता—मोक्ष में जीवात्मा की अपनी शक्तियाँ होती हैं इनके द्वारा दिव्य विषयो और ब्रह्म के आनन्द का उपभोग करता है । भोग करने के लिए सांकल्पिक शरीर का स्वयं ही निर्माण कर लेता है । मोक्ष की अवधि तक सुख और ब्रह्मानन्द का उपभोग कर लौट आता है । ये जीवात्मा की मोक्ष से पुनरावृत्ति मानते है ।

इत्यादि मोक्ष के विषय में अनेक सिद्धान्त है ।

कैवल्य का स्वरूप

कैवल्य का स्वरूप—कैवल्य के मानने वाले आचार्य मोक्ष मे किसी भी शरीर का होना नही मानते हैं । सूक्ष्म, कारण, दिव्य अथवा साकल्पिक ये सब प्रकृति के ही कार्य होते हैं । ये ही बन्ध का हेतु भी होते हैं । यदि ये इस प्रकार के शरीर मोक्ष मे बने रहे तो बन्धन से तो छुटकारा नहीं हुआ । बन्ध चाहे कारण का हो या कार्य का हो, स्थूल शरीर का हो चाहे सूक्ष्म शरीर का, है तो बन्ध ही । अतः माया या प्रकृति के सब प्रकार के सम्बन्धों के ही विच्छेद को कैवल्य मानते हैं । इनके कई प्रकार के सिद्धान्त हैं ।

प्रथम सिद्धान्त—आत्मा और मन के संयोग से ज्ञान की उत्पत्ति होती है । मोक्ष में मन के सम्बन्ध का अभाव होता है, ज्ञान आत्मा का गुण है, स्वरूप नही । गुण अनित्य होता है, क्योंकि उत्पन्न होता है । मन का विच्छेद ही आत्मा की कैवल्य अवस्था है । इच्छा द्वेष सुख-दुःख आदि से ही इसकी स्थूल शरीर मे पहिचान होती है । ये गुण मन के कारण से उत्पन्न होते हैं । मोक्ष में मन का अभाव है, अतः वहाँ यह नही रहते । ब्रह्मानन्द आदि का भोग वहाँ नही होता है क्योंकि करण का अभाव है । इन्होने आत्मा को न ज्ञान-स्वरूप ही माना है और न जड ही । केवल ज्ञान की उत्पत्ति मन इन्द्रियों के संयोग से मानी है । अत मोक्ष मे केवल आत्मा ही होता है ।

द्वितीय सिद्धान्त—ब्रह्म विवर्त भाव को प्राप्त होकर जीव संज्ञा को प्राप्त होता है । यही जीव क्रमिक मुक्ति द्वारा मोक्ष को प्राप्त करके ब्रह्म-भाव को प्राप्त हो जाता है । मेक्ष मे यह केवली भाव रूप मे होता है । वहाँ इसके साथ माया या इससे बने किसी पदार्थ के साथ सम्बन्ध नही होता है । ब्रह्म रूप होकर अपने सत् चित् आनन्द रूप मे स्थित होता है । अतः जीव का ब्रह्म-भाव को प्राप्त होना ही कैवल्य है ।

तृतीय सिद्धान्त—जीवात्मा सदा से ही शुद्ध-बुद्ध मुक्त स्वभाव है । परन्तु चित्त के सम्बन्ध से इसमें स्वस्वामि-भाव सम्बन्ध होकर अभिमान हो जाता है । तत्त्व ज्ञान के द्वारा इसका अहंभाव निवृत्त होकर, या अज्ञानता दूर होकर कैवल्य-भाव प्राप्त हो जाता है । इस कैवल्य में इसके साथ कोई शरीर या करण नही होता है । अतः ईश्वर के आनन्द की भी प्राप्ति नही होती है । ईश्वर के समान यह भी मुक्त होता है । इसका [illegible] नही है [illegible] है ।

हमारी मान्यता

चतुर्थ सिद्धान्त—अनादि काल से जीवात्मा का सम्बन्ध प्रकृति के सा भोग और मोक्ष के रूप मे चला आता है। कभी यह इससे बद्ध भी हो जाता और कभी इससे मुक्त भी हो जाता है। यद्यपि यह शुद्ध-बुद्ध मुक्त स्वभाव वाल है। फिर भी एक देशी होने से परिणामिनी प्रकृति के चक्कर मे आ जाता है फिर यह इससे विज्ञान वैराग्य द्वारा छूटने का प्रयत्न करता है। एक जन्म या अने जन्मो के ज्ञान वैराग्य के विशेष अभ्यास से यह मुक्त हो जाता है। परन्तु इसने मुक्ति प्राप्त की है। अत पुनरपि इसके बद्ध होने की सम्भावना हो सकती है। अत इसकी मुक्ति अनित्य हो जाती है। भले ही यह शुद्ध-बुद्ध मुक्त स्वभाव वाला है। परन्तु य अपने को बद्ध मान बैठता है। जैसे मणि के सन्निधान मे पुष्प हो तो मणि पुष्प के रंग वाली सी भासमान होने लगती है। इस प्रकार यह निर्विकार होते हुए भी चित्त के सन्निधान से अपने को सस्कारो से बद्ध समझने लगता है। इस भ्रान्ति को दूर करने के लिए यह यत्न करता है। अभ्यास ज्ञान वैराग्य द्वारा यह इस भ्रान्ति को दूर कर मुक्त हो जाता है। मोक्ष काल मे अपने स्वरूप मे स्थिर हो जाता है। एक मन्वन्तर के पश्चात् इसे फिर लौटना पडता है। उस कैवल्य भाव को त्याग कर पुनः ससार मे आना पडता है, क्योकि गया तो यहा से ही था। अत. अपनी मजिल को पूरा करके, मोक्ष मे निवास करके पुन. इसे वापिस आना पडता है।

कैवल्य में ब्रह्मानन्द का अभाव

(शका) आप की मान्यता मे इस अवस्था मे आत्मा को कुछ आनन्द का अनुभव भी होता है या कुछ भी नही ?

(समाधान) इसका प्रकृति के साथ सर्वथा सम्बन्ध विच्छेद होने से, किसी भी प्रकार का शरीर इसके साथ नही होता है। न अन्त करण ही होता है। फिर बिना करण के आनन्द आदि का भोग कैसे कर सकता है। जैसे कर्ता को कार्य करने के लिए करण की आवश्यकता होती है, इसी प्रकार भोक्ता को भी भोगने के लिए करण की आवश्यकता होती है। इसी के द्वारा सुख या आनन्द का भोग हो सकता है। अत करण का अभाव होने से प्रकृति के सुख का और ब्रह्म के आनन्द के उपभोग का सर्वथा अभाव होता है।

प्रश्न—आपके सिद्धान्त मे मोक्ष अच्छा है या कैवल्य। आप अपने लिए किस को पसन्द करेंगे ?

उत्तर—मैं तो मोक्ष की अपेक्षा कैवल्य को ही पसन्द करूँगा।

प्रश्न—आप किस प्रकार का कैवल्य चाहते हैं ?

उत्तर—जिसमे किसी भी प्रकार का बन्धन न हो।

प्रश्न—क्या आप मोक्ष मे ब्रह्मानन्द को भी बन्धन समझते हैं ?

उत्तर—मोक्ष मे भी यदि उस आनन्द की प्राप्ति के लिए कोई प्रयास करना पडे तो वह भी तो बन्धन ही होगा। जब हमारी इच्छा आनन्द भोगने की हुई तब आनन्द प्राप्त हो गया, जब इच्छा न हुई तो आनन्द से वञ्चित हो गये। इच्छा आदि के लिए कोई करण लेना चाहिए। हम आत्मा मे इच्छा मानते ही नही हैं, ये इच्छा

आदि धर्म बुद्धि या चित्त के है। मोक्ष मे इनका अभाव होता है। फिर आनन्द का भोग किस के द्वारा करेंगे ?

(शका) आत्मा मे तो बहुत शक्तियाँ होती है, उनके द्वारा वह ब्रह्मानन्द का भोग कर लेगा।

(समाधान) यदि ये शक्तियाँ आत्मा मे धर्म धर्मी के रूप मे वर्तमान है, तो आत्मा भी परिणामी हो जायेगा, जैसे चित्त, क्योकि एक शक्ति के पश्चात् दूसरी शक्ति का प्रादुर्भाव होना है। एक भोग के पश्चात् दूसरी वस्तु का भोग होना है। अत. इस क्रम से एक शक्ति के पश्चात् दूसरी शक्ति उत्पन्न होगी। आत्मा बुद्धि की तरह परिणामी हो जायेगा।

(शका) जब आप मोक्ष मे ब्रह्म प्राप्ति और उसके आनन्द की उपलब्धि भी नही मानते हैं, तो आपको कैवल्य से क्या लाभ ?

(समाधान) करोड़ो, अरबो, खरबो वर्ष तक दु ख से छुटकारा हो जायेगा प्रतिदिन के क्लेश दु ख और जन्म-मरण के बन्धन से छूट जायेंगे।

(शका) जब मुक्ति से पुन: लौट आना है, तो ऐसी अनित्य मुक्ति के लिए घोर प्रयत्न बेकार है।

(समाधान) आप एक बार रोटी खाकर पेट भरने पर छोड देते हैं, फिर दूसरी बार क्यों खाते हैं। एक बार से ही सदा के लिए तृप्ति हो जानी चाहिए। थोडी देर की तृप्ति के लिए आप पुनः-पुन: प्रयत्न करते हैं। इसी प्रकार आत्मा भी मुक्ति के लिए पुनः-पुन. प्रयत्न करता है।

(शंका) जब एक बार मुक्त हो गया तो फिर आने की क्या जरूरत है ? सदा के लिए मोक्ष हो जाना चाहिए।

(समाधान) प्राप्त की हुई, उत्पन्न हुई या उपार्जन की हुई वस्तु कभी नित्य नही हो सकती। जब मुक्ति को बडे प्रयत्न से प्राप्त किया है, तो उत्पन्न होने वाली वस्तु का भी कभी नाश तो होना ही हुआ। अत. मुक्ति उत्पन्न होकर सदा के लिए नित्य नही हो सकती है।

(शका) आप भी तो आत्मा को मुक्त कहते है।

(समाधान) आत्मा मुक्त है, पर मुक्त होते हुए भी प्रकृति के सम्पर्क से इसमे रागाभिमान सा समझा जाने लगता है। चित्त के सम्पर्क से कुसुम और मणि के समान इसमे यह रागाभिमान सा माना जाने लगता है। जैसे मणि के पास पुष्प रखने से मणि रगीन सी प्रतीत होने लगती है, वैसे मणि मे रग न चढता है, न लगता है। केवल आभास मात्र प्रतीत होता है। वह वास्तव मे न मणि का है, न मणि मे है। वह फूल का ही है, पर प्रतीति उस काचमणि मे होती है। इसी प्रकार विकार भोग आदि धर्म बुद्धि के ही होते है, परन्तु आरोप आत्मा मे कर दिया जाता है। आत्मा के सान्निध्य से चित्त मे ही भोगात्मक कर्म होते हैं, अतः वह चित्त का ही हुआ न कि आत्मा का। केवल चित्त के सन्निधान मात्र से आत्मा का बन्ध माना जाता है। इससे अलग हो जाने पर मोक्ष माना जाता है। यह सान्निध्य रूप सम्बन्ध अनादि काल से चला आ रहा है। कभी इससे प्रयत्न

विशेष छूट भी जाता है और फिर बन्ध भी हो जाता है। यह इन दोनों का अनादि काल से इस प्रकार का सम्बन्ध चला आ रहा है और चलता ही रहेगा। यह अनादि सान्त नहीं है, अनादि नित्य है।

मुक्ति की अनित्यता

(शंका) चित्त जीव का सम्बन्ध जब अनादि नित्य है तो फिर छूट क्यों जाता है?

(समाधान) जैसे रात के पश्चात् दिन और दिन के पश्चात् रात आती है, इसी प्रकार मोक्ष के पश्चात् और बन्ध के पश्चात् बन्ध मोक्ष सदा चलते ही रहेंगे। यह आवागमन सदा बना रहेगा। अत इसको हम नित्य कहेंगे।

(शंका) अन्य शास्त्रकार प्रकृति या माया को अनादि सान्त होने से आत्मा के साथ सम्बन्ध को भी अनादि सान्त ही मानते हैं। अब आत्मा के लिए माया सान्त हो गई है फिर मुक्ति से क्यों लौटेगा ?

(समाधान) यह बात यथार्थ प्रतीत नहीं होती है कि जिसका कभी प्रारम्भ तो हुआ नहीं है, अर्थात् कभी उत्पन्न तो हुई नहीं है और सदा से वर्तमान है, और उसका अन्त हो जायेगा। जो कभी पैदा नहीं हुई उसका अन्त भी नहीं होना चाहिए, क्योंकि जो अब तक नित्य बनी आ रही है, वह आगे भी नित्य ही रहेगी। केवल कुछ काल के लिए आत्मा का सम्बन्ध छूटा है। सम्बन्ध छूटने से तो वह अनित्य नहीं हो सकती। जब सम्बन्ध छूटना मानते हैं, तो वह सम्बन्ध फिर भी तो कभी हो सकता है। इस प्रकार जब आत्मा का सम्बन्ध नित्य चला आ रहा है और अब मुक्त होने पर सम्बन्ध छूटता है, तो क्या इससे भी आत्मा का मरण या अन्त मान ले। क्योंकि यह भी सदा से चला आ रहा है। तब तो यह मुक्ति न हुई किन्तु आत्मा में सान्त धर्म आया है। आप पदार्थ को या माया को अनादि सान्त न मानकर अनादि नित्य मान ले, और इन दोनों के सम्बन्ध को अनित्य मान ले, तब कोई भी आपत्ति उपस्थित न होगी। पदार्थ दोनों नित्य बने रहेंगे, और सम्बन्ध अनित्य हो जायेगा। अनित्य सम्बन्ध होने से बन्ध और मोक्ष भी अनित्य हो जायेंगे। जैसे क्षुधा अनित्य है, भूख लगती है, खाने से तृप्ति हो जाती है, पुनः लगती है, फिर खाने से तृप्ति हो जाती है। इसी प्रकार मुक्ति उत्पन्न होती है, और फिर समाप्त हो जाती है। खाने वाला रोज वर्तमान रहता है, परन्तु भूख और तृप्ति बदलती रहती है। इसी प्रकार आत्मा रहता है। बन्ध और मोक्ष बदलते रहते हैं। इसी प्रकार आत्मा मुक्त तो है ही, परन्तु एक देशी होने से संयोग बनता रहता है। संयोग अनित्य है, परन्तु प्रकृति और आत्मा नित्य है। संयोग से ही बन्ध का आरोप कर दिया जाता है। संयोग के अभाव में मुक्त समझा जाता है।

मोक्ष का स्वरूप

(शंका) जब आप कैवल्य अवस्था में किसी प्रकार का भोग या सम्बन्ध नहीं मानते है, तब तो ब्रह्म लोक में जाने की जरूरत नहीं।

(समाधान) हमारे लिए तो सर्वत्र ही ब्रह्म लोक है क्योंकि ब्रह्म सर्वत्र वर्तमान है। किसी लोक-विशेष—स्वर्ग लोक या ब्रह्म लोक में इस लिए नहीं जाना है

जाने की आवश्यकता भी नही है। केवल प्रकृति के बन्धन से मुक्त होने की जरूरत है वही हमारे लिए मोक्ष है।

(शंका) तब ब्रह्म की प्राप्ति का क्या अभिप्राय रहा, उसके विज्ञान से क्या प्राप्त हुआ ?

(समाधान) ब्रह्म-विज्ञान का यही अभिप्राय है, कि ब्रह्म के सम्बन्ध से प्रकृति कार्य भाव या विकार भाव को प्राप्त हुई और उसने अपने अनेक कार्यो को उत्पन्न कर दिया। इन कार्य और कारण के साथ हमारा भोग और अपवर्ग का सम्बन्ध है। इनके दु.ख का हेतु होने से ऐसा ही अनुभव होने से इनका विज्ञान करके इनसे वैराग्य प्राप्त करना था। अतः स्थूल कार्य से लेकर सूक्ष्म कारण तक के पदार्थों का विज्ञान प्राप्त करना था। इन सबके साथ ही ब्रह्म का भी व्याप्य व्यापक भाव सम्बन्ध था, इनके प्रति यह निमित्त कारण भी था, अतः इसका विज्ञान करना भी आवश्यक था। केवल उपादान कारण का विज्ञान हो और उसके निमित्त कारण का विज्ञान न हो तो वह विज्ञान भी अधूरा ही समझा जाएगा इसलिए इनके साथ ब्रह्म-विज्ञान आवश्यक था।

(शंका) तो महाराज ब्रह्मविज्ञान मोक्ष का कारण हुआ या प्रकृति और उसके कार्यो का विज्ञान ?

(समाधान) प्रकृति ही हमारे बन्ध का कारण थी, अत. प्रकृति का विज्ञान और उससे वैराग्य ही मोक्ष का कारण हुआ। ब्रह्म तो कोई हमारे बन्ध का हेतु नही था, जो इसके विज्ञान को मोक्ष समझे। ब्रह्म-विज्ञान तो ऐसा है, जैसे कोई पथिक ग्राम को जा रहा हो, उसका लक्ष्य भी ग्राम ही हो, वहाँ ही उसने पहुचना हो। मार्ग मे अनेक बाग बगीचे आवें, उनको भी देखता है, धूप और हवा का भी अनुभव करता है। इसी प्रकार हमारा लक्ष्य था, प्रकृति और इसके कार्यों को जानकर, देख समझकर, प्रत्यक्ष अनुभव करके कि वास्तव मे यह हमारे दु.ख और बन्धन का हेतु है। अब इनके बीच मे इनसे सूक्ष्म ब्रह्म भी साथ साथ मे देख लिया, समझ लिया, जान लिया। इसका यह तो अभिप्राय नही कि ब्रह्म ज्ञान हमारे मोक्ष का हेतु हो गया। यह तो मोक्ष का हेतु तब होता जब हमारे बन्ध का भी यही हेतु होता। बन्ध का हेतु तो थी प्रकृति, अत मुक्त भी उसी से होना हुआ। ब्रह्म न बन्ध का हेतु है, न मोक्ष का ही हेतु है।

(शंका) आप ब्रह्म के प्रति कृतघ्न बनते जा रहे है, उसने आप पर अनेक उपकार किये है; सृष्टि का निर्माण ही महान् उपकार है। ऐसा नही होना चाहिये।

(समाधान) यह ठीक है कि ब्रह्म के सम्बन्ध से सृष्टि का निर्माण होकर आत्मा का बहुत उपकार हुआ है। वह आत्मा के भोग और अपवर्ग का निमित्त कारण बना है। परन्तु यह भी तो कह सकते है कि आत्मा के बन्ध का कारण यह बना है। यदि इसका सहयोग प्रकृति को न मिलता तो यह संसार सृजन मे उपादान कारण भी नही बनती, और यह संसार ही न होता। अनादि काल से जीवो के भोग और अपवर्ग का क्रम चला आ रहा है, अतः संसार के सृजन की आवश्यकता थी, परन्तु आत्मा तो इन दोनों के उपकार रूप बन्धनो से मुक्त होना चाहता है। इन दोनो का सयोग राग युक्त ही हो सकता है। राग ही बन्धन का हेतु है चाहे वह प्रकृति मे हो या ईश्वर मे। ब्रह्म मे अनुराग भी ध्यान, उपासना, भक्ति, समाधि मे प्रवृत्त करेगा, यह प्रवृत्ति ही बन्ध का

हेतु बन जायेगी। अत दोनो का सम्बन्ध ही बन्ध को सिद्ध करता है, और आतमा की स्वतन्त्रता मे बाधक होता है। यदि मोक्ष मे भी आत्मा का अनुराग आत्मक आनन्द माना जाये, तो उस आनन्द के उपभोग के लिये भी तो कोई द्वार या साधन होना चाहिये, जो सूक्ष्म शरीर, दिव्य शरीर या चित्त आदि ही हो सकते है, इनके द्वारा ही आत्मा ब्रह्मानन्द को भोग सकता है। सूक्ष्म आदि शरीर होने से प्रकृति का सम्बन्ध पूर्ववत् ही बना रहा। प्रकृति के सम्बन्ध का तो मोक्ष मे सर्वथा अभाव ही होना चाहिए।

(शका) वेद, शास्त्र उपनिषत् स्मृति, पुराण सब कह रहे है, कि ब्रह्म ज्ञान से मोक्ष होता है, और आनन्द की उपलब्धि और सब दु खो का अभाव हो जाता है?

(समाधान) प्रकृति और इसके कार्यो के साथ ब्रह्म का सम्बन्ध है, इनका विज्ञान करने मे साथ साथ ब्रह्म का भी विज्ञान हो जाता है। यहाँ ब्रह्म विज्ञान तो मुख्य रूप से मोक्ष का हेतु न हुआ। मोक्ष का हेतु तो प्रकृति हुई जिसके साथ आत्मा का भोग और अपवर्ग आत्मक सम्बन्ध है। जब प्रकृति के साथ सर्वथा सम्बन्ध विच्छेद मानते हैं, और इसी से बन्ध भी हुआ था। सम्बन्ध न रहने से मोक्ष मे आनन्द किस के द्वारा भोगेगा?

मोक्ष मे आनन्द का अभाव

(शका) क्या बिना करण या शरीर के आनन्द प्राप्त नही हो सकता है?

(समाधान) हमारा विचार है कि आनन्द की उत्पत्ति सयोग से होती है। सयोग के होने मे भी कोई निमित्त होना चाहिये। वह निमित्त मोक्ष मे होता ही नही, क्योकि करण का अभाव है। तब आनन्द की उपलब्धि कैसे होगी। मोक्ष का अर्थ है छूट जाना। आत्मा बन्धसे छूटा है। मोक्ष का अर्थ आनन्द तो नही है। मोक्ष की अवस्था मे आनन्द प्राप्त नही होता है जिन आचार्यो ने मोक्ष मे आनन्द की उपलब्धि मानी है वे दिव्य या सूक्ष्म शरीर भी मोक्ष मे मानते है। वह दिव्य शरीर भी प्रकृति के कार्य से बनता है। अत प्रकृति से छुटकारा तो न हुआ। इस प्रकार का मोक्ष तो एक प्रकार का बन्ध ही होगा।

(शका) मोक्ष म करण के बिना भी आनन्द की प्राप्ति हो सकती है, जैसे बिना करण के प्रकृति मे ब्रह्म के द्वारा क्रिया हो जाती है इसी प्रकार सयोग से मोक्ष म आनन्द भी प्राप्त हो जाएगा।

(समाधान) यदि ऐसा मान तब तो यहाँ भी बिना अन्त करण के सुख या आनन्द की उपलब्धि होनी चाहिये, वह तो होती नही, तब मोक्ष मे बिना करण के आनन्द कैसे भोगा जा सकता है। प्रकृति मे तो सन्निधान से ज्ञान क्रिया होती हैं। यह ज्ञान क्रिया भी परार्थ पुरुष के लिये होती हैं। ब्रह्म के सान्निध्य से इसम आनन्द का उपभोग नही होता है। केवल गति प्रारभ होती है। अत केवल ब्रह्म के सन्निधान मात्र से आत्मा मे आनन्द का उपभोग नही हो सकता है। यदि बिना करण के आनन्द प्राप्त हो जाये तब इस लोक मे भी बिना अन्त करण के भोग या आनन्द प्राप्त होना चाहिये। इन करणो की आवश्यकता ही न रह। परन्तु इनके बिना आनन्द प्राप्त होता नही है फिर मोक्ष मे कैसे होगा।

वेद, शास्त्र, उपनिषद् भी मोक्ष प्राप्ति मे सहायक है, इनके द्वारा सामान्य ज्ञान प्राप्त होता है और विशेष ज्ञान समाधि द्वारा प्राप्त होता है। यदि मुक्त आत्मा

मोक्ष में जाने से पूर्व इस प्रकार की भावना कर लेता है कि मुझे कुछ भी नही चाहिये, न दिव्य भोग न ब्रह्मानन्द ही, मेरे लिये तो दोनों बन्धन का हेतु होंगे। तो क्या उसके ऊपर ब्रह्म जबरदस्ती आनन्द को ठूंस देगा, क्योंकि जो ब्रह्म को प्राप्त हो गया है, वह मुक्त आत्मा को भी प्राप्त हो गया है। यदि ब्रह्म सत्, चित्, आनन्द रूप है तो मुक्त आत्मा भी सत् चित् आनन्द रूप हो गया है। यदि कहो कि ब्रह्म का आनन्द अनन्त और असीम है, तो ब्रह्म है भी अनन्त ही, अनन्त के पास अनन्त आनन्द होना चाहिये। उसके कार्य इतने अनन्त हैं, ससार मे अनन्त प्राणी हैं, उनके लिये भी तो उसे आवश्यकता है। मुक्त आत्मा अणु है तो इसका आनन्द भी तो अणु ही चाहिये। उसमें और अधिक आनन्द की गुन्जाइश भी नही है या स्थान ही नहीं है। ससार मे जितना बड़ा धनी होता है, उसके खर्च भी तो उतने ही बडे होते है। थोड़े धन वाले धनी के खर्च भी थोडे ही होंगे। अत. मुक्त आत्मा के तो मोक्ष मे सर्व कर्तव्य कर्म, और प्राप्ति आदि सब ही समाप्त हो गये हैं। जब उसका अपना स्वरूप ही आनन्द युक्त हो गया है तो और अधिक आनन्द लेकर क्या करेगा। फिर तो वह आनन्द भी अनित्य हो जायेगा जो उसको ब्रह्म मे प्राप्त होना है। मुक्त आत्मा के लिए हम तो और आनन्द की आवश्यकता नही समझते हैं, इस लोक मे जब योगी समाधि मे ब्रह्म के साथ सम्बन्ध जोड़ता है तो उस काल मे भी तो आनन्द की उपलब्धि हो जाती है। यदि मोक्ष मे भी इसी प्रकार आनन्द मान ल तो इस लोक और ब्रह्म लोक मे क्या विशेषता होगी। तब तो इसी लोक मे रहना अच्छा होगा। पर यह आनन्द भी हर समय नही रहता है। समाधि काल मे ही अनुभूति होती है। हर समय तो कोई समाधि लगाये नही बैठा रहेगा। स्थूल शरीर के रहते व्युत्थान भी होगा। व्युत्थान मे आनन्द का अभाव होगा। मोक्ष काल मे भी दिव्य शरीर द्वारा ही आनन्द का उपभोग प्राप्त होगा। परन्तु मोक्ष मे भी २४ घण्टे, या बारह मास या सदा ही तो दिव्य शरीर या चित उसके साथ जुडा नहीं रहेगा। समाधिस्थ तो नही बना रहेगा। एक देशी होने से उसमें भी व्युत्थान होगा। हर समय सम्बन्ध बनाये रहने से तो थक भी जायेगा। अलग होने से फिर आनन्द का अभाव हो जायेगा। इस प्रकार तो हमे इस लोक और ब्रह्म लोक मे कोई अन्तर प्रतीत नही हुआ। अतः इसकी अपेक्षा कैवल्य भाव मानना ही श्रेयस्कर होगा।

मोक्ष में सूक्ष्म शरीर का अभाव

(शका) मोक्ष की अवस्था मे सूक्ष्म, दिव्य, या साङ्कल्पित शरीर न मानने से आनन्द की प्राप्ति नही होगी। ऐसे शून्य या जडवत् बने रहने की स्थिति वाले कैवल्य की कौन बुद्धिमान् कामना करेगा?

(समाधान) आप सूक्ष्म, दिव्य, या साङ्कल्पिक शरीर को आनन्द की प्राप्ति के लिये मोक्ष मे मानते हैं। मोक्ष मे इनको मानने से अनेक आपत्तियाँ उपस्थित हो जायेंगी। ये शरीर प्रकृति और माया से ही बने होंगे। इनका उपादान माया या प्रकृति ही हो सकती है। इससे भिन्न और तो कोई उपादान है नही। जब प्रकृति प्रलय भाव को प्राप्त हो जायेगी, तब इनको अपने कारण मे अवश्य ही जाना पडेगा। अत मुक्त आत्मा के सम्बन्ध का विच्छेद हो जायेगा। ऐसी स्थिति मे मुक्त आत्मा को अकेला रहना पडेगा। इसी को कैवल्य कहेंगे। यदि आप कहे कि वे शरीर मोक्ष में जाकर सत्त्व प्रधान होने से

नित्य हो जायेंगे। यह भी असंभव है, जो पदार्थ उत्पन्न हुआ है वह सदा के लिये कैसे नित्य हो जायेगा। अत. एक दिन उसका भी अवश्य विनाश होना है। तब आत्मा या तो मोक्ष मे अकेला रह जायेगा। अथवा उसे मोक्ष से लौटकर पुन: मर्त्य लोक में आना पडेगा। प्रलय काल मे सूक्ष्म शरीर प्रलय मे चला जायेगा। मुक्त आत्मा का आनन्द भी समाप्त हो जायेगा।

कैवल्य मे जो आपने कहा वह शून्य और जड़वत् हो जाएगा, शून्य का अर्थ यदि आप अभाव का लेते है, तो हम तो आत्मा को नित्य मानते हैं। अतः कभी भी अभाव नही हो सकता है। जडवत् इसलिए नही होता कि वह चेतन हैं। उसको चेतनता किसी के सम्बन्ध से प्राप्त नही हुई है। आत्मा नित्य चेतन है। चेतनता का तीनो कालो मे भी अभाव नही होता है। यदि शून्य का अर्थ यह किया जाये कि जो दूसरे पदार्थों के संयोग से सुख, दु खादि वृत्तियाँ पैदा होती थी, उनका अभाव होने से शून्यता आयी है, तो इस प्रकार की शून्यता हमे स्वीकार है। इसका अभिप्राय यह नही कि वह अपने चेतनत्व से रहित हो गया है, केवल सुख आनन्द आदि का ही अभाव हुआ है। वास्तव मे ये सुख और आनन्द भी चित्त के ही धर्म है। चित्त का सम्बन्ध छूट जाने से इनका अभाव ही होगा। अत मोक्ष की अपेक्षा कैवल्य मे रहना यथार्थ होगा।

जीवात्मा में ब्रह्म व्यापक नहीं

(शंका) प्रकृति के मण्डल को उल्लघन करके जहाँ केवल ब्रह्म का ही मण्डल होता है। इसको हम ब्रह्म मण्डल और मुक्त आत्माओ का निवास स्थान मानते हैं। क्या इसको आप भी स्वीकार करेंगे ?

(समाधान) ब्रह्म मे जो सर्व व्यापक धर्म माना गया है, जिसको आप भी अवश्य मानते है, यह सर्व व्यापक रूप धर्म भी ब्रह्म का समाप्त हो जाता है। इस धर्म को प्रकृति मे ही व्याप्य व्यापक भाव सम्बन्ध से स्वीकार किया गया है इसलिए ऐसा नही हो सकता है कि जहाँ प्रकृति न हो और अकेला ब्रह्म रहता हो। वहाँ व्यापक धर्म खतम हो जायेगा। अथवा अन्य पदार्थ को भी वहाँ मानना पड़ेगा।

यदि आप कहे कि मोक्ष मे वहाँ मुक्त आत्माओ मे व्याप्य व्यापक भाव सम्बन्ध बना रहेगा। फिर तो आत्माओ के विषय में भी शंका हो जाती है, कि क्या इसके भी टुकडे, अंश, अथवा देश मानते है कि आत्मा के देश को ब्रह्म ने व्याप्त किया है। प्रकृति तो परिणामिनी है, इसके तो हिस्से या भागो मे व्यापकता बन जायेगी। परन्तु आत्मा के तो विभाग नही हो सकते है कि जिसके देश को उल्लघन करते हुए ब्रह्म उसे व्याप्त कर लेगा।

(शंका) ब्रह्म की अपेक्षा आत्मा मे कुछ स्थूलता है ?

(समाधान) स्थूलता माने तो इसको भी परिणामी मानना पडेगा।

(शंका) क्या आप आत्मा और ब्रह्म की चेतनता मे अन्तर मानते हैं ?

(समाधान) 'हां ! ब्रह्म की चेतनता सूक्ष्म है, आत्मा की चेतनता स्थूल है।'

तब आत्मा को परिणामी मानना पडेगा। क्योकि स्थूल चेतना को सूक्ष्म चेतना ने व्याप्त किया है। अतः आत्मा भी प्रकृति की तरह विकारी हो जायेगा। आत्मा

और ब्रह्म की चेतनता में अन्तर न मानने से दोनो नित्य और अविकारी ठहरते हैं। जैसी चेतनता ब्रह्म की सूक्ष्म है इसी प्रकार आत्मा की चेतनता भी सूक्ष्म है। दोनो की चेतनता को बराबर सूक्ष्म मानने से कोई भी आपत्ति उत्पन्न नही होती है।

(शका) ब्रह्म की चेतनता अनन्त और महान् है, क्या आत्मा उसमे छिद्र करके ठहरेगा ?

(समाधान) इसका समाधान यही है कि ब्रह्म मे छिद्र तो तब होता जब वह विजातीय द्रव्य होता। वह तो आत्मा के समान आत्मा का सजातीय चेतन द्रव्य है, अत दोनो मे सूक्ष्मता धर्म समान है। *यह एक चेतन जाति वाला का मेल है। अत आत्मा* और ब्रह्म का व्याप्य व्यापक भाव सम्बन्ध नही हो सकता है। व्याप्य व्यापक भाव सम्बन्ध विजातीय और विकारवान् पदार्थ के साथ मानना यथार्थ होगा। कुछ आचार्य आत्मा मे ब्रह्म की व्यापकता मानते है। हमारे विचार मे अनुभव के आधार पर आत्मा मे व्याप्य धर्म सिद्ध नही होता है। तब इसको स्थूल और परिवर्तन शील मानना पडेगा। यदि ब्रह्म इसको व्याप्त कर लेता है, तब स्थूल और सूक्ष्म चेतन नही हो सकते है। चेतनता दोनो की समान ही माननी पडेगी, और सूक्ष्मता भी समान ही माननी पडेगी। जहाँ ब्रह्म की चेतनता की सूक्ष्मता जाकर समाप्त होती है, वहाँ उस रूप मे आत्मा की सूक्ष्मता स्वत और स्वाभाविक ही वर्त्तमान है। आत्मा की चेतनता को स्थूल मानने से यह परिणामी हो जायेगा। ब्रह्म की महानता और अनन्तता की सूक्ष्मता का जहा अन्त होता है, उसी प्रकार की सूक्ष्मता आत्मा मे भी वहाँ है। अत ब्रह्म मे और आत्मा मे व्याप्य व्यापक भाव नही बनता है। केवल प्रकृति मे ही व्याप्य व्यापक भाव सम्बन्ध बनता है। इसी के हेतु सर्व *व्यापक मे सर्व शब्द का प्रयोग किया गया है,* क्योकि प्रकृति स्थूल और सूक्ष्म भाव को प्राप्त होती है इसलिये इसमे व्याप्य धर्म आया है।

आत्मा कभी भी स्थूल-सूक्ष्म भाव को प्राप्त नही होता है। सदा एक रूप मे एक स्थिति मे कूटस्थ होकर रहता है। इसके बीच मे बिलकुल भी स्थान नही है जिसको ब्रह्म व्याप्त कर सके। ब्रह्म और आत्मा मे केवल मात्र इतना ही अन्तर है कि ब्रह्म महान् है और आत्मा *अणु-सूक्ष्म—जिसका कोई विभाग या अश न हो सके,* जिसमे कोई भी प्रवेश न कर सके। जिससे और कोई सूक्ष्म भी न हो सके। हाँ बराबर की सूक्ष्मता हो सकती है। ब्रह्म की सूक्ष्मता इस के बराबर है। अत आत्मा और ब्रह्म का व्याप्य व्यापक भाव सम्बन्ध नही बन सकता है। यदि आत्मा मे ब्रह्म को व्यापक मानते हैं, तो आत्मा मे छिद्र हो जाता हैं। छिद्र होने से विकारी हो जायेगा। यदि ब्रह्म मे इसको मानते है, अर्थात् ब्रह्म की सर्व व्यापकता मे जीवात्मा की स्थिति मानते हैं, तो ब्रह्म मे भी छिद्र हो जायेगा। अत दोनो की सूक्ष्मता समान मानने मे दोनो ही निर्विकार सिद्ध हो जाते है। सूक्ष्मता और चेतनता मे हम दोनो को समान ही मानते हैं।

आत्मा और प्रकृति की सूक्ष्मता मे अन्तर

प्रश्न—प्रकृति की अपेक्षा आत्मा की सूक्ष्मता न्यूनाधिक रूप मे है या समान रूप मे ?

उत्तर—जब प्रकृति मे ब्रह्म को व्यापक माना है, वह सूक्ष्मता के ही नाते माना है। ब्रह्म की और आत्मा की सूक्ष्मता की हमने एक ही समान स्थिति सिद्ध की है,

अत आत्मा की सूक्ष्मता प्रकृति से सूक्ष्म ही माननी पडेगी। साख्यशास्त्र ने आत्मा और प्रकृति की सूक्ष्मता समान ही मानी है। यथा—

'प्रकृति पुरुषयोरन्यत्सर्वमनित्यम।' सा० अ० ५ म। सू० ७२॥
'न भागलाभो भोगिनो निर्भागत्वश्रुते।' सा० अ० ५। सू० ६३॥

—इन दोनो सूत्रो मे दोनो को नित्य माना है। दूसरे सूत्र मे 'भोगिन' का अर्थ है आत्मा, 'च' का अर्थ है प्रकृति और 'भागलाभ' का अर्थ है सावयव। 'न' का अर्थ है निषेध। इसका भावार्थ यह हुआ कि आत्मा और प्रकृति—मूल कारण प्रकृति ये दोनो निरवयव हैं।

अब इस सूत्र पर शका होती है कि जब प्रकृति निरवयव है, तो विकार किस मे होता है। निरवयव पदार्थ तो विकारवान नही होना चाहिये। वास्तव मे न्याय वैशेषिक शास्त्र परमाणुओ की इतनी सूक्ष्म अवस्था मानते है कि उनका फिर कोई और विभाग नही होता है। इनके परमाणु है भी नित्य। इनकी कारण रूप स्थिति मे विभक्त होने की नितान्त सभावना नही है। ये सयोग भाव को प्राप्त होकर सृष्टि की रचना करते है। स्वरूप से विकारी नही होते है। परन्तु सघात को प्राप्त होकर सृष्टि की रचना करते हैं—कार्य के आरम्भक हो जाते है। यह विभक्त हुई पञ्च भूतो की अत्यन्त सूक्ष्म अवस्था परमाणुओ के रूप मे सृष्टि का मूल कारण मानते है। आकाश को अलग सूक्ष्म और विभु मान कर इसमे इनकी स्थिति मानते है।

साख्य शास्त्रकार परमाणु से अलग तो प्रकृति को नही मानते है किन्तु जैसे इन अखण्ड परमाणुओ को इकट्ठा सा कर दिया जाये। वृत्तिकार और भाष्यकार इसी प्रकार की निरवयव प्रकृति की कारण अवस्था को मानते हैं। परन्तु इस निरवयव को परिणामिनी मानते है। इन्होने सर्वव्यापक विभु का तो कथन नही किया है। किन्तु आत्मा और प्रकृति को नित्य और निरवयव माना है। निरवयव मानने से व्याप्य व्यापक भाव सम्बन्ध भी नही बनता है। अत इन्होने इसके दो धर्म माने है। कारण रूप को नित्य और कार्य रूप को अनित्य। अब न्याय वैशेषिक के परमाणु सघात को प्राप्त हो सकते हैं। परन्तु साख्य वृत्तिकार और भाष्यकार की विभु और नित्य प्रकृति किस प्रकार कारण रूप मे रहकर खण्ड खण्ड भाव को या कार्य भाव को प्राप्त होती है, यह एक विवादास्पद विचारणीय विषय है। इस पर शका हो सकती है आप प्रकृति के दो गुण कैसे मानते है। विकारवान् और निर्विकारवान्, इस प्रकार के विरुद्ध धर्मों का समावेश 'वदतो व्याघात दोष' को उत्पन्न करता है। जब हम भगवान् को सगुण और निर्गुण मानते हैं, तब भी विरुद्ध धर्मों का समावेश हो जाता है। जो युक्ति सगत नही है, और प्रमाण विरुद्ध भी है। इसलिये ब्रह्म को निर्गुण ही सिद्ध करना पडता है। प्रकृति मे भी दो विरुद्ध धर्मों का समावेश कर के साख्य वृत्तिकार ने चक्र म डाल दिया है। अब इसका समाधान कैसे किया जाये। हमारी समझ मे तो यह ही आया है, कि आत्मा और ब्रह्म की अपेक्षा इस प्रकृति को कुछ स्थूल माना जाये और निरवयव न मानकर सावयव माना जाये तब ही परिणाम रूप धर्म सिद्ध होगा। अन्यथा निरवयव, नित्य और विभु होने से परिणाम धर्म सिद्ध नही होगा। ब्रह्म भी नित्य, निरवयव, और विभु है, उसमे परिणाम धर्म का अतिव्याप्ति दोष आ जायेगा। यह चेतन परिणामी

हो जायेगा। प्रकृति जड परिणामी हो जायेगी। यदि न्याय वैशेषिक के समान परमाणु रूप मान लेते तो सभव था कोई दोष उपस्थित न होता। अब तो वृत्तिकार ने नित्य भी माना है और निरवयव भी माना है। सूक्ष्म तथा विभु भी माना है। अध्याय १। सू० १०६ मे—'सौक्ष्म्यात्तदनुपलब्धि' मे आत्मा और प्रकृति दोनो को सूक्ष्म मान कर, इन दोनो की प्रत्यक्ष प्रमाण के द्वारा अनुपलब्धि मानी है। अत जड, निरवयव, विभु और सूक्ष्म भी है, ये सब धर्म परिणामी पदार्थ मे नही घट सकते है। यह कोई बुद्धिमत्ता का अर्थ, विचार, या सिद्धान्त नहीं है। इससे तो ससार की उत्पत्ति का सर्वथा अभाव सिद्ध हो जायेगा।

विवर्तवादियो ने भी ब्रह्म को चेतन मान कर निरवयव, सूक्ष्म, और सर्वव्यापक मानकर विवर्त सिद्ध किया है। जो शकायें इस प्रकृतिवाद पर साख्य-वृत्तिकार पर उपस्थित होती हैं, वे ही विवर्तवाद पर भी उपस्थित होती है। इन्होने जड को परिणाम-माना है। और उन्होंने एक प्रकार से चेतन का विवर्त मान लिया है। विवर्त भी तो एक *प्रकार का परिणाम हो है। वे भी चेतन ब्रह्म का स्वरूप से विवर्त नही मानते,* ये भी जड रूप का स्वरूप से परिणाम नही मानते। तब दोनो पर एक समान ही दोष उपस्थित होता है। वैसे ये दोनो ही खैचातानी करके इस दोष के निवारण के लिये समाधान भले ही करते है, परन्तु *हमारे जैसे व्यक्तियो को यह समाधान ठीक प्रतीत नही होता है।* परिणाम वाला, पदार्थ भी तो नित्य हो सकता है। जब हम कारण का अभाव नही मानते है। आप इसे दृष्टान्त से समझे। पहला दृष्टान्त—जैसे गेहूँ हैं। इनकी रोटी बनाकर खायी, शरीर मे जाकर यह मल बन गयी। फिर ये खाद के रूप मे तय्यार हुई, उसे गेहूँ के बूटे मे जा डाला, वहाँ *यह परिणाम भाव को प्राप्त होकर गेहूँ मे ही* जा पहुँचा, गेहूँ का परिणत हुआ भाग भोजन बना, खाद बना, फिर गेहूँ के रूप मे आ उपस्थित हुआ। दूसरा दृष्टान्त—गेहूँ बोया गया, वह अकुर बना, उससे बूटा बन गया। पकने पर उसमे गेहूँ निकल आये यहाँ कारण कार्य भाव को प्राप्त होकर भी नष्ट नही हुआ, पुन परिणत होता हुआ कारण रूप मे आ गया। अब यहाँ आप कारण की नित्यता कहेगे या परिणाम की नित्यता कहेगे अथवा कार्य की नित्यता कहेगे। नित्यता तो यहाँ वर्तमान है, परन्तु किसकी है। यह प्रश्न भी विचारणीय है। इसी ने सबको चक्र मे डाला है।

आरम्भवाद का सिद्धान्त है, कि गेहूँ के दाने के नष्ट हो जाने से अकुर से बूटा बना, और अकुर नष्ट हो जाने के पश्चात् गेहूँ उत्पन्न हुआ। ये कारण के सर्वथा नष्ट होने पर कार्य की उत्पत्ति मानते हैं। परन्तु योग साख्याकार कारण का सर्वथा विनाश नही मानते हैं *कारण रूप पदार्थ का अवस्थान्तर परिणाम मानते है।* जैसे गेहूँ परिवर्तन होते हुए फिर गेहूँ रूप मे आ गया। इस प्रकार कारण परिवर्तन होकर कार्य के रूप मे आ गया, कार्य जब विनाशभाव को, भाव को, या परिणाम को प्राप्त होता है तो वह पुन कारण की अवस्था मे पहुँच जाता है। यही बात प्रकृति पर लागू होती है। एक अवस्था कारण रूप है। दूसरी अवस्था परिणाम रूप है। तीसरी अवस्था कार्य रूप है। यहाँ कारण रूप द्रव्य की नित्यता का अभाव परिणाम काल मे भी नही माना है। और कारण की नित्यता का अभाव कार्य की अवस्था मे भी नही माना है। वह

कारण रूप पदार्थ परिणाम की अवस्था मे भी वर्त्तमान था, और कार्य की अवस्था मे भी वर्त्तमान रहा। एक ही पदार्थ तीन अवस्था वाला बना है। उसने अपने स्वरूप को खोया नही। वास्तविक स्वरूप उसका वर्तमान ही रहा। इसलिये योग साख्या ने उस कारण रूप अवस्था को नित्य कहा है। परिणाम अवस्था और कार्य अवस्था को अनित्य कहा है। इस कारण अवस्था को नित्य मान कर इसका विनाश नही माना है। इसको सूक्ष्म भी माना है, परन्तु आत्मा और ब्रह्म के समान सूक्ष्म नही। नित्य भी माना है।

अब शका यह होती है, कि शेप जो दो अवस्थाये हैं, परिणाम और कार्य, क्या ये इस कारण से भिन्न है। देखने मे कार्य भिन्न ही प्रतीत होता है। परन्तु ये इसको सूक्ष्म रूप अवस्था कहते है। इसका अभिप्राय यह है कि कारण के साथ कार्य का सूक्ष्म सम्बन्ध है, कार्य मे सूक्ष्म रूप से कारण भी है। भेद नही है। क्योकि कारण रूप पदार्थ ही परिणत होकर कार्य मे आया है, तब भेद कैसे हो सकता है। अब ये कारण रूप अवस्था को नित्य कहते हैं। क्योकि यह दोनो अवस्थाओ मे—परिणाम अवस्था और कार्य अवस्था मे भी साथ ही रही है। अब शका होती है, पदार्थ को नित्य माने या अवस्था को। पदार्थ को ही नित्य माना गया है, अवस्थाओ का परिणाम है, पदार्थ तो पदार्थत्वेन नित्य है। वास्तव मे पदार्थ और अवस्थाओ का यह भेद नही मानते है, अभेद ही मानते है।

विवर्तवादियो ने जब देखा कि इन साख्यवादियो की जड प्रकृति नित्य हो सकती है, अर्थात् स्वरूप से नित्य हो सकती है, और विकार भी इसका हो सकता है। विकारवान् होने पर भी इसके स्वरूप का नाश नही होता है। यह अनेक कार्य उत्पन्न कर के भी स्वरूप से वनी रहती है, निरवयव नित्य हो सकती है, तो हम क्यो न इसी प्रकार चेतन ब्रह्म को मान ले। हमारे विचार मे परिणाम और विवर्त का एक ही अभिप्राय है। ये जड प्रकृति का परिणाम कहते हैं वे चेतन का परिणाम कहते है। चेतन ब्रह्म ईश्वर भाव को प्राप्त होकर भी स्वरूप से नित्य और निरवयव बना रहता है और फिर जीव भाव को प्राप्त होकर भी स्वरूप से नित्य और निरवयव बना रहता है। अत विवर्तवादि ने एक ही ब्रह्म मान कर, उसकी अवस्थाओ को ईश्वर और जीव के रूप मे मान लिया है। अलग पदार्थ नही माना है। साख्यवादियो ने प्रकृति की अवस्था को परिणामी माना है, इन्होने ब्रह्म की अवस्थाओ को परिणामी माना है। है दोनो के परिणाम ही। इन्होंने चेतन होने से दूसरा शब्द विवर्त परिणाम के लिए दे दिया है। न तो प्रकृतिवादियो का चेतन के बिना कार्य सिद्ध होता है न विवर्तवादियो का प्रकृति या माया के बिना ससार की रचना सिद्ध होती है। अत इन्हों ने माया को अनादि सान्त मानकर ससार की रचना की है। साख्यवादियो ने अनादि सान्त न मान कर कारण रूप से नित्य और कार्य रूप से अनित्य मान कर ससार की रचना मानी है। विवर्तवादियो ने मोक्ष मे बिलकुल अभेद माना है, ब्रह्म के सिवा और कुछ नही माना है। अत इनका भी कैवल्य ही सिद्ध होता है। जैसे साख्य-वाद कार्य रूप मे प्रकृति को अनेक रूपो मे मानता है, इसी प्रकार विवर्तवाद ब्रह्म को अनेक रूपो मे मानता है। ईश्वर और जीवो के रूप मे दोनो के सिद्धान्त एक समान ही सिद्ध होते हैं। केवल जड और चेतन का ही अन्तर है। वैसे परिणाम विवर्त दोनो एक ही समान हैं। प्रश्न यह उठाया था कि क्या प्रकृति की सूक्ष्मता

भी आत्मा और ब्रह्म के समान ही है। जिस प्रकार हमने ऊपर वर्णन किया है कि वृत्तिकार आदिक के रूप से तो प्रकृति की सूक्ष्मता भी आत्मा और ब्रह्म के समान ही सिद्ध हो जाती है। जब विवर्तवादियों का ब्रह्म अपने स्वरूप और निरवयवता को न त्याग कर ईश्वर और जीव भाव को प्राप्त हो सकता है, तब इन सांख्यवादियों ने क्या अपराध किया है। जो इनकी प्रकृति अपने स्वरूप, निरवयवता, सूक्ष्मता और नित्यता को न त्याग कर ईश्वर जीव के समान सूक्ष्म न हो। इस परिस्थिति मे प्रकृति ब्रह्म और आत्मा की सूक्ष्मता एक जैसी ही माननी पड़ेगी। परन्तु पुनः शंका उपस्थित हो जाती है, कि तब ब्रह्म का व्याप्य व्यापक भाव सम्बन्ध किस प्रकार सिद्ध होगा ? जब तीनो समान रूप से सूक्ष्म है। कौन किस को व्याप्त करेगा ? अतः सांख्य ने ईश्वर या ब्रह्म को कोई विशेष महत्त्व नही दिया है। केवल प्रकृति और पुरुष का ही विशेष रूप से विवेचन किया है। तब ही तो आत्मा के समान प्रकृति की सूक्ष्मता कथन की है। परन्तु हम आत्मा को और ब्रह्म को प्रकृति से सूक्ष्म मानते है क्योंकि हम दोनों की सूक्ष्मता समान सिद्ध कर चुके है। जीवात्मा के समान सूक्ष्म मानने से तो बात बन सकती थी परन्तु ब्रह्म के समान प्रकृति को सूक्ष्म मानने से व्याप्य व्यापक भाव सम्बन्ध सिद्ध नही हो सकता है। अतः इन दोनों की अपेक्षा कुछ स्थूल स्वीकार करने पर ब्रह्म के साथ व्याप्य व्यापक भाव सम्बन्ध भी बन सकता है और परिणामिनी भी बन सकती है निरवयव मानने से नही।

विवर्तवाद का सिद्धान्त अद्वैतवाद है। वास्तव मे विचार किया जाये, तो इनका अद्वैत मोक्ष मे भले ही सिद्ध हो जाये, परन्तु सृष्टि की रचना मे तो इनको भी माया की स्थापना करनी पड़ी, और उसको अनादि सान्त मानना पड़ा। हम तो अद्वैत को तब यथार्थ समझते जब इस माया को भी न मानते। वर्तमान की वस्तु स्थिति देखते हुए, और कार्यात्मक जगत् को देखते हुए कैसे प्रकृति या माया की स्थिति मे इनकार कर सकते हैं। नाक को सीधी तरह न पकड़ कर, उलटा सीधा हाथ घुमाकर पकड़ने की कोशिश की, और फिर भी दूसरी वस्तु माया को मानना पडा। माया को अलग मान कर ही संसार की रचना का कार्य करना पड़ा। तब सांख्यवाद की प्रकृति को ही मानने मे क्या आपत्ति थी। इसे ही स्वीकार कर लेते। स्वतः सिद्ध पदार्थ संसार की रचना के लिये वर्तमान था। अन्य माया की कल्पना की क्या जरूरत थी।

प्रकृति अनादि नित्य है

हमे प्रकृति के विषय मे अनादि सान्त धर्म की बात भी यथार्थ प्रतीत नही होती है। जो कभी उत्पन्न नहीं हुई, सदा से अब तक नित्य चली आ रही है अब उसका नाश या अभाव कैसे हो सकता है। जबकि अब तक कभी नहीं हुआ। यदि पहले भी कभी सान्त हुआ होता, तो अब भी मान लेते। सान्त का अभिप्राय यदि नाश लेते है, तो जो अब तक नित्य रही है, आगे भी नित्य माननी पड़ेगी। जो सदा से नित्य चली आयी है, अब कैसे अनित्य हो सकती है। अच्छा होता सांख्य के समान माया का स्वरूप परिणामी मान लेते, कारण रूप से नित्य, कार्य रूप से अनित्य। अनादि सान्त मानकर उसको स्वरूप से ही नष्ट कर दिया। यदि मोक्ष के लिए सम्बन्धाभाव मान लेते

तो माया-प्रकृति का स्वरूप भी बना रहता और आत्मा का मोक्ष भी हो जाता। माया वर्त्तमान रहती अपने लिए नही, दूसरो के लिए सही। केवल कथन मात्र से तो वस्तु का अभाव नही होता है। मुक्तात्मा के लिए केवल प्रकृति या माया के सम्बन्ध का विच्छेद हुआ है, न कि वह पदार्थ नष्ट हो गया है, और फिर उत्पत्ति तो मानी नही विनाश मान लिया है, जिसकी उत्पत्ति हुआ करती है, उसका विनाश भी हुआ करता है। जिसकी कभी उत्पत्ति नही हुई है, उसका कभी विनाश भी नही हो सकता है। उस पदार्थ को तो नित्य ही मानना पडेगा। हाँ ! यह शका उठाई जा सकती है, कि नित्य का परिणाम नही हो सकता है। नित्य मे उत्पत्ति विनाश दो धर्म नही रह सकते हैं सर्वथा तो हम किसी पदार्थ का भी नाश नही मानते हैं। कारण रूप पदार्थ कार्य के रूप मे परिणत हुआ है, विनाश को प्राप्त नही हुआ है। इस प्रकार प्रकृति को नित्य और परिणामिनी मानकर काम चल सकता है। यदि हम अभाव मे भाव की उत्पत्ति मानते तब तो शका हो सकती थी। हम कारण का किसी भी काल मे अभाव नही मानते हैं, केवल परिवर्तन होते-होते अवस्थाओ का भेद हो जाना है जिसको सब लोग कार्य कहते है। स्वरूप मे पदार्थ का विनाश नही हुआ है। अनादि सान्त मानकर तो स्वरूप के नाश को ही माना गया है। अनादि सान्त पदार्थ सिद्ध नही होता है। केवल सम्बन्ध का विच्छेद हो सकता है। इसमे आत्मा का मोक्ष भी हो जाता है, और पदार्थ का विनाश या सान्त भाव भी नही होता है। मुक्त होने वाले को तो केवल अपने मोक्ष से ही मतलब है, न कि उस पदार्थ के नाश से। वह सम्बन्ध विच्छेद से ही सिद्ध हो जाता है। अत माया के अनादि सान्त धर्म सिद्ध नही होते हैं।

सर्व व्यापक चेतन तत्त्व ब्रह्म

प्राचीन काल से दृश्य अदृश्य तत्त्वो का विवेचन होता चला आ रहा है। इसके विवेचन विविध धाराओं के रूप मे प्रवाहित होते हुए चले आ रहे हैं। जिनका अजस्र स्रोत प्राचीन काल से आज तक सुरक्षित अभिलेखो द्वारा हमारे सामने उपस्थित है। अन्तर द्रष्टा ऋषि मुनियो ने अपनी विलक्षण प्रतिभा और अत्यन्त सूक्ष्म ऋतभरा बुद्धि द्वारा सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्त्वो का अनुसन्धान [illegible] महान् सफलता [illegible]। जहाँ मानव के समस्त भौतिक साधन कुण्ठित हो [illegible] अतीन्द्रिय सूक्ष्म [illegible] सम्प्रज्ञात समाधि द्वारा खोज निकाला है।

सृष्टि के प्रारम्भ मे जब ऋषि, [illegible] मनुष्यो [illegible] द्वारी भगवती माता वसुन्धरा के गर्भ से निक[illegible] [illegible] महान् आविर्भाव किया, इन[illegible] [illegible]नियो मे [illegible] [illegible] शीतोष्ण [illegible] अनुभव किया, आकाश [illegible] तारा [illegible] [illegible] गए। इन अद्भुत रचनाओं [illegible] को दे[illegible] [illegible] महान् शक्ति की [illegible] खोज कर डाली, जो [illegible] रचना [illegible] जड पदार्थ उत्पन्न हुए हैं।

इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की सुव्यवस्थित रचना को देखकर जिस का बडी चतुरता से निर्माण हुआ है, आधुनिक वैज्ञानिको की महान् से महान् सफलताये भी अत्यन्त तुच्छ एव नगण्य सी जान पडती है। प्रकृति का समष्टि कार्यात्मक पदार्थों पर विज्ञान का नियन्त्रण कहा है। विज्ञान तो केवल उसके कार्यों की साधारण रूप रेखा प्रस्तुत करता है। तब कौन कह सकता है कि उन आदि सृष्टि के महापुरुषो ने भौतिक अथवा प्रकृति के अन्तर्हित रहस्यो को गम्भीरता पूर्वक समझकर इनके पीछे बैठी हुई अचिन्त्य शक्ति को नही जाना होगा।

कोई विचारशील व्यक्ति इस बात को कैसे मानने के लिए तैयार होगा कि अज्ञात काल से मानव का चला आ रहा ईश्वर विषयक विश्वास सर्वथा खोखला और निराधार है। ससार के किसी भी भूखण्ड पर मनुष्य समाज का कोई भी ऐसा भाग नही है, या नही पाया गया है, जो ईश्वर के अस्तित्व या उसकी अचिन्त्य चेतन सत्ता के प्रति विश्वास या श्रद्धा भक्ति न रखता हो उसके प्रति विरोध भी है, परन्तु विरोध की भावना सदा भयावह रहती है। भौतिकवाद भी ईश्वर के प्रति श्रद्धा भक्ति रखने की भावना को शिथिल न कर सका, कुचल न सका, मिटा न सका।

जीवन भर ईश्वर को गाली देने वाले व्यक्तियो को भी अन्त मे यह कहते सुना गया है—'हे देव! सारा जीवन आपका विरोध किया, आपसे सदा लडाई भी करता रहा परन्तु आपको मैंने अत्यन्त बलवान्, अचिन्त्य शक्ति वाला पाया। आपके सामने अन्त मे हार मान ली। तेरा पार पाना अत्यन्त कठिन है।

ईश्वर के विषय मे विचार दो दृष्टि कोणो से किया जाता है। एक धार्मिक, दूसरा दार्शनिक। यह बात निर्विवाद कही जा सकती है, कि ससार का कोई भी समाज ऐसा नही है, जो सामूहिक रूप मे धार्मिक दृष्टि से अधूरा हो। वास्तव मे धार्मिक दृष्टिकोण का जन्म ही ईश्वर मानव पर आधारित है। ससार का प्रत्येक मत किसी न किसी रूप मे ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करता है।

प्राचीन चार्वाक मत और आधुनिक मार्क्सवाद मत ईश्वर के विषय मे अपवाद अवश्य है। यदि गम्भीरता से विचार किया जाये तो ये लोग भी ऐसे ही ईश्वर के विरोधी हैं, जिसके नाम पर अनेक प्रकार के मिथ्या आडम्बर किए जाते है। वर्त्तमान मे मार्क्सवाद के कट्टर अनुयायी रूस के प्रधान मन्त्री श्री निकेता ख्रुश्चेव ने भी कह दिया, *कि न्यूट्रल (तटस्थ) ईश्वर को तो हम भी मानते हैं, जो चेतन सत्ता है परन्तु है वह तटस्था* सो इस प्रकार की चेतन सत्ता को मार्क्सवादी भी स्वीकार करते हैं। जो निष्क्रिय परिणाम रहित, निरवयव सर्वव्यापक हो, जिसके सन्निधान से प्रकृति क्रिया शील हो सब कुछ कर रही है। दृश्य और अदृश्य दोनो रूपो मे। इस प्रकार की चेतन सत्ता को वर्त्तमान के नास्तिक भौतिक विज्ञानवादी अथवा मार्क्सवादी भी स्वीकार करने लगे हैं।

दूसरा दृष्टिकोण दार्शनिक है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण भी इसके अन्तर्गत है। जब हम किसी पदार्थ का विवेचन करते हैं, और उसे केवल विचारो द्वारा प्रस्तुत करते हैं, वह दर्शन या शास्त्र का रूप है उसी को क्रियात्मक रूप मे प्रस्तुत करना विज्ञान है। ईश्वर की सिद्धि मे यह सर्वोत्तम परख या कसौटी है। भारतीय परम्परा के आधार पर दर्शनो के दो भाग हो गए है. १. आस्तिक दर्शन २. नास्तिक दर्शन। इनको आध्यात्मिक

तो माया प्रकृति का स्वरूप भी बना रहता और आत्मा का मोक्ष भी हो जाता। माया वर्तमान रहती अपने लिए नही, दूसरो के लिए सही। केवल कथन मात्र से तो वस्तु का अभाव नही होता है। मुक्तात्मा के लिए केवल प्रकृति या माया के सम्बन्ध का विच्छेद हुआ है, न कि वह पदार्थ नष्ट हो गया है, और फिर उत्पत्ति तो मानी नही विनाश मान लिया है, जिसकी उत्पत्ति हुआ करती है, उसका विनाश भी हुआ करता है। जिसकी कभी उत्पत्ति नही हुई है, उसका कभी विनाश भी नही हो सकता है। उस पदार्थ को तो नित्य ही मानना पडेगा। हाँ! यह शका उठाई जा सकती है, कि नित्य का परिणाम नही हो सकता है। नित्य मे उत्पत्ति विनाश दो धर्म नही रह सकते है सर्वथा तो हम किसी पदार्थ का भी नाश नही मानते है। कारण रूप पदार्थ कार्य के रूप मे परिणत हुआ है, विनाश को प्राप्त नही हुआ है। इस प्रकार प्रकृति को नित्य और परिणामिनी मानकर काम चल सकता है। यदि हम अभाव मे भाव की उत्पत्ति मानते तब तो शका हो सकती थी। हम कारण का किसी भी काल मे अभाव नही मानते हैं, केवल परिवर्तन होते होते अवस्थाओ का भेद हो जाता है जिसको सब लोग कार्य कहते है। स्वरूप से पदार्थ का विनाश नही हुआ है। अनादि सान्त मानकर तो स्वरूप के नाश को ही माना गया है। अनादि सान्त पदार्थ सिद्ध नही होता है। केवल सम्बन्ध का विच्छेद हो सकता है। इससे आत्मा का मोक्ष भी हो जाता है, और पदार्थ का विनाश या सान्त भाव भी नही होता है। मुक्त होने वाले को तो केवल अपने मोक्ष से ही मतलब है, न कि उस पदार्थ के नाश से। वह सम्बन्ध विच्छेद से ही सिद्ध हो जाता है। अत माया के अनादि सान्त धर्म सिद्ध नही होते है।

सर्व व्यापक चेतन तत्त्व ब्रह्म

प्राचीन काल से दृश्य अदृश्य तत्त्वो का विवेचन होता चला आ रहा है। इसके विवेचन विविध धाराओ के रूप मे प्रवाहित होते हुए चले आ रहे है। जिनका अजस्र स्रोत प्राचीन काल से आज तक सुरक्षित अभिलेखो द्वारा हमारे सामने उपस्थित है। अन्तर द्रष्टा ऋषि मुनियो ने अपनी विलक्षण प्रतिभा और अत्यन्त सूक्ष्म ऋतभरा बुद्धि द्वारा सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्त्वो का अनुसन्धान करने मे महान् सफलता प्राप्त की है। जहाँ मानव के समस्त भौतिक साधन कुण्ठित हो जाते है, उन अतीन्द्रिय सूक्ष्म तत्त्वो को सम्प्रज्ञात समाधि द्वारा खोज निकाला है।

सृष्टि के प्रारम्भ मे जब ऋषि, मुनि, देव, और मनुष्यो ने सब जन्म दात्री भगवती माता वसुन्धरा के गर्भ से निकलकर इस दृश्यमान ससार को देखकर महान् आश्चर्य किया इस अनोखी दुनिया मे आकर भूख प्यास, शीतोष्ण का सर्व प्रथम अनुभव किया, आकाश मे सूर्य, चन्द्र, तारा मण्डल आदि को देखकर हक्के-बक्के रह गए। इन अद्भुत रचनाओ और लीलाओ को देखकर, इनकी बनाने वाली रचना करने वाली महान् शक्ति की खोज मे—अनुसन्धान मे लग गए। तत्पश्चात् एक ऐसे चेतन तत्त्व की खोज कर डाली जो इस सृष्टि की रचना करने वाला है। जिसके सान्निध्य से ये सब जड पदार्थ उत्पन्न हुए। इस सर्व व्यापक चेतन तत्त्व को हम ईश्वर के नाम से पुकारते है।

इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की सुव्यवस्थित रचना को देखकर जिस का बडी चतुरता से निर्माण हुआ है, आधुनिक वैज्ञानिको की महान् से महान् सफलतायें भी अत्यन्त तुच्छ एव नगण्य सी जान पड़ती है। प्रकृति का समष्टि कार्यात्मक पदार्थों पर विज्ञान का नियन्त्रण रहा है। विज्ञान तो केवल उसके कार्यो की साधारण रूप रेखा प्रस्तुत करता है। तब कौन कह सकता है कि उन आदि सृष्टि के महापुरुषो ने भौतिक अथवा प्रकृति के अन्तर्हित रहस्यो को गम्भीरता पूर्वक समझकर इनके पीछे बैठी हुई अचिन्त्य शक्ति को नही जाना होगा।

कोई विचारशील व्यक्ति इस बात को कैसे मानने के लिए तैयार होगा कि अज्ञात काल से मानव का चला आ रहा ईश्वर विषयक विश्वास सर्वथा खोखला और निराधार है। ससार के किसी भी भूखण्ड पर मनुष्य समाज का कोई भी ऐसा भाग नही है, या नही पाया गया है, जो ईश्वर के अस्तित्व या उसकी अचिन्त्य चेतन सत्ता के प्रति विश्वास या श्रद्धा भक्ति न रखता हो उसके प्रति विरोध भी है, परन्तु विरोध की भावना सदा भयावह रहती है। भौतिकवाद भी ईश्वर के प्रति श्रद्धा भक्ति रखने की भावना को शिथिल न कर सका, कुचल न सका, मिटा न सका।

जीवन भर ईश्वर को गाली देने वाले व्यक्तियो को भी अन्त मे यह कहते सुना गया है—'हे देव! सारा जीवन आपका विरोध किया, आपसे सदा लड़ाई भी करता रहा परन्तु आपको मैंने अत्यन्त बलवान्, अचिन्त्य शक्ति वाला पाया। आपके सामने अन्त मे हार मान ली। तेरा पार पाना अत्यन्त कठिन है।

ईश्वर के विषय मे विचार दो दृष्टि कोणो से किया जाता है। एक धार्मिक, दूसरा दार्शनिक। यह बात निर्विवाद कही जा सकती है, कि ससार का कोई भी समाज ऐसा नही है, जो सामूहिक रूप मे धार्मिक दृष्टि से अधूरा हो। वास्तव मे धार्मिक दृष्टि कोण का जन्म ही ईश्वर मानव पर आधारित है। ससार का प्रत्येक मत किसी न किसी रूप मे ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करता है।

प्राचीन चार्वाक मत और आधुनिक मार्क्सवाद मत ईश्वर के विषय मे अपवाद अवश्य है। यदि गम्भीरता से विचार किया जाये तो ये लोग भी ऐसे ही ईश्वर के विरोधी हैं, जिसके नाम पर अनेक प्रकार के मिथ्या आडम्बर किए जाते हैं। वर्त्तमान मे मार्क्सवाद के कट्टर अनुयायी रूप के प्रधान मन्त्री श्री निकेता ख्रुश्चेव ने भी कह दिया, कि न्यूट्रल (तटस्थ) ईश्वर को तो हम भी मानते हैं, जो चेतन सत्ता है परन्तु है वह तटस्था सो इस प्रकार की चेतन सत्ता को मार्क्सवादी भी स्वीकार करते हैं। जो निष्क्रय परिणाम रहित, निरवयव सर्वव्यापक हो, जिसके सन्निधान से प्रकृति क्रिया शील हो सब कुछ कर रही है। दृश्य और अदृश्य दोनो रूपो मे। इस प्रकार की चेतन सत्ता को वर्त्तमान के नास्तिक भौतिक विज्ञानवादी अथवा मार्क्सवादी भी स्वीकार करने लगे हैं।

दूसरा दृष्टिकोण दार्शनिक है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण भी इसके अन्तर्गत है। जब हम किसी पदार्थ का विवेचन करते है, और उसे केवल विचारो द्वारा प्रस्तुत करते हैं, वह दर्शन या शास्त्र का रूप है उसी को क्रियात्मक रूप मे प्रस्तुत करना विज्ञान है। ईश्वर की सिद्धि मे यह सर्वोत्तम परख या कसौटी है। भारतीय परम्परा के आधार पर दर्शनो के दो भाग हो गए हैं। १. आस्तिक दर्शन २. नास्तिक दर्शन। इनको आध्यात्मिक

दर्शन और भौतिक विज्ञानवादी दर्शन भी कहते हैं। आस्तिक दर्शनो मे योग, साख्य, न्याय, वैशेषिक, वेदान्त और मीमासा दर्शन है। भौतिकवाद मे चार्वाक, जैन, बौद्ध, मार्क्सवाद आदि दर्शन है। दोना वादो मे अध्यात्म और अधिभूत का सम्मिश्रण है। विशुद्ध रूप मे किसी एक भाग को किसी के साथ जोडा नही जा सकता है। यदि इस स्तर पर हम पाश्चात्य दर्शनो को भी रख ले और फिर विचार करे कि ये दर्शन हमे ईश्वर के विषय मे कहाँ ले जाकर छोडते हैं, तो वस्तुत हम इन सब मार्गों द्वारा एक ही लक्ष्य या स्थान पर पहुँच जायेगे, और वह होगा इन सबमे परे और अत्यन्त महान् विलक्षण चेतन तत्त्व।

बहुत से भौतिक विज्ञानवादी लोग तो ईश्वर का नाम सुनते ही झुँझला या बौखला जाते हैं। वस्तुत हमे किसी नाम पर सघर्ष नही करना चाहिए, हमारे विचार और मनन का विषय तो चेतन वस्तु तत्त्व है, नाम उसका कुछ भी रख ले।

निरीश्वरवादी चेतन के बिना जगत् की व्याख्या करने मे असफल ही रहे हैं किसी बात को शब्द मात्र से ही कहते जाना दूसरी बात है। परन्तु उसकी गहराई मे पहुँचकर उसकी वास्तविकता को समझने, देखने, यत्नपूर्वक अधिक से अधिक सचाई-पूर्वक उसके समीप पहुँचने मे अवश्य सुविधा और सफलता होती है।

निरीश्वरवाद मे यह मान्यता है कि जगत् परिवर्तनशील है, और स्वय ही बनने बिगडने अथवा उत्पन्न और विनष्ट होने वाला है। इसका तात्पर्य यह है, कि मूल जड तत्त्व इस जगत् के रूप मे परिणत होते है, उनमे स्वत ही प्रवृत्ति होती है। उनकी क्रिया या प्रवृत्ति का कोई अन्य प्रेरक या नियोजक ईश्वर चेतन तत्त्व नही है। पञ्चभूत स्वय ही ससार का निर्माण करते हैं। अत किसी अन्य चेतन तत्त्व की निमित्त कारण रूप मे आवश्यकता नही।

यह कह देना तो सरल है, परन्तु इसे बुद्धि द्वारा विवेकपुर्वक विचार किया जाये, तो वह बालू का महल खडा करने के समान ही साबित होगा। ससार मे कोई भी जड तत्त्व स्वाचालित दृष्टिगोचर प्रतीत नही होता है। कोई भी रचना ऐसी नही जानी गयी है, जहाँ चेतन की प्रेरणा के बिना जड तत्त्व मे स्वत क्रिया होकर नवनिर्माण हो गया हो। जहाँ हमे स्वाचालित क्रिया की प्रतीति भ्रान्ति से हो जाती है, वहाँ यदि हम उसकी परिस्थिति को पूर्वापर का विचार कर गम्भीरता से बुद्धिपूर्वक मनन कर तो हम उन प्रवृत्तियो के पीछे किसी चेतन की प्रेरणा झाँकती हुई स्पष्ट रूप मे प्रतीत होगी। दार्शनिक दृष्टिकोण से स्वचालित सिद्धान्त निराधार ही समझना चाहिये।

साख्य शास्त्र के लिए एक प्रवाद प्रचलित है, कि जगत् के मूल उपादान कारण प्रकृति को स्वतन्त्रकर्त्री माना है। इस का तात्पर्य यह समझा जाता है, कि प्रकृति मे समस्त प्रवृत्तियाँ चेतन की प्रेरणा के बिना ही हुआ करती है। परन्तु वास्तव मे बात ऐसी नही है। साख्य सिद्धान्त मे प्रकृति के लिए कर्त्री पद पारिभाषिक है। यह इसकी परिणामता का ही द्योतक या बोधक है। इसमे इस प्रकृति का स्वातन्त्र्य यही है कि यह परिणाम की सीमा मे किसी का सहयोग नही लेती है। अर्थात् जगत् रूप परिणाम मे प्रकृति के साथ अन्य किसी की साझेदारी नही है, क्योकि परिणाम केवल प्रकृति मे ही हो सकता है। अन्य किसी आत्म तत्त्व या ब्रह्म तत्त्व मे हो, सभव नही है। साख्य शास्त्र मे प्रकृति

के स्वतन्त्र कर्तृत्व का यही तात्पर्य है। इसी कारण सांख्य दर्शनकार श्री कपिल मुनिजी ने 'ईश्वरासिद्धेः' अ० १।९२ में चेतन तत्त्व ईश्वर की उपादान कारणता का निषेध किया है, जैसा कि अद्वैतवादी, विशिष्ट द्वैतवादी मानते हैं। सूत्र का स्पष्ट और प्रकरण अनुसार यही अर्थ है कि उपादान भूत ईश्वर सांख्य में असिद्ध है। इस प्रकरण के अन्त में इस सूत्र ने ईश्वर के विषय में यह वर्णन किया है। यथा—

'तत्सन्निधानादधिष्ठातृत्वं मणिवत् ।'

सांख्य० अ० १। सू० ८६॥

—इस सूत्र के अनुसार ईश्वर को सन्निधान मात्र से जगत् का अधिष्ठाता माना गया है। इस सन्निधान के कारण गुणों का आरोप करते हुए इस सूत्र का उल्लेख किया गया है यथा—

'सः हि सर्ववित् सर्वकर्ता। ५६॥'
ईदृशेश्वरसिद्धिः सिद्धा ।५७॥' —सांख्य० अ० ३॥

—ये सूत्र इसी चेतन तत्त्व ईश्वर के पोषक हैं। उसके सन्निधान मात्र से उसमे कर्तापन और सर्वज्ञता गुणो का आरोप किया गया है '

सांख्य के एक और आचार्य हुए है, श्री पञ्चशिखा आचार्य, इनका इस विषय में एक सन्दर्भ है—

'पुरुषाधिष्ठितं प्रधानं प्रवर्तते।'

—पुरुष के अधिष्ठातृत्व मे प्रधान—प्रकृति की प्रवृत्ति होती है।' इस प्रमाण से भी स्पष्ट हो जाता है, पुरुष से यहाँ अभिप्रायः ईश्वर का है। पुरुष को अधिष्ठान मानकर प्रधान-प्रकृति की प्रवृत्ति, क्रिया या गति होती है। अतः सांख्य के आधार पर स्वचालित का वाद खडा नही किया जा सकता।

हाँ! सांख्य के एक और आचार्य 'वर्षगण्य' हुए हैं। इन का एक सन्दर्भ उपलब्ध होता है। यथा—

'प्रधान-प्रवृत्तिरप्रत्यय पुरुषेणापरिगृह्यमाणादिसर्गेप्रवर्तते'

इनके सिद्धान्त के आधार पर कहा जाता है कि प्रधान की प्रवृत्ति मे चेतन पुरुष की उपेक्षा की है। वास्तव मे इसी सिद्धान्त के आधार पर जैन-बौद्ध धर्मावलम्बियों ने अपनी मान्यताओं की पुष्टि की है जैन-बौद्ध शास्त्रकारो मे अनेक विकल्पों की उद्-भावना करके जगन्नियन्ता ईश्वर के अस्तित्व के विषय में अनेक सन्देह उत्पन्न करने का प्रयास किया है। परन्तु वास्तव मे इनके विकल्प और सन्देह इनकी अपनी ही मान्यताओं के आधार पर सर्वथा ओछे और खोखले सिद्ध होते है।

दार्शनिक जगत् मे यह एक प्रसिद्ध दृष्टिकोण कहा जाता है कि इस समस्त विश्व का कोई एक मूल तत्त्व होना चाहिये। इस मूल तत्त्व को अद्वैतवादी चेतन तत्त्व कहते है। बार्हस्पत्य, चार्वाक, आधुनिक भौतिक विज्ञानवादी एवं मार्क्सवादी जड तत्त्व कहते है। यदि मूल तत्त्व एक है, तो वह जड या चेतन दोनो ही रूप होना ठीक नही है। इन दोनों वादों में मूल तत्त्व के अनुसार यही व्यवस्था प्रस्तुत की जाती है कि चेतन जड़ के रूप में, अथवा जड़ चेतन के रूप मे परिणत हो जाते हैं, यदि यह मान्यता ठीक मानी

जाये, और कसौटी पर खरी उतर जाये तो यह ईश्वर तत्त्व के माने जाने मे बडी महान् और विकट बाधा उपस्थित होती है। यदि चेतन जड हो जाता है, तो इस अद्वैतवाद की क्या विशेषता रह जाती है। जब कि दूसरा वाद जड वा चेतन रूपेण परिणाम मानता है, अर्थात् चेतन को जड का परिणाम माना गया है। फलत यह दोनो ही वाद एक ही स्तर पर खडे है। जहाँ मूल तत्त्व को एक माना है। जगत् के वैचित्र्य को देख कर उसके मूल का एक ही चेतन या अचेतन रूप मे निश्चय किया जाना सशय भरा है। चेतन का परिणाम अचेतन या अचेतन का परिणाम चेतन मानने पर इन दोनो सिद्धान्तो की मान्यताओ मे अन्तर देखने मे नही आता है। एक मूल तत्त्व के दो नाम जड या चेतन रख लेने पर वस्तुतत्त्व का स्वरूप तो एक ही रहता है। जड और चेतन तत्त्व परस्पर मे अन्धकार और प्रकाश के समान विरोधी देखने मे आते है, जिन दार्शनिक आचार्यो ने केवल मात्र एक जड तत्त्व को स्वीकार किया है उनके सिद्धान्त मे ईश्वर तत्त्व का कोई भी महत्त्व नही है, और न ही इसकी अपेक्षा है। अत इस पक्ष मे इनका कोई भी दावा नही है। परन्तु जो अद्वैतवाद को मानने वाले एक ही चेतन तत्त्व को मानते है, वे ब्रह्म तत्त्व की स्थापना करते है। उनकी यह मान्यता उस समय भ्रान्ति युक्त एव आधारहीन प्रतीत होने लगती है जब वे अपनी यह मान्यता प्रकट करते है कि एक ही चेतन तत्त्व जड रूप अथवा चेतन रूप मे प्रकट होता रहता है। इन मान्यताओं के साथ जगत् की स्पष्ट और वास्तविक व्याख्या करने मे वे असमर्थ एव अक्षम पाते हैं।

वास्तव मे चेतन और जड तत्त्व को अस्तित्व को स्वतन्त्र रूप से मूलत स्वीकार करना ही एक ऐसा सर्वोत्तम श्रेष्ठ मार्ग है, जो ईश्वर या जगत् प्रेरक के अस्तित्व को निर्बाध सिद्ध करता है।

यह एक बडे आश्चर्य की बात है कि चेतन अचेतन के स्वतन्त्र अस्तित्व को मूलत स्वीकार करके व्याख्या की गयी है, वह विचारको को अधिक से अधिक सचाई के समीप ले जाने मे सहायक है। और किसी निर्दिष्ट दिशा मे एक सर्वोच्च नियामक शक्ति के स्वीकार करने का पथ प्रदर्शन होता है। जो यथार्थ मे श्रेय की ओर ले जाता है। उस वास्तविक सिद्धान्त से भौतिक विज्ञानवादी और चेतन परिणामवादी सर्वथा ही आँख बन्द किये बैठे है।

ब्रह्म लोक मे आनन्द की प्राप्ति

(शका) क्या आप ब्रह्म लोक को लोक विशेष मानते है, या नही, जहाँ मुक्त आत्मायें जाकर निवास करती हैं, और विशेष आनन्द का उपभोग करती है?

(समाधान) हम आत्मा को निर्गुण मानते है, और मुक्ति की अवस्था मे सर्व प्रकार के शरीरो का अभाव भी मानते है। जिनके द्वारा ब्रह्म के आनन्द का उपभोग हो सके। आनन्द की प्राप्ति के सर्व साधना का अभाव होने से ब्रह्मानन्द की अनुभूति नही होती। केवल आत्मा अपने स्वरूप मे स्थित होता है। इस विषय की पुष्टि साख्य दर्शन करता है। यथा

'नानन्दाभिव्यक्ति मुक्तिर्निर्धर्मत्वात्।' सा० अ० ५। सू० ७४॥

—मुक्ति की अवस्था मे आनन्द की अभिव्यक्ति नही होती है, क्योकि आत्मा सर्व धर्मो से रहित है।' ससार की दशा मे जब आत्मा मे भोक्तृत्व धर्म मान लिया था, वहाँ केवल चित्त के सन्निधान से आरोप कर दिया गया था। अब उस सान्निध्य का अभाव हो गया है, अत आरोप भी जाता रहा है। अब कैवल्य भाव को प्राप्त हो गया है। कैवल्य का अर्थ है अकेलापन। किसी के साथ कोई भी सम्बन्ध नही रहा है अर्थात् सर्व सम्बन्धो से मुक्त हो गया है।

अब रहा ब्रह्म लोक, जब आत्मा ने किसी भी प्रकार के सुख या आनन्द का उपभोग नही करना है, उसके लिए सवत्र ही ब्रह्म लोक है, जहाँ-जहाँ ब्रह्म का निवास है। इस लोक का कोई स्थान विशेष नही होना चाहिये। जब हमने ३२ कार्यात्मक पदार्थो का और एक कारण रूप प्रकृति का वर्णन किया है, तब ब्रह्म की सबसे महान् सूक्ष्मता का वर्णन करते हुए और सब से सूक्ष्म सिद्ध करने के लिए और विज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रत्येक पदार्थ की पहले की अपेक्षा सूक्ष्मता का वर्णन किया है, यदि इन्ही पदार्थो को ब्रह्म लोक कह दिया जाये तो सर्व श्रेष्ठ होगा। इन ३३ पदार्थो की अपेक्षा और कोई ब्रह्म लोक विशेष नही है। लोक विशेष होता है एक देशी पदार्थ का, ब्रह्म तो सर्व लोको मे सर्व देशा म व्यापक रूप से वर्त्तमान है। सम्पूर्ण समस्त ब्रह्माण्ड ही भगवान् का ब्रह्म लोक है। पदार्थो का स्थूल सूक्ष्म दृष्टि से जब सब का क्रमपूर्वक यथार्थ ज्ञान हो जाना है। अन्त मे केवल ब्रह्म ही विज्ञान का विषय रह जाता है, सब से सूक्ष्म होने से इसे भी ब्रह्म लोक कह सकते है। अथवा प्रकृति की कारण अवस्था मे जो व्याप्य व्यापक भाव अंतिम सम्बन्ध है उसको भी ब्रह्म लोक कह सकते हैं।

स्वर्ग मे आनन्द का उपभोग

(शका) स्वर्ग लोक अर्थात् पञ्चतन्मात्राओ के लोक विशेष मे दिव्य सूक्ष्म शरीर के द्वारा भोगविशेष माना गया है, वहाँ सूक्ष्म दिव्य विषयो का भाग भी मानते है, और ब्रह्म क आनन्द का उपभोग भी ?

(समाधान) इस प्रकार के लोक विशेष को तो हम भी मानते है, ये तो प्रकृति के कार्य-विशेष अवस्था का और सूक्ष्म तन्मात्राओ की अवस्थाओ का उपभोग है, इनको शास्त्रकार दिव्य भोग कहते हैं, इनका भोग सूक्ष्म शरीर करते हैं। इन स्थूल लोको की अपेक्षा वह लोक अलग ही माना गया है। इन सूक्ष्म शरीरो का फिर स्थूल विषयो के साथ कोई सम्बन्ध नही रहता है। उनका केवल सूक्ष्म तन्मात्राओ से ही भोगात्मक सम्बन्ध रहता है। इन सूक्ष्म भोगा के स्वर्ग लोक विषय मे आचार्यो ने ऐसा कथन किया है, क्षीणेपुण्ये मर्त्यलोक विशन्ति।' इस स्वर्गलोक के भोगा को भोगते हुए जब स्वर्ग की अवधि समाप्त हो जाती है तब फिर मर्त्यलोक मे लौट कर आना पडता है। रही ब्रह्मानन्द की बात इस स्वर्गलोक मे वे इस लोक के समान ध्यान समाधि लगा कर ब्रह्मानन्द का उप भोग करते हो तो यह भी सभव हो सकता है। उस ब्रह्मानन्द का भोग तो योगी या भक्तजन इस लोक मे भी ध्यान समाधि द्वारा करते हैं, केवल अन्तर इतना है कि स्वर्ग मे सूक्ष्म भूतो का भोग होता है यहाँ स्थूल भूतो का ही। यहाँ की अवधि थोडी है, स्वर्ग की अवधि बहुत लम्बी है। यहाँ के भोग प्रयत्न साध्य हैं, स्वर्ग के केवल

संकल्पमात्र से ही प्राप्त हो जाते है। मीमांसा दर्शन में भी विश्वजित् आदि स्वर्गफलाधिकरण में कहा है। यथा—

'सः स्वर्गः स्यात् सर्वान्प्रत्यविशिष्टत्वात्।' मीमांसा अ० ४। सूत्र १५॥

—स्वर्ग मे सबका भोग समान होता है। विशेष अविशेष का भेद नही होता। इस लोक में भोगों का भेद है, स्वर्ग मे सब का समान ही भोग है।' और भी कहा है। यथा—

'काम्ये कर्मणि नित्यः स्वर्गो यथा यज्ञांगे क्रत्वर्थः।'

मीमांसा अ० ४। सू० २०॥

—काम्य कर्म निमित्तक स्वर्ग की अवधि लम्बी होती है, इतनी लम्बी कि उसे नित्य कहा जाता है।

स्वर्ग लोक में ईश्वर का सिंहासन

सिद्धान्ती—हमारे पैगम्बर साहब ईश्वर के बेटे हैं। वे अपने भक्तों की सिफारिश कर के पाप क्षमा करा देते हैं।

(समाधान)—यदि आप के पैगम्बर को ईश्वर का बेटा मान लिया जाये तब तो ईश्वर भी इस लोक के समान एक गृहस्थ मनुष्य हो जायेगा। वह किसी एक देश में रहने वाला ही होगा। फिर तो उसकी पत्नी आदि भी माननी पडेगी। यदि कोई आदि सृष्टि मे पैदा हुआ होता तब भी कोई बात मानने योग्य होती। क्योंकि आदि सृष्टि मे बिना माँ-बाप के ही मानव की उत्पत्ति हुई थी। आप के पैगम्बर को तो उत्पन्न हुए कुछ ही हजार वर्ष हुए होगे। सृष्टि तो इनसे अरबो वर्ष पहले की है। अतः ईश्वर का बेटा होना असम्भव सी ही बात है। यदि ईश्वर के दरबार मे इनकी सिफारिश चलती है, और पाप क्षमा हो जाते है, तब तो पाप और पुण्य में कोई भी अन्तर नही रहेगा, क्योकि सिफारिश से पापी भी तर जाते हैं। इस लोक मे कोई भी अच्छे कर्म नही करेगा, केवल पैगम्बर साहब पर ही ईमान लाने से सिफारिश मिल जायेगी। तब ईश्वर के हाँ भी बे इनसाफी माननी पडेगी, क्योंकि पाप का दण्ड न दे कर पुण्यो का सा ही फल प्रदान करता है। इस प्रकार के एक देशी ईश्वर, जिसके पास शिफारिश चलती हो असख्या लोक-लोकान्तरो के असंख्य मनुष्यो के यथार्थ इन्साफ की सम्भावना नहीं रखनी चाहिये।

सिद्धान्ती—हिन्दू धर्म में भी तो, कृष्ण, राम, शंकर, विष्णु आदि को भगवान् माना गया है, वे भी तो एक देशी थे, गृहस्थ थे। जब वे भगवान् बन सकते है, तो हमारे भगवान् पर आप क्यों आपत्ति उठाते हो?

(समाधान)हम भगवान् कृष्णचन्द्र जी के ही वचनों द्वारा समाधान करते हैं, अपनी गीता में इन्होने एक श्लोक दिया है। यथा—

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि, न त्वं वेत्थ परन्तप।

॥ गीता अ० ४। श्लोक ५॥

—हे अर्जुन मेरे बहुत से जन्म बीत चुके हैं आपके भी। अर्थात् तेरे मेरे अनेक जन्म हो चुके हैं। मैं उनको योग बल से जानता हूँ, परन्तु आप नही जानते।'

इस श्लोक से तो यह सिद्ध होत है, कि सर्व साधारण मनुष्यों के समान उनके भी अनेक जन्म हुए, यदि ईश्वर का भी जन्म होना मान ले, तब तो वह भी अस्मदादि

सदृश मनुष्य हो जायेगा। परन्तु हम तो भगवान् को नित्य, निरवयव, निर्विकार, असग, अजन्मा और सर्वव्यापक मानते हैं, अत एक देशी ईश्वर मान लेने से अनन्त ब्रह्माण्ड का सृजन सहार आदि कार्य न हो सकता और न चल सकता है। श्रीकृष्ण चन्द्र आदि को जो भगवान् की उपाधि दी गयी है, या भगवान् का इनमे आरोप किया गया है, वह इसलिये कि इनको योग की अणिमा, महिमा आदि अष्ट सिद्धियाँ सिद्ध थी, और १६ कला पूर्ण थे। पर सृष्टि की रचना करने वाले भगवान् नही थे। वह भगवान् तो सर्व कलाओ से रहित है, सर्वव्यापक, अजन्मा, नित्य और असग है।

सिद्धान्ती—स्वर्ग मे ईश्वर के सिंहासन के पास हमारे पैगम्बर साहब का भी सिंहासन होता है। मरने के पश्चात जो मुरदे कब्र मे दफनाये जाते हैं, कयामत (प्रलय) के समय खुदा के सामने उपस्थित होते है, स्वयभू इन्हे अच्छे बुरे, या पाप पुण्यमय कर्मो का फल प्रदान करके स्वर्ग नरक मे भेज देता है, इस अवसर पर पैगम्बर साहब की सिफारिश महा कल्याण का हेतु होती है।

(समाधान) यदि स्वर्ग मे पैगम्बर साहब और खुदा का आसन माना जाये तो इस लोक और स्वर्ग लोक मे कोई भी अन्तर नहीं हुआ, क्योंकि मर्त्य लोक मे भी राजे-महाराजो के सिंहासन बहुमूल्य मोती हीरे आदि जवाहारातो से जडे हुए अत्यन्त मनोहर, आकर्षक और सुन्दर होते हैं। इनको तो स्वर्ग मे जाने की आवश्यकता नही है ये तो इस लोक मे भी प्रयत्न और पुरुषार्थ द्वारा प्राप्त हो सकते हैं। रही कब्र के मुर्दो की बात, कब्र मे मुर्दा दबा-दबा गल-सड जाता है। स्थूल शरीर खतम हो जाता है, केवल हड्डियाँ ही शेष रहती है। और वह भी कयामत तक नष्ट-भ्रष्ट हो जाती होगी, अत खुदा के सामने यह स्थूल शरीर तो जा नही सकता। अब रही सूक्ष्म शरीर की बात यह पाप पुण्य कर्म के सस्कारो को लेकर जाता होगा, यदि इसी सूक्ष्म शरीराभिमानी का कयामत के दिन कर्मो का फैसला होता है, तो वह तो मरण समय मे भी हो सकता है। इस से पुनर्जन्म सिद्ध होगा। कब्र मे हजारो, लाखो, करोडो या अरबो वर्ष तक पडे रहने की क्या अवश्यकता है। यदि इस जन्म मे श्रेष्ठ कर्म कर के स्वर्ग प्राप्त करने योग्य नही बन सका या हो सका तो शीघ्र ही दूसरे जन्म मे अवसर प्राप्त हो सकता है। कयामत तक प्रतीक्षा करने की अवश्यकता हो नही है। इसमे आप के पास क्या हेतु है, कि मुर्दे के मरण काल मे तो पाप पुण्य का कर्म फल प्राप्त नही होता, और कयामत के दिन होता है। श्री पैगम्बर साहब की सिफारिश की बात तो हम कह चुके हैं, कि सिफारिश होने पर पाप पुण्य के कर्मों का न्याय ईश्वर नही कर सकेगा। न पाप पुण्य मे कोई भेद या अन्तर रहेगा। सिफारिश जो हुई। यदि केवल रूह (आत्मा) का ही इन्साफ होता है तब विना शरीर के मुक्ति मे सुख कैसे भोगेगा।

सिद्धान्ती—हमारे स्वर्ग का निर्माण बहुत अनुपम और सुन्दर ढग से हुआ है। उसकी लम्बई-चौडाई ७५० कोस है, उसकी दीवारें नाना प्रकार के हीरे जवाहरो से बनी है, और मोतियो से बने १२ दरवाजे हैं।

(समाधान) आप ने तो भगवान का स्वर्ग बहुत छोटा और सीमित बना दिया। असख्य लोक लोकान्तरो की मुक्त आत्माये इसमे कैसे समायेंगी। जब कि ये लोक लोकान्तर इस स्वर्ग लोक से सहस्रो लाखो गुणा बडे है, और इनमे मनुष्य भी असख्य

रहते हैं। छोटे से स्वर्ग लोक के भर जाने से शेष असख्य आत्माय कहाँ जायेंगी। रही हीरे जवाहरात, मोतिया की दीवारे और द्वारो की बात, ये हीरे आदि मणि तो इस पृथिवी लोक मे भी बहुत मिलते हैं, यहाँ भी दीवारो, दरवाजो और सिंहासना मे लगाये जा सकते है। फिर स्वर्ग लोक, इस पृथिवी लोक, और दूसरे ऐसे ही लोको मे क्या अन्तर हुआ। इस ७५० कोस के लाक मे मुक्त आत्माओ ने भी रहना हुआ, और ईश्वर ने भी रहना हुआ, आप ने तो अनन्त सर्वव्यापक ईश्वर को एक छोटे से स्वर्ग लाक म रहन वाला और सिंहासन पर बैठने वाला बना दिया। इन इतने बडे लोक लोकान्तरा, अनन्त लोको और समस्त ब्रह्माण्ड की व्यवस्था कौन करता होगा। क्या इस छोटे से सिंहासन पर बैठने वाले मनुष्य के समान शरीर धारी, एक देश-स्वर्ग मे रहने वाला, भगवान् है ? यह कैस सभव है। यह तो भारत के छोटे से प्रान्त के समान छोटा सा ही प्रदेश रहा, और स्वर्ग लोक तो यही भी बनाया जा सकता है। अमेरिका मे इस भूमण्डल पर सबसे अधिक ऐश्वर्य स्वर्ण मोती आदि हैं। श्री कैनेडी साहब को चाहिये, कि मनुष्य के विनाश के साधन ऐटम बम्ब आदि न बनाकर स्वर्ग के समान अपने देश मे एक स्वर्ग लोक का निर्माण कर। बैङ्का खजानो मे पडे हुए सोने हीरे मोती जवाहरात आदि को स्वर्ग के निर्माण मे लगा द। यदि कमी रहेगी तो दूसरे देश भी आप के स्वर्ग निर्माण मे अपने मोती जवाहरात दे देगे, क्योकि इनमे भी करोडो आदमी आप के समान ही स्वर्ग मानने वाले है। सबका इकट्ठा अमेरिका मे एक ही स्वर्ग हो जायेगा। फिर ईश्वर और पैगम्बर साहब यहाँ ही आ पधारेंगे। आप लोगो को भी बहुत दूर देश मे स्वर्ग लोक मे जाना नही पडेगा।

सिद्धान्ती—स्वर्ग मे सब प्रकार के भोक्तव्य पदार्थ प्राप्त होते हैं, वहाँ अप्सरायें भी भोगने को प्राप्त होती है, मुक्तात्माय सब प्रकार के सुखो और आनन्दा का स्वर्ग मे भोग करती हैं। ईश्वर मुक्तात्माओ को ज्योति प्रदान करते है, वे आत्मायें सदा ईश्वर का मुख देखती रहती हैं।

(समाधान) स्वर्ग मे जब सब पदार्थ और अप्सराये भोगने को मिलती हैं, तब इस लोक और स्वर्ग लोक मे क्या अन्तर हुआ। इस लोक मे सर्व पदार्थ भोगने का मिलते है, और स्त्रियाँ भी, केवल नाम मात्र का ही भेद रहा। यदि वे मुक्त आत्माय स्वर्ग मे ईश्वर का मुख देखती रहती हैं, तो ईश्वर भी मनुष्य के समान शरीरधारी होगा, जिसका मुख माना गया है। एक देश मे रहने वाले शरीरधारी का ही मुख हो सकता है। एक स्थान मे सिंहासन पर बैठने वाला ईश्वर अनन्त ब्रह्माण्ड की रचना या प्रलय नही कर सकता। इसके लिये तो असीम अनन्त भगवान् की ही जरूरत है, जो सर्व व्यापक रूप से ठहरा हुआ हो। किसी देश विशेष मे रहने वाले के कार्य भी सीमित ही हो सकते है। अत कोई ऐसा ईश्वर होना चाहिये, जो समस्त ब्रह्माण्ड के लोक लोकान्तरा के बनाने मे समर्थ हो। सर्व देशी निर्विकार, निराकार, सत्, चित्, आनन्द रूप हो। स्वतन्त्र हो। जहा किसी की कोई सिफारिश न चलती हो। जो किसी देश आदि की सीमा मे न बधा हो, जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का सञ्चालन कर रहा हो। जो निस्सीम और अनन्त हो।

सातवें आसमान पर जन्नत

सिद्धान्ती—खुदा सब रूहो को पैदा करता है, मरने के पश्चात् रूहे कब्र मे कयामत तक रहती है। सातवें आसमान पर खुदा का सिंहासन है। इसको हम जन्नत (स्वर्ग) मानते हैं। वहाँ साथ मे ही हमारे पैगम्बर साहब का भी सिंहासन होता है। जो हमारे धर्म और पैगम्बर पर ईमान लाते हैं, कयामत के दिन उनकी सिफारिश पैगम्बर साहब करते हैं। जब रूहो के कर्मफल का इन्साफ करता है, और नरक स्वर्ग प्रदान करता है, तब पैगम्बर साहब नेक कर्म करने वालो की सिफारिश करके जन्नत मे स्थान दिलाते है, जो इन पर ईमान नही लाते, उन्हे नरक या जहन्नुम मे भिजवा देते हैं।

(समाधान) यदि खुदा रूहो को पैदा करता है, तो उनका उपादान कारण क्या होता है। यदि खुदा को ही उपादान कारण मान तो वह भी विकारी हो जायेगा। यदि इन्सान या मनुष्यो से उत्पत्ति माने तो जड हुए। तब तो जड रूहो की ही उनसे उत्पत्ति होगी। फिर शरीर मे ज्ञान क्रिया आदि का व्यापार बिना चेतन के कैसे होगा। मरने के पश्चात् कयामत तक वे रूहे कब्र मे ही रहती है, तब तो उनके साथ यह बडी बे इनसाफी है। लाखो वर्ष तक कब्र मे पडी रहे। मरते समय ही खुदा उनका इनसाफ क्यो नही करता। कयामत के समय मे ही क्यो करता है? यदि ईश्वर सातवे आसमान पर स्वर्ग मे ही रहता है, और इस लोक मे नही रहता है, तो उपासक खुदा की इबादत यहाँ करते हैं, उनको भी जो सुख शान्ति आनन्द यहाँ मिलता है, वह नही मिलना चाहिये, क्योकि खुदा बहुत दूर सातवें आसमान पर रहता है। फिर इस लोक की व्यवस्था कौन करेगा, क्योकि खुदा तो सातवें आसमान पर रहता है। एक देशी होने से यहाँ आना भी उसका कठिन है। वह तो स्वर्ग में रहने वाला खुदा है। जब खुदा का सिंहासन सातवे आसमान पर है, तो वह भी देश विशेष मे रहने वाला हुआ। एक छोटे से सिंहासन पर बैठने वाला तो इस लोक के मनुष्य के समान साबित होता है। श्री पैगम्बर साहब भी उनके पास ही सिंहासन पर विराजमान रहते है। मालूम होता है यह भी एक मनुष्य के समान ही है। जो तखत पर आसीन हैं। जैसे कि एक राजा का मन्त्री होता है। ऐसे ही इनकी स्थिति माननी पडेगी। जब खुदा पैगम्बर साहब की सिफारिश सुनते हैं, तो खुदा की बुद्धि, विज्ञान, अथवा न्याय की क्या विशेषता हुई जबकि वह नेकी का अच्छा फल स्वर्ग, और बदी का बुरा फल नरक नही दे सकते हैं। जब भगवान् स्वय ही ज्ञानवान् न्यायाधीश है, तब पैगम्बर साहब की सिफारिश की क्या जरूरत है। वे स्वय ही जो उचित और यथार्थ समझेंगे फल दे देंगे। जो आपके धर्म पर विश्वास लाते हैं, पैगम्बर साहब उन्ही की सिफारिश करते हैं, अन्य धर्मावलम्बियो की नही। ये बडी बे इनसाफी मालूम होती है। पक्षपात और तरफदारी भी। दूसरे धर्मों मे भी तो नेक धर्मात्मा बुद्धिमान् पुरुष होते है, उनकी सिफारिश क्यो नही करते हैं क्या आपके धर्म और पैगम्बर पर यकीन लाने वाले ही नेक हो सकते है अन्य मतावलम्बी नही। उनकी सिफारिश क्यो नही करते हैं। इतने खुदा के प्यारे होकर यह भेद भाव क्यो रखते हैं। जो इन पर ईमान नही लाता है, उन सबको जहन्नुम भिजवा देते हैं। इससे सिद्ध होता है, अपने ही मत के पक्षपाती है, दूसरे मत के द्वेषी। इसी द्वेष के कारण अन्य मत मता-वलम्बियो को ही जहन्नुम मे भिजवाते होगे, चाहे इन्होने कितने ही नेक कर्म और कितनी

हो खुदा की इबादत क्यो न की हो। ऐसा पक्षपात क्यो वरता जा रहा है। इससे तो मालूम होता है आप का खुदा अलग है, और वह भी विधर्मियो से पक्षपात करता है। केवल पैगम्बर साहब के कहने को जो मानता है। तब तो इनका व२ निजी ही खुदा हुआ। हम तो उस खुदा को मानते हैं, जो सब मनुष्यो के लिए एक हो, पक्षपात से रहित हो, किसी भी मत का पक्षपाती, अथवा सिफारिश सुनने वाला न हो।

सिद्धान्ती—हमारे बहिश्त मे बहुत सुन्दर हूरे मिलती है। वे सदा बहिश्त मे निवास करती हैं। वहाँ सब प्रकार के मांस शराब मेवे, शहद, दूध, मिठाइयें, नाना प्रकार के स्वादु भोजन और भोक्तव्य पदार्थ मिलते है।

(समाधान) ये सब पदार्थ तो इसी पृथिवी लोक मे मिल जाते है, इनके लिये किसी अन्य लोक मे जाने की जरूरत नही है। हाँ जो बहुत निर्धन हो वे भले ही, आपके बहिश्त मे जाना चाहे। इस लोक के धनी, राजे, महाराजे, सेठ, साहूकार जाना कभी पसन्द नही करगे क्योकि उन्हे सब भोक्तव्य पदार्थ स्त्री, धन आदि यहाँ ही प्राप्त हो जाते है, अतः इस लोक मे और स्वर्ग लोक मे कोई भी अन्तर नही है।

सिन्द्धती—स्वर्ग मे स्थूल शरीर ही होते है, वहा सूक्ष्म या दिव्य शरीर नही होते है। वहाँ सुन्दर बाग बगीचे और नहरें होती हैं। वहाँ रेशमी वस्त्र, स्वर्ण के आभूषण, जवाहरात के तकिये, तथा तखत प्राप्त होते है खुदा सोने के तखत पर बैठता है। उसे फरिश्ते उठा कर चलते है खुदा से दूसरा दर्जा पैगम्बर साहब का है। इनका सिंहासन खुदा के पास ही होता है। यहाँ सब प्रकार के सुख, भोग और आनन्द प्राप्त होते है।

(समाधान) पैगम्बर साहब ने स्वर्ग मे जिन पदार्थों का निर्णय किया है, वे तो यहाँ भी उपलब्ध होते है। वर्तमान मे तो इस से भी अधिक सुखो के साधन अमरीका इगलेण्ड, फ्रान्स, रूस, ईरान, मिस्र और भारत आदि के धनियो के पास वर्त्तमान है। इनके लिये किसी अन्य बहिशत मे जाने की जरूरत नही। खुदा का तखत तो फरिश्ते उठा कर चलते है, आजकल तो लोग मोटरो, हवाई जहाजो और हेलीकोपटरा मे बैठ कर चलते हैं। अत स्वर्ग की अपेक्षा यहा विशेष सुख-साधन हैं। नहर, बाग-बगीचे, तो इस युग मे राजे, महराजे, अन्य अमीरो की कोठियो मे भी होते है। पबलिक के लिये सरकारें भी बनवाती है। अमीरो के पास वर्तमान मे खाद्य पदार्थ और सुख भोग के इतने साधन हैं, कि उनको भोगते-भोगते सदा बीमार बने रहते है, 'भोगे रोग भयम्'— जहाँ भोग वहाँ रोग। अत इन पदार्थों के लिये किसी बहिशत मे जाने की जरूरत नहीं। सभवत पैगम्बर साहब के समय मे उनके देश मे इन पदार्थों की कमी होगी। इसलिये साधारण बुद्धि वाले गरीब लोगो को स्वर्ग के सब्ज बाग दिखाये होगे। वरना इस लोक मे और इनके बहिशत मे कोई भी अन्तर नही है। जिन लोगो की भोगो से यहाँ तृप्ति नही हुई है, या जिनको ये भोग प्राप्त नहो हुए हैं, ऐसे लोग ही इस प्रकार के बहिशत की भले ही कामना कर। जो ज्ञान और वैराग्यवान् है, जिनको ससार के भोगो से वैराग्य हो चुका है, वे तो भूल कर भी इस प्रकार के बहिशत मे जाना पसन्द नही करेंगे। इस लोक मे भी जब भोग अनेक दु खो का कारण होते है, तो इस प्रकार के बहिशत के भोग भी तो दु खो का ही कारण होगे। जहाँ कि हूरे प्राप्त होती है। सब

अप्सरायें तो एक समान सुन्दरी या रूपवती भी नही होती होगी। जब इस लोक में पराई सुन्दरी स्त्री को देख कर दुराचारी आसक्त होते है, तो बहिश्त में भी इस प्रकार की संभावना हो सकती है। वहाँ भी यहाँ के समान लड़ाई-झगड़े हो सकते है। तब बताओ बहिश्त में और इस लोक में क्या अन्तर हुआ।

जहां भगवान् और पैगम्बर के सिंहासन की बात है, यह तो एकदम बिलकुल एक देश में रहने वाले शरीर धारियों की बात है, क्योंकि तखत तो एक देश में रहने वाला छोटा सा पलंग के बराबर ही हो सकता है। अत: खुदा भी तखत पर बैठने वाला शरीर धारी ही मनुष्य के समान हो सकता है। इस प्रकार का खुदा जो बहिश्त में रहता है। हमारे लोक या अन्य लोकान्तरो की व्यवस्था एक शरीरधारी एक देश में रहने वाला कैसे कर सकता है। कोई ऐसा खुदा या ईश्वर होना चाहिए जो सब देशों और लोकलोकान्तरो मे एक ही समान एक ही रूप मे विराजमान हो, जिसे न तखत की न ताज की जरूरत हो। जो किसी प्रकार भी लागलपेट मे आने वाला न हो। न किसी की सिफरिश सुनने या मानने वाला हो। जो सब जगह व्यापक हो, सब से सूक्ष्म हो, निर्विकार निरवयव, और असग हो। जिसकी चेतन सत्ता मे सब लोक-लोकान्तर और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड क्रियाशील होकर सब कार्य नियम पूर्वक कर रहे हों। श्री पैगम्बर साहब ने तो खुदा को एक देश में रहने वाला अपने जैसा सीमित सा बना दिया है। जिसमें अनेक प्रकार के दोष और शकायें उपस्थित हो सकती हैं। यदि वे सर्वव्यापक, निराकार निरवयव, असङ्ग निर्विकार खुदा का वर्णन करते या मानते तब कोई दोष या शका उपस्थित न हो सकती थी। जैसा सोचा-समझा, विचारा या जितनी बुद्धि थी, उतना ही उल्लेख कर दिया। विश्वव्यापी भगवान् का ज्ञान अनन्त है। अत: सब थोड़ा-थोड़ा ही कथन कर पाये हैं। पैगम्बर साहब ने भी कुछ थोड़ा ईश्वर के विषय मे कह दिया है। तब ही तो अनन्त भगवान् अनन्त ज्ञान वाला सिद्ध होता है। उसका अन्त पाना अत्यन्त कठिन है, अथवा दुर्विज्ञेय है यदि पैगम्बर साहब विशेष विज्ञान की सूक्ष्म दृष्टि से ऋतंभरा बुद्धि द्वारा सम्प्रज्ञात समाधि में स्थित होकर ईश्वर को देखते तो वह ईश्वर निराला ही होना था। जो कि सर्वत्र सर्वव्यापक रूप मे प्रत्यक्ष अनुभव होता।

अब रही खुदा के सातवें आसमान पर खुदा की बात। यदि पैगम्बर साहब शंका करें, कि आप हमारे सातवें आसमान और तखत पर निवास की बात को उपहास्पद कहते हो पर आप भी तो स्वयं एक प्रकार से ३३ आसमान या सिंहासन ईश्वर के निवास के कथन कर रहे हैं। इसका समाधान इस प्रकार है, कि हमने ३२ पदार्थ कार्यात्मक माने है। और इन सब का एक ही कारण प्रकृति को माना है। इन सब पदार्थों मे खुदा की व्यापकता का दिग्दर्शन कराया है। न कि खुदा इन ३३ सिंहासनों पर बैठा है। इन सब मे वह रमा हुआ है। सूक्ष्म होने के कारण व्यापक है और इन सब पदार्थों को अपने अन्दर धारण किये हुए है। अत: ये उसके सिंहासन नही हैं। वह तो इन सब मे व्याप्त हो कर ठहरा हुआ है। इन सब का आधार भी बना हुआ है। आपने तो सातवें आसमान पर भगवान् को सोने के तखत पर आसीन माना है। जो छोटा सा होने से भगवान् को या खुदा को भी मनुष्य के समान सिद्ध करता है, और एक देश मे रहने वाल बना देता है। हमारा खुदा तो अनन्त है, महान् है, सर्वव्यापक है और सब मे

सूक्ष्म है। सब देशो, सब कालो मे अनन्त रूप से व्याप्त होकर रहता है उसे किसी देश, तखत या ताज की जरूरत नही।

सिद्ध शिला पर मुक्त आत्मायें

सिद्धान्ती—हम स्वर्ग के ऊपर १४व भुवन की चोटी पर ४५ लाख योजन लम्बी और इतनी ही चौडी आठ योजन मोटी सिद्ध शिला मानते हैं। यह शिला स्फटिक मणि के समान निमल, दूध के समान सफेद, मोती के समान चमकदार है। इस सिद्ध शिला पर शिवपुर धाम है। उसम मुक्तात्माय रहती है। उनका जन्म मरण नही होता है। सदा आनन्द मे रहती है। सब प्रकार के कर्म और दु खो से मुक्त होकर मोक्ष मे निवास करती है।

(समाधान) असरय मुक्त आत्माओ के लिये ४५ लाख योजन की लम्बी चौडी शिला बहुत ही छोटी होगी। इस पर असरय आत्माय कैसे समा सकती है। आप ने जैसी सिद्ध शिला की परिधि बतायी है, एस मुक्त आत्माआ की सख्या ता बतायी नही है। ससार मे लोक लोकान्तर बेअन्त है। आज तक मनुष्य इनकी सख्या नही कर पाये हैं फिर इनमे वास करने वाली आत्माओ की सख्या कैसे हो सकती है। अत एक देश म सीमित शिला सर्व मुक्त आत्माओ के निवास के लिये नही हो सकती है। आप जीवात्मा को भी मध्यम परिमाणी मानते है। मध्यम परिमाण पदार्थ सकोच विकास शील होने से अनित्य सिद्ध होता है। अत आत्मा को उत्पत्ति विनाश वाला मानने से मन और बुद्धि के समान अनित्य हो जायेगा। अनित्य परिणामी होन से नित्य मुक्ति नही हो सकती। जीव ईश्वरभाव को भी प्राप्त नही हो सकता है। क्याकि मध्यम परिमाणी है। सृष्टि कर्ता किसी सर्वव्यापक ईश्वर को आप मानते ही नही है, फिर ईश्वरभाव कैसा, और नित्य मुक्ति कैसे हो सकती है।

परिणामी, मध्यम परिमाणी आत्मा को नाशवान् मानना पडेगा। बुद्धि के समान वह भी अनित्य हागा। अनित्य साधनो से नित्य मुक्ति कैसे प्राप्त हो सकती है। सृष्टि का कर्ता किसी व्यापक ईश्वर का आप मानते ही नही है। अत सर्वव्यापक चेतन के बिना सृष्टि का निर्माण कौन करेगा। सृष्टि भी अनन्त है। इसलिये इसका निर्माण करने वाला भी अनन्त ही हो सकता है। यदि आप अनेक मुक्त आत्माओ के सघ के द्वारा सृष्टि का निर्माण मानते है, तब यह मान्यता भी सिद्ध नही होती है, क्योकि सृष्टि अनन्त है। इन मुक्त आत्माओ मे इस लोक के समान विचार विरोध, लडाई झगडा होने की भी सभावना हो सकती है। मुक्त आत्मायें तो ४५ लाख योजन लम्बी चौडी शिला पर ही रहती है। वहाँ रहकर अनन्त ब्रह्माण्ड का वे कैसे निर्माण कर सकती हैं। अत आपकी मुक्ति युक्ति और प्रमाण के विरुद्ध है। कोई भी बुद्धिमान् इस प्रकार की मुक्ति मानने को तैयार न होगा।

ब्रह्म मे विशिष्टाद्वैत का अभाव

(शका) ये सब जीवात्मा ईश्वर का ही अश विशेष है। प्रकृति से सम्बन्ध छूटने पर उस ईश्वर मे ही जाकर मिल जाते है क्या इसी का नाम मोक्ष नही ?

(समाधान) जीवात्मा की उत्पत्ति होने से यह भी चित्त के समान ही परिणामी हो जायेगा। अतः इस प्रकार के जीवात्मा के मानने की कोई आवश्यकता नही। जिसका चित्त के समान उत्पत्ति विनाश सिद्ध हो, उसको हम चित्त ही कहेंगे।

(शंका) भगवान् भी तो अपने अंग विशेष से अवतार ग्रहण करता है।

(समाधान) जिन्हें आप अवतार मानते हैं, वह तो विशेष पुण्यात्मा होते हैं, जो माता के गर्भ से जन्म धारण करते हैं। इनमें ईश्वर के समान विशेष गुण होने से लोग श्रद्धा भक्ति की भावना से उपासना, ज्ञान और मोक्ष के हेतु अथवा जन कल्याण के हेतु उन्हें अवतार कहने लग जाते हैं और उनमें भगवान् का आरोप करने लगते हैं। वास्तव में ईश्वर में अंशांगीभाव नही हो सकता है। वह निर्विकार और कूटस्थ है। एवं निरवयव है।

(शंका) जीवात्मा का भोक्तृत्व गुण स्वाभाविक है। अतः एवं मोक्ष में भी रहता है। चैतन्य का परिणाम ही भोक्तृत्व है। मोक्ष अवस्था मे इस गुण के द्वारा आनन्द का भोग करता है। वहाँ सब दुखों का अभाव होता है।

(समाधान) आत्मा का स्वाभाविक गुण भोक्तृत्व नही हो सकता है क्योकि स्वभाव का तो कभी नाश नहीं होता, वह एक समान ही रहता है। आत्मा को जो भोक्ता कहा गया है वह निमित मात्र से आरोप किया गया है। निमित्त के हट जाने पर आरोप भी खतम हो जाता है। आप तो चैतन्य के परिणाम को ही भोक्तृत्व कह रहे हैं, इसका अभिप्राय तो यह हुआ कि चैतन्य भी विकार भाव को प्राप्त होता है फिर तो विकारी होने से चित्त के समान ही सिद्ध होगा। चित्त का परिणाम भी तो भोग ही है। चित्त परिणत होता हुआ भोग करता है। अतः चैतन्य के परिणाम और चित्त मे कोई अन्तर नही है। फिर इस प्रकार के अलग परिणामी आत्मा मानने की क्या आवश्यकता है। जब कि चित्त मे ही यह गुण हैं, और चित्त से ही सब कार्य सिद्ध हो जाते हैं।

सिद्धान्ती—हम माया मण्डल को पार करके प्रकृति के रज और तम को वहाँ नही मानते हैं, वहाँ केवल शुद्ध सत्त्व का बना हुआ दिव्य शरीर होता है, जो कभी बदलता नही है। नष्ट भी कभी नही होता है। इसके द्वारा आत्मा वैकुण्ठ या ब्रह्म लोक मे ब्रह्मानन्द का भोग करता है?

(समाधान) जब माया मण्डल को पार कर लिया, वहाँ प्रकृति का बिल्कुल अभाव हो गया। तब शुद्ध सत्त्व का शरीर वहाँ कहाँ से आयेगा। अन्ततोगत्वा है तो वह इसी का कार्य है। प्रकृति ही तो उस दिव्य शरीर का उपादान कारण है। कार्य अपने उपादान कारण को छोड़ नही सकता। तब प्रकृति के मण्डल को पार किया जाना कैसे माना जा सकता है। शुद्ध सत्त्व भी तो प्रकृति का ही कार्य है। अतः माया मण्डल को पार करने की बात सर्वथा निराधार है।

जिस दिव्य शरीर के द्वारा आप दिव्यानन्द का भोग मानते हैं जो अभी निकट में ही दिव्य भाव को प्राप्त हुआ है। उत्पन्न होने वाला अनित्य पदार्थ कैसे सदा के लिए नित्य हो सकता है। जिसने दिव्यता प्राप्त की है, वह पुनः भी तो अदिव्य हो सकता है।

सिद्धान्ती—वैकुण्ठ मे शुद्ध सत्व से बना दिव्य शरीर आत्मा के ज्ञान का बाधक नही होता है। उस आत्मा का ज्ञान अपरिमित और निस्सीम हो जाता है।

(समाधान) आत्मा का ज्ञान अपरिमित और निस्सीम नही हो सकता है। क्योकि आत्मा अणु और एक देशी परिच्छिन्न है। उसका ज्ञान सीमित और परिमित ही हो सकता है। यदि आत्मा असीम होता तब ही उसका ज्ञान अपरिमित और निस्सीम हो सकता था। जब उसका दिव्य शरीर एक देशी है, और आत्मा भी एक देशी है, तो उसका ज्ञान निस्सीम नही हो सकता है।

सिद्धान्ती—प्रलय काल की अवस्था मे जीव का शरीर नही रहता, अत उसके ज्ञान का सकोच हो जाता है। सृष्टि काल मे स्थूल शरीर प्राप्त होने से ज्ञान का विकास हो जाता है। यह ज्ञान का सकोच विकास ही जीव की सूक्ष्म और स्थूल अवस्था का कारण है। अर्थात् ज्ञान का सकुचित होना सूक्ष्म अवस्था है, और ज्ञान का विकसित होना स्थूल अवस्था है। जीव का स्वरूप परिणाम रहित, नित्य और निर्विकार है ?

(समाधान) प्रलय काल की अवस्था मे आप ज्ञान का सकोच आत्मा मे मानते है। ज्ञान आत्मा का स्वरूप है या गुण। यदि स्वरूप ही है तब तो उसमे किसी भी काल मे या अवस्था मे सकोच नही होना चाहिए, क्योकि आत्मा ज्ञान स्वरूप या ज्ञान रूप ही है। आत्मा से भिन्न ज्ञान नही है। अत इस आत्मा के ज्ञान स्वरूप स्वभाव मे सकोच या विकास कभी भी नही हो सकता, क्योकि ज्ञान स्वरूप आत्मा नित्य है, अविकारी है। अब रही गुण की बात, यदि यह गुण आत्मा और करण के सयोग से उत्पन्न होता है और अलग पदार्थ के रूप में रहता है, तब भी आत्मा के ज्ञान स्वरूप होने मे कोई हानि या बाधा नही आती। यदि यह गुण अपने गुणी आत्मा मे ही उत्पन्न होता है, और आत्मा के आश्रय ही रहता है, और गुण गुणी का अभेद है तब आत्मा परिणामी और विकारी सिद्ध होता है। जैसा कि हम चित्त को विकारवान् और ज्ञान का आश्रय मानते है। तब तो आत्मा और चित्त मे कोई अन्तर नही रहता है। तब आपका माना हुआ आत्मा जिसको आप चैतन्य का परिणाम कहते है, चित्त ही सिद्ध होता है।

आत्मा के ज्ञान सकोच विकास का आप प्रकृति के प्रलय और सृष्टि को कारण मानते है, और जीव के परिणाम रहित, नित्य, निर्विकार स्वरूप का दावा भी करते है। यह तो आपकी प्रतिज्ञा मे वदतो व्याघात दोष है। आप स्वय ही अपने सिद्धान्त का खण्डन कर रहे है। जब ज्ञान का सँकोच विकास आत्मा मे मानते हैं तब वह अपरिणामी और निर्विकार कैसे सिद्ध हो सकता है। जब आप आत्मा को चेतन मानते है तब ज्ञान इससे अलग नही हो सकता या रह सकता है। चेतन का अर्थ ही ज्ञान है या ज्ञान स्वरूप है। चेतन और ज्ञान मे किञ्चित भी अन्तर नही है। चेतन ही ज्ञान रूप होता है। ज्ञान चेतन रूप ही है। अत चेतना और ज्ञान मे अन्तर नही है। जब आप आत्मा मे ज्ञान का सकोच और विकास मानते हैं इसी से वह परिणामी और अनित्य सिद्ध हो जाता है। चित्त के समान ही बन जाता है।

सिद्धान्ती—जीवात्मा का अनादि अविद्या और सञ्चित कर्मो के सम्बन्ध से स्वाभाविक रूप तिरोहित हो जाता है। कर्म बन्ध से छुटकारा होने पर स्वाभाविक रूप

का अविर्भाव हो जाता है। यह होना प्रकृति मण्डल से बाहर जाने पर निर्भर है तब ही ब्रह्म का अनुभव होता है। इस प्रकार प्रकृति मण्डल से बाहर होने पर अप्राकृत-लोक-ब्रह्मलोक मे पहुँचकर स्वाभाविक रूप का प्रादुर्भाव हो जाता है और ब्रह्म का अनुभव होता है।

(समाधान) यह तो आपका कथन यथार्थ है कि अविद्या और सञ्चित कर्मों के कारण आत्मा का स्वाभाविक रूप तिरोहित हो जाता है। कर्म बन्ध से छुटकारा होने पर स्वाभाविक रूप का अविर्भाव होता है। यह सिद्धान्त हमे भी स्वीकार है। परन्तु हम आत्मा को ज्ञान स्वरूप मानते है। इसमे कोई परिवर्तन या सकोच विकास नही मानते है। कर्म-बन्धन से छुटकारा होने पर आत्मा की स्वरूप मे स्थिति हो जाती है। ज्ञान स्वरूप होने से उसे और अधिक ज्ञान की या ब्रह्म से ज्ञान या आनन्द प्राप्ति की आवश्यकता या अपेक्षा नही रहती, क्योकि जहाँ स्वाभाविक ज्ञान स्वरूपता है, वहाँ स्वाभाविक आनन्द स्वरूपता भी है। आनन्द चेतन से भिन्न नही है। चेतन ही आनन्द रूप हो सकता है। जब ब्रह्म को आनन्द रूप हम दोनो मानते हैं, उस ब्रह्म मे जो आनन्द है वह चेतन होने से ही है। यदि उसमे चेतना न होती तो आनन्द भी नही होता। तब इस आत्मा ने क्या अपराध किया है, इसका स्वरूप भी चेतन है, तब आनन्द भी तो इसी का स्वरूप होना चाहिये। अतः इसको ब्रह्मानन्द की अपेक्षा या आवश्यकता नही रहती है।

रही बात प्रकृति के मण्डल से बाहर जाने की, जब इसी प्रकृति का कार्य दिव्य शरीर आत्मा के साथ वर्त्तमान है, तब प्रकृति के मण्डल से बाहर कैसे हुआ, अभी तो इसके कार्य के साथ ही जुडा हुआ है। जब इसका आत्मा के ज्ञान मे बाधक नही हो रहा है। तब प्रकृति या इसका मण्डल आत्मा के लिए कैसे बाधक हो सकता है। अत. प्रकृति से भिन्न या अलग ब्रह्म का कोई ऐसा लोक सिद्ध नही होता है, कि जहाँ प्रकृति न हो, और अकेला ब्रह्म ही हो। जब प्रकृति का कार्य दिव्य शरीर वहाँ ब्रह्म लोक मे भी वर्त्तमान है, तब प्रकृति के लोक या मण्डल से आत्मा और ब्रह्म कैसे अलग होकर रह सकते है। यह तो तुम्हारी व्यर्थ ही कल्पना है। युक्ति और प्रमाण से यही सिद्ध नही हो रहा है।

ब्रह्म में परिणाम-अभाव

सिद्धान्ती—चित्, अचित् (जीवात्मा और प्रकृति) यह समस्त प्रपञ्च ब्रह्म का शरीर भूत है। जैसे हस्त पाद आदि पिण्ड जीवात्मा का शरीर है, वैसे ही सब जड और चेतन परब्रह्म का शरीर है।

(समाधान) जब आप समस्त जड चेतन को ब्रह्म का शरीर मानते हैं तब जीवात्मा के समान ब्रह्म को भी कर्ता भोक्ता मानना पडेगा। शरीर के साथ जीवात्मा का सम्बन्ध हस्तपादादिपिण्ड से है, यह तो कर्म भोग के लिए प्राप्त हुआ है। जो अज्ञान या अविद्या के कारण इसको कर्म भोग के लिए प्राप्त हुआ है। जिसके द्वारा यह भोग और अपवर्ग प्राप्त करता है। क्या ब्रह्म भी इस जड चेतन शरीर को प्राप्त करके भोग और अपवर्ग प्राप्त करता है या करेगा। जब इसको शरीर भोग और अपवर्ग प्रदान नही करता है, तब इसको शरीर की क्या आवश्यकता है। यदि ब्रह्म का शरीर मानोगे

तो उसमें भी अविद्या, कर्म, संकार, बन्ध और मोक्ष भी मानना पड़ेगा ? ऐसी परिस्थिति में जीवात्मा और परमात्मा एक ही समान भोक्ता और कर्ता सिद्ध हो जाते है। केवल अन्तर इतना ही रह जाता है, कि आत्मा अणु है और ब्रह्म महान् है। अतः जड़ चेतन को ब्रह्म का शरीर मानकर इसको भी आत्मा के समान ही बद्ध और मुक्त मानना पड़ेगा। तब एक और ऐसे ब्रह्म को जरूरत होगी, जो बन्ध और मोक्ष से रहित हो। शरीर और शरीरी मानने से ब्रह्म अज्ञानी सिद्ध हो जाता है। ये आत्माये भी शरीर का अवयव होने से प्रकृति के समान विकारी और जड़वत् सी बन जायेंगी इत्यादि अनेक दोष उपस्थित हो जाते हे यदि ब्रह्म का शरीर मानते है।

सिद्धान्ती—शरीर के भीतर जीवात्मा सत्ता जैसे शरीर को धारण करती है, वैसे ही चेतन अचेतन पदार्थो को ब्रह्म की सत्ता धारण करती है ?

(समाधान) शरीर के अन्दर रहकर भोग या अपवर्ग उपार्जन करने के लिए जीवात्मा की सत्ता शरीर को धारण करती है। क्या ब्रह्म ने भी इसी प्रकार अपने शरीर के द्वारा भोग या अपवर्ग उपार्जन करना है। तव यह भी आत्मा के समान ही सिद्ध होता है। आत्मा के साथ तो अन्त करण का सम्बन्ध बना हुआ है। उसके द्वारा कर्म और भोग सिद्ध हो सकते है। जब ब्रह्म का शरीर माना है तो इसका अन्त करण भी मानना पडेगा। कर्म, भोग, ज्ञान अज्ञान भी इसमें मानने पड़ेगे। तब यह भी एक जीवात्मा के समान बनकर रह जाता है। केवल छोटे-बडे का ही भेद है, और गुण तो सब समान ही है, जैसे इस जीवात्मा के मोक्ष के लिए एक ब्रह्म की आवश्यकता पड़ी है, वैसे ही ब्रह्म के लिए एक और ब्रह्म की जरूरत पडेगी, जो इसको शरीर के बन्ध से मुक्त कर सके।

सिद्धान्ती—सृष्टि और प्रलय दोनों अवस्थाओं में ही चित् और अचित् भगवान् का शरीर है, सम्पूर्ण जड़ और चेतन से विशिष्ट ब्रह्म ही है।

(समाधान) जब जड़ और चेतन विशिष्ट ब्रह्म ही है, तब आत्मा की पृथक् सत्ता मानने की क्या आवश्यकता। इस आत्मा के भोग और अपवर्ग, बन्ध और मोक्ष पृथक् रूप मानने व्यर्थ ही सिद्ध होते हैं। जब यह जड़ और चेतन ब्रह्म का शरीर बन गया तब तो ब्रह्म का ही बन्ध और मोक्ष आप को मानना चाहिए। इस जड़ और चेतन को ब्रह्म का शरीर मानने से ब्रह्म को भी भोक्ता और कर्ता मानना पड़ेगा। जो कर्मों का करता और भोक्ता है, उसका बन्ध और मोक्ष हो सकता है।

सिद्धान्ती—उत्पत्ति और नाश अवस्था विशेष को प्राप्त होना ही है, पर ब्रह्म में भी तो सृष्टि और प्रलय दशाओं मे भिन्न-भिन्न अवस्थायें होती है। प्रलय दशा मे परब्रह्म सूक्ष्म अवस्था से युक्त प्रकृति और जीव में अन्तर्यामी रूप से रहता है। सृष्टि दशा में स्थूलावस्था से युक्त जीव और प्रकृति में अन्तर्यामी रूप से रहता है।

(समाधान) यदि संसार के उत्पत्ति विनाश से ब्रह्म को भिन्न अवस्थाये होती हैं, तब तो यह भी प्रकृति के समान परिणामी सिद्ध हो जायेगा। प्रलयकाल में सूक्ष्म होगा, और सृष्टि काल में स्थूल होगा। जैसे आपने जीवात्मा का चैतन्य परिणाम माना है, ऐसे ही यहाँ ब्रह्म का भी चैतन्य परिणाम सिद्ध होता है। प्रकृति के सम्वन्ध मे चेतन

ब्रह्म में, और चेतन ब्रह्म के सम्बन्ध से प्रकृति मे परिणाम सिद्ध होता है। अत. सर्व जड़ और चेतन (आत्मा और ब्रह्म) परिणामी होने से विकारवान् सिद्ध होते है। प्रकृति मे जडता रूप से और दोनो चेतनो मे चेतन रूप से परिणाम सिद्ध हो जाता है। चेतन मे परिणाम के लिये जड निमित्त होता है, और जड मे परिणाम के लिये चेतन निमित्त हो जाता है। जव ब्रह्म को आप निर्विकार मानते है, तव ये शरीर आदि की मिथ्या कल्पनायें क्यो व्यर्थ मे करते हैं। यह ब्रह्म मे प्रकृति के कारण स्थूल और सूक्ष्म भाव क्यो मानते है। स्थूलता और सूक्ष्मता ब्रह्म के परिणाम भाव को ही सिद्ध करती हैं। यह सिद्धान्त सर्वथा अमाननीय है कि ब्रह्म निर्विकार भी रहे, और स्थूलता सूक्ष्मता भी इसमे आ जाये और शरीराभिमानी भी बन जाये। इस सिद्धान्त मे 'वदतो व्याघात दोष' है। अत. या तो सर्वथा ही विकारवान् या परिणामी मानना चाहिये, अथवा सर्वथा निर्विकार और निष्क्रिय मानना चाहिये। परिणामी होने से प्रकृति के समान ही बन जाता है। फिर व्याप्य व्यापक भाव सम्बन्ध भी सिद्ध नही होता है। सकोच और विकास धर्म आप ब्रह्म मे मान रहे हैं। फिर आप ब्रह्म लोक की अवस्था को अर्थात् ब्रह्म के एक देश को निष्क्रिय मान रहे है। प्रकृति देश मे ब्रह्म को क्रियावान्, परिणामी, स्थूल और सूक्ष्म करते है। दोनो देशो मे ब्रह्म एक ही मानते हैं। एक देश का परिणामी और एक देश का परिणाम रहित यह बात सर्वथा विपरीत है। इससे अच्छा यह होता कि आप इस सबको प्रकृति मानते, वह भी कारण कार्य रूप वाली, और ब्रह्म को सर्वथा ही निष्क्रिय, निरवयव, असग, शुद्ध, बुद्ध सदा मुक्त स्वभाव।

सिद्धान्ती—सूक्ष्म अवस्था युक्त जीवात्मा, और प्रकृति का आत्मा होना एक अवस्था है, और स्थूल अवस्था युक्त जीवात्मा और प्रकृति का आत्मा होना एक अन्य अवस्था है। इनमे पहली कारण अवस्था, और दूसरी कार्य अवस्था है। इसी प्रकार परब्रह्म भी ऊपर कही हुई अवस्था मे युक्त रहने पर कारण, और दूसरी अवस्था से युक्त होने पर कार्य होता है। अत एव ब्रह्म ही जगत् का कारण और ब्रह्म ही जगत् का कार्य है। वैसे आत्मा और ब्रह्म निर्विकार है। विकार केवल जड जगत् मे होना है।

(समाधान) आत्मा और प्रकृति की सूक्ष्म अवस्था और स्थूल अवस्था से आप ब्रह्म की दो अवस्था सिद्ध करते हैं। एक सूक्ष्म और एक स्थूल। इन दोनो अवस्थाओ को ब्रह्म मे चरितार्थ करके ब्रह्म को भी कारण कार्यात्मिक सिद्ध करते है। परञ्च कारण और कार्य आत्मक पदार्थ तीनो काल मे भी निर्विकार नही हो सकता है। कारण कार्य रूप मे आना ही विकार भाव और परिणाम भाव को सिद्ध करता है। इस अवस्था मे ब्रह्म निर्विकार नही हो सकता है। जो निर्विकार है सदा ही निर्विकार रहेगा। जो विकारवान् है, या हो चुका है, वह पुन भी विकारवान् बनेगा। या हो सकता है, इस प्रकार की मान्यता से साख्यवाद के समान चेतन का सत्कार्यवाद सिद्ध होता है, क्योकि कारण रूप से भी कार्य मे वर्तमान रहती है, और कार्य रूप को भी प्राप्त हो जाती है, कारण रूप से सत्य और कार्य रूप से असत्य सिद्ध होती है। इसी प्रकार आपका आत्मा और ब्रह्म भी हैं जिनका चैतन्य रूप से परिणाम होता है। इस सिद्धान्त के आधार पर ये दोनो प्रकृति के समान ही सिद्ध होते हैं। परिणामी और विकारवान् होने से, सकोच और विकास धर्म वाले होने से, सूक्ष्म और स्थूल होने से, और कारण व कार्यात्मिक रूप मे

परिवर्तन होने से। अत. इस आधार पर इन मे निर्विकारता नितान्त सिद्ध नही हो सकती है। ब्रह्म चेतन है, प्रकृति जड है, अतः वह प्रकृति का उपादान कारण नही हो सकता है, क्योकि जो गुण कारण मे होते हैं, वे कार्य मे भी आते हैं। यदि ब्रह्म को उपादान कारण मानेगे तब तो चेतन की ही उत्पत्ति होगी जड की नही। ब्रह्म को जब आप निर्विकार मानते है, तब इससे जड चेतन कार्यात्मक पदार्थ की उत्पत्ति नही हो सकती है। इसलिये चित् अचित् ब्रह्म का शरीर नही हो सकता है।

सिद्धान्ती—चित् अचित् ब्रह्म का शरीर होने से ये ब्रह्म का विशेषण है। इन दोनो का आत्मा परब्रह्म है। इस प्रकार विशेषणो से युक्त होने से विशिष्टता कहलाती है। इस कारण ब्रह्म को चिदचित्-विशिष्ट कहते है। परब्रह्म एक है, स्थूल अवस्था से चित् अचित् विशिष्ट, प्रलय मे सूक्ष्म अवस्था से युक्त चिदचित् विशिष्ट, इन दोनो मे अद्वैत है, यही विशिष्टा द्वैत का अर्थ है।

(समाधान) पहले तो यह सिद्धान्त ही अयथार्थ है, कि जड और चेतन ब्रह्म के शरीर है, फिर चेतन का जड विशेषण नही हो सकता है, अत जड विशेषण से युक्त विशिष्ट ही सिद्धान्त नही होता है। चेतन ब्रह्म अपरिणामी होने से स्थूल और सूक्ष्म भाव को भी प्राप्त नही हो सकता है। अत एव इस प्रकार का विशिष्टाद्वैत सिद्ध नही होता है। जबकि ईश्वर परिणाम रहित निर्विकार और असग है।

सिद्धान्ती—देव, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि के शरीरो मे रहने पर जैसे जीव पर शरीरगत दोपो का सम्बन्ध नही होता है, वैसे ही चिदचित् आत्मक प्रपञ्चो मे परब्रह्म के अन्तर्यामी रूप से रहने पर भी चिदचित् दोपो का असर नही होना है। अर्थात् परब्रह्म पर दुर्गुणो का असर नही होता है।

(समाधान) जब आप चैतन्य परिणाम को ही भोक्तृत्व कहते है, तब तो दोपो का असर आत्मा पर अवश्य होना चाहिये, यदि चैतन्य का परिणाम न मानते तब दोपो का असर नही होना था। इसी प्रकार जब ब्रह्म का शरीर शरीरी भाव मानते हैं, और इसका सूक्ष्म अवस्था मे सूक्ष्म होना, और कार्य अवस्था मे स्थूल होना वह भी ब्रह्म का चैतन्य रूप से परिणाम है, तब क्यो नही चिदचित् के दोपो का इस पर प्रभाव पडेगा अत इन दोनो चेतनो के चैतन्य रूप मे परिणाम ही इनको प्रकृति के समान ही विकारवान् और परिणामी सिद्ध करते है और ये प्रकृति के समान दोप युक्त ही हो जाते हैं।

ब्रह्म में अभिन्न निमित्तोपादान कारण का अभाव

सिद्धान्ती—सब पदार्थों के दो कारण होते हैं, एक उपादान कारण और एक निमित्त कारण। सब जगत् की उत्पत्ति स्थिति और सहार का कारण परब्रह्म है। ब्रह्म ही जगत् का उपादान कारण है और ब्रह्म ही निमित्त कारण भी है। जैसे जाले के प्रति मकडी उपादान कारण भी है, और निमित्त कारण भी।

(समाधान) ब्रह्म स्वय ही उपादान और निमित्त कारण नही हो सकता है। उपादान कारण मानने से परिणामी विकारी सिद्ध होता है। आपने तो घडा बनाने मे कुम्हार और मिट्टी को एक ही बना दिया। मिट्टी ही कुम्हार हो गयी और मिट्टी ही घडा बन गयी। मकडी का दृष्टान्त भी यथार्थ दृष्टान्त नही है। दृष्टान्ताभास है। जाले

के प्रति उपादान कारण मकडी का शरीर होता है, जैसे गोबर के प्रति गाये का शरीर, मल के प्रति मनुष्य का शरीर उपादान कारण है। चेतन आत्मा यहा निमित्त कारण होता है। आपने शरीर और आत्मा को एक ही मान लिया है। कितनी मिथ्या यह धारणा है। यदि जाले के प्रति आत्मा को उपादान कारण मानते हैं, तो यह परिणामी हो जाता है, फिर शरीर और आत्मा मे या जड और चेतन मे कोई अन्तर ही नही रहता है। अतः यह अभिन्न निमित्तोपादान कारण सिद्ध नही होता है। स्वय ही उपादान और स्वयं ही निमित्त कारण सिद्ध नही होता है। अतः उपादान कारण प्रकृति और इस के कार्य है, और निमित्त कारण आत्मा और ब्रह्म ही सिद्ध होते हैं, क्योकि ये दोनो सर्वदा सर्वथा परिणाम और विकार रहित हैं।

ब्रह्म का चित् अचित् शरीर मानने से इसके भी बन्ध और मोक्ष आत्मा की तरह आपको मानने पडेंगे। यह भी एक देशी होकर रह जायेगा। यह भी भोक्ता और कर्ता सिद्ध हो जायेगा। इसकी सर्वव्यापकता, निष्क्रियता, और निर्विकारता समाप्त हो जायेगी। चैतन्य का परिणाम होने से चित्त के समान उत्पन्न और विनाश होने वाला हो जायेगा। फिर इसके साथ धर्माधर्म, पाप पुण्य का सम्बन्ध भी मानना पडेगा। इसके बन्ध और मोक्ष स्वीकार करने होगे।

यदि आप इसको निष्क्रिय, निर्विकार, अपरिणामी मानकर शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव स्वीकार कर ले, तब कोई भी दोष इस मे उपस्थित नही होता है। इसके सम्बन्ध से प्रकृति को विकारवान् मानकर सर्व कार्य सिद्ध हो जाते है। ब्रह्म मे किसी प्रकार का सकोच विकास मानने की आवश्यकता नही। ये सब धर्म प्रकृति के ही हैं।

इसी प्रकार आत्मा का चैतन्य परिणाम न मानकर केवल इससे सम्बन्धित चित्त का परिणाम मानकर सब कार्य सिद्ध हो जाते है। आत्मा भी निर्विकार रह सकती है।

सिद्धान्ती—आप भी तो आत्मा को निर्विकार परिणाम रहित मान कर इसके बन्ध और मोक्ष मानते हैं?

(समाधान) हम तो केवल चित्त के सान्निध्य से आत्मा मे बन्ध स्वीकार करते है। इसके स्वरूप मे कोई परिवर्तन नही मानते है। न ही कार्य की अवस्था मे इसमे सकोच विकास मानते है। दोनो अवस्थाओं मे एक ही समान निष्क्रिय और असङ्ग मानते है। आरोप का मतलब यह नही कि आत्मा के धर्म हैं, किन्तु चित्त के धर्म ही यह होते है, परन्तु आरोप इसमे कर दिये जाते हैं। बन्ध और मोक्ष वास्तव मे अन्तः-करण के धर्म हैं, आत्मा तो सब गुणो और धर्मों से रहित है।

मुक्ति मे साङ्कल्पिक शरीर का अभाव

सिद्धान्ती—मुक्ति मे आत्मा अपने सङ्कल्प मे दिव्य शरीर का निर्माण कर लेता है, उसकी अपनी शक्तियें भी होती हैं, इनके द्वारा दिव्य विषयो का उपभोग भी करता है, और ब्रह्म के आनन्द का भी उपभोग करता है।

(समाधान) इस मनुष्य लोक मे भी जब सत्व गुण प्रधान होकर योगी समाधि द्वारा भूतो या तन्मात्राओं, और अन्तः करण चतुष्टय आदि का विज्ञान प्राप्त

करके इन पर अधिकार प्राप्त कर लेता है, तो वह भी स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर का निर्माण कर लेता है। दिव्य, रूप, रस, गन्ध आदि के भोगने की भी उसमें सामर्थ्य हो जाती है, समाधि मे बैठकर ब्रह्म के आनन्द का भी उपभोग कर लेता है। तब इस लोक मे और मुक्ति मे क्या अन्तर रहा। जब ये सब सुख और आनन्द इसी शरीर में रहते हुए इसी मनुष्य लोक में प्राप्त हो सकते है, तो मुक्ति मे जाने की क्या जरूरत है। इस लोक मे भी योगी इच्छा पूर्वक अनेक जन्म धारण करके अनन्त काल तक सुख और आनन्द का उपभोग कर सकता है। फिर तुम्हारी इस लोक और परलोक की मुक्ति में क्या विशेपता हुई, इस लोक में तो योगी दोनो प्रकार के स्थूल और सूक्ष्म भोग भी कर सकता है, और तुम्हारी मुक्ति मे तो एक ही प्रकार के सूक्ष्म भोग भोगने को मिलते हैं। आपके जैसी मुक्ति तो जहाँ सुख और आनन्द का भोग होता है, और विपयों का भी भोग होता है वह तो इस लोक मे प्राप्त हो जाती है। तब परलोक मे जाने की क्या आवश्यकता है।

प्रकृति के कार्यो का सम्बन्ध इस मुक्ति मे बराबर बना हुआ है। सांकल्पिक शरीर का उपादान कारण भी पञ्चतन्मात्रा हो सकती है। इन्द्रिय और अन्तःकरण चतुष्टय भी इस सांकल्पिक शरीर मे होना हुआ। भोग भी सूक्ष्म भूतो के भोगने हुए। जहाँ इन्द्रियों के भोग से सुख लाभ होता है, वहाँ दुःख की भी संभावना हो सकती है। क्योकि सुख और दुःख का सम्बन्ध रात और दिन के समान है। रात है तो दिन भी है, दिन है तो रात भी है। सुख दुःख धर्म इन्द्रियो और अन्तःकरण के ही धर्म हुए। जब यहाँ के समान वहाँ भी सूक्ष्म सृष्टि वर्तमान है, बन्धन तो शरीर इन्द्रिय अन्त.करण का बना ही रहा। ये ही तो सर्व दुःखो का कारण बने हुए थे। जब इनसे छुटकारा न हुआ तो क्या यह मुक्ति हुई। इसको भुक्तिमय मुक्ति कहा जा सकता है। इस प्रकार की भुक्तिमय मुक्ति तो इस लोक मे भी प्राप्त है। अतः इस प्रकार की मुक्ति में कोई विशेपता प्रतीत नही हुई, जहाँ इन्द्रियों के भोग भी हों, जो सदा से इस आत्मा के बन्धन का हेतु चले आ रहे थे, उन से तो पीछा न छूटा। योग दर्शनकार तो कहते हैं। यथा—

पुरुषार्थशून्यानांगुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूप प्रतिष्ठावाचितिशक्तिरिति ॥

योग दर्शन० कैवल्प० सू० ३४ ॥

—सत्व रजस् तमस् ये तीनों द्रव्य या गुण पुरुष-आत्मा का सर्व प्रकार का भोग देने के लिए अर्थ से शून्य-प्रयोजन रहित होकर अपने कारण मे प्रवेश कर जाते हैं, उस योगी के लिए जिसने आत्म-विज्ञान प्राप्त कर लिया है। उनमे उस आत्मा के लिए भोग देने की सामर्थ्य नही रहती है। तब आत्मा की अपने स्वरूप मे स्थिति हो जाती है।' यहाँ ये तीनों गुणों के सर्व प्रकार के सम्बन्धों का विच्छेद कथन कर रहे हैं। आप इनके कार्यो—सांकल्पिक शरीर, इनसे उत्पन्न इन्द्रियों, और अन्तःकरण को लेकर मोक्ष मे जाना चाहते हैं। कैसा यह आपका मोक्ष हुआ। यहाँ योग शास्त्र प्रकृति के सब कार्यों का अभाव आत्मा के साथ मानता है। आप तो प्रकृति के कार्यात्मिक पदार्थों को साथ में लेकर मोक्ष मे चले हैं भोग भोगने के लिए। केवल ब्रह्मानन्द की ही बात करते तो कोई इस मोक्ष के लिए यत्नशील भी होता।

सांख्य इस विषय मे कह रहा है। यथा—

'निर्गुणत्वमात्मनोऽसगत्वाविश्रुते । अ० ६। सू० १०॥
—आत्मा के साथ मोक्ष म न कोई गुण होता है, और न किसी का सग ही होता है।' अत मोक्ष मे सब गुणो और सब प्रकार के सगो से रहित होता है। इस का नाम है, यथाथ रूप म मुक्ति या कैवल्य। जहाँ सर्व प्रकार से सुख दु खो का अभाव है। कोई भी चेष्टा, काई भी कर्म, कोई भी भूख, या प्यास, या चिन्ता, या राग, वेदना या हर्ष, या शोक कुछ भी तो नही है। केवल स्वस्वरूप मे कैवल्य भाव स स्थिति है। तथा च वैशेषिक दर्शनम्—

'आत्मेन्द्रियमनोऽर्थ सन्निकर्षात् सुख दु खे ॥' अ० ५१। सू० १५॥
'तदभावे सयोगाभावोऽप्रादुर्भावश्च मोक्ष ॥' अ० ५१। सू० १७॥

—आत्मा इन्द्रिय, इनके विषय एव मन के सन्निकर्ष सम्बन्ध विशेष से सुख दु ख की उत्पत्ति होती है। इनके अभाव होने पर सयोग का अभाव हो जाता है, क्योकि इनका सयोग ही सुख दु ख को उत्पन्न करता है। अत शरीर, इन्द्रिय, विषय, मन इनके साथ जो आत्मा का सयोग था, इस सयोग का अभाव होने से ही मोक्ष होता है। तथा च न्याय।

'सुषुप्तस्य स्वप्नादर्शने क्लेशाभावादपवर्गा ॥' सू० ६३॥
'न प्रवृत्ति' प्रतिसन्धानाय हीनक्लेशस्य ॥' अ० ४। आ० १॥ सू० ६४॥

—जिस प्रकार अत्यन्त गाढ निद्रा मे स्वप्न की अवस्था न होने पर दु ख या क्लेश का अभाव होता है, इसी प्रकार क्लेशो का अभाव अपवर्ग मे होता है। जिसके क्लेश नष्ट हो गये हैं, उस की फिर भोगादि मे प्रवृत्ति नही होती है'। स्वरूप मे स्थिति हो जाती है। यह अपवर्ग या मुक्ति है।

प्रलयकाल की अवस्था मे आपका साकल्पिक शरीर भी तो प्रलय म नष्ट हो जायेगा, तब तो यथेच्छ सूक्ष्म भोगो और ब्रह्मानन्द के सुख का अभाव हो जायेगा। आप के सिद्धान्त के अनुसार परान्त काल तक या मुक्ति की अवधि तक स्थायी या यथेच्छ सुख और आनन्द का अभाव प्रलय काल की अवस्था मे हो जायेगा। फिर नित्य सुख या आनन्द तो न रहा। यदि हमारे समान सर्व भोगो और साकल्पिक शरीर का अभाव मोक्ष मे मान ल, तब सृष्टि और प्रलय मुक्त आत्मा के लिए एक समान हो जायेंगे। जब सृष्टि काल मे ही आप का मुक्त आत्मा सुख और आनन्द भोग सकता है, और प्रलय काल मे इनका अभाव हो जाता है, तो मोक्ष या मुक्ति से क्या लाभ। प्रलय काल की अवस्था मे तो वह कैवल्य रूप मे रहता है। तब इस कैवल्य को सदा के लिए सृष्टि और प्रलय काल मे एक ही समान क्यो नही मान लेते। जैसे हम कैवल्य मानते हैं। चाहे वह मुक्ति नित्य हो या अनित्य परन्तु सृष्टि और प्रलय मे एक समान ही रहनी चाहिये। और वह एक समान तब ही हो सकते है, जबकि किसी भी प्रकार के शरीर का सम्बन्ध आत्मा के साथ न रहे। सूक्ष्म साकल्पिक या दिव्य शरीर ही नित्यानन्द मे बाधक होगा प्रलय काल मे, जब इन शरीरो के उपादान कारण प्रकृति के परिणाम ही हैं, तो इन सब ने तो प्रलय काल मे अवश्य ही नष्ट हो जाना है। तब यह शरीर कैसे रह सकते है, इन की भी तो प्रलय होनी है। इनके अभाव मे। दिव्य भोगो और आनन्द से वंचित हो जायेगा। अत सर्व प्रकार के शरीरो का अभाव मोक्ष मे मानना यथार्थ होगा। तब

ही आत्मा का मोक्ष एक रूप, एक स्थितिक, एक ही अवस्था वाला होगा। प्रलय काल मे तो आप का आत्मा हमारे समान ही हो जाता है। अतः आप के मोक्ष की अपेक्षा हमारा कैवल्य ही सर्वश्रेष्ठ है।

आत्मा, ब्रह्म और प्रकृति का वास्तविक स्वरूप

अब रही चर्चा अस्मदादि के त्रित्ववाद की। हम जीवात्मा, प्रकृति और ब्रह्म तीनो को नित्य मानते है।

आत्मा का स्वरूप—चेतन आत्मा सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, जिसका और विभाग न हो सके। जिस मे किसी भी जड़ या चेतन के प्रवेश करने का अवकाश न हो। कूटस्थ निर्विकार, असंग, निष्क्रिय, नित्य, अल्पज्ञ, निरवयव, अपरिणामी, चेतन, सत्, आत्मा है। सूक्ष्मता की इसमे पराकाष्ठा है। प्रकृति के ससर्ग से या सन्निधि से ममत्व की भावना या वन्ध का, भोक्तापन के आरोप का, चित्त के सयोग से अनेक प्रकार के गुणों का आरोप हो जाता है। इसके सग से ही जन्म-मरण का होना, बन्ध और मोक्ष माना गया है। तीनो शरीरो के अभाव मे या सम्बन्ध छूट जाने पर कैवल्य रूप मुक्ति को प्राप्त होता है। कैवल्य मे सर्व प्रकार के सुख या आनन्द का अभाव होता है।

प्रकृति का स्वरूप—कारण रूप से नित्य और कार्य रूप से अनित्य, परिणामिनी, भोग और मोक्ष प्रदान करने वाली है। चेतन के सन्निधान से क्रियाशील होकर संसार का सृजन करने वाली है। अपने सब कार्यों की अपेक्षा विभु, कारण रूप मे सूक्ष्म कार्यरूप ब्रह्माण्डो के रूप मे स्थूल है। जड़ है, परन्तु चेतन ब्रह्म के सन्निधान से चेतनवत् सी बनकर जीवों को भोग और मोक्ष प्रदान करने मे समर्थ है। प्रलय काल की अवस्था में कारण रूप मे स्थित होकर साम्य भाव को प्राप्त होना, और सृष्टि के सृजन काल मे महान् आकारवाली बनकर, समस्त ब्रह्माण्ड को आच्छादित कर लेना और सदा चेतन ब्रह्म के सम्बन्ध से क्रियाशील बने रहना इसके धर्म है। ३२ प्रकार के पदार्थो का निर्माण करके सर्व प्राणियों को भोग और अपवर्ग प्रदान करना इसके मुख्य कर्म हैं। ज्ञान और क्रिया इसके सर्वप्रथम दो ही मुख्य गुण है। इन के द्वारा ही यह हरकत मे आती है। चेतन ब्रह्म के साथ इसका नित्य सम्बन्ध है, यह व्याप्य है और ब्रह्म इस में व्यापक है।

ब्रह्म का स्वरूप—सत्, चित्, सर्व व्यापक, निर्विकार, निरवयव, निष्क्रिय, असंग, विभु, अनन्त, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त रूप, प्रकृति को क्रियाशील करके आप निष्क्रिय रहना, सदा एक रूप, एक रस, प्रकृति के सन्निधान से कर्तापन का आरोप होना, प्रकृति के सन्निध्य से अनेक गुणों का आरोप होना, वास्तव मे निर्गुण एक ही चेतन रूप होते हुए, अनेक पदार्थो को चेतनवत् बना देना, प्रकृति मे अपनी चेतना शक्ति से ज्ञान, क्रिया, और बल का प्रादुर्भाव कर देना, इन सब आरोपित गुणों के आधार पर मनुष्यो और देवो के लिए, उपासना, प्रार्थना, विज्ञान तथा मोक्ष का हेतु बनना, इत्यादि अनेक गुण इस में आरोपित होते हैं।

आत्मा ब्रह्म का वास्तविक स्वरूप—ये दोनों चेतन हैं। इन की चेतना को चाहे आप पदार्थ समझे, या इनका स्वरूप समझे। इस चेतना मे भिन्न इनमें और कोई गुण या धर्म नही है। इन की यह चेतना नित्य और अपरिणामिनी है। परिणाम ही

धर्मों या गुणो को उत्पन्न करता है। अत दोनो ही निर्गुण हैं। एक अणु है, और दूसरा महान् है। अणु या महान् इनके गुण नही हैं, यह इनका स्वरूप ही है। हमने इन को चेतन पदार्थ ही सिद्ध करना है। चेतन कहो चाहे ज्ञान कहो, ज्ञान चेतन से अलग नही है किन्तु ज्ञान ही चेतन रूप है।

जो परिणाम भाव को प्राप्त होता है, वह विकारवान् हो जाता है जो विकारी नही वही नित्य हो सकता है। इसलिये नित्यता इनका कोई कोई गुण नही हैं। सत् इनको कहा गया है, सत् होना इनका गुण नही है। किन्तु स्वरूप ही है। इन्हे सत् इसलिये कहा है, कि इनकी चेतनता मे कभी किसी भी प्रकार की तबदीली नही होती है। न कभी कार्यभाव को ही प्राप्त होने हैं। आनन्द भी इनका गुण नही है। किन्तु स्वरूप ही है। क्योकि चेतनता ही आनन्द रूप है। इस प्रकार यह ब्रह्म के गुण नही हैं, कार्यात्मक या परिणामात्मक पदार्थों का गुणगुणी भाव सम्बन्ध होता है। जड पदार्थों मे जो धर्मों मे गुणो की अभिव्यक्ति होती है, वह परिणाम काल मे ही होती है। भले ही गुणगुणी का परस्पर अभेद ही है। परन्तु गुणो की अभिव्यक्ति मे परिणाम ही कारण होता है। अतः सत् और आनन्द आत्मा और ब्रह्म के परिणाम से उत्पन्न हुए धर्म या गुण नही हैं, किन्तु चेतन ही सत् आनन्द रूप है। चेतन का सत् और आनन्द के साथ धर्म-धर्मी भाव सम्बन्ध नही है। अत. इनको हम स्वरूप सम्बन्ध या तादात्म्य सम्बन्ध, या समवाय सम्बन्ध भी नही कह सकते हैं, क्योकि ये सम्बन्ध परिणामात्मक पदार्थों मे उत्पन्न होते है। वास्तव मे ये एक पदार्थ के पर्यायवाचक शब्द हैं। न कि गुण या धर्मवाचक शब्द। चेतनता ही ऐसा पदार्थ है, जो सत्रूप, ज्ञान रूप, आनन्द रूप है। अर्थात् चेतना मे ही सत्ता, आनन्दता, तथा ज्ञानरूपता है। यह इसका स्वभाव ही है। जहाँ चेतनता है, वहाँ आनन्द है। जहाँ चेतनता है वहाँ सत् है। जहाँ चेतना है वहाँ ज्ञान है। अत इन मे गुण-गुणीभाव सम्बन्ध नही है। इन दोनो के सम्बन्ध से-ब्रह्म और आत्मा के सम्बन्ध से चित्त मे आनन्द का प्रादुर्भाव या अभिव्यक्ति होती है। इसका यह तो मतलब नही कि वहाँ आत्मा का परिणाम होकर चित्त मे आनन्द की अभिव्यक्ति हुई। किन्तु चित्त जैसे सूर्य की किरणो के आतशी शीशे पर पडने से आतशी शीशा दाह पैदा करता हैं, और वस्त्रादि को जलाने मे समर्थ हो जाता है, वैसे ब्रह्म या आत्मा मे कोई सूर्य की तरह किरणें नही निकलती है। सयोग मात्र से ही चित्त मे आनन्द रूप दाह या ज्ञान का प्रादुर्भाव हो जाता है। कोई इस चेतन के सम्बन्ध से इस प्रभाव या आनन्द को आत्मा मे बताते हैं। कोई चित्त मे बताते है, यही भ्रान्ति हो जाती है। इसका यह तो अभिप्राय नही कि चेतन आत्मा मे परिणाम से यह आनन्द उत्पन्न हुआ है। आनन्द चेतन का ही यह स्वभाव है, किन्तु इसकी अभिव्यक्ति चित्त मे परिणाम धर्म उत्पन्न होने पर, चित्त मे ही होती है। आत्मा तो आनन्द रूप ही था। क्योकि चेतना मे और आनन्द मे अन्तर नही है। आनन्द रूप ही चेतना है। इसके ही प्रभाव से चित्त भी आनन्दमय हो जाता है। जैसे पुष्प के प्रभाव से मणि रगीन हो जाती है। एक प्रकार से चेतन मे भी दूसरे गुण के रूप मे भ्रान्ति से आनन्द की अभिव्यक्ति मानने लगता है। वह आनन्द वास्तव मे चेतना से भिन्न नही है। परन्तु अज्ञानी को भिन्न रूप से प्रतीति होने लगती है। यह आत्मा मे परिणामात्मक धर्म नही है। किन्तु उसकी अभिव्यक्ति

चित्त के सम्बन्ध मे भ्रान्त रूप मे आत्मा मे भिन्न रूप से प्रतीत होने लगती है। वास्तव मे चेतन से भिन्न वह नही है। इसी प्रकार चित्त मे भी आनन्द की अनुभूति भ्रान्तिपूर्ण ही है। क्योकि चित्त जड है, जड का धर्म तो आनन्द नही है। केवल आत्मा के आभास से आनन्द रूप धर्म इसमे प्रतीत होने लगता है। वास्तव मे वह आनन्द इस चित्त का भी नही है। यहाँ भी भ्रान्ति से अनुभव हो रहा है। उधर चेतन आत्मा मे भी चेतनता से भिन्न आनन्द का अनुभव हो रहा है। वास्तव मे वह भिन्न नही है, चेतना का ही रूप है। चेतना का स्वरूप आनन्द के रूप मे प्रत्यक्ष हो रहा है। चेतना की अनुभूति हुई आनन्द के रूप मे क्योकि चेतना की अनुभूति कराने वाला चित्त ही तो है। चेतना स्व से स्वय का अनुभव तो नही कर रही है। चेतना की अनुभूति का द्वार चित्त है। इसके माध्यम से चेतना की आनन्द के रूप मे या ज्ञान के रूप मे अनुभूति हो रही है। यह चेतना का परिणामात्मक धर्म नही है किन्तु चित्त ने इसको आनन्द के रूप मे अनुभव किया है। चेतना निरवयव है, परन्तु यह चित्त मे आनन्द के रूप मे प्रतीत हो रही है।

इसी प्रकार ज्ञान गुण के विषय मे भी समझें। चित् शब्द और चेतन शब्द एक ही अर्थ के बोधक है। चित्त से ही चेतन शब्द बनता है। व्याकरण मे चिति सज्ञाने धातु के अर्थ ज्ञान होते है। अर्थात् चिति धातु ज्ञान अर्थ मे आती है। अत चित् और चेतन के ज्ञान ही अर्थ होते हैं। ज्ञान कोई आत्मा का परिणामात्मक गुण नही है। किन्तु ज्ञान रूप ही आत्मा है। जहाँ ज्ञान है वहाँ ही आनन्द है। ज्ञान और आनन्द मे कोई अन्तर नही है। परन्तु चित्त मे यह भिन्न-भिन्न रूप से अनुभूत होते है क्योकि चित्त परिणामी है। इसके परिणाम भेद से आनन्द रूप, ज्ञान रूप, इत्यादि धर्म चित्त मे उत्पन्न होने लगते है। वास्तव मे आत्मा चित् या चेतन ही है। चेतना मे कोई परिणाम नही हो रहा है। इसलिये इसे सत् कहा है। आनन्द रूप मे चेतन की प्रतीति हो रही है। अन्यथा निरवयव अरूप होने से किस प्रकार अनुभव का विषय बनता। अत यह चेतना आनन्द रूप मे और सत् रूप मे अनुभव मे आयी है, क्योकि इसमे कोई परिणाम देखने मे नही आया है। इस से सिद्ध होता है कि आत्मा और ब्रह्म मे सिवाये चेतन स्वरूप के और कोई गुण नही है। सर्वथा निर्गुण हैं। आत्मा मे चित्त के सान्निध्य से सब गुणो का आरोप होता है, और ब्रह्म मे प्रकृति के सान्निध्य से सब गुणों का आरोप होता वास्तव मे इनमे चेतन होने के सिवाय और है। कोई भी धर्म या गुण नही है। ब्रह्म के सम्बन्ध से प्रकृति मे अनेक गुण उत्पन्न होते है। वास्तव मे प्रकृति ।। भी अपना एक ही स्वरूप है जडता। शेष जितने भी धर्म इसमे उत्पन्न होते है, वे चेतन ब्रह्म के सम्बन्ध से होते हैं। सत् इसको क्यो कहा है ? 'इसकी जो जडता है वह नित्य है। इसमे जडता का कभी अभाव नही होता है, इसलिये इसको सत् कहा है, क्योकि ये तीनों पदार्थ अनादि और नित्य हैं। चेतन के सम्बन्ध से यह जड ज्ञान और गति वाली हो जाती है। यद्यपि चेतन कूटस्थ है, परन्तु इसमे ज्ञान और क्रिया सन्निधान- मात्र से हो जाती हैं।

ब्रह्म और प्रकृति का नित्य सम्बन्ध है। भ्रान्ति से इस ज्ञान और गति को ब्रह्म का गुण कह देते हैं। वास्तव मे यह गुण ब्रह्म के नही है। भ्रान्ति से प्रतीति होती है, क्योकि ब्रह्म सर्वथा निर्गुण है। यह गुण प्रकृति के भी नही क्योकि वह जड है। अत.

इसमें भी ज्ञान और क्रिया की भ्रान्ति ही है। परन्तु होते उत्पन्न इसी में ही, चेतन ब्रह्म के सम्बन्ध से है। अतः यथार्थ में तो तीनो अपने-अपने एक ही स्वरूप वाले हैं। जड और चेतन इनमें जो शेष गुण उत्पन्न होते हैं वे संयोग से होते हैं। दोनों आत्माओं मे कोई भी गुण उत्पन्न नही होता है। परन्तु चित्त और प्रकृति के सम्बन्ध से इनमें आरोपित कर दिए जाते हैं। चेतन के सम्पर्क से इस जड़ में क्रिया रूप परिणाम होने लगता है, क्योंकि दोनों नित्य हैं। अतः इस परिणाम मे भी नित्यता सी आ जाती है; क्योंकि दोनों का सम्बन्ध भी नित्य है। सदा नित्य सम्बन्ध होने से ज्ञान, क्रिया, बल का कोई प्रकृति के गुण कहते हैं; कोई ब्रह्म के, परन्तु होते ये तीनो ही धर्म प्रकृति मे है ब्रह्म में नहीं, क्योंकि ब्रह्म निर्गुण है। प्रकृति को किसी ने भी निर्गुण नही कहा है। केवल ब्रह्म को ही विद्वान लोग सगुण और निर्गुण कहते हैं। निगुणता इसका अपना स्वरूप है, सगुणता इसमे प्रकृति के सम्बन्ध से मान लेते हैं। कोई इस सगुणता को चेतन का ही परिणाम कहते हैं। कोई अस्मदादिक इस सगुणता को प्रकृति से आरोप हुआ मानते हैं। चेतनता के अतिरिक्त आत्मा और ब्रह्म मे जितने भी गुण माने जायेंगे वे इन्ही के संयोग से प्रकृति में उत्पन्न होकर इनमें ही आरोप किये जायेंगे। क्योंकि ये दोनों निर्गुण हैं। असंग इनको इसलिए कहा है कि सम्बन्ध होने हुए भी इनमें कोई तबदीली या विकार नही होता है। यदि कोई विकार इनमें संग से आ जाता है, तब ये असंग नही कहे जा सकते थे।

(शंका) जब आप आनन्द रूप धर्म को भी ब्रह्म में आरोपित मानते हैं, केवल एक चेतन रूप ही ब्रह्म को मानते हैं, तो इस चेतनता को भी क्यो न आरोपित हुआ गुण मान ले?

(समाधान) यदि चेतना की उत्पत्ति भी आनन्द के समान संयोग से मान लें, तब ब्रह्म का स्वरूप भी प्रकृति के समान जड़ मानना पडेगा। दोनों जड़ पदार्थ मिलकर जड़ की ही उत्पत्ति कर सकते हैं, चेतन की नही, क्योंकि जो गुण कारण मे होते हैं, वे ही कार्य में आते हैं। जब कारण मे चेतना नही है, तो कार्य में कैसे आ सकती है; क्योंकि अभावात्मक पदार्थ से भावात्मक पदार्थ की उत्पत्ति नही हो सकती। जैसे खरगोश या गधे के सीग नही होते हैं, अत. इनकी सन्तान के भी सीग न हुए हैं न होंगे ही। अतः ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप को चेतन मानना ही समीचीन, युक्ति और प्रमाण संगत होगा।

प्रकृति और ब्रह्म की सूक्ष्मता में अन्तर

(शंका) यदि प्रकृति को भी ब्रह्म के समान सूक्ष्म मान लिया जाये, तो इनमें हानि की क्या संभावना हो सकती है?

(समाधान) इसको भी ब्रह्म के समान सूक्ष्म मान लिया जाये, तो ब्रह्म की व्यापकता समाप्त हो जाती है, यदि ब्रह्म की व्यापकता की ओर भी हम ध्यान न दे, तब इसमे परिणाम धर्म उत्पन्न नही होगा। जैसे आत्मा और ब्रह्म मे सूक्ष्मता के कारण परिणाम धर्म उत्पन्न नहीं होता है। यदि सूक्ष्मता को ब्रह्म की सूक्ष्मता के समान ही मान लें और परिणाम धर्म चेतनता के सम्बन्ध से मान लें तब इसमें व्याप्य भाव नही हो सकेगा और ब्रह्म मे व्यापक भाव नही हो सकेगा। फिर इनका संयोग सम्बन्ध मानना

पडेगा। सयोग सम्बन्ध होता है एक देशी पदार्थ के साथ मे, अत इनकी सर्वदेशिता समाप्त हो जायेगी। फिर यह प्रश्न होगा कि इनमे महान् कौन है ? फिर इनके लिए अलग-अलग रहने के लिए अवकाश चाहिए। स्थान भी अलग-अलग होने चाहिए जहाँ इनका निवास हो। तब तो इन दोनो की विभुता भी समाप्त हो जायेगी। अब तो ब्रह्म को सूक्ष्म मानने से यह ब्रह्म के गर्भ या अवकाश मे ठहर सकती है, क्योकि इसकी अपेक्षा ब्रह्म सूक्ष्म होने से इसको अपने अन्दर धारण कर लेता है। जैसे आकाश सूक्ष्म होने से सब पदार्थों को, या स्थूल भूतो को अपने अन्दर धारण कर लेता है। इसी प्रकार ब्रह्म भी इस प्रकृति को अपने अन्दर रखने मे समर्थ हो जाता है। ब्रह्म बडा विभु हो जाता है, और प्रकृति छोटी विभु हो जाती है, अपने कार्यात्मक पदार्थों की अपेक्षा से। ब्रह्म प्रकृति की अपेक्षा विभु है। ब्रह्म के मुकाबले मे आत्मा को जो सूक्ष्म माना है, ये दोनो सजातीय चेतन है, अत इनकी चेतन रूप सूक्ष्मता परस्पर बाधक नही होती है। एक दूसरे के साथ मिल जाने की, समाजाने की योग्यता है। यह पता नही चलेगा, कि ब्रह्म कौन सा है और आत्मा कौन सा। क्योकि दोनो एक समान ही चेतन हैं। यदि कहो सजाती सजाती मे जा मिला, जैसे जल-जल मे जा मिला, फिर अलग कैसे हो सकता है ? जो पहले भी अलग था, वह मिलने के पश्चात् भी अलग हो सकता है। केवल चेतनत्वेन सजातीयता है, पदार्थ तो भिन्न-भिन्न ही है। जब पहले भिन्न थे तो बाद मे भी भिन्न हो सकते है। जैसे भिन्नता प्रथम प्राप्त थी, मिलने के पश्चात् भी वैसे ही भिन्नता हो सकती है।

आत्मा ब्रह्म का अश भी नही था कि पहले इससे पैदा हुआ बाद मे जा मिला। इससे ब्रह्म विकारी हो जायेगा। अत अनादिकाल से दोनो स्वरूप से अलग थे, और सदा अलग ही रहेगे भी। यह बात दूसरी है, कि ब्रह्म महान् है, अनन्त है, इसकी महान्ता रूप अवकाश मे यह भी निवास कर सकता है। इसके अवकाश मे रहकर यह अपने स्वरूप को तो नही खो सकता है। अत पदार्थ रूप से दोनो अलग-अलग हैं, और समान सूक्ष्म हैं। एक अणु है दूसरा विभु है। विभु होते हुए सूक्ष्मता के नाते आत्मा के बराबर सूक्ष्म भी है।

प्रकृति विजातीय है। विजातीय होने से ब्रह्म और आत्मा के समान मिल नही सकती है। जैसे मनुष्यो का एक समुदाय है। उसमे एक हाथी आ जाता है, वह पृथक् रूप से अलग प्रतीत होने लगता है। कोई भी उसको दूर से देख सकता है या पहचान सकता है। यदि हाथी की अपेक्षा उस समुदाय मे एक मनुष्य और आ मिले तो उसकी अलग पहचान नही हो सकती है, क्योकि वह सजातीय है। इसी प्रकार विजातीय होने मे प्रकृति मेल नही खाती। अत इसको ब्रह्म की अपेक्षा कुछ स्थूल ही मानना पडेगा। तब ही इसमे विकार या परिणाम धर्म उत्पन्न हो सकता है और नाना रूप मे हो सकता है। इसम ब्रह्म व्याप्त होकर भी रह सकता है। यह ब्रह्म मे ठहर भी सकती है। इसके अन्दर ब्रह्म रहकर इसको गत्यात्मक भी कर सकता है। ब्रह्म के समान सूक्ष्म मान लेने से अनेक आपत्तियाँ उपस्थित हो जाती है। विजातीय और कुछ स्थूल होने से ब्रह्म के साथ व्याप्य व्यापक भाव सम्बन्ध भी बन जाता है। सजातीय और समान आकार वालो का सयोग सम्बन्ध होता है, व्याप्य व्यापक सम्बन्ध नही होता है। अत ब्रह्म की

अपेक्षा प्रकृति को कुछ अंश में स्थूल सावयव ही मानना ठीक होगा। जिसमें ब्रह्म ओत-प्रोत होकर रह सके, या व्यापक रूप से निवास कर सके।

प्रकृति को निरवयव मानने से कार्यो की आरम्भक नही हो सकती। जैसे आत्मा और ब्रह्म निरवयव हैं, इसीलिए किसी भी पदार्थ के उपादान के रूप मे आरम्भक नहीं होते है, निरवयव पदार्थ परिणामी भी नही हो सकता है। निरवयव यदि सूक्ष्म है तब पदार्थों का सयोगी बनेगा। यदि विभु है तब व्यापक बनेगा। उपादान कारण नही बन सकता है। अवयब ही कार्य के आरंभक होते हैं, मिलकर या सघात को प्राप्त होकर ' प्रकृति को संकोच, विकास एवं परिणाम गुणो वाली मानना पड़ेगा। क्योंकि इसके कार्य अन्त.करण आदि में संकोच और विकास तथा मध्यम परिणाम धर्म इसी के कारण से आये हैं। भले ही इसमें अनेक गुण ब्रह्म के सम्बन्ध से उत्पन्न हुए हैं। परन्तु परिणामिनी होने से गुणों के प्रति उपादान कारण इसे ही मानना पडेगा। अतः सांख्य वृत्तिकार हरि प्रकाश स्वामी का प्रकृति को निरवयव मानना ठीक यथार्थ प्रतीत नही होता है। इन्होने ' न भागलाभो भोगिनो निर्भगित्व श्रुतः' मे प्रकृति को निर्भागत्व सिद्ध किया है, परन्तु वृत्ति में ऐसा इन्ही का अर्थ है। इससे ऊपर के सूत्र मे प्रकृति और आत्मा को नित्य सिद्ध किया है। फिर इसके पश्चात् यह सूत्र दिया है। इस सूत्र का केवल आत्मा परक अर्थ भी तो हो सकता है। 'भोगी जो आत्मा है, उसका भाग हिस्सा नही हो सकता। क्योंकि श्रुति इसे निर्भाग कथन करती है।' सूत्रकार की प्रकृति के विषय मे निर्भागता कथन करने की इच्छा प्रतीत नही होती है क्योंकि अगले सूत्र मे आत्मा के लिए कथन किया है। आत्मा मे आनन्द की अभिव्यक्ति मुक्ति में नही होती है निर्गुण होने से। कार्य स्वभाव वाली होने से भी नित्यत्व का इसमे अभाव नही हो सकता है, क्योंकि कारण के पश्चात् कार्य, और कार्य करण मे चला जाता है। इस प्रकार अनादि काल से कार्य कारण की परम्परा चली आती है और चलती रहेगी। इस परम्परा को भी नित्य मानते हैं।

इसके कार्यात्मक व्यष्टि पदार्थो के साथ जीवात्मा का मुख्य सम्बन्ध बना रहता है, गौण रूप से कारण के साथ भी भोग और अपवर्ग सम्पादन करने के लिए बना रहता है। ब्रह्म का सम्बन्ध मुख्य रुप से कारण के साथ बना रहता है, क्योंकि इसके सन्निधान से सृष्टी की रचना होती है। इसके सान्निध्य से यह परिणाम भाव को प्राप्त होकर कार्यो मे अनुपतन होती हुई चलती है, अतः गौणरूप कार्य के साथ भी ब्रह्म का सम्बन्ध रहता है।

अनादि काल से आत्मा का सम्बन्ध प्रकृति और इसके कार्यो के साथ भोग और अपवर्ग का चला आ रहा है। इसी कारण इसका बन्ध और मोक्ष अनित्य माना जाता है, क्योंकि जो वस्तु प्राप्त की गई है; उसने अपनी अवधि मे समाप्त भी होना है। यद्यपि आत्मा सदा से शुद्ध बुद्ध और मुक्त है। परन्तु प्रत्यक्ष शरीर आदि के साथ सम्बन्ध देखकर इसमे बद्ध होने का आरोप कर दिया जाता है। अन्त.करण के साथ सम्बन्ध होने से 'ममेदम्' की भावना या अभिमान यह करने लगता है। इस अभिमान को दूर करने के लिए स्व सम्बन्धित पदार्थों का विज्ञान और इनसे परम वैराग्य को ही कैवल्य कहा है। इस ज्ञान और वैराग्य के पश्चात् इस आत्मा की स्वस्वरूप मे स्थिति का नाम ही कैवल्य है। इसका सम्बन्ध क्यों और कैसे होता है, इसका वर्णन पहले कर चुके हैं।

एकात्मवाद के अनेक दोष

सिद्धान्ती—'चिदानन्द-प्रतिबिम्ब-समन्विता ।
तमो-रजस्सत्त्वगुणा प्रकृतिर्द्विविधा च सा ॥ १५ ॥
सत्त्व शुद्ध य विशुद्धिभ्यां माया विद्ये च ते मते ।
मायाबिम्बो वशीकृत्य तां स्यात् सर्वज्ञ ईश्वरः ॥ १६ ॥
अविद्यावशगस्त्वन्य स्तद्वैचिव्यादनेकधा ।
सा करण-शरीरं स्यात् प्राज्ञस्तत्राभिमानवान् । १७ ॥

पञ्चदशी० तत्त्वविवेक प्रकरणम् ।

—चिदानन्द रूप ब्रह्म से प्रतिबिम्बित, सत्त्व रजस् तमस् गुणवाली प्रकृति दो प्रकार की है। सत्त्व की शुद्धि से इसको माया, और सत्त्व की अशुद्धि से अविद्या मान लिया है। माय से प्रतिबिम्बित को सर्वज्ञ ईश्वर मान लिया है। दूसरा जो अविद्या के वश मे फस गया है। वह विचित्रता के कारण अनेक प्रकार का हो गया है। इसको हम जीव नाम से पुकारते है। इस अविद्या को हम कारण शरीर कहते हैं। इसमे अभिमान करने वाले को हम प्राज्ञ मानते है। प्राज्ञ का अर्थ जीवात्मा ही होता है।

(समाधान) जब आप ब्रह्म को निराकार, निरवयव, तथा असग मानते हैं। तब इसका प्रतिबिम्ब कैसे पड सकता है। प्रतिबिम्ब आकारवान् पदार्थ का ही पड सकता है, निराकार पदार्थ का नही। यदि आप कहे कि जब ब्रह्म पदार्थ रूप से वर्तमान है तो उसका कोई रूप तो मानना ही पडेगा। तब हम आप से पूछते है, कि उसका रूप किस के समान है, जिसके रूप के साथ हम इस ब्रह्म के रूप की तुलना करें। तब आपके पास कोई भी उत्तर नही है। यदि आप कहे जीवात्मा के समान उसका रूप है। तब हम पूछते हैं, जीवात्मा का कैसा रूप है, उसके रूप की तुलना किसी अन्य पदार्थ के समान बताओ। यदि आप प्रकृति, और उसके किसी कार्यात्मक 'पदार्थ आकाशादि के साथ तुलना करो, तो ये सब जड पदार्थ हैं, चेतन के रूप की तुलना जड पदार्थ के साथ नही हो सकती है। अत. निराकार ब्रह्म का बिम्ब बिम्बी भाव नही बन सकता है, और बिम्ब भी तो एक देशी पदार्थ का पड़ सकता है, ब्रह्म तो सर्वव्यापक है, अतः निराकार होने से इसका बिम्ब नही पड सकता, फिर आप दूसरे पदार्थ को तो मानते ही नही हो, केवल एक ब्रह्म के सिवाय आपके सिद्धान्त मे और कोई पदार्थ है ही नही, तब यह प्रकृति वहाँ से आयी जिसको आप माया और अविद्या के रूप मे स्वीकार कर रहे है।

सिद्धान्ती—हम पदार्थ अनादि सान्त मानते हैं, ईश्वर, जीव, माया, अविद्या जीव ईश्वर का भेद। हम अनादि सान्त पदार्थ का खण्डन कर चुके हैं, अनादि सान्त पदार्थ कोई सिद्ध ही नही होता है। अनादि नित्य ही सिद्ध होता है। ब्रह्म का बिम्ब सिद्ध न होने से ब्रह्म ईश्वर भाव को भी प्राप्त नही हो सकता है, न जीव भाव को ही प्राप्त हो सकता है। बिम्ब बिम्बी भाव ब्रह्म मे सिद्ध न होने से ससार का सृजन कैसे होगा। हाँ ! व्याप्य व्यापक भाव सम्बन्ध ब्रह्म और प्रकृति का मान लेने से ही सृष्टी की रचना हो सकती है। अथवा ब्रह्म के सन्निधान से सृष्टि का सृजन मानना पडेगा।

प्रोढीवाद से यदि बिम्ब बिम्बी भाव भी स्वीकार कर लें, तब शंका होती है, कि ब्रह्म मे जो ईश्वर भाव आया है, क्या वह परिणत होकर आया है आप कहेंगे

विवर्त होकर आया है, क्या यह विवर्त है ? आप कहेंगे, ब्रह्म अपने वास्तविक स्वरूप को न छोडकर ईश्वर भाव को प्राप्त होता है। क्या यह नाम रूप से भेद हुआ है ? अथवा पदार्थ रूप से ब्रह्म ईश्वर का भेद हुआ है, अथवा गुण गुणी रूप से भेद हुआ है। नाम मात्र के भेद से तो पदार्थ का भेद नही हो सकता है ? यदि पदार्थ भेद मानते हो तो कारण कार्य भाव सिद्ध होता है। यदि गुण गुणी भाव से भेद मानते हो तो परिणाम वाद सिद्ध हो जाता है। प्रकृति के समान ब्रह्म भी परिणामी सिद्ध हो जायेगा। अतः ईश्वरत्व भाव को ब्रह्म का प्राप्त होना ही सिद्ध नही होता है। इसलिए माया से प्रतिविम्बित ब्रह्म ईश्वर भाव को प्राप्त नहीं हो सकता है।

अब रहा दूसरा समाधान— ब्रह्म का अविद्या मे प्रतिविम्ब होकर जीव-भाव को प्राप्त होना, और अविद्या के कारण अनेकत्व रूप से जीवो के रूप मे हो जाना, यह भी सिद्ध नही होता है। ईश्वर-भाव को प्राप्त होने मे जो दोष ब्रह्म मे आता है, वही दोष जीव को प्राप्त होने मे उपस्थित होता है। जीव भाव को प्राप्त होने मे भी आपको चेतन का परिणाम मानना होगा, जो कि अशुद्ध है। अविद्या मे प्रतिविम्ब पडने पर होता है यह ! निराकार होने से अविद्या मे प्रतिविम्ब नही पड सकता है। परिणाम भाव को प्राप्त होकर ईश्वर और जीव भाव को प्राप्त होना, जिसे आप विवर्त कहते है, यह भी सिद्ध नही होता है। अतः इस प्रकार के अद्वैतवाद मे अनेक प्रकार के दोष उपस्थित होते हैं।

इस विवर्त को न मानकर ब्रह्म के सन्निधान से प्रकृति का कार्यभाव को प्राप्त होना ठीक होगा जो कि कारण रूप से नित्य और कार्य रूप से अनित्य है। इस सिद्धान्त *को मानकर ब्रह्म मे न विवर्त मानने की जरूरत है, न परिणाम मानने की आवश्य*कता है। अत ब्रह्म, प्रकृति और जीव को अनादि नित्य मानने से कोई भी दोष उपस्थित नही हो सकता है।

सिद्धान्ती—*ब्रह्म का प्रकृति के साथ सम्बन्ध होकर विवर्त-भाव को प्राप्त होना* होता है, और प्रकृति द्वारा पदार्थो का उत्पन्न होना इन सबको हम स्वप्न के समान मिथ्या मानते हैं, अथवा रज्जु मे सर्प की भ्रान्ति के समान मानते है।

(समाधान) *स्वप्न के पदार्थ भी वास्तव मे मिथ्या नही होते हैं। बहुत से स्वप्न तो यथार्थ ही होते हैं। यदि मान लिया जाये झूठे भी होते है, तो स्वप्न मे* जो पदार्थ देखने मे आते हैं, वह तो केवल देखे, सुने, अनुभव किये हुए पदार्थो की ही स्मृति होती है। न कि वहाँ कोई कार्य या व्यापार होता है। वह तो स्मृति जन्य ज्ञान ही होता है। अत स्वप्न के पदार्थ भी मिथ्या नही होते है। पूर्वानुभूत पदार्थो, कार्यो या व्यापारो का ही उस अवस्था मे स्मरण होता है। *अतः यह स्वप्नजन्य ज्ञान की स्मृति वृत्ति के* अन्तर्गत हो जाता है। इससे सिद्ध होता है, स्वप्न के पदार्थ भी मिथ्या नही होते है।

रही रज्जु मे सर्प की भ्रान्ति की बात। ससार मे सर्प भी वर्तमान है, और रज्जु भी वर्तमान है। दोनो पदार्थो का ही भाव है, अभाव नही है। *अन्धकार के कारण* अथवा आँख की दृष्टि कम होने के कारण से भ्रान्ति हुई। जब दोनो वस्तुओ की सत्ता मौजूद है, तब यहाँ दृष्टि का दोष है, न कि पदार्थों का अभाव है। इस अन्धकार के

कारण या दृष्टि दोष के कारण आप वस्तु से ही इनकार करते हैं। हम तो तब भ्रान्ति जन्य समझते कि पदार्थ का सदा सर्वत्र ही अभाव होता और फिर भ्रान्ति होती। शश के सीग नही होते हैं, सदा और सर्व देश मे इनका अभाव ही रहता है। इसमे कभी भ्रान्ति नही होती है और न स्वाप्निक कल्पना ही कभी होती है। अत. स्वप्न के पदार्थों का मिथ्यात्व और रज्जु मे सर्प की भ्रान्ति का दृष्टान्त ठीक नही है। ये दृष्टान्ताभास ही हैं। अत. प्रकृति और इसके कार्यात्मिक पदार्थ सत्य ही है, मिथ्या नही है। न ही कल्पना किये हुए है।

इस उपरोक्त विवेचन से आप का एकात्मकवाद या अद्वैतवाद सिद्ध नही होता है।

(शका) आप आत्मा को नाना मानकर कैवल्य का वर्णन करते है, और इस की प्रत्येक के लिए प्राप्ति मानते है, यदि एक ही ब्रह्म को सब अन्त करणो का अधिष्ठान मानकर भोग और अपवर्ग मान लें, तो क्या आपत्ति है ?

(समाधान) एक चेतन विभु सब अन्त करणो का अधिष्ठान नही हो सकता है। जो घटाकाश, मठाकाश का दृष्टान्त देकर एक आकाश को ही अधिष्ठान सिद्ध करते है, वह दृष्टान्त भी ठीक नही है। आकाश पदार्थो के प्रति ज्ञान और क्रिया का हेतु नही बनता है। केवल पदार्थो को अवकाश ही प्रदान करता है। वह केवल जड है। अन्त.करण के प्रति चेतन अधिष्ठान होकर ज्ञान और क्रिया का हेतु बनता है। एक अधिष्ठान के मानने से सब अन्त.करणो के ज्ञान क्रिया, कर्म और भोग समान होगे। सारय ने कहा है। यथा—

'एकत्वेन परिवर्तमानस्य विरुद्धधर्माध्यासः।' अ० १। सू० १५२॥

—एक ही आत्मा को सर्व उपाधियों का अधिष्ठान मानने से सुख दु.ख आदि जो विरुद्ध धर्म हैं इनका सम्बन्ध भी नहीं होगा। कोई बद्ध है, कोई मुक्त है। यह भी सिद्ध नही हो सकेगा। अतः अधिष्ठान को नाना मानना यथार्थ सिद्ध होता है। एक अधिष्ठान मानने से यह विलक्षणता भी नही होगी, कोई दु.खी, कोई सुखी, कोई धनी, कोई निर्धन। यदि कहो कि यह धर्म अन्तःकरण के हैं, तो अन्तःकरण तो जड है, उसके ये धर्म चेतन के सहयोग के बिना उत्पन्न नही हो सकते हैं, अत. ये चेतन की अपेक्षा करते है। भिन्न-भिन्न अधिष्ठान होने से भिन्न-भिन्न कर्तापन का अभिमान भी होता है, और ज्ञान क्रिया भी भिन्न-भिन्न होती है। अत. भिन्न-भिन्न अन्त.करणो का अलग-अलग चेतन मानने से ही कर्म और भोग मे विलक्षणता आयेगी। एक अधिष्ठान से यह विलक्षणता नही हो सकती है। एक अधिष्ठान तो भिन्न अन्त.करणो के सम्बन्ध से अनेक रूपो वाला हो जायेगा। अधिष्ठान भिन्न-भिन्न रूप का हो जायेगा। पर ब्रह्म तो अपरिणामी है, अतः प्रत्येक अन्त.करण के लिए चेतन पृथक्-पृथक् ही होना चाहिये। तब ही कर्म भोग की व्यवस्था ठीक होगी। अन्यथा एक अधिष्ठान से सब के कर्म भोग समान हो जायेगे। एक ही अधिष्ठान कर्म भोग की विलक्षणता पैदा नही कर सकता। दृष्टान्त के रूप मे—जैसे एक दीवार पर सामने छोटे-छोटे हजारो शीशे आप लगा दे, और सामने खडे होकर देखे, आपको अपनी सहस्रो आकृतियाँ दीखेगी, और वे सब एक ही समान होगी। कोई भी अन्तर किसी मे न होगा। जैसी आप चेष्टा करेगे उस प्रकार की सब दर्पणो मे एक समान ही चेष्टा होती दिखाई देगी, क्योकि क्रिया का अधिष्ठान एक है।

इसी प्रकार एक ब्रह्म को अधिष्ठान मानने से सब अन्त करणो के भोग और कर्म, दु ख और सुख, बन्ध और मोक्ष, सब समान ही हो जायेंगे। लोक मे भी ऐसा देखने मे नही आता है। अनेक अधिष्ठानो के होने से ही अन्त करणो और कर्म भोगो मे अन्तर आ सकता है।

एक अन्त करण के साथ एक ही आत्मा का सम्बन्ध होता है। तब ही कर्म, भोग, और अभिमान की विलक्षणता आती है। भोक्तापन का अभिमान चेतन मे ही होता है। चेतन कहता है कि मेरा अन्त करण इस बात को नही मानता है। अत अधिष्ठान भिन्न है और अन्त करण भिन्न है। अभिमान चेतन मे ही होता है, न कि जड मे, एक अधिष्ठान होने से उसके एक देश मे कही ज्ञान, कही अज्ञान, कही बन्ध कही मोक्ष होगा। एक देश मे ही कही पाप कही पुण्य होगा। अत भिन्न-भिन्न ही चेतन अधिष्ठान मानना ठीक होगा। तब ही कर्म भोग और फल की व्यवस्था ठीक हो सकेगी। अन्त करणो के एक ही चेतन के उपाधिमान होने से जिस-जिस देश मे उपाधि होगी, उसी-उसी देश मे पुन द्वैत सिद्ध होगा क्योकि उपाधि और उपाधिमान का भेद है। इस विषय मे साख्य सूत्र का कथन है—

'उपाधिश्चेत्तात्सिद्धौ पुनर्द्वैतम'—उपाधि के सिद्ध होने पर उपाधिमान भी पृथक् रूप से सिद्ध होता है। तथा च—

'नाद्वैतमत्मनोलिङ्गात्तद्भेदप्रतीते ॥ ६१ ॥'

'नानात्मनापि प्रत्यक्षबाधात् ॥ ६२ ॥' सा० अ० ५ ॥

—आत्मा एक नही हो सकता है, लिंगात्—सुख, दु ख, जन्म-मरण आदि लिंग से भेद प्रतीत होता है। प्रत्यक्ष रूप से हम सर्वत्र भेद देखते है। इसमे बाधा पड जायेगी यदि एक ही अधिष्ठान मानेगे।'

(शका) तब तो एक प्रकृति मे एक ब्रह्म को उपाधिमान मानकर ब्रह्म को भी भाक्ता रूप से अभिमानी मानना पडेगा, और इसमे भी कर्म भोग मानना पडेगा ?

(समाधान) ब्रह्म और प्रकृति का व्यापक व्याप्य भाव सम्बन्ध है, अत इसमे भोक्तृत्व सम्बन्ध नही हो सकता है, और न मोक्षपन का अभिमान ही हो सकता है। परन्तु अन्त करण और आत्मा का तो सयोग सम्बन्ध है, इस सयोग से ही आत्मा मे अभिमान पैदा होता है। दोनो एक देशी है, अन्त करण और आत्मा एक देशिया मे हो सयोग सम्बन्ध है। ब्रह्म सर्व देशी है और प्रकृति से सूक्ष्म है, अत इस मे व्यापक है। इसी कारण इसमे भोक्तृत्व अभिमान नही हो सकता है। अत आत्मा नाना है, और प्रत्येक अन्त करण के लिए एक एक आत्मा ही अधिष्ठान होता है। तब ही कर्म फल भोग की और बन्ध, मोक्ष की व्यवस्था ठीक होती है। एक अधिष्ठान से न भोग सिद्ध होता है और न अपवर्ग ही बनता है। अत नाना आत्मा ही कैवल्य भाव को प्राप्त होते हैं।

आत्मा के नानात्व मे श्रुति प्रमाण

आत्मा के नानात्व मे उपनिषदो मे अनेक प्रमाण मिलते हैं। यथा—

'द्वौ सुपर्णौ शरीरेऽस्मिञ्जीवेशाख्यौ सहस्थितौ।
तयोर्जीवः फलं भुङ्क्ते कर्मणो न महेश्वरः॥
केवलं साक्षिरूपेण, बिना भोगो महेश्वरः।
अन्नपूर्णोपनिषद् अ० ४। मं० ३२॥

—इस मनुष्य के शरीर मे अत्यन्त शोभायमान जीवात्मा और ईश्वर हृदय प्रदेश मे साथ मिलकर ठरे हुए है। इन दोनो मे जीवात्मा ही कर्मफल का भोग करता है। ईश्वर नही करता है। केवल साक्षी रूप होकर बिना किसी प्रकार के भोग के वह महेश्वर निवास करता है।'

भेद को स्पष्ट रूप मे बताने वाले कैसे सुन्दर स्पष्ट वाक्य उपनिषद् में हैं। अतः सर्व प्रकार से आत्मा और ब्रह्म का भेद तथा आत्माओ का नानात्व ये वाक्य सिद्ध कर रहे है। तथाच साख्य सूत्रम्—

'पुरुष बहुत्वं व्यवस्थातः।' अ० ६। सू० ४५॥

जीवात्मा बहुत है, क्योकि जन्म-मरण की व्यवस्था देखने मे आती है। एक जीवित है, दूसरा मर गया है। इत्यादि से आत्मा नाना सिद्ध होते है।

वैशेषिक दर्शन भी आत्मा के नानत्व की पुष्टि करता है। यथा—

'व्यवस्थातो नाना।' अ० ४। आ० २। सू० २१॥

—कर्म भोग, कर्मफल, जन्म-मरण की भिन्न-भिन्न रूप से व्यवस्था देखने मे आती है, अत. आत्मा नाना ही सिद्ध होते हैं। तथाच—

'जन्मादिव्यवस्थातः पुरुषबहुत्वम्।' सा०। अ० १। सू० १५०॥

—जन्म, कर्म भोग आदि की व्यवस्था भिन्न-भिन्न होने से आत्मा बहुत है।

अथर्ववेद भी आत्माओ को नाना स्वीकार करता है। यथा—

'बालादेकमणीयस्कमुतैक नैवदृश्यते।
ततः परिष्वजीयसी देवता साममप्रिया॥ २५॥
इयंकल्याण्यजरा मर्त्यस्यामृता गृहे।
यस्मै कृताशये स यश्चकार जजार स.॥ २६॥ अथर्व० १०। ८॥

—(एक बालात् अणीयस्कम्) जीवात्मा बालाग्र के समान सूक्ष्म, अणु है। (उत् एकनैव दृश्यते)एक ब्रह्म नही दीखता है व्यापक है।(ततः) इन दोनो मे से (परिष्वजीयसी देवता) अन्त.करण के साथ सम्बन्ध रखने वाली आत्मा (सा मम प्रिया) वह मेरी प्यारी आत्मा है।

(इय कल्याणी अजरा) यह मेरी आत्मा कल्याण स्वरूप पवित्र है। जीर्ण होने वाली नही है। नित्य है। (मर्त्यस्य गृहे अमृता) मानव के शरीर म न मरने वाली, अमृत रूप, मोक्ष रूप, सदा अमर रहने वाली है। (यस्मै कृताशये) जिस मनुष्य के शरीर के लिए निश्चित की गयी है, उसमे निवास करती है। (सः यः चकार सः जजार) जिस देव ने इस शरीर को बनाया है, वह इसे जीर्ण कर देता है, जिसका निर्माण हुआ उसका विनाश भी होता है।'

इन अथर्ववेद के मन्त्रों मे स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया है कि आत्मा ब्रह्म से पृथक् है, और यह प्रत्येक शरीर में भिन्न-भिन्न रूप से कर्म फल भोगते है, और भिन्न रूप से अधिष्ठान के रूप में निवास करते है। यथा च—

वालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च।
भागो जीवः सविज्ञेयः, सःचानन्त्यायकल्पते॥

श्वेताश्वतर० अ० २। म० ६॥

अन्यच्च—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति॥
समाने वृक्षे पुरुषोनिमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीत शोकः॥

श्वेताश्वरो० अ० ४। मं० ६, ७॥
मुण्डक० ३। १ मं० १। २॥

—इन मन्त्रों में मनुष्य शरीर को वृक्ष की उपमा देकर अलंकार रूप से आत्मा और परमात्मा का भेद रूप से होना प्रतिपादित किया गया है। वृक्ष की उपमा इसलिये दी गयी है कि वृक्ष पर ही फल लगते है, जिनको मनुष्य खाता है। जीवात्मा और परमात्मा को अलकार रूप से पक्षी के रूप मे वर्णित किया गया है। जिनके सुन्दर पखों का वर्णन किया गया है। पक्षियो से इनको उपमा दी गयी है। द्वा सुपर्णा—दो सुन्दर परो वाले, मित्रों के रूप मे साथ मिलकर एक ही समान वृक्ष पर बैठे हैं, अथवा एक ही शरीर में मिल बैठे है। दोनो ने मिलकर इस शरीर मे प्रवेश किया है। इकट्ठे होकर इसमे आये हैं। इसमे उत्पन्न हुए है, शरीर मे प्रवेश करना ही इनकी एक प्रकार की उत्पत्ति है। इन दोनो मे एक जीवात्मा है जो बहुत स्वादिष्ट फलो को खाता है। अर्थात् जीवात्मा इस शरीर मे रहकर कर्म फलों का उपभोग करता है। दूसरा पक्षी परमात्मा है, इसको सर्व प्रकार, सब ओर से देखता रहता है। इस कर्मफल का विभाग करता रहता है क्योकि इसकी व्यापकता सर्वत्र वर्तमान है। दोनो सामान रूप से इस वृक्ष पर निमग्न हुए हैं, आसीन हुए हैं। चेतनत्वेन और सूक्ष्मत्वेन दोनो की समानता है। इस शरीर रूपी वृक्ष पर जीवात्मा बैठा कर्मफल भोगने मे आसक्त है। मोह राग मे फसा है भोक्ता बनकर। अज्ञान से, ईश भाव न होने से, ऐश्वर्य रहित होने से, मोह को प्राप्त हो, अज्ञानता के कारण शोक, चिन्ता दु.ख को प्राप्त होता है। कर्मफल का भोग ही अविद्या, अज्ञानता के कारण होता है। जब यह आत्मा योग समाधि द्वारा, वैराग्य विज्ञानपूर्वक स्थिर होकर उस भगवान् को देखता है, अपने निकट मे ही, विचारता है—'यह महान् आत्मा मेरे पास होकर भी उदासीन भाव से निवास कर रही है', तब अपने ऊपर इसे अत्यन्त लज्जा आती है। भोगों की आसक्ति पर पश्चाताप होता है। तब इसे इस भगवान् की महिमा का ज्ञान होता है—'यह कितनी महान् आत्मा है, जो भोगों से उदासीन होकर बैठी है, कितना ऊँचा इसका त्याग वैराग्य है, कितनी ऊँची ससार के भोगों से उपेक्षा है। कितना वीतराग और निस्पृह यह है। कितना महान् वैराग्यवान् और त्यागी है।' तब इसके चित्त मे भी परम वैराग्य उत्पन्न होता है। सब प्रकार के शोक, चिंताओं,

तथा भोगो से उपराम होकर विरक्त हो, सब कारण कार्यात्मक प्रकृति से मुक्त हो, अपने वास्तविक कैवल्य स्वरूप मे स्थित हो जाता है। कैवल्य भाव को प्राप्त कर लेता है।

स्वरूप स्थिति के बारे मे महोपनिषद् इस प्रकार वर्णन करती है। यथा—

'संशान्त सर्वसंकल्पा या शिलावद वस्थितिः।
जाग्रन्निद्राविमुक्ता सा, स्वरूपास्थिति. परा॥ अ० ५। म० ६॥

—जब कैवल्य मे स्थिर होने का अवसर आता है तब अन्त करण के सब सकल्प शान्त हो जाते है। किसी प्रकार की भी चेष्टा आत्मा मे नही होती है, जैसा पाषाण निश्चेष्ट होता है, इसी प्रकार सब चेष्टाये आत्मा की शान्त हो जाती है। जो अन्त.करण के कारण से होती है। जाग्रत्, निद्रा और स्वप्नावस्थाओ से भी मुक्त हो जाता है। शिलावत् का अभिप्राय यह नही है कि पत्थर के समान जड हो जाता है, किन्तु जैसे शिला निश्चेष्ट होती है, इस प्रकार आत्मा की सब चेष्टाये शान्त हो जाती है। जोकि शरीर इन्द्रिय और अन्त करण के कारण इसमे होती हुई प्रतीत होती थी। इसको स्वरूप स्थिति या कैवल्य भाव कहते है। इस विषय मे साख्याचार्य कहते है यथा—

'कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च॥' साख्य० अ० १। सू० १४५॥

—कैवल्य केलिये आत्मा की प्रवृत्ति होती है। क्योकि बन्ध और मोक्ष का क्रम अनादि काल मे चला आ रहा है। अनादि प्रवाह से शान्त नही है, किन्तु अनादि प्रवाह से नित्य है। जिन आचार्यों ने सृष्टि सृजन और जीवात्मा के बन्ध के लिये माया की कल्पना की है उनके ही सिद्धान्त मे सान्त धर्म हो सकता है। हमने कल्पना नही की है, किन्तु प्रकृति सदा से कारण रूप से नित्य और कार्य रूप से अनित्य चली आ रही है। मुक्त अवस्था मे केवल आत्मा का सम्बन्ध छूटता है, प्रकृति के कारण और कार्य बने हो रहते हैं। सम्बन्ध-विच्छेद से यह अभिप्राय नही है, कि सदा के लिये नष्ट हो गयी है। जब आगे सम्बन्ध बना था, तब आगे भी कभी बन सकता है। अत कैवल्य मे केवल प्रकृति के कार्यों और कारण रूप प्रकृति से कुछ काल के लिये सम्बन्ध-विच्छेद होना ही स्वरूप स्थिति या कैवल्य है। इस विषय मे योग दर्शन का प्रकरण है। यथा—

'कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनष्टं तदन्य साधारणत्वात्।' सा० प० सूत्र २२॥

—मुक्त आत्मा के प्रति कृतार्थ हो जाने से संयोगा भाव इस मुक्त आत्मा का हो जाता है। अन्य के लिये कारण कार्य रूप से भोग और अपवर्ग के लिये बनी रहती है।' यहाँ नष्ट शब्द का अर्थ है, सयोगाभाव, या सम्बन्ध विच्छेद। हमारे सिद्धान्त मे मूल रूप से किसी पदार्थ का नाश नही होता है। केवल कार्य का अपने कारण मे प्रवेश करना ही होता है। सत्य कार्य वाद ही हमे अभिमत है। यह जो आत्मा का अन्त करण के साथ सयोग हुआ था, केवल स्वरूप की उपलब्धि या कैवल्य भाव प्राप्त होने के लिये हुआ था। कैवल्य प्राप्त होने पर सयोगाभाव हो गया। तथा च योग सूत्रम्—

'स्व-स्वामिशक्तयोः स्वरूपोपलब्धि हेतुः संयोगः।' सा० पा० सू० २३॥

—इस सयोग का हेतु अविद्या हुई थी, जिसने स्व-स्वामीभाव को पैदा कर दिया। अब परम विज्ञान और परम वैराग्य से इसका अभाव हो गया। अभाव होने से संयोगा भाव ही हान का द्योतक है। तब ही कैवल्य मे आत्मा की स्थिति होती है।

मोक्ष में आत्मा में गति का अभाव

(शका) मोक्ष मे जाने के लिये कोई साधन तो अब रहा नही शरीर ही साधन था, इधर-उधर ले जाने वाले सूक्ष्म शरीर का भी सम्बन्ध विच्छेद हो गया, आत्मा कूटस्थ है। इसमे गति का अभाव है। तब मोक्ष मे आत्मा का गमन किस प्रकार होगा ?

(समाधान) कहा है वह मोक्ष जिसमे आत्मा को ले जाना चाहते है। स्थूल भूतो से लेकर ३३ पदार्थो के लोको से यह गमन करता आ रहा है। सब मजिलें, सब मार्ग, सब लोक इसने तै कर लिये है, इन ३३ प्रकार के लोको मे क्रम से विज्ञान प्राप्त करता हुआ और वैराग्य को परिपुष्ट करता हुआ, यह आ रहा है, अब तो केवल ब्रह्म का लोक ही शेष रह जाता है। यदि इस लोक से भी आगे कोई और लोक हो तो उसको हम नही जानते है, न कही सुना है, व कही पढा है, न ही कही देखा है। अत. जहाँ ब्रह्म वास करता है, वहाँ ही इस मुक्त आत्मा का लोक है। अब तो इसके आने-जाने का प्रश्न ही नही उठना चाहिये। किसी अभीष्ट को साप्ति के लिये गमन रूप क्रया होती है। जब कोई अभीष्ट ही नही रहा तब गमन किस लिये।

(शका) क्या ब्रह्म-प्राप्ति अभीष्ट नही है ?

(समाधान) ब्रह्म तो प्राप्त हो गया है। जब सब विज्ञानो और पदार्थो को पार करता हुआ यह मुमुक्षु अन्तिम विज्ञान और अन्तिम पदार्थ मे आ पहुँचा है, और अब कुछ पदार्थ या विज्ञान का अवशेष नही रहता है। यही इस मुक्त आत्मा का परमधाम है। जिस की प्राप्ति के लिये यह अनेक जन्मो से प्रयत्न करता चला आ रहा था। इस ब्रह्म लोक मे पहुँच कर बिना किसी शरीर के या करण के भगवान् यदि इस मुक्त आत्मा पर स्वय भी करण रहित होकर किसी आनन्द विशेष की कृपा करते रहे, तो उसको हम नही जानते हैं, क्योकि यह मुक्तात्मा सर्व प्रकार से तृप्त है, फिर वह तो तृप्ति की तृप्ति होगी। आनन्दरूप मे आनन्दरूप का मिलना हो गया। मुक्त के साथ मुक्तात्मा का मिलना हो गया। यह है यथार्थ मे कैवल्य अथवा मोक्ष। हम कैवल्य के पर्यायवाची अपवर्ग, मुक्ति और मोक्ष को मानते हैं।

मोक्ष से पुनरावृत्ति

वेदान्त दर्शन के अन्त मे सूत्र है, कि मोक्ष से पुनरावृत्ति नही होती। यथा—

'अनावृत्ति शब्दा दनावृत्ति शब्दात्।' अ०। ४। श०४। सू० २२॥

साख्य मे एक सूत्र आया है। यथा—

'न मुक्तस्य पुनर्बन्ध योगो ऽनावृत्तिश्रुते.।' अ० ६। सू० १७॥

—इन दोनो सूत्रो का अभिप्राय तो यही प्रतीत होता है, कि मोक्ष से पुनरावृत्ति नही होती है।' परन्तु जब एक पदार्थ या वस्तु उत्पन्न हुई है, वह सदा के लिए नित्य कैसे सिद्ध हो सकती है। जब आप मुक्ति को पैदा होने वाली, या प्राप्त होने वाली मानते हैं, तो उसने एक दिन अवश्य ही नष्ट होना है। जब कभी पहले बन्ध हुआ है, तो पश्चात् भी बन्ध हो सकता है। जिसका कभी आदि न हुआ हो और उसका अन्त हो जाये, यह कोई मूर्ख भी मानने के लिये तैय्यार नही है फिर विद्वान तो कैसे मानेगा। इस विषय मे उपनिषत् का मन्त्र भी प्रमाण है। यथा—

'वेदान्त विज्ञान सुनिश्चितार्थ सन्यासयोगात्यतय शुद्ध सत्त्वा ।
ते ब्रह्म लोकेषु परान्तकाले परामृता परिमुच्यन्ति सर्वे ॥
मुण्डक ख० १ । म० ६ ॥

—वेदान्त विज्ञान के द्वारा अच्छी तरह निश्चित करके भली प्रकार सब कुछ त्याग कर, जितेन्द्रिय योगी, जिनका अन्त करण बिलकुल निर्मल हो गया है योग के द्वारा वे ब्रह्म-लोक मे से परान्त काल के पश्चात् (परिमुच्यन्ति) छूट जाते है । एक परान्त काल की अवधि ३११०४०००००००००० वर्ष शास्त्रकार मानते है । मुक्ति के विषय मे दोनो प्रकार के प्रमाण मिलते हैं, यह परोक्ष का विषय है । भिन्न भिन्न मान्यतायें इसके विषय मे आचार्यों की है । परन्तु हमारी मान्यता यही है जो उत्पन्न हुआ है उसने सदा नही रहना है । एक दिन अन्त अवश्य ही होगा । मोक्ष की अवधि की वर्ष सख्या चाहे कितनी भी मान ली जाये । जो बन्ध से मुक्त हुआ है वह फिर भी बन्ध सकता है । ऐसा कोई मुख्य कारण प्रतीत नही होता कि पुन बन्ध न हो ।

जो वस्तु सदा नित्य है, वह सदा नित्य ही रहेगी । जो वस्तु एक बार अनित्य हो चुकी है, वह फिर भी अनित्य हो सकती है । क्योंकि बन्ध और मोक्ष का रात और दिन के समान सम्बन्ध है । अत अनित्य का सदा के लिये नित्य हो जाना बुद्धि स्वीकार नही करती है ।

कैवल्य से पुनरागमन न मानने वाले यह कहते है कि आत्मा अनन्त हैं । अत मुक्त होते होते ससार का उच्छेद नही होगा । परन्तु इसके समाधान मे हमारा यही कहना है कि चाहे कितना ही बडा खजाना हो, और उसमे आय न हो, व्यय होता रहे, तो उसने आखिर एक दिन खतम तो होना ही है । चाहे कितने भी अनन्त जीव हो, यदि वे मोक्ष से वापिस नही आयगे तो कभी न कभी इस ससार मे उनकी समाप्ति हो ही जायेगी क्योंकि मोक्ष मे गमन तो है, आगमन नही है । जब आप बन्ध को अनादि अनित्य मानते हैं, तो अनित्य मोक्ष नित्य कैसे हो सकता है ।

हम आत्मा को नित्य, शुद्ध, असग, निष्क्रिय, निर्विकार और मुक्त मानते हैं । इस प्रकार होते हुए भी अनादि काल से अविद्या या अन्त करण, वा प्रकृति के साथ सम्बन्ध चला आ रहा है । एक देशी होने से यह सम्बन्ध है जो बन्ध और मोक्ष का हेतु मान लिया गया है । जैसे शरीर के सम्बन्ध से शरीर का मरण होने पर आत्मा क नित्य होने पर भी मरण मान लेते है परन्तु मरण होता तो नही है । लोक व्यवहार म ऐसा मान लिया है । पुन जन्म भी मानते हैं । यह पुनर्जन्म का सिद्धान्त केवल हिन्दू (आर्य) शास्त्रो का ही है, अन्य का नही । वास्तव मे मोक्ष भी एक प्रकार का मरण सा ही है । इस मरण का और मोक्ष के मरण का केवल इतना ही अन्तर है कि इस जन्म के मरण पर आत्मा सूक्ष्म शरीर को लेकर चलता है, क्योकि धर्म अधर्म के सस्कारो को साथ मे लेकर पुनर्जन्म धारण करना है। मोक्ष की अवस्था मे किसी प्रकार का भोग नही होता है, अत वहाँ सूक्ष्म शरीर की जरूरत नही है । जिस प्रकार स्थूल शरीर की मृत्यु से यह पञ्चभूतो का कार्य समाप्त हो जाता है क्योकि यह शरीर बिल्कुल जीर्ण हो गया था । दूसरे जन्म म पुन नये पञ्च भूतो से नया शरीर प्राप्त हाना है, वे भूत ही परिणाम भाव को प्राप्त होकर उपादान के रूप मे नूतन शरीर के लिये उपस्थित हो जाते

है। इसी प्रकार मोक्ष मे गमन से पूर्व सूक्ष्म शरीर भी जीर्ण सा हो जाता है। यह अपने कारण में जा. परिणाम भाव को प्राप्त हो नूतन के योग्य बन जाता है। जैसे स्वर्ण भट्टी की अग्नि मे पडकर पुन: नवीन भाव को प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार मोक्ष की अवधि समाप्त होने पर फिर यह सूक्ष्म और कारण शरीर नूतन भाव को प्राप्त होकर पुन: अपनी मुक्ति की अवधि समाप्त कर लौटने वाले आत्मा को भोग देने के लिये प्रस्तुत हो जाता है। वैसे तो प्रलय काल मे भी यह कारण मे प्रवेश करके नूतन भाव को प्राप्त होता है। जब मुक्त आत्मा कैवल्य भाव में या मोक्ष में गमन करता है, तब यह सूक्ष्म और कारण शरीर मिल कर दोनों एक साथ ही रहते हैं, कभी अलग नही होते हैं। इनका परस्पर तादात्म्य सम्बन्ध है।

सञ्चित कर्मो का कभी विनाश या समाप्ति नही होती है, क्योंकि अनादिकाल के अनन्त संस्कार सब तो दग्ध या विनष्ट नही हुए, न हम किसी पदार्थ का विनाश ही मानते है। मोक्ष प्राप्ति के समय केवल प्रारब्ध और क्रियमाण कर्मो का स्रोत ही तो बन्द हुआ है। अनन्त जन्मों के अनन्त सञ्चित संस्कार तो विश्व गर्भ में अर्थात् समष्टि चित्त मे जमा ही पड़े है। उनका विनाश कैसे हो सकता है। कुछ जन्मों से जब से ज्ञान और वैराग्य के संस्कार प्रबल हो उठे, उन्होने सञ्चित कर्मो को भोग देने का अवसर प्राप्त नही होने दिया, केवल यही मोक्ष का हेतु बने हैं।

बिना भोग सञ्चित कर्मो का अभाव नहीं

इसे इस प्रकार समझें कि कुछ १०। २०। ५०। १०० या अधिक जनों मे मोक्ष की ईप्सा चली आ रही है। तब से ज्ञान और वैराग्य के कर्म और संस्कार अधिक मात्रा मे उत्पन्न हो रहे है। योगी इन जन्मो मे मुख्य रूप से ऐसे ही कर्म कर रहा है जो आगे बन्ध या जन्म का हेतु कम बने। अत: ये ही निकटवर्ती जन्मों के पुण्य कर्म मोक्ष की ओर ले जाने का यत्न कर रहे हैं। ये पुण्य कर्म ही कई जन्मों से जन्म का हेतु होते आ रहे है। ऐसे माता पिता के यहा जन्म देते आ रहे है, जहाँ शीघ्र ही मोक्ष प्राप्ति के लिये साधन और अवसर मिलता है। अच्छे उच्चवर्ण कुल मे धार्मिक आस्तिक धनी माता पिता के घरों मे जन्म होते आ रहे हैं। इन जन्मो मे पापयुक्त कर्म कम होते हैं, और पुण्ययुक्त अधिक होते हैं। अत. थोडे से इन पापयुक्त कर्मो का फल भी पुण्य के साथ मुक्त होता चला जाता है। इसीलिये बहुत से योगी ज्ञानी भी कुछ कष्टों और रोगों का भोग करते देखे गये हैं। जब पुण्य कर्मों का प्रभाव अधिक बढ जाता है। 'सद्य व परिपच्यन्ते'—तो वे तत्काल परिपाक को प्राप्त हो जाते हैं। ये शीघ्र ही पुण्य कर्म फल देने के लिये सबसे पहले उपस्थित हो जाते हैं, और मोक्ष के समीप ले आते है। दृष्टान्त—न्यायाधीश के पास सैकड़ों मुकद्दमे चल रहे हैं, जो साधारण हैं, इनको आप दीवानी मुकद्दमे कह सकते हैं। परन्तु किसी ने महान अपराध किया है, जिससे देश को अत्यन्त हानि पहुँचने की, या दु:ख कष्ट होने की संभावना है। तो न्यायाधीश उन सामान्य केसो को छोड़ कर इस विशेष अपराधी के केस को पहले समाप्त करने की कोशिश करता है, जिससे देश जाति की विशेष हानि न हो। इसी प्रकार जिन पुण्य कर्मो का प्रवाह अधिक वेग धारण कर लेता है, पहले वे ही कर्म फल देने के लिये आ

उपस्थित होते है। इनका फल मोक्ष होता है। जो २-४ सौ, हजार, लाख या करोड जन्मो के सञ्चित कर्म पडे है, उनका क्या बनेगा। १०। २० लाख या करोड जन्मो से मोक्ष तो हुआ नही है, और कर्म फल इतने जमा हो गये है, कि जिनको भोग कर समाप्त करना चाहे, तो अरबो जन्मो मे भी भोगकर समाप्त नही कर सकता। एक जन्म मे मनुष्य इतने कर्म कर डालता है, कि जिनका भोग इस जन्म मे नही कर पाता है, और अच्छे-अच्छे वडे कर्मो के फलो से वञ्चित चला जाता है—'नाभुक्तवा क्षीयते कर्म, कोटि शतैरपि।'—बिना भोगे कर्म का क्षय नही होता, करोडो जन्मो तक भी। अत मनुष्य इस जन्म मे किये जिन कर्मो का फल नही भोग पाया है, उनका फल अगले ही जन्मो मे भोगना पडेगा। दृष्टान्त—एक व्यक्ति ने वडे बाग बगीचे लगाये है। सुन्दर भवन बनाये है। भोगने के लिये करोडो रुपयो और नाना प्रकार के भोक्तव्य पदार्थों का सग्रह किया है, पत्नी, पुत्रो के सुख का, सब पदार्थो तथा ऐश्वर्यो के भोगने का जब समय आया तब उसकी मृत्यु हो जाती है। इस प्रकार के जन्म ही पुनर्जन्म का हेतु बना करते हैं। इस प्रकार के अनेक कर्म उत्पन्न होकर बिना फल प्रदान किये, भोक्ता के सञ्चित कर्मो मे वासना या सस्कार के रूप मे समष्टि चित्त मे जाकर सञ्चित होते रहते हैं। इन असख्य सस्कारो के लिये इस छोटे से चित्त मे जिसको अणु कहा है, समा जाने, रखने या धारण करने के लिये स्थान नही है। अत यह सब समष्टि चित्त मे जाकर सञ्चित होते रहते है। इनमे से थोडे-थोडे आकर क्रियमाण कर्मो के साथ मिल कर भाग देते रहते है क्योकि वर्तमान जीवन के क्रियमाण कर्म भी तो नित्य, मास या वर्ष के इतने होते रहते है, जोकि साथ ही फल देते रहते है। यदि क्रियमाण कर्मो का फल साथ मे भोगने को न मिले तो कोई भी मनुष्य कर्म करने मे प्रवृत्त न हो। कर्म फल तो प्रत्यक्ष देख कर ही मनुष्य की कर्म करने मे प्रवृत्ति होती है। बहुत से पाप पुण्य युक्त ऐसे कर्म भी होते हैं, जो उसी समय दिन, मास, वर्ष या उसी जन्म मे फल देने से रह जाते है, वे पुनर्जन्म के लिये प्रारब्ध के रूप मे या सञ्चित के रूप मे चले जाते है। जो जो प्रारब्ध के रूप मे जाते है, वे शीघ्र ही दो एक जन्मो या कुछ अधिक जन्मो मे फल देने वाले होते है। जो सञ्चितो मे जाकर जमा होते हैं, न जाने उनके फल देने की बारी कब आवेगी। ये सञ्चितो मे जाकर पडे रहेगे। अत इनका कभी विनाश नही होता है। इनको जब कभी भी अवसर मिलेगा, तब ही भोग और जन्म का हेतु बनेंगे।

ये क्लेश युक्त सस्कार चार प्रकार के होते हैं।

१ प्रसुप्त २ तनु ३ विछिन्न ४ उदार।

१ **प्रसुप्त**—जो सचित रूप मे बीज भाव से अनादि काल से समष्टि चित्त मे पडे है, उनको कार्य करन का या भोग देने का अवसर ही प्राप्त नही होता है। योगी की वैराग्य और ज्ञान की भावना प्रबल होने से वे सञ्चित कर्म गर्भ मे प्रसुप्त से पडे रहते हैं। भोगप्रद सब पदार्थ सामने आने पर भी या प्राप्त होने पर भी योगी उदासीन रहता है, इनके भोगने की बिलकुल इच्छा नही होती है। एक प्रकार इनकी फल प्रदान अकुर उत्पन्न करने की शक्ति शिथिल सी ही हो जाती है, या दग्ध भाव को ही प्राप्त हो जाती है। अथवा कुण्ठित सी हो जाती है। इसका कारण परम वैराग्य की भावना का दृढ हो जाना होता है। ये संस्कार निर्बीज से होकर समष्टि चित्त मे प्रवेश कर

जाते है। जैसे वट वृक्ष अपने बीज में प्रवेश कर जाता है। इन संस्कारों का नाम प्रसुप्त है।

२. तनु—योगी जब पुनः-पुनः ज्ञान वैराग्य की भावना को दृढ करने के लिये भोगों की वासनाओ को दमन करता है, या उनको शिथिल बनाने मे प्रयत्नशील होता है। तब भोगों से दूर अलग होने से, सामग्री के अभाव मे वे संस्कार कार्य आरम्भ करने में असमर्थ से हो जाते हैं। भोगों की वासना भी इस अवसर मे शिथिल सी होने लगती है, तब ये संस्कार तनु भाव को प्राप्त होने लगते है। योगी वैराग्य की प्रतिपक्ष भावना द्वारा इनको अशक्त, शिथिल, अथवा तनु करने के प्रयत्न मे लगा रहता है।

३. विछिन्न—कुछ पदार्थो के भोग मे अनुराग बना हुआ है इस अवसर पर द्वेष देखने में नही आता है, क्योकि राग और द्वेष परस्पर हैं। जिनमें अब राग वर्तमान है उनसे अन्य पदार्थो या भोगों मे फिर हो सकता है या हो जायेगा। इस प्रकार नष्ट होकर या दबकर फिर उत्पन्न हो सकता है। इसी प्रकार द्वेपात्मक भी उसी-उसी रूप में वर्तने लगते है। पुन. पुन. उत्पन्न होकर वर्तना ही विछिन्न है।

४. उदार—वर्तमान काल के कर्म भोगात्मक ससकार जो सहकारी कर्म, भोग या पदार्थो का मेल पाकर अपने-अपने कर्मो या भोगों को सिद्ध करते हैं वे उदार कहलाते है।

विछिन्न और उदार तो भोगी, विलासी, विषयी पुरुषो के होते है। तनु संस्कार योगियो के होते है। प्रसुप्त सस्कार वीतराग, परमवैराग्यवान् आत्मज्ञानी और ब्रह्म-ज्ञानियो के होते है। तथा च—

'प्रसुप्त-तत्त्वलीनानां, तन्ववस्थाश्च योगिनाम्।
विछिन्नोदार रूपाश्च क्लेशविषय संगिनाम्॥

—विछिन्न और उदार अज्ञानियो के जन्म-मरण का हेतु बनते रहते हैं। तनु और प्रसुप्त मोक्ष या कैवल्य की ओर ले जाते हैं। ये वीतराग, वैराग्यवान् ज्ञानी महापुरुषो को मोक्ष प्रदान करते हैं। पूर्ण ज्ञान और वैराग्य होने पर ही प्रसुप्त बनते है।

इन सब क्लेशो का मूल अविद्या है। जब योगी प्रकृति के कार्य कारणात्मक स्वरूप को जानकर आत्म-विज्ञान और ब्रह्म-विज्ञान को प्रत्यक्ष कर लेता है, तब परम-वैराग्य से कैवल्य भाव को प्राप्त हो जाता है। अविद्या अपने सञ्चित सस्कारों को साथ लेकर समष्टि चित्त में विलीन हो जाती हे, और समष्टि चित्त अपनी कारणभूत प्रकृति मे प्रवेश कर जाता है।

कई आचार्य सर्व प्रकार के संस्कारो का सर्वथा दग्धभाव मानते है, अर्थात् सञ्चित भी भस्मीभूत हो जाते है। किसी भी रूप मे शेप नही रहते है। वास्तव मे इन्होने दग्धभाव के मतलब को नही समझा है। मोक्ष मे पूर्व जो योगी को दग्ध करने का विधान है वह बहुत थोडे जन्मो के अर्थात् निकटकालीन जन्मो के सस्कारों के विषय में कहा गया है अर्थात् जब से यह योगी कटिबद्ध होकर ज्ञानवान् और वैराग्यवान् बन कर मोक्ष प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील हुआ है। ज्ञान और परमवैराग्य वो उन संस्कारों को प्रारब्ध के लिए उपस्थित ही नही होने देते। किन्तु सञ्चित मे फेंक देते हैं, जिनके हम नाश नही मानते है। वे अपने गर्भ समष्टि चित्त मे लौट जाते हैं। प्र... के लिए तय्यार होकर नही आते है, जिनसे कि भविष्य में जन्म होना प...रम ज्ञान वैराग्य

सम्पन्न योगी उस जीवन्मुक्त दशा में इच्छापूर्वक कोई कर्म ऐसा नही करता है, जो आगामी निकट भविष्य मे प्रारब्ध, सञ्चित किंवा वर्तमान फल का हेतु हो सके, तव वह मोक्ष में प्रवेश करता है।

जव इस मुक्त आत्मा का पुनरागमन मर्त्यलोक में होता है, तव महानुभाव का सम्बन्ध उन पुण्य कर्मो के साथ ही होता है। जिनको इसने परमवैराग्य के कारण प्रारब्ध के रूप मे भी फल देने के लिए उपस्थित नही होने दिया था। या वे बहुत पुण्यात्मक श्रेष्ठ कर्म जो इसके ज्ञान वैराग्य की दशा में ही इकट्ठे हुए थे। परन्तु परमवैराग्य के द्वारा इस वीतराग महाज्ञानी जीवन्मुक्त योगी ने उनको भी ठुकरा दिया था। वे वेचारे उदासीन होकर अपनी प्रकृति मे चले गये थे। इस लोक मे भी जव किसी को वैराग्य होता है, अनेक सुख-साधनो, धन, स्त्री-पुत्र, राज्य को भी लात मारकर भरतृहरि की तरह चल देता है। इसी प्रकार निकट भूतकाल के प्रारब्ध आत्मक भोगो को—जो अगले जन्मों मे फल देने के लिए तैय्यार होकर आना चाहते थे, लात मारकर ठुकरा देता है और मोक्ष मे प्रवेश कर जाता है। परन्तु कर्मफल भोग की गति विचित्र है। वह कव पीछा छोड़ेगी, जिनको ठुकरा कर जा रहा है। उनके सामने ही फिर आकर इस मुक्त आत्मा को सिर झुकाना पडेगा, क्योकि उनका सञ्चय, सग्रह या उपार्जन भी तो इसने ही किया था। उनको और कौन भोगेगा। अन्त में इसी ने भोगने हैं। इसी हेतु हमने मोक्ष से पुनरावृत्ति मानी है। मुक्ति से पुनरावृत्ति का यह मुख्य कारण है।

मुक्ति से आकर उन पुण्य कर्मो के साथ ही सम्बन्ध होता है। सृष्टि के आरंभ में अमैथुनी सृष्टि मे ऋषि-मुनियों के रूप मे शरीर प्राप्त कर के उन पुण्य कर्मो को निमित्त मान कर्म भोग प्रारभ करता है। पुन: पुण्य और पाप कर्मो का सग्रह शरीर से होने लगता है। जो भोग और अपवर्ग का हेतु वनता रहेगा। असंख्य सञ्चित कर्मो को भी फल देने का अवसर प्राप्त होने लगता है जिनको ठुकरा कर गया था। इस लोक में मनुष्य जिस भस्म या धूल को पैरो से ताड़न करता है वह अपमानित होकर सिर पर ही चढ वैठती है। वे सञ्चित कर्म ताड़ित हुए-हुए पुन. इस महानुभाव के सिर पर वैठ कर इसको दास वनाने का यत्न करते है। इस प्रकार यह कर्मफल भोग का विज्ञान वहुत गहन है। जो इस आत्मा को वन्ध और मोक्ष के चक्र में फंसाये रखता है। जन्म, मरण, वन्ध और मोक्ष का सिलसिला अनादि काल से चला आता है। और अनन्त काल तक चलता रहेगा। 'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।'—पुण्यों के क्षीण होने पर मनुष्य लोक मे आते हैं।

उपसंहार

हमने 'आत्म-विज्ञान' ग्रंथ के उपसहार में लिखा था, कि अवसर प्राप्त होने पर ब्रह्म-विज्ञान ग्रंथ को भी लिपिवद्ध किया जायेगा। इस वर्ष हरिद्वार में १३ अप्रैल सन् ६२ को सन्यास धारण करने के पश्चात् हम वद्री नारायण चले आये। यहाँ विरला हाउस मे ठहरकर ४ मास का मौनव्रत धारण किया, और इस काल मे यह 'ब्रह्म-विज्ञान' ग्रन्थ लिखा गया।

इस ग्रन्थ मे पाँच अध्याय हैं। मोक्ष या कैवल्य का हेतु होने मे ३३ पदार्थो का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया गया है। इन पदार्थों मे ब्रह्म, आत्मा और प्रकृति नित्य हैं, शेष ३२ पदार्थ प्रकृति का कार्य होने से अनित्य है।

प्रकृति और इसके कार्यों का सम्बन्ध विशेष रूप से ब्रह्म के साथ में है। ब्रह्म निमित्त कारण होने से इन पदार्थों के ज्ञान क्रिया बल का हेतु है। अध्यारोप से जगत् का कर्ता कहा जाता है। इन ३३ पदार्थों के साथ सम्बन्ध जीवात्मा का भोग और अपवर्ग के लिए माना गया है।

प्रथम अध्याय में समष्टि पञ्चभूतों—पृथिवी, जल, अग्नि, वायु आकाश की विस्तार पूर्वक व्याख्या है। इनका विज्ञान, इनमें ब्रह्मोपासना, और ब्रह्म विज्ञान का वर्णन है। ब्रह्म के इनके साथ विशिष्ट सम्बन्ध का और ब्रह्म का निमित्त कारण रूप से गति पूर्वक सञ्चालन का वर्णन किया गया है। इन पांचों भूतों के पांच रूपों में अथवा इनकी उत्पत्ति काल की १ स्थूल २ स्वरूप ३ सूक्ष्म ४ अन्वय ५ अर्थवत्त्व रूप पाँचों अवस्थाओं का और ब्रह्म का विज्ञान वर्णन किया गया है। दूसरे अध्याय में जिसमें पञ्च तन्मात्रा, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, मन, अहंकार ये १७ पदार्थ हैं। इनकी उत्पत्ति का विस्तार से वर्णन है। पञ्च तन्मात्राओं के स्वर्ग लौकिक भोगों तथा ब्रह्मानन्द के उपभोग का शंका समाधान पूर्वक वर्णन है। इन पदार्थों का विज्ञान और इनमें ब्रह्म की उपासना और विज्ञान का कथन किया है।

तृतीय अध्याय में त्रिगुणात्मक सृष्टि, समष्टि तामस, राजस, सात्त्विक तीनों अहंकार, समष्टि बुद्धि और समष्टि चित्त मण्डलों का वर्णन है। इनके उपादान भूत त्रयीकरण का वैज्ञानिक विश्लेषण साथ है। इन मण्डलों के साथ आत्मा का भोग, और अपवर्ग आत्मक सम्बन्ध, और ब्रह्म का विशेष रूप से सान्निध्य एवं तन्निमित्तक कार्य दिखाकर ब्रह्मोपासना और ज्ञान का वर्णन है।

चतुर्थ अध्याय में कारण प्रकृति से सर्व प्रथम ६ पदार्थों महाकाश, महादिशा, महाकाल, सत्त्व, रजस्, तमस्, द्रव्यों की उत्पत्ति का निरूपण किया है। प्रकृति की साम्यावस्था, एवं सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन और ब्रह्म का इसके साथ नित्य सम्बन्ध, कारण तथा कार्यात्मक अवस्थाओं में ब्रह्म के आरोप की कल्पना, और उसमें ब्रह्म की उपासना और ज्ञान का प्रतिपादन किया है। ये कुल ३२ पदार्थ हैं। इनके साथ आत्मा का भोग और अपवर्ग साधक सम्बन्ध है और ब्रह्म का सृजनात्मक सम्बन्ध है।

पञ्चम अध्याय कैवल्य अथवा मोक्ष का है। इसमें ब्रह्म, आत्मा और प्रकृति के वास्तविक स्वरूपों का वर्णन है। इन तीनों के पारस्परिक सम्बन्ध एवं स्थूल सूक्ष्म अवस्थाओं का वर्णन है। आत्मा का मोक्ष किससे और किस प्रकार होता है। मोक्ष में आत्मा की कैसी स्थिति होती है ? दूसरे आचार्यों के मोक्ष विषय में कैसे-कैसे सिद्धान्त हैं ? इत्यादि विषयों और आत्मा ब्रह्म की अपरिणामिता का उल्लेख है। कैवल्य अथवा मोक्ष के नित्य अनित्य के विषय में अपना और दूसरे आचार्यों के विचार एवं पुनरावृत्ति का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है।

अनेक जन्मों के महान् पुण्य कर्मों से यह मनुष्य देह प्राप्त हुआ है। इसी मानव देह में आत्म ज्ञान और ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करके मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है। यही इस मानव जीवन की विशेषता है। भोग तो सर्व योनियों में प्राप्त होते हैं और वे भोगे भी जाते हैं। यदि इस सुन्दर पवित्र देह को प्राप्त करके भी मानव [illegible]

भोग ही उपार्जन किए और भोगे तब तो इस जीवन की तुलना पशु आदि के साथ ही की जा सकती है। यदि इस जीवन मे आत्म-ज्ञान और ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त कर लिया तो मानो मनुष्य जीवन सफल हुआ और अनादिकाल के आवागमन के जन्म मरण के सर्व दुखो से निवृत्त होकर मोक्ष प्राप्त कर लिया।

हम आशा करते है कि पाठक वृन्द, साधक वृन्द और योगिजन इसी ब्रह्म-विज्ञान को पढकर, श्रेय : मार्ग पर चल आत्मा-ज्ञान और ब्रह्म-ज्ञान को प्राप्त करके मोक्ष अथवा कैवल्य के भागी बनेगे।

ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।

ओम् शान्तिश्शान्तिश्शान्तिः।।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६८	३२	भत	भूत
६६	१६	अशद्धियो	अशुद्धियो
७०	१३	दृगसी	दृग
७२	४	ब्रह्म	ब्रह्म
	५	भवोत	भवति
	६	६	१०
७५	१७	चातम्रे गु	चतम्रे गु
८५	२२	शरोर	शरीर
	२७	स्वरूप	स्वरूप
८७	३५	व्यपार	व्यापक
८६	१५	दृगमे	दृग
६७	३३	मक्ष्मता	सूक्ष्मता
१०३	६	दग	दश
	१०	लगो	लागो
	२४	टेढा	टेढा
१०८	२८	अच्छादन	आच्छादन
	७	सवगा	सर्वगा
१०६	२६	यह काल मे	काल मे यह
११८	२५	।	
११६	५	जीवना	जीवन
	२८	तन्नैजति।'	तन्नैजति'।
१२३	३५	भागो	भोगों
१३१	२१	बुद्ध	बुद्धि
१३३	३०	सवश्रष्ठ	सर्वश्रेष्ठ
१३४	३७	सक्ष्म	सूक्ष्म
१३५	३६	वामुनियो	वा मुनियो
१३७	१२	शिशिन	शिश्न
१३८	४	प्रथम खण्ड	
१३६	२०	२६	२६
१३६	२४	ग्रमवत	ग्रामवत
१४१	२३		पृथम खण्ड (२८वाँ आवरण)

पृष्ट	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१४३, १४५, १५५, १५७, १५६	१	अहकारिक पच तन्मा- त्राओ की सृष्टि	गन्ध तन्मात्रा, पाँचो रुपो
१४७, १४६, १५१, १५३	१	आकाश महाभूत	गन्ध तन्मात्रा
१४५	२३	स्वर्गया	स्वर्ग या
	२८	पुरवराज	पुखराज
	३२	एकार	प्रकार
१४६	३	सताव	सातवे
	१४	दूसरा दर्जा	
	१५	से	से दूसरा दर्जा
१४७	२२	आनन्वय	आनन्द
१४८	१६	थोगता	भोगता
१५०	१२	धर्मो	धर्मी
१५०	३५	समदाय	समुदाय
१५१	१५	श्रनुभव	अनुभव
१५२	२८	अन्वयन	अन्वय
१५३	२	वार्य	कार्य
	५	इसलीवे	इसलीये
	१८	मन्मात्रा	तन्मात्रा
	३१	उमभोग	उपभोग
१५४	६	अदि	आदि
	१४	परन्तुदिव्य	परन्तु दिव्य
	२३	स्थूप	स्थूल
५८	१२	वयका	वय का
	२४	सक्ष्म	सूक्ष्म
	२६	स्वग	स्वर्ग
६०	२	शेव	शेष
	२८	और ही	और
६२	२१	क्रिय	क्रिया
६४	११	क्रस	क्रम
६५	२८	धम	धर्म
६६	२६	पणिाम	परिणाम

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१६७	५	पृथक्	पृथक
१६८	१२	ब्रह्मी	ब्राह्मी
१७०	६ १३	परार्थों पदायों	पदार्थों
१७१	३०	स्वर्ग	स्वर्ग
१७२	२	दिव्य	दिव्य
	२१	तम्मात्रा	तन्मात्रा
१७५	१०	दविष्ट	दविष्ठ
	१२	धर्म	धर्म
१७७	३३	असन	आसन
१७८	२५	तमात्रा	तन्मात्रा
१८०	२	कुरपता	कुरूपता
१८६	८	भें	मे
	१६	विद्ववान्	विद्वान्
१८७	१६	वायु	वायु-
१६०	१	परार्थ	पदार्थ
	८	परार्थो	पदार्थों
१६४	१६	सकार	संसार
१६८	७	योगी	योगी
२०३	६	जनेक	अनेक
२०४	३४	अनुपत	अनुपतन
२१२	२८	११	११
२१६	१०	जतनी	जितनी
२१८	३५	ता	तो
२१६	३४	गदा	गुदा
२२४	१८	शरया	शय्या
२२४, २८२	२५, १०	पतगं	पतग
२२५	५	है	है.
२२७	३४	स्पर्ग	स्वर्ग
	३७	सूक्ष्मेन्द्रिय	सूक्ष्मेन्द्रिय
२३२	२६	अवर्ग	अपवर्ग
२३६	१७	मण्ड	मण्डल से

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२४४	१७, १८	हा	कहाँ
२४६	२५	स्वयं	स्वय
२५०	३४	ग्रहा	ग्रहण
२५१	१४	वाणे	वाग्
	२३	अदि	यदि
२५२	३	जसे	जैसे
२५८	२२	इद्रन्यि	इन्द्रिय
२६२	१२	अन्तर्हित	अन्तर्निहित
२६४/२६६/३११	३१/४/१०	है	है
२६५	३	कट	कटु
२६७	११	वोलना	बोलना
	२६	मल	मूल
२६८	३०	विपण्ण	विपण्ण
२७०	१५	ज्ञाक	ज्ञान
२७३	१०	व्यात्त	व्याप्त
	१२	आख	आँख
२७४	२४	घ्रणा	घ्राण
२७५/२६६/३०८	३०/३०/२७	इद्रिय	इन्द्रिय
२७६	११	स्थिति	स्थिति
२८६	१	मूर्खों	मूर्खों
	४	गाया	गया
२६३	२६	ब्रह्य	ब्रह्म
२६८	१६	राश्मियो	रश्मियो
३०१	३५	का	
	३७	लगाता है	लगे
३०३	१०	है	है
३०३/३०४	३४/१	परिपक्क	परिपक्व
३१०	३०	पवक ारग	पक्वारग
	३६	स्पश	स्पर्श
३११	१४	मण्डल	मण्डल
३१७	८	मे	मे
	१४	भावर्थ	भावार्थ

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३१८	१८	को	के
३२२	९	२	०'२
३३३	५	श्रति	श्रुति
	१४	को	को
	२५	की	का
३३४	२	चित्तो	चित्तों
	२३	मक	मन
३४२	१९	होगा	होगी
३४३	१६	ध्ये	ध्याये
३४७	२१	तितीक्षा	तितिक्षा
३५७	३	घीरा:	धीरा:
३६७	२०	हैं	है
३७१	३६	पृष्ट	पृष्ठ
३७५	२९	विप्णु	विप्णु
३७७	२०	इसी	इसी का
३८०	२२	ओण	ओर
३८४	२०	कम	कर्म
३९०/३९३	७/१८	सांख्या	सांख्य
३९१	३	कतृत्व	कर्तृत्व
३९५	१	घृत्यु	धृत्यु
३९७	७	सावूना	साधूनां
४०५/४०९	२३/१७	ब्रह्म/वृह्म	ब्रह्म
४१०	९	रही	रहती
४१०	३६	अर्थवत्त्व	के अर्थवत्त्व
४१७	१८/२६	सम्वन्ध	सम्बन्ध
४२५	२६/२७	रात्रिगम/हन्त.	रात्रिगमि/
४५४	१६	पर्यान्त	पर्यन्त
४५९	५	वयाया	बताया
४५६	१८	होती	होता
४६६	१	आतमा	आत्मा
४६७	११	सर्व	सर्व
४७५	६	अन्तर्हित	अन्तर्निहित

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३१८	१८	को	के
३२२	६	२	० २
३३३	५	श्रति	श्रुति
	१४	की	को
	२५	की	का
३३८	२	चित्ती	चित्तो
	२३	मक	मन
३४२	१६	होगा	होगी
३४३	१६	ध्ये	ध्याये
३४७	२१	तितीक्षा	तितिक्षा
३५७	३	घीरा	धीरा
३६७	२०	हे	है
३७१	३६	पृष्ट	पृष्ठ
३७५	२६	बिष्णु	विष्णु
३७७	२०	इसी	इसी का
३८०	२२	औरण	और
३८४	२०	कम	कर्म
३६०/३६३	७/१८	साख्या	साख्य
३६१	३	कतृत्व	कर्तृत्व
३६५	१	घृत्यु	धृत्यु
३६७	७	सावूना	साधूना
४०५/४०६	२३/१७	व्रह्म/बृह्म	ब्रह्म
४१०	६	रही	रहती
४१०	३६	अर्थवत्व	के अर्थवत्त्व
४१७	१८/२६	सम्वन्ध	सम्बन्ध
४२५	२६/२७	रात्रिगम/हन्त	रात्रिर्गमि/
४५४	१६	पर्यान्ति	पर्यन्त
४८६	८	वयाया	बताया
४५८	१८	होती	होता
४६६	१	आतमा	आत्मा
४६७	११	सर्वे	सर्व
४७५	६	अन्तर्हित	अन्तर्निहित

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४७६	३	सम्मिप्रण	सम्मिश्रण
४७८	१८	वो	के
४८४	२६	महराजे	महाराजे
४८५	३८	वाल	वाला
५०१	२१	करण	कारण
५०६	१२	साप्ति	प्राप्ति

गंगोत्तरी के महान् सन्त, ब्रह्मज्ञानी
योगाचार्य्य श्री स्वामी योगेश्वरानन्द जी महाराज
(भूतपूर्व बालब्रह्मचारी श्री व्यासदेव जी) के रचित

अन्य ग्रन्थ

बहिरंग योग (हिन्दी)

पतंजलि योग शास्त्र के यम, नियम आसन प्राणायाम और प्रत्याहार अंगों की विशद और अपूर्व व्याख्या। आसनों आदि के ३२५ चित्र आर्ट पेपर पर। ३०० से ऊपर बड़े आकार के पृष्ठ, सुन्दर कपड़े की जिल्द। मूल्य ०?)

आत्म-विज्ञान

आत्मा के साक्षात्कार करने की क्रियात्मक व्यवस्था

जिस मे आर्ट पेपर पर २६ पचरंगे चित्र सूक्ष्म और कारण शरीरों को तथा उन अव्यवों के वास्तविक अवस्थाओं के दर्शन है। कपड़े की सुन्दर जिल्द छपाई तथा सज्जा उत्तम।

हिन्दी बढ़िया संस्करण	*मूल्य १५) रुपए*
हिन्दी साधारण संस्करण	*मूल्य १०) रुपए*
अंग्रेजी संस्करण	*मूल्य १२) रुपए*

प्रत्येक पुस्तक पर डाक व्यय पृथक

(बहिरंग योग, आत्म-विज्ञान व ब्रह्म विज्ञान) तीनों पुस्तकें एक साथ मंगवाने पर डाक व्यय पृथक नहीं होगा।

योग निकेतन ट्रस्ट
पो० ओ० स्वर्गाश्रम
ऋषिकेश (जि० देहरादून)—भारत